ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

सप्तमग्रन्थः

(अस्यान्तर्गतः)

क्षुद्रकबन्धः-द्वितीयखण्डः

सिद्धान्तचिन्तामणिटीकासमन्वितः

(गणिनीज्ञानमतीविरचिता)

मंगलाचरणम्

श्रीपद्मप्रभदेवाय, विश्वातिशयकारिणे।
नमोऽभीप्सितसिद्ध्यर्थं, ते च दिव्यध्वनिं स्तुमः।।१।।

लोके चमत्कारिणीं श्रीपद्मप्रभजिनप्रतिमां दर्शं दर्शं हर्षातिरेकेण मया श्रीपद्मप्रभजिनदेवस्य स्तुतिः क्रियते—

षट्खण्डागम-द्वितीय खण्ड

क्षुद्रकबंध

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—विश्व में अतिशयकारी तीर्थंकर भगवान श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र को एवं उनकी लोकहितकारिणी दिव्यध्वनि को अभीप्सित सिद्धि—मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति हेतु हम नमस्कार करते हैं।।१।।

भावार्थ—षट्खण्डागम के इस द्वितीय खण्ड की सिद्धान्तचिंतामणि टीका लिखने का शुभारंभ पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने राजस्थान के प्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र श्रीपदमपुरा तीर्थ पर भगवान पद्मप्रभ के चरणसानिध्य में वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस (२५२३) में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, दिनाँक १० मार्च १९९७ को किया है, इसीलिए उन छठे तीर्थंकर भगवान पद्मप्रभु को मंगलाचरण में नमस्कार करते हुए टीकाग्रंथ की निर्विघ्न लेखन शृँखला के पूर्ण होने हेतु भावना भायी है।

लोक में अतिशय चमत्कारिणी श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्र की प्रतिमा का पुनः पुनः दर्शन करके अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हुए मेरे द्वारा भगवान पद्मप्रभु की स्तुति की जा रही है—

श्रीपद्मप्रभस्तुतिः[१]

उपजातिछन्दः–

पद्मप्रभः पद्मपलाशलेश्यः, पद्मालयालिङ्गित चारुमूर्तिः।
बभौ भवान् भव्यपयोरुहाणां, पद्माकराणामिव पद्मबन्धुः।।१।।

बभार पद्मां च सरस्वतीं च, भवान्पुरस्तात्प्रतिमुक्तिलक्ष्म्याः।
सरस्वतीमेव समग्रशोभां, सर्वज्ञलक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः।।२।।

शरीररश्मिप्रसरः प्रभोस्ते, बालार्करश्मिच्छविरालिलेप।
नरामराकीर्णसभां प्रभावच्छैलस्य पद्माभमणेः स्वसानुम्।।३।।

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै।।४।।

गुणाम्बुधे र्विप्रुषमप्यजस्रं, नाखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः।
प्रागेव मादृक् किमुतातिभक्ति, र्मां बालमालापयतीदमित्थम्।।५।।

श्रीपद्मप्रभ स्तुति

श्लोकार्थ—जिनके शरीर का वर्ण कमल पत्र के समान लाल रंग का था, जिनकी आत्मस्वरूप निर्मलमूर्ति अनन्तज्ञानादिरूप अन्तरंग लक्ष्मी से तथा जिनकी समस्त उत्तम लक्षणों से सहित शरीर रूप मूर्ति निःस्वेदत्व आदि—पसीना आदि के अभाव रूप बाह्य लक्ष्मी से आलिङ्गित थी, ऐसे हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! आप भव्य जीवरूपी कमलों के हितोपदेश रूप विकास के लिए उसी तरह सुशोभित हुए थे, जिस तरह कि कमल समूह के विकास के लिए सूर्य सुशोभित होता है।।१।।

हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! आपने मोक्षरूपी लक्ष्मी के पूर्व अर्थात् अरहंत अवस्था में अनन्तज्ञानादिरूप लक्ष्मी और दिव्यवाणी—दिव्यध्वनि को धारण किया था अथवा समस्त पदार्थों के प्रतिपादनरूप विभूति और समवसरणादि रूप समस्त शोभा से युक्त दिव्यवाणी को ही धारण किया था। पुनः समस्त कर्ममल से रहित होकर दैदीप्यमान—सदा उपयोगरूप सर्वज्ञता रूप लक्ष्मी को धारण किया था।।२।।

प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान कांति वाले स्वामी! आपके शरीर संबंधी किरणों के समूह ने मनुष्य और देवों से व्याप्त समवसरण सभा को उस तरह आलिप्त कर रखा था, जिस तरह कि पद्मरागमणि के पर्वत की प्रभा अपने पार्श्वभाग को आलिप्त कर रखती है।।३।।

हे जिनेन्द्र! कामदेव के गर्व को नष्ट करने वाले आपने सहस्रदल कमलों के मध्य में चलने वाले अपने चरण कमलों के द्वारा आकाश तल को पल्लवों से युक्त जैसा कराते हुए पृथिवी पर स्थित प्रजाजनों की विभूति के लिए विहार किया था।।४।।

हे भगवन्! समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप आपके गुणरूपी सागर के एक बूंद की भी निरन्तर स्तुति करने के लिए जब इन्द्र पहले ही समर्थ नहीं हो सका है, तब मेरे जैसा असमर्थ मनुष्य कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है। यह तीव्र भक्ति ही मुझ अज्ञानी से इस तरह का स्तवन करा रही है।।५।।

---

१. श्री समन्तभद्राचार्य रचित।

भूमिका—अस्मिन् मध्यलोके जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रस्यार्यखण्डे भारतदेशे राजस्थानप्रदेशे 'पद्मपुर' नामातिशयक्षेत्रं प्रसिद्धमस्ति। अत्रस्था भूगर्भनिर्गता श्रीपद्मप्रभजिनप्रतिमा चमत्कारिणी वर्तते। अत्रातिशयक्षेत्रे दर्शनं कृत्वा नूतनविराजमान-खड्गासन विशालकाय-श्रीपद्मप्रभजिनप्रतिमायाः पञ्चामृतैर्महाभिषेकं विलोक्यास्माकंहृदयाम्बुजं विकसितं जातं।

षट्खण्डागमग्रन्थे कथितं यत्-

''सव्वतित्थयरेहिंतो पउमप्पहभडारओ बहुसीसपरिवारो तीससहस्साहिय-तिण्णिलक्खमेत्तमुणिगण-परिवुदत्तादो।''[१] एतन्निश्चित्य श्रीपद्मप्रभतीर्थंकरपादारविन्दयोः त्रिकरणशुद्ध्यानन्तशो नमस्करोमि अतिशय-भक्तिभावेन।

श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्यवर्यमुखकमलादधीत्य श्रीपुष्पदन्तभूतबलिसूरिभ्यां भव्यजनानुग्रहार्थं षट्खण्डागमनामधेयो ग्रन्थो विरचितः। अस्मिन् आगमे जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबंधाश्चेति षट्खण्डाः सन्ति।

अत्र षष्ठखण्डमन्तरेण पञ्चखण्डेषु षट्सहस्त्र-अष्टशत-एकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति। तद्यथा—

अस्मिन् परमागमे प्रथमखण्डे द्विसहस्त्र-त्रिशत-पंचसप्ततिसूत्राणि, द्वितीयखण्डे षड्न्यूनषोडशशत-सूत्राणि, तृतीयखण्डे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, चतुर्थखण्डे पंचविंशत्यधिकपंचदशशतसूत्राणि, पंचमखण्डे त्रयोविंशत्यधिक-सहस्त्राणि सूत्राणि सन्ति।

जीवस्थाननाम्नि प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-

---

भूमिका—इस मध्यलोक में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में भारतदेश के राजस्थान प्रदेश में ''पद्मपुरा'' नाम का अतिशय क्षेत्र प्रसिद्ध है। यहाँ विराजमान श्रीपद्मप्रभ भगवान की प्रतिमा भूगर्भ से प्राप्त चमत्कारिक प्रतिमा के रूप में मानी जाती है। इस अतिशयक्षेत्र के दर्शन करके यहाँ नूतन विराजमान खड्गासन विशालकाय तीर्थंकर पद्मप्रभ भगवान की जिनप्रतिमा का पंचामृत अभिषेक-महाभिषेक देखकर हम सभी के हृदय कमल प्रफुल्लित हो गये।

षट्खण्डागम ग्रंथ की धवला टीका में कहा है कि—

''सम्पूर्ण तीर्थंकरों की अपेक्षा पद्मप्रभ भट्टारक का शिष्य परिवार अधिक था, क्योंकि वे तीन लाख तीस हजार मुनिगणों से वेष्टित थे।'' इस प्रकार निश्चय करके श्री पद्मप्रभ तीर्थंकर भगवान के चरणकमलों में अतिशय भक्तिभाव से मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक अनन्तबार नमस्कार है।

श्रीमान् भगवान् श्रीधरसेनाचार्यवर्य के मुखकमल से अध्ययन करके श्री पुष्पदन्त-भूतबली आचार्यों ने भव्य प्राणियों पर अनुग्रह करने हेतु षट्खण्डागम नामका ग्रंथ रचा। इस षट्खण्डागमरूप आगम में जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड और महाबंध नामके छह खण्ड हैं।

इसमें छठे खण्ड के बिना पाँच खण्डों में छह हजार आठ सौ इकतालिस (६८४१) सूत्र हैं। वे इस प्रकार हैं—

इस परमागम सूत्र ग्रंथ के प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पचहत्तर (२३७५) सूत्र हैं, द्वितीय खण्ड में पन्द्रह सौ चौरानवे (१५९४) सूत्र हैं, तीसरे खण्ड में तीन सौ चौबीस (३२४) सूत्र हैं, चतुर्थ खण्ड में पन्द्रह सौ पच्चीस (१५२५) सूत्र हैं और पंचम खण्ड में एक हजार तेईस (१०२३) सूत्र हैं।

जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका समन्वित) पु.-३, पृष्ठ-९८।

अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमनामाष्टानुयोगद्वाराणि, नवचूलिकाश्च सन्ति। द्वितीयखण्डे क्षुद्रकबंधे बंधकानां प्ररूपणायां ''एकजीवेन स्वामित्वं, एकजीवेन कालः' इत्यादि एकादशानुयोगद्वाराणि सन्ति। बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे बंधपदेन बंधकर्ता कथ्यते। अत्रग्रंथे ''किं बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते ? किं उदयः'' इत्यादि त्रयोविंशति पृच्छास्तासां उत्तराणीत्यादिरूपेण ज्ञानावरणादि कर्मणां कारणादीनि कथ्यन्ते।

पुनश्च द्वितीयाग्रणीयपूर्वस्य पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध-बुद्धाश्चेति चतुर्दशाधिकाराः सन्ति। तेभ्यः 'चयनलब्धि' नामपंचमवस्तुनो विंशतिप्राभृतेषु चतुर्थं 'महाकर्मप्रकृतिनाम' प्राभृतं वर्तते। अस्य प्राभृतस्य चतुर्विंशति-अनुयोगद्वाराणि-कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्वानि चेति।

वेदनानामचतुर्थखण्डे कृति-वेदनानामद्वि-अनुयोगद्वारयोर्विस्तृतविवेचनमस्ति। वर्गणानामपंचमखण्डे शेषस्पर्शादिद्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणां कथनं ज्ञातव्यम्।

एवं नामनिरूपणरूपेण संक्षेपेण पंचखंडग्रन्थानां विषयविवेचना सूचितास्ति।

अथ वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे फाल्गुनशुक्लाद्वितीयायां प्रातःकाले श्रीपद्मप्रभदेवस्य जिनप्रतिमासमक्षे उपविश्य श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्यान्तर्गत क्षुद्रकबन्धनाम्नो द्वितीयखण्डस्य ''सिद्धान्तचिंतामणिटीका'' मया प्रारब्धा।

अन्तरानुगम-भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम नामके आठ अनुयोगद्वार एवं नौ चूलिकाएँ हैं। द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत क्षुद्रकबंध में बंधक जीवों की प्ररूपणा में एक जीव के साथ स्वामित्व, एक जीव की अपेक्षा काल इत्यादि ग्यारह अनुयोगद्वार हैं। बंधस्वामित्वविचय नाम के तृतीय खण्ड में बंध पद के द्वारा बंधकर्ता का कथन किया गया है। यहाँ इस ग्रंथ में ''क्या बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है ? उदय क्या है ? इत्यादि तेईस प्रश्न हैं, उनके उत्तर इत्यादि रूप से ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारण कहे गये हैं।

पुनश्च द्वितीय अग्रायणीय पूर्व के पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध और अनागतकालबुद्ध ये चौदह अधिकार हैं। उनमें से ''चयनलब्धि'' नामक पंचम वस्तु के बीस प्राभृतों में चतुर्थ ''महाकर्मप्रकृति'' नाम का प्राभृत है। इस प्राभृत के चौबीस अनुयोगद्वार हैं — कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व।

वेदना नामके चतुर्थ खण्ड में कृति-वेदना नामके दो अनुयोगद्वारों में विस्तृत विवेचन है। वर्गणा नाम-के पंचम खण्ड में शेष स्पर्श आदि बाईस अनुयोगद्वारों का कथन जानना चाहिए।

इस प्रकार नाम निरूपण के द्वारा संक्षेप से पाँच खण्डों में विभक्त ग्रंथों की विषयविवेचना सूचित की गई है।

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस (२५२३) में फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को प्रातःकाल श्रीपद्मप्रभ जिनप्रतिमा के समक्ष बैठकर श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्त और भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रंथ के अन्तर्गत क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड की ''सिद्धान्तचिंतामणिटीका'' मेरे द्वारा प्रारंभ की जा रही है।

अत्र द्वितीयखण्डे प्रथमस्तावत् बन्धकानां बंधसहितानां जीवानां सत्त्वनिरूपणरूपेण भूमिका वर्तते, किंच — स्वयं श्रीवीरसेनाचार्येणैवकथितम् —

''सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यन्त' इति न्यायात् बंधयाणमत्थित्ते सिद्धे संते पच्छा तेसिं विसेसपरूवणा जुज्जदे। तम्हा संतपरूवणं पुव्वमेव कादव्वमिदि। एवमत्थित्तेण सिद्धाणं बंधयाणमेक्कारसअणियोगद्दारेहि विसेसपरूवणट्ठमुत्तरगंथो अवइण्णो[१]।।''

अनेन ज्ञायते एषा अस्य क्षुद्रकबन्धनाम्नो ग्रन्थस्य भूमिका एव। अस्यां भूमिकायांत्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति।

अग्रे एतेषां बन्धकानां प्ररूपणायामेकादशानियोगद्वाराणि सन्ति। तेषां नामानि — एकजीवेन स्वामित्वं, एकजीवेन कालः, एकजीवापेक्षयान्तरं, नानाजीवापेक्षया भंगविचयः, द्रव्यप्ररूपणानुगमः, क्षेत्रानुगमः, स्पर्शनानुगमः, नानाजीवापेक्षया कालः, नानाजीवापेक्षयान्तरं, भागाभागानुगमः, अल्पबहुत्वानुगमश्चेति। एषु एकादशानियोगद्वारेषु चतुर्दशशतानि द्वासप्तत्यधिकानि सूत्राणि।

पुनश्चैतेषां अनियोगद्वाराणामल्पबहुत्वाधिकारस्य वा चूलिकारूपेण महादण्डको नामाधिकारोऽस्ति, अस्मिन् एकोनाशीतिसूत्राणि सन्ति। सर्वाण्यपि मिलित्वा सूत्राणि चतुर्णवत्यधिकपंचदशशतसूत्राणि भवन्ति। अतएवात्र द्वादश महाधिकारा विभज्यन्ते।

अस्मिन् ग्रन्थे प्रारम्भे भूमिकायां केवलं मार्गणासु बन्धका अबन्धकाश्च जीवा अन्वेषिता भविष्यन्ति। अत्र त्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि भवन्ति।

(१) ततः परं प्रथमे महाधिकारे स्वामित्वानुगमे नाम्नि मार्गणासु बन्धसहितानां जीवानां स्वामित्व-

---

इस द्वितीय खण्ड में सर्वप्रथम बंध सहित जीवों का सत्त्व निरूपण करने वाली भूमिका है। क्योंकि श्री वीरसेनाचार्य ने स्वयं ही कहा है —

''धर्मी के सद्भाव में ही धर्मों का चिंतन किया जाता है'' इस न्याय के अनुसार बंधकों का अस्तित्व सिद्ध हो जाने पर उनके पश्चात् उनकी विशेष प्ररूपणा करना उचित है। इसलिए बंधकों की सत्प्ररूपणा पहले ही कहना चाहिए। इस प्रकार अस्तित्व से सिद्ध हुए बंधकों का ग्यारह अनुयोगों द्वारा विशेष प्ररूपणा करने के उद्देश्य से आगे की ग्रंथ रचना हुई है।

इससे यह जाना जाता है कि यह इस क्षुद्रक बंध नामके ग्रंथ की भूमिका ही है। इस भूमिका में तेंतालीस (४३) सूत्र हैं।

आगे इन बंधकों की प्ररूपणा में ग्यारह अनियोगद्वार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— १. एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, २. एक जीव की अपेक्षा काल ३. एक जीव की अपेक्षा अंतर ४. नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शनानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा काल९. नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर १०. भागाभागानुगम और ११. अल्पबहुत्वानुगम। इन ग्यारह अनियोगद्वारों में चौदह सौबहत्तर (१४७२)सूत्र हैं।

पुनः इन अनियोगद्वारों के अल्पबहुत्व अधिकार की चूलिकारूप महादण्डक नामका अधिकार है, उसमें उन्यासी (७९) सूत्र हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर इस ग्रंथ में पंद्रह सौ चौरानवे (१५९४) सूत्र हैं। इसलिए यहाँ बारह महाधिकार विभक्त किये गये हैं।

इस ग्रंथ में प्रारंभ की भूमिका में केवल मार्गणाओं में बंधक और अबंधक जीव अन्वेषित होंगे अर्थात् उनकी खोज की जायेगी। यहाँ तेंतालिस (४३) सूत्र हैं।

(१) उसके पश्चात् प्रथम स्वामित्वानुगम नामक महाधिकार में मार्गणाओं में बंध सहित जीवों के

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीकासमन्वित) पु.-७, पृष्ठ-२४।

निरूपणायां उदयस्थानानि वर्णितानि भवन्ति। औपशमिकादिपंचभावापेक्षयापि स्वामित्वं सूचितमत्र। अत्र एकनवतिसूत्राणि सन्ति ।

(२) तदनु एकजीवापेक्षया कालानुगमे नाम्नि महाधिकारे मार्गणासु कालप्ररूपणा कथिता। अत्र नारकेषु कालनिरूपणत्वेनायूंषि निगदितानि संति। अनेन प्रकारेण त्रिसृष्ववि गतिषु आयूंषि वर्णितानि। एवमेव सर्वास्वपि मार्गणासु कालनिरूपणपरत्वेन षोडशाधिकद्विशतसूत्राणि भविष्यन्ति।

(३) तदनंतरं एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे नाम्नि महाधिकारे मार्गणासु एकजीवं प्रतीत्यान्तरमुच्यते। अत्र एकपञ्चाशदधिकशतसूत्राणि सन्ति। अस्मिन् प्रकरणे जघन्येनान्तरं अन्तर्मुहूर्तप्रमाणं देवानामिति कथनेन देवगतेरागत्य कश्चिद् जीवः गर्भे आगतस्तत्र पर्याप्तीः समानीय देवायुर्बंधं कृत्वा पुनः देवगतावुत्पन्नस्तस्यान्तरं अंतर्मुहूर्तं लब्धं[१]। अत्र मातुर्गर्भे एव सर्वं कार्यं जातमिति ज्ञातव्यं विशेषेण।

(४) तत्पश्चात् नानाजीवापेक्षया भंगविचयानुगमे महाधिकारे त्रयोविंशतिसूत्राणि भवन्ति। अत्रास्ति-नास्तिभंगौ एव विवक्षितौ स्तः।

(५) ततश्च द्रव्यप्रमाणानुगमे नाम्नि पंचमे महाधिकारे एकसप्ततिअधिकशतसूत्राणि। अत्र मार्गणासु द्रव्यप्रमाणमिति कथनत्वेन संख्या निरूपितास्ति।

(६) तदनु क्षेत्रानुगमे नाम्नि षष्ठे महाधिकारे चतुर्विंशत्यधिकशतसूत्राणि सन्ति। अत्रापि चतुर्दश-मार्गणासु विहारेण समुद्घातैः उपपादेन च वर्तमानक्षेत्रं निरूप्यते।

(७) तदनन्तरं स्पर्शनानुगमे नामसप्तमे महाधिकारे एकोनाशीत्यधिक द्विशतसूत्राणि भवन्ति। अत्र

स्वामित्व का निरूपण करने में उदयस्थानों का वर्णन है। औपशमिक आदि पाँच भावों की अपेक्षा भी यहाँ स्वामित्व को सूचित किया गया है। इस प्रथम महाधिकार में इक्यानवे (९१) सूत्र हैं।

(२) उसके पश्चात् कालानुगम नाम के महाधिकार में एक जीव की अपेक्षा मार्गणाओं में कालप्ररूपणा कही है। यहाँ नारकियों में काल का निरूपण करने के लिए उनकी आयु के विषय में वर्णन किया है। इसी प्रकार तीनों गतियों की भी आयु का वर्णन है। इसी प्रकार सभी मार्गणाओं में काल का निरूपण करने वाले दो सौ सोलह (२१६) सूत्र कहेंगे।

(३) तदनंतर एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नामक तृतीय महाधिकार में मार्गणाओं में एक जीव की अपेक्षा अन्तर कहा है। इसमें एक सौ इक्यावन (१५१) सूत्र हैं। इस प्रकरण में जघन्य से देवों का अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, ऐसा कथन करने से यह अर्थ समझना कि देवगति से निकल कर कोई जीव गर्भ में आया, वहाँ पर्याप्तियाँ पूर्ण करके देवायु का बंध करके पुनः देवगति में उत्पन्न हो गया, उसका अन्तर अन्तर्मुहूर्तकाल प्राप्त होता है। वहाँ माता के गर्भ में ही सम्पूर्ण कार्य हो गया, ऐसा विशेष कथन जानना चाहिए।

(४) तत्पश्चात् नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयानुगम नाम के महाधिकार में तेईस (२३) सूत्र कहे गये हैं। यहाँ अस्ति-नास्ति इन दो भंगों की ही विवक्षा है।

(५) पुनः द्रव्यप्रमाणानुगम नामक पंचम महाधिकार में एक सौ इकहत्तर (१७१) सूत्र हैं। यहाँ चौदह मार्गणाओं में द्रव्यप्रमाण के कथन के द्वारा संख्या का निरूपण किया है।

(६) इसके पश्चात् क्षेत्रानुगम नाम के छठे महाधिकार में एक सौ चौबीस (१२४) सूत्र हैं। यहाँ भी चौदह मार्गणाओं में विहार की अपेक्षा, समुद्घातों की अपेक्षा और उपपाद की अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र निरूपित किया है।

(७) तदनंतर स्पर्शनानुगम नाम के सातवें अधिकार में दो सौ उन्यासी (२७९) सूत्र हैं। इसमें

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका समन्वित) पु. ७, पृष्ठ १९०।

ऊर्ध्वलोक-अधोलोक-तिर्यग्लोक-मनुष्यलोक-सामान्यलोकभेदैः पंचविधलोकेषु भूतवर्तमानक्षेत्रस्पर्शन-प्रतिपादनत्वेन चतुर्दशमार्गणासु सर्वेषां बंधकानां अबन्धकानां च अवस्थानं निरूपितमस्ति।

(८) तत्पश्चात् नानाजीवापेक्षया कालानुगमनाम्नि अष्टमे महाधिकारे पंचपंचाशत्सूत्राणि भवन्ति। अत्र सर्वास्वपि मार्गणासु कालप्ररूपणा विधीयते नानाजीवानाश्रित्येति।

(९) ततः पुनः नानाजीवापेक्षयान्तरानुगमे नाम्नि नवमे महाधिकारे अष्टषष्टिसूत्राणि सन्ति। अत्र मार्गणासु नानाजीवानाश्रित्यान्तरं प्ररूपितं अस्ति।

(१०) तदनन्तरं भागाभागानुगमे नाम्नि दशमे महाधिकारेऽष्टाशीतिसूत्राणि। अत्र अनन्तभाग-असंख्यातभाग-संख्यातभागहाराणां 'भाग' इति संज्ञा। अनन्तबहुभाग-असंख्यातबहुभाग-संख्यातबहुभागानां 'अभाग' इति संज्ञा। भागश्चाभागश्च भागाभागौ इति द्वन्द्वसमासेन भागाभागानुगमो जातः। अयमनुगम-श्चतुर्दशमार्गणासु प्रश्नोत्तररूपेण विवक्षितोऽस्ति।

(११) ततश्चाल्पबहुत्वानुगमे नाम्नि एकादशमे महाधिकारे षडुत्तरद्विशतसूत्राणि भवन्ति। अस्मिन्महा-धिकारे गतिभेदा एकविधा द्विविधाः त्रिविधाश्चतुर्विधाः पंचविधाश्चेति वर्णिता विशेषेण।

अत्र पर्यन्तं एकादशानियोगद्वारेषु मार्गणासु विशेषेण व्याख्यानं घटयति।

(१२) पुनश्चाग्रे चूलिकास्वरूपेण महादण्डकनाममहाधिकारः कथितः। तत्राल्पबहुत्वनिरूपण-विशेषेणैव एकोनाशीति सूत्राणि विरचितानि सन्ति श्रीभूतबलिसूरिवर्येण।

इत्थमत्र द्वितीयखण्डस्य क्षुद्रकबन्धस्य प्रस्तावना विहितास्ति।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक और सामान्यलोक इन भेदों से सहित पाँच प्रकारके लोक में भूत और वर्तमान क्षेत्र के स्पर्शन का प्रतिपादन के द्वारा चौदह मार्गणाओं में सभी बंधक और अबंधक जीवों का अवस्थान निरूपित किया है।

(८) तत्पश्चात् नाना जीव की अपेक्षा कालानुगम नामक आठवें महाधिकार में पचपन (५५) सूत्र हैं। यहाँ सभी मार्गणाओं में नाना जीवों का आश्रय लेकर कालप्ररूपणा का वर्णन करेंगे।

(९) पुनः नाना जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नाम के नवमें महाधिकार में अड़सठ (६८) सूत्र हैं। इस अधिकार में नाना जीवों का आश्रय लेकर अन्तर प्ररूपित किया है।

(१०) तदनंतर भागाभागानुगम नाम के दशवें महाधिकार में अट्ठासी (८८) सूत्र हैं। यहाँ अनन्त-भाग, असंख्यातभाग और संख्यातभागहारों की "भाग" यह संज्ञा है। अनन्तबहुभाग, असंख्यातबहुभाग, संख्यातबहुभाग इन सभी की "अभाग" यह संज्ञा निर्धारित है। भाग और अभाग ये दोनों द्वन्द्व समास के द्वारा भागाभाग रूप में जाने जाते हैं, यही भागाभागानुगम अनियोगद्वार इस अधिकार में वर्णित है। यह अनुगम यहाँ चौदह मार्गणाओं में प्रश्नोत्तररूप से विवक्षित है। अर्थात् प्रश्नोत्तररूप में भागाभागानुगम प्रकरण को स्पष्ट किया जायेगा।

(११) इन सबके पश्चात् अल्पबहुत्वानुगम नाम के ग्यारहवें महाधिकार में दो सौ छह (२०६) सूत्र हैं। इस महाधिकार में गतियों के भेद— एक प्रकार, दो प्रकार, तीन प्रकार, चार प्रकार और पाँच प्रकार से विशेष वर्णन करेंगे।

यहाँ तक ग्यारह अनियोगद्वारों में मार्गणाओं में विशेष वर्णन को घटित किया है।

(१२) पुनः आगे चूलिकास्वरूप महादण्डक नामसे महाधिकार कहा है। वहाँ अल्पबहुत्व का विशेष निरूपण करने वाले उन्यासी (७९) सूत्र श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचे गये हैं।

इस प्रकार यहाँ द्वितीय खण्ड के क्षुद्रकबंध की प्रस्तावना — भूमिका बतलाई गई है।

अथ बन्धकसत्त्वप्ररूपणा

मंगलाचरणम्

सिद्धान्नत्वा जगत्पूज्यान्,[१] वासुपूज्यं जिनं पुनः।
सर्वाश्चूलिगिरिस्थाश्च, नूयन्ते मूर्तयोऽधुना।।१।।

देवीं सरस्वतीं स्तुत्वा, सा हृदयेऽवतार्यते।
यस्याः कृपाप्रसादेना-भीप्सितार्थाः फलन्ति नः।।२।।

श्रीधरसेनसूरीन्द्रः, पुष्पदन्तो मुनिस्तथा।
श्रीभूतबलिसूरिश्च, स्तूयंते श्रद्धयाऽनिशम्।।३।।

क्षेत्रेऽत्र खानियानाम्नि, समाधिं प्राप्य स्वर्गतः।[२]
श्रीशांतिसन्धिसूरेर्यः, प्रथमः पट्टाधिपो भुवि।।४।।

श्रीवीरसागराचार्यो, वंद्यतेऽसौ मया मुदा।
येन[३] ज्ञानमतिं कृत्वा मां जगत्तारकोऽभवत्।।५।।

अथ बंधकसत्वप्ररूपणा प्रारंभ

—मंगलाचरण —

श्लोकार्थ — जगत् पूज्य समस्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके पुनः मंदिर में (जयपुर नगरी में खानिया जी में) विराजमान मूलनायक भगवान वासुपूज्य जिनेन्द्र को तथा चूलगिरि पर्वत पर विराजमान समस्त जिनप्रतिमाओं को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।१।।

सरस्वती माता की स्तुति करके मैंने उन्हें अपने हृदयमें अवतरित-स्थापित कर लिया है, जिनकी कृपाप्रसाद से हम सभी के इच्छित कार्य सिद्ध हो जाते हैं।।२।।

श्रीधरसेन आचार्य तथा श्रीमत् पुष्पदंत और भूतबली मुनिराजों की मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक स्तुति की जाती है।।३।।

इस "खानिया" नाम के तीर्थक्षेत्र पर (सन् १९५७ में) बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर मुनिराज के प्रथम पट्टशिष्य ने समाधिमरण करके स्वर्ग को प्राप्त किया है।।४।।

उन प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज के श्रीचरणों में मेरा नमन है, जिन्होंने मुझे (सन् १९५६ में) आर्यिका दीक्षा देकर "ज्ञानमती" नाम प्रदान किया और संसार समुद्र से तिराने वाले जगतारक कहलाए।।५।।

---

१. खानिया में राणाजी की नशिया में मूलनायक भगवान वासुपूज्य हैं अतः उन्हें नमन किया है। २. खानिया में सन् १९५७ में आश्विन कृ.अमावस्या को आचार्य श्री वीरसागर जी समाधिपूर्वक मरण करके 'स्वर्गं गतः' स्वर्ग को प्राप्त हुये। ये इस शताब्दी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी के प्रथमपट्टाचार्य हुए हैं। ३. इनसे मैंने आर्यिका दीक्षा लेकर 'ज्ञानमती' नाम पाया है। सन् १९५६ वै.कृ. २ को माधोराजपुरा राजस्थान में।

जीयादाद्यो[१] गुरुर्लोकेऽप्याचार्यो देशभूषणः ।
योऽत्राद्रिर्व्यधात्तीर्थं, विनिर्माप्य जिनालयम्।।६।।

अस्य ग्रन्थस्य स्वाध्यात्, मे बन्धः शिथिलीभवेत्।
'क्षुद्रकबन्धग्रन्थोऽयं' तस्मान्नंनम्यते मया।।७।।

अथ षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबन्धनाम्नि द्वितीयखण्डे भूमिकारूपेण—पीठिकारूपेण त्रिचत्वारिंशत्सूत्रैः चतुर्दशभिः स्थलैः बंधकसत्त्वप्ररूपणा नामाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले बन्धकजीवस्यास्तित्वं गतिमार्गणायां प्रतिपादनप्रतिज्ञारूपेण ''जे ते बंधगा'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः परं द्वितीयस्थले इन्द्रियमार्गणायां बंधक-जीवस्यास्तित्वनिरूपणत्वेन ''इंदियाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु तृतीयस्थले कायमार्गणायां बंधकास्तित्वकथनत्वेन ''कायाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले योगे जीवास्तित्वकथनत्वेन ''जोगा'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च पंचमस्थले वेदे बंधकस्यास्तित्वनिरूपणत्वेन ''वेदा-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनः षष्ठस्थले कषाये बंधकास्तित्वकथनेन ''कसाया-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् सप्तमस्थले ज्ञानमार्गणायां बंधकस्य कथनत्वेन ''णाणा-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं अष्टमस्थले संयमे बंधकनिरूपणत्वेन ''संजमा-

---

इस खानिया जी के पर्वत पर जिन्होंने जिनालय का निर्माण करवाकर उसे ''चूलगिरि'' तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध किया है, वे आचार्य श्री देशभूषण महाराज इस लोक में जयशील होवें, जो कि मेरे आद्यगुरु हैं।।६।।

इसके स्वाध्याय से मेरे कर्मबंध शिथिल होवें, यही मेरी अभिलाषा है इसीलिए इस ''क्षुद्रकबंध'' नामक ग्रंथ को मेरा बारम्बार नमस्कार है।।७।।

भावार्थ —पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् १९९७ में मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र से दिल्ली की ओर मंगल विहार के मध्य फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी (१२ मार्च १९९७) को जयपुर-खानिया जी में इस षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड के इस प्रकरण का लेखन किया था, इसीलिए उन्होंने इस स्थल से जुड़ी घटनाओं—आचार्यश्री वीरसागर महाराज की समाधि एवं चूलगिरि तीर्थ निर्माण का प्रकरण इसमें समाविष्ट किया है।

अब षट्खण्डागम ग्रंथ के क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भूमिकारूप में तेंतालिस सूत्रों के द्वारा चौदह स्थलों में विभक्त बंधकसत्वप्ररूपणा नाम का अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में गतिमार्गणा में बंधक जीव के अस्तित्व का प्रतिपादन करने की प्रतिज्ञारूप से ''जे ते बंधगा....'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में इन्द्रियमार्गणा में बंधक जीव का अस्तित्व निरूपण करने हेतु ''इंदियाणु.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में कायमार्गणा में बंधक जीवों का अस्तित्व बतलाने वाले ''कायाणु.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में योगमार्गणा के अंदर बंधक जीवों का अस्तित्व बतलाने हेतु ''जोगा.....'' इत्यादि दो सूत्र हैं। आगे पंचम स्थल में वेदमार्गणा के अंदर बंधकों का अस्तित्व बतलाने वाले ''वेदा.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् छठे स्थल में कषायमार्गणा में बंधकों का अस्तित्व बतलाने वाले ''कसाया.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् सातवें स्थल में ज्ञानमार्गणा में बंधकों का अस्तित्व बतलाने हेतु ''णाणा....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर आठवें स्थल में संयममार्गणा में बंधक जीवों का अस्तित्व कथन करने वाले ''संजमा.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद नवमें स्थल में दर्शनमार्गणा के

---

१. आचार्यश्री देशभूषण जी से मैंने सन् १९५३, चै.कृ. १ को 'महावीर जी' अतिशय क्षेत्र पर क्षुल्लिका दीक्षा ली थी अतः ये मेरे आद्य—प्रथम गुरु हैं। २. इन आचार्य देशभूषणजी ने खानिया में पर्वत पर जिनमंदिर बनवाकर विशालकाय प्रतिमा विराजमान कराकर उसे तीर्थ 'चूलगिरि' बना दिया है।

''इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु नवमस्थले दर्शनमार्गणायां बंधकजीवास्तित्वकथनेन 'दंसणा-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततो दशमस्थले लेश्यायां बंधकजीवप्ररुपणत्वेन ''लेस्सा-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च एकादशमस्थले भव्यमार्गणायां बंधसहितस्यास्तित्वेन ''भविया-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वादशमस्थले सम्यक्त्वे बंधकास्तित्वेन ''सम्मत्ताणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं त्रयोदशमस्थले संज्ञिमार्गणायां बंधककथनत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादि सूत्रत्रयं। ततः पुनः चतुर्दशस्थले आहारमार्गणायां बंधकजीवास्तित्वपादनत्वेन ''आहाराणु-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणीति समुदायपातनिका भवति।

अधुना बंधकानां संसारिजीवानां प्रतिपादनाय इदं प्रतिज्ञासूत्रमवतार्यते श्रीभूतबलिसूरिवर्येण —

जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिद्देसो।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**'जे ते बंधगा णाम' ये ते बंधकाः कर्मबंध सहिताः ते संसारिणो जीवाः नाम इति वचनं बंधकानां जीवानां पूर्वप्रसिद्धत्वं सूचयति।**

पूर्वं कस्मिन् प्रसिद्धे बंधके सूचयति ?

महाकर्मप्रकृतिप्राभृतग्रन्थे सूचयति। तद्यथा—महाकर्मप्रकृतिप्राभृतस्य कृतिवेदनादिचतुर्विंशतिअनुयोगद्वारेषु षष्ठस्य बंधनानियोगद्वारस्य बंधः बंधकः बंधनीयं बंधविधानमिति चत्वारोऽधिकाराः कथिताः। तेषु चतुर्षु 'बंधकः' इति यः द्वितीयोऽधिकारः स एतेन वचनेन सूचितोऽस्ति। ये ते महाकर्मप्रकृति प्राभृते बंधकाः निर्दिष्टाः तेषामयं निर्देशो ज्ञातव्यः इत्यत्र उक्तं भवति।

अंदर बंधक जीवों का अस्तित्व प्रतिपादित करने वाले ''दंसणा.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः दशवें स्थल में लेश्या मार्गणा में बंधक जीवों का अस्तित्व निरूपण करने वाले ''लेस्सा....'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके आगे ग्यारहवें स्थल में भव्यमार्गणा में बंधसहित जीवों का अस्तित्व प्रतिपादन करने हेतु ''भविया.....'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः बारहवें स्थल में सम्यक्त्वमार्गणा में बंधकों का अस्तित्व बतलाने हेतु ''सम्मत्ताणु.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर तेइसवें स्थल में संज्ञीमार्गणा में बंधक जीवों का कथन करने हेतु ''सण्णिया....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः चौदहवें स्थल में आहारमार्गणा के अंदर बंधक जीवों का अस्तित्व बतलाने वाले ''आहाराणु.....'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब बंधक संसारी जीवों का प्रतिपादन करने हेतु श्री भूतबलि आचार्य के द्वारा प्रतिज्ञासूत्र अवतरित किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

जो वे बंधक जीव हैं उनका यहाँ निर्देश किया जाता है।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—''जो वे बंधक हैं'' इसका अर्थ यह है कि जो वे बंधक अर्थात् कर्मबंध सहित जीव हैं वे संसारी जीव इस नाम से जाने जाते हैं अतः यह वचन बंधकों की पूर्व में प्रसिद्धि को सूचित करता है।

प्रश्न—पहले किस ग्रंथ में प्रसिद्ध बंधकों की सूचना है ?

उत्तर —महाकर्मप्रकृति प्राभृत ग्रंथ में बंधकों की सूचना दी गई है। वह इस प्रकार है—महाकर्मप्रकृति प्राभृत के कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में छठे बंधन अनुयोगद्वार के बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान, ये चार अधिकार हैं। उनमें जो बंधक नाम का दूसरा अधिकार है वही इस सूत्र वचन द्वारा सूचित किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो वे महाकर्मप्रकृतिप्राभृत में बंधक कहकर निर्दिष्ट किये गये हैं, उन्हीं का यहाँ निर्देश है।

बंधकाः नाम जीवाश्चैव, अजीवस्य मिथ्यात्वादिप्रत्ययैः त्यक्तस्य रहितस्य बंधकत्वानुपपत्तेः।

कश्चिदाह—**ते च बंधकाः जीवाः जीवस्थाने चतुर्दशगुणस्थानविशिष्टाः, चतुर्दशमार्गणास्थानेषु सत्संख्यादि-अष्टानुयोगद्वारैः मार्गिताः। संप्रति तेषामेव जीवानां सत्त्वादिना अवगतानां पुनरपि प्ररूपणायां क्रियमाणायां पुनरुक्तदोषः आगच्छति इति चेत् ?**

पुनरुक्तदोष आगच्छति यदि तेषां जीवानां तैरेव गुणस्थानैः विशेषितानां चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु तैश्चैवाष्टभिरनियोगद्वारैः मार्गणा क्रियेत्, किन्तु नैतत् अत्र तु चतुर्दशगुणस्थानविशेषणमपनीय चतुर्दशसु मार्गणास्थानेषु एकादशानुयोगद्वारैः पूर्वोक्तजीवानां प्ररूपणा क्रियते, तेन पुनरुक्तदोषो नागच्छति इति ज्ञातव्यं।

जीवस्थाने कृतप्ररूपणायाश्चैव अत्र प्ररूप्यमाणोऽर्थः येन ज्ञायते तेन अस्याः प्ररूपणाया न किञ्चित् फलं पश्यामो वयम् ?

नैतद् वक्तव्यं, मार्गणास्थानेषु चतुर्दशगुणस्थानानां सदादिप्ररूपणायाः मार्गणास्थानविशेषितजीव-प्ररूपणायाः एकत्वानुपलम्भात्। यदि तत्प्ररूपणया अस्याः प्ररूपणायाः एकत्वमस्ति तर्हि अवगम्येत, किन्तु न चैकत्वं दृश्यते। अथवा एतेन क्रमेण स्थितद्रव्यादि-अनुयोगद्वाराणि गृहीत्वा जीवस्थानं कृतमिति ज्ञापनार्थं बंधकानां प्ररूपणा आगता। तस्मात् बंधकानां प्ररूपणा न्यायप्राप्ता इति।

चतुर्विधबंधकानां कथनं—

नामबंधकाः स्थापनाबंधकाः द्रव्यबंधकाः भावबंधकाश्चेति चतुर्विधाः बंधकाः भणिताः। तत्र नामबंधकाः 'बंधकः' इति शब्दः जीवाजीवादिअष्टभंगेषु प्रवर्तितः। एषः नामनिक्षेपः द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य स्थितः।

जीव ही बंधक होते हैं, क्योंकि मिथ्यात्व आदिक बंध के कारणों से रहित अजीव के बंधकभाव की उपपत्ति नहीं बनती।

यहाँ कोई शंका करता है कि—उन्हीं बंधक जीवों का जीवस्थान खण्ड में चौदह गुणस्थानों की विशेषता सहित चौदह मार्गणस्थानों में सत् संख्या आदि आठ अनुयोगों के द्वारा अन्वेषण किया गया है। अब सत् आदि प्ररूपणाओं द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवों का फिर प्ररूपण करने पर पुनरुक्ति दोष उत्पन्न होता है ?

समाधान —पुनरुक्ति दोष प्राप्त होता, यदि उन जीवों का उन्हीं गुणस्थानों की विशेषता सहित चौदह मार्गणाओं में उन्हीं आठ अनुयोगों द्वारा अन्वेषण किया जाता। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ तो चौदह गुणस्थानों की विशेषता को छोड़कर चौदह मार्गणास्थानों में ग्यारह अनुयोगद्वारों से पूर्वोक्त जीवों की प्ररूपणा की जा रही है। अतः यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं प्राप्त होता है।

शंका —जीवस्थान खण्ड में जो प्ररूपणा की गई है, उसी से यहाँ प्ररूपित किये जाने वाले अर्थ का ज्ञान हो जाता है, अतः इस प्ररूपणा में हमें तो किंचित् भी फल दिखाई नहीं देता है ?

समाधान —ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि मार्गणास्थानों में चौदह गुणस्थानों की सत् संख्या आदिरूप प्ररूपणा से मार्गणास्थान विशेषित जीवप्ररूपणा का एकत्व नहीं पाया जाता है। यदि उस प्ररूपणा से इस प्ररूपणा में एकत्व होता, तो हम जान लेते। किन्तु हमें उन दोनों प्ररूपणाओं में एकत्व दिखाई नहीं देता ?

अथवा, इस क्रम से स्थित द्रव्यादि अनुयोगद्वारों को लेकर जीवस्थान खण्ड की रचना की गई है, यह बतलाने के लिए बंधकों की प्ररूपणा प्रस्तुत है। अतएव बंधकों की प्ररूपणा न्यायप्राप्त है।

चार प्रकार के बंधक का कथन करते हैं—नामबंधक, स्थापनाबंधक, द्रव्यबंधक और भावबंधक। उनमें नामबंधक तो 'बंधक' यह शब्द ही है, जो जीवबंधक, अजीवबंधक आदि आठ भंगों में प्रवृत्त होता है। यह नाम विशेष द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करके स्थित है, क्योंकि नाम की सामान्य में प्रवृत्ति देखी जाती

नाम्नः सामान्ये प्रवृत्तिदर्शनात् दृष्टानन्तरसमये नष्टपदार्थेषु संकेतग्रहणानुपपत्तेः।

काष्ठ-पोत-लेप्यकर्मादिषु सद्भावासद्भावभेदेन ये स्थापिता बंधकाः इति ते स्थापनाबंधकाः नाम। एष निक्षेपः द्रव्यार्थिकनयमवलंब्य स्थितः। 'स एषः' इत्येतदध्यवसायेन विना स्थापनाया अनुपपत्तेः।

ये ते द्रव्यबंधका नाम ते द्विविधाः आगमनोआगमभेदेन। बंधकप्राभृतज्ञायकाः अनुपयुक्ताः आगम-द्रव्यबंधकाः नाम।

आगमेन विप्रमुक्तस्य जीवद्रव्यस्य आगमव्यपदेशः कथम् ?

नैष दोषः, आगमाभावेऽपि आगमसंस्कारसहितस्य पूर्वं लब्धागमव्यपदेशस्य जीवद्रव्यस्य आगमव्यप-देशोपलंभात्। एतेनैव भृष्ट संस्कारजीवद्रव्यस्यापि ग्रहणं कर्तव्यं, तत्रापि आगमव्यपदेशोपलंभात्। नोआगमात् द्रव्यबंधकाः त्रिविधाः—ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तबंधकभेदेन। ज्ञायकशरीर-भाविद्रव्यबंधकाः सुगमाः। तद्व्यतिरिक्तद्रव्यबंधकाः द्विविधाः—कर्मबंधका नोकर्मबंधकाश्चेति तत्र ये नोकर्मबंधकास्ते त्रिविधाः——सचित्तनोकर्मद्रव्यबंधकाः अचित्तनोकर्मद्रव्यबंधकाः मिश्रनोकर्मद्रव्यबंधकाश्चेति। तत्र सचित्तनोकर्मद्रव्यबंधकाः यथा हस्तिनां बंधन्नअश्वानां बंधका इत्येवमादयः। अचित्तनोकर्मद्रव्यकर्मबंधकाः यथा काष्ठानां बंधकाः सूर्पाणां बंधकाः कटकानां बंधकाः इत्येवमादयः। मिश्रनोकर्मद्रव्यकर्मबंधकाः यथा साभरणानां हस्तिनां बंधकाः इत्येवमादयः।

ये कर्मबंधकास्ते द्विविधाः—ईर्यापथकर्मबंधकाः सांपरायिककर्मबंधकाश्च। तत्र ये ईर्यापथकर्मबंधकास्ते द्विविधाः छद्मस्थाः केवलिनश्च।

ये छद्मस्थास्ते द्विविधाः—उपशान्तकषायाः क्षीणकषायाश्चेति। ये सांपरायिकास्तेऽपि द्विविधाः—सूक्ष्मसांपरायिकाः बादरसांपरायिकाश्चेति। ये सूक्ष्मसांपरायिकाः बंधकास्ते द्विविधा—असंपरायिकादयः

है, चूँकि दिखाई देने के अनन्तर समय में ही नष्ट हुए पदार्थों में संकेत ग्रहण करना नहीं बनता।

काष्ठकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म आदि में सद्भाव और असद्भाव के भेद से जिनकी 'ये बंधक है' ऐसी स्थापना की गई हो, वे स्थापनाबंधक हैं। यह निक्षेप भी द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से स्थित है। क्योंकि 'वह यही है' ऐसे एकत्व का निश्चय किये बिना स्थापना निक्षेप बन नहीं सकता।

जो द्रव्यबंधक हैं, वे आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार के हैं। बंधक प्राभृत के जानकार किन्तु उसमें अनुपयुक्त जीव आगमद्रव्यबंधक हैं।

शंका—जो आगम के उपयोग से रहित हैं, उस जीव द्रव्य को 'आगम' कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आगम संज्ञा को प्राप्त न होने पर भी आगम के संस्कार सहित एवं पूर्व काल में आगम संज्ञा को प्राप्त जीव द्रव्य को आगम कहना पाया जाता है। इसी से जिस जीव का आगम संस्कार भ्रष्ट—छूट गया है। उसका ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योंकि उसके भी आगम संज्ञा पाई जाती है। ज्ञायकशरीर, भावि और तद्व्यतिरिक्त के भेद से नोआगम द्रव्यबंधक तीन प्रकार के हैं। उनमें ज्ञायकशरीर और भाविद्रव्यबंधक ये दो भेद सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्त द्रव्यबंधक दो प्रकार के हैं—कर्मबंधक और नोकर्मबंधक। उनमें जो नोकर्मबंधक हैं वे तीन प्रकार के हैं—सचित्तनोकर्मद्रव्यबंधक, अचित्तनोकर्मद्रव्यबंधक और मिश्रनोकर्मद्रव्यबंधक। उनमें सचित्तनोकर्मद्रव्यबंधक जैसे—हाथी बांधने वाले, घोड़े बांधने वाले इत्यादि। अचित्तनोकर्मद्रव्यबंधक, जैसे—लकड़ी बांधने वाले, सूपा बांधने वाले, कट-चटाई बांधने वाले इत्यादि। मिश्रनोकर्मद्रव्यबंधक, जैसे—आभरणों सहित हाथियों के बांधने वाले इत्यादि।

जो कर्मों के बंधक हैं वे दो प्रकार के हैं—ईर्यापथकर्मबंधक और साम्परायिककर्मबंधक। उनमें जो ईर्यापथकर्मबंधक हैं वे दो प्रकार के हैं—छद्मस्थ और केवली।

बादरसांपरायिकादयश्च। ये बादरसांपरायिकाः ते त्रिविधाः—असंपरायिकादयः सूक्ष्मसांपरायिकादयः अनादिबादरसांपरायिकाश्च। तत्र ये अनादिबादरसांपरायिकाः ते त्रिविधाः—उपशामकाः क्षपकाः अक्षपकानुपशामकाश्च। तत्र ये उपशामकाः ते द्विविधा—अपूर्वकरणोपशामकाः अनिवृत्तिकरणोपशामकाश्च। ये क्षपकास्ते द्विविधा—अपूर्वकरणक्षपकाः अनिवृत्तिकरणक्षपकाश्च। तत्र ये अक्षपकानुपशामकास्ते द्विविधाः—अनादिअपर्यवसितबंधाः अनादिसपर्यवसितबंधाश्चेति। अनाद्यनन्तबंधकाः ते अभव्याः मिथ्यादृष्टिजीवाः। अनादिसान्तबंधकास्ते मिथ्यादृष्ट्यादि-अप्रमत्तगुणस्थानवर्तिनो जीवाःभवन्ति।

तत्र ये भावबंधकास्ते द्विविधाः—आगमनोआगमभावबंधकभेदेन। तत्र ये बंधप्राभृतज्ञायका उपयुक्तास्ते आगमभावबंधकाः नाम। नोआगमभावबंधकाः यथा क्रोधमानमायालोभप्रेमद्वेषादिभावान् आत्मसात्कुर्वाणाः जीवाः इति।

इत्थमत्र बंधकानां प्रतिपादनप्रकरणे नामस्थापनाद्रव्यभावनिक्षेपैः संक्षिप्तव्याख्यानं कृतं।

एतेषु कथितेषु बंधकेषु कर्मबंधकानां जीवानां अत्राधिकारोऽस्ति। एषां बंधकानां निर्देशे क्रियमाणे चतुर्दशमार्गणास्थानानि आधारभूतानि भवन्ति।

संप्रति चतुर्दशमार्गणास्थानप्रतिपादनाय सूत्रमवतारयति श्रीभूतबलिसूरिवर्यः—

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्साए भविए सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि।।२।।

जो छद्मस्थ हैं वे दो प्रकार के हैं—उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। जो साम्परायिकर्मबंधक हैं वे दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मसाम्परायिक और बादरसाम्परायिक। जो सूक्ष्मसाम्परायिक बंधक हैं वे दो प्रकार के हैं—असाम्परायिक और बादरसाम्परायिक। जो बादरसाम्परायिक हैं वे तीन प्रकार के हैं—असाम्परायादिक, सूक्ष्मसाम्परायादिक और अनादिबादरसाम्परायिक। उनमें जो अनादिबादरसाम्परायिक हैं वे तीन प्रकार के हैं—उपशामक, क्षपक और अक्षपकानुपशामक। उनमें जो उपशामक हैं वे दो प्रकार के हैं—अपूर्वकरण उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक। जो क्षपक हैं वे दो प्रकार के हैं—अपूर्वकरण क्षपक और अनिवृत्तिकरण क्षपक। उनमें से जो अक्षपकानुपशामक हैं वे दो प्रकार के हैं—अनादि-अपर्यवसित बंधक आदि अनादि-सपर्यवसित बंधक। अनादि-अनंत बंधक जो जीव हैं वे अभव्य मिथ्यादृष्टि होते हैं। अनादि-सान्त बंधक जो हैं वे मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त गुणस्थान तक के जीव होते हैं।

उनमें जो भावबंधक हैं वे आगम भावबंधक और नोआगमभावबंधक के भेद से दो प्रकार के हैं। उनमें जो बंध प्राभृत के जानकार और उसमें उपयोग रखने वाले हैं वे आगमभावबंधक हैं। नो आगमभावबंधक वे हैं, जैसे कि-क्रोध, मान, माया, लोभ व प्रेम, द्वेष आदि भावों को आत्मसात् करने वाले जीव।

इस प्रकार यहाँ बंधकों के प्रतिपादन प्रकरण में नाम-स्थापना-द्रव्य-भाव इन चार निक्षेपों के द्वारा संक्षिप्त व्याख्यान किया गया है।

इन सब बंधकों में कर्मबंधकों का ही यहाँ अधिकार है। इन बंधकों का निर्देश करने पर चौदह मार्गणास्थान आधारभूत हैं।

अब चौदह मार्गणास्थानों का प्रतिपादन करने हेतु श्री भूतबली आचार्य सूत्र को अवतरित करते है—

सूत्रार्थ—

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक ये चौदह मार्गणास्थान हैं।।२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतासां मार्गणानां लक्षणं पूर्वं कथितमासीत् तथापि विस्मरणशीलशिष्याणां अनुग्रहार्थं संक्षेपेण व्युत्पत्त्यर्थं कथ्यते। गम्यते इति गतिः।**

कश्चिदाह—**एतया निरुक्त्या ग्रामनगरखेटकर्वटादीनां अपि गतित्वं प्रसज्यते ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**नैतद् वक्तव्यं, किंच रूढिबलेन गतिनामकर्मनिष्पादितपर्यायेषु गतिशब्दप्रवृत्तेः। गतिकर्मोदयाभावात् सिद्धिगतिः अगतिः, इति ज्ञातव्या। अथवा भवाद् भवसंक्रान्तिः गतिः, असंक्रान्तिः सिद्धिगतिः।**

स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि, स्वार्थनिरतानीन्द्रियाणीत्यर्थः। अथवा, इन्द्र आत्मा, इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियम्। आत्मप्रवृत्त्युपचितपुद्गलपिंडः कायः, पृथ्वीकायादिनामकर्मजनितपरिणामो वा कार्यकार-णोपचारेण कायः, चीयन्ते अस्मिन् जीवा इति व्युत्पत्तेर्वा कायः। आत्मप्रवृत्तिसंकोचविकोचो योगः, मनोवाक्कायावष्टंभबलेन जीवप्रदेशपरिस्पंदो योगः इति यावत्। आत्मप्रवृत्तेर्मैथुनसंमोहोत्पादो वेदः। सुखदुःख-बहुसस्यं कर्मक्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः। भूतार्थप्रकाशकं ज्ञानं तत्त्वार्थोपलंभकं वा। व्रतसमितिकषायदंडेन्द्रियाणां रक्षण-पालन-निग्रह-त्याग-जयाः संयमः, सम्यक् यमो वा संयमः। प्रकाशवृत्तिर्दर्शनम्। आत्मप्रवृत्तिसंश्ले-षणकरी लेश्या, अथवा लिम्पतीति लेश्या। निर्वाणपुरस्कृतो भव्यः, तद्विपरीतोऽभव्यः। तत्त्वार्थश्रद्धानं

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन मार्गणाओं का लक्षण यद्यपि पूर्व में किया जा चुका है फिर भी विस्मरणशील शिष्यों का अनुग्रह करने हेतु यहाँ संक्षेप में मार्गणाओं का व्युत्पत्ति अर्थ किया जा रहा है। गमन करने का नाम गति है। अर्थात् जिस स्थान के लिए जीव गमन करता है उस स्थान को गति कहते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—गति की ऐसी निरुक्ति करने से तो ग्राम, नगर, खेड़ा, कर्वट आदि स्थानों को भी गतिपना प्राप्त हो जाता है ?

इस शंका का समाधान किया जाता है—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि रूढ़ि के बल से गतिनामकर्म द्वारा जो पर्याय निष्पन्न की गई है, उसी में गति शब्द का प्रयोग किया जाता है। गतिनामकर्म के उदय के अभाव के कारण सिद्धिगति होती है, वह अगति कहलाती है। अथवा एक भव से दूसरे भव में संक्रान्ति का नाम गति है और एक भव से दूसरे भव के लिए संक्रान्ति न होना सिद्धिगति है।

जो अपने-अपने विषय में निरत हों, वे इन्द्रियाँ हैं, अर्थात् अपने-अपने विषयरूप पदार्थों में रमण करने वाली इन्द्रियाँ कहलाती हैं। अथवा इन्द्र आत्मा को कहते हैं और इन्द्रों के लिंग का नाम इन्द्रिय है। आत्मा की प्रवृत्ति द्वारा उपचित किये गये पुद्गलपिंड को काय कहते हैं। अथवा पृथिवीकाय आदि नामकर्मों के द्वारा उत्पन्न परिणाम को कार्य में कारण के उपचार से काय कहा है। अथवा, जिसमें जीवों का संचय किया जाये, ऐसी व्युत्पत्ति से काय बना है। आत्मा की प्रवृत्ति से उत्पन्न संकोच-विकोच का नाम योग है, अर्थात् मन, वचन और काय के अवलम्बन से जीव प्रदेशों में परिस्पन्दन होने को योग कहते हैं। आत्मा की प्रवृत्ति से मैथुनरूप सम्मोह की उत्पत्ति का नाम वेद है। सुख-दुःखरूपी खूब फसल उत्पन्न करने वाले कर्मरूपी क्षेत्र का जो कर्षण करते हैं वे कषाय हैं। जो यथार्थ वस्तु का प्रकाशक है अथवा जो तत्वार्थ प्राप्त कराने वाला है, वह ज्ञान है। व्रत रक्षण, समितिपालन, कषायनिग्रह, दंडत्याग और इन्द्रियजय का नाम संयम है। अथवा सम्यक् रूप से यम का नाम संयम है। प्रकाशरूप प्रवृत्ति का नाम दर्शन है। आत्मप्रवृत्ति में संश्लेषण करने वाली लेश्या है। अथवा लिंपन करने वाली लेश्या है। जिस जीव ने निर्वाण को पुरस्कृत किया है अर्थात् अपने सन्मुख रखा है वह भव्य है और उसमें विपरीत अर्थात् निर्वाण को पुरस्कृत नहीं करने वाला जीव अभव्य है। तत्वार्थ के श्रद्धान का नाम

सम्यग्दर्शनम् , अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं, अथवा प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यक्त्वं। शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही संज्ञी, तद्विपरीतः असंज्ञी। शरीरप्रायोग्यपुद्गलपिंडग्रहणमाहारः, तद्विपरीतमनाहारः। एतेषु गत्यादिषु जीवाः मार्ग्यन्ते इति एतेषां मार्गणाः इति संज्ञा उच्यते।

अत्रास्ति मनाग् विशेषः —

गतिमार्गणायां मनुष्यगत्या एव सिद्धिगतिः प्राप्यते अतः सैव गतिः सारभूता उत्कृष्टा वा। इन्द्रियमार्गणायां द्रव्यपंचेन्द्रियपूर्णतायां जातायां जैनेश्वरी दीक्षा संप्राप्यते, एभिः पंचेन्द्रियैः इन्द्रियनिरोधव्रतानि परिपाल्य अतीन्द्रियसुखं लप्स्यते अतः पंचेन्द्रियाणां संपूर्णत्वं महत्वपूर्णं अस्ति। कायमार्गणायां त्रसत्वं लब्ध्वा आत्मकल्याणे प्रवृत्तिरुपजायते। योगमार्गणायां मनोवचनयोगान् संप्राप्य औदारिककाययोगेनैव परमौदारिकदिव्यशरीरं प्राप्स्यते ततः तत् शरीरं प्राप्य चारित्ररत्नं गृहीत्वा एतत्पर्यायः सफलीकर्तव्यः। वेदमार्गणायाः मीमांसायां द्रव्यपुरुषवेदेनैव रत्नत्रयस्य पूर्णत्वं संपद्यते अतः तत्प्राप्य पुरुषवेदः सफलीकर्तव्यः, यदि स्त्रीवेदोऽस्ति तर्ह्यपि उपचारमहाव्रतेनैव सम्यक्त्वरत्नबलेन संसारसंततिच्छेदः कर्तव्यः।

चतुर्भिः कषायैःजीवाः संसारसमुद्रे निमज्जंति अतः एतान् कषायान् दुःखहेतून् ज्ञात्वा ते कृशीकरणीयाः। यथा स्यात् तथा अनन्तानुबन्धिकषायान् निहत्य सम्यक्त्वरत्नं संरक्षणीयं महता प्रयत्नेन। ज्ञानमार्गणायाः संक्षिप्तलक्षणं संचिन्त्य द्रव्यभावश्रुतज्ञानबलेन केवलज्ञानं प्राप्स्यते अतःश्रुतज्ञानमाराधनीयं संततं।

सम्यग्दर्शन है। अथवा तत्वों में रुचि होना ही सम्यक्त्व है। अथवा प्रथम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य की अभिव्यक्ति ही जिसका लक्षण है, वही सम्यक्त्व है। शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप को ग्रहण करने वाला जीव संज्ञी है, उससे विपरीत अर्थात् शिक्षा क्रियादि को ग्रहण नहीं कर सकने वाला जीव असंज्ञी है। शरीर बनाने के योग्य पुद्गलवर्गणा को ग्रहण करना ही आहार है, उससे विपरीत अर्थात् शरीर के योग्य पुद्गलवर्गणा को ग्रहण नहीं करना अनाहार है। इन्हीं पूर्वोक्त गति आदि चौदह स्थानों में जीवों की मार्गणा अर्थात् खोज की जाती है, इसीलिए इनका नाम मार्गणा है।

यहाँ किञ्चित् विशेष कहते हैं —

गतिमार्गणा में मनुष्यगति से ही सिद्धि गति प्राप्त होती है अतः यह मनुष्यगति ही संसार में सारभूत और उत्कृष्ट गति है। इन्द्रियमार्गणा में द्रव्येन्द्रियों की अपेक्षा पाँचों इन्द्रिय की पूर्णता होने पर ही जैनेश्वरी दीक्षा प्राप्त होती है, इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा इंद्रिय निरोध व्रतों को परिपालन करके ही अतीन्द्रिय सुख प्राप्त होता है अतः पाँचों इन्द्रियों की पूर्णता होना महत्वपूर्ण है। कायमार्गणा में त्रसकाय को प्राप्त करके आत्मकल्याण में प्रवृत्तिरूप भाव उत्पन्न होता है। योगमार्गणा में मन-वचन-काय इन तीनों योगों को प्राप्त करके औदारिककाययोग के द्वारा ही परमौदारिक दिव्यशरीर प्राप्त होता है इसलिए उस शरीर को प्राप्त करके चारित्ररत्न को ग्रहण करके उस मनुष्यपर्याय को सफल करना चाहिए। वेदमार्गणा की मीमांसा में द्रव्यपुरुषवेद के द्वारा ही रत्नत्रय की पूर्णता प्राप्त होती है अतः उसे प्राप्त करके पुरुषवेद को सफल बनाना चाहिए, यदि द्रव्य से स्त्रीवेद है तो भी उपचार महाव्रतों को — आर्यिका दीक्षा ग्रहण करके सम्यक्त्वरत्न के द्वारा संसार संतति को नष्ट करना चाहिए।

चारों कषायों के कारण जीव संसारसमुद्र में गोते लगा रहे हैं अतः उन कषायों को दुःख का हेतु मानकर उन्हें वश में करना — कृश करना चाहिए। अथवा जैसे बने वैसे अनन्तानुबंधी कषाय को नष्ट करके अनेक प्रयत्नों से अपने सम्यग्दर्शनरूपी रत्न का संरक्षण करना चाहिए। ज्ञानमार्गणा के संक्षिप्त लक्षण का सम्यक्रूप से चिन्तन करके ज्ञात होता है कि द्रव्य-भाव श्रुतज्ञान के बल से केवलज्ञान प्राप्त होता है अतः श्रुतज्ञान की सतत आराधना करना चाहिए अर्थात् धर्मग्रंथों का खूब स्वाध्याय-अध्ययन करके ज्ञानावरण कर्म

संयममार्गणायां सामायिकसंयमः एव सर्वसंयमेषु प्रथमः मूलकारणमपि इति विज्ञाय यावत् स संयमो न लभेत तावत्संयमासंयमो गृहीतव्यः।

दर्शनमार्गणायां केवलदर्शनोपलब्धये स्वात्मदर्शनं प्राप्तव्यं। लेश्यामार्गणाः विज्ञाय अशुभलेश्याः परिहृत्य शुभलेश्यासु प्रवृत्तिर्विधेया। भव्यमार्गणायां 'वयं भव्याः' इति निश्चित्य रत्नत्रयबलेन भव्यत्वशक्तिः प्रकटयितव्या। सम्यक्त्वमार्गणाः ज्ञात्वा औपशमिकसम्यग्दर्शनं उपलभ्य क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं संरक्ष्य क्षायिक-सम्यक्त्वस्य भावना विधातव्या संप्रति दुःषमकालेऽत्र। संज्ञिमार्गणायां संज्ञि-अवस्थां संप्राप्य स्वर्गापवर्गप्राप्तये प्रयत्नो विधेयः। पुनश्च आहारमार्गणायां अनाहारकसिद्धिपदप्राप्तये आहारावस्थायामपि षट्चत्वारिंशद्दोष-विरहितैषणासमितिः पालनीया, किं च अनया समित्या एव मोक्षसुखमतीन्द्रियं प्राप्स्यते।

तात्पर्यमेतत्—**एताः चतुर्दशमार्गणाः ज्ञात्वा कर्मबंधस्थितिकारकाणां फलं चतुर्गतिपरिभ्रमणं एवातस्तानि संसारकारणानि शनैः शनैः परिहर्तव्यानि।**

अद्यतनदिवसे चैत्रकृष्णाप्रतिपत्तिथौ[१] पुरा चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपूर्वं श्रीमहावीरजीनामातिशयक्षेत्रे आचार्य-रत्नश्रीदेशभूषणमुनेः करकमलाभ्यामहं एकादशप्रतिमारूपव्रतानि संप्राप्य 'वीरमती' नाम्ना क्षुल्लिका बभूव। ततःप्रभृति अधुना चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्यंतं देशसंयमं त्रिवर्षं पुनश्च प्रथमपट्टाचार्य-श्रीवीरसागराचार्य- करकमलाभ्यां उपचारमहाव्रतसहितानष्टाविंशतिमूलगुणान् लब्ध्वा गणिनीपदे प्राप्तान् षट्त्रिंशद्गुणांश्च पालयन्त्या मया अद्य हरियाणाप्रदेशस्य रेवाड़ीनामनगरे पंचचत्वारिंशद्वर्षे प्रविश्यते। श्रीमहावीरस्वामिनं कोटिशः नमस्कृत्य उभौ गुरू च प्रणम्य अग्रेऽपि मम संयमसहितजीवनं निराबाधं भूयादिति सरस्वतीमातुः पादपंकेरुहयोः याच्यते।

का क्षयोपशम करना चाहिए। संयममार्गणा में सामायिक संयम ही सभी संयमों में प्रथम और मूलकारण है, ऐसा जानकर जब तक वह सामायिक संयम प्राप्त न होवे, तब तक संयमासंयमरूप अणुव्रत धारण करना चाहिए।

दर्शनमार्गणा में केवलदर्शन की उपलब्धि हेतु स्वात्मदर्शन की अवस्था प्राप्त करना चाहिए। लेश्यामार्गणा को जानकर अशुभलेश्याओं को छोड़कर शुभ लेश्याओं में प्रवृत्ति करना चाहिए। भव्यमार्गणा में "हम भव्य हैं" ऐसा निश्चित करके रत्नत्रय के बल से भव्यत्व शक्ति को प्रगट करना चाहिए। सम्यक्त्वमार्गणा का ज्ञान प्राप्त करके सर्वप्रथम औपशमिक सम्यक्त्व को प्रगट करके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का संरक्षण करते हुए वर्तमान के इस दुःषमकाल में यहाँ क्षायिकसम्यक्त्व की भावना भानी चाहिए। संज्ञी मार्गणा में संज्ञी अवस्था को प्राप्त करके स्वर्ग और मोक्ष प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करना चाहिए। पुनश्च आहारमार्गणा में अनाहारक सिद्धिपद को प्राप्त करने हेतु आहारक अवस्था में भी छियालीस दोषों से रहित एषणासमिति का पालन करना चाहिए, क्योंकि इस समिति के पालन से ही अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त होगा।

तात्पर्य यह है कि—इन चौदह मार्गणाओं को जानकर कर्मबंध की स्थिति को कराने वाले कर्मों का फल चतुर्गति का परिभ्रमण ही है अतः उन संसार के कारणों को धीरे-धीरे नष्ट करना चाहिए।

आज चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के दिन ही चवालीस वर्ष पूर्व श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र तीर्थ पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण मुनिराज के करकमलों से मैंने ग्यारह प्रतिमारूप व्रतों को प्राप्त करके "वीरमती" नाम की क्षुल्लिका का पद ग्रहण किया था। तब से लेकर आज ४४ वर्षों में पहले तीन वर्ष तक देशसंयम कापालन किया पुनः प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज के करकमलों से उपचारमहाव्रतसहित अट्ठाईस मूलगुणरूप आर्यिका दीक्षा प्राप्त की और अब गणिनी पद में छत्तीस मूलगुणों का पालन करते हुए आज हरियाणा प्रदेश के 'रेवड़ी' नगर में मैंने पैंतालिसवें वर्ष (संयम वर्ष) में प्रवेश किया है। श्री महावीर स्वामी को कोटि-कोटि वन्दन करके और दोनों गुरुओं को नमन करके

---

१. चैत्र कृ. १, वी.नि.सं. २५२३, दि. २५-३-१९९७ को रेवाड़ी (हरियाणा) में यह प्रकरण लिखा है।

अधुना चतुर्गतिषु बंधकारकानां प्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया बंधा।।३।।

तिरिक्खा बंधा।।४।।

देवा बंधा।।५।।

आगे भी मेरा जीवन निराबाध संयम सहित व्यतीत होवे, यही सरस्वती माता के चरणकमलों में मेरी प्रार्थना है।

भावार्थ — इस टीका को लिखते हुए पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने अपनी दीक्षा तिथि का स्मरण किया है। वीर निर्वाण संवत् २५२३ की चैत्रकृष्णा एकम तिथि को दिनाँक २५ मार्च १९९७ के दिन वे "रेवाड़ी" नाम के नगर में थीं। जब सारे देश की रागी जनता होली के रंगों में डूबी थी उस दिन वीतराग मार्ग की अनुगामिनी श्री ज्ञानमती माताजी इस सिद्धांत ग्रंथ का स्वाध्याय-लेखन करती हुई ज्ञान के अपूर्व रंग में निमग्न थीं। जैसा कि उनके मुख से मैंने सदैव सुना है कि "अपने दीक्षा दिवस को हमेशा याद रखना चाहिए, क्योंकि दीक्षा के समय के उत्कृष्ट परिणाम स्मरण करने से ज्ञान और वैराग्य की अतीव वृद्धि होती है।"

रेवाड़ी नगर की दिगम्बर जैन समाज ने उस दिन पूज्य माताजी के दीक्षा दिवस का समारोह भी आयोजित किया था। ज्ञानमती माताजी बीसवीं सदी की प्रथम बालब्रह्मचारिणी साध्वी हैं। इनका जन्म सन् १९३४ में आश्विन शुक्ला पूर्णिमा (शरदपूर्णिमा) के दिन टिकैतनगर (बाराबंकी-उ.प्र.) में लाला श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी की पवित्र कुक्षि से कन्या मैना के रूप में हुआ था। पूर्व जन्म में संचित किये गये पुण्य प्रभाव एवं इस भव में अपनी माँ को दहेज में प्राप्त पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथ के स्वाध्याय से प्रगट हुए वैराग्यवश उन्होंने सन् १९५२ में शरदपूर्णिमा के ही दिन आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा ग्रहण करके गृहत्याग किया पुनः सन् १९५३ में चैत्र कृ. एकम् को महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर आचार्य श्री देशभूषण महाराज के करकमलों से क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की थी, उसी दिवस का स्मरण कर पूज्य ज्ञानमती माताजी ने सरस्वती माता से ज्ञान और चारित्र की वृद्धि हेतु मंगल प्रार्थना की है।

आज इस ग्रंथ की हिन्दी टीका लिखते हुए मुझे भी अत्यन्त हर्ष एवं गौरव का अनुभव हो रहा है कि पूज्य ज्ञानमती माताजी का ५४वाँ आर्यिका दीक्षा त्रिदिवसीय समारोहपूर्वक मनाया जा रहा है। आज से एक माह पूर्व चैत्र कृष्णा एकम्, ११ मार्च २००९ को इन्होंने क्षुल्लिका दीक्षा के ५६ वर्ष पूर्ण किये अतः कुल मिलाकर ५६ वर्ष की संयमसाधना से वे एक अतिशयकारी प्रतिमा के समान जगत् पूज्य बन गई हैं।

इन्होंने सन् १९९५ में शरदपूर्णिमा के दिन षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ पर संस्कृत टीका लेखन जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में प्रारंभ किया और सन् २००७ में वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन सोलहों पुस्तकों की टीका ३१०० से अधिक पन्नों में लिखकर परिपूर्ण किया। लगभग ११ वर्ष ६ माह के अंदर उन्होंने षट्खण्डागम ग्रंथ की संस्कृत टीका लिखकर साहित्य जगत् में एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया है।

अब चारों गतियों में बंध करने वाले जीवों का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते है —

सूत्रार्थ —

गतिमार्गणा के अनुसार नरकगति में नारकी जीव बंधक हैं।।३।।

तिर्यञ्चगति के जीव बंधक हैं।।४।।

देवगति के जीव बंधक होते हैं।।५।।

मणुसा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि णत्थि।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणि टीका—**अत्र सूत्रेषु 'बंधा' इति पदेन 'बंधकाः' एव गृह्यन्ते। नारकाः तिर्यञ्चः देवाश्च बंधकाः एव, किं च मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगानां बंधकारणानां तत्रोपलंभात्। मनुष्याः बंधकाः अपि सन्ति, अबंधकाश्चापि भवन्ति। अयोगिकेवलिगुणस्थाने मिथ्यात्वासंयमकषाययोगानां बंधकारणानां सर्वेषामपि अभावात् ते अयोगिनोऽबंधका एव। शेषाःसर्वे मनुष्याः बंधकाः, मिथ्यात्वादि-बंधकारणसंयुक्तत्वात्।**

गतिविरहितसिद्धानां अबंधकप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

सिद्धा अबंधा।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणि टीका—**अनन्तानन्ताः सिद्धाःभगवन्तोऽबंधका एव। बंधकारणव्यतिरिक्तमोक्षकारणैः संयुक्तत्वात्।**

कश्चित् पृच्छति—**कानि पुनः बंधकारणानि, बंध-बंधकारणावगमेन विना मोक्षकारणावगमाभावात्।**

उक्तं च— **जे बंधयरा भावा मोक्खयरा भावि जे दु अज्झप्पे।**
जे चावि बंधमोक्खे अकारया ते वि विण्णेया।।

ततो बंधकारणानि वक्तव्यानि भवद्भिरिति ?

आचार्यः समादधाति—**मिथ्यात्वासंयमकषाययोगाः बंधकारणानि।**
सम्यग्दर्शन-संयमाकषायायोगाः मोक्षकारणानि।।

मनुष्य बंधक भी होते हैं और अबंधक भी होते हैं।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्रों में वर्णित "बंधा" शब्द से "बंधक जीव" ही ग्रहण किये जाते हैं। नारकी, तिर्यञ्च और देव बंधक ही हैं, क्योंकि उनमें बंध के कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योग का सद्भाव पाया जाता है। मनुष्य बंधक भी होते हैं और अबंधक भी होते हैं। कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन सबका अयोगिकेवली गुणस्थान में अभाव होने से अयोगी जिन अबंधक ही होते हैं। शेष सब मनुष्य बंधक हैं, क्योंकि वे मिथ्यात्वादि बंध के कारणों से संयुक्त पाये जाते हैं।

गति से रहित सिद्ध भगवन्तों के अबंधकपने को बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

सिद्ध अबंधक हैं।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनन्तानन्त सिद्ध भगवान अबधंक ही होते हैं, क्योंकि वे बंध के कारणों से भिन्न मोक्ष के कारणों से समन्वित होते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि—

बंध के कारण कौन से हैं, क्योंकि बंध और बंध के कारण जाने बिना मोक्ष के कारणों का ज्ञान नहीं हो सकता। कहा भी है—

गाथार्थ—अध्यात्म में जो बंध के उत्पन्न करने वाले भाव हैं और जो मोक्ष को उत्पन्न करने वाले भाव हैं तथा जो बंध और मोक्ष दोनों को नहीं उत्पन्न करने वाले भाव हैं, वे सब भाव जानने योग्य हैं।

अतएव आपको बंध के कारण बतलाना चाहिए ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार बंध के कारण हैं

उक्तं च— **सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।**
मिच्छत्तं अविरणं कसायजोगा य बोद्धव्वा[१]।।१०९।।

अन्यच्च— **मिच्छत्ताविरदी वि य कसायजोगा य आसवा होंति।**
दंसण-विरमण-णिग्गह-णिरोहया संवरो होंति[२]।।२।।

कश्चिदाह—**यदि मिथ्यात्वादीनि चत्वार्येव बंधकारणानि भवन्ति, तर्हि—**
ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।
भावो दु पारिणामिओ करणोभयवज्जियो होंति[३]।।३।।

एतया सूत्रगाथया सह विरोधो भवति ?

तस्य समाधानं क्रियते—**नैतद् वक्तव्यं, औदयिकाः बंधकराः इति उक्ते न सर्वेषामौदयिकानां भावानां ग्रहणं कर्तव्यं, गतिजात्यादि-औदयिकभावानामपि बंधकारणत्वप्रसंगात्।**

पुनः कश्चिदाशंकते—**देवगत्युदयेनापि काश्चित् प्रकृतयो बध्यमानाः दृश्यन्ते, तासां प्रकृतीनां देवगत्युदयःकारणं किं न भवति ?**

आचार्यदेवः समादधाति—**न भवति, किं च-देवगत्युदयाभावेन तासां नियमेन बंधाभावानुपलंभात्। ''यस्य अन्वयव्यतिरेकाभ्यां नियमेन यस्य अन्वयव्यतिरेकौ उपलभ्येते तत्तस्य कार्यं इतरच्च कारणं।'' इति**

और सम्यग्दर्शन, संयम, अकषाय और अयोग ये चार मोक्ष के कारण हैं।।

समयसार ग्रंथ में कहा भी है—

गाथार्थ—सामान्य से प्रत्यय—आश्रव चार हैं वे ही बंध के करने वाले कहे गये हैं। वे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार जानने चाहिए।।१०९।।

और भी कहा है—

गाथार्थ—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये कर्मों के आस्रव भाव हैं अर्थात् कर्मों के आगमनद्वार हैं तथा सम्यग्दर्शन, संयम अर्थात् विषयविरक्ति, कषायनिग्रह और मन-वचन-काय का निरोध ये संवर अर्थात् कर्मों के निरोधक भाव हैं।।२।।

पुनः कोई शंका करता है—यदि ये ही मिथ्यात्वादि चार बंध के कारण हैं, तो—

गाथार्थ—औदयिक भाव बंध करने वाले हैं, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के कारण हैं तथा पारिणामिक भाव बंध और मोक्ष दोनों के कारण से रहित हैं।।३।।

इस सूत्रगाथा के साथ विरोध उत्पन्न होता है ?

इसका समाधान करते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, 'औदयिक भाव बंध के कारण हैं' ऐसा कहने पर भी सभी औदायिक भावों का ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि वैसा मानने पर गति, जाति आदि नामकर्मसंबंधी औदायिक भावों के भी बंध के कारण होने का प्रसंग आ जायेगा।

पुनः कोई शंका करता है—देवगति के उदय के साथ भी कितनी ही प्रकृतियों का बंध होना देखा जाता है फिर देवगति का उदय उनका कारण क्यों नहीं होता ?

आचार्य देव इसका समाधान देते हैं—देवगति का उदय बंध का कारण नहीं होता है, क्योंकि देवगति के उदय के अभाव में नियम से उनके बंध का अभाव नहीं पाया जाता। "जिसके अन्वय और व्यतिरेक के साथ नियम से अन्वय और व्यतिरेक पाये जावें, वह उसका कार्य और दूसरा कारण होता है" (अर्थात् जब एक

---

१. समयसार गाथा १०९। २-३. षट्खण्डागम पु. ७ (धवलाटीका समन्वित), पृ० ९।

न्यायात् मिथ्यात्वादीनि चैव बंधकारणानि।

तत्र मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-नरकायुः-निरयगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-आतप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणनामषोडश-प्रकृतीनां बंधस्य मिथ्यात्वोदयः कारणम्। तदुदय-अन्वयव्यतिरेकाभ्यां षोडशप्रकृतिबंधस्य अन्वयव्यतिरेकोपलंभात्।

निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि-अनंतानुबंधिक्रोध-मान-माया-लोभ-स्त्रीवेद-तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-न्यग्रोध-स्वाति-कुब्जक-वामनशरीरसंस्थान-वज्रनाराच-नाराच-अर्द्धनाराच-कीलित शरीर संहनन-तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वि-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां बंधस्य अनन्तानुबंधि-चतुष्कस्य उदयः कारणम्। तदुदयान्वयव्यतिरेकाभ्यामेतासां प्रकृतीनां बंधे अन्वयव्यतिरेकौ उपलभ्येते।

अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोध-मान-माया-लोभ-मनुष्यायुः-मनुष्यगति-औदारिकशरीर-अंगोपांग-वज्रर्षभसंहनन-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्विप्रकृतीनां बंधे अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य उदयः कारणम्। तेन विना एतासां प्रकृतीनां बंधानुपलंभात्।

प्रत्याख्यानावरणीयक्रोध-मान-माया-लोभानां बंधस्य एतासां चैवोदयः कारणम्। स्वोदयेन विना एतासां बंधानुपलंभात्।

असातावेदनीय-अरति-शोक-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां बंधस्य प्रमादः कारणं, प्रमादेन विना एतासां बंधानुपलंभात्।

कः प्रमादः नाम ?

के सद्भाव में दूसरे का सद्भाव और उसके अभाव में दूसरे का भी अभाव पाया जावे, तभी उनमें कार्य-कारणभाव संभव हो सकता है अन्यथा नहीं) इस न्याय से मिथ्यात्व आदिक ही बंध के कारण हैं।

इन कारणों में मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जाति, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका शरीरसंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन सोलह प्रकृतियों के बंध का मिथ्यात्वोदय कारण है, क्योंकि मिथ्यात्वोदय के अन्वय और व्यतिरेक के साथ इन सोलह प्रकृतियों के बंध का अन्वय और व्यतिरेक पाया जाता है।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंच गति, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक और वामन शरीर संस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित शरीरसंहनन, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इन प्रकृतियों के बंध में अनन्तानुबंधीचतुष्क का उदय कारण है, क्योंकि उसी के उदय के अन्वय और व्यतिरेक के साथ उन प्रकृतियों के बंध में अन्वय और व्यतिरेक पाया जाता है।

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकरशरीर, औदारिकरशरीरांगोपांग, वज्रवृषभसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन दश प्रकृतियों के बंध में अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का उदय कारण है, क्योंकि उसके बिना इन प्रकृतियों का बंध नहीं पाया जाता।

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार प्रकृतियों के बंध में कारण इन्हीं का उदय है, क्योंकि अपने उदय के बिना इनका बंध नहीं पाया जाता है।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति इन छह प्रकृतियों के बंध का कारण प्रमाद है, क्योंकि प्रमाद के बिना इन प्रकृतियों का बंध नहीं पाया जाता है।

शंका — प्रमाद किसे कहते हैं ?

चतुःसंज्वलन-नवनोकषायानां तीव्रोदयः प्रमादः कथ्यते।

चतुर्णां बंधकारणानां मध्ये कुत्र प्रमादस्यान्तर्भावः ?

कषायेष्वन्तर्भावो भवति, कषायव्यतिरिक्तप्रमादानुपलंभात्। देवायुर्बंधस्यापि कषायश्चैव कारणं, प्रमादहेतुकषायस्य उदयाभावेन अप्रमत्तो भूत्वा मंदकषायोदयेन परिणतस्य देवायुर्बंधविनाशोपलंभात्। निद्राप्रचलयोरपि बंधस्य कषायोदयः एव कारणं, अपूर्वकरणकाले प्रथमसप्तमभागे संज्वलनानां तत्प्रायोग्यतीव्रोदये एतयोर्बंधोपलंभात्। देवगतिपंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्त्र-शरीरसंस्थान-वैक्रियिक-आहारकशरीरांगोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण-तीर्थकराणां अपि बंधस्य कषायोदयश्चैव कारणं, अपूर्वकरणकाले षट्सप्तभागचरमसमये मंदतरकषायोदयेन सह बंधोपलंभात्।

हास्य-रति-भय-जुगुप्सानां बंधस्य अधःप्रवृत्तकरण-अपूर्वकरण-निबंधनकषायोदयः कारणं, तत्रैव एतासां बंधोपलंभात्। चतुःसंज्वलनपुरुषवेदानां बंधस्य बादरकषायः कारणं, सूक्ष्मकषाये एतासां बंधानुपलंभात्। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां बंधस्य सामान्यः कषायोदयः कारणं, कषायाभावे एतासां बंधानुपलंभात्।

सातावेदनीयस्य योगः एव कारणं, मिथ्यात्वासंयमकषायाणामभावेऽपि योगेनैकेन चैवेतस्य बंधोपलंभात्

समाधान — चार संज्वलन कषाय और नव नोकषाय इन तेरह के तीव्र उदय का नाम प्रमाद है।

शंका — पूर्वोक्त चार बंध के कारणों में प्रमाद का अन्तर्भाव कहाँ होता है ?

समाधान — कषायों में प्रमाद का अन्तर्भाव होता है, क्योंकि कषायों से पृथक् प्रमाद नहीं पाया जाता है। देवायु के बंध का भी कारण कषाय ही है, क्योंकि प्रमाद के हेतुभूत कषाय के उदय के अभाव से अप्रमत्त होकर मंदकषाय के उदयरूप से परिणत हुए जीव के देवायु के बंध का विनाश पाया जाता है। निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों के भी बंध का कारण कषायोदय ही है, क्योंकि अपूर्वकरण काल के प्रथम सप्तम भाग में संज्वलन कषायों के उस काल के योग्य तीव्रोदय होने पर इन प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर इन तीस प्रकृतियों के भी बंध का कारण कषायोदय ही है, क्योंकि अपूर्वकरण काल के सात भागों में से प्रथम छह भागों के अंतिम समय में मन्दतर कषायोदय के साथ इनका बंध पाया जाता है।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार के बंध में अधःप्रवृत्त और अपूर्वकरणनिमित्तक कषायोदय कारण है, क्योंकि उन्हीं दोनों परिणामों के कालसंबंधी कषायोदय में ही प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। चार संज्वलन कषाय और पुरुषवेद इन पाँच प्रकृतियों के बंध का कारण बादर कषाय है, क्योंकि सूक्ष्मकषाय के सद्भाव में इनका बंध नहीं पाया जाता है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन सोलह प्रकृतियों के बंध में सामान्य कारण कषायोदय है, क्योंकि कषायों के अभाव में इन प्रकृतियों का बंध नहीं पाया जाता है।

सातावेदनीय के बंध में योग ही कारण है, क्योंकि मिथ्यात्व, असंयम और कषाय इनका अभाव होने पर भी

तदभावे तदनुपलंभात् च। न च एताभ्यः व्यतिरिक्ताः अन्याः बंधप्रकृतयः सन्ति येन तासामन्यत् प्रत्ययान्तरं भवेत्।

असंयमोऽपि प्रत्ययः कथितः, सः कासां प्रकृतीनां बंधस्य कारणं ?

नैतत् , संयमघातिकर्मोदयस्यैव असंयमव्यपदेशो भवति ।

असंयमः यदि कषायेष्वेव अन्तर्भवति, तर्हि पृथक् तदुपदेशः किमर्थं क्रियते ?

नैष दोषः, व्यवहारनयं प्रतीत्य तदुपदेशोऽस्ति। एषा पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य प्रत्ययप्ररूपणा कृता। द्रव्यार्थिकनये पुनः अवलम्ब्यमाने बंधकारणमेकमेव कारणचतुष्कसमूहात् बंधकार्योत्पत्तेः। तस्मात् एते बंधप्रत्ययाः मिथ्यात्वादयः चत्वारः। एतेषां प्रतिपक्षाः सम्यक्त्वोत्पत्ति-देशसंयम-संयम-अनन्तानुबंधि-विसंयोजन-दर्शनमोहक्षपण-चारित्रमोहोपशमन-उपशान्तकषाय-चारित्रमोहक्षपण-क्षीणकषाय-सयोगि-केवलिपरिणामाः मोक्षप्रत्ययाः—मोक्षस्य कारणानि, एतेभ्यःसमयं समयं प्रति असंख्यातगुणश्रेण्याः कर्मनिर्जरायाः उपलंभात्।

ये पुनः पारिणामिकभावाः जीव-भव्याभव्यादयः न ते बंधमोक्षयोः कारणं तेभ्यस्तदनुपलंभात्।

कस्य कर्मणः क्षयेण सिद्धानां को गुणः समुत्पद्यते इति चेत् ?

एतज्ज्ञापनार्थं अत्र काश्चित् गाथाः प्ररूप्यन्ते—

दव्वगुणपज्जए जे जस्सुदएण य ण जाणदे जीवो।
तस्स क्खएण सो च्चिय जाणदि सव्वं तयं जुगवं।।१।।

अकेले योग के साथ ही इस प्रकृति का बंध पाया जाता है और योग के अभाव में इस प्रकृति का बंध नहीं पाया जाता और इनके अतिरिक्त अन्य कोई बंध योग्य प्रकृतियाँ नहीं है, जिससे कि उनका कोई अन्य कारण हो।

शंका—असंयम भी बंध का कारण कहा गया है, सो वह किन प्रकृतियों के बंध का कारण है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि संयम के घातक कषायरूप चारित्रमोहनीय कर्म के उदय का ही नाम असंयम है।

शंका—यदि असंयम कषायों में ही अन्तर्भूत होता है, फिर उसका पृथक् उपदेश किसलिए किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि व्यवहारनय की अपेक्षा से उसका पृथक् उपदेश किया जाता है। बंध कारणों की यह प्ररूपणा पर्यायार्थिकनय का आश्रय करके की गई है। पर द्रव्यार्थिकनय का अवलम्बन करने पर तो बंध का कारण केवल एक ही है, क्योंकि कारणचतुष्क के समूह से ही बंधरूप कार्य उत्पन्न होता है। इस कारण मिथ्यात्व आदिक ये चार बंध के कारण हैं। इनके प्रतिपक्षी सम्यक्त्वोत्पत्ति, देशसंयम, संयम, अनन्तानुबंधि-विसंयोजन, दर्शनमोहक्षपण, चारित्रमोहोपशमन, उपशान्तकषाय, चारित्रमोहक्षपण, क्षीणकषाय और सयोगिकेवली ये परिणाम मोक्ष के कारणभूत हैं, क्योंकि इनके निमित्त से प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणीरूप से कर्मों की निर्जरा पाई जाती है।

जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि जो पारिणामिक भाव है, वे बंध और मोक्ष दोनों में से किसी के भी कारण नहीं है, क्योंकि उनके द्वारा बंध या मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

प्रश्न—किस कर्म के क्षय से सिद्धों में कौन सा गुण उत्पन्न होता है ?

उत्तर—इस कर्म के क्षय से सिद्धों के यह गुण उत्पन्न हुआ है इस बात का ज्ञान कराने के लिए कुछ गाथाएँ यहाँ प्ररूपित की जाती हैं—

गाथार्थ—जिस ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों को ही नहीं जानता है, उसी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से वही जीव उन सभी तीनों को एक साथ जानने लगता है।।१।।

दव्वगुणपज्जए जे जस्सुदएण य ण पस्सदे जीवो।
तस्स क्खएण सो च्चिय पस्सदि सव्वं तयं जुगवं।।२।।

जस्सोदएण जीवो सुहं व दुक्खं व दुविहमणुहवइ।
तस्सोदयक्खएण दु जायदि अप्पत्थणंतसुहो।।३।।

मिच्छत्त-कसायासंजमेहि जस्सोदएण परिणमइ।
जीवो तस्सेव खयात्तव्विवरीदे गुणे लहइ।।४।।

जस्सोदएण जीवो अणुसमयं मरदि जीवदि वराओ।
तस्सोदयक्खएण दु भवमरणविवज्जियो होइ।।५।।

अंगोवंग-सरीरिंदिय-मणुस्सासजोगणिप्फत्ती।
जस्सोदएण सिद्धो तण्णामखएण असरीरो।।६।।

उच्चुच्च उच्च तह उच्चणीच णीचुच्च णीच णीचं।
जस्सोदएण भावो णीचुच्चविवज्जिदो तस्स।।७।।
विरियोवभोग-भोगे दाणे लाभे जदुदयदो विग्घं।
पंचविह-लद्धिजुत्तो तक्कम्मखया हवे सिद्धो[1]।।८।।

आसां गाथानामभिप्रायोऽयं—ज्ञानावरणक्षयात् महामुनिः केवली भगवान् केवलज्ञानं लभते। दर्शनावरण-विनाशात् केवलदर्शनं प्राप्नोति। वेदनीयकर्मनाशात् आत्मा अनन्तसुखं वेदयति। मोहनीयकर्मघातात्

जिस दर्शनावरणीय कर्म के उदय से जीव जिन द्रव्य, गुण और पर्याय इन तीनों को नहीं देखता है, उसी दर्शनावरणीय कर्म के क्षयसे वही जीव उन सभी तीनों को एक साथ देखने लगता है।।२।।

जिस वेदनीय कर्म के उदय से जीव सुख और दुःख इन दो प्रकार की अवस्था का अनुभव करता है, उस कर्म के क्षय से आत्मोत्थ अनंतसुख उत्पन्न होता है।।३।।

जिस मोहनीय कर्म के उदय से जीव मिथ्यात्व, कषाय और असंयमरूप से परिणमन करता है, उसी मोहनीय के क्षय से इनके विपरीत गुणों को—सम्यक्त्व, संयम आदि गुणों को प्राप्त करता है।।४।।

जिस आयु कर्म के उदय से बेचारा जीव प्रतिसमय मरता और जीता है, उसी कर्म के क्षय से वह जीव जन्म और मरण से रहित हो जाता है।।५।।

जिस नाम कर्म के उदय से आंगोपांग, शरीर, इन्द्रिय मन और उच्छ्वास से योग्य निष्पत्ति होती है, उसी नाम कर्म के क्षय से सिद्ध अशरीरी होते हैं।।६।।

जिस गोत्र कर्म के उदय से जीव उच्चोच्च, उच्च, उच्चनीच, नीचोच्च, नीच-नीच कुल में उत्पन्न होता है। उसी गोत्र कर्म के क्षय से यह जीव नीच और उच्च गोत्र से मुक्त होता है।।७।।

जिस अन्तराय कर्म के उदय से जीव के वीर्य, उपभोग, भोग, दान और लाभ में विघ्न उत्पन्न होता है, उसी कर्म के क्षय से सिद्ध पाँच प्रकार की लब्धि से संयुक्त होते हैं।।८।।

इन गाथाओं का अभिप्राय यह है कि—ज्ञानावरण कर्म के क्षय से महामुनि केवली भगवान केवलज्ञान की प्राप्ति करते हैं। दर्शनावरण कर्म के विनाश से केवलदर्शन प्राप्त होता है। वेदनीय कर्म के

१. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पुस्तक ७, पृष्ठ-१५।

सम्यक्त्वगुणं समाप्नोति। आयुःकर्मनिर्मूलनात् अवगाहनगुणं लभते। नामकर्मनिर्णासात् अशरीरो भूत्वा सूक्ष्मत्वगुणं प्राप्नुते। गोत्रकर्मशातनात् अगुरुलघुत्वगुणं दधाति। अन्तरायकर्मक्षयात् अनन्तवीर्यत्वं समाप्नोति। इमे अष्टौ गुणाः सिद्धपरमेष्ठिनां मुख्यरूपेण सन्ति तथापि अनन्तानन्तगुणाः भवन्तीति ज्ञातव्यं।

जयमंगलभूदाणं विमलाणं णाण-दंसणमयाणं ।
तेलोक्कसेहराणं णमो सया सव्व-सिद्धाणं[१]।।९।।

तात्पर्यमेतत्—**गतिमार्गणाविरहितानां सिद्धानां पदप्राप्तये वयं मुहुर्मुहुः तान् नमस्कुर्मः।**

एवं बंधसत्त्वप्ररूपणायां प्रथमस्थले चतुर्गतिबंधक-अबंधकप्रतिपादनपरत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

संप्रति इन्द्रियमार्गणायां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया बंधा बीइंदिया बंधा तीइंदिया बंधा चदुरिंदिया बंधा।।८।।

पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।९।।

अणिंदिया अबंधा।।१०।।

नाश से आत्मा अनन्तसुख का वेदन करता है। मोहनीयकर्म के घात से क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। आयुकर्म का निर्मूल नाश करने से अवगाहन गुण की प्राप्ति होती है। नामकर्म को नष्ट करके जीव अशरीरीर-शरीर रहित होकर सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त कर लेता है। गोत्रकर्म का विनाश करके अगुरुलघुत्व गुण को प्राप्त किया जाता है। अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्तावीर्यपना प्राप्त होता है। ये आठ गुण सिद्ध परमेष्ठियों के मुख्यरूप से होते हैं तथा वे अनन्तानन्त गुणों से युक्त भी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

गाथार्थ—जो जग में मंगलभूत हैं, विमल हैं, ज्ञान-दर्शनमय हैं और त्रैलोक्य के शेखर-मुकुटरूप हैं ऐसे समस्त सिद्धों को मेरा सदाकाल नमस्कार होवे।।९।।

तात्पर्य यह है कि—गतिमार्गणा से रहित सिद्धों का पद प्राप्त करने हेतु हम उन्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार बंध सत्व की प्ररूपणा के प्रथम स्थल में चतुर्गति के बंधक-अबंधक जीवों का प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब इंद्रियमार्गणा में बंधक और अबंधक जीवों का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार एकेन्द्रिय जीव बंधक हैं, द्वीन्द्रिय जीव बंधक हैं, त्रीन्द्रिय जीव बंधक हैं और चतुरिन्द्रिय जीव बंधक हैं।।८।।

पंचेन्द्रिय जीव बंधक भी हैं, अबधंक भी हैं।।९।।

अनिन्द्रिय जीव अबंधक हैं।।१०।।

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-१५।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियजीवादारभ्य चतुरिन्द्रियजीवपर्यन्ताः सर्वे नियमेन मिथ्यात्वासंयमकषाय-योगसहिताः एव भवन्ति, अतस्ते बंधकाः एव। पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य यावत् सयोगिकेवलिनः बंधका एव, तत्र बंधकारणमिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगानां सद्भावात्। अयोगिकेवलिनोऽबंधका एव।**

कश्चिदाह—**सयोगिकेवलिनः अयोगिकेवलिनश्च केवलज्ञानदर्शनाभ्यां दृष्टाशेषप्रमेयाः करणव्यापार-विरहिताः सन्ति पुनस्तयोः कथं पंचेन्द्रियत्वं ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**नैष दोषः, पंचेन्द्रियनामकर्मोदयं प्रतीत्य तयोः केवलिनोः पंचेन्द्रियव्यपदेशो भवति। द्रव्यपंचेन्द्रियाः तत्र सन्ति, भावरूपाणि इन्द्रियाणि न सन्ति, ''लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्[१]''। इति सूत्रकथनेन अतस्ते केवलिभगवन्तः पंचेन्द्रियाः कथ्यन्ते।**

सिद्धेषु निरञ्जनेषु सकलबंधाभावात्, निरामयेषु बंधकारणाभावाच्च ते गुणस्थानातीताः सिद्धाः भगवन्तः अनिन्द्रियाः सन्ति मूर्त्तत्वविरहितत्वात्।

तात्पर्यमेतत्—**ये केचन महामुनयः स्वसंवेदनज्ञानबलेन पंचेन्द्रियाणि संयम्य निजशुद्धबुद्धपरमात्मानं ध्यायन्ति त एव अनिन्द्रियाः भवितुमर्हन्ति।**

एवं बंधकसत्त्वप्ररूपणायां द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियपर्यन्तजीवानां बंधाबंधकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय जीव से आरंभ करके चार इंद्रिय जीव तक सभी नियम से मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग सहित ही होते हैं, अतः वे बंधक ही हैं। पञ्चेन्द्रियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तक के जीव बंधक ही हैं, क्योंकि वहाँ बंध के कारणभूत मिथ्यात्व-असंयम-कषाय और योग का सद्भाव पाया जाता है। अयोगकेवली भगवान अबंधक ही होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—जिन्होंने केवलज्ञान और केवलदर्शन से समस्त प्रमेय अर्थात् ज्ञेय पदार्थों को देख लिया है और जो करण अर्थात् इन्द्रियों के व्यापार से रहित हैं, ऐसे सयोगी और अयोगी केवलियों को पंचेन्द्रिय कैसे कह सकते हैं ?

इसका समाधान करते हैं कि—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उनमें पंचेन्द्रिय नामकर्म का उदय विद्यमान है अतः उसकी अपेक्षा से उन्हें पंचेन्द्रिय कहा गया है। वहाँ पर वे द्रव्यपञ्चेन्द्रिय होते हैं, भावरूप से उनके इन्द्रियाँ नहीं होती हैं। ''लब्धि और उपयोगरूप भावेन्द्रिय होती है'' तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित इस सूत्र के कथनानुसार केवली भगवान के भावेन्द्रियाँ नहीं होती हैं, अतः वे केवली भगवान द्रव्यरूप से पञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं।

निरंजन सिद्धों में समस्त कर्मबंध का अभाव है, क्योंकि निरामय अर्थात् परम स्वस्थ जीवों में बंध के कारणों का अभाव पाया जाता है और वे गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान अनिन्द्रिय होते हैं, क्योंकि वे मूर्ति विरहित—अमूर्तिक होते हैं।

तात्पर्य यह है कि—जो महामुनि स्वसंवेदनज्ञान के बल से पाँचों इन्द्रियों को संयमित करके निज शुद्ध-बुद्ध परमात्मा का ध्यान करते हैं, वे ही अनिन्द्रिय हो सकते हैं।

इस प्रकार बंधक सत्त्व प्ररूपणा में द्वितीय स्थल में पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त जीवों के बंध-अबंध का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-२, सूत्र १८।

संप्रति कायमार्गणायां बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढवीकाइया बंधा आउकाइया बंधा तेउकाइया बंधा वाउकाइया बंधा वणप्फदिकाइया बंधा।।११।।

तसकाइया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।१२।।

अकाइया अबंधा।।१३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति । अत्रापि त्रसेषु मिथ्यादृष्ट्यादयः त्रयोदशगुणस्थानपर्यन्ताः अर्हन्तो भगवन्तश्च बंधकाः, अयोगिकेवलिनोऽबंधकाः एव। सिद्धाः भगवन्तः अकायिकाः सर्वथा अबन्धकाः सन्तीति ज्ञातव्यं।**

एवं तृतीयस्थले कायमार्गणायां बंधकाबंधकनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना योगमार्गणायां बंधकाबंधकस्वरूपप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगी-कायजोगिणो बंधा।।१४।।

अजोगी अबंधा।।१५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। मनोवचनकायपुद्गलालम्बनेन जीवप्रदेशानां परिस्पंदो योगः उच्यते।**

अब कायमार्गणा में बंधक-अबंधक जीवों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक जीव बंधक हैं, अप्कायिक जीव बंधक हैं, तेजस्कायिक जीव बंधक हैं, वायुकायिक जीव बंधक हैं और वनस्पतिकायिक जीव बंधक हैं।।११।।

त्रसकायिक जीव बंधक भी हैं, अबंधक भी हैं।।१२।।

अकायिक जीव अबंधक हैं।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली तक यहाँ भी बंध के कारण पाये जाते हैं किन्तु अयोगकेवली अबंधक होते हैं। कायरहित सिद्ध भगवान् सर्वथा अबंधक होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में कायमार्गणा में बंधक और अबंधक का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब योगमार्गणा में बंधक और अबंधकों का स्वरूप बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ—

योगमार्गणानुसार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी बंधक हैं।।१४।।

अयोगी जीव अबंधक हैं।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। मन, वचन और काय संबंधी पुद्गलों के आलम्बन से जो जीव प्रदेशों का परिस्पन्दन होता है, वही योग कहलाता है।

यदि एवं, तर्हि अयोगिनो न सन्ति क्रियासहितस्य जीवद्रव्यस्य अक्रियत्वविरोधात् ?

नैष दोषः, अष्टकर्मसु क्षीणेषु या ऊर्ध्वगमनोपलम्बिनी क्रिया सा जीवस्य स्वाभाविका, कर्मोदयेन विना प्रवृत्तत्वात्।

'स्वस्थितप्रदेशमत्यक्त्वा त्यक्त्वा वा जीवद्रव्यस्य स्वावयवैः परिस्पंदः अयोगः नाम' तस्य कर्मक्षयत्वात्। तेन सक्रियाः अपि सशरीरिणः सिद्धाः अयोगिनः जीवप्रदेशानां संतप्यमानानां जलप्रदेशानामिव उद्वर्तन-परिवर्तनरूपक्रियाऽऽभावात्। ततस्ते अबंधाः इति भणिताः।

एवं योगमार्गणायां चतुर्थस्थले बंधकाबंधककथनमुख्यत्वेन द्वे सूत्रे गते।

संप्रति वेदमार्गणायां बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा बंधा, पुरिसवेदा बंधा, णवुंसयवेदा बंधा।।१६।।

अवगदवेदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।१७।।

सिद्धा अबंधा।।१८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **त्रयोऽपि वेदिनः बंधकाः एव नवमगुणस्थानपर्यंतत्वात्। अपगतवेदाः त्रयोदशगुणस्थानपर्यंताः बंधकाः, सकषाययोगेषु अकषाययोगेषु च अपगतवेदत्वोपलंभात्। अयोगिनोऽबंधकाः।**

शंका — यदि ऐसा है तो अयोगी जीव नहीं होते हैं, क्योंकि क्रिया सहित जीव द्रव्य को अक्रियपना मानने में विरोध आता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आठों कर्मों के क्षीण हो जाने पर जो ऊर्ध्वगमनोपलम्बी क्रिया होती है वह जीव की स्वाभाविक क्रिया है, क्योंकि वह कर्मोदय के बिना प्रवृत्त होती है।

स्वस्थित प्रदेश को न छोड़ते हुए अथवा छोड़कर जो जीव द्रव्य में अपने अवयवों द्वारा परिस्पन्दन होता है वह अयोग है, क्योंकि वह कर्मक्षय से उत्पन्न होता है। अतः सक्रिय होते हुए भी शरीरी जीव अयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनके जीव प्रदेशों के तप्तायमान जल प्रदेशों के सदृश उद्वर्तन और परिवर्तनरूप क्रिया का अभाव है। इसीलिए अयोगियों को अबंधक कहा है।

इस प्रकार योगमार्गणा में चतुर्थ स्थल में बंधक और अबंधक जीवों का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदमार्गणा में बंधक और अबंधकों का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते है —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी जीव बंधक होते हैं, पुरुषवेदी जीव बंधक हाते हैं और नपुंसकवेदी जीव भी बंधक होते हैं।।१६।।

अपगतवेदी बंधक भी होते हैं, अबंधक भी होते हैं।।१७।।

सिद्ध अबंधक होते हैं।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तीनों वेद वाले जीव नवमें गुणस्थान तक बंधक ही होते हैं। अपगतवेदी तेरहवें गुणस्थान तक के जीव भी बंधक होते हैं, क्योंकि कषायसहित और कषायरहित जीवों के योग के सद्भाव में भी वेदरहित अवस्था पाई जाती है। अयोगकेवली भगवान अबंधक होते हैं।

एवं पंचमस्थले वेदमार्गणायां बंधाबंधक निरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इदानीं कषायमार्गणायां बंधकाबंधकजीवानामस्तित्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई बंधा।।१९।।

अकसाई बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।२०।।

सिद्धा अबंधा।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संसारिणो जीवस्य ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नशुभाशुभकर्मरूपक्षेत्रं सस्याधिकरणं भूतलं कृषति विलिखते, तेन कारणेन इमं क्रोधादिजीवपरिणामं 'कषाय' इति ब्रुवन्ति श्रीवर्द्धमानभट्टारकीया गौतमगणधरदेवादयः।**

इमे कषायाः किं किं कार्यं कुर्वन्तीति चेत् ?

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खाद-चरणपरिणामे।

घादंति वा कसाया चउ सोल असंखलोगमिदा[१]।।

सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं—अणुव्रतं, सकलचारित्रं—महाव्रतं, यथाख्यातचरणं—

इस प्रकार पंचम स्थल में वेदमार्गणा में बंधक और अबंधकों का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए। अब कषायमार्गणा में बंधक और अबंधक जीवों का अस्तित्व बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीव बंधक होते हैं।।१९।।

अकषायी जीव बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं।।२०।।

सिद्ध अबंधक हैं।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस कारण से संसारी जीव के ज्ञानावरण आदि मूलप्रकृति और उत्तर प्रकृति के भेद से भिन्न शुभ-अशुभ कर्मरूप क्षेत्र को अर्थात् धान पैदा होने की भूमि को यह कृषति अर्थात् जोतती है, उसी कारण से इन क्रोधादिरूप जीव परिणाम को श्रीवर्धमान भट्टारक के गौतम गणधर आदि देव कषाय कहते हैं।

ये कषायें क्या-क्या कार्य करती हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—

गाथार्थ—सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यातचारित्ररूपी परिणामों को जो कषे—घाते—न होने दे, उसको कषाय कहते हैं। इसके अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन इस प्रकार चार भेद हैं। अनन्तानुबंधी आदि चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह चार-चार भेद होने से कषाय के उत्तर भेद सोलह होते हैं। किन्तु कषाय के उदय स्थानों की अपेक्षा से असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं।।

जो सम्यक्त्व को रोके उसको अनन्तानुबंधी, जो देशचारित्र को रोके उसको अप्रत्याख्यानावरण, जो सकल चारित्र को रोके उसको प्रत्याख्यानावरण, जो यथाख्यातचारित्र को रोके उसको संज्वलन कषाय कहते हैं।।

तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व, अणुव्रतरूप देशचारित्र, महाव्रतरूप सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्ररूप

---

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा-२८३।

यथाख्यातचारित्रं एवंविधान् आत्मविशुद्धिपरिणामान् कषन्ति हिंसन्ति घ्नन्तीति कषाया इति निर्वचनीयं।

तद्यथा — **अनन्तानुबंधिक्रोधमानमायालोभकषायाः आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषन्ति अनन्तसंसार-कारणत्वात्। अनन्तं — मिथ्यात्वं, अनन्तभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नन्ति सुघटयन्तीत्यनन्तानुबंधिन इति निरुक्तिसामर्थ्यात्। अप्रत्याख्यानावरणाः अणुव्रतपरिणामं कषन्ति। अप्रत्याख्यानं — ईषत् प्रत्याख्यानं — अणुव्रतं आवृण्वन्ति घ्नन्तीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। प्रत्याख्यानावरणाः सकलचारित्रं महाव्रतपरिणामं कषन्ति। प्रत्याख्यानं — सकलसंयमं आवृण्वन्ति घ्नन्तीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कषन्ति। सं-समीचीनं, विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहन्ति इति संज्वलनाः इति निरुक्तित्वेन तदुदये सत्यपि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः। एवंविधः कषायः सामान्येन एकः, विशेषापेक्षया तु अनन्तानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदाच्चत्वारः। पुनस्ते चत्वारोऽपि प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति षोडश। पुनस्ते सर्वेऽपि उदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यातलोकप्रमिताः भवन्ति, तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानां असंख्यातलोकमात्रत्वात्।**

अकषायिनो बंधका अपि, अबंधका अपि भवन्ति, एकादशमगुणस्थानादारभ्य त्रयोदशगुणस्थानपर्यन्त-सयोगिनः बंधकाः, अयोगिकेवलिनोऽबंधकाः सन्ति। इमे कषायरहिताः कथ्यन्ते।

अकषायिनां लक्षणमुच्यते —

आत्मा के विशुद्ध परिणामों को कषति अर्थात् घातते हैं इसलिए इन्हें कषाय कहते हैं।

इसका स्पष्टीकरण — अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभकषाय आत्मा के सम्यक्त्व परिणाम को घातती है, क्योंकि अनन्त संसार का कारण हैं। अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व या अनन्तभव के संस्कार काल को 'अनुबध्नन्ति' बांधती हैं इसलिए उसे अनन्तानुबंधी कहते हैं, इस निरुक्ति के बल पर उसका कथन सिद्ध होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय अणुव्रत परिणामों को घातती है। अप्रत्याख्यान अर्थात् ईषत् प्रत्याख्यान अर्थात् अणुव्रत को आवृण्वन्ति अर्थात् घातती है इस निरुक्ति से सिद्ध होता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय सकलचारित्ररूप महाव्रत परिणामों को घातती है। प्रत्याख्यान अर्थात् सकल संयम को आवृण्वन्ति अर्थात् घातती है, इस निरुक्ति से सिद्ध है। संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्ररूप परिणामों को घातती है। सं अर्थात् समीचीन विशुद्ध संयम यथाख्यात चारित्र को 'ज्वलन्ति' जो जलाती है, वह संज्वलन है इस निरुक्ति के बल से संज्वलन कषाय के उदय में सामायिक आदि अन्य संयमों के होने में कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार की कषाय सामान्य से एक है। विशेष विवक्षा में अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन के भेद से चार हैं। पुनः वे चारों भी प्रत्येक के क्रोध, मान, माया लोभ भेद होने से सोलह हैं। यथा अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। पुनः सभी कषाय उदय स्थान विशेष की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण हैं, क्योंकि उसके कारण चारित्रमोहनीय के उत्तरोत्तर प्रकृतिभेद असंख्यात लोकमात्र हैं।

अकषायी जीव बंधक भी होते हैं और अबंधक भी होते हैं। इसमें अभिप्राय यह है कि ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली तक बंधक-बंध करने वाले हैं और अयोगकेवली अबंधक-बंध रहित हैं। ये दोनों ही प्रकार के जीव कषायरहित — अकषायी कहे जाते हैं।

अकषायी जीवों का लक्षण कहते हैं —

अप्पपरोभयबाधणबंधासंजमणिमित्तकोहादी।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा[१]।।

स्वस्मिन् परस्मिन् उभयस्मिन् इति स्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं बाधनबंधनासंयमानां त्रयाणामपि निमित्तभूताः क्रोधादयः कषायाः, पुंवेदादयो नोकषायाश्च येषां न सन्ति ते अकषाया, अमलाः द्रव्यभावनोकर्ममलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः सन्ति। अत्र उपशान्तादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनो न विवक्षिताः।

सिद्धाः अबंधका एव, सर्वदा द्रव्यभावकर्ममलैरपृष्टत्वात्।

एवं षष्ठस्थले कषायाकषायजीवानां बंधाबंध निरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति ज्ञानमार्गणायां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओधिणाणी मणपज्जवणाणी बंधा।।२२।।

केवलणाणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।२३।।

सिद्धा अबंधा।।२४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **ज्ञानमार्गणायां त्रयोऽज्ञानिनो मिथ्याज्ञानिनः बंधकाः, मिथ्यात्वप्रत्ययसहिताः।**

गाथार्थ — जिनके स्वयं को, दूसरे को तथा दोनों को ही बाधा देने और बंधन करने तथा असंयम करने में निमित्तभूत क्रोधादिक कषाय नहीं हैं तथा जो बाह्य और अभ्यन्तर मल से रहित हैं, ऐसे जीवों को अकषायी — कषाय रहित कहते हैं।

यद्यपि गाथा में कषाय शब्द का ही उल्लेख है तथापि यहाँ नोकषाय का भी ग्रहण कर लेना चाहिए। गुणस्थानों की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर सभी जीव अकषायी हैं।

अपने, दूसरे और दोनों के इस प्रकार तीनों स्थानों में भी बंधन, बाधा तथा असंयम के निमित्तभूत क्रोधादि कषाय और पुरुषवेद आदि नोकषाय जिन जीवों के नहीं हैं, वे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप मल से रहित सिद्ध परमेष्ठी अकषाय — कषाय रहित हैं। यहाँ उपशान्तकषाय आदि चार गुणस्थानवर्तियों की विवक्षा नहीं है।

सिद्ध भगवन अबंधक ही होते हैं, क्योंकि वे द्रव्यकर्म-भावकर्म और नोकर्म मल से सदैव अस्पृष्ट रहते हैं।

इस प्रकार छठे स्थल में कषायसहित और कषायरहित जीवों के बंध-अबंध का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब ज्ञानमार्गणा में बंध और अबंध का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणानुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी बंधक हैं।।२२।।

केवलज्ञानी बंधक हैं और अबंधक भी हैं।।२३।।

सिद्ध अबंधक हैं।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ज्ञानमार्गणा में तीनों अज्ञानी — मिथ्याज्ञानी जीव बंधक हैं, क्योंकि वे

---

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा-२८९।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानिनः चतुर्थगुणस्थानादारभ्य द्वादशगुणस्थानपर्यंताः क्षीणकषायान्ताः बंधका एव। केवलज्ञानिनोऽर्हत्परमेष्ठिनः सयोगिनो बंधकाः सातावेदनीयबंधकर्तृत्वात्, अयोगिनोऽबंधकाः बंधप्रत्यय-रहित्वात्। सिद्धपरमेष्ठिनो अबंधाः एवेति ज्ञातव्यं।

एवं सप्तमस्थले ज्ञानमार्गणायां बंधाबंधकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संयममार्गणायां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण असंजदा बंधा, संजदासंजदा बंधा।।२५।।

संजदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।२६।।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा।।२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोर्द्वयोरर्थः सुगमः। षष्ठगुणस्थानादारभ्य सयोगिपर्यन्ताः संयताः बंधकाः, अयोगिनोऽबंधकाः। ये सिद्धपरमेष्ठिनः ते न संयताः न असंयताः न संयतासंयताः अतस्ते अबंधा एव। विषयेषु द्विविधासंयमस्वरूपेण प्रवृत्तेरभावात् सिद्धाः असंयता न भवन्ति। संयताः अपि न भवन्ति प्रवृत्तिपुरःसरं तन्निरोधाभावात्। ततो नोभयसंयोगोऽपि सिद्धानां भगवतां इति।**

एवं अष्टमस्थले संयममार्गणायां बंधाबंधव्यवस्थानिरूपणत्वेन सूत्राणि त्रीणि गतानि।

मिथ्यात्व प्रत्यय से सहित होते हैं। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानी चतुर्थ गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के सभी जीव बंधक ही होते हैं। केवलज्ञानी अरिहंत परमेष्ठी भगवान सयोगकेवली बंधक हैं, क्योंकि वे साता वेदनीय कर्म का बंध करते हैं। अयोगकेवली भगवान अबंधक होते हैं, क्योंकि वे बंध प्रत्यय से रहित होते हैं। सिद्ध परमेष्ठी अबंधक ही होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार सातवें स्थल में ज्ञानमार्गणा में बंधक और अबंधकों का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयममार्गणा में बंध और अबंध का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संयममार्गणानुसार असंयत बंधक हैं और संयतासंयत बंधक हैं।।२५।।

संयत बंधक भी हैं, अबंधक भी हैं।।२६।।

जो न संयत हैं, न असंयत हैं, न संयतासंयत हैं, ऐसे सिद्ध जीव अबंधक हैं।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दो सूत्रों का अर्थ सुगम है। छठे गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त सभी संयत बंधक होते हैं, अयोगकेवली अबंधक होते हैं। जो सिद्ध परमेष्ठी भगवान हैं वे न संयत हैं, न असंयत हैं और न संयतासंयत हैं अतः वे अबंधक ही होते हैं। विषयों में दो प्रकार के असंयम अर्थात् इन्द्रियासंयम और प्राणिअसंयम रूप से प्रवृत्ति न होने के कारण सिद्ध असंयत नहीं हैं। सिद्ध संयत भी नहीं है, क्योंकि प्रवृत्तिपूर्वक उनमें संयम का अभाव है। इस कारण संयम और असंयम इन दोनों के संयोग से उत्पन्न संयमासंयम का भी सिद्धों के अभाव है।

इस प्रकार आठवें स्थल में संयममार्गणा में बंध और अबंध व्यवस्था का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

दर्शनमार्गणायां बंधाबंधनियमप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा।।२८।।

केवलदंसणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि ।।२९।।

सिद्धा अबंधा।।३०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शनिनोऽचक्षुर्दर्शनिनश्च सर्वे संसारिणः प्राणिनः सर्वदा बंधकाः एव, ये केचित् अवधिदर्शनसहिताः तेऽपि क्षीणकषायान्ता एव भवन्ति न चाग्रेऽतस्तेऽपि बंधकाः एव। केवलदर्शिनः सयोगिनो बंधका, अयोगिनोऽबंधका इति पुनः सिद्धपरमेष्ठिनोऽपि केवलदर्शनोपयोगसहितास्तथापि सर्वथा अबंधा एव बंधप्रत्ययविनाशकत्वात्।**

एवं नवमस्थले दर्शनोपयोगिनां बंधाबंधप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि ।

लेश्यामार्गणायां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा।।३१।।

अलेस्सिया अबंधा।।३२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या इति वचनात् दशमगुणस्थानपर्यंता**

अब दर्शनमार्गणा में बंध और अबंध के नियमों का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी बंधक हैं।।२८।।

केवलदर्शनी बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं।।२९।।

सिद्ध अबंधक हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दर्शनमार्गणा में चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी सभी संसारी प्राणी सर्वदा बंधक ही रहते हैं, जो अवधिदर्शन वाले कुछ प्राणी हैं वे भी क्षीणकषाय गुणस्थान तक ही होते हैं, आगे नहीं होते हैं, वे भी बंधक ही रहते हैं। केवलदर्शन सहित सयोगकेवली भगवान बंधक होते हैं, अयोगकेवली अबंधक होते हैं, पुनः सिद्ध परमेष्ठी भी केवलदर्शनोपयोग से सहित होते हैं, फिर भी वे सर्वथा अबंधक ही हैं, क्योंकि बंध के समस्त प्रत्ययों का उन्होंने नाश कर दिया है।

इस प्रकार नवमें स्थल में दर्शनोपयोगी जीवों के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब लेश्यामार्गणा में बंध-अबंध का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले बंधक हैं।।३१।।

लेश्या रहित जीव अबंधक हैं।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कषाय के उदय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति लेश्या है, इस वचन से

या शुक्ललेश्या, तद्सहिता अपि संयता बंधकाः एव उपरितनगुणस्थानवर्तिनः सयोगिपर्यन्ताः बंधकाः, ''शुक्ललेश्यांशकस्पृशेः'' इति वचनादपि उपचारेण वा, शेषा अयोगिनः सिद्धपरमेष्ठिनश्च अबंधाः।

सिद्धाः अबंधा इति पृथक्सूत्रं किन्न कृतम् ?

नैष दोषः, अलेश्येषु बंधाबंधोभयभंगाभावेन संदेहानुपपत्तेः।

एवं दशमस्थले लेश्यामार्गणायां बंधाबंधनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

भव्यमार्गणायां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतरति —

भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।३३।।

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अबंधा।।३४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **भव्यमार्गणायां अभव्याः सर्वथा मिथ्यादृष्टिनः एवातो बंधकर्तारः संसारिणः सन्ति। भव्यास्तेऽपि ये केचित् दूरानुदूराः ते बंधकाः एव, ये केचित् भव्यत्वं प्रकटयन्ति ते अबंधाः भवितुमर्हन्ति, अर्हत्परमेष्ठिनः भव्याभव्यावस्थाविरहिताः ।**

उक्तं च— **''नमो भव्येतराऽवस्था-व्यतीताय विमोक्षिणे[१]।।''**

दशवें गुणस्थान तक जो शुक्ललेश्या है उससे सहित भी संयत बंधक ही होते हैं। उससे ऊपर के गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली गुणस्थान पर्यन्त बंधक हैं अथवा ''शुक्ललेश्या के अंश का स्पर्श करने से'' इत्यादि कथन के कारण भी उपचार से वे बंधक हैं, शेष अयोगकेवली और सिद्धपरमेष्ठी अबंधक हैं।

शंका — ''सिद्ध अबंधक हैं'' ऐसा पृथक् से कथन क्यों नहीं किया गया?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि लेश्यारहित जीवों में बंध और अबंध ये दो विकल्प न होने से कोई संदेह नहीं उत्पन्न होता है।

इस प्रकार दशवें स्थल में लेश्यामार्गणा में बंध और अबंध का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब भव्यमार्गणा में बंध और अबंध का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

भव्यमार्गणानुसार अभव्यसिद्धिक जीव बंधक हैं, भव्यसिद्धिक जीवबंधक भी हैं अबंधक भी हैं।।३३।।

जो न भव्यसिद्धिक हैं, न अभव्यसिद्धिक हैं, ऐसे सिद्ध जीव अबंधक हैं।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भव्यमार्गणा में अभव्य जीव सर्वथा मिथ्यादृष्टि ही होते हैं अतः वे बंधकर्ता संसारी हैं। जो भव्य जीव हैं, उनमें भी कुछ दूरानुदूर भव्य हैं वे बंधक है, जो भव्यत्व को प्रगट करते हैं, वे अबंधक हो सकते हैं। अरिहंत परमेष्ठी भव्य और अभव्य दोनों अवस्थाओं से रहित होते हैं।

सहस्रनामस्तोत्र में कहा भी है — ''भव्य और अभव्य अवस्था से रहित मोक्ष को प्राप्त जिनेश्वर आदिनाथ भगवान के लिए मेरा नमस्कार हो।''

---

१. सहस्रनामस्तोत्र। (महापुराण पर्व २५)

ये न भव्या नाभव्यास्ते सिद्धाः अबंधा एव पुनरागमनरहितत्वात्।

एवं एकादशस्थले भव्यमार्गणायां बंधाबंधकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

सम्यक्त्वमार्गणायां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, सासणसम्माइट्ठी बंधा, सम्मामिच्छाइट्ठी बंधा।।३५।।

सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।३६।।

सिद्धा अबंधा।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यादृष्ट्यादित्रयगुणस्थानवर्तिनो बंधकाः एव, सकलास्रवसंयुक्तत्वात्। सम्यग्दृष्टयो बंधकाः अबंधकाश्च, सास्रवानास्रवेषु सम्यग्दर्शनोपलंभत्वात्। सिद्धाः क्षायिकसम्यक्त्वसहिताः सर्वथा अबंधका एव।**

एवं द्वादशमस्थले दर्शनमार्गणायां बंधाबंधनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति संज्ञिमार्गणायां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णी बंधा, असण्णी बंधा।।३८।।

णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।३९।।

जो न भव्य हैं, न अभव्य हैं वे सिद्ध भगवान अबंधक ही होते हैं, क्योंकि संसार में उनका पुनरागमन-पुनः जन्म नहीं होता है।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में भव्यमार्गणा में बंध-अबंध का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में बंध-अबंध का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणानुसार मिथ्यादृष्टि बंधक हैं, सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि बंधक हैं।।३५।।

सम्यग्दृष्टि बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं।।३६।।

सिद्ध अबंधक हैं।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थानवर्ती बंधक ही हैं, क्योंकि वे सम्पूर्ण कर्मों के आश्रव से संयुक्त होते हैं। सम्यग्दृष्टि बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं, क्योंकि उनके आश्रव और अनाश्रव—संवर इन दोनों अवस्थाओं में सम्यग्दर्शन का अस्तित्व रहता है। क्षायिकसम्यक्त्व सहित सिद्ध भगवान सर्वथा अबंधक ही रहते हैं।

इस प्रकार बारहवें स्थल में दर्शनमार्गणा में बंध और अबंध का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब संज्ञीमार्गणा में बंध और अबंध का प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी बंधक हैं, असंज्ञी बंधक हैं।।३८।।

न संज्ञी न असंज्ञी ऐसे केवलज्ञानी जिन बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं।।३९।।

सिद्धा अबंधा।।४०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विनष्टनोइन्द्रियक्षयोपशमात् केवलज्ञानिनो न संज्ञिनः, तत्र इन्द्रियावष्टंभबलेन अनुत्पन्नबोधोपलंभात् नोऽसंज्ञिनः। ततस्ते बंधका अपि अबंधका अपि, बंधाबंधकारणयोगायोगयोरुपलंभात्।**

श्रीभगवज्जिनसेनाचार्येणापि प्रोक्तं—

''संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था-व्यतिरिक्तामलात्मने ।
नमस्ते वीतसंज्ञाय, नमः क्षायिकदृष्टये[१]।।''

एवं त्रयोदशस्थले संज्ञिमार्गणायां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति आहारमार्गणायां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारा बंधा।।४१।।

अणाहारा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।४२।।

सिद्धा अबंधा।।४३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। औदारिकशरीरादिवर्गणाग्रहणकरणात् आहारा आहारकाः। संसारिप्राणिनः कर्मणां बंधकाः एव। अनाहाराः विग्रहगतौ अपि बंधका एव, अयोगिनश्चैवानाहाराः**

सिद्ध अबंधक हैं।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। उनका नोइंद्रियज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नष्ट हो गया है, इसलिए केवलज्ञानी जीव संज्ञी नहीं है तथा उनके मात्र इन्द्रियों के अवलम्बन से ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती इसलिए वे केवलज्ञानी जीव असंज्ञी नहीं है। अतः वे न संज्ञी न असंज्ञी होकर बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं, क्योंकि उनके सयोगी अवस्था में बंध का कारण योग पाया जाता है और अयोगी अवस्था में अबंध का कारण योग का अभाव रहता है।

श्रीमद्भगवज्जिनसेनाचार्य ने भी सहस्रनाम स्तोत्र में कहा है—

श्लोकार्थ—जो संज्ञी-असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित हैं, पवित्रात्मा हैं, उन वीतसंज्ञक क्षायिक सम्यग्दृष्टि सिद्ध भगवान को मेरा नमस्कार होवे।।

इस प्रकार तेरहवें स्थल में संज्ञीमार्गणा में बंध और अबंध का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारमार्गणा में बंध-अबंध का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव बंधक हैं।।४१।।

अनाहारक जीव बंधक भी हैं और अबंधक भी हैं।।४२।।

सिद्ध अबंधक हैं।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। औदारिक शरीरादि के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करने का नाम आहार है, ऐसे आहार को प्राप्त आहारक संसारी प्राणी कर्मों के बंधक ही होते हैं। विग्रहगति में

---

१. सहस्रनामस्तोत्र। (महापुराण पर्व २५)

अबंधकाः सिद्धपरमेष्ठिनः सर्वे निराकाराः निराहारा अबंधका एव।

एषः बंधकसत्त्वाधिकारः पूर्वमेव किमर्थं प्ररूपितः ?

'सति धर्मिणि धर्माः चिन्त्यन्ते' इति न्यायात् बंधकानामस्तित्वे सिद्धे सति पश्चात् तेषां विशेषप्ररूपणा युज्यते। तस्मात् सत्त्वप्ररूपणं पूर्वमेव कर्तव्यमिति। एवमस्तित्वेन सिद्धानां—प्रसिद्धानां बंधकानामेकादशानियोगद्वारैः विशेषप्ररूपणार्थं उत्तरग्रंथः अवतीर्यते।

एवं चतुर्दशस्थले आहारमार्गणायां बंधकाबंधकजीवास्तित्वनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इतो विशेषः कथ्यते—**अत्र ऋषभदेवजन्मजयंतीमहामहोत्सवप्रारम्भकाले श्रीऋषभदेवो मया स्तूयते।**

यथा त्रिषु लोकेषु सिद्धिं प्राप्तुकामानामुद्भवस्थानापेक्षया मध्यलोको महान् अस्ति। मध्यलोके वा सर्वेषु द्वीपेषु आद्योऽयं जंबूद्वीपः प्राधान्यमाप्नोति। अस्मिन् द्वीपे मध्ये स्थितः सुमेरुः पर्वतः सर्वेषु पर्वतेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठः सर्वोत्तुंगो महानस्ति यस्तु जम्बूद्वीपमध्यस्थितो जिनप्रतिमासमन्वितो हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे निर्मितः सुमेरुशैलराजः कृत्रिमरूपं धारयन्नपि वर्तमानकाले विश्वेषु अद्वितीयरचनाभवनात् सर्वजैनाजैनजनतानामाकर्षणकेन्द्रो भवन्नास्ते।

तथैव चतुर्विंशतितीर्थकरेषु सर्वेषु भगवान् ऋषभदेवः ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रधानोऽस्ति किं च—युगादौ कर्मभूमेः प्रारम्भकाले अनेन भगवता असि-मसि-कृषि-विद्या-वाणिज्य-शिल्पाख्य षट्क्रियाभिः प्रजाभ्यो

भी अनाहारक जीव बंधक ही रहते हैं तथा अयोगकेवली अनाहारक होते हुए अबंधक होते हैं। सिद्ध परमेष्ठी सभी निराकार—अमूर्तिक और निराहार—आहार रहित अनाहार होने के कारण अबंधक ही होते हैं।

शंका—यह बंधकसत्वाधिकार पहले ही क्यों प्ररूपित किया गया है?

समाधान—'धर्मी के सद्भाव में ही धर्मों का चिंतन किया जाता है' इस न्याय के अनुसार बंधकों का अस्तित्व सिद्ध हो जाने पर पश्चात् उनकी विशेष प्ररूपणा करना योग्य है। इसलिए बंधकों की सत्प्ररूपणा पहले ही करना चाहिए। इस प्रकार अस्तित्व से सिद्ध हुए—प्रसिद्ध हुए बंधकों के ग्यारह अनुयोगों द्वारा विशेष प्ररूपण करने के लिए आगे की ग्रंथ रचना हुई है।

इस प्रकार चौदहवें स्थल में आहारमार्गणा में बंधक और अबंधक जीवों का अस्तित्व बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

यहाँ विशेष कथन किया जा रहा है—

यहाँ श्री ऋषभदेव जन्मजयंती महामहोत्सव के प्रारंभ काल में मेरे द्वारा प्रसंगोपात्त भगवान ऋषभदेव की स्तुति की जा रही है—

जैसे तीनों लोकों में सिद्धि—मुक्ति को प्राप्त करने वाले मनुष्यों के जन्मस्थान की अपेक्षा मध्यलोक महान है अर्थात् मध्यलोक में ही मोक्षगामी मनुष्य उत्पन्न होते हैं। अथवा मध्यलोक में सभी—असंख्यात द्वीप-समुद्रों में सर्वप्रथम द्वीप-जम्बूद्वीप की प्रधानता देखी जाती है। इस जम्बूद्वीप के मध्य में स्थित सुमेरुपर्वत सभी पर्वतों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और सबसे ऊँचा महान पर्वत है, जो कि हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र की पावन वसुंधरा पर निर्मित जम्बूद्वीप रचना के मध्य में सोलह जिनप्रतिमाओं से समन्वित होकर स्थित है, वह सुरशैलराज-दिव्यपर्वतराज वहाँ कृत्रिमरूप को धारण करते हुए भी वर्तमान में विश्व की अद्वितीय रचना होने के कारण समस्त जैन-अजैन जनता के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

उसी प्रकार चौबीसों वर्तमानकालीन तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और प्रधान हैं, क्योंकि इस कर्मभूमि के प्रारंभ में इन्हीं भगवान ऋषभदेव ने प्रजा को असि-मसि-कृषि-विद्या-

जीवनकलाः शिक्षिताः, पुनश्च गृहस्थमार्गस्य मोक्षमार्गस्य च प्रणेता बभूव।

एतादृशः श्रीऋषभदेवस्य भगवतो गुणानां कीर्तनात् तस्याहिंसामयसिद्धान्तप्रचारात् भगवतो नामस्मरणाच्च विश्वस्मिन् शान्तेः स्थापना भविष्यति, सर्वत्र क्षेमः सुभिक्षमारोग्यं च वर्त्स्यते, अनेके आकस्मिक संकट — भूकंप-दुर्भिक्ष-नदीपूर-वायुयानपतन-वाष्पयानसंघट्टनदुर्घटनादयः क्षीणाः भविष्यन्ति, आधिव्याधिशोकापदः विनक्ष्यंति। भगवद्भिः प्रतिपादितकृषिव्याख्यावगमात् क्रूरजनानामपि भावनाः परिवर्तिता भविष्यंति, पर्यावरणस्य शुद्धिश्च स्यादित्यादि-अनेकलाभान् मनसि संप्रधार्य-

''श्रीमद्भगवत्ऋषभदेवजन्मजयंतीमहामहोत्सवं'' आवर्षं लोके सर्वजैनसमाजैः क्रियेत इति भावनयाद्य वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतितमे चैत्रकृष्णानवम्यां तिथौ 'श्रीऋषभदेवजन्मजयंती दिवसे' भारतदेशस्य राजधानीं दिल्लीनाममहानगरे दिगम्बरजैनाग्रवालसमाजप्रमुखकार्यकर्तृभिः दिगम्बरजैनत्रिलोकशोधसंस्थानस्य च कार्यकर्तृभिरद्य भगवतः श्रीऋषभदेवतीर्थकरस्य रथयात्रामहामहोत्सवः संपन्नोऽभवत्। ऐतिहासिकदिगंबर-जैनलालमंदिरे श्रीपुरुदेवजिनप्रतिमायाः अष्टोत्तरशतरजतकलशैरभिषेकविधिश्च बभूव।

अस्मिन वर्षे भगवतः श्रीआदिब्रह्मणः ऋषभदेवस्य नामप्रचारप्रसारार्थमनेकविधानि प्रभावनाकार्याणि भूयासुः इति कामयामहे।

श्रीमत्ऋषभदेवोऽस्य सार्वो धर्मो जयत्वपि।
यस्य प्रसादमात्रेण लोके शांतिर्भविष्यति।।१।।

वाणिज्य और शिल्प नाम की छह क्रियाओं के द्वारा जीवन जीने की कला सिखाई, उसके पश्चात् वे गृहस्थमार्ग एवं मोक्षमार्ग के प्रणेता कहलाए।

उन भगवान् ऋषभदेव के गुणकीर्तन से उनके अहिंसामयी सिद्धान्तों के प्रचार से और भगवान के नाम स्मरण से सारे विश्व में शांति की स्थापना होगी, सर्वत्र क्षेम-सुभिक्ष और आरोग्यता का संचार होगा, अनेक आकस्मिक संकट, भूकंप, दुर्भिक्ष, नदियों में बाढ़, हवाई जहाज गिरने की दुर्घटना, रेल दुर्घटना आदि समाप्त होंगी, आधि-व्याधि-शोकादि आपत्तियाँ नष्ट होंगी। भगवान् के द्वारा प्रतिपादित कृषि की व्याख्या — परिभाषा को जानने से क्रूर-हिंसक मनुष्यों की भावनाएँ भी परिवर्तित होंगी और पर्यावरण की शुद्धि होवे इत्यादि अनेक लाभों के विषय में मन में सोचकर —

''श्रीमान् भगवान् ऋषभदेव का जन्मजयंती महामहोत्सव'' पूरे १ वर्ष तक लोक में सम्पूर्ण जैन समाज के द्वारा मनाया जावे, इस भावना से आज वीर निर्वाण संवत् २५२३ के चैत्र कृष्णा नवमी तिथि के दिन 'श्री ऋषभदेव जन्मजयंती के अवसर पर' भारतदेश की राजधानी दिल्ली नामक महानगर में दिगम्बर जैन अग्रवाल समाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं के द्वारा एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के कार्यकर्ताओं के द्वारा (दोनों संस्थाओं के संयुक्त तत्वावधान में) आज भगवान ऋषभदेव तीर्थंकर का रथयात्रा महामहोत्सव सम्पन्न हुआ और ऐतिहासिक दिगम्बर जैन लाल मंदिर में श्री पुरुदेव की जिनप्रतिमा का १०८ रजत कलशों से महाभिषेक भी हुआ।

इस वर्ष में आदिब्रह्मा भगवान श्री ऋषभदेव के नाम का प्रचार-प्रसार करने हेतु अनेक प्रकार के प्रभावनात्मक कार्य सम्पन्न होवें, यही मेरी मनोकामना है।

श्लोकार्थ — तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान का सार्वभौम धर्म — सर्वहितकारी धर्म जयशील होवे, जिस धर्म के प्रभाव से लोक में शांति की स्थापना होती है।।१।।

विशेषार्थ — षट्खण्डागम में द्वितीय खण्ड के इस क्षुद्रकबंध प्रकरण में टीकाकर्त्री पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का स्मरण विशेषरूप से किया है। उसका प्रमुख रहस्य यह है कि उन्होंने जैनधर्म की प्राचीनता, अनादिनिधनता और सार्वभौमिकता का प्रचार-प्रसार करने हेतु ''ऋषभदेवजन्मजयंती'' महोत्सव मनाने की प्रेरणा सम्पूर्ण जैन समाज को प्रदान की थी, जिसका ''ऋषभदेवजन्मजयंती महोत्सव वर्ष'' के रूप में उद्घाटन दिनाँक ३० मार्च १९९७ को दिल्ली के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री साहबसिंह वर्मा ने किया था। उस समय तक ऋषभदेव भगवान की जन्मजयंती मनाने की परम्परा जैन समाज में प्रायः बहुत कम थी, माताजी की इस प्रेरणा के अनन्तर पूरे वर्ष तक दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर द्वारा व्यापक प्रचार करने पर जैनसमाज में पर्याप्त जागृति उत्पन्न हुई और सैकड़ों स्थानों पर ऋषभदेव जन्मजयंती एवं निर्वाणोत्सव मनाना अब प्रारंभ हो गया है।

इस प्रेरणा का उद्देश्य मात्र यही रहा है कि इस कृतयुग के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के साथ-साथ प्रथम तीर्थंकर तथा चौबीसों तीर्थंकर का अस्तित्व संसार के समक्ष प्रस्तुत हो सके, ताकि भगवान महावीर को जैनधर्म का संस्थापक मानने वाले नवीन इतिहासज्ञों का ध्यान जैनधर्म के वास्तविक तथ्यों पर भी केन्द्रित हो सके। इन्हीं प्रयासों के अन्तर्गत पूज्य माताजी ने इस वर्ष के समापन पर चैत्र कृष्णा नवमी (ऋषभजयंती), सन् १९९८ में २२ मार्च को ''भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार'' नाम के रथ का उद्घाटन श्री धनंजय जैन (सांसद) की अध्यक्षता में लालकिला मैदान-दिल्ली से कराया गया तथा महावीर जयंती-९ अप्रैल १९९८ को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पूज्य माताजी का शुभाशीर्वाद लेकर भारत भ्रमण हेतु उस रथ का प्रवर्तन किया। पुनः लगभग ३ वर्ष तक उस श्रीविहार रथ ने देशभर के कोने-कोने में भगवान ऋषभदेव के सर्वोदयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करके कीर्तिमान स्थापित किया, उसके पश्चात् सन् २००२ में शरदपूर्णिमा के दिन पूज्य माताजी के संघ सानिध्य में उस समवसरण की धातुनिर्मित प्रतिकृति को ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञानकल्याणकभूमि प्रयाग (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ पर उत्तरप्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री श्यामल कुमार सेन के करकमलों द्वारा स्थापित किया गया, जो अद्यावधि जिनधर्म की यशोगाथा को प्रचारित कर रहा है।

इसी प्रचार शृँखला में ४ फरवरी सन् २००० में माघ कृष्णा चतुर्दशी को भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाणमहोत्सव का उद्घाटन भी दिल्ली से पूज्य माताजी की प्रेरणा से उनके संघ सानिध्य में प्रधानमंत्री अटलबिहारी बाजपेयी जी ने कैलाशपर्वत की प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर किया, वह उत्सव भी १ वर्ष तक सम्पूर्ण भारत देश में एवं विदेशों में भी प्रभावनापूर्वक मनाया गया पुनः उस वर्ष के समापन पर ४ फरवरी २००१ को जैनतीर्थ प्रयाग-इलाहाबाद में बनारस-हाइवे रोड पर ''तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली'' तीर्थ का लोकार्पण अद्वितीय प्रभावना के साथ हुआ। वहाँ उनके पावन सानिध्य में भगवान ऋषभदेव के पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक अतिप्राचीन तीर्थ को नूतन निर्माणों के साथ पुनर्स्थापित किया गया।

इसी प्रकार भगवान ऋषभदेव का प्रचार शिक्षाजगत तक भी करने हेतु उन्होंने 'भगवान ऋषभदेव

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीमद्भूतबलि-सूरिविरचितक्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीका-प्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती-श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमः पट्टाधिपः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचनाप्रेरिका-गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां त्रिंचत्वारिंशत् सूत्रैरियं बन्धकसत्त्व-प्ररूपणाख्या पीठिका समाप्ता।

राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकारों का सम्मेलन आदि करके एन.सी.ई. आर.टी. तक भी अनेक पुरुषार्थ करवाये, समय-समय पर जिनके प्रतिफल समाज के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

वे आदिब्रह्मा, प्रजापति भगवान ऋषभदेव जगत् का कल्याण करें, यही मंगलभावना है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्री वीरसेनाचार्य कृत धवला-टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज की शिष्या, जम्बूद्वीप रचना की सम्प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में तेंतालिस सूत्रों के द्वारा यह बंधक सत्त्वप्ररूपणा नाम की पीठिका समाप्त हुई।

अथ स्वामित्वानुगमः

प्रथमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

मध्यलोके जिनेन्द्राणामकृता ये जिनालयाः।
चतुःशतानि वंदे तान्, अष्टपंचाशदुत्तरं।।१।।
अकृता ये जिनागाराः, त्रैलोक्यसंपदालयाः।
स्वयंभुवां स्वयंसिद्धाः, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।२।।
विघ्ना निघ्नंतु मे सर्वे-ऽभीप्सितार्थप्रदाश्च ते।
तुष्टिपुष्टिप्रदातारः, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।३।।

भारतस्य राजधानीदिल्लीमहानगर्यां चैत्रकृष्णाद्वादश्यां श्रीमद्भगवन्महावीरस्वामिनो जिनालये प्रारब्धं 'इन्द्रध्वजनाम' महाविधानं अस्मिन् विराजमाना जिनप्रतिमाः मध्यलोकसंबंधि-चतुःशताष्टपंचाशदकृत्रिम-जिनालयाः अस्य विधानस्य आराध्याश्चापि संति तान् जिनालयान् अकृत्रिमकृत्रिमजिनप्रतिमाश्च नमस्कृत्य सरस्वतीदेवीमपि वंदामहे वयम्।

अथ स्वामित्वानुगम नाम का प्रथम महाधिकार प्रारंभ होता है

प्रथम महाधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—मध्यलोक में जिनेन्द्र भगवन्तों के जो चार सौ अट्ठावन जिनमंदिर हैं, उन सभी अकृत्रिम जिनालयों एवं जिनप्रतिमाओं को मेरा वंदन है।।१।।

तीनों लोकों की सम्पत्ति के आलयस्वरूप जो अकृत्रिम जिनालय हैं, वे स्वयंभू भगवन्तों के स्वयंसिद्ध जिनालय मेरा मंगल करें।।२।।

वे स्वयंसिद्ध जिनालय एवं भगवान मेरे समस्त विघ्नों को नष्ट करें, समस्त इच्छित फल को प्रदान करे, तुष्टि और पुष्टि को करने वाले वे जिनेन्द्र प्रभु मेरा मंगल करें।।३।।

भारत की राजधानी दिल्ली महानगरी में (बाहुबली एन्क्लेव नाम की कालोनी में) चैत्र कृष्णा द्वादशी को (४ अप्रैल १९९७ को) भगवान् महावीर स्वामी के मंदिर में 'इन्द्रध्वज' नाम का महाविधान प्रारंभ हुआ। उसमें मण्डल के ऊपर मध्यलोकसंबंधि चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम जिनालयों के प्रतीक में निर्मित किये गये जिनमंदिरों में विराजमान जिनप्रतिमाएँ इस विधान की आराध्य हैं, उन सभी जिनालयों को तथ अकृत्रिम और कृत्रिम प्रतिमाओं को नमस्कार करके हम सरस्वती देवी—द्वादशांगरूप जिनवाणी माता को भी नमन करते हैं।

भावार्थ—यहाँ यह स्पष्ट हो गया है कि इन्द्रध्वज विधान में तेरहद्वीप के ४५८ अकृत्रिम चैत्यालयों का स्मरण करते हुए पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने षट्खण्डागम के इस द्वितीय खण्ड की टीका का शुभारंभ किया है। इस इन्द्रध्वज विधान की रचना भी सन् १९७६ में पूज्य माताजी ने स्वयं की है, जो पूरे देश की दिगम्बर जैन समाज में अत्यधिक प्रचलित हुआ है।

अथ तावत् षट्खण्डागमस्य द्वितीयखण्डे एकादशानुयोगद्वारनिर्देशे तेषां नामानि प्रतिपाद्य प्रथमतः एकजीवापेक्षया स्वामित्वकथनमुख्यत्वेन स्वामित्वानुगमो नाम प्रथमो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् चतुर्दशाधिकाराः क्रियन्ते। प्रथमेऽधिकारे बंधकर्तृणां स्वामित्वप्रतिपादन प्रतिज्ञारूपेण ''एदेसिं'' इत्यादिसूत्रत्रयं। कथयित्वा गतिमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणपरत्वेन ''गदियाणुवादेण'' इत्यादिना दश सूत्राणि। तत्पश्चात्, द्वितीयाधिकारे इंद्रियमार्गणायां ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं तृतीयाधिकारे कायमार्गणायां स्वामित्वकथनत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिचतुर्दशसूत्राणि । ततः परं चतुर्थेऽधिकारे योगमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं पंचमाधिकारे वेदमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणपरत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि। तत्पश्चात् षष्ठेऽधिकारे कषायमार्गणायां स्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''कसायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु सप्तमेऽधिकारे ज्ञानमार्गणायां स्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि। तत्पश्चात् अष्टमेऽधिकारे संयममार्गणायां स्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि। ततः परं नवमेऽधिकारे दर्शनमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः पुनः दशमेऽधिकारे लेश्यामार्गणायां स्वामित्वकथनत्वेन 'लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। पुनश्च एकादशेऽधिकारे भव्यमार्गणायां स्वामित्वप्रतिपादनपरत्वेन ''भवियाणुवादेण'' इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि। तत्पश्चात् द्वादशेऽधिकारे सम्यक्त्वमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिना चतुर्दश सूत्राणि। तदनंतरं त्रयोदशाधिकारे संज्ञिमार्गणायां स्वामित्वप्ररूपणत्वेण ''सण्णियाणुवादेण'' इत्यादिना षट्सूत्राणि। ततः

उस षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड में ग्यारह अनुयोगद्वारों के निर्देश में उनके नामों का प्रतिपादन करके सर्वप्रथम एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व कथन की मुख्यता से स्वामित्वानुगम नाम का प्रथम महाधिकार प्रारंभ होता है। इसमें चौदह अधिकार किये गये हैं। उनमें से प्रथम स्थल में बंध करने वाले जीवों का स्वामित्व बतलाने के लिए प्रतिज्ञारूप से "एदेसिं...." इत्यादि तीन सूत्र कहकर गतिमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने वाले "गदियाणुवादेण...." इत्यादि दश सूत्र हैं। तत्पश्चात् द्वितीय अधिकार में इन्द्रियमार्गणा में "इंदियाणुवादेण..." इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय अधिकार में कायमार्गणा में स्वामित्व कथन करने हेतु "कायाणुवादेण...." इत्यादि चौदह सूत्र हैं। आगे चतुर्थ अधिकार में योगमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने हेतु "जोगाणुवादेण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर पंचम अधिकार में वेदमार्गणा में स्वामित्व का कथन करने हेतु "वेदाणुवादेण...." इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् छठे अधिकार में कषायमार्गणा में स्वामित्व का प्रतिपादन करने हेतु "कसायाणुवादेण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः सातवें अधिकार में ज्ञानमार्गणा में स्वामित्व को बतलाने वाले "णाणाणुवादेण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् आठवें अधिकार में संयममार्गणा में स्वामित्व का प्रतिपादन करने हेतु "संजमाणुवादेण...." इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके आगे नवमें अधिकार में दर्शनमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने हेतु "दंसणाणुवादेण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में स्वामित्व कथन की अपेक्षा "लेस्साणुवादेण..." इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः ग्यारहवें अधिकार में भव्यमार्गणा में स्वामित्व का प्रतिपादन करने हेतु "भवियाणुवादेण....." इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् बारहवें अधिकार में सम्यक्त्वमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने वाले "सम्मत्ताणुवादेण....." इत्यादि चौदह सूत्र हैं। तदनंतरं तेरहवें अधिकार में संज्ञीमार्गणा में स्वामित्व का प्ररूपण करने वाले "सण्णियाणुवादेण....." इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् चौदहवें अधिकार में आहारमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने हेतु "आहाराणुवादेण....." इत्यादि चार सूत्र हैं।

परं चतुर्दशेऽधिकारे आहारमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणपरत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका सूचिता भवति एकनवतिसूत्रैः चतुर्दशाधिकारैरिति।

अधुना एकादशानुयोगद्वारनामनिर्देशार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

एदेसिं बंधयाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।।१।।

एगजीवेण सामित्तं, एगजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पबहुगाणुगमो चेदि।।२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका —**एतेषां कर्मबंधकर्तृणां प्ररूपणायाः प्रयोजने सति तत्र इमानि उत्तरसूत्रकथितानि एकादशानियोगद्वाराणि ज्ञातव्यानि भवन्ति भव्यजीवैरिति।**

अन्यार्थेषु बंधकेषु सत्सु ''एतेषां बंधकानां'' ईदृशः प्रत्यक्षनिर्देशः कथं उपपद्यते ?

नैष दोषः, बंधकविषयकबुद्ध्या प्रत्यक्षत्वमपेक्ष्य प्रत्यक्षनिर्देशोपपत्तेः।

सत्त्वानियोगद्वारं पूर्वमप्ररूप्य तेन सह द्वादशानियोगद्वारेभ्यः बंधकानां प्ररूपणा किन्न क्रियते ?

इस प्रकार स्वामित्वानुगम नामक प्रकरण में चौदह अधिकारों के द्वारा इक्यानवे सूत्रों की यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब ग्यारह अनुयोगद्वारों के नाम निर्देश करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इन बंधकों की प्ररूपणारूप प्रयोजन के होने पर वहाँ ये ग्यारह अनियोगद्वार ज्ञातव्य हैं।।१।।

एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, एक जीव की अपेक्षा काल, एक जीव की अपेक्षा अन्तर, नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय, द्रव्यप्ररूपणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवों की अपेक्षा काल, अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्व।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन कर्मबंध के करने वाले जीवों की प्ररूपणा का प्रयोजन होने पर इन उत्तरसूत्रों में कथित ग्यारह अनियोगद्वार होते हैं, ऐसा आप सभी भव्यात्माओं को जानना चाहिए।

शंका — अन्य अर्थों में बंधकों के रहने पर 'इन बंधकों का' इस प्रकार प्रत्यक्ष निर्देश कैसे बन सकता है ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बंधक विषयक बुद्धी से प्रत्यक्षपने की अपेक्षा करके प्रत्यक्ष निर्देश की उत्पत्ति बन जाती है।

शंका — सत्त्व अनियोगद्वार को पहले ही प्ररूपति न करके उसके साथ बारह अनियोगद्वारों से बंधकों की प्ररूपणा क्यों नहीं की जाती है ?

नैतद् वक्तव्यं, बंधकत्वेन असिद्धानां तत्सिद्धिप्ररूपणायै बंधकप्ररूपणत्वानुपपत्तेः। अतएव बंधकसत्त्व-प्ररूपणा अस्य द्वितीयखण्डग्रन्थस्य भूमिकारूपेण प्रागेव प्ररूपितास्ति, तदनंतरं एकादशानियोगद्वाराणां तेषां नामनिर्देशार्थं उत्तरसूत्रं कथितं अस्ति।

एकजीवापेक्षया स्वामित्वं, एकजीवापेक्षया कालः, एकजीवापेक्षया अंतरं, नानाजीवापेक्षया भंगविचयः, द्रव्यप्रमाणानुगमः, क्षेत्रानुगमः, स्पर्शनानुगमः, नानाजीवापेक्षया कालः, नानाजीवापेक्षया अंतरं, भागाभागा-नुगमः, अल्पबहुत्वानुगमश्चेति इमानि एकादशानियोगद्वाराणि भवन्ति। सूत्रान्तश्चशब्दः समुच्चयार्थोऽस्ति। इति शब्दः एतेषां बंधकानां प्ररूपणायां एतावन्त्येव अनियोगद्वाराणि भवन्ति नाधिकानि इति अवधारणार्थं कृतो भवति।

एकजीवेन स्वामित्वं पूर्वमेव किमर्थं उच्यते ?

न, उपरिमसर्वानियोगद्वाराणां कारणत्वेन स्वामित्वानियोगद्वारस्य अवस्थानात्। चतुर्दशमार्गणास्थानं औदयिकादिपंचसु भावेषु को भावः, कस्य मार्गणास्थानस्य स्वामी निमित्तं भवति न भवति इति स्वामित्वानियोगद्वारं प्ररूपयति। पुनः तेन भावेन उपलक्षितमार्गणायां बंधकेषु शेषानियोगद्वारप्रवृत्तेः।

शेषानियोगद्वारेषु कालः एव किमर्थं पूर्वं प्ररूप्यते ?

न, कालप्ररूपणायाः बिना अन्तरप्ररूपणानुपपत्तेः, पुनः अन्तरमेव वक्तव्यं, एकजीवसंबंधिनोऽन्यस्य अनियोगद्वारस्याभावात्।

नानाजीवसंबंधिषु शेषानियोगद्वारेषु नानाजीवापेक्षया भंगविचयः किमर्थमुच्यते ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि बंधक भाव से असिद्ध जीवों को बंधक सिद्ध करने वाली प्ररूपणा के लिए बंधक-प्ररूपणा नाम देना उपयुक्त नहीं ठहरता है। अतएव बंधक सत्त्वप्ररूपणा इस द्वितीय खण्ड के ग्रंथ की भूमिकारूप में पहले ही बतलाई जा चुकी है। उसके पश्चात् ग्यारह अनियोगद्वारों के नाम बतलाने हेतु उत्तरसूत्र कहा है।

एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, एक जीव की अपेक्षा काल, एक जीव की अपेक्षा अन्तर, नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवों की अपेक्षा काल, अन्तर, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ये ग्यारह अनियोगद्वार होते हैं। सूत्र के अंत में आया हुआ 'च' शब्द समुच्चयार्थक है और 'इन बंधकों की प्ररूपणा में इतने मात्र ही अनियोगद्वार हैं, इनसे अधिक नहीं, ऐसा निश्चय कराने के लिए सूत्र में 'इति' शब्द का प्रयोग किया गया है।

शंका—एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व का कथन सबसे पूर्व में ही क्यों किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यह स्वामित्व संबंधी अनियोगद्वार आगे के समस्त अनियोगद्वारों के कारणरूप से अवस्थित है। इसका कारण यह है कि चौदह मार्गणास्थान औदायिकादि पाँच भावों में से किस भावरूप हैं, किस मार्गणास्थान का स्वामी निमित्त होता है या नहीं होता, यह सब स्वामित्वानियोगद्वार प्ररूपित करता है, पुनः उसी भाव से उपलक्षित मार्गणा के होने पर बंधकों में शेष अनियोगद्वारों की प्रवृत्ति होती है।

शंका—शेष अनियोगद्वारों में काल ही पहले क्यों प्ररूपित किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि काल की प्ररूपणा के बिना अन्तर प्ररूपणा की उत्पत्ति नहीं बैठती। अतः अन्तर ही कहना चाहिए, क्योंकि एक जीव से संबंध रखने वाला अन्य कोई अनियोगद्वार नहीं पाया जाता।

शंका—नाना जीव संबंधी शेष अनियोगद्वारों में पहले नाना जीवों की अपेक्षा भंग विचय ही क्यों कहा जाता है ?

न, किंच—एतस्य मार्गणास्थानप्रवाहस्य विशेषः अनाद्यपर्यवसितः, एतस्य सादिसपर्यवसितः इति सामान्येनावगते शेषानियोगद्वाराणां अवतारसंभवात्। द्रव्यप्रमाणेऽनवगते क्षेत्रादि-अनियोगद्वाराणामधिगमोपायो नास्तीति द्रव्यानियोगद्वारस्य पूर्वनिवेशः कृतः। वर्तमानस्पर्शप्ररूपणायाः विना अतीत-वर्तमानस्पर्शप्ररूपक-स्पर्शनानियोगद्वाराधिगमोपायो नास्तीति क्षेत्रानियोगद्वारस्य पूर्वं निवेशः कृतः। मार्गणानां निवासक्षेत्रेऽवगते तेषां द्रव्यसंख्यायां चावगतायां पश्चात् अतीतकालस्पर्शप्ररूपणा न्यायादागता इति निवेशिता। मार्गणा-कालेऽनवगते तेषामन्तरादिप्ररूपणा न घटते इति पूर्वं कालानियोगद्वारं प्ररूपितं। कालःअंतरस्य योनिरिति कृत्वान्तरं तदनन्तरे प्ररूपितं। पुरतः उच्यमाणाल्पबहुत्वस्य साधनः इति कृत्वा भागाभागः प्ररूपितः। एतेषां पश्चात् अल्पबहुत्वानुगमः प्ररूपितः, सर्वानियोगद्वारेषु प्रतिबद्धत्वात्।

नानाजीवापेक्षया कालः नानाजीवापेक्षया भंगविचयः एतयोर्द्वयोः को विशेषः ?

नैतद् वक्तव्यं, नानाजीवेभ्यः भंगविचयस्य मार्गणानां विच्छेदाविच्छेदास्तित्वप्ररूपकस्य मार्गणानां कालान्तराभ्यां सह एकत्वविरोधात्।

इत्थं षट्खंडागमस्य द्वितीयखंडे भूमिकारूपेण बंधसत्त्वप्ररूपणां निरूप्य एकादशानियोगद्वाराणां नामानि कथयित्वा प्रथमस्वामित्वानियोगद्वारं कथयिष्यते, अत्रैव एकादशानियोगद्वाराणां क्रमोऽपि विवक्षितोऽस्ति।

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इस मार्गणास्थान के प्रवाह का एक विशेष भेद अनादि-अनंत है तथा इस मार्गणास्थान के प्रवाह का एक भेद सादि-सान्त है, ऐसा सामान्यरूप से जान लेने पर शेष अनुयोगद्वारों का अवतार संभव है। द्रव्यप्रमाण के जाने बिना क्षेत्रादि शेष अनुयोगद्वारों के जानने का उपाय नहीं है, इसलिए द्रव्यानुयोगद्वार का उनसे पहले स्थापन किया गया है। फिर उनमें भी वर्तमान स्पर्शन प्ररूपणा के बिना अतीत और वर्तमान स्पर्शन के प्ररूपक स्पर्शनानुयोगद्वारके जानने का उपाय नहीं, इसलिए क्षेत्रानुयोगद्वार का पहले निवेश किया है। मार्गणाओं संबंधी निवास क्षेत्र को जान लेने पर और उनके द्रव्यप्रमाण का भी ज्ञान हो जाने पर पश्चात् अतीतकाल संबंधी स्पर्शनप्ररूपणा न्यायगत है। इसलिए उसे पहले रखा गया है। मार्गणा संबंधी काल का जब तक ज्ञान न हो जाये, तब तक उनकी अन्तरप्ररूपणा नहीं बनती अतः उससे पूर्व कालानुयोग द्वार का प्ररूपण किया गया। काल अन्तर की योनि है, ऐसा जानकर काल के अनन्तर अन्तरानुयोगद्वार प्ररूपित किया गया। आगे कहे जाने वाले अल्पबहुत्व का साधन होने से पहले भागाभाग प्ररूपित किया गया और इन सबके पश्चात् अल्बहुत्वानुगम प्ररूपित किया गया है, क्योंकि वह पूर्ववर्ती सभी अनुयोगद्वारों से संबंद्ध है।

शंका—नाना जीवों की अपेक्षा काल और नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचय इन दोनों में क्या भेद है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि नाना जीवों की अपेक्षा भंग विचय नामक अनुयोगद्वार मार्गणाओं के विच्छेद और अविच्छेद के अस्तित्व का प्ररूपक है, अतः उसका मार्गणाओं के काल और अन्तर बतलाने वाले अनुयोगद्वारों के साथ एकत्व मानने में विरोध आता है।

इस प्रकार षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड में भूमिकारूप से बंधसत्वप्ररूपणा का निरूपण करके ग्यारह अनियोगद्वारों के नाम बतलाकर प्रथम स्वामित्व अनियोगद्वार का कथन करेंगे, यहाँ ग्यारह अनियोगद्वारों का क्रम भी विवक्षित है।

अधुना स्वामित्वानियोगद्वारकथनाय प्रतिज्ञासूत्रमवतरति —

एयजीवेण सामित्तं।।३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका —**'यथा उद्देशः तथा निर्देशः' इति न्यायानुसरणार्थं एकजीवापेक्षया बंधकर्तृणां जीवानां स्वामित्वं कथयिष्यन्ति आचार्यदेवाः।**

अथ गतिमार्गणाधिकारः

संप्रति गतिमार्गणायां नरकगतिजीवानां स्वामित्वनिरूपणाय सूत्रद्वयं अवतार्यते —

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरईओ णाम कधं भवदि ?।।४।।

णिरयगदिणामाए उदएण।।५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका —**गत्यनुवादेन नरकगतौ नारको जीवः केन कारणेन भवति ? इति पृच्छासूत्रमिदं वर्तते।**

एतत्पृच्छासूत्रं किन्निबंधनं अस्ति ?

एतत्सूत्रं नयसमूहस्याधारेण रचितं अस्ति। यदि एक एव नयो भवेत् तर्हि संदेहोऽपि नोत्पद्येत, किंतु नयाः बहवः सन्ति तेन संदेहः समुत्पद्यते। कस्य नयस्य विषयमाश्रित्य स्थितनारकः अत्र परिगृहीतोऽस्ति ? अतएव नयानामभिप्रायोऽत्र उच्यते। तद्यथा —

अब स्वामित्व अनियोगद्वार का कथन करने हेतु प्रतिज्ञासूत्र अवतरित हो रहा है —

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व की प्ररूपणा की जाती है।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — "जैसा उद्देश्य होता है उसी के अनुसार निर्देश किया जाता है" इस न्याय का अनुसरण करने के लिए एक जीव की अपेक्षा बंध करने वाले जीव के स्वामित्व का वर्णन आचार्यदेव करेंगे।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

अब गतिमार्गणा में नरकगति के जीवों के स्वामित्व का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

गतिमार्गणानुसार नरकगति में नारकी जीव किस कारण से होते हैं ?।।४।।

नरकगति नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव नारकी होते हैं।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकी जीव किस कारण से उत्पन्न होते हैं ? ऐसा यह पृच्छासूत्र है।

शंका — यह प्रश्नात्मक सूत्र किस आधार से रचा गया है ?

समाधान — यह प्रश्नात्मक सूत्र नयसमूह के आधार से रचा गया है। यदि एक ही नय होता, तो कोई संदेह भी उत्पन्न नहीं होता। किन्तु नय अनेक हैं इसलिए संदेह उत्पन्न होता है कि किस नय के विषय का आश्रय लेकर स्थित नारकी जीव का यहाँ ग्रहण किया गया है ? यहाँ पर नयों का अभिप्राय बतलाते हैं। वह इस प्रकार है —

कमपि पापजनसमागमं क्रियमाणं नरं दृष्ट्वा नैगमनयेन भण्यते यत् एषः पुरुषः नारकः इति। यदा कश्चित् पुरुषः कोदण्डकांडगृहीतहस्तः मृगानां मृग्यमाणः भ्रमति तदा व्यवहारनयेन कथ्यते—सः नारको भवति। ऋजुसूत्रनयस्य वचनं—यदा आखेटस्थाने स्थित्वा कश्चित् मृगं हन्ति पापी तदा स भवति नारकः। शब्दनयस्य वचनं—यदा जंतु प्राणेभ्यः वियोजितः तदा सः हिंसाकर्मणा संयुक्तः नारकी भवति। समभिरूढनयं एवं भणति—यदा कश्चित् नरकगतिकर्मबंधकः तदा नारककर्मणा संयुक्तः सः नारको भवति। यदा स एव मनुष्यः तिर्यङ् वा नरकगतिं संप्राप्य नरकगतौ दुःखं अनुभवति तदैव स नारको जीवो भवति एवं एवंभूतो नयो निगदति।

एतत् सर्वनयविषयं नारकसमूहं बुद्ध्या कृत्वा नारको नाम कथं भवतीति पृच्छा कृता अस्मिन् सूत्रे इदं ज्ञातव्यं।

अथवा नाम-स्थापना-द्रव्य-भावभेदेन नारकाः चतुर्विधा भवन्ति। 'नारकशब्दः' नामनारको भवति। 'सः एषः' इति बुद्ध्या अर्पितस्य अर्पितेन एकत्वं कृत्वा सद्भावासद्भावस्वरूपेण स्थापितं स्थापनानारकी भवति। नारकप्राभृतज्ञायकोऽनुपयुक्तः आगमद्रव्यनारकी। अनागमद्रव्यनारकस्त्रिविधः-ज्ञायकशरीर-भावि-तद्व्यतिरिक्तभेदेन। ज्ञायकशरीरं भावि नारको ज्ञातः। तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यनारको द्विविधः-कर्मनोकर्मभेदेन। कर्मनारको नाम नरकगतिसहगतकर्मद्रव्यसमूहः। पाशपंजरयंत्रादीनि नोकर्मद्रव्याणि नारकभावकारणानि नोकर्मद्रव्यनारको नाम। नारकप्राभृतज्ञायकः उपयुक्तः आगमभावनारको नाम। नरकगतिनामकर्मप्रकृत्युदयेन नरकभावमुपगतः नोआगमभावनारको नाम। एतन्नारकसमूहं बुद्ध्या कृत्वा नारको नाम कथं भवति इति पृच्छा कृता।

किसी मनुष्य को पापी लोगों का समागम करते हुए देखकर नैगम नय से कहा जाता है कि यह पुरुष नारकी है। जब वह मनुष्य धनुष बाण हाथ में लेकर मृगों को ढूंढता हुआ भ्रमण करता है। तब व्यवहारनय से कहते हैं कि नारकी है। ऋजुसूत्र नय का वचन है कि जब कोई आखेट—शिकार स्थान में स्थित होकर मृगों पर आघात करता है तब वह नारकी कहलाता है। शब्दनय का वचन है कि जब जन्तु को प्राणों से रहित कर देता है, तब वह हिंसा कर्म से सहित नारकी कहलाता है। समभिरूढ़ नय का वचन इस प्रकार है, जब कोई जीव नरकगति नाम कर्म का बंध करके नारक कर्म से संयुक्त हो जाता है, तभी वह नारकी कहा जाता है। जब वही मनुष्य या तिर्यंच जीव नरकगति को प्राप्त होकर नरक के दुःख अनुभव करने लगता है, तभी वह नारकी है, ऐसा एवंभूत नय कहता है।

इन समस्त नयों के विषयभूत नारकी समूह का बुद्धि से विचार करके ही 'नारकी जीव किस प्रकार होता है', यह प्रश्न किया गया है। ऐसा इस सूत्र में जानना चाहिए।

अथवा नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव के भेद से नारकी चार प्रकार के होते हैं। "नारकी शब्द" नाम नारकी होता है। 'वह यह है' ऐसा बुद्धि से विवक्षित नारकी का विवक्षित बुद्धि के साथ एकत्व करके सद्भाव और असद्भाव स्वरूप से स्थापित करना स्थापना नारकी कहलाता है। नारकी संबंधी प्राभृत का जानने वाला किन्तु उसमें अनुपयुक्त जीव आगम द्रव्य नारकी है। ज्ञायक शरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्त के भेद से अनागम द्रव्य नारकी तीन प्रकार का है। ज्ञायक शरीर और भावि ज्ञात हैं। कर्म और नोकर्म के भेद से तद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य नारकी दो प्रकार का है। नरकगति नामकर्म के साथ प्राप्त हुए कर्मद्रव्य समूह को कर्म नारकी कहते हैं। पाश, पंजर, यंत्र आदि नोकर्मद्रव्य जो नारक भाव की उत्पत्ति में कारणभूत होते हैं, वे नोकर्म द्रव्य नारकी हैं। नारकियों संबंधी प्राभृत का जानकर और उसमें उपयोग रखने वाला जीव आगम भाव नारकी है। नरकगति नामकर्म की प्रकृति के उदय से नरकावस्था को प्राप्त हुआ जीव नोआगम भाव नारकी है। इस नारकी समूह का विचार करके 'नारकी जीव किस प्रकार होता है' यह प्रश्न किया गया है।

अथवा नारको नाम जीवः किमौदयिकेन भावेन, किमौपशमिकेन, किं क्षायिकेण, किं क्षायोपशमिकेन, किं पारिणामिकेन भावेन भवतीति बुद्ध्या कृत्वा नारको नाम कथं भवतीति पृच्छासूत्रमवतीर्णं ।

अस्यैव संदेहस्य निराकरणार्थं उत्तरसूत्रमवतीर्णमस्ति।

एवंभूतनयविषयेण औदयिक-नोआगमभावनिक्षेपेण नरकगतिनामकर्मणः उदयेन नारको जीवो भवति इति ज्ञातव्यं।

संप्रति तिर्यग्गतिजीवानां स्वामित्वप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भवदि ?।।६।।

तिरिक्खगदिणामाए उदएण।।७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्रापि नयान् निक्षेपान् औदयिकादिपंचविधभावांश्चाश्रित्य पूर्वमिव संदेहस्योत्पत्तिं निरूप्य समाधानं विधेयं। तिर्यग्गतिनामकर्मोदयेन उत्पन्नपर्यायपरिणते जीवे तिर्यगभिधानव्यवहार-प्रत्यययोरुपलंभात्।**

संप्रति मनुष्यगतिस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुसगदीए मणुसो णाम कधं भवदि ?।।८।।

मणुसगदिणामाए उदएण।।९।।

अथवा, 'क्या नारकी औदायिक भाव से होता है, क्या औपशमिक भाव से, क्या क्षायिकभाव से, क्या क्षायोपशमिक भाव से अथवा क्या पारिणामिक भाव से होता है ? ऐसा बुद्धि से विचार कर 'नारकी जीव किस प्रकार होता है ? यह पृच्छा सूत्र अवतीर्ण हुआ है। इस संदेह को दूर करने के लिए आचार्य ने अगला सूत्र कहा है।

एवंभूत नय के विषयरूप औदयिक नोआगमभाव निक्षेप के द्वारा नरकगतिनामकर्म के उदय से नारकी जीव होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब तिर्यंचगति के जीवों का स्वामित्व बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में जीव तिर्यंच किस कारण से होता है ?।।६।।

तिर्यंचगति नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव तिर्यंच होता है।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी नय, निक्षेप और औदायिकादि पाँच प्रकार के भावों का आश्रय लेकर पूर्वोक्त विधि के समान संदेह की उत्पत्ति का प्ररूपण करके समाधान करना चाहिए। क्योंकि तिर्यंचगति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न हुई पर्याय से परिणत जीव के तिर्यंच संज्ञा का व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है।

अब मनुष्यगति के जीवों का स्वामित्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में जीव मनुष्य किस कारण से होता है ?।।८।।

मनुष्यगति नामप्रकृति के उदय से जीव मनुष्य होता है।।९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्रापि पूर्ववत् नयनिक्षेपादिभिः संदेहोत्पत्तिः प्ररूपयितव्या। मनुष्यगतिनाम-कर्मोदयजनितपर्यायपरिणतजीवे मनुष्याभिधानव्यवहार-प्रत्यययोरुपलंभात्।**

देवगतिस्वामित्वनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवगदीए देवो णाम कधं भवदि ?।।१०।।

देवगदिणामाए उदएण।।११।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**देवगतिनामकर्मोदयजनिताणिमादिपर्यायपरिणतजीवे देवाभिधानव्यवहार-प्रत्यययोरुपलंभात्।**

अतो विशेषःउच्यते—नरकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतयो यदि केवलाः उदयमागच्छन्ति तर्हि नरकगत्युदयेन नारकः, तिर्यग्गत्युदयेन तिर्यङ्, मनुष्यगत्युदयेन मनुष्यः, देवगत्युदयेन देवः इति वक्तुं युक्तं, किंतु अन्याः अपि प्रकृतयः तत्र उदयमागच्छन्ति ताभिर्विना नरकतिर्यङ्मनुष्यदेव-गतिनाम्नां उदयानुपलंभात्।

तद्यथा—नारकाणां पंच उदयस्थानानि भवन्ति—एकविंशति-पंचविंशति-सप्तविंशति-अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशदिति। २१-२५-२७-२८-२९। तत्र एकविंशति प्रकृत्युदयस्थानमुच्यते—नरकगति पंचेन्द्रियजाति-तैजसकार्मणशरीरवर्णगंधरसस्पर्श-नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्ति-निर्माणनामानि इति एतावतीः प्रकृतीः गृहीत्वा एकविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। अत्रभंगःएक एव (१) ।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी पहले के समान नय-निक्षेपादिरूप से संदेह की उत्पत्ति का प्ररूपण करके समाधान करना चाहिए, क्योंकि मनुष्यगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई पर्याय से परिणत जीव के मनुष्य संज्ञा का व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है।

अब देवगति का स्वामित्व निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

देवगति में जीव देव किस कारण से होता है ?।।१०।।

देवगति नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव देव होता है।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि देवगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई अणिमादिक पर्याय से परिणत जीव के देव संज्ञा का व्यवहार और ज्ञान पाया जाता है।

अब यहाँ विशेष कहते हैं—नरक, तिर्यंच मनुष्य और देव में गतियाँ यदि केवल उदय में आती हो, तो नरक गति के उदय से नारकी, तिर्यंचगति के उदय से तिर्यंच, मनुष्यगति के उदय से मनुष्य और देवगति के उदय से देव होता है, ऐसा कहना उचित है। किन्तु अन्य प्रकृतियाँ भी वहाँ उदय में आती हैं, जिनके बिना नरक, तिर्यंच मनुष्य और देवगति नामकर्मों का उदय पाया नहीं जाता है।

वह इस प्रकार है—नारकी जीवों के पाँच उदय स्थान होते हैं—ये इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस (२१, २५, २७, २८, २९) प्रकृतियों संबंधी हैं। इनमें इक्कीस प्रकृतियों के उदयस्थान को कहते हैं। वह इस प्रकार है—१. नरकगति, २. पंचेन्द्रियजाति, ३. तैजस शरीर, ४. कार्मणशरीर, ५. वर्ण, ६. गंध, ७. रस, ८. स्पर्श, ९. नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, १०. अगुरुलघुक, ११. त्रस, १२. बादर, १३. पर्याप्त, १४. स्थिर, १५. अस्थिर, १६. शुभ, १७. अशुभ, १८. दुर्भग, १९. अनादेय, २०. अयशकीर्ति और २१. निर्माण, नाम वाली प्रकृतियों को लेकर इक्कीस प्रकृतियों संबंधी पहला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग एक ही हुआ।

इदमुदयस्थानं कस्य भवति ?

विग्रहगतौ वर्तमानस्य नारकस्य भवति।

तत्कियच्चिरं कालं भवति ?

जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण द्वौ समयौ।

तत्र नारकाणां इदं पंचविंशतिप्रकृतिस्थानं। एता एव प्रकृतयः। केवलं आनुपूर्विप्रकृतिमपनीय वैक्रियिकशरीर-हुंडकसंस्थान-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-उपघात-प्रत्येकशरीरनामानि पूर्वोक्तप्रकृतिषु प्रक्षिप्ते पंचविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति।

एतत्स्थानं कस्य भवति ?

शरीरगृहीतनारकस्य भवति।

तत् कियच्चिरं कालं भवति ?

शरीरं गृहीतप्रथमसमयमादिं कृत्वा यावत् शरीरपर्याप्त्यपूर्णचरमसमय इति अंतर्मुहूर्तमिति उक्तं भवति। भंगौ अपि पूर्वोक्तभंगेन सह द्वौ (२) ।

परघातमप्रशस्तविहायोगतिं च पूर्वोक्तपंचविंशतिप्रकृतिषु प्रक्षिप्ते सप्तविंशतिप्रकृतीनामुदयस्थानं भवति।

तत् कदा भवति ?

शरीरपर्याप्तिनिर्वर्तितप्रथमसमयमादिं कृत्वा यावदानापानपर्याप्त्यपूर्णचरमसमय इति एतस्मिन् काले भवति।

शंका — यह इक्कीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान — विग्रहगति में विद्यमान नारकी जीव के यह इक्कीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका — यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान — यह उदयस्थान कम से कम एक समय और अधिक से अधिक दो समय तक रहता है।

उन नारकियों का यह पच्चीस प्रकृतियों वाला दूसरा उदयस्थान है, उस स्थान में यही प्रकृतियाँ हैं। इतनी विशेषता है कि पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियों में से नरकगति आनुपूर्वी को छोड़कर वैक्रियिक शरीर, हुण्डकस्थान, वैक्रियिकशरीराङ्गोपाङ्ग, उपघात और प्रत्येक शरीर इन पाँच प्रकृतियों को मिला देने से पच्चीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका — यह पच्चीस प्रकृतियों वाला उदय स्थान किसके होता है ?

समाधान — जिस नारकी जीव ने शरीर ग्रहण कर लिया है, उसके यह पच्चीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका — यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान — शरीरग्रहण करने के प्रथम समय से लेकर शरीरपर्याप्ति अपूर्ण रहने के अंतिम समय पर्यन्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त काल तक यह उदयस्थान रहता है। पूर्वोक्त एक भंग के साथ अब दो भंग (२) हो गये।

पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियों में परघात तथा अप्रशस्तविहायोगति मिला देने पर सत्ताईस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका — यह सत्ताईस प्रकृतियों वाला उदयस्थान किस काल में होता है ?

समाधान — शरीरपर्याप्ति रचित हो जाने के प्रथम समय से लेकर आनप्राणपर्याप्ति — स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति के अपूर्ण रहने के अंतिम समय पर्यन्त इस काल में यह सत्ताईस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

तत् कियच्चिरं ?

जघन्येनोत्कर्षेणापि अन्तर्मुहूर्तं। अत्र भंगसमासः त्रयः सन्ति (३)।

पूर्वोक्तसप्तविंशतिप्रकृतिषु उच्छ्वासप्रकृतिप्रक्षिप्ते अष्टाविंशतिप्रकृतीनामुदयस्थानं भवति।

एतत्स्थानं कुत्र भवति ?

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तप्रथमसमयमादिं कृत्वा यावत् भाषापर्याप्तेरपूर्णचरमसमय इति एतस्मिन् काले इदं स्थानं भवति।

तत् कियच्चिरं ?

जघन्येनोत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तं। अत्र भंगसमासश्चत्वारः (४)।

पूर्वोक्ताष्टाविंशतिप्रकृतिषु दुःस्वरे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामुदयस्थानं भवति। एतदपि भाषापर्याप्तेः पर्याप्तकस्य प्रथमसमयमादिं कृत्वा यावत् स्वस्वात्मनः आयुःस्थितिचरमसमयः इति एतस्मिन् काले भवति।

एतत् कियच्चिरं ?

जघन्येन दशवर्षसहस्राणि अंतर्मुहूर्तोनानि, उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तोनत्रिंशत्सागरोपमाणि। अत्र भंगसमासः पंच (५)।

एवं नरकगतौ स्थितनारकाणां उदयस्थानं नामकर्मणां कथितं ।

तिर्यग्गतौ एकविंशति-चतुर्विंशति-पंचविंशति-षड्विंशति-सप्तविंशति-अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशत्-

---

शंका — वह कितने काल तक होता है ?

समाधान — जघन्य और उत्कृष्ट रूप से अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है। यहाँ तक के सब भंगों का जोड़ तीन (३) हुआ।

पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियों में उच्छ्वास को मिला देने पर अट्ठाईस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका — यह अट्ठाईस प्रकृतियों वाला उदयस्थान किस काल में होता है ?

समाधान — आनप्राणपर्याप्ति के पूर्ण हो जाने के प्रथम समय से लेकर भाषापर्याप्ति अपूर्ण रहने के अंतिम समय तक इस काल में होता है।

शंका — वह कितने काल तक होता है ?

समाधान — जघन्य और उत्कृष्टरूप से अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है।

यहाँ तक के सब भंगों का जोड़ चार (४) हुआ।

पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों में दुस्वर को मिला देने पर उनतीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है। यह भी भाषापर्याप्ति पूर्ण करने के प्रथम समय से लेकर अपनी-अपनी आयु स्थिति के अंतिम समय पर्यन्त के काल में होता है।

शंका — यह कितने काल तक होता है ?

समाधान — जघन्य से अन्तर्मुहूर्त कम दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है। यहाँ तक सब भंगों का योग पाँच (५) हुआ।

इस प्रकार नरकगति में स्थित नारकियों के उदयस्थान नामकर्म को कहा गया है।

तिर्यंचगति में इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस ये

त्रिंशत्-एकत्रिंशत् इति नव उदयस्थानानि।।२१।२४।२५।२६।२७।२८।२९।३०।३१।

संप्रति सामान्येन एकेन्द्रियाणां एकविंशति-चतुर्विंशति-पंचविंशति-षड्विंशति-सप्तविंशति-इति पंचोदयस्थानानि।

आतपोद्योतयोरनुदयेन एकेन्द्रियस्य सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानेन विना चत्वारि उदयस्थानानि। आतपोद्योतयोरुदयेन सहितेन एकेन्द्रियस्य पंचविंशतिस्थानेन विना चत्वारि उदयस्थाननि भवन्ति। तत्र आतपोद्योतयोरुदयविरहितैकेन्द्रियस्य भण्यमाने तिर्यग्गति-एकेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-स्थावर प्रकृतयः, बादर-सूक्ष्मयोरेकतरं पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरं स्थिरास्थिरं शुभाशुभं दुर्भगं अनादेयं यशःकीर्ति-अयशःकीर्त्योरेकतरं निर्माणं एतासां एकविंशतिप्रकृतीनां उदयः विग्रहगतौ वर्तमानस्य एकेन्द्रियस्य भवति।

कियच्चिरं भवति ?

जघन्येन एकसमयः उत्कर्षेण त्रयः समयाः। अत्र अक्षपरावर्तं कृत्वा भंगा उत्पादयितव्या। तत्र अयशःकीर्त्युदयेन चत्वारो भंगाः। यशःकीर्त्युदयेन एकश्चैव, सूक्ष्मापर्याप्ताभ्यां सह यशःकीर्त्तेरुदयाभावात्। यशःकीर्त्या सह सूक्ष्मापर्याप्तयोरुदयाभावात् वा। तेनात्र भंगाः पंचैव भवन्ति (५)।

पूर्वोक्तैकविंशतिप्रकृतिषु आनुपूर्विप्रकृतिमपनीय औदारिक शरीरं, हुंडकसंस्थानं, उपघातं-प्रत्येक-साधारणशरीरयोरेकतरं प्रक्षिप्ते चतुर्विंशतिप्रकृतीनां उदयस्थानं भवति।

तत्कुत्र भवति ?

नौ उदयस्थान होते हैं (२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१)।

अब सामान्यतः एकेन्द्रिय जीवों के इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईय ये पाँच उदयस्थान होते हैं।

आतप और उद्योत इन दो प्रकृतियों के उदय के बिना एकेन्द्रिय जीव के सत्ताईस प्रकृतियों वाले स्थान से रहित शेष चार उदयस्थान होते हैं। आतप और उद्योत के उदय सहित एकेन्द्रिय जीव के पच्चीस प्रकृतियों वाले स्थान से रहित शेष चार उदयस्थान होते हैं। उनमें आतप और उद्योत से रहित एकेन्द्रिय जीव के उदयस्थान कहने पर तिर्यंचगति[१], एकेन्द्रियजाति[२], तैजस[३] और कार्मणशरीर[४], वर्ण[५], रस[६], गंध[७], स्पर्श[८], तिर्यंचगति-प्रायोग्यानुपूर्वी[९], अगुरुलघु[१०], स्थावर[११], बादर और सूक्ष्म इन दोनों में से कोई एक प्रकृति[१२], पर्याप्ति और अपर्याप्त में से कोई एक [१३]स्थिर[१४] और अस्थिर[१५], शुभ[१६] और अशुभ[१७] दुर्भग[१८], अनादेय[१९], यशकीर्ति और अयशकीर्ति में से कोई एक[२०] और निर्माण[२१], इन इक्कीस प्रकृतियों का उदय विग्रहगति में वर्तमान एकेन्द्रिय जीव के होता है।

शंका — यह इक्कीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

समाधान — जघन्यतः एक समय और उत्कृष्ट से तीन समय तक यह उदयस्थान रहता है। यहाँ अक्षपरावर्तन करके भंग निकालना चाहिए। उनमें अयशकीर्ति के उदय के साथ (बादर-सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त के विकल्प से) चार भंग होते हैं। यशकीर्ति के उदय के साथ एक ही भंग होता है, क्योंकि सूक्ष्म और अपर्याप्त के साथ यशकीर्ति के उदय का अभाव है, अथवा यों कहो कि यशकीर्ति के साथ सूक्ष्म और अपर्याप्त प्रकृतियों का उदय नहीं होता है। इस कारण इस उदयस्थान में पाँच ही (५) भंग होते हैं।

पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियों में से आनुपूर्वी को छोड़कर औदारिकशरीर, हुंडकसंस्थान, उपघात तथा प्रत्येक और साधारण शरीरों में से कोई एक इन चार को मिला देने पर चौबीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान हो जाता है।

शंका — यह चौबीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान कहाँ होता है ?

गृहीतशरीरप्रथमसमयादारभ्य यावत् शरीरपर्याप्तेः अपूर्णचरमसमयः इति एतस्मिन् स्थाने भवति।

कियच्चिरं एतत्स्थानं ?

जघन्येनोत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तं। अत्र अयशःकीर्त्युदयेन सह अष्टौ भंगाः। यशःकीर्त्या उदयेन एकश्चैव।

कुतः ?

यशःकीर्त्या सह सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां उदयाभावात्। तेन सर्वभंगसमासो नव (९) ।

पुनः अपर्याप्तमपनीय शेषचतुर्विंशतिप्रकृतिषु परघाते प्रक्षिप्ते पंचविंशतिप्रकृतीनामुदयस्थानं भवति। अत्र भंगा अयशःकीर्त्युदयेन चत्वारः। अपर्याप्तप्रकृतेरुदयाभावात्। यशःकीर्त्युदयेन एकश्चैव। तेन सर्वभंग-समासः पंच (५) । एतत्स्थानं शरीरपर्याप्तिगत प्रथमसमयमादिं कृत्वा यावत् आनापानपर्याप्तेः अपूर्णचरमसमयः इति। जघन्येनोत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तं। तस्यैव आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य पूर्वोक्तपंचविंशतिप्रकृतिषु उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते षड्विंशतिप्रकृतीनामुदयस्थानं भवति।

एतत्कस्य ?

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य ।

कियच्चिरं ?

समाधान—शरीरग्रहण करने के प्रथम समय से लेकर शरीरपर्याप्ति अपूर्ण रहने के अंतिम समय तक के स्थान में यह उदयस्थान होता है।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक होता है ?

समाधान—जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है। यहाँ अयशकीर्ति के उदयसहित (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक साधारण के विकल्प से) आठ भंग होते हैं। यशकीर्ति के उदयसहित एक ही भंग है।

प्रश्न—ऐसा क्यों ?

उत्तर—क्योंकि यशकीर्ति के साथ सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इन प्रकृतियों का उदय नहीं होता। इस प्रकार इस स्थान में सब भंगों का योग नौ (९) हुआ।

पूर्वोक्त उदयस्थान की प्रकृतियों में से अपर्याप्त को छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियों में परघात को मिला देने पर पच्चीस प्रकृतियों वाला उदय स्थान होता है। यहाँ पर अयशकीर्ति के उदय के साथ (बादर-सूक्ष्म और प्रत्येक साधारण के विकल्प से) चार भंग होते हैं, क्योंकि यहाँ पर अपर्याप्त का उदय नहीं होता। यशकीर्ति के उदयसहित पूर्ववत् एक ही भंग होता है। इससे भंगों का योग पाँच (५) हुआ। शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के प्रथम समय से लेकर आनप्राणपर्याप्ति अपूर्ण रहने के अंतिम समय तक के स्थान में यह उदयस्थान होता है। जघन्य और उत्कृष्ट से इस उदयस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है। स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए उसी जीव के पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियों में उच्छ्वास के मिला देने पर छब्बीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका—यह छब्बीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान—स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए एकेन्द्रिय जीव के यह छब्बीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक रहता है ?

जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण अंतर्मुहूर्तोन-द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि। अत्र भंगाः पूर्ववत् पंचैव भवन्ति (५)। अत्रपर्यंतं आतपोद्योतविरहितैकेन्द्रियस्य उदयस्थानानि कथितानि।

अधुना आतपोद्योतयोरुदयसहितस्यैकेन्द्रियस्य उच्यते — एकविंशतिचतुर्विंशतिप्रकृतिउदयस्थानयोः पूर्ववत् प्ररूपणा कर्तव्या। केवलं द्वयोः अपि उदयस्थानयोः यशःकीर्त्ययशःकीर्त्युदयेन द्वौ द्वौ एव भंगौ भवतः। किंच एषां जीवानां आतपोद्योतोदयभाविनौ स्तः, तेषां सूक्ष्मापर्याप्तसाधारणानां उदयाभावात्। पुनः एतौ द्वौ भंगौ पूर्वोक्तैकविंशति-चतुर्विंशतिप्रकृति-उदयस्थानयोः भंगेषु लभ्येते इति तौ अपनेतव्यौ।

पुनः शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तकस्य परघाते आतपोद्योतयोरेकतरं च पूर्वोक्तचतुर्विंशतिप्रकृतिषु प्रक्षिप्ते पंचविंशतिप्रकृतिस्थानमुल्लंघ्य षड्विंशतिप्रकृतिस्थानमुत्पद्यते।

एतत्स्थानं कस्य ?

शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य।

कियच्चिरं भवति ?

जघन्येनोत्कर्षेणापि अंतर्मुहूर्तं। अत्र भंगाश्चत्वारो भवन्ति। एते चत्वारो भंगाः प्रथमषड्विंशतिभंगेषु प्रक्षिप्ते नव भंगाः भवन्ति। तस्यैव आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य षड्विंशतिप्रकृतिषु उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते सप्तविंशतिप्रकृतीनामुदयस्थानं भवति। अत्र भंगाश्चत्वारश्चैव।

समाधान — जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त से कम बाईस हजार वर्ष तक यह उदयस्थान रहता है। यहाँ भंग पूर्ववत् पाँच ही (५) होते हैं।

यहाँ तक आतप और उद्योत से रहित एकेन्द्रिय जीवों के उदयस्थान कहे गये हैं।

अब आतप और उद्योत नामकर्म की प्रकृतियों के साथ होने वाले एकेन्द्रिय के उदयस्थानों को कहते हैं — इनमें इक्कीस और चौबीस प्रकृतियों वाले उदयस्थानों की पूर्ववत् प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि उक्त दोनों उदयस्थानों के यशकीर्ति और अयशकीर्ति प्रकृतियों के उदय सहित केवल दो-दो ही भंग होते हैं, क्योंकि जिन जीवों के आतप और उद्योत का उदय होने वाला है, उनके सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर इन प्रकृतियों का उदय नहीं होता है। किन्तु ये दो-दो भंग पूर्वोक्त इक्कीस व चौबीस प्रकृति संबंधी उदयस्थानों में पाये जाते हैं। अतः उन्हें निकाल देना चाहिए।

पुनः शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के परघात तथा आतप और उद्योत इन दोनों में से कोई एक, इस प्रकार दो प्रकृतियों को पूर्वोक्त चौबीस प्रकृतियों में मिला देने पर पच्चीस प्रकृतियों वाले उदयस्थान का उल्लंघन कर छब्बीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान उत्पन्न होता है।

शंका — यह छब्बीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान किसके होता है ?

समाधान — शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए एकेन्द्रिय जीव के होता है।

शंका — यह छब्बीस प्रकृतियों वाले उदयस्थान का समय कितना है ?

समाधान — जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल है। यहाँ यशकीर्ति-अयशकीर्ति तथा आतप-उद्योत के विकल्प से चार भंग है। इन चार भंगों को प्रथम छब्बीस प्रकृतियों वाले उदयस्थान संबंधी पाँच भंगों में मिला देने पर नौ भंग होते हैं। स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए उसी एकेन्द्रिय जीव के उक्त छब्बीस प्रकृतियों में उच्छ्वास को मिला देने पर सत्ताईस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है। यहाँ यशकीर्ति-अयशकीर्ति और आतप-उद्योत के विकल्प से चार ही भंग हैं।

एवं समस्तानामेकेन्द्रियाणां सर्वभंगसमासः द्वात्रिंशत् भवन्ति (३२)।

अधुना विकलत्रयजीवानां उदयस्थानं कथ्यते—

विकलेन्द्रियाणां सामान्येन एकविंशति-षड्विंशति-अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशत्-त्रिंशत्-एकत्रिंशदिति षडुदयस्थानानि। २१।२६।२८।२९।३०।३१।

उद्योतोदयविरहितविकलेन्द्रियस्य पंचैवोदयस्थानानि भवन्ति। एकत्रिंशत्प्रकृत्युदयस्थानाभावात्। उद्योतोदयसंयुक्तविकलेन्द्रियस्यापि पंचैवोदयस्थानानि, परघातोद्योताप्रशस्तविहायोगतीनामक्रमप्रवेशेण अष्टाविंशतिस्थानानुपपत्तेः।

विकलेन्द्रियेषु तावत् उद्योतोदयविरहितद्वीन्द्रियस्य उदयस्थानान्युच्यते—एकविंशतिउदयस्थानं—तिर्यग्गति-द्वीन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-त्रसबादराः पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरं, स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेयाः, यशःकीर्त्ययशःकीर्त्योरेकतरं, निर्माणनाम चैतासां प्रकृतीनां एकं स्थानं भवति।

एकविंशतिस्थानं कस्येदं ?

विग्रहगतौ वर्तमानस्य द्वीन्द्रियस्येति।

तत् कियच्चिरं ?

जघन्येन एकसमयः, उत्कर्षेण द्वौ समयौ। यशःकीर्त्युदयेन सह एको भंगः, अपर्याप्तोदयेन सह यशःकीर्तेरुदयाभावात्। अयशःकीर्त्युदयेन सह द्वौ भंगौ, पर्याप्तापर्याप्तयोरुदयाभ्यां सह अयशःकीर्त्युदयस्य

समस्त एकेन्द्रिय जीवों के उदयस्थान संबंधी भंगों का योग बत्तीस (३२) होता है।

अब विकलत्रय जीवों के उदयस्थान कहते हैं—विकलेन्द्रिय जीवों के सामान्यतः इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृतियों के संबंध से छह उदयस्थान होते हैं। २१, २६, २८, २९, ३०, ३१।

उद्योत के उदय से रहित विकलेन्द्रिय जीव के पाँच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि उनके इकतीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान नहीं होता। उद्योत के उदय सहित विकलेन्द्रिय के भी पाँच ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि उसके परघात, उद्योत और प्रशस्त विहायोगति इन तीन प्रकृतियों का एक साथ प्रवेश होने के कारण अट्ठाईस प्रकृतियों वाले उदयस्थान की उत्पत्ति नहीं बनती है।

अब विकलेन्द्रियों में पहले उद्योतोदय से रहित द्वीन्द्रिय जीव के उदयस्थान कहते हैं, उनमें यह इक्कीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान है—तिर्यंचगति[१], द्वीन्द्रिय जाति[२], तैजस[३] और कार्मणशरीर[४], वर्ण[५], गंध[६], रस[७], स्पर्श[८], तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी[९], अगुरुलघु[१०], त्रस[११], बादर[१२], पर्याप्त और अपर्याप्त में से कोई एक[१३] स्थिर[१४], अस्थिर[१५], शुभ[१६], अशुभ[१७], दुर्भग[१८], अनादेय[१९], यशकीर्ति और अयशकीर्ति में से कोई एक[२०] और निर्माण[२१] इन इक्कीस प्रकृतियों का एक उदयस्थान होता है।

शंका—यह इक्कीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान किस जीव के होता है ?

समाधान—यह उदयस्थान विग्रहगति में वर्तमान द्वीन्द्रिय जीव के होता है।

शंका—यह उदयस्थान कितने काल तक होता है ?

समाधान—जघन्य से एक समय उत्कृष्ट से दो समय तक रहता है। यशकीर्ति के उदय के साथ एक ही भंग होता है, क्योंकि अपर्याप्तप्रकृति के उदय के साथ यशकीर्ति का उदय नहीं होता है। अयशकीर्ति के

संभवोपलंभात्। अत्र सर्वभंगसमासः त्रयः (३)।

एतासु एकविंशतिप्रकृतिषु आनुपूर्विप्रकृतिमपनीय गृहीतशरीरप्रथमसमये औदारिकशरीर-हुंडकसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-उपघात-प्रत्येकशरीरप्रकृतिप्रक्षिप्तेषु षड्विंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। अत्र भंगसमासस्त्रयः(३)।

शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य पूर्वोक्तप्रकृतिषु अपर्याप्तमपनीय परघाताप्रशस्तविहायोगत्योः प्रक्षिप्तयोः अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। अत्र यशःकीर्त्युदयेन एको भंगः, अयशःकीर्त्युदयेनापि एक एव, प्रतिपक्षप्रकृतीनामभावात्। अत्र सर्वभंगौ द्वौ एव (२)।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य पूर्वोक्तप्रकृतिषु उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। अत्रापि भंगौ द्वौ एव (२)। भाषापर्याप्तेः पर्याप्तकस्य पूर्वोक्तप्रकृतिषु दुःस्वरे प्रक्षिप्ते त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। अत्र भंगौ द्वौ चैव (२)।

संप्रति उद्योतोदयसंयुक्तद्वीन्द्रियस्य भण्यमाने एकविंशति-षड्विंशतिप्रकृतिस्थाने यथा पूर्वं कथिते तथा वक्तव्ये। पुनः षड्विंशतिप्रकृतिस्थानस्योपरि परघातोद्योताप्रशस्तविहायोगतिषु प्रक्षिप्तासु एकोनत्रिंशत्प्रकृतेः स्थानं भवति। यशःकीर्त्युदयेन एको भंगः, अयशःकीर्त्युदयेन एकः। अत्र भंगसमासःद्वौ (२)।

पुनः एतयोर्द्वयोः प्रथमैकोनत्रिंशत्प्रकृतिकोदयस्थानसंबंधिद्वयभंगप्रक्षिप्तयोः चत्वारो भंगा भवन्ति। आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। अत्रापि भंगौ द्वौ। एतेषु

उदय सहित दो भंग होते हैं, क्योंकि पर्याप्त और अपर्याप्त के उदय के साथ अयशकीर्ति का उदय होना संभव है। इस प्रकार यहाँ सब भंगों का योग तीन (३) हुआ।

इन इक्कीस प्रकृतियों में से आनुपूर्वी को निकालकर शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय में औदारिकशरीर, हुंडकसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इन छह प्रकृतियों को मिला देने पर छब्बीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंगों का योग पूर्वोक्तानुसार ही तीन (३) होता है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के पूर्वोक्त छब्बीस प्रकृतियों में से अपर्याप्त को निकालकर परघात और अप्रशस्त विहायोगति मिला देने पर अट्ठाईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ यशकीर्ति के उदयसहित एक ही भंग है और अयशकीर्ति के उदय सहित भी एक ही भंग है, क्योंकि यहाँ भी प्रतिपक्षी प्रकृतियों का अभाव है। यहाँ सब भंग केवल दो (२) हैं।

स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों में उच्छ्वास के मिला देने पर उनतीस प्रकृति के उदयस्थान होते हैं। यहाँ भी दो ही (२) भंग होते हैं। भाषापर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियों में दुस्वर के मिला देने पर तीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भी दो ही (२) भंग होते हैं।

अब उद्योत के उदय सहित द्वीन्द्रिय जीव के उदयस्थान कहने पर इक्कीस और छब्बीस प्रकृति वाला उदयस्थान तो जैसे पहले कहे आये हैं, उसी प्रकार कहना चाहिए। फिर छत्तीस के ऊपर परघात, उद्योत अप्रशस्तविहायोगति इन तीन को मिला देने पर उनतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यशकीर्ति के उदय सहित एक भंग होता है और अयशकीर्ति के उदय सहित एक, इस प्रकार यहाँ भंगों का योग दो (२) होता है।

फिर इन दो भंगों में पूर्वोक्त उनतीस प्रकृति वाले उदयस्थान संबंधी दो भंगों को मिला देने पर चार (४) भंग होते हैं। स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियों में उच्छ्वास और मिला

प्रथमत्रिंशत्प्रकृतिस्थानभंगेषु प्रक्षिप्तेषु चत्वारो भंगा भवन्ति। भाषापर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य दुःस्वरे प्रक्षिप्ते एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। अत्र भंगौ द्वौ। सर्वभंगसमासः अष्टादश।

अधुना त्रयाणां विकलेन्द्रियाणां भंगसमासमिच्छामः इति अष्टादशसु त्रिगुणितेषु चतुःपंचाशत् भंगाः भवन्ति। (५४)।

अत्र स्वामित्वादिविकल्पा नारकाणामिव वक्तव्याः। केवलं द्वीन्द्रियादीनां त्रिंशत्-एकत्रिंशत्प्रकृतिकोदयस्थानयोः कालः जघन्येन अन्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण यथाक्रमेण द्वादशवर्षाणि, एकोनपंचाशत्रात्रिंदिवानि, षण्मासाः अन्तर्मुहूर्तोना। एतत्पर्यंतं विकलत्रयाणां जीवानां उदयस्थानानि निरूपितानि भवन्ति।

अधुना पंचेन्द्रियतिरश्चां उदयस्थानानि उच्यन्ते—

पंचेन्द्रियतिरश्चः सामान्येन एकविंशति-षड्विंशति-अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशत्-त्रिंशत्-एकत्रिंशत् इति षडुदयस्थानानि भवन्ति। २१।२६।२८।२९।३०।३१।

उद्योतोदयविरहित पंचेन्द्रियस्य तिरश्चः पंच उदयस्थानानि भवन्ति। तत्र एकत्रिंशत्प्रकृतिकस्थानस्य उदयाभावात्। उद्योतोदयसंयुक्तपंचेन्द्रियतिरश्चोऽपि-पंचैवोदयस्थानानि भवंति, तत्राष्टविंशतिप्रकृतिकस्थानोदयाभावात्।

उद्योतोदयविरहितपंचेन्द्रियतिरश्चः भण्यमाने तत्र इदमेकविंशतिप्रकृतेः उदयस्थानं भवति—तिर्यग्गति-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-त्रस-

---

देने पर तीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भी भंग दो ही (२) हैं, इनमें प्रथम तीस प्रकृति वाले उदयस्थान संबंधी दो भंगों को मिला देने पर चार (४) भंग होते हैं। भाषापर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के पूर्वोक्त प्रकृतियों में दुस्वर प्रकृति के मिला देने पर इकतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग दो (२) होते हैं। सब भंगों का योग अठारह (१८) होता है।

अब हमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इन तीनों विकलेन्द्रिय जीवों के उदयस्थानों के भंगों का समास हम चाहते हैं। अतएव अठारह को तीन से गुणा कर देने पर चौवन (५४) भंग हो जाते हैं।

यहाँ स्वामित्व आदि के विकल्प जैसे नारकी जीवों की प्ररूपणा में पहले कह आये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि द्वीन्द्रियादि जीवों के तीस और इकतीस प्रकृति वाले उदयस्थानों का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त कम क्रमशः बारह वर्ष, उनंचास रात्रि-दिवसऔर छह मास होता है। अर्थात् तीस और इकतीस प्रकृति वाले उदयस्थानों का जघन्यकाल तो तीनों विकलेन्द्रिय जीवों के अन्तर्मुहूर्त ही होता है किन्तु उत्कृष्ट काल द्वीन्द्रियों के अन्तर्मुहूर्त कम बारह वर्ष, तीन इन्द्रिय जीवों के अन्तर्मुहूर्तकम उनंचास रात्रि-दिन और चार इन्द्रिय जीवों के अन्तर्मुहूर्त कम छह मास होता है। यहाँ तक विकलत्रय जीवों के उदयस्थान कहे गये हैं।

अब पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों के उदयस्थान कहते हैं—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के सामान्य से इक्कीस, छब्बीस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस प्रकृति वाले छह उदयस्थान होते हैं। २१, २६, २८, २९, ३०, ३१।

उद्योत के उदय से रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंच के पाँच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि उसके इकतीस प्रकृतियों का उदय नहीं होता। उद्योत के उदय सहित पंचेन्द्रिय तिर्यंच के भी पाँच ही उदयस्थान होते हैं, क्योंकि उसके अट्ठाईस प्रकृति वाले उदयस्थान नहीं होता।

अब उद्योत के उदय से रहित पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उदयस्थान कहने पर उनमें यह इक्कीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है—तिर्यंचगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस और कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यंचगति

बादरप्रकृतयः पर्याप्तापर्याप्तयोरेकतरं, स्थिरास्थिरं, शुभाशुभं, सुभग-दुर्भगयोः एकतरं, आदेयानादेययोरेकतरं, यशःकीर्त्ययशः कीर्त्योरेकतरं निर्माणनाम च एतासां एकविंशतिप्रकृतीनामेकं स्थानं भवति। अत्र पर्याप्तोदयेन सुभगदुर्भग-आदेयानादेययशःकीर्त्ययशःकीर्तिनाम-षडयुगलैः अष्टौ भंगा भवन्ति, अपर्याप्तोदयेन एक एव भंगः। कुतः ? सुभग-आदेय-यशः कीर्तिभिः सह एतस्योदयाभावात्। सर्वभंगसमासो नव (९)।

जीवेन शरीरे गृहीते आनुपूर्विप्रकृतिमपनीय औदारिकशरीरं षट्संस्थानानां एकतरं औदारिकशरीरांगोपांगं षण्णां संहननानामेकतरं उपघातं प्रत्येकशरीरं इति एतेषु कर्मसु प्रक्षिप्तेषु षड्विंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। अत्र पर्याप्तोदयेन सुभगदुर्भग-आदेयानादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-षट्संस्थान-षट्संहननानां विकल्पैः अष्टाशीत्यधिकद्विशतभंगा भवन्ति। अपर्याप्तोदयेन एकश्चैव।

कुतः ? शुभप्रकृतिभिः सह अपर्याप्तस्योदयाभावात्। अत्र सर्वभंगसमासः एकादशोनत्रिशतमात्रो भवति (२८९)।

अत्र भंगविषयनिश्चयसमुत्पादनार्थं एताः गाथाः ज्ञातव्याः सन्ति। तद्यथा—

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं ।
एदे पंचवियप्पा ट्ठाणसमुक्कित्तणे णेया।।१।।
सव्वे वि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु।
मेलंति त्ति य कमसो गुणिदे उप्पज्जदे संखा।।२।।
पढमं पयडिपमाणं कमेण णिक्खविय उवरिमाणं च।
पिंडं पडि एक्केके णिक्खित्ते होदि पत्थारो।।३।।

प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त में से कोई एक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, आदेय और अनादेय में से कोई एक, यशकीर्ति और अयशकीर्ति में से कोई एक और निर्माण, इन इक्कीस प्रकृतियों का एक ही स्थान होता है। यहाँ पर्याप्त के उदय सहित (सुभग-दुर्भग आदेय-अनादेय और यशकीर्ति-अयशकीर्ति विकल्पों से) आठ भंग होते हैं। अपर्याप्त के उदय सहित केवल एक ही भंग है, क्योंकि सुभग, आदेय और अयशकीर्ति प्रकृतियों के साथ अपर्याप्त का उदय नहीं होता। इन सब भंगों का योग नौ (९) है।

जीवों के द्वारा शरीर ग्रहण कर लेने पर आनुपूर्वी को निकालकर औदारिकशरीर, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहननों में से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक शरीर इन छह कर्मों को मिला देने पर छब्बीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ पर्याप्त के उदय सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहनन, इनके विकल्पों से २×२×२×६×६=२८८) दो सौ अठासी भंग होते हैं। अपर्याप्त के उदय सहित एक ही भंग है, क्यों ? क्योंकि शुभ प्रकृतियों के साथ अपर्याप्त का उदय नहीं होता। यहाँ सब भंगों का योग ग्यारह कम तीन सौ अर्थात् दो सौ नवासी (२८९) होता है।

यहाँ भंगों के विषय में निश्चय उत्पन्न कराने के लिए ये गाथाएँ जानने योग्य हैं। जैसे—

गाथार्थ— संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्दिष्ट इन पाँच विकल्पों का कथन समुत्कीर्तन में जानना चाहिए।।१।।

सभी पूर्ववर्ती भंग उत्तरवर्ती प्रत्येक भंग में मिलाये जाते हैं, अतएव उन भंगों को क्रमशः गुणित करने पर सब भंगों की संख्या उत्पन्न होती है।।२।।

पहले प्रकृति प्रमाण को क्रम से रखकर अर्थात् उसकी एक-एक प्रकृति अलग-अलग रखकर एक-एक के ऊपर उपरिम प्रकृतियों के पिंडप्रमाण को रखने पर प्रस्तार होता है।।३।।

णिक्खत्तु विदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं।
पिंडं पडि णिक्खित्ते एवं सेसा वि कायव्वा।।४।।
पढमक्खो अंतगओ आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो।।५।।
सगमाणेण विहत्ते सेसं लक्खित्तु पक्खिवे रूवं।
लक्खिज्जंते सुद्धे एवं सव्वत्थ कायव्वं।।६।।
संठाविदूण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे।
अवणेज्जोणंकिदयं कुज्जा पढमंतियं जाव[१]।।७।।

शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य अपर्याप्तमपनीय परघातः द्वयोर्विहायोगत्योरेकतरे च प्रक्षिप्ते अष्टाविंशति-प्रकृतिस्थानं भवति। अत्र भंगाः षड्सप्तत्यधिकाः पंचशताः भवन्ति। (५७६)।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति, भंगा अत्र तावन्त एव (५७६)।

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य सुस्वर-दुःस्वरयोः एकतरे प्रक्षिप्ते त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। एकादशशतानि द्वापंचाशदधिकानि। (११५२)।

दूसरे प्रकृतिपिंड का जितना प्रमाण है उतने बार प्रथम पिंड को रखकर उनके ऊपर द्वितीय पिंड को एक-एक करके रखना चाहिए। इस निक्षेप के योग को प्रथम समझ कर और अगले प्रकृतिपिंड को द्वितीय समझ कर तत्प्रमाण इस नये प्रथम निक्षेप को रखकर जोड़ना चाहिए। आगे भी शेष प्रकृति पिंडों को इसी प्रक्रिया से रखना चाहिए।।४।।

प्रथम अक्ष अर्थात् प्रकृति विशेष जब अन्त तक पहुँचकर पुनः आदि स्थान पर आता है, तब दूसरा प्रकृति स्थान भी संक्रमण कर जाता है अर्थात् अगली प्रकृति पर पहुँच जाता है और जब ये दोनों स्थान अंत को पहुँचकर आदि को प्राप्त हो जाते हैं, तब तृतीय अक्ष का भी संक्रमण होता है।।५।।

जो उदय स्थान जानना अभीष्ट हो, उसी स्थान संख्या को पिंडमान से विभक्त करें। जो शेष रहे, उसे अक्षस्थान समझे। पुनः लब्ध में एक अंक मिलाकर दूसरे पिंडमान का भाग देवें और फिर लब्ध में एक अंक न मिलावें। इस प्रकार समस्त पिंडों द्वारा विभाजन क्रिया करने से उद्दिष्ट स्थान निकल आता है।।६।।

एक अंक को स्थापित करके आगे के पिंड का जो प्रमाण हो, उससे गुणा करें और लब्ध में से अनंकित को घटा दें। ऐसा प्रथम पिंड के अंत तक करते जावें। इस प्रकार उद्दिष्ट निकल आता है।।७।।

शरीरपर्याप्ति को पूर्ण करने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच के पूर्वोक्त छब्बीस प्रकृतियों वाले उदयस्थानों में से अपर्याप्त को निकालकर तथा परघात और दो विहायोगतियों में से कोई एक इन दो प्रकृतियों के मिला देने पर अट्ठाईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, अयशकीर्ति-यशकीर्ति, छह संस्थान तथा प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इन विकल्पों के भेद से) पाँच सौ छियत्तर (५७६) होते हैं।

स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच के पूर्वोक्त प्रकृतियों में उच्छ्वास प्रकृति के मिला देने से उनतीस प्रकृति वाला उदय स्थान होता है, यहाँ भंग उतने ही अर्थात् पाँच सौ छियत्तर (५७६) ही हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच के पूर्वोक्त उनतीस प्रकृति में सुस्वर और दुस्वर में से कोई एक-एक प्रकृति के मिला देने से तीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ (सुभग-दुर्भग, आदेय-

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका) पु. ७, पृष्ठ ४५-४६।

उद्योतोदयसंयुक्तपंचेन्द्रियतिरश्चः एकविंशति-षड्विंशतिस्थाने पूर्वमिव वक्तव्ये स्तः। पुनः शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य पंचेन्द्रियतिरश्चः पूर्वोक्तषड्विंशतिप्रकृतिषु परघातः उद्योतः प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योरेकतरं च प्रविष्टेषु कर्मसु एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। भंगाः पंचशतानि षट्सप्तत्यधिकानि (५७६)।

पुनः एतेषु प्रथमैकोनत्रिंशत्सु भंगेषु प्रक्षिप्तेषु सर्वभंगप्रमाणं एकादश-शतानि द्वापंचाशदधिकानि भवन्ति।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते त्रिंशत्प्रकृतेरुदयस्थानं भवति। अत्र षट्सप्तत्यधिकपंच-शतानि भंगाः संति। पुनः एतेषु प्रथमत्रिंशत्भंगेषु शुद्धेषु अष्टाविंशत्यधिक सप्तदशशतानि भंगाः सर्वे त्रिंशत्-प्रकृतिस्थानसंबंधिनः भवन्ति (११५२+५७६=१७२८)।

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य सुस्वरदुःस्वरयोरेकतरे मेलिते एकत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। भंगाः एकादश-शतानि द्वापंचाशदधिकानि (११५२) ।

एवं पंचेन्द्रियतिरश्चां सर्वभंगसमासः चतुःसहस्र-नवशत-षड् भवन्ति। सर्वतिरश्चां सर्वभंगाः पंचसहस्राणि अष्टन्यूनानि (४९९२)।

पंचेन्द्रियतिरश्चामुदयस्थानानां स्वामित्वं कालश्च पूर्ववत् वक्तव्यः। केवलं त्रिंशत्-एकत्रिंशत्प्रकृत्योः कालः जघन्येन अंतर्मुहूर्तमुत्कर्षेण अंतर्मुहूर्तोनानि त्रीणि पल्योपमानि।

अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वर इनके विकल्प से) भंग ग्यारह सौ बावन (११५२) हो जाते हैं।

उद्योत के उदय सहित पंचेन्द्रिय तिर्यंच के इक्कीस और छब्बीस प्रकृति वाला उदय स्थान पूर्वोक्त प्रकार से ही करना चाहिए। पुनः शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उक्त छब्बीस प्रकृतियों में परघात, उद्योत और प्रशत-अप्रशस्त विहायोगतियों में से कोई एक इस प्रकार तीन प्रकृतियों के मिला देने पर उनतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, इनके विकल्प से) भंग पाँच सौ छियत्तर होते हैं (५७६)।

पुनः इन भंगों को पूर्वोक्त उनतीस प्रकृति के उदयस्थान संबंधी भंगों में मिला देने पर उनतीस प्रकृति वाले उदयस्थानों के सब भंगों का योग (५७६+५७६=११५२) ग्यारह सौ बावन होता है।

स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच के पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियों में उच्छ्वास के मिला देने पर तीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग (पूर्वोक्त प्रकार से) पाँच सौ छ्यत्तर होते हैं (५७६)। पुनः इन भंगों में पूर्वोक्त तीस प्रकृति वाला उदयस्थान संबंधी ११५२ भंग मिला देने पर तीस प्रकृति वाले उदयस्थानसंबंधी सब भंगों का योग (११५२+५७६=१७२८) सत्तरह सौ अट्ठाईस होता है।

भाषापर्याप्ति से पर्याप्त हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंच के पूर्वोक्त तीस प्रकृति वाले उदयस्थान में सुस्वर और दुस्वर में से कोई एक मिला देने पर इकतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर-दुस्वर के विकल्पों से) ग्यारह सौ बावन (११५२) भंग होते हैं।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के समस्त भंगों का योग चार हजार नौ सौ छह होता है (४९०६) एवं सभी तिर्यंचों के आठ कम पाँच हजार अर्थात् चार हजार नौ सौ बानवे (४९९२) भंग होते हैं।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के उदयस्थानों के स्वामित्व और काल का कथन पहले के समान अर्थात् जैसा नारकियों के उदयस्थानों की प्ररूपणा में कह आये हैं उसी प्रकार कहना चाहिए। यहाँ विशेषता इतनी है

इत्थं तिरश्चां उदयस्थानानि भंगाश्च ज्ञातव्या भवन्ति।

अधुना मनुष्याणां उदयस्थानान्युच्यन्ते —

मनुष्याणां सामान्येन एकादशोदयस्थानानि — विंशति-एकविंशति-पंचविंशति-षड्विंशति-सप्तविंशति-अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशत्-त्रिंशत्-एकत्रिंशत्-नव-अष्टौ इति भवन्ति। २०।२१।२५।२६।२७।२८।२९।३०। ३१।९।८।

सामान्यमनुष्याः विशेषमनुष्याः विशेषविशेषमनुष्याः इति मनुष्याणां त्रयो भेदाः भवन्ति।

सामान्यमनुष्याणां भण्यमाने तत्र इदं एकविंशतिप्रकृतेः स्थानं कथ्यते — मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-त्रस-बादराः, पर्याप्ता-पर्याप्तयोरेकतरं स्थिरास्थिरं शुभाशुभं सुभगदुर्भगयोरेकतरं आदेयानादेययोरेकतरं यशःकीर्त्ययशःकीर्त्यो-रेकतरं निर्माणनाम च एतासां प्रकृतीनामेकमुदयस्थानं। पर्याप्तोदयेन अष्टौ भंगाः, अपर्याप्तोदयेन एकः, तेषां समासः नव (९)।

गृहीतशरीरस्य मनुष्यानुपूर्विप्रकृतिमपनीय औदारिकशरीरं, षट्संस्थानानामेकतरं औदारिकशरीरांगोपांगं षण्णां संहननानामेकतरं उपघातं प्रत्येकशरीरं च गृहीत्वा प्रक्षिप्तेन षड्विंशतेः स्थानं भवति। भंगाः एकादशोन-त्रिंशतमात्राः भवन्ति (२८९) ।

कि तीस और इकतीस उदयस्थानों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम है।

इस प्रकार तिर्यंचों के उदयस्थान और भंग जानने योग्य होते हैं।

अब मनुष्यों के उदयस्थान कहे जाते हैं —

मनुष्यों के सामान्यतः बीस, इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृति वाले ग्यारह उदयस्थान होते हैं। २०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८।

सामान्य मनुष्य, विशेष मनुष्य, विशेष-विशेष मनुष्य, इस प्रकार मनुष्यों के तीन भेद होते हैं।

सामान्य मनुष्यों के कथन करने पर वहाँ यह प्रथम इक्कीस प्रकृतियों वाला उदयस्थान कहते हैं — मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], तैजस[३] और कार्मणशरीर[४], वर्ण[५], गंध[६], रस[७], स्पर्श[८], मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी[९], अगुरुलघु[१०], त्रस[११], बादर[१२], पर्याप्त और अपर्याप्त में से कोई एक[१३], स्थिर[१४], अस्थिर[१५], शुभ[१६], अशुभ[१७], सुभग और दुर्भग में से कोई एक[१८], आदेय और अनादेय में से कोई एक[१९], यशकीर्ति और अयशकीर्ति में से कोई एक[२०] और निर्माण[२१], इन प्रकृतियों का एक उदयस्थान होता है। पर्याप्त प्रकृति के उदय से सहित (सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय और यशकीर्ति-अयशकीर्ति के विकल्पों से) आठ भंग होते हैं। अपर्याप्त प्रकृति के उदय सहित एक भंग है (क्योंकि सुभग, आदेय और यशकीर्ति साथ अपर्याप्तप्रकृति का उदय नहीं होता) पर्याप्त और अपर्याप्त के भंगों का योग नौ (८+१=९) होता है।

शरीर ग्रहण करने वाले मनुष्य के पूर्वोक्त इक्कीस प्रकृतियों में से मनुष्यानुपूर्वी को निकालकर औदारिकशरीर, छह संस्थानों में से कोई एक, औदारिक शरीरांगोपांग, छह संहननों में से कोई एक, उपघात और प्रत्येक शरीर, इस प्रकार छह प्रकृतियों के मिला देने पर छब्बीस प्रकृति वाला उदयस्थान हो जाता है। यहाँ भंग (पर्याप्त के उदय सहित सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीति-अयशकीर्ति, छह संस्थान और छह संहनन के विकल्पों से २×२×२×६×६=२८८ और अपर्याप्त के उदय सहित भंग १ इस प्रकार) दो सौ नवासी भंग (२८९) होते हैं।

शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य अपर्याप्तमपनीय परघातः प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योरेकतरं च गृहीत्वा प्रक्षिप्ते अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। भंगाः चतुर्विंशत्यूनाः षट्शतमात्राः (५७६)।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासं गृहीत्वा प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्स्थानं भवति। भंगास्तावन्त एव (५७६)।

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य सुस्वरदुःस्वरयोरेकतरे प्रक्षिप्ते त्रिंशत्स्थानं भवति भंगाः, अष्टचत्वारिंशदूनाः द्वादशशतमात्राः (११५२)।

संप्रति आहारशरीरोदयवतां विशेषमनुष्याणां भण्यमाने तेषां पंचविंशतिः सप्तविंशतिः अष्टाविंशतिः एकोनत्रिंशदिति चत्वारि उदयस्थानानि। २५। २७। २८। २९।

प्रथमतस्तावत्—मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-आहार-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-आहारशरीराङ्गोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-अस्थिरशुभ-अशुभ-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माणनामानि एतासां पंचविंशतिप्रकृतीनामुदयस्थानमेकं भवति। भंगः एकः (१)।

शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य परघात-प्रशस्तविहायोगत्योः प्रक्षिप्तयोः सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। भंगः एकः (१)।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासे मेलिते अष्टाविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। भंगःएकः (१)।

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य सुस्वरे प्रक्षिप्ते एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं भवति। भंगः एकः (१)।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए मनुष्य के पूर्वोक्त छब्बीस प्रकृतियों में से अपर्याप्त को निकालकर परघात तथा प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगतियों में से कोई एक ऐसी दो प्रकृतियों को मिला देने पर अट्ठाईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग सुभग-दुर्भग, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति-अयशकीर्ति, छह संस्थान, छह संहनन और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति इनके विकल्पों से २×२×२×६×६×२=५७६ या चौबीस कम छह सौ अर्थात् पाँच सौ छिहत्तर होते हैं।

स्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त हुए मनुष्य के पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों में उच्छ्वास को लेकर मिला देने पर उनतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग पूर्वोक्त प्रकार पाँच सौ छियत्तर ही हैं (५७६)।

भाषापर्याप्ति से पर्याप्त हुए मनुष्य के पूर्वोक्त उनतीस प्रकृतियों में सुस्वर और दुस्वर में से कोई एक मिला देने पर तीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग (पूर्वोक्त विकल्पों के अतिरिक्त सुस्वर-दुःस्वर के विकल्प से हुए भंगों के गुणा कर देने पर २×२×२×६×६×२×२=११५२) ग्यारह सौ बावन— अड़तालीस कम बारह सौ भंग हैं।

अब आहारकशरीर के उदय वाले विशेष मनुष्यों के कथन करने पर उनके पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृति वाले चार उदयस्थान होते हैं। २५, २७, २८, २९।

उनमें से सर्वप्रथम ज्ञातव्य है कि—मनुष्यगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], आहारक[३], तैजस[४], और कार्मण[५] शरीर समचतुरस्रसंस्थान[६], आहारकशरीरांगोपांग[७], वर्ण[८], गंध[९], रस[१०], स्पर्श[११], अगुरुलघु[१२], उपघात[१३], त्रस[१४], बादर[१५], पर्याप्त[१६], प्रत्येकशरीर[१७], स्थिर[१८], अस्थिर[१९], शुभ[२०], अशुभ[२१], सुभग[२२], आदेय[२३], यशकीर्ति[२४] और निर्माण[२५], इन पच्चीस प्रकृतियों का एक उदयस्थान होता है। यहाँ भंग एक ही है (१)। शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए उक्त विशेष मनुष्य के पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियों में परघात और प्रशस्त विहायोगति के मिला देने पर सत्ताईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग एक है (१)।

आनापान-स्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास के मिला देने पर अट्ठाईस प्रकृतियों का भंग स्थान होता है। यहाँ भंग एक (१) है।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए विशेष मनुष्य के पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों में सुस्वर के मिला देने पर

सर्वभंगसमासः चत्वारः (४)।

विशेषविशेषमनुष्याणां पंचविंशतिप्रकृतिस्थानं मुक्त्वा दशोदयस्थानानि भवन्ति ।२०।२१।२६ ।२७।२८।२९।३०।३१।९।८।

प्रथमतस्तावत् विंशतिप्रकृतिस्थानं कथ्यते — मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-अस्थिर-शुभ-अशुभ-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माणनामानि एतासां विंशतिप्रकृतीनां प्रतर-लोकपूरणसयोगिकेवलिभगवतामुदयो भवति। भंगः एकः (१)। यदि तीर्थकरस्तर्हि तीर्थकरोदयेन एकविंशतिप्रकृतिस्थानं भवति। भंगः एकः(१)। कपाटं गतस्य एताश्चैव प्रकृतयः।

अत्र औदारिकशरीरं-समचतुरस्रसंस्थानं, तीर्थकरोदयविरहितानां षण्णां संस्थानानामेकतरं औदारिक-शरीरांगोपांग-वज्रऋषभसंहनन-उपघात-प्रत्येकशरीरं च गृहीत्वा षट्विंशतिप्रकृतिस्थानं सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानं वा भवति।भंगाः द्वयोरपि षट् एकश्च ६।१।

तीर्थकरप्रकृत्युदयेन वा अनुदयेन वा दण्डगतस्य परघातं प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगत्योरेकतरं च गृहीत्वा प्रक्षिप्ते अष्टाविंशतिप्रकृतेर्वा एकोनत्रिंशत्प्रकृतेर्वा स्थानं भवति। विशेषेण तु तीर्थकराणां प्रशस्तविहायोगतिरेका एवोदेति। भंगा अष्टाविंशतेः द्वादश, एकोनत्रिंशतः एकः ।१२।१।

उनतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ भंग एक है (१)। इस प्रकार विशेष मनुष्य के चारों उदयस्थानों संबंधी सब भंगों का योग चार (४) होता है।

विशेष-विशेष मनुष्यों के पूर्वोक्त ग्यारह उदयस्थानों में से पच्चीस प्रकृति वाले एक उदयस्थान को छोड़कर शेष दस उदयस्थान होते हैं। २०, २१, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९, ८ होता है।

उनमें से सर्वप्रथम बीस प्रकृतियों का स्थान कहा जाता है — मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस और कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुक, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशकीर्ति और निर्माण इन बीस नामकर्म की प्रकृतियों का उदय प्रतर और लाकपूरण समुद्घात करने वाले सयोगिकेवली के होता है। यहाँ भंग एक है (१)। यदि वह सयोगिकेवली तीर्थंकर हों, तो उनके पूर्वोक्त बीस प्रकृतियों के अतिरिक्त तीर्थंकर प्रकृति के उदय सहित इक्कीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। भंग एक (१)। कपाट समुद्घात को करने वाले विशेष-विशेष मनुष्य के भी ये ही प्रकृतियाँ उदय में आती हैं।

यहाँ विशेषता केवल यह है कि उनके औदारिकशरीर और समचतुरस्रसंस्थान होता है। तीर्थंकर प्रकृति के उदय से रहित उनके छह संस्थानों में से कोई एक, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, उपघात और प्रत्येक शरीर इन प्रकृतियों को ग्रहण कर लेने से छब्बीस या सत्ताईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। यहाँ छब्बीस प्रकृति वाले उदयस्थान में छह भंग तथा सत्ताइस प्रकृति वाले में एक भंग होगा। ६। १।

तीर्थंकर प्रकृति के उदय से रहित उनके छब्बीस प्रकृतियों में परघात और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति में से कोई एक प्रकृति को ग्रहण कर मिला देने पर अट्ठाईस प्रकृति वाले तथा तीर्थंकर प्रकृति के उदय सहित सत्ताईस प्रकृतियों में उक्त दो प्रकृतियों के मिला देने पर उनतीस प्रकृति दंडसमुद्घातगत केवली का उदय स्थान होता है। विशेषता यह है कि तीर्थंकरों के केवल एक प्रशस्त विहायोगति ही उदय में आती है। इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान के (छह संस्थान और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति के विकल्पों से) बारह भंग होते हैं और उनतीस प्रकृति वाले उदयस्थान का विकल्प रहित केवल एक ही भंग है। (१२, १)।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासे प्रक्षिप्ते विशेष-विशेषमनुष्याणां पूर्वोक्ताष्टाविंशति-एकोन-त्रिंशतोः क्रमशः एकोनत्रिंशत्प्रकृतिस्थानं त्रिंशत्प्रकृतिस्थानं वा भवति। भंगा एकोनत्रिंशतः द्वादश, त्रिंशत्प्रकृतेः एकः ।१२।१।

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य सुस्वरदुःस्वरयोः एकतरे प्रविष्टे त्रिंशत् एकत्रिंशद् वा स्थानं भवति। भंगाः त्रिंशत्स्थानस्य षट्संस्थान-प्रशस्ताप्रशस्तविहायोगति-सुस्वरदुःस्वरविकल्पैः चतुर्विंशतिर्भवति, एकत्रिंशत्स्थानस्य एकः।२४।१। तीर्थकराणां दुःस्वर-अप्रशस्तविहायोगत्योरुदयाभावात्।

तीर्थकराणामुदयागतैकत्रिंशत्प्रकृतीनां नामनिर्देशः क्रियते—

मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्त्रशरीरसंस्थान-औदारिक-शरीरांगोपांग-वज्रऋषभसंहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्त-विहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-अस्थिर-शुभ-अशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-तीर्थकराणि कर्माणि इति एताःएकत्रिंशत्प्रकृतयः उदयं प्रयान्ति। एतस्य कालः जघन्येन वर्षपृथक्त्वं, तीर्थकरप्रकृत्युदयसहितसयोगिजिनविहारकालस्य सर्वजघन्यस्यापि वर्षपृथक्त्वस्य न्यूनस्यानुपलंभात्। उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकगर्भादि-अष्टवर्षेण न्यूनं पूर्वकोटिप्रमाणम्। शेषाणां स्थानानां कालः ज्ञात्वा वक्तव्यः।

संप्रति अयोगिभगवतां भण्यमाने—मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-तीर्थकरमिति एताः नव प्रकृतयः। भंगः एकः (१)। तीर्थकरविरहिताः अष्टौ प्रकृतयः। भंग एकः (१) ।

पूर्वोक्त विशेष-विशेष मनुष्य के आनप्राण पर्याप्ति से पर्याप्त हुए उक्त अट्ठाईस और उनतीस प्रकृतियों में उच्छ्वास के मिला देने पर क्रमशः उनतीस व तीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इनके भंग पहले के समान उनतीस प्रकृतिक उदयस्थान के बारह और तीस प्रकृतिक उदयस्थान का केवल एक है (१२, १)।

उसी विशेष-विशेष मनुष्य के भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए पूर्वोक्त उनतीस व तीस प्रकृतियों में सुस्वर और दुस्वर में से कोई एक के मिला देने पर क्रमशः तीस और इकतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। तीस प्रकृतिक उदयस्थान के भंग छह संस्थान, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति और सुस्वर दुस्वर के विकल्पों से चौबीस होते हैं (२४) तथा इकतीस प्रकृतियों वाले उदयस्थान का भंग केवल मात्र एक होता है (१)। क्योंकि तीर्थंकरों के दुस्वर और अप्रशस्त विहायोगति (तथा प्रथम संस्थान को छोड़कर शेष पाँच संस्थानों) का उदय नहीं होता है।

उन तीर्थंकरों के उदय में आने वाली इकतीस प्रकृतियों का नाम निर्देश करते हैं—

मनुष्यगति[1], पंचेन्द्रिय जाति[2], औदारिक[3], तैजस[4] और कार्मणशरीर[5], समचतुरस्र संस्थान[6], औदारिकशरीरांगोपांग[7], वज्रऋषभनाराचसंहनन[8], वर्ण[9], गंध[10], रस[11], स्पर्श[12], अगुरुलघुक[13], उपघात[14], परघात[15], उच्छ्वास[16], प्रशस्तविहायोगति[17], त्रस[18], बादर[19], पर्याप्त[20], प्रत्येकशरीर[21], स्थिर[22], अस्थिर[23], शुभ[24], अशुभ[25], सुभग[26], सुस्वर[27], आदेय[28], यशकीर्ति[29], निर्माण[30] और तीर्थंकर[31] ये इकतीस प्रकृतियाँ तीर्थंकर के उदय में आती हैं। इस उदयस्थान का जघन्यकाल वर्ष पृथक्त्व है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति के उदय वाले सयोगि जिनका विरहकाल सबसे जघन्य भी वर्ष पृथक्त्व से कम नहीं पाया जाता। इस उदयस्थान का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त से अधिक गर्भ से लेकर आठ वर्ष से कम एक पूर्वकोटि है। शेष उदयस्थानों का काल जानकर कहना चाहिए।

अब अयोगकेवली भगवान के उदयस्थान कहते हैं—मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशकीर्ति और तीर्थंकर ये नव प्रकृतियाँ ही अयोगीकेवली के उदय होती हैं। यहाँ भंग एक (१) है। इन्हीं नौ प्रकृतियों में से तीर्थंकर प्रकृति से रहित आठ प्रकृति का उदयस्थान होता है। यहाँ भी भंग (१) है।

एवं मनुष्याणां सर्वभंगसमासः द्वाविंशत्यूनसप्तविंशतिशतमात्राः भवन्ति। द्विसहस्र-षट्शत-अष्टषष्टिमात्राः इति (२६६८)।

तात्पर्यमेतत्—सामान्यमनुष्याणां भंगाः द्विसहस्र-षट्शत-द्विप्रमाणाः, विशेषमनुष्याणां चत्वारः, विशेषविशेष-मनुष्याणां द्वाषष्टिः (२६०२+४+६२=२६६८)।

अधुना देवगतौ देवानां उदयस्थानानि कथ्यन्ते—

देवगतौ एकविंशतिः पंचविंशतिः सप्तविंशतिः अष्टाविंशतिः एकोनत्रिंशत् इति पंचोदयस्थानानि भवन्ति। २१।२५।२७।२८।२९।

तत्रेदं एकविंशतेः उदयस्थानं—देवगति-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-अस्थिर-शुभ-अशुभ-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माणमिति एतासां प्रकृतीनां एकं स्थानं। भंगः एकः (१)।

शरीर गृहीते देवगत्यानुपूर्विप्रकृतिमपनीय वैक्रियिकशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-उपघात-प्रत्येकशरीरेषु प्रविष्टेषु पंचविंशतिप्रकृतेः स्थानं भवति। भंगः एक (१)।

शरीरपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य परघात-प्रशस्तविहायोगत्योः प्रक्षिप्तयोः सप्तविंशतिप्रकृतेः स्थानं भवति। भंगः एकः (१)।

आनापानपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य उच्छ्वासः प्रविष्टः। इदं अष्टाविंशतिप्रकृतेः स्थानं। भंगः एकः (१)।

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तकस्य सुस्वरे प्रविष्टे एकोनत्रिंशत्प्रकृतेः स्थानं भवति। भंग एकः (१)।

इस प्रकार मनुष्यों के उदयस्थानों संबंधी समस्त भंगों का योग बत्तीस कम सत्ताईस सौ अर्थात् दो हजार छह सौ अड़सठ या छब्बीस सौ अड़सठ (२६६८) होता है।

तात्पर्य यह है कि—सामान्य मनुष्यों की भंग संख्या दो हजार छह सौ दो (२६०२) प्रमाण है, विशेष मनुष्यों की संख्या चार (४) है और विशेष-विशेष मनुष्यों की भंग संख्या बासठ (६२) है। इस प्रकार कुल मिलाकर दो हजार छह सौ अड़सठ (२६६८) भंग संख्या है।

अब देवगति में देवों के उदयस्थान कहते हैं—देवगति में इक्कीस, पच्चीस, सत्ताईस, अट्ठाईस और उनतीस प्रकृति वाले पाँच उदयस्थान होते हैं। उनमें इक्कीस प्रकृति वाला उदयस्थान इस प्रकार है—देवगति[१], पंचेन्द्रियजाति[२], तैजस[३], कार्मण शरीर[४], वर्ण[५], गंध[६], रस[७], स्पर्श[८], देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी[९], अगुरुलघु[१०], त्रस[११], बादर[१२], पर्याप्त[१३], स्थिर[१४], अस्थिर[१५], शुभ[१६], अशुभ[१७], सुभग[१८], आदेय[१९], यशकीर्ति[२०], और निर्माण[२१], इन इक्कीस प्रकृतियों का एक उदयस्थान होता है। भंग एक (१) है।

शरीर के ग्रहण करने पर देवगति में आनुपूर्वी को निकालकर वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, उपघात और प्रत्येक शरीर इन पाँच प्रकृति के मिला देने पर पच्चीस वाला प्रकृति उदयस्थान होता है। भंग एक (१) है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए देव के पूर्वोक्त पच्चीस प्रकृतियों में परघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियों के मिला देने पर सत्ताईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। भंग एक है (१)।

आनप्राणपर्याप्ति से पर्याप्त हुए देव के पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकृतियों में उच्छ्वास प्रकृति और प्रविष्ट हो जाती है। उस समय अट्ठाईस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। भंग एक है (१)।

भाषापर्याप्ति से पर्याप्त हुए देव के पूर्वोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों में सुस्वर के प्रविष्ट हो जाने पर उनतीस प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। भंग एक है (१)।

एतत्कियच्चिरं ?

भाषापर्याप्तेः पर्याप्तकस्य प्रथमसमयप्रभृति यावत् आयुःचरमसमयः इति। तस्य प्रमाणं जघन्येन अंतर्मुहूर्तोनदशवर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण अंतर्मुहूर्तोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि। अत्र सर्वभंगसमासः पंच (५)।

चतुर्गतिभंगसमासः सप्तसहस्र-षट्शत-सप्ततिप्रमाणं (७६७०)।

तस्मात् एतत्कथनेन तु नरकगति-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-देवगतीनामुदयेन नारकः तिर्यङ् मनुष्यः देवो भवतीति न घटते ?

नैतद् वक्तव्यं, विषमोऽयं उपन्यासः।

कुतः ?

नरकगत्यादिचतुर्गत्युदयानामिव शेषकर्मोदयानां तत्राविनाभावानुपलंभात्। उत्पन्नप्रथमसमयादारभ्य यावत्, चरमसमयः इति यस्याः प्रकृतेः नियमेन उदयो भूत्वा विवक्षितगतिं मुक्त्वा अन्यत्र उदयाभावनियमो दृश्यते, तस्याःप्रकृतेः उदयेन नारकः तिर्यङ् मनुष्यः देवः इति निर्देशः क्रियते, अन्यथा अनवस्थादोषः आपतति।

तात्पर्यमेतत्—**मनुष्यगत्युदयेनैव मनुष्यो भवति अन्यासां प्रकृतीनां पूर्वोक्तकथितानां च, तथा यदि मनुष्यगत्युदयो न भवेत् तदा अन्यासां भवेदपि उदयः किंतु मनुष्यो न भवितुमर्हति अतएव विषमा अर्थापत्तिः वर्तते अत्र।**

शंका—इस उनतीस प्रकृतियों वाले उदयस्थान का काल कितना है ?

समाधान—भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त देव के प्रथम समय से लेकर आयु का अंतिम समय आने तक इस उदयस्थान का काल है। इस काल का प्रमाण जघन्य से अन्तर्मुहूर्त से हीन दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त कम तेंतीस सागरोपम प्रमाण है। यहाँ देवों के पाँचों उदयस्थानों के समस्त भंगों का योग पाँच हुआ है (५)।

चारों गतियों के उदयस्थानों के भंगों का योग सात हजार छह सौ सत्तर (७६७०) होता है।

शंका—इस प्रकार चूँकि एक-एक गति के साथ अनेक कर्म प्रकृतियों का उदय पाया जाता है, अतएव केवल नरकगति के उदय से ही जीव नारकी होता है। तिर्यंचगति के उदय से ही तिर्यंच होता है, मनुष्यगति के उदय से ही मनुष्य होता है और देवगति के उदय से ही देव होता है यह कथन घटित नहीं होता ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यह उपन्यास विषम है।

शंका—क्यों ?

समाधान—क्योंकि, नरक आदि चार पर्यायों के प्राप्त होने में जिस प्रकार नरकगति आदि चार प्रकृतियों के उदय का क्रमशः अविनाभावी संबंध है, वैसा शेष कर्मों के उदयों का वहाँ अविनाभावी संबंधी नहीं पाया जाता है। उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर पर्याय के अंतिम समय तक जिस प्रकृति का नियम से उदय होकर विवक्षित गति के सिवाय अन्यत्र उदय न होने का नियम देखा जाता है, उसी कर्मप्रकृति के उदय से नारकी तिर्यंच, मनुष्य और देव होता है ऐसा निर्देश किया गया है, अन्यथा अनवस्था उत्पन्न हो जायेगी।

तात्पर्य यह है कि—मनुष्यगति के उदय से ही जीव मनुष्य होता है और अन्य प्रकृतियों के उदय का कथन पूर्व में किया है तथा मनुष्यगति का उदय यदि न होवे, तब अन्य प्रकृतियों का उदय हो भी जावें किन्तु तब भी वह जीव मनुष्य नहीं हो सकता है, इसलिए यहाँ विषम अर्थापत्ति समझना चाहिए।

अधुना सिद्धिगतिप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

सिद्धिगदीए सिद्धो णाम कधं भवदि ?।।१२।।

खइयाए लद्धीए।।१३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्रापि पूर्ववत् नयनिक्षेपान् उदयादिपंचभावान् वा आश्रित्य चालना कर्तव्या। अस्यायमर्थः —एवंभूतनयापेक्षया अष्टकर्माणि निर्मूल्य ये महापुरुषाः नित्याः निरञ्जनाः सिद्धाः कृतकृत्याः बभूवुः, त एव सिद्धिगतौ सिद्धाः कथ्यन्ते। कर्मणां निर्मूलक्षयेण उत्पन्नपरिणामः क्षयो भवति, तस्य लब्धिः क्षायिकलब्धिः, एतस्या निमित्तेन जीवः सिद्धो भवति।**

सिद्धिगतौ अन्येऽपि सत्त्वप्रमेयत्वादयः परिणामाः सन्ति, तैः किन्न सिद्धः भवति ?

न, यदि ते परिणामाः सिद्धत्वस्य कारणं, तर्हि सर्वे जीवाः सिद्धाः भवेयुः, तेषां सत्त्वप्रमेयत्वादीनां सर्वजीवेषु संभवोपलंभात् तस्मात् क्षायिकलब्ध्याः सिद्धो भवति इति ज्ञातव्यं।

तात्पर्यमेतत्—**अद्यप्रभृति पुरा पंचनवत्यधिकपंचविंशतिशततमवर्षेभ्यः पूर्वं अस्मिन् जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रस्य आर्यखंडे विदेहदेशे कुंडलपुरे राजासिद्धार्थस्य महाराज्ञीत्रिशला अन्तिमतीर्थकरं भगवन्तं महावीरस्वामिनं प्रासूत।**

तस्यैव वर्द्धमानस्य भगवतोऽद्य जन्मजयंतीं संपूर्णभारतदेशे विदेशेष्वपि च सर्वे जैनधर्मानुयायिनः महामहोत्सवैः सम्मानयन्ति, अस्याः भारतस्य राजधान्याः आरभ्य सर्वत्र देशे विदेशे च ग्रामे नगरे च प्रभावनां कुर्वन्ति। अहिंसाप्रधानजिनधर्मस्य जयकारमपि कुर्वन्ति।

अब सिद्धिगति के प्रतिपादन हेतु प्रश्नोत्तररूप में दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सिद्धिगति में जीव सिद्ध किस कारण से होते हैं ?।।१२।।

क्षायिक लब्धि के कारण जीव सिद्ध होते हैं।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी पूर्व के समान नय और निक्षेप से अथवा उदय आदि पाँच भावों का आश्रय लेकर चालन करना चाहिए-कथन करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि—एवंभूत नय की अपेक्षा आठों कर्मों का निर्मूल नाश करके जो महापुरुष नित्य, निरंजन, सिद्ध, कृतकृत्य हो चुके हैं वे ही सिद्धिगति को प्राप्त करके "सिद्ध" भगवान कहे जाते हैं। कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले परिणामों को क्षय कहते हैं और उसी की लब्धि क्षायिक लब्धि कहलाती है, उस क्षायिक भाव के कारण जीव सिद्ध होते हैं।

शंका—सिद्धिगति में सत्व, प्रमेयत्व आदि अन्य परिणाम भी होते हैं, उनसे सिद्ध होते हैं, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि वे सत्व-प्रमेयत्व आदि परिणाम सिद्धत्व के कारण होवें, तो सभी जीव सिद्ध हो जावेंगे, क्योंकि उनका अस्तित्व सभी जीवों में पाया जाता है इसलिए क्षायिक लब्धि से सिद्ध होते हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—आज से पच्चीस सौ पंचानवे (२५९५) वर्ष पूर्व इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड के बिहार प्रांत के कुण्डलपुर नगर में राजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला ने अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर को जन्म दिया था। उन्हीं वर्धमान भगवान की जन्मजयंती आज सम्पूर्ण भारतदेश में तथा विदेशों में भी सभी धर्मानुयायी महामहोत्सव के साथ मना रहे हैं तथा भारत की राजधानी दिल्ली से प्रारंभ करके देश-विदेश में एवं ग्राम-नगर में प्रभावना कर रहे हैं। इस धर्मप्रभावना के साथ अहिंसामय जिनधर्म की जयकार भी करते हैं।

उक्तं च श्री यतिवृषभाचार्येण तिलोयपण्णत्ति ग्रंथे—

सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं, णयरम्मि कुण्डले वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे, चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो।।५४९।।

(चउत्थो महाधियारो, पृ. २१०)

उक्तं च षट्खण्डागमग्रंथेऽपि—

''आषाढ जोण्ण पक्खछट्ठीए कुण्डलपुरणगराहिवणाहवंशसिद्धत्थणरिंदस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतणेसु तत्थ अट्ठदिवसाहिय णवमासे अच्छिय चइत्तसुक्खपक्खतेरसीए उत्तराफग्गुणी गब्भादो णिक्खंतो।''[१]

ईदृशाय वर्द्धमान-सन्मति-वीर-महावीर-महतिमहावीरपंचनामधारिणे श्रीमहावीरस्वामिने मे नित्यं नमोऽस्तु।

असौ भगवान् महावीरस्वामी सर्वत्र देशे राज्ये राष्ट्रे सुखं शांतिं समृद्धिं च वितरतु। शासकगणाः भगवन्महावीरस्वामिनः प्रसादात् धर्मनिष्ठाः भवन्तु, सुखिनः समृद्धिशालिनश्च भवन्तु इति भावना भाव्यते मया अद्य पवित्रदिवसे ''पार्श्वविहार'' नामकालोनीमध्ये भगवतः पार्श्वनाथतीर्थकरस्य छत्रच्छायायामिति।

एवं प्रथमेऽधिकारे नरकादिगतिषु सिद्धिगतौ चापि बंधकानां स्वामित्वनिरूपणपरत्वेन त्रयोदशसूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे सिद्धान्तचिंतामणि-टीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

श्री यतिवृषभाचार्य ने तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा है—

गाथार्थ—महाराजा सिद्धार्थ और प्रियकारिणी के यहाँ कुण्डलपुर नगर में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन वीर भगवान का जन्म हुआ था।।५४९।।

षट्खण्डागम ग्रंथ में भी कहा है—

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन कुण्डलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशला देवी के गर्भ में आकर वहाँ से आठ दिन अधिक नौ मास व्यतीत होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में जन्म लिया।

ऐसे वर्द्धमान-सन्मति-वीर-महावीर और महतिमहावीर इन पाँच नामधारी श्री महावीर स्वामी को मेरा नित्य नमस्कार होवे।

वे भगवान् महावीर स्वामी देश-राज्य-राष्ट्र में सर्वत्र सुख, शांति, समृद्धि को प्रदान करें। भगवान महावीर स्वामी के प्रसाद से सभी शासकगण धर्मनिष्ठ होवें, सुखी और समृद्धिशाली होवें, यही मैं आज दिल्ली की पार्श्वविहार कालोनी में भगवान पार्श्वनाथ तीर्थंकर की छत्रछाया में भावना भाती हूँ। अर्थात् सन् १९९७ में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (२० अप्रैल) वीर निर्वाण संवत् २५२३ में महावीर जयंती के दिन पार्श्वविहार-दिल्ली में इस प्रकरण को लिखते समय यहाँ महावीर स्वामी का नामस्मरण किया गया है। आज भगवान महावीर को जन्म लेकर २५९५ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नरकादि गतियों में एवं सिद्धिगति में बंधकों का स्वामित्व निरूपण करने वाले तेरह (१३) सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार की सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. षट्खण्डागम खण्ड-४, पु.-९, (धवलाटीका)

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अधुना इन्द्रियमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ पंचिंदिओ णाम कधं भवदि ?।।१४।।

खओवसमियाए लद्धीए।।१५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र नामादिनिक्षेपान् नैगमादिनयान् औदयिकादिकान् चाश्रित्य पूर्ववत् इंद्रियस्य चालना कर्तव्या। इन्द्रस्य लिंगं इन्द्रियं। इन्द्रो जीवः, तस्य लिंगं ज्ञापनार्थं सूचकं यत् तदिन्द्रियं इति कथितं भवति।**

कथमेकेन्द्रियत्वं क्षायोपशमिकं ?

उच्यते, स्पर्शनेन्द्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानां सत्त्वोपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन चक्षुः-श्रोत्रघ्राणजिह्वा-इन्द्रियावरणकर्मणां देशघातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषां चैव सत्त्वोपशमेन तेषां सर्वघाति-स्पर्धकानामुदयेन यः उत्पन्नो जीवपरिणामः सः क्षायोपशमिकः उच्यते, पूर्वोक्तानां स्पर्धकानां क्षायोपशमिकैः उत्पन्नत्वात्। तस्य जीवपरिणामस्य एकेन्द्रियमिति संज्ञा। एतेन एकेन इन्द्रियेण यो जानाति पश्यति सेवते जीवः स एकेन्द्रियो नाम।

सर्वघातित्वं देशघातित्वं च नाम किमिति चेत् ?

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब इन्द्रियमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जीव कैसे होता है ?।।१४।।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेन्द्रिय सिद्ध होता है।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पर नामादि निक्षेपों, नैगमादि नयों और औदायिकादि भावों का आश्रय करके पहले के समान इन्द्रिय की चालन करना — कथन करना चाहिए। इन्द्र के चिन्ह को इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्र — जीव, उसका जो चिन्ह अर्थात् ज्ञापक या सूचक है, वह इन्द्र है ऐसा कहा जाता है।

शंका — एकेन्द्रियपना क्षायोपशमिक किस कारण से होता है ?

समाधान — उसके बारे में कहते हैं, स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के सत्वोपशम से उसी के देशघाती स्पर्धकों के उदय से चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और जिव्हा इन्द्रियावरण कर्मों के देशघाती स्पर्धकों के उदय क्षय से, उन्हीं कर्मों के सत्त्वोपशम से तथा सर्वघाती स्पर्धकों के उदय से जो जीवपरिणाम उत्पन्न होता है। उस जीव के परिणाम की 'एकेन्द्रिय' संज्ञा है। इस एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय के द्वारा जो जानता है, देखता है, सेवन करता है, वह जीव एकेन्द्रिय होता है।

शंका — सर्वघातीपना और देशघातीपना किसे कहते हैं ?

कर्मणी द्विविधे — घातिकर्म अघातिकर्म चैव। ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तरायाणि घातिकर्माणि, वेदनीय-आयुः नाम-गोत्राणि अघातिकर्माणि।

ज्ञानावरणादीनां कथं घातिव्यपदेशः ?

न, केवलज्ञान-दर्शन-सम्यक्त्व-चारित्र-वीर्याणामनेकभेदभिन्नानां जीवगुणानां विरोधित्वेन तेषां घातिव्यपदेशात्।

शेषकर्मणां घातिव्यपदेशः किन्न भवति ?

न, तेषां जीवगुणविनाशनशक्तेरभावात्।

कुतः ?

न आयुः जीवगुणविनाशकं, तस्य भवधारणे व्यापारात्। न गोत्रं जीवगुणविनाशकं, तस्य नीचोच्चकुलसमुत्पादने व्यापारात्। न क्षेत्रपुद्गलविपाकिनामकर्माण्यपि, तेषां क्षेत्रादिषु प्रतिबद्धानामन्यत्र व्यापारविरोधात्।,

जीवविपाकिनामकर्मवेदनीयकर्मणोः घातिकर्मव्यपदेशः किन्न भवति ?

न, अनात्मभूत-सुभग-दुर्भगादिपर्यायसमुत्पादने व्यापृतानां जीवगुणविनाशकविरोधात्।

जीवस्य सुखं विनाश्य दुःखोत्पादकं असातवेदनीयं घातिव्यपदेशं किन्न लभते ?

न, तस्य घातिकर्मसहायस्य घातिकर्मभिः विना स्वकार्यकरणे असमर्थस्य सतः तत्र प्रवृत्तिर्नास्तीति ज्ञापनार्थं तद्व्यपदेशाकरणात्।

समाधान — कर्म दो प्रकार के हैं — घातिया कर्म और अघातिया कर्म। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्म हैं तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिया कर्म हैं।

शंका — ज्ञानावरण आदि की घाति संज्ञा किस कारण से है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि केवलज्ञान, केवलदर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र और वीयरूप जो अनेक भेदों से भिन्न जीवगुण हैं, उनके उक्त धर्म विरोधी अर्थात् घातक होते हैं और इसीलिए वे घातिकर्म कहलाते हैं।

शंका — शेष कर्मों की भी घातिकर्म संज्ञा क्यों नहीं है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उनमें जीव के गुणों का विनाश करने की शक्ति नहीं पाई जाती।

शंका — किस कारण से उनमें जीव के गुणों के विनाश की शक्ति नहीं पाई जाती है ?

समाधान — क्योंकि, आयुकर्म जीवों के गुणों का विनाशक नहीं है, कारण कि उसका काम तो भव धारण कराने का है। गोत्र कर्म भी जीवगुण विनाशक नहीं है, उसका काम नीच और उच्च कुल में उत्पन्न कराना है। क्षेत्रविपाकी और पुद्गलविपाकी नामकर्म भी जीवगुण विनाशक नहीं हैं, क्योंकि क्षेत्रादिकों में प्रतिबद्ध होने से अन्यत्र उनका व्यापार मानने में विरोध आता है।

शंका — जीवविपाकी नामकर्म एवं वेदनीय कर्मों को घाति कर्म संज्ञा क्यों नहीं होती है ?

समाधान — नहीं, उनका काम जीव की अनात्मभूत सुभग, दुर्भग आदि पर्यायें उत्पन्न कराने में व्यापार करना है, इसलिए उन्हें जीवगुणविनाशक मानने में विरोध आता है।

शंका — जीव के सुख को नष्ट करके दुःख उत्पन्न करने वाला असाता वेदनीय घातिकर्म संज्ञा को क्यों नहीं प्राप्त करता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि घातिया कर्मों की सहायता से होने वाला वह घातिया कर्मों के बिना अपना कार्य करने में असमर्थ है तथा होकर के भी उसकी दुःख उत्पन्न करने में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी घात को

तत्र घातिनामनुभागो द्विविधः—सर्वघातकः देशघातकश्च।

उक्तं च— **सव्वावरणीयं पुण उक्कस्सं होदि दारुगसमाणे ।**
हेट्ठा देसावरणं सव्वावरणं च उवरिल्लं।।
णाणावरणचदुक्कं दंसणतिगमंतराइगा पंच।
ता होंति देसघादी संजलणा णोकसाया य[१]।।

स्पर्शनेन्द्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषां चैव सत्त्वोपशमेन अनुदयोपशमेन वा देशघाति-स्पर्धकानामुदयेन जिह्वेन्द्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषां चैव सत्त्वोपशमेन अनुदयोपशमेन वा देशघातिस्पर्धकानामुदयेन चक्षुःश्रोत्रघ्राणेन्द्रियावरणानां देशघातिस्पर्धकानामुदयेन तेषां चैव सत्त्वोपशमेन अनुदयोपशमेन वा सर्वघातिस्पर्धकानामुदयेन क्षायोपशमिकं जिह्वेन्द्रियं समुत्पद्यते। स्पर्शनेन्द्रियाविनाभावेन तच्चैव जिह्वेन्द्रियं द्वीन्द्रियं इति भण्यते, द्वीन्द्रियजातिनामकर्मोदयाविनाभावाद् वा। तेन द्वीन्द्रियेण द्वाभ्यामिन्द्रियाभ्यां वा युक्तो जीवो द्वीन्द्रियो नाम तेन क्षायोपशमिकायाः लब्ध्याः द्वीन्द्रियः इति सूत्रे भणितम् ।

एवमेव त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां पंचेन्द्रियाणां च जीवानां लक्षणं वक्तव्यमत्र।

स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणानि प्रकृतिसमुत्कीर्तनायां नोपदिष्टानि, कथं तेषामिह निर्देशः ?

बतलाने के लिए असातावेदनीय कर्म को घाति संज्ञा नहीं प्राप्त है।

इन कर्मों में घातिया कर्मों का अनुभाग दो प्रकार का है—सर्वघातक और देशघातक। कहा भी है—

गाथार्थ—घातिया कर्मों की जो अनुभाग शक्ति लता, दारू, अस्थि और शैल समान कही गई है, उसमें दारू तुल्य से ऊपर अस्थि और शैल तुल्य भागों में तो उत्कृष्ट सर्वावरणीय शक्ति पाई जाती है, किन्तु दारूसम भाग के निचले अनन्तिम भाग में व उससे नीचे सब लतातुल्य भाग में देशावरण शक्ति है तथा ऊपर के अनन्त बहुभागों में सर्वावरण शक्ति है।।१।।

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चार ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु और अवधि ये तीन दर्शनावरण, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, ये पाँचों अन्तराय तथा संज्वलन चतुष्क और नवनोकषाय, ये तेरह मोहनीय कर्म देशघाती होते हैं।।२।।

स्पर्शेन्द्रियावरण के सर्वघाती स्पधकों के उदयक्षय से, उन्हीं के सत्वोपशम से अथवा अनुदयोपशम से, देशघाती स्पर्धकों के उदय से जिव्हेन्द्रियावरण के सर्वघाती स्पर्धकों के उदयक्षय से, उन्हीं के सत्त्वोपशम से अथवा अनुदयोपशम से और देशघाती स्पर्धकों के उदय से एवं चक्षु, श्रोत्र व घ्राणेन्द्रियावरणों के देशघाती स्पर्धकों के उदय से क्षायोपशमिक जिव्हेन्द्रिय उत्पन्न होती है। स्पर्शेन्द्रिय का अग्निभाव होने से अथवा द्वीन्द्रिय जाति नामकर्मोदय का अविनाभाव होने से जिव्हेन्द्रिय को द्वितीय इन्द्रिय कहते हैं, चूँकि उक्त द्वितीय इन्द्रिय से अथवा दो इन्द्रियों से युक्त होने के कारण जीव द्वीन्द्रिय होता है, इसलिए 'क्षयोपशमिक लब्धि से जीव द्वीन्द्रिय होता है' ऐसा सूत्र में कहा गया है।

इसी प्रकार यहाँ तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों का लक्षण जानना चाहिए।

शंका—स्पर्शन, जिव्हा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियावरणों का प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकार में तो उपदेश नहीं दिया गया, फिर यहाँ उनका निर्देश कैसे किया जाता है ?

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-६४

न, स्पर्शनेन्द्रियावरणादीनां मति-आवरणे अन्तर्भावात्। न च पंचेन्द्रियक्षयोपशमं तत्तः समुत्पन्नज्ञानं वा मुक्त्वा अन्यं मतिज्ञानं अस्ति येनेन्द्रियावरणेभ्यो मतिज्ञानावरणं पृथग्भूतं भवेत्। न चैतेभ्यः पृथग्भूतं नोइन्द्रियं अस्ति येन नोइन्द्रियज्ञानस्य मतिज्ञानत्वं भवेत्।

नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमजनितं नोइन्द्रियमिति, ततः उक्तपंचेन्द्रियेभ्यः पृथग्भूतं इति चेत् ?

यद्येवं तर्हि न ततः समुत्पन्नज्ञानं मतिज्ञानं, मतिज्ञानावरणक्षयोपशमेन अनुत्पन्नत्वात्। ततो मतिज्ञानाभावेन मतिज्ञानावरणस्यापि अभावो भवेत्। तस्मात् षण्णामिन्द्रियाणां क्षयोपशमः तत्तः समुत्पन्नज्ञानं वा मतिज्ञानं, तस्यावरणं मतिज्ञानावरणं इति एषितव्यं अन्यथा मत्यावरणस्याभावप्रसंगात्।

कश्चिदाह—**एकेन्द्रियादीनामौदयिकःभावो वक्तव्यः, एकेन्द्रियजात्यादिनामकर्मोदयेन एकेन्द्रियादि-भावोपलंभात्। यद्येवं न मन्येत तर्हि सयोगि-अयोगिजिनयोः पंचेन्द्रियत्वं न लभ्यते, क्षीणावरणे पंचानामिन्द्रियाणां क्षयोपशमाभावात्। न च तेषां पंचेन्द्रियत्वाभावः, ''पंचिंदिएसु समुग्घादपदेण असंखेज्जेसु भागेसु सव्वलोगे वा'' इति सूत्रविरोधात् ?**

अत्र परिहारः उच्यते—**एकेन्द्रियादीनां भावः औदयिको भवत्येव, एकेन्द्रियजात्यादिनामकर्मोदयेन तेषामुत्पत्तिदर्शनात्। एतस्मात् चैव सयोगि-अयोगिजिनयोः पंचेन्द्रियत्वं युज्यते इति जीवस्थानमपि उपपन्नं। किंतु क्षुद्रकबंधे सयोगि-अयोगिजिनयोः शुद्धनयेन अनिन्द्रिययोः पंचेन्द्रियत्वं यदि इष्यते तर्हि व्यवहारनयेन वक्तव्यं।**

समाधान—नहीं, क्योंकि उन स्पर्शनेन्द्रियादिक आवरणों का मति आवरण में ही अन्तर्भाव होने से वहाँ उनके पृथक् उपदेश की आवश्यकता नहीं समझी गई। पंचेन्द्रियों के क्षयोपशम को वा उससे उत्पन्न हुए ज्ञानों को छोड़कर अन्य कोई मतिज्ञान है ही नहीं, जिससे इन्द्रियावरणों से मतिज्ञानावरण पृथग्भूत होवे और न इन पाँचों इन्द्रियों से पृथग्भूत नोइन्द्रिय है, जिससे नोइन्द्रियज्ञान को मतिज्ञानपना प्राप्त होवे।

शंका—नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली नोइन्द्रिय उक्त पाँच इन्द्रियों से पृथग्भूत ही है ?

समाधान—यदि ऐसा है, तो वे इन्द्रियज्ञान भी नहीं है और उनसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान मतिज्ञान नहीं है, क्योंकि वह मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से नहीं उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार मतिज्ञान के अभाव से मतिज्ञानावरण का भी अभाव हो जायेगा। इसलिए छहों इन्द्रियों का क्षयोपशम अथवा उस क्षयोपशम से उत्पन्न हुआ ज्ञान मतिज्ञान है और उसका आवरण मतिज्ञानावरण है, ऐसा मानना चाहिए। अन्यथा मतिज्ञानावरण के अभाव का प्रसंग आ जायेगा।

यहाँ कोई शंका करता है कि—एकेन्द्रियादिकों में औदयिक भाव कहना चाहिए, क्योंकि एकेन्द्रियजाति आदिक नामकर्म के उदय से एकेन्द्रियादिक भाव पाये जाते हैं। यदि ऐसा न माना जायेगा, तो सयोगी और अयोगी जिनों के पंचेन्द्रियपना नहीं बनेगा, क्योंकि उनके आवरण के क्षीण हो जाने पर पाँचों इन्द्रियों के क्षयोपशम का भी अभाव हो गया है और सयोगि-अयोगी जिनों के पंचेन्द्रियपने का अभाव होता नहीं है, क्योंकि वैसा मानने पर ''पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा समुद्घात पद के द्वारा लोक के असंख्यात बहुभागों में और सर्वलोक में जीव रहते हैं'' इस सूत्र से विरोध आ जायेगा।

उसी का समाधान करते हैं कि—एकेन्द्रियादि जीवों का भाव औदयिक तो होता ही है, क्योंकि एकेन्द्रियादि आदि नामकर्मों के उदय से उनकी उत्पत्ति देखी जाती है और इसी से सयोगी व अयोगी जिनों का पंचेन्द्रियपना बन जाता है और इस प्रकार वह जीवस्थान भी बन जाता है। किन्तु इस क्षुद्रकबंध खंड में शुद्ध-नय से अनिन्द्रिय कहे जाने वाले सयोगी और अयोगी जिनों के यदि पंचेन्द्रियपना कहना है, तो वह केवल व्यवहार नय से ही कहना चाहिए।

तद्यथा—**पंचसु जातिषु यानि प्रतिबद्धानि पंचेन्द्रियाणि तानि क्षायोपशमिकानि इति कृत्वा उपचारेण पंचापि जातयः क्षायोपशमिकाः इति कृत्वा सयोगि-अयोगिजिनानां क्षायोपशमिकं पंचेन्द्रियत्वं युज्यते। अथवा क्षीणावरणे—नष्टेऽपि पंचेन्द्रियक्षयोपशमे क्षयोपशमजनितानां पंचानां बाह्येन्द्रियाणामुपचारेण लब्धक्षयोपशमसंज्ञानां अस्तित्वदर्शनात् सयोगि-अयोगिजिनानां पंचेन्द्रियत्वं साधयितव्यं।**

अधुना अनिन्द्रियाणां स्वामित्वकथनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अणिंदिओ णाम कधं भवदि ?।।१६।।

खइयाए लद्धीए ।।१७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र पूर्ववत् नयनिक्षेपान् आश्रित्य चालना कर्तव्या।**

अत्र कश्चिदाशंकते—**इन्द्रियमये शरीरे विनष्टे इन्द्रियाणामपि नियमेन विनाशः, अन्यथा शरीरेन्द्रियाणां पृथग्भावप्रसंगात्। इन्द्रियेषु विनष्टेषु ज्ञानस्य विनाशः, कारणेन विना कार्योत्पत्तिविरोधात्। ज्ञानाभावे जीवविनाशः, ज्ञानाभावेन निश्चेतनत्वप्राप्तस्य जीवत्वविरोधात्। जीवाभावे न क्षायिका लब्धिः अपि, परिणामिना विना परिणामानामस्तित्वविरोधात् इति ?**

अस्य परिहार उच्यते—**नेदं कथनं युज्यते, जीवो नाम ज्ञानस्वभावः, अन्यथा जीवाभावप्रसंगात्।**

भवतु चेत् ?

वह इस प्रकार है—पाँच जातियों में जो क्रमशः पाँच इन्द्रियों का संबंध हैं वे क्षायोपशमिक हैं ऐसा मानकर उपचार से पाँचों जातियों को भी क्षयोपशमिक स्वीकार करके सयोगी और अयोगी जिनों के क्षयोपशमिक पंचेन्द्रियपना सिद्ध हो जाता है। अथवा आवरण के क्षीण होने पर—नष्ट होने पर भी पंचेन्द्रियों के क्षायोपशमरूप होने पर क्षयोपशम से उत्पन्न और उपचार से क्षायोपशमिक संज्ञा को प्राप्त पाँचों बाह्येन्द्रियों का अस्तित्व पाये जाने से सयोगी और अयोगी जिनों के पंचेन्द्रियपना सिद्ध कर लेना चाहिए।

अब अनिन्द्रिय जीवों का स्वामित्व बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप में दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव अनिन्द्रिय किस कारण से होता है ?।।१६।।

क्षायिक लब्धि से जीव अनिन्द्रिय होता है।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पहले के समान नयों और निक्षेपों का आश्रय लेकर चालना करना—कथन करना चाहिए।

यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि—इंद्रियमय शरीर के विनष्ट हो जाने पर इन्द्रियों का भी नियम से विनाश होता है, अन्यथा शरीर और शरीर के पृथग्भाव का प्रसंग प्राप्त हो जाएगा। इन्द्रियों के विनष्ट हो जाने पर ज्ञान का विनाश हो जाता है। क्योंकि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति मानने में विरोध आता है और ज्ञान के अभाव में जीव का विनाश हो जायेगा, ज्ञान का अभाव होने से निश्चेतनपने को प्राप्त हुए पदार्थ के जीवत्व मानने में विरोध आता है। जीव का अभाव हो जाने पर क्षायिक लब्धि भी नहीं हो सकती, क्योंकि परिणामी के बिना परिणामों का अस्तित्व मानने में विरोध आता है ?

इसका समाधान करते हैं कि—यहाँ यह शंका उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जीव ज्ञानस्वभावी है, अन्यथा जीव के अभाव का प्रसंग प्राप्त हो जाएगा।

शंका—प्रसंग प्राप्त हो तो होता रहे ?

न, प्रमाणाभावे प्रमेयस्यापि अभावप्रसंगात्। न चैवं, तथानुपलंभात्। तस्मात् ज्ञानस्य जीवः उपादानकारणमिति गृहीतव्यं। तच्च ज्ञानं उपादेय यावद्द्रव्यभावि, अन्यथा द्रव्यनियमाभावात्। ततः इन्द्रियविनाशे न ज्ञानस्य विनाशः इति निश्चेतव्यः।

ज्ञानसहकारिकारणेन्द्रियाणामभावे कथं ज्ञानस्यास्तित्वं इति चेत् ?

न, ज्ञानस्वभावस्य पुद्गलद्रव्यानुत्पन्नत्वात्, तथा च उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वलक्षणलक्षितजीवद्रव्यस्य विनाशाभावात्। न चैकं कार्यं एकस्मादेव कारणात् सर्वत्र उत्पद्यते, खदिर-धव-गोमय-सूर्यकिरण-सूर्यकान्तमणिभ्यः समुत्पद्यमानैकाग्निकार्योपलंभात्। न च छद्मस्थावस्थायां ज्ञानकारणत्वेन प्रतिपन्नेन्द्रियाणि क्षीणावरणे भिन्नजातीयज्ञानोत्पत्तौ सहकारिकारणं भवन्तीति नियमः, अतिप्रसंगात्, अन्यथा मोक्षाभावप्रसंगात्। न च मोक्षाभावोऽस्ति, बंधकारणप्रतिपक्षत्रिरत्नानामुपलंभात्। कारणं स्वकार्यं सर्वत्र न करोतीति नियमोऽपि नास्ति, तथानुपलंभात्। तस्मात् अनिन्द्रियेषु जीवेषु करण-क्रम-व्यवधानातीतं ज्ञानमस्तीति गृहीतव्यं । न च तज्ज्ञानं निष्कारणं आत्मार्थसन्निधानेन तदुत्पत्तेः। सर्वकर्मणां क्षयेण उत्पन्नत्वात् क्षायिक्याः लब्धेः अनिन्द्रियत्वं भवतीति ज्ञातव्यं।

तात्पर्यमेतत्—**ज्ञानं स्वयं पंगुवत् वर्तते, सम्यग्दर्शनं यदि भवेत् तर्हि तदेव ज्ञानं सम्यग्ज्ञानं भवति पुनश्च यदि सम्यक्चारित्रं उत्पद्येत तर्हि तदेव ज्ञानं अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानरूपेणापि परिणमते**

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रमाण के अभाव में प्रमेय के भी अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है और प्रमेय का अभाव है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है। इससे यही ग्रहण करना चाहिए कि ज्ञान का जीव उपादान कारण है और वह ज्ञान उपादेय है जो कि यावत् द्रव्यात्मकी अर्थात् पूरे जीवद्रव्य में व्याप्त होकर रहता है। अन्यथा द्रव्य के नियम का अभाव होता है। इसलिए इन्द्रियों का विनाश हो जाने पर ज्ञान का विनाश नहीं होता है, ऐसा निश्चय करना चाहिए।

शंका—ज्ञान के सहकारी कारणभूत इन्द्रियों के अभाव में ज्ञान का अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानस्वभाव पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न नहीं होता तथा उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य से उपलक्षित जीवद्रव्य का विनाश नहीं होता है अतः इन्द्रियों के अभाव में भी ज्ञान का अस्तित्व ही बना रहता है। एक कार्य सर्वत्र एक ही कारण से उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि खदिर, शीशम, धव, गोबर, सूर्यकिरण व सूर्यकान्त मणि इन अनेक कारणों से एक अग्निरूप कार्य उत्पन्न होता देखा जाता है तथा छद्मस्थावस्था में ज्ञान के कारणरूप से स्वीकार की गई इन्द्रियाँ क्षीणावरण जीव के भिन्न जातीय ज्ञान की उत्पत्ति में सहकारी कारण हों, ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है अन्यथा मोक्ष के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है और मोक्ष का अभाव है नहीं। क्योंकि, बंधकारणों के प्रतिपक्षी रत्नत्रय की उपलब्धि हो रही है और कारण सर्वत्र अपना कार्य नहीं करता है ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता। इस कारण अनिन्द्रिय जीवों में करण, क्रम और व्यवधान से अतीत ज्ञान होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यह ज्ञान निष्कारण भी नहीं है, क्योंकि आत्मा और पदार्थ के सन्निधान से वह उत्पन्न होता है। इस प्रकार समस्त कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने के कारण क्षायिक लब्धि के द्वारा ही जीव अनिन्द्रिय होता है, ऐसा जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—ज्ञान स्वयं में पंगु-लंगड़े के समान होता है, यदि उसके साथ सम्यग्दर्शन हो जाता है तब वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है और यदि सम्यक् चारित्र उत्पन्न हो जाता है। तभी वह ज्ञान

अतःकेवलज्ञानरूपमनिन्द्रियज्ञानं एवोपादेयं तस्मात् केवलज्ञानोपलब्धये रत्नत्रयाराधना कर्तव्यास्ति भवद्भिः, संततं पुरूषार्थं कृत्वा तदेव रत्नत्रयं गृहीतव्यं ।

एवं द्वितीयस्थले इन्द्रियमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम
द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अधुना कायमार्गणायां पृथिवीकायिकजीवानां स्वामित्वनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कधं भवदि ?।।१८।।

पुढविकाइयणामाए उदएण।।१९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**प्रथमं सूत्रं तावत् पृच्छारूपमस्ति। किं पृथिवीकायाद् निर्गतः भूतपूर्वनयेन पृथिवीकायिकः उच्यते ? किं वा पृथिवीकायिकानामभिमुखो जीवो नैगमनयावलम्बनेन पृथिवीकायिकः उच्यते ? किं वा पृथिवीकायिकनामकर्मोदयेनेति मनसि आशंक्य 'कधं भवदि'' इति सूत्रे उक्तं भवति।**

अवधिज्ञान-मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञानरूप से भी परिणमित हो जाता है अतः केवलज्ञानरूप अनिन्द्रियज्ञान ही उपादेय है, इसलिए केवलज्ञान की प्राप्ति करने हेतु रत्नत्रय की आराधना करने योग्य है अतः आप सभी को सतत पुरुषार्थ करके उसी रत्नत्रय को ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में इन्द्रियमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करनेवाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का
द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब कायमार्गणा में पृथिवीकायिक जीवों का स्वामित्व निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणानुसार जीव पृथिवीकायिक किस कारण से होते हैं ?।।१८।।

पृथिवीकायिक नामकर्म के उदय से जीव पृथिवीकायिक होते हैं।।१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दोनों सूत्रों में से प्रथम सूत्र पृच्छारूप—प्रश्नवाचक है। क्या पृथिवीकाय से निकला हुआ जीव भूतपूर्व नय से पृथिवीकायिक कहलाता है ? या पृथिवीकायिकों के अभिमुख हुआ जीव नैगम नय के अवलम्बन से पृथिवीकायिक कहा जाता है ? या पृथिवीकायिक नामकर्म के उदय से पृथिवीकायिक कहा जाता है ? ऐसी मन में शंका करके पूछा गया है कि यह जीव पृथिवीकायिक किस कारण से होता है ?

तस्य समाधानं क्रियते आचार्यदेवेन—पृथिवीकायिकनामकर्मोदयेन जीवः पृथिवीकायिकः उच्यते इति अत्र ज्ञातव्यं।

कश्चिदाह—**नामकर्मणां प्रकृतिषु पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-वनस्पति-संज्ञिताः प्रकृतयो न निर्दिष्टाः तेन 'पृथिवीकायिकनाम्नः उदयेन पृथिवीकायिकः' इति नेदं लक्षणं घटते ?**

आचार्यः प्राह—**नैतद् वक्तव्यं, एकेन्द्रियजातिनामकर्मणि एतासामन्तर्भावात्। न च कारणेन विना कार्याणामुत्पत्तिरस्ति। दृश्यन्ते च पृथिव्यप्-तेजोवायु-वनस्पति-त्रसकायिकादिषु अनेकानि कार्याणि। ततः यावन्ति कार्याणि तावन्ति अपि कर्माणि संति इति निश्चयः कर्तव्यः।**

यद्येवं तर्हि भ्रमर-मधुकर-शलभ-पतंग-इन्द्रगोप-शंख-मत्कुण निंब-आम्र-जंबू-जंबीर-कदम्बादिसंज्ञितैः अपि नामकर्मभिः भवितव्यम् ?

नैष दोषः, तथैव इष्यमाणत्वात्। एकैकप्रकृतीनामसंख्यभेदत्वात्।

उक्तं च गोम्मटसारे कर्मकाण्डनाम्नि ग्रन्थे—

''तं पुण अट्ठविहं वा अडदालसयं असंखलोगं वा[१]।''

पृथिवीकायिकानां एकविंशतिः चतुर्विंशति पंचविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिः इति पंचोदयस्थानानि संति। २१।२४।२५।२६।२७। एतेषां स्थानानां प्रकृतीः उच्चार्य गृहीतव्याः। एवमेतासु बहुषु प्रकृतिषु उदयमागम्यमानासु कथं पृथिवीकायिकनाम्नः उदयेन पृथिवीकायिकः इति युज्यते ?

उसका समाधान आचार्यदेव के द्वारा किया गया है कि—पृथिवीकायिक नामकर्म के उदय से जीव पृथिवीकायिक कहे जाते हैं, ऐसा यहाँ जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—नामकर्म की प्रकृतियों में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति नाम की प्रकृतियाँ निर्दिष्ट नहीं की गई हैं, इसलिए 'पृथिवीकायिक नाम कर्म की प्रकृति के उदय से जीव पृथिवीकायिक होते हैं' यह बात घटित नहीं होती ?

आचार्य समाधान करते हैं—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि नामकर्म संबंधी एकेन्द्रियजाति प्रकृति में उक्त सब प्रकृतियों का अन्तर्भाव हो जाता है और कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है तथा पृथिवी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसकायिक जीव आदि रूप से अनेक कार्य—भेद देखे जाते हैं। इसलिए जितने कार्य हैं उतने ही उनके कर्म भी हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिए।

शंका—यदि जितने कार्य हों उतने ही कारण रूप कर्म होते हैं तो भ्रमर, मधुमक्खी, शलभ, पतंग, इन्द्रगोप, शंख, मत्कुण, निंब, आम्र, जम्बु, जम्बीर और कदम्ब आदिक नामों वाले भी नामकर्म मानना चाहिए।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यही बात स्वीकार की गई है। क्योंकि एक-एक प्रकृतियों के असंख्य भेद होते हैं।

गोम्मटसार, कर्मकाण्ड नामकग्रंथ में कहा है—

उन कर्मों के आठ, एक सौ अड़तालिस अथवा असंख्यलोकप्रमाण भेद भी होते हैं।

शंका—पृथिवीकायिक जीवों के इक्कीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस और सत्ताईस प्रकृति वाले पाँच उदयस्थान होते हैं। २१, २४, २५, २६, २७। इन पाँच उदयस्थानों की प्रकृतियों का उच्चारण करके ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार इन बहुत प्रकृतियों के (एक साथ) उदय आने पर पृथिवीकायिक नाम कर्म की प्रकृति के उदय से जीव पृथिवीकायिक होता है ? यह कैसे बन सकता है?

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड, गाथा-७।

न, इतरप्रकृतीनामुदयस्य साधारणत्वोपलंभात्। न च पृथिवीकायिकनामकर्मोदयस्तथा साधारणः अन्यत्रैतस्यानुपलंभात्।

संप्रति अप्कायिकादीनां स्वामित्वकथनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

आउकाइओ णाम कधं भवदि ?।।२०।।

आउकाइयणामाए उदएण।।२१।।

तेउकाइओ णाम कधं भवदि ?।।२२।।

तेउकाइयणामाए उदएण।।२३।।

वाउकाइओ णाम कधं भवदि ?।।२४।।

वाउकाइयणामाए उदएण।।२५।।

वणप्फइकाइओ णाम कधं भवदि ?।।२६।।

वणप्फइकाइयणामाए उदएण।।२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतेषां सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। केवलं अप्कायिकादीनां एकविंशतिः चतुर्विंशतिः पंचविंशतिः षड्विंशतिः इति चत्वारि उदयस्थानानि। सप्तविंशतिप्रकृतेः स्थानं अत्र नास्ति, आतपोद्योतयोरुदयाभावात्। किंतु अप्कायिक-वनस्पतिकायिकयोः सप्तविंशतिप्रकृतिस्थानेन सह पंच उदयस्थानानि, आतपेन**

समाधान—नहीं, क्योंकि दूसरी प्रकृतियों का उदय साधारण पाया जाता है। किन्तु पृथिवीकायिक नामकर्म का उदय उस प्रकार साधारण नहीं है, क्योंकि अन्य पर्यायों में वह नहीं पाया जाता है।

अब जलकायिक आदि जीवों का स्वामित्व बतलाने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव जलकायिक किस कारण से होता है ?।।२०।।

जलकायिक नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव जलकायिक होता है।।२१।।

जीव अग्निकायिक किस कारण से होता है ?।।२२।।

अग्निकायिक नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव अग्निकायिक होता है।।२३।।

जीव वायुकायिक किस कारण से होता है ?।।२४।।

वायुकायिक नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव वायुकायिक होता है।।२५।।

जीव वनस्पतिकायिक किस कारण से होता है ?।।२६।।

वनस्पतिकायिक नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव वनस्पतिकायिक होता है।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेषता केवल इतनी है कि जलकायिक आदि जीवों के इक्कीस, चौबीस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृति वाले चार उदयस्थान होते हैं। उनके सत्ताईस प्रकृति वाला उदयस्थान नहीं होता है, क्योंकि उनके आतप और उद्योत इन दो प्रकृतियों के उदय का अभाव होता है। किन्तु जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के सत्ताईस प्रकृति वाले उदयस्थान को मिलाकर

विना तत्र उद्योतस्य क्वचित् क्वचित् उदयदर्शनात्।

त्रसकायिकानां स्वामित्वप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

तसकाइओ णाम कधं भवदि ?।।२८।।

तसकाइयणामाए उदएण।।२९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमो वर्तते। विशेषेण तु त्रसकायिकजीवानां विंशतिः एकविंशतिः पंचविंशतिः षड्विंशतिः सप्तविंशतिः अष्टाविंशतिः एकोनत्रिंशत् त्रिंशत् एकत्रिंशत् नवाष्टौ इति एकादश उदयस्थानानि भवन्ति। एतानि ज्ञात्वा वक्तव्यानि।**

संप्रति कायविरहितानां स्वामित्वनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अकाइओ णाम कधं भवदि ?।।३०।।

खइयाए लद्धीए।।३१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**षट्कायिकनामकर्मप्रकृतीनां विनाशोऽस्ति, मिथ्यात्वाद्यास्त्रवाणां विनाशानुपलंभात्। न चानादित्वेन नित्यं मिथ्यात्वं विनश्यति, नित्यस्य विनाशविरोधात्। मिथ्यात्वाद्यास्त्रवः सादिः नास्ति, संवरेण निर्मूलतः अपसारितास्त्रवस्य पुनरुत्पत्तिविरोधात्। इदं सर्वं मनसि अवधार्य ''अकायिको नाम कथं भवति'' इति प्रोक्तं प्रश्नरूपेण।**

तस्य समाधानं अग्रिमसूत्रे कथितं—

पाँच उदयस्थान होते हैं, क्योंकि उनके आतप के बिना उद्योत का कहीं-कहीं उदय देखा जाता है।

अब त्रसकायिक जीवों का स्वामित्व बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव त्रसकायिक किस कारण से होता है ?।।२८।।

त्रसकायिक नामकर्म की प्रकृति के उदय से जीव त्रसकायिक होता है।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। विशेषता यह है कि त्रसकायिक जीवों के बीस, इक्कीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, नौ और आठ प्रकृति वाले ग्यारह उदयस्थान होते हैं। इनको जानकर कथन करना चाहिए।

अब काय रहित जीवों का स्वामित्व निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव अकायिक किस कारण से होता है ?।।३०।।

क्षायिक लब्धि से जीव अकायिक होता है।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—षट्कायिक नामकर्म की प्रकृतियों का विनाश होता है, क्योंकि मिथ्यात्वादिक आस्त्रवों का विनाश नहीं पाया जाता है और अनादिपने की अपेक्षा नित्य मिथ्यात्व विनष्ट नहीं होता है, क्योंकि नित्य का विनाश के साथ विरोध है। मिथ्यात्वादिक आस्त्रव सादि नहीं है, क्योंकि संवर के द्वारा निर्मूलतः आस्त्रव के दूर हो जाने पर उसकी पुनः उत्पत्ति होने में विरोध आता है। यह सब मन में धारण करके जीव अकायिक किस कारण से होता है। यह बात प्रश्नरूप से कही गई है।

उसका समाधान अगले सूत्र के माध्यम से किया है—

न चानादित्वात् नित्यः आस्रवः कूटस्थानादिं मुक्त्वा प्रवाहानादौ नित्यत्वानुपलंभात्। उपलंभे वा न बीजादीनां विनाशः, प्रवाहस्वरूपेण तेषामनादित्वदर्शनात्। ततो नानादित्वं साधनं, अनैकांतिकदोषत्वात्। न चास्रवः कूटस्थानादिस्वभावः मिथ्यात्व-असंयम-कषायास्रवाणां प्रवाहानादिस्वरूपेण समागतानां वर्तमानकालेऽपि कस्मिंश्चिद् जीवेऽपि विनाशदर्शनात्।

तात्पर्यमेतत्—**इमे षट्कायिकाः जीवाः पंचस्थावरकायान् द्वीन्द्रियादिजीवान् वा पर्यायान् अतीत्य मनुष्यो भूत्वा रत्नत्रयमाराध्य स्वयं स्वस्मिन् तिष्ठन्ति तर्हि ते अकायिकाः सिद्धाः शुद्धाः भगवन्तो भवन्ति।**

उक्तं च स्वरचितचन्द्रप्रभस्तुतौ—

शरीरी प्रत्येकं भवति भुवि वेधाः स्वकृतितः।
विधत्ते नानाभू-पवन-जल-वह्नि-द्रुमतनुम्।।
त्रसो भूत्वा भूत्वा कथमपि विधायात्र कुशलम्।
स्वयं स्वस्मिन्नास्ते भवति कृतकृत्यः शिवमयः[१]।।

इति ज्ञात्वा अशरीरी भवितुं प्रयत्नो विधातव्यः।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथममहाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम
तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अनादि होने से आश्रव नित्य नहीं होता है, क्योंकि कूटस्थ अनादि को छोड़कर प्रवाह अनादि में नित्यत्व नहीं पाया जाता है। यदि पाया जाये तो बीजादिक का विनाश नहीं होना चाहिए, क्योंकि प्रवाहरूप से तो उनमें अनादिपना देखा जाता है। इसलिए अनादिपना आस्रव के नित्यत्व सिद्ध करने में साधन नहीं हो सकता है, क्योंकि ऐसा मानने में अनैकान्तिक दोष आता है और आस्रव कूटस्थ अनादि स्वभाव वाला है नहीं, क्योंकि प्रवाह की अपेक्षा अनादिरूप से आये हुए मिथ्यात्व, असंयम और कषायरूप आस्रवों का वर्तमानकाल में भी किसी-किसी जीव में विनाश देखा जाता है।

तात्पर्य यह है कि—ये षट्कायिक जीव पंचस्थावररूप अथवा दो इन्द्रिय आदि जीव की पर्यायों को छोड़कर मनुष्य जन्म धारण कर रत्नत्रय की आराधना करके स्वयं अपनी आत्मा में लीन होते हैं, तब वे कायरहित सिद्ध, शुद्ध भगवान की अवस्था प्राप्त कर लेते हैं।

जैसा कि मेरे द्वारा रचित चन्द्रप्रभस्तुति में कहा भी है—

श्लोकार्थ—इस संसार में प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार प्रवृत्ति करता हुआ अनेक प्रकार के पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-वनस्पति आदि तुच्छ शरीरों को धारण करता रहता है। पुनः कदाचित् पुण्ययोग से त्रसपर्याय प्राप्त करके मनुष्य जन्म धारणकर स्वयं निजात्मा में लीन होकर कृतकृत्य शिवमय हो जाता है अर्थात् मोक्षधाम को प्राप्त कर लेता है, ऐसा जानकर अशरीरी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का
तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. स्वरचित चंद्रप्रभस्तुति (जिनस्तोत्रसंग्रहः)

अथ योगमार्गणाधिकारः

अधुना योगमार्गणायां त्रिविधयोगिनां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

जोगाणुवादेण मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ?।।३२।।

खओवसमियाए लद्धीए।।३३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका —**योगः नाम जीवप्रदेशानां परिस्पंदः संकोचविकोचलक्षणः। स च क्षायोपशमिकः इति।**

कश्चिदाह —**अयं योगः किमौदयिकः किं क्षायोपशमिकः किं पारिणामिकः किं क्षायिकः किमौपशमिकः इति ? न तावत् क्षायिकः संसारिजीवेषु सर्वकर्मणामुदयेन वर्तमानेषु योगाभावप्रसंगात्, सिद्धेषु सर्वकर्मोदय-विरहितेषु योगस्यास्तित्वप्रसंगाच्च। न पारिणामिकः, क्षायिके उक्ताशेषदोषप्रसंगात्। नौपशमिकः औपशमिक-भावेन मुक्तमिथ्यादृष्टिगुणस्थाने योगाभावप्रसंगात्। न घातिकर्मोदयसमुद्भूतः, केवलिनि भगवति क्षीणघातिकर्मोदये योगाभावप्रसंगात्। नाघातिकर्मोदयसमुद्भूतः, अयोगिनि अपि योगस्य सत्त्वप्रसंगात्। न घातिकर्मणां क्षायोपशमजनितः, केवलिनि योगाभावप्रसंगात्। नाघातिकर्मक्षयोपशमजनितः, तत्र सर्व-**

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब योगमार्गणा में तीनों प्रकार के योग वाले जीवों का स्वामित्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणा के अनुवाद से जीव मनोयोगी वचनयोगी और काययोगी किस कारण से होता है ?।।३२।।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव मनोयोगी वचनयोगी और काययोगी होता है।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जीव प्रदेशों के संकोच-विसर्पण लक्षणरूप परिस्पंदन का नाम योग है और वह योग क्षायोपशमिक होता है।

यहाँ कोई शंका करता है — यह योग क्या औदयिक भाव है, क्या क्षायोपशमिक है क्या पारिणामिक है, क्या क्षायिक है अथवा क्या औपशमिक है ? योग क्षायिक तो हो नहीं सकता ,क्योंकि संसारी जीवों के सर्व कर्मों के उदय सहित वर्तमान रहते हुए योग के अभाव का प्रसंग आता है तथा सर्व कर्मोदय से रहित सिद्धों में योग के अस्तित्व का प्रसंग आता है। योग पारिणामिक भी नहीं हो सकता है, क्योंकि ऐसा मानने पर क्षायिक मानने से उत्पन्न होने वाले समस्त दोषों का प्रसंग आता है। योग औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि औपशमिक भाव से रहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में योग के अभाव का प्रसंग आता है। योग घातिकर्मों के उदय से उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि सयोगिकेवली में घातिकर्मों का उदय क्षीण होने पर योग के अभाव का प्रसंग आता है। अघातिकर्मों के उदय से उत्पन्न भी नहीं है, क्योंकि वैसा मानने से अयोगिकेवली में भी योग के सत्व का प्रसंग आता है। योग घातिकर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न भी नहीं होता है, क्योंकि इससे भी सयोगिकेवली में तथा अयोगि में क्षायोपशमिकी योग के अभाव का प्रसंग आता है। योग अघातिकर्मों के क्षयोपशम से भी उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि अघातिकर्मों के

देशघातिस्पर्धकाभावात् क्षयोपशमाभावोऽस्ति। इदं सर्वं बुद्धौ कृत्वा 'मनोवचनकाययोगिनः कथं भवन्तीति' पृच्छासूत्रं आगतम् ।

अस्य समाधानं क्रियते—**शरीरनामकर्मोदयेन शरीरप्रायोग्यपुद्गलेषु बहुषु संचयं गच्छत्सु वीर्यान्तरायस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावेन तेषां सत्त्वोपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन समुद्भवात् लब्धक्षयोपशमव्यपदेशं वीर्यं वर्धते तद्वीर्यं प्राप्य येन जीवप्रदेशानां संकोचः विकोचः वर्धते तेन योगः क्षायोपशमिकः उक्तो भवति।**

यदि योगः वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः तर्हि सयोगिकेवलिनि योगाभावः प्रसज्यते ?

नैतत्, उपचारेण क्षायोपशमिकं भावं प्राप्तस्य औदयिकस्य योगस्य तत्राभावविरोधात्।

स च योगस्त्रिविधः—मनोयोगः वचनयोगः काययोगश्चेति। मनोवर्गणायाः निष्पन्नद्रव्यमनोऽवलम्ब्य यो जीवस्य संकोच-विकोचः सः मनोयोगः। भाषावर्गणापुद्गलस्कंधान् अवलम्ब्य जीवप्रदेशानां संकोच-विकोचः सः वचनयोगः। यः चतुर्विधशरीराणि अवलम्ब्य जीवप्रदेशानां संकोच-विकोचः सः काययोगो नाम।

द्वौ वा त्रयो वा योगाः किन्न भवन्ति ?

न, तेषां योगानां युगपत् वृत्तिनिषिद्धत्वात्।

तेषां युगपत् वृत्तिरुपलभ्यते इति चेत् ?

न, इन्द्रियविषयमतिक्रान्तजीवप्रदेशपरिस्पन्दस्य इंद्रियैः उपलब्धिविरोधात्। न जीवे चलति जीवप्रदेशानां

सर्वघाती और देशघाती स्पर्धकों का अभाव होने से वहाँ क्षयोपशम भाव का अभाव पाया जाता है। यह सब मन में विकल्प विचार करके 'जीव मनोयोगी वचनयोगी और काययोगी किस कारण से होते हैं', ऐसा पृच्छा सूत्र आया है।

इसका समाधान करते हैं—

शरीर नामकर्म के उदय से शरीर बनने के योग्य बहुत से पुद्गलों के संचय को प्राप्त होने पर वीर्यान्तराय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदयाभाव से व उन्हीं स्पर्धकों के सत्त्वोपशम से तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न होने के कारण क्षायोपशमिक कहलाने वाला जो वीर्य (बल) बढ़ता है, उस वीर्य को पाकर जीव प्रदेशों का संकोच-विकोच बढ़ता है। इसलिए योग क्षायोपशमिक कहा गया है।

शंका—यदि योग वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, तो सयोगिकेवली में योग के अभाव का प्रसंग आता है ?

समाधान—ऐसा प्रसंग नहीं आता है, क्योंकि योग क्षायोपशमिक भाव तो उपचार से माना गया है। वास्तव में तो योग औदयिक भाव ही है और औदयिक योग का सयोगिकेवली के अभाव मानने में विरोध आता है।

वह योग तीन प्रकार का है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। मनोवर्गणा से निष्पन्न हुए द्रव्यमन को अवलम्बन करके जो जीव का संकोच-विस्तार होता है, वह मनोयोग है। भाषावर्गणासंबंधी पुद्गलस्कंधों को अवलम्बन करके जो जीवप्रदेशों का संकोच-विस्तार होता है, वह वचनयोग है और जो चतुर्विध शरीर को अवलम्बन करके जीवप्रदेशों का संकोच-विस्तार होता है, वह काययोग है।

शंका—दो या तीन योग एक साथ क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनकी एक साथ वृत्ति का निषेध है।

शंका—अनेक योगों की एक साथ वृत्ति पाई जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इन्द्रियों के विषय से परे जो जीव प्रदेशों का परिस्पन्दन होता है, उसका

संकोच विकोचनियमः, सिद्धयत्प्रथमसमये इतः मध्यलोकात् लोकाग्रं गच्छति, जीवप्रदेशानां संकोच-विकोचानु-पलंभात्।

कथं मनोयोगः क्षायोपशमिकः ?

उच्यते, वीर्यान्तरायस्य सर्वघातिस्पर्धकानां सत्त्वोपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन नोइन्द्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषां चैव सत्त्वोपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन मनःपर्याप्तेः पर्याप्तगतस्य येन मनोयोगः समुत्पद्यते तेनैषः क्षायोपशमिकः। वीर्यान्तरायस्य सर्वघातिस्पर्धकानां सत्त्वोपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन रसनेन्द्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयक्षयेण तेषां चैव सत्त्वोपशमेन देशघाति-स्पर्धकानामुदयेन भाषापर्याप्तेःपर्याप्तगतस्य स्वरनामकर्मोदयसहितस्य वचनयोगस्योपलंभात् क्षायोपशमिकः वचनयोगः। वीर्यान्तरायस्य सर्वघातिस्पर्धकानां सत्त्वोपशमेन देशघातिस्पर्धकानामुदयेन काययोगोपलंभात् क्षायोपशमिकः काययोगः इति।

संप्रति अयोगिनां व्यवस्थाप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अजोगी णाम कधं भवदि ?।।३४।।

खइयाए लद्धीए।।३५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र नयनिक्षेपैः अयोगित्वस्य पूर्ववत् चालना कर्तव्या। योगकारणशरीरादि-कर्मणां निर्मूलक्षयेण उत्पन्नत्वात् क्षायिका लब्धिरयोगिकेवलिनां भगवतां भवति।**

इन्द्रियों द्वारा उपलब्धि होने में विरोध आता है। जीवों के चलते समय जीव प्रदेशों के संकोच-विस्तार का नियम नहीं है, क्योंकि सिद्ध होने के प्रथम समय में जब जीव यहाँ से अर्थात् मध्यलोक से लोक के अग्रभाग को जाता है, तब जीव प्रदेशों में संकोच-विस्तार नहीं पाया जाता है।

शंका—मनोयोग क्षायोपशमिक कैसे है ?

समाधान—बतलाते हैं—वीर्यान्तरायकर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के सत्वोपशम से व देशघाती स्पर्धकों के उदय से नोइन्द्रियावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदयक्षय से उन्हीं स्पर्धकों के सत्वोपशम से तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय से मनपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के मनोयोग उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। वीर्यान्तराय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के सत्वोपशम से व देशघाती स्पर्धकों के उदय से, जिव्हेन्द्रियावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदयक्षय से व उन्हीं के सत्वोपशम से तथा देशघाती स्पर्धकों के उदय से भाषापर्याप्ति से पर्याप्त हुए स्वर नामकर्मोदय सहित जीव के वचनयोग पाया जाता है, इसलिए वचनयोग भी क्षायोपशमिक है। वीर्यान्तरायकर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के सत्वोपशम से देशघाती स्पर्धकों के उदय से काययोग पाया जाता है, इसलिए काययोग भी क्षायोपशमिक है, ऐसा जानना चाहिए।

अब अयोगिकेवलियों की व्यवस्था को बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव अयोगी किस कारण से होता है ?।।३४।।

क्षायिक लब्धि से जीव अयोगी होता है।।३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पर नयों और निक्षेपों के द्वारा अयोगिपने का पूर्ववत् कथन करना चाहिए। योग के कारणभूत शरीरादिक कर्मों के निर्मूल क्षय से उत्पन्न होने के कारण अयोगी भगवन्तों के क्षायिक लब्धि होती है।

एवं योगाधिकारे औदयिकादिभावनिरूपणपरत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम
चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

संप्रति वेदमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणाय प्रश्नोत्तराभ्यां सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो णाम कधं भवदि ?।।३६।।

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदा।।३७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**किमौदयिकेन भावेन इति पंचविधभावान् प्रश्नरूपेण मनसि अवधार्य स्त्रीवेदादयः कथं भवन्ति इति कथितं प्रथमसूत्रे। एवंविधसंशयविनाशनार्थमुत्तरसूत्रं कथितं श्रीभूतबलिसूरिवर्येण।**

अतः स्त्रीवेदोदयेन स्त्रीवेदः, पुरूषवेदोदयेन पुरुषवेदः, नपुंसकवेदोदयेन नपुंसकवेदः इति इमे त्रयोऽपि भेदाः चारित्रमोहनीयस्य भवन्ति।

अत्र कश्चिदाह—**स्त्रीवेदद्रव्यकर्मजनितपरिणामः किं स्त्रीवेदः उच्यते, नामकर्मोदयजनितस्तन-जघन-**

इस प्रकार योगमार्गणा के अधिकार में औदयिक आदि भावों का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का
चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब वेदमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने हेतु प्रश्नोत्तर रूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणानुसार जीव स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी किस कारण से होता है ?।।३६।।

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद होते हैं।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्या औदयिक भाव से अथवा पाँचों प्रकार के भावों को प्रश्नरूप मन में धारण करके स्त्रीवेद आदि किस कारण से होते हैं, ऐसा प्रश्न उपर्युक्त प्रथम सूत्र में किया गया है। इस प्रकार के संशय का विनाश करने हेतु श्री भूतबली आचार्य ने उत्तर सूत्र कहा है।

अतः स्त्रीवेद के उदय से स्त्रीवेद उत्पन्न होता है, पुरुषवेद के उदय से पुरुषवेद उत्पन्न होता है और नपुंसकवेद के उदय से नपुंसकवेद उत्पन्न होता है, ये तीनों भेद चारित्रमोहनीय के होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—स्त्रीवेद द्रव्यकर्म से उत्पन्न हुए परिणाम को क्या स्त्रीवेद कहते हैं या नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए स्तन, जांघ, योनि आदि से विशिष्ट शरीर को स्त्रीवेद कहते हैं ? शरीर को तो

योनिविशिष्टशरीरं वा। न तावत् शरीरं स्त्रीवेदः 'चारित्रमोहोदयेन वेदानामुत्पत्तिं प्ररूपयता' एतेन सूत्रेण सह विरोधात्। शरीरसहितानामपगतवेदत्वाभावाच्च। न प्रथमपक्षः, एकस्मिन् कार्यकारणभावविरोधात् ?

अत्र परिहारःक्रियते—**न स्तन-जघन-योनिविशिष्टशरीरं स्त्रीवेदरूपोऽयं द्वितीयपक्षः, अनभ्युपगमात्। किंच नामकर्मोदयस्य प्रधानत्वमत्र। न च प्रथमपक्षे कथितदोषोऽत्र, परिणामात् परिणामिनः जीवस्य कथंचित् भेदेन एकत्वाभावात्।**

कुतः ?

चारित्रमोहनीयस्य उदयः कारणं,कार्यं पुनः तदुदयविशिष्टः स्त्रीवेदसंज्ञितः जीवः। तेन पर्यायेण तस्योत्पद्यमानत्वात् न कार्यकारणभावोऽत्र विरुद्ध्यते। एवं शेषवेदयोरपि वक्तव्यं।

अपगतवेदिनः केन कारणेन इति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अवगदवेदो णाम कधं भवदि ?।।३८।।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए।।३९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। विवक्षितवेदोदयेन उपशमश्रेणिमारुह्य मोहनीयस्य अंतरं कृत्वा यथायोग्यस्थाने विवक्षितवेदस्य उदय-उदीरणा-उत्कर्षण-अपकर्षण-परप्रकृतिसंक्रमण-स्थिति-अनुभाग-खण्डैर्विना जीवे पुद्गलस्कंधानामवस्थानमुपशमः। तदानीं यावत् जीवस्य वेदाभावस्वरूपा लब्धिः, तस्याः**

यहाँ स्त्रीवेद मात्र नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा मानने पर चारित्रमोह के उदय से वेदों की उत्पत्ति का प्ररूपण करने वाले इस सूत्र से विरोध आता है और शरीर सहित जीवों के अपगत वेदपने के अभाव का भी प्रसंग आता है। प्रथम पक्ष तो बनता नहीं है, क्योंकि एक में कार्य-कारणभाव होने में विरोध आता है ?

इस शंका का परिहार करते हैं—स्तन, जांघ और योनि आदि से विशिष्ट शरीर सहित स्त्रीवेदरूप द्वितीय पक्ष यहाँ नहीं बनता है, क्योंकि वैसा स्वीकार नहीं किया गया है तथा यहाँ नामकर्म के उदय की प्रधानता है और प्रथमपक्ष में कथित दोष भी यहाँ उपस्थित नहीं होगा, क्योंकि परिणाम से परिणामी कथंचित् भिन्न होने के कारण एकत्व का अभाव पाया जाता है।

प्रश्न—ऐसा कैसे सिद्ध होता है ?

उत्तर—क्योंकि चारित्रमोहनीय का उदय तो कारण है और उसका उस कर्मोदय से विशिष्ट स्त्रीवेदी कहने वाला जीव कार्य है। चूँकि विवक्षित कर्मोदय से उस पर्याय से विशिष्ट वह जीव उत्पन्न हुआ है, अतएव यहाँ कारण-कार्य भाव विरोध को प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार शेष दोनों वेदों के विषय में भी कहना चाहिए।

अपगतवेदी किस कारण से होते हैं ? इस प्रकार के प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अपगतवेदी किस कारण से होतें हैं ?।।३८।।

औपशमिक व क्षायिक लब्धि से जीव अपगतवेद होते हैं।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। विवक्षित वेद के उदय से उपशमश्रेणी पर चढ़कर, मोहनीय कर्म का अंतर करके यथायोग्य स्थान में विवक्षित वेद के उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृति संक्रमण, स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक के बिना जीव में जो पुद्गलस्कंधों का अवस्थान होता है उसे उपशम कहते हैं। उस समय जीव की जो वेद के अभावरूपलब्धि है, उससे अपगतवेद होता है। इस

येन अपगतवेदो भवति। तेन औपशमिक्याः लब्धेः अपगतवेदो भवति इति उक्तं सूत्रे।

विवक्षितवेदोदयेन क्षपकश्रेणिं आरुह्य अन्तरकरणं कृत्वा यथायोग्यस्थाने विवक्षितवेदस्य पुद्गलस्कंधानां स्थिति-अनुभागाभ्यां सह जीवप्रदेशेभ्यः निःशेषोऽपसरणं क्षयो नाम। तत्रोत्पन्नजीवपरिणामः क्षायिकः, तस्य लब्धिः क्षायिका लब्धिः, तस्याः क्षायिकायाः लब्धेः वा अपगतवेदो भवति।

कश्चिदाह—**वेदाभाव-लब्ध्योः एककाले एव उत्पद्यमानयोः कथं आधाराधेयभावः कार्यकारणभावो वा ?**

तस्य परिहारः क्रियते—**नैतद् वक्तव्यं, समकालेन उत्पद्यमानछायांकुरयोः कार्यकारणभावदर्शनात्, घटोत्पत्तौ कुशूलाभावदर्शनाच्च।**

भवतु नाम, त्रिवेदद्रव्यकर्मक्षयेण भाववेदाभावः, कारणाभावात् कार्यस्याभावस्यापि न्यायत्वात्। किंतु उपशमश्रेण्यां द्रव्यकर्मस्कंधेषु त्रिवेदसंबंधिषु सत्सु भाववेदाभावो न घटते, सति कारणे कार्याभावविरोधात् ?

न, औषधीनां दृष्टशक्तीनां अजीर्णरोगिणि जीवे प्रयुक्तानां आमरोगेण प्रतिहतशक्तीनां स्वकार्यकारणानु-पलंभात्।

अत्र वेदमार्गणायां एष विशेषो ज्ञातव्यः—**ये केचित् द्रव्यवेदेन पुरुषाः भाववेदेन स्त्रीवेदिनो नपुंसकवेदिनो वा त एव उपशमश्रेणिं क्षपकश्रेणिं वारोढुं क्षमा भवन्ति न च द्रव्येण स्त्रीवेदिनो नपुंसकवेदिनो वा। अस्मिन् षट्खण्डागमग्रंथे सर्वत्र वेदमार्गणायां भाववेदापेक्षयैव कथनमवगन्तव्यम्।**

एवं वेदसहितानां अपगतवेदानां च स्वामित्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

कारण उपशमलब्धि से अपगतवेद होता है यह सूत्र में कहा गया है।

विवक्षित वेद के उदय से क्षपक श्रेणी पर चढ़कर अन्तरकरण करके यथायोग्य स्थान में विवक्षित वेद संबंधी पुद्गलस्कंधों के स्थिति और अनुभागसहित जीव प्रदेशों से निशेषतः—पूर्णरूप से दूर हो जाने को क्षय कहते हैं। उस अवस्था में जो जीव का परिणाम होता है वह क्षायिक भाव है। उस भाव की लब्धि को क्षायिक लब्धि कहते हैं। अथवा उस क्षायिक लब्धि से अपगतवेद होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—वेद का अभाव और वेद के अभाव से होने वाली लब्धि ये दोनों जब एक ही काल में उत्पन्न होते हैं, तब उनमें आधार-आधेयभाव या कार्य-कारणभाव कैसे बन सकता है ?

उसका समाधान करते हैं—नहीं, क्योंकि समान काल में उत्पन्न होने वाले छाया और अंकुर में कार्य कारण भाव देखा जाता है तथा घट की उत्पत्ति के काल में ही कुशूल का अभाव देखा जाता है।

शंका—तीनों वेदों संबंधी द्रव्यकर्मों के क्षय से भाववेद का अभाव भले ही हो, क्योंकि कारण के अभाव से कार्य का अभाव होना भी न्यायसंगत है। किन्तु उपशमश्रेणी में त्रिवेद संबंधी पुद्गलस्कंधों के रहते हुए भाववेद का अभाव घटित नहीं होता है, क्योंकि कारण के सद्भाव में कार्य का अभाव मानने में विरोध आता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिनकी शक्ति देखी जा चुकी है, ऐसी औषधियाँ जब किसी अजीर्णरोग सहित अर्थात् अजीर्ण के रोगी जीव को दी जाती हैं, तब उस अजीर्ण रोग से उन औषधियों की वह शक्ति नष्ट हो जाती है अतः वे अपने कार्य सहित कारणरूप से नहीं पाई जाती है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए।

इस प्रकार वेदसहित जीवों का और वेदरहित भगवन्तों का स्वामित्व बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार की सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अधुना कषायमार्गणायां कषायसहितरहितानां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते–

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णाम कधं भवदि ?।।४०।।

चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण।।४१।।

अकसाई णाम कधं भवदि ?।।४२।।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए।।४३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**क्रोधो द्विविधो—द्रव्यक्रोधो भावक्रोधश्चेति। द्रव्यक्रोधः भावक्रोधोत्पत्तिनिमित्त-द्रव्यं। तद् द्विविधं—कर्मद्रव्यं नोकर्मद्रव्यं च। यत् कर्मद्रव्यं यत्त्रिविधं—बंधोदयसत्त्वभेदेन।**

यत्क्रोधनिमित्तनोकर्मद्रव्यं नैगमनयाभिप्रायेण लब्धक्रोधव्यपदेशं तद् द्विविधंसचित्तमचित्तं च । एते क्रोधकषायाः यस्य सन्ति स क्रोधकषायी। अत्र प्रथमसूत्रे अर्पितक्रोधकषायी कथं भवति ? केन प्रकारेण भवतीति पृच्छा कृता। एवं शेषकषायाणामपि वक्तव्यं। अविवक्षितकषायान् निवार्य अर्पितकषायज्ञापनार्थ-मुत्तरसूत्रमवतारितं।

चारित्रमोहनीयस्य कर्मणः उदयेन जीवः क्रोधकषायी भवति, इति शेषाणामपि कषायाणां विषये

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब कषायमार्गणा में कषायरहित जीवों का स्वामित्व निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणानुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी किस कारण से होता है ?।।४०।।

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से जीव क्रोध कषायी आदि होता है।।४१।।

जीव अकषायी किस कारण से होता है ?।।४२।।

औपशमिक व क्षायिक लब्धि से जीव अकषायी होता है।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्रोध के दो भेद हैं—द्रव्यक्रोध और भावक्रोध। भावक्रोध की उत्पत्ति के निमित्तभूत द्रव्य को द्रव्यक्रोध कहते हैं। वह द्रव्यक्रोध दो प्रकार का है—कर्मद्रव्य और नोकर्मद्रव्य। कर्मद्रव्य बंध, उदय और सत्व के भेद से तीन प्रकार का है।

क्रोध के निमित्तभूत जिस नोकर्मद्रव्य ने नैगम नय के अभिप्राय से क्रोध संज्ञा प्राप्त की है, वह दो प्रकार का है—सचित्त और अचित्त। ये सब क्रोधकषाय जिस जीव के होते हैं, वह क्रोधकषायी हैं। प्रस्तुत सूत्र में यह बात पूछी गई है कि विवक्षित क्रोधकषायी कैसे अर्थात् किस प्रकार से होता है ? इसी प्रकार से शेष कषायों का भी कथन करना चाहिए। अविवक्षित कषायों का निवारण करके विवक्षित कषायों का ज्ञान कराने के लिए उत्तर सूत्र अवतरित हुआ है।

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से जीव क्रोधकषायी होता है, इसी प्रकार शेष कषायों के प्रति भी जानना

ज्ञातव्यः। तेन क्रोधकषायस्योदयेन क्रोधकषायी, मानकषायस्योदयेन मानकषायी, मायाकषायस्योदयेन मायाकषायी, लोभकषायोदयेन लोभकषायीति सिद्धं भवति।

पूर्वोक्तकषायाणां कस्याभावेन अकषायी भवति इति पृच्छासूत्रमवतार्य अग्रे समाधत्ते आचार्यदेवः —

चारित्रमोहनीयस्य उपशमेण क्षयेण च या उत्पन्ना लब्धिः, तया अकषायत्वं सिद्ध्यति, न शेषकर्मणां क्षयेणोपशमेण वा, तस्मात् जीवस्य उपशामक-क्षायिकलब्ध्योः अनुत्पत्तेः।

एवं कषायिणां अकषायिणां च प्रतिपादनपरत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

संप्रति ज्ञानमार्गणायां लब्धिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी णाम कधं भवदि ?।।४४।।

खओवसमियाए लद्धीए।।४५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अत्र प्रथमतस्तावत् मतिअज्ञानस्य कथनं क्रियते — मत्यज्ञानकारणं द्विविधं —**

चाहिए। अतः क्रोधकषाय के उदय से क्रोधकषायी, मानकषाय के उदय से मानकषायी, मायाकषाय के उदय से मायाकषायी और लोभकषाय के उदय से जीव लोभकषायी होता है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

पूर्वोक्त कषायों में से किस कषाय के अभाव से जीव अकषायी होता है, ऐसा पृच्छा सूत्र यहाँ अवतरित करके आगे आचार्यदेव समाधान करते हैं —

चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम से और क्षय से जो लब्धि उत्पन्न होती है, उसी से अकषायपना उत्पन्न होता है। शेष कर्मों के क्षय व उपशम से अकषायपना उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि उससे जीव के (तत्प्रायोग्य) औपशमिक या क्षायिक लब्धियाँ उत्पन्न नहीं होती है।

इस प्रकार कषायी और अकषायी जीवों का स्वामित्व बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार की सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब ज्ञानमार्गणा में लब्धि को बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणानुसार जीव मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी किस कारण से होता है ?।।४४।।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव मतिअज्ञानी आदि होता है।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ सर्वप्रथम मतिअज्ञान का कथन करते हैं — मति अज्ञान का कारण

द्रव्यकारणं भावकारणं च। तत्र द्रव्यकारणं मत्यज्ञाननिमित्तद्रव्यं, तद् द्विविधं—कर्मनोकर्मभेदेन। कर्म त्रिविधं—बंधोदयसत्त्वभेदेन, अवग्रहावरणादिभेदेन अनेकविधं वा। नोकर्मद्रव्यं त्रिविधं—सचित्ता-चित्तामिस्रमिति। एतेषां द्रव्याणां या मत्यज्ञानोत्पादनशक्तिः तद्भावकारणं। एतेभ्यः उत्पन्नं मत्यज्ञानं तद् यस्य जीवस्य अस्ति सः मत्यज्ञानी। एवं शेषज्ञानानामपि वक्तव्यं।

अत्र कश्चिदाह—**अज्ञानमिति कथिते किं ज्ञानस्य अभावो गृह्यते आहोस्वित् न गृह्यते ?**

तस्य समाधानं—**न अत्राभावो गृह्यते, मतिज्ञानाभावे 'मतिपूर्वकं श्रुतज्ञानं' इत्यपि न घटते, ततः श्रुतज्ञानाभावोऽपि भवेत्। तयोर्मतिश्रुतयोरभावे सर्वज्ञानानामभावप्रसंगात्। ज्ञानाभावे न दर्शनमपि संभवेत्, द्वयोर्ज्ञानदर्शनयोरन्योन्याविनाभावात्। ज्ञानदर्शनयोरभावे न जीवोऽपि, तस्य तल्लक्षणत्वात्। अत एव अत्र यत् स्व-परविवेकरहितं पदार्थज्ञानं तदेवाज्ञानं कथ्यते। विपरीतश्रद्धोत्पादकमिथ्यात्वोदयेन यत्पदार्थ-विषयकश्रद्धानं नोत्पद्यते। तस्य पदार्थस्य विषये यज्ज्ञानं तदेवाज्ञानं भण्यते, ज्ञानफलाभावात्। ततश्च स्थंभादिविषये यथावगमं श्रद्धधानस्यापि अज्ञानं उच्यते श्रद्धानाभावात् जिनदेववचनानां।**

कथं मत्यज्ञानिनः क्षायोपशमिका लब्धिः ?

मत्यज्ञानावरणस्य देशघातिस्पर्धकानामुदयेन मत्यज्ञानित्वोपलंभात्। आवरणे सत्यपि आवरणीयस्य

दो प्रकार का है—द्रव्यकारण और भावकारण। उनमें से द्रव्यकारण मतिअज्ञान का निमित्तभूत द्रव्य है, वह कर्म और नोकर्म के भेद से दो प्रकार का है। कर्मद्रव्यकारण तीन प्रकार का है—बंधकर्मद्रव्य, उदयकर्मद्रव्य और सत्वकर्मद्रव्य। अथवा यह कर्मद्रव्य अवग्रहावरण आदि के भेद से अनेक प्रकार का है। नोकर्मद्रव्य तीन प्रकार का है—सचित्त नोकर्मद्रव्य, अचित्त नोकर्मद्रव्य और मिश्र नोकर्मद्रव्य। इन द्रव्यों की जो मतिअज्ञान को उत्पन्न करने वाली शक्ति है, वह भावकारण है। इन सब कारणों से जो मतिअज्ञान होता है, वह जिस जीव के पाया जाता है, वह मति अज्ञानी होता है। इसी प्रकार शेष ज्ञानों के विषय में भी कहना चाहिए।

यहाँ कोई शंकाकार कहता है कि—'अज्ञान' ऐसा कहने पर क्या ज्ञान का अभाव ग्रहण किया है या ज्ञान का अभाव नहीं ग्रहण किया है ?

इस शंका का समाधान करते हैं—यहाँ मतिज्ञान का अभाव भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि मतिज्ञान का अभाव मानने पर चूंकि 'मतिपूर्वक श्रुतज्ञान होता है' इसलिए श्रुतज्ञान के भी अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है और ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि मति और श्रुत दोनों ज्ञानों के अभाव में सभी ज्ञानों के अभाव का प्रसंग आता है। ज्ञान के अभाव में दर्शन भी नहीं हो सकता है, क्योंकि ज्ञान और दर्शन परस्पर में अविनाभावी हैं। ज्ञान और दर्शन के अभाव में जीव भी नहीं रहता, क्योंकि जीव का तो ज्ञान और दर्शन यही लक्षण है। यहाँ स्व-पर विवेक से रहित जो पदार्थ का ज्ञान होता है, उसे यहाँ अज्ञान कहा है। अपने द्वारा ज्ञात वस्तु में विपरीत श्रद्धा उत्पन्न कराने वाले मिथ्यात्वोदय के बल से जिस पदार्थ के विषय में जीव के श्रद्धान नहीं उत्पन्न होता है, उस पदार्थ के विषय में जो ज्ञान होता है, वह अज्ञान कहलाता है, क्योंकि उसमें ज्ञान का फल नहीं पाया जाता है।

इसी प्रकार स्तंभादि पदार्थों में यथार्थज्ञान का श्रद्धा करता हुआ भी अज्ञानी कहा जाता है, क्योंकि उसके जिन भगवान के वचन में श्रद्धान का अभाव है, अतः वह ज्ञान अज्ञान कहलाता है।

शंका—मति अज्ञानी जीव के क्षायोपशमिक लब्धि कैसे हो सकती है ?

समाधान—क्योंकि उस जीव के मत्यज्ञानावरण कर्म के देशघाती स्पर्धकों के उदय से मत्यज्ञानादिपना

ज्ञानस्य एकदेशो यस्मिन् उदये उपलभ्यते, तस्य भावस्य क्षयोपशमव्यपदेशो भवति, ततः क्षायोपशमिकत्व-मज्ञानस्य न विरुध्यते। अथवा ज्ञानस्य विनाशः क्षयो नाम, तस्य उपशमः एकदेशक्षयः, तस्य क्षयोपशमसंज्ञा। तत्र ज्ञानमज्ञानं वा उत्पद्यते इति क्षायोपशमिका लब्धिरुच्यते।

एवं श्रुताज्ञानं विभंगज्ञानं, आभिनिबोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं अपि क्षायोपशमिको भावो ज्ञातव्यः। केवलं तु आत्मात्मनः आवरणानां देशघातिस्पर्धकानामुदयेन क्षायोपशमिका लब्धिर्भवति इति वक्तव्यं ।

सप्तानां ज्ञानानां सप्तैवावरणानि किन्न भवन्ति ?

न भवन्ति, पंचज्ञानव्यतिरिक्तज्ञानानुपलंभात्। मत्यज्ञान-श्रुताज्ञान-विभंगज्ञानानामभावोऽपि नास्ति, यथाक्रमेण आभिनिबोधिक-श्रुतावधिज्ञानेषु तेषामन्तर्भावात्।

संप्रति केवलज्ञानस्य स्वामिप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

केवलणाणी णाम कधं भवदि ?।।४६।।

खइयाए लद्धीए।।४७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—प्रथमसूत्रे प्रश्नरूपेण कथनं—**किमौदयिकेन औपशमिकेन क्षायोपशमिकेन पारिणामिकेन वा केवलज्ञानिनो भवन्ति ?**

एतेषां प्रश्नानामुत्तरं कथयन्ति—**न पारिणामिकेन भावेन भवति केवलज्ञानी भगवान्, सर्वजीवानां**

पाया जाता है। आवरण के रहते हुए भी आवरणीय ज्ञान का एक देश जहाँ पर उदय में पाया जाता है, उसी भाव को क्षायोपशमिक नाम दिया गया है। इसलिए अज्ञान को क्षायोपशमिकपना विरोध को प्राप्त नहीं होता अथवा ज्ञान के विनाश का नाम क्षय है। उस क्षय के उपशम का नाम एकदेश क्षय है। उसके क्षयोपशम होने पर जो ज्ञान या अज्ञान उत्पन्न होता है उसी को क्षायोपशमिक लब्धि कहते हैं।

इसी प्रकार श्रुताज्ञान, विभंगज्ञान, आभिनिबोधिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान को भी क्षायोपशमिक भाव कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इन सब ज्ञानों में अपने-अपने आवरणों के देशघाती स्पर्धकों के उदय से क्षायोपशमिक लब्धि होती है ऐसा कहना चाहिए।

शंका—इन सातों ज्ञानों के सात ही आवरण क्यों नहीं होते ?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि पाँच ज्ञानों के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान नहीं पाये जाते। किन्तु इससे मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंगज्ञान का अभाव भी नहीं होता है, क्योंकि उनका यथाक्रम से आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान में अन्तर्भाव हो जाता है।

अब केवलज्ञान के स्वामी का प्रतिपादन करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव केवलज्ञानी किस कारण से होते हैं ?।।४६।।

क्षायिक लब्धि से जीव केवलज्ञानी होते हैं।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रथम सूत्र में प्रश्नरूप से कथन है—क्या औदयिक भाव से, क्या औपशमिक भाव से, क्या क्षायोपशमिक भाव से, क्या पारिणामिक भाव से जीव केवलज्ञानी होते हैं ?

इन प्रश्नों का उत्तर देते हैं—पारिणामिक भाव से केवलज्ञानी भगवान नहीं होते हैं, यदि ऐसा माना

केवलज्ञानोत्पत्तिप्रसंगात्। नौदयिकेन, केवलज्ञानप्रतिबंधिकर्मोदयस्य तदुत्पादनविरोधात्। नौपशमिकं, केवलज्ञानं, मोहनीयस्य इव ज्ञानावरणस्य उपशमाभावात्। न क्षायोपशमिकं केवलज्ञानं, असहायस्य करण-क्रम-व्यवधानादीनां क्षायोपशमिकत्वविरोधात्।

कश्चिदाशंकते—**सर्वमपि ज्ञानं केवलज्ञानमेव आवरणविगमवशेन तत्तः विनिर्गतज्ञानकणानामुपलंभात्। न चैषो ज्ञानकणः केवलज्ञानादन्यः, जीवे पंचानां ज्ञानानामभावात्। यदि कथ्येत, तेषां पंचानां ज्ञानानां अभावो जीवे कुतोऽवगम्यते ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**केवलज्ञानं त्रिकालगोचराशेषद्रव्यपर्यायविषयेण अक्रमेण इन्द्रियालोकादि-साधननिरपेक्षेण सूक्ष्म-दूर-समीपादिविघ्नसमूहनिर्मुक्तेन अस्ति। अनेन केवलज्ञानेन व्याप्ताशेषजीवप्रदेशेषु क्रमभावि-साधनसापेक्ष-सप्रतिपक्ष-परिमित-अविशदमतिज्ञानादीनां अस्तित्वविरोधात्। न च केवलज्ञानेन अवगतार्थे शेषज्ञानानां प्रवृत्तिर्मन्तुं योग्या, विशदाविशदयोः एकत्र-आत्मनि एककाले प्रवृत्तिविरोधात्। अवगतार्थेषु पुनरपि अवगमे फलाभावाच्च। केवलज्ञानेनानवगते पदार्थे एषां मतिज्ञानादीनां प्रवृत्तिः भवति, एतदपि न वक्तव्यं तदनवगतार्थाभावात्। ततो जीवे न पंच ज्ञानानि, केवलज्ञानमेकमेव।**

न चावरणानि ज्ञानमुत्पादयन्ति, विनाशकानां तदुत्पादनविरोधात्। ततः केवलज्ञानं क्षायोपशमिकं भावं लभते इति न सिद्ध्यति, एतस्य साधनसापेक्षस्य क्षायोपशमिकस्य केवलत्वविरोधात्। न च भस्माच्छा-

---

जाएगा, तो सभी जीवों के केवलज्ञान की उत्पत्ति का प्रसंग आ जाएगा। औदायिक भाव से भी केवलज्ञान नहीं होता है, क्योंकि केवलज्ञान के प्रतिबंधक कर्मोदय से उसकी उत्पत्ति होने में विरोध आता है। केवलज्ञान औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि मोहनीय कर्म के समान ज्ञानावरण का उपशम नहीं होता है। केवलज्ञान क्षायोपशमिक भी नहीं है, क्योंकि असहाय और करण, क्रम एवं व्यवधान से रहित ज्ञान को क्षायोपशमिक होने में विरोध आता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—समस्त ज्ञान केवलज्ञान ही हैं, क्योंकि आवरण के दूर हो जाने से अज्ञानों में इसी से निकलने वाले ज्ञान के कण पाये जाते हैं और यह ज्ञान के कण केवलज्ञान से भी भिन्न नहीं हैं, क्योंकि जीव में पाँच ज्ञानों का अभाव है। यदि कहा जाये कि जीव में पाँच ज्ञानों का अभाव है, यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

इसका समाधान करते हैं कि—त्रिकालगोचर, समस्त द्रव्यों और उनकी पर्यायों को विषय करने वाला, अक्रमभावी, इन्द्रिय और आलोकादि साधनों से निरपेक्ष, सूक्ष्म, दूर और समीपवर्ती आदि विघ्नसमूह से मुक्त केवलज्ञान होता है। ऐसे केवलज्ञान से व्याप्त समस्त जीवप्रदेशों में क्रमभावी, साधन सापेक्ष, सप्रतिपक्ष, परिमित और अविशद मतिज्ञान आदि का अस्तित्व होने में विरोध आता है और केवलज्ञान से अवगत पदार्थों में शेषज्ञानों की प्रवृत्ति भी नहीं होती है, क्योंकि विशद और अविशद ज्ञानों की एक आत्मा में एक काल में प्रवृत्ति होने में विरोध आता है और जाने हुए पदार्थ को पुनः जानने में कोई फल भी नहीं है। केवलज्ञान से न जाने हुए पदार्थों में मति आदि ज्ञानों की प्रवृत्ति होती है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि केवलज्ञान से न जाना गया हो, ऐसा कोई पदार्थ ही नहीं है। इसलिए जीव में एक साथ पाँच ज्ञान नहीं होते हैं, केवलज्ञान एक अकेला ही होता है।

तथा आवरण ज्ञान को उत्पन्न नहीं करते हैं, क्योंकि जो विनाशक है, उन्हें उत्पादक मानने में विरोध आता है। इसलिए 'केवलज्ञान क्षायोपशमिक भाव को ही प्राप्त होता है' ऐसा भी नहीं है, क्योंकि क्षायोपशमिक

दिताग्निविनिर्गतवाष्पस्य अग्निव्यपदेशः अग्निबुद्धिर्वा अग्निव्यवहारो वा अस्ति, अनुपलंभात्। ततो न इमानि ज्ञानानि केवलज्ञानं, तेन कारणेन केवलज्ञानं न क्षायोपशमिकं।

कश्चिदाह—**न क्षायिकमपि केवलज्ञानं, क्षयो नाम अभावः, तस्य कारणत्वविरोधात् ?**

एतान् सर्वान् बुद्धौ कृत्वां केवलज्ञानी कथं भवतीति भणितं पृच्छासूत्रं। तस्योत्तरं प्रायच्छत् श्रीभूतबलि-सूरिवर्यः अग्रिमसूत्रे—

क्षायिकलब्ध्या जीवः केवलज्ञानी भवति।

कश्चिदाशंकते—**केवलज्ञानावरणस्य क्षयः तुच्छाभावरूपोऽस्ति, ततो न कार्यकरः ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**केवलज्ञानावरणस्य बंधसत्त्वोदयाभावस्य अनंतवीर्यवैराग्य-सम्यक्त्व-दर्शनादिगुणैः युक्तजीवस्य तुच्छत्वविरोधात्। किंच भावस्याभावत्वं न विरुध्यते, भावाभावयोः अन्योन्यं स्वभावेनैव सर्वात्मना आलिंग्य स्थितयोरुपलंभात्। न च उपलंभमाने विरोधोऽस्ति अनुपलब्धिविषयस्य तस्य उपलब्धेः अस्तित्वविरोधात्।**

एवं ज्ञानमार्गणायां स्वामित्वकथनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे सिद्धांतचिंतामणि-टीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

भाव साधनसापेक्ष होता है, अतः उसके केवलरूप होने में विरोध आता है। क्षार (भस्म) से ढकी हुई अग्नि से निकले हुए वाष्प को अग्नि नाम नहीं दिया जा सकता है, न उसमें अग्नि की बुद्धि उत्पन्न होती है और न उसमें अग्नि का व्यवहार ही होता है, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है। अतएव ये सब मति आदि ज्ञान केवलज्ञान नहीं हो सकते हैं। इस कारण से केवलज्ञान क्षायोपशमिक भी नहीं है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—केवलज्ञान क्षायिक भी नहीं हैं, क्योंकि क्षय तो अभाव को कहते हैं, और अभाव को कारण होने में विरोध आता है ?

इन सब विकल्पों को मन में जान करके जीव केवलज्ञानी किस कारण से होता है ? यह प्रश्न किया गया है अर्थात् यह पृच्छा सूत्र है। उसका उत्तर अगले सूत्र में श्रीभूतबलि आचार्य ने दिया है—

क्षायिकलब्धि से जीव केवलज्ञानी होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—केवलज्ञानावरण कर्म का क्षय तुच्छाभावरूप होता है, अतः वह कोई कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता है ?

उसका समाधान करते हैं—ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि केवलज्ञानावरण के बंध, सत्व और उदय का अभाव होने पर अनन्तवीर्य, वैराग्य, सम्यक्त्व व दर्शन आदि गुणों से युक्त जीव द्रव्य को तुच्छ मानने में विरोध आता है। दूसरी बात यह है कि भाव का अभावरूप होना विरोध को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि भाव और अभाव स्वभाव से ही एक-दूसरे को सर्वात्मरूप से आलिगन करके स्थित होते हैं। जो बात पाई है उसमें विरोध नहीं होता है, क्योंकि विरोध का विषय अनुपलब्धि है, इसलिए जहाँ जिस बात की उपलब्धि होती है, उसमें फिर विरोध का अस्तित्व मानने में ही विरोध आता है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा में स्वामित्व का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार की सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

संप्रति संयममार्गणायां सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमकारणज्ञापनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदो सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि ?।।४८।।

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए।।४९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**नामसंयमः स्थापनासंयमः द्रव्यसंयमः भावसंयमश्चेति चतुर्विधः संयमः। नामस्थापनासंयमौ ज्ञातौ। द्रव्यसंयमो द्विविधः—आगम-नोआगमभेदेन। आगमः गतः। नोआगमस्त्रिविधः—ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यसंयम-भाविनोआगमद्रव्यसंयम-तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यसंयमभेदेन । ज्ञायकशरीर-भाविनोआगमद्रव्यसंयमौ ज्ञायेते। तद्व्यतिरिक्तद्रव्यसंयमः—संयमसाधन-पिच्छिका-आहार-कमंडलु-पुस्तकादीनि। भावसंयमो द्विविधः—आगम-नोआगमभेदेन। आगमः ज्ञातः। नोआगमस्त्रिविधः—क्षायिकः क्षायोपशमिकः औपशमिकश्चेति। एतेषु संयमप्रकारेषु केन प्रकारेण संयमः भवतीति पृच्छासूत्रमागतं।**

एवं सामायिक-च्छेदोपस्थापन शुद्धिसंयतयोरपि निक्षेपः कर्तव्यः।

औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकलब्धिभिः जीवः सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतो भवति।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब संयममार्गणा में सामायिक-छेदोपस्थापना संयम के कारणों को बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संयममार्गणानुसार जीव संयत तथा सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि संयत किस कारण से होते हैं ?।।४८।।

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धि से जीव संयत व सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि संयत होते हैं।।४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नामसंयम, स्थापनासंयम, द्रव्यसंयम और भावसंयम इस प्रकार संयम चार प्रकार का है। नाम और स्थापना संयम ज्ञात हैं। द्रव्यसंयम आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। आगमद्रव्यसंयम ज्ञात है और नोआगमद्रव्य के तीन भेद हैं—ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यसंयम, भव्य नोआगमद्रव्यसंयम और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसंयम। ज्ञायकशरीर और भव्य ज्ञात हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसंयम, ज्ञायकशरीर और भव्य ज्ञात हैं। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यसंयम संयम के साधनभूत पिच्छिका, आहार, कमण्डलु पुस्तक आदि को कहते हैं। भावसंयम आगम और नोआगम के भेद से दो प्रकार का है। आगमभावसंयम ज्ञात है। नोआगमभावसंयम तीन प्रकार का है—क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक। इन संयमों के प्रकारों में से किस प्रकार से संयम होता है यह पृच्छासूत्र आया है।

इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयतों का भी निक्षेप करना चाहिए।

औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक लब्धियों के द्वारा जीव सामायिक, छेदोपस्थापनाशुद्धि संयत होते हैं।

अत्र तावत् औपशमिकस्य लक्षणं कथ्यते—

चारित्रावरणस्य सर्वोपशमेन उपशांतकषाये संयमो भवति, तस्य संयमस्योत्पत्तिः उपशमिकालब्धेरुक्ता। चारित्रावरणस्य क्षयेण यस्य संयमस्योत्पत्तिः, तस्य संयमस्य क्षायिका लब्धिः। चतुःसंज्वलन-नवनोकषायाणां देशघातिस्पर्धकानामुदयेन यः संयमः उत्पद्यते तस्य क्षायोपशमिका लब्धिः कथ्यते।

चतुःसंज्वलन-नवनोकषायाणां स्पर्धकानां उदयस्य कथं क्षयोपशमव्यपदेशः क्रियते ?

सर्वघातिस्पर्धकानि अनंतगुणहीनानि भूत्वा देशघातिस्पर्धकत्वेन परिणम्य उदयमागच्छन्ति, तेषामनन्त-गुणहीनत्वं क्षयो नाम। देशघातिस्पर्धकस्वरूपेणावस्थानमुपशमः। ताभ्यां क्षयोपशमाभ्यां संयुक्तोदयः क्षयोपशमो नाम। ततः समुत्पन्नः संयमोऽपि तेन क्षायोपशमिकः।

एवं सामायिकस्य छेदोपस्थापनासंयमस्य चापि लक्षणं द्वयोरपि संयमयोः त्रिविधा लब्धयः कथिताः।

भवतु नाम एतयोः संयमयोः क्षायोपशमिका लब्धिः, नौपशमिका क्षायिका च, अनिवृत्तिकरणगुण-स्थानादुपरि एतयोरभावात्। न चाधस्तनापूर्वकरणानिवृत्तिकरणगुणस्थानयोः क्षपकोपशामकयोः चारित्रमोहनी-यस्य क्षपणा उपशामना वा अस्ति येन एतयोः क्षायिका उपशामिका वा लब्धिर्भवेत् ?

नैतद् वक्तव्यं, क्षपकोपशामकानिवृत्तिगुणस्थानेऽपि लोभसंज्वलनव्यतिरिक्ताशेषचारित्रमोहनीयस्य क्षपणोपशामनदर्शनेन तत्र क्षायिकोपशामिकालब्ध्योः संभवोपलंभात्। अथवा क्षपकोपशामकापूर्वकरणगुणस्थान-

---

उनमें से यहाँ औपशमिक संयम का लक्षण कहते हैं—चारित्रावरण कर्म के सर्वोपशम से उपशान्त-कषाय गुणस्थान में संयम होता है। इसलिए औपशमिक लब्धि से संयम की उत्पत्ति कही है। चूँकि चारित्रावरण कर्म के क्षय से भी जिसके संयम की उत्पत्ति होती है, उस संयम की क्षायिक लब्धि होती है। चारों संज्वलन कषायों और नौ नोकषायों के देशघाती स्पर्धकों के उदय से जिस संयम की उत्पत्ति होती है, उसकी क्षायोपशमिक लब्धि संज्ञा पाई जाती है।

शंका—चार संज्वलन और नव नोकषायों के स्पर्धकों के उदय को क्षयोपशम नाम क्यों दिया गया है ?

समाधान—सर्वघाती स्पर्धक अनन्तगुणे हीन होकर और देशघाती स्पर्धकों में परिणत होकर उदय में आते हैं। उन सर्वघाती स्पर्धकों का अनन्तगुणहीनपना ही क्षय कहलाता है और उनका देशघाती स्पर्धकों के रूप से अवस्थान होना उपशम है। उन्हीं क्षय और उपशम से संयुक्त उदय क्षयोपशम कहलाता है। उसी क्षयोपशम से उत्पन्न संयम भी इसी कारण क्षायोपशमिक होता है।

इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापना संयम का भी लक्षण जानना चाहिए, दोनों संयमों में तीन प्रकार की लब्धियाँ कही गई हैं।

शंका—सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयतों के क्षयोपशम लब्धि भले ही हो, किन्तु उनके औपशमिक और क्षायिक लब्धि नहीं हो सकती है, क्योंकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान से ऊपर इन संयमों का अभाव पाया जाता है और नीचे के अर्थात् अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दो क्षपक व उपशामक गुणस्थानों में चारित्रमोहनीय की क्षपणा व उपशामना होती नहीं है, जिससे उक्त संयतों के क्षायिक व औपशमिक लब्धि संभव हो सके ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि क्षपक व उपशामकसंबंधी अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में भी लोभ संज्वलन से अतिरिक्त अशेष चारित्रमोहनीय का क्षपण व उपशमन के देखे जाने से वहाँ क्षायिक व औपशमिक लब्धियों की उपलब्धि संभव है। अथवा क्षपक और उपशामक संबंधी अपूर्वकरण के प्रथम समय

प्रथमसमयप्रभृति उपरि सर्वत्र क्षायिकौपशमिकसंयमलब्धयः संति एव।

कुतः ?

प्रारब्धप्रथमसमयप्रभृति स्तोकस्तोकक्षपणोपशामनकार्यनिष्पत्तिदर्शनात्। प्रतिसमयं कार्यनिष्पत्तेः विना चरमसमये चैव निष्पद्यमानकार्यानुपलंभाच्च।

कथमेकस्य चारित्रस्य त्रयो भावाः भवन्ति ?

नैतद् वक्तव्यं, एकस्यापि चित्रपतंगस्य बहुवर्णदर्शनात्।

तात्पर्यमेतत्—**उपशमश्रेण्यारोहकानां उपशमचारित्रं, क्षपकश्रेण्यारोहकानां क्षपकचारित्रं इति मन्यमाने सामायिक-च्छेदोपस्थापनयोः त्रिविधा अपि लब्धयः संभवन्ति इति ज्ञातव्यं।**

परिहारशुद्धिसंयमिनां संयतासंयतानां च क्षायोपशमिकलब्धिप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

परिहारसुद्धिसंजदो संजदासंजदो णाम कधं भवदि ?।।५०।।

खओवसमियाए लद्धीए।।५१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्रापि नयनिक्षेपानाश्रित्य पूर्ववत् चालना कर्तव्या। चतुःसंज्वलन-नवनोकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकानामनन्तगुणहान्या क्षयं गत्वा देशघातित्वेन उपशांतस्पर्धकानामुदयेन परिहारशुद्धिसंयमोत्पत्तेः क्षायोपशमिकालब्धेः परिहारशुद्धिसंयमो भवति। चतुःसंज्वलननवनोकषायाणां क्षयोपशमसंज्ञित-**

से लेकर ऊपर सर्वत्र क्षायिक और औपशमिक संयमलब्धियाँ हैं ही।

प्रश्न—कैसे हैं ?

उत्तर—क्योंकि, उक्त गुणस्थान के प्रारंभ होने के प्रथम समय से लेकर थोड़े-थोड़े क्षपण और उपशामनरूप कार्य की निष्पत्ति देखी जाती है। यदि प्रत्येक समय कार्य की निष्पत्ति न हो तो अंतिम समय में भी कार्य पूरा होता हुआ नहीं पाया जा सकता है।

शंका—एक ही चारित्र के औपशमिकादि तीन भाव कैसे होते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जिस प्रकार एक चित्र में पतंगा अर्थात् बहुवर्ण पक्षी के बहुत से वर्ण देखे जाते हैं, उसी प्रकार एक ही चारित्र नाना भावों से युक्त हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि—उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले मुनियों के उपशमचारित्र होता है और क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले महामुनियों के क्षायिकचारित्र होता है, ऐसा मानने पर सामायिक और छेदोपस्थापना दोनों प्रकार के संयम में तीनों प्रकार की लब्धियाँ संभव है, ऐसा जानना चाहिए।

अब परिहारशुद्धिसंयमियों की एवं संयतासंयत जीवों की क्षायोपशमिक लब्धि का प्रतिपादन करने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव परिहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत किस कारण से होते हैं ?।।५०।।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव परिहारशुद्धिसंयत व संयतासंयत होते हैं।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी नय और निक्षेपों का आश्रय लेकर पूर्ववत् चालना—कथन करना चाहिए। चार संज्वलन और नव नोकषायों के सर्वघाती स्पर्धकों के अनन्तगुणी हानि द्वारा क्षय को प्राप्त होकर देशघातीरूप से उपशान्त हुए स्पर्धकों के उदय से परिहारशुद्धिसंयम की उत्पत्ति

देशघातिस्पर्धकानामुदयेन संयमासंयमोत्पत्तेः क्षयोपशमलब्धेः संयमासंयमः।

कश्चिदाह—**त्रयोदशानां प्रकृतीनां देशघातिस्पर्धकानामुदयः संयमलब्धिनिमित्तः कथं संयमासंयमत्वं प्रतिपद्यते ?**

तस्य समाधानं—**प्रत्याख्यानावरण सर्वघातिस्पर्धकानामुदयेन प्रतिहतचतुःसंज्वलनादिदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य संयमासंयमं मुक्त्वा संयमोत्पादने असमर्थत्वात्।**

सूक्ष्मसांपरायिक-यथाख्यातसंयतानां स्वामित्वनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमो णाम कधं भवदि ?।।५२।।

उवसमियाए खइयाए लद्धीए।।५३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**उपशामक-क्षपकसूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थानयोः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमस्योपलंभात् उपशमिकायाः क्षायिकायाः लब्धेः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमो भवति। उपशांतक्षीणकषायादिषु यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमोपलंभात् उपशामिकायाः क्षायिकायाः लब्धेः यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमो भवति।**

होती है, इसीलिए क्षायोपशमिक लब्धि से परिहारशुद्धिसंयम होता है। चार संज्वलन और नव नोकषायों के क्षयोपशम संज्ञा वाले देशघाती स्पर्धकों के उदय से संयमासंयम की उत्पत्ति होती है, इसीलिए क्षयोपशम लब्धि से संयमासंयम होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—चार संज्वलन और नवनोकषाय, इन तेरह प्रकृतियों के देशघाती स्पर्धकों का उदय तो संयम की प्राप्ति में निमित्त होता है, वह संयमासंयम के निमित्तपने को कैसे प्राप्त कर सकता है ?

उसका समाधान देते हैं—नहीं, क्योंकि प्रत्याख्यानावरण के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय से जिन चार संज्वलनादिक के देशघाती स्पर्धकों का उदय प्रतिहत हो गया है, उस उदय में संयमासंयम को छोड़कर संयम उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं होती है।

अब सूक्ष्मसापंरायिक और यथाख्यातसंयतों का स्वामित्व निरूपण करने हेतु दो सूत्रों का अवतार किया जा रहा है —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीव किस कारण से होते हैं।।५२।।

औपशमिक और क्षायिक लब्धि से जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत होते हैं।।५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशामक और क्षपक दोनों प्रकार के सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानों में सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयम की प्राप्ति होती है, इसीलिए औपशमिक व क्षायिक लब्धि से सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धि संयम होता है। उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय आदि गुणस्थानों में यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम की प्राप्ति होने से औपशमिक व क्षायिक लब्धि से यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम होता है।

अत्रापि उपशमश्रेण्यारोहकानां औपशमिकालब्धिर्ज्ञायते, क्षपकश्रेण्यारोहकानां क्षायिका लब्धिश्च मन्तव्या।

असंयतानां लब्धिप्रतिपादनाय प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंजदो णाम कधं भवदि ?।।५४।।

संजमघादीणं कम्माणमुदयेण।।५५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अप्रत्याख्यानावरणस्य उदयः एव असंयमस्य हेतुः, संयमासंयमप्रतिषेधमुखेन सर्वसंयमघातित्वात् ततः संयमघातिकर्मणामुदयेन कथं घटते ?**

इति प्रश्ने सति समाधानं क्रियते — **नैतद् वक्तव्यं, इतरेषामपि चारित्रावरणीयानां कर्मणामुदयेन विना अप्रत्याख्यानावरणस्य देशसंयमघातने सामर्थ्याभावात्।**

संयमो नाम जीवस्वभावः, ततो न सः अन्यैः विनाश्यते, तद्विनाशे जीवद्रव्यस्यापि विनाशप्रसंगात् ?

न, उपयोगस्येव संयमस्य जीवस्य लक्षणत्वाभावात्।

लक्षणस्य किं लक्षणम् ?

यस्याभावे द्रव्यस्याभावो भवति तत्तस्य लक्षणं, यथा पुद्गलद्रव्यस्य रूपरसगंधस्पर्शाः, जीवस्य उपयोगः। तस्मात् न संयमाभावेन जीवद्रव्यस्याभावो भवति।

यहाँ भी उपशमश्रेणी पर चढ़ने वालों के औपशमिक लब्धि होती है ऐसा जाना जाता है तथा क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वालों के क्षायिक लब्धि होती है, ऐसा मानना चाहिए।

अब असंयत जीवों की लब्धि बतलाने हेतु प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव असंयत किस कारण से होते हैं ?।।५४।।

संयम के घाती कर्मों के उदय से जीव असंयत होते हैं।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय ही असंयम का हेतु है, क्योंकि वह संयमासंयम के प्रतिषेध के द्वारा समस्त संयम का घाती है। अतः संयमघाती कर्मों के उदय से जीव असंयत होता है ऐसा कहना कैसे घटित होता है ?

ऐसा प्रश्न होने पर उसका समाधान करते हैं —

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अन्य भी चारित्रावरण कर्मों के उदय के बिना अकेले अप्रत्याख्यानावरण में देशसंयम को घात करने की सामर्थ्य नहीं होती है।

शंका — संयम जीव का स्वभाव है, इसलिए वह अन्य के द्वारा विनष्ट नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उसका विनाश होने पर जीवद्रव्य के विनाश का भी प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि जिस प्रकार उपयोग जीव का लक्षण माना गया है, उस प्रकार संयम जीव का लक्षण नहीं होता है।

शंका — लक्षण का क्या लक्षण है ?

समाधान — जिसके अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जाता है, वही उसका लक्षण है। जैसे — पुद्गल द्रव्य का लक्षण रूप, रस, गंध और स्पर्श है और जीव का लक्षण उपयोग है। अतएव संयम के अभाव में जीव द्रव्य का अभाव नहीं होता है।

प्रथमगुणस्थानादारभ्य चतुर्थगुणस्थानपर्यन्ता जीवा असंयता भवन्ति इति ज्ञातव्यं।
एवं संयममार्गणायां लब्धिप्रतिपादनपरत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम
अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अधुना दर्शनमार्गणायां त्रिविधदर्शनवतां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ?।।५६।।

खओवसमियाए लद्धीए।।५७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**उदये पतनकाले सर्वघातिस्पर्धकानां यदनंतगुणहीनत्वं स तेषां क्षयो नाम, देशघातिस्पर्धकानां स्वरूपेण यदवस्थानं स उपशमःतदुभयगुणसमन्वितचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मस्कंधविपाक-जनितजीवपरिणामः लब्धिरिति गृहीतव्या क्षायोपशमिका। अचक्षुर्दर्शनावरणीयस्य देशघातिस्पर्धकानामुदयेन**

प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थगुणस्थान पर्यन्त जीव असंयत ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।
इस प्रकार संयममार्गणा में लब्धियों का प्रतिपादन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का
आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दर्शनमार्गणा में तीन प्रकार के दर्शन को प्राप्त जीवों का स्वामित्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी व अवधिदर्शनी किस कारण से होते हैं ?।।५६।।

क्षायोपशमिक लब्धि प्राप्त जीव चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी होते हैं।।५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उदय में पतन के समय में सर्वघाती स्पर्धकों का जो अनन्तगुण हीनपना हो जाता है, वही उनका क्षय है और देशघाती स्पर्धकों का स्वरूप से जो अवस्थान है, वही उपशम है। क्षय और उपशमरूप इन दो गुणों से युक्त चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के स्कंधों के उदय से उत्पन्न हुए जीवपरिणाम

अचक्षुर्दर्शनं भवतीति कृत्वा क्षायोपशमिक्या लब्ध्या अचक्षुर्दर्शनमिति प्रोक्तं। अवधिदर्शनावरणीयस्य देशघातिस्पर्धकानामुदयजनितलब्धेः अवधिदर्शनी भवतीति क्षयोपशमिकायाः लब्धेः अवधिदर्शनी निर्दिष्टः।

कश्चिदाह—**न दर्शनमस्ति, विषयाभावात्। न बाह्यार्थसामान्यग्रहणं दर्शनं, केवलदर्शनस्य अभाव-प्रसंगात्। किंच—केवलज्ञानेन त्रिकालगोचरानंतार्थव्यञ्जनपर्यायस्वरूपेषु सर्वद्रव्येषु अवगतेषु केवलदर्शनस्य विषयाभावात्। न च गृहीतमेव गृण्हाति केवलदर्शनं, गृहीतग्रहणे फलाभावात् ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**अस्ति दर्शनं, सूत्रे अष्टकर्मनिर्देशात्। न चासति आवरणीये आवारकमस्ति, अन्यत्र तथानुपलंभात्। न चोपचारेण दर्शनावरणनिर्देशः, मुख्यस्याभावे उपचारानुपपत्तेः। न चावरणीयं नास्ति, चक्षुर्दर्शनी अचक्षुर्दर्शनी अवधिदर्शनी क्षायोपशमिकायाः लब्धेः केवलदर्शनी क्षायिकाया लब्धेः इति तदस्तित्वप्रतिपादनजिनवचनदर्शनात्। तथाहि—**

एओ मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।१।।
असरीरा जीवघणा, उवजुत्ता दंसणे य णाणे य ।
सायारमणायारं, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं[१]।।२।।

का नाम क्षायोपशमिक लब्धि है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। अचक्षुदर्शनावरणीय देशघाती स्पर्धकों के उदय से अचक्षुदर्शन होता है, ऐसा समझकर क्षायोपशमिक लब्धि से अचक्षुदर्शन होता है, ऐसा कहा गया है। अवधिदर्शनावरणीय के देशघाती स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न हुई लब्धि से जीव अवधिदर्शनी होता है, इसलिए क्षायोपशमिक लब्धि से अवधिदर्शन कहा गया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—दर्शन नहीं है, क्योंकि उसका कोई विषय नहीं है। बाह्य पदार्थों संबंधी सामान्य को ग्रहण करना दर्शन नहीं है, क्योंकि वैसा मानने पर केवलदर्शन के अभाव का प्रसंग आता है, इसका कारण यह है कि जब केवलज्ञान के द्वारा त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्याय स्वरूप समस्त द्रव्यों को जान लेने पर केवलदर्शन के लिए कोई विषय ही नहीं रहता है और केवलज्ञान के द्वारा ग्रहण किए गए पदार्थ को ही केवलदर्शन ग्रहण करता है, ऐसा नहीं है, क्योंकि ग्रहण किये गये पदार्थ के पुनः ग्रहण करने का कोई फल नहीं है ?

अब यहाँ उक्त शंका का समाधान करते हैं—दर्शन का अस्तित्व है, क्योंकि सूत्र में आठ कर्मों का निर्देश किया गया है और आवरणीय के अभाव में आवारक हो नहीं सकता है, क्योंकि अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता। दर्शनावरण का निर्देश उपचार से किया गया है, यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि मुख्य वस्तु के अभाव में उपचार की उपपत्ति नहीं बनती और आवरणीय नहीं है, सो बात भी नहीं है, क्योंकि क्षायोपशमिक लब्धि से चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी तथा क्षायिकलब्धि से केवलदर्शनी होते हैं' इस प्रकार के अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाले जिन भगवान के वचन देखे जाते हैं। इसका स्पष्टीकरण—

गाथार्थ—ज्ञान और दर्शनरूप लक्षण वाला मेरा आत्मा ही एक और शाश्वत है। शेष समस्त संयोगरूप लक्षण वाले पदार्थ मुझसे बाह्य हैं।।१।।

जो अशरीर अर्थात् काय रहित हैं, शुद्ध जीव प्रदेशों से घनीभूत हैं, दर्शन और ज्ञान में अनाकार व साकार उपयोग से उपयुक्त हैं, वे सिद्ध हैं। यह सिद्ध जीवों का लक्षण हैं।।२।।

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पु. ७, पृ. ९८।

इत्याद्युपसंहारसूत्रदर्शनाच्च।

आगमप्रमाणेन भवतु नाम दर्शनस्य अस्तित्वं न युक्त्या इति चेत् ?

न, युक्तिभिः आगमस्य बाधाऽऽभावात्। न चैवं सति दर्शनस्याभावः, बाह्यार्थान् मुक्त्वा तस्य अन्तरंगार्थे व्यापारात्। न च केवलज्ञानमेव शक्तिद्वयसंयुक्तत्वात् बहिरंतरंगार्थपरिच्छेदकं, ज्ञानमात्मद्रव्यस्य पर्यायः तस्य पर्यायस्य पर्यायाभावात्। भावे वा अनवस्था आगच्छति, अवस्थानकारणाभावात्। तस्मात् अंतरंगोपयोगात् बहिरंगोपयोगेन पृथग्भूतेन भवितव्यमन्यथा सर्वज्ञत्वानुपपत्तेः। अंतरंगबहिरंगोपयोगसंज्ञित-द्विशक्तियुक्तः आत्मा एषितव्यः।

कश्चिदाह— **जं सामण्णग्गहणं भावाणं णेव कट्टु आयारं।**
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णदे समए।।

तस्य समाधानं— न च एतेन सूत्रेण उपर्युक्तं व्याख्यानं विरुध्यते, अत्र गाथायां प्रयुक्तसामान्यशब्दस्य आत्मार्थे ग्रहणात्। न च जीवस्य सामान्यत्वमसिद्धं, नियमेन विना विषयीकृतत्रिकालगोचरानंतार्थ-व्यंजन-पर्यायोपचितबाह्यांतरंगाणां तत्र सामान्यत्वाविरोधात्।

भवतु नाम सामान्येन दर्शनस्य सिद्धिः केवलदर्शनस्य सिद्धिश्च, न शेषदर्शनानां। तथाहि—
चक्खूण जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खुदंसणं वेंति।
दिट्ठस्स य जं सरणं णायव्वं तं अचक्खू त्ति।।१।।

इस प्रकार अनेक उपसंहार सूत्रों के देखने से भी यही सिद्ध होता है कि यह दर्शन है।

शंका— आगम प्रमाण से दर्शन का अस्तित्व भले ही हो, किन्तु युक्ति से तो दर्शन का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि युक्तियों से आगम बाधित नहीं होता है। इस प्रकार आगम और युक्ति से दर्शन का अस्तित्व सिद्ध होने पर उसका अभाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि दर्शन का व्यापार बाह्य पदार्थों को छोड़कर अन्तरंग वस्तु में होता है। यहाँ यह नहीं कह सकते कि केवलज्ञान ही दो शक्तियों से संयुक्त होने के कारण बहिरंग और अंतरंग दोनों वस्तुओं का परिच्छेदक है क्योंकि ज्ञान स्वयं आत्म द्रव्य की एक पर्याय है और एक पर्याय में दूसरी पर्याय होती नहीं है। यदि पर्याय में भी और पर्याय मानी जाये तो अवस्थान का कोईकारण न होने से अनवस्था दोष उत्पन्न होता है। इसलिए अंतरंग उपयोग से बहिरंग उपयोग को पृथग्भूत ही होना चाहिए, अन्यथा सर्वज्ञत्व की उपपत्ति नहीं बन सकती है। अतएव आत्मा को अंतरंग उपयोग और बहिरंग उपयोग ऐसी दो शक्तियों से युक्त मानना अभीष्ट सिद्ध होता है।

ऐसा मानने पर कोई शंका करता है—

गाथार्थ— वस्तुओं का आकार न करके व पदार्थों में विशेषता न करके जो सामान्य का ग्रहण किया जाता है उसे ही शास्त्र में दर्शन कहा है।।

उसका समाधान करते हैं— इस सूत्र से प्रस्तुत व्याख्यान विरुद्ध भी नहीं पड़ता, क्योंकि उक्त गाथा में 'सामान्य' शब्द का प्रयोग आत्म-पदार्थ के अर्थ में किया गया है और जीव का सामान्यपना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि नियम के बिना ज्ञान के विषयभूत किये गये त्रिकालगोचर अनन्त अर्थ और व्यंजन पर्यायों से संचित बहिरंग और अंतरंग पदार्थों का जीव में सामान्यपना मानने में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका— इस प्रकार सामान्य से दर्शन की सिद्धि और केवलदर्शन की सिद्धि भले हो जाये, किन्तु उससे शेष दर्शनों की सिद्धि नहीं होती है। उसे ही दिखाते हैं—

गाथार्थ— जो चक्षुइन्द्रियों का अवलम्बन लेकर प्रकाशित होता है, या दिखता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं और जो अन्य इन्द्रियों से दर्शन होता है, उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिए।।१।।

परमाणुआदियाइं अंतिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सदि ताणि पच्चक्खं।।२।।

इति गाथाभ्यां बाह्यार्थविषयदर्शनप्ररूपणात् ?

नैतद वक्तव्यं, भवद्भिः एतयोः गाथयोः परमार्थार्थो नावगतः।

कोऽसौ परमार्थार्थः ?

उच्यते—''जं यत् चक्खूणं चक्षुषां पयासदि प्रकाशते दिस्सदि चक्षुषा दृश्यते वा तं तत् चक्खुदंसणं चक्षुर्दर्शनमिति वेंति ब्रुवते। चक्खिंदियणाणादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए सामण्णाए अणुहओ चक्खुणाणुप्पत्ति-णिमित्तो तं चक्खुदंसणमिदि उत्तं होदि।

कधमंतरंगाए चक्खिंदियविसयपडिबद्धाए सत्तीए चक्खिंदियस्सप-उत्ती ? ण, अंतरंगे बहिरंगत्थोवयारेण बालजणपबोहणणट्ठं चक्खूणं जं दिस्सदि तं चक्खुदंसणमिदि परूवणादो।

गाहाए गलभंजणमकाऊण उज्जुवत्थो किण्ण घेप्पदि ? ण, तत्थ पुव्वुत्तासेसदोसप्पसंगादो ।

दिट्ठस्स शेषैन्द्रियैः प्रतिपन्नस्यार्थस्य 'जं' यस्मात् 'सरणं' अवगमनं णायव्वं ज्ञातव्यं तं तत् अचक्खु त्ति अचक्षुर्दर्शनमिति। सेसिंदियणाणुप्पत्तीदो जो पुव्वमेव सुवसत्तीए अप्पणो विसयम्मि पडिबद्धाए सामण्णेण संवेदो अचक्खुणाणुप्पत्तिणिमित्तो तमचक्खुदंसणमिदि उत्तं होदि।

परमाणुआदियाइं परमाण्वादिकानि अंतिमखंधं ति आ पश्चिमस्कंधादिति मुत्तिदव्वाइं मूर्तिद्रव्याणि जं

परमाणु से लेकर अंतिम स्कंध तक जितने मूर्तिक द्रव्य हैं, उन्हें जो प्रत्यक्ष देखता है, वह अवधिदर्शन है।।२।।

इन दोनों गाथाओं में बाह्य पदार्थों को विषय करने वाला दर्शन कहा गया है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि तुमने इन गाथाओं का परमार्थरूप अर्थ नहीं समझा है।

शंका—यह परमार्थरूप अर्थ क्या है ?

समाधान—कहते हैं—चक्षुओं के आलम्बन से जो प्रकाशित होता है, अर्थात् दिखता है अथवा आँख द्वारा देखा जाता है, वह चक्षुदर्शन है इसका अर्थ ऐसा समझना चाहिए कि चक्षुइन्द्रियज्ञान से जो पूर्व ही चक्षुज्ञान की उत्पत्ति में निमित्तभूत जिससे स्वशक्तिरूपसामान्य का अनुभव होता है वह चक्षुदर्शन है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शंका—उस चक्षुइन्द्रिय के विषय से प्रतिबद्ध अंतरंग शक्ति में चक्षुइन्द्रिय की प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बालक जनों को ज्ञान कराने के लिए अंतरंग में बहिरंग पदार्थों के उपचार से चक्षुओं को जो दिखता है, वही चक्षुदर्शन है, ऐसा प्ररूपण किया गया है।

शंका—गाथा का गला न घोंटकर उक्त गाथा का अर्थ क्यों नहीं लेते?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा करने में तो पूर्वोक्त समस्त दोषों का प्रसंग आता है।

गाथा के उत्तरार्ध का अर्थ इस प्रकार है—जो देखा गया है, जो पदार्थ शेष इन्द्रियों के द्वारा जाना गया है अतः उसका जो शरण अर्थात् ज्ञान होता है उसे अचक्षुदर्शन जानना चाहिए। चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रियज्ञानों की उत्पत्ति से पूर्व ही अपने विषय में प्रतिबद्ध स्वशक्ति का अचक्षुज्ञान की उत्पत्ति का निमित्तभूत जो सामान्य से संवेद या अनुभव होता है वह अचक्षुदर्शन है, ऐसा कहा गया है।

द्वितीय गाथा का अर्थ इस प्रकार है—परमाणु से लगाकर अंतिम स्कंधपर्यंत जितने मूर्तिक द्रव्य हैं,

यस्मात् पस्सदि पश्यति' जानीते ताणि तानि पच्चक्खं साक्षात् तं तत् ओहिदंसणं अवधिदर्शनमिति द्रष्टव्यम् । परमाणुमादिं कादूण जाव पच्छिमखंधो त्ति द्विदपोग्गलदव्वाणमवगमादो पच्चक्खादो जो पुव्वमेव सुवसत्तीविसयउवजोगो ओहिणाणुप्पत्तिणिमित्तो तं ओहिदंसणमिदि घेत्तव्वं,अण्णहा णाण-दंसणाणं भेदाभावादो।

कधं केवलणाणेण केवलदंसणं समाणं ?

ण, णेयप्पमाणकेवलणाणभेएण भिण्णप्पविसयउवजोगस्स वि तत्तियमेत्तत्ताविरोहादो[१]।''

केवलिदर्शनिनां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

केवलदंसणी णाम कधं भवदि ?।।५८।।

खइयाए लद्धीए।।५९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। दर्शनावरणीयस्य निर्मूलविनाशः क्षयः नाम। तस्मात् जातजीवपरिणामः क्षायिका लब्धिः, तस्याः निमित्तेन केवलदर्शनिभगवान् भवति।**

उक्तं च— **एवं सुत्तपसिद्धं भणंति जे केवलं च णत्थि त्ति ।**
मिच्छादिट्ठी अण्णो को तत्तो एत्थ जियलोए।।

एवं प्रकारेण सूत्रप्रसिद्धं केवलदर्शनं सिद्ध्यति, ततोऽपि ये केचित् भणंति केवलदर्शनं नास्ति तस्मादधिकः कः अज्ञानी मिथ्यादृष्टी भवति अस्मिन् जीवलोके इति। अस्यायमभिप्रायः —कश्चिदपि सम्यग्दृष्टिः

उन्हें जिसके द्वारा जीव साक्षात् देखता है, या जानता है वह अवधिदर्शन है ऐसा जानना चाहिए। परमाणु से लेकर अंतिम स्कंध पर्यन्त जो पुद्गलद्रव्य स्थित हैं, उनके प्रत्यक्ष ज्ञान से पूर्व ही जो अवधिज्ञान की उत्पत्ति का निमित्तभूत स्वशक्ति विषयक उपयोग होता है। वही अवधिदर्शन है। ऐसा ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा ज्ञान और दर्शन में कोई भेद नहीं रहेगा।

शंका — केवलज्ञान से केवलदर्शन समान किस प्रकार है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि ज्ञेयप्रमाण केवलज्ञान के भेद से भिन्न आत्मविषयक उपयोग को भी तत्प्रमाण मानने में कोई विरोध नहीं आता है।

अब केवलदर्शन वाले जीवों का स्वामित्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव केवलदर्शनी किस कारण से होते हैं ?।।५८।।

क्षायिक लब्धि से जीव केवलदर्शनी होते हैं।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। दर्शनावरणीय कर्म का निर्मूल विनाश क्षय कहलाता है। उस क्षय से उत्पन्न जीवपरिणाम को क्षायिक लब्धि कहते हैं। उससे केवलदर्शनी भगवान होते हैं। कहा भी है —

गाथार्थ — इस प्रकार सूत्र द्वारा प्रसिद्ध होते हुए भी जो कहते हैं कि केवलदर्शन नहीं है, उनसे बड़ा इस जीव लोक में मिथ्यात्वी कौन होगा ?

इस प्रकार सूत्र में कहा गया केवलदर्शन सिद्ध हो जाता है, फिर भी जो कहते हैं कि केवलदर्शन नहीं है, उनसे अधिक अज्ञानी — मिथ्यादृष्टि इस संसार में कौन हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। इसका अभिप्राय

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित)पु. ७, पृ. १०१-१०२।

केवलदर्शनस्य नास्तित्वं न कथयति इति ज्ञातव्यं।

एवं दर्शनमार्गणायां स्वामित्वकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम
नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

संप्रति लेश्यामार्गणायां षट्लेश्यावतां स्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिओ णीललेस्सिओ काउलेस्सिओ तेउलेस्सिओ पम्मलेस्सिओ सुक्कलेस्सिओ णाम कधं भवदि ?।।६०।।

ओदइएण भावेण।।६१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अत्र पूर्ववत् निक्षेपान् आश्रित्य चालना प्ररूपयितव्या। अत्र नोआगमभावलेश्यायाः अधिकारः। औदयिकेन भावेन जीवाः कृष्णादिलेश्यावन्तो भवन्ति। उदयागतानां कषायानुभागस्पर्धकानां जघन्यस्पर्धकप्रभृति यावत् उत्कृष्टस्पर्धकपर्यंतस्थापितानां षड्भागविभक्तानां प्रथमभागः मंदतमः, तदुदयेन उत्पन्नकषायः शुक्ललेश्या भवति। द्वितीयभागः मंदतरः, तदुदयेन जातकषायः**

यह है कि कोई भी सम्यग्दृष्टि केवलदर्शन को नकार नहीं सकता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा में स्वामित्व का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का
नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब लेश्यामार्गणा में छहों लेश्या वालों का स्वामित्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणानुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले किस कारण से होते हैं ?।।६०।।

औदायिक भाव से जीव कृष्ण आदि लेश्या वाले होते हैं।।६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पूर्व के समान निक्षेपों का अवलम्बन लेकर कथन करना चाहिए। यहाँ नोआगम भावलेश्या का अधिकार है। औदयिक भाव के द्वारा जीव कृष्णादि लेश्या से समन्वित होते हैं। कषायसंबंधी अनुभाग जघन्य स्पर्धक से लेकर उत्कृष्ट स्पर्धकपर्यंत स्थापित छह भागों में विभक्त उदय में आए हुए स्पर्धकों का प्रथम भाग मंदतम होता है और उसके उदय से उत्पन्न कषाय शुक्ललेश्या है। दूसरा भाग मन्दतर कषायानुभाग का है, उसके उदय से उत्पन्न कषाय पद्मलेश्या है।

पद्मलेश्या नाम। तृतीयो भागः मंदः, तदुदयेन जातकषायः तेजोलेश्या नाम। चतुर्थभागः तीव्रः, तदुदयेन जातकषायः कापोतलेश्या नाम। पंचमभागस्तीव्रतरः, तदुदयेन जातकषायः नीललेश्या नाम। षष्ठभागस्तीव्रतमः, तदुदयेन जातकषायः कृष्णलेश्या नाम। येनैताः षडपि लेश्याः कषायाणामुदयेन भवन्ति तेनौदयिकाः ज्ञातव्याः।

यदि कषायोदयेन लेश्याः उच्यन्ते तर्हि क्षीणकषायाणां लेश्याभावः प्रसज्यते ?

सत्यमेतत् , यदि कषायोदयादेव लेश्योत्पत्तिरिष्येत। किंतु शरीरनामकर्मोदयजनितयोगोऽपि लेश्या इति इष्यते, कर्मबंधनिमित्तत्वात्। तेन कषाये विनष्टेऽपि योगोऽस्ति इति क्षीणकषायाणां सलेश्यत्वं न विरुध्यते।

यदि बंधकारणानां लेश्यत्वं उच्यते तर्हि प्रमादस्यापि लेश्यत्वं किन्न इष्यते ?

न, तस्य कषायेष्वन्तर्भावात्।

असंयमस्य किन्नेष्यते ?

न, तस्यापि लेश्याकर्मणि अन्तर्भावात्।

मिथ्यात्वस्य किन्नेष्यते ?

भवतु तस्य लेश्याव्यपदेशः, विरोधाभावात्। किंतु कषायाणां चैवात्र प्रधानत्वं हिंसादिलेश्याकर्मकारणात्, शेषेषु बंधकारणेषु तदभावात्।

तृतीय भाग मंद कषायानुभाग का है, उसके उदय से उत्पन्न हुई कषाय तेजोलेश्या है। चतुर्थ भाग तीव्र कषायानुभाग का है और उसके उदय से उत्पन्न हुई कषाय कापोतलेश्या है। पाँचवाँ भाग तीव्रतर कषायानुभाग का है, उसके उदय से उत्पन्न हुई कषाय का नीललेश्या है। छठवाँ भाग तीव्रतम कषायानुभाग है उससे उत्पन्न कषाय कृष्णलेश्या है। चूँकि ये छहों ही लेश्याएं कषायों के उदय से होती हैं, इसलिए वे औदयिक हैं, ऐसा जानना चाहिए।

शंका — यदि कषायों के उदय से लेश्याएँ कही जाती हैं, तो बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीणकषाय जीवों के लेश्या के अभाव का प्रसंग आता है ?

समाधान — सचमुच ही क्षीणकषाय जीवों में लेश्या के अभाव का प्रसंग आता, यदि केवल कषायोदय से ही लेश्या की उत्पत्ति मानी जाती। किन्तु शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न योग भी लेश्या है यह स्वीकार किया जाता है, क्योंकि वह भी कर्म के बंध में निमित्त होता है। इस कारण कषाय के नष्ट हो जाने पर भी चूँकि योग रहता है इसलिए क्षीणकषाय जीवों को लेश्यासहित मानने में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका — यदि बंध के कारणों को लेश्यारूप कहा जाता है, तो प्रमाद को भी लेश्यारूप क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि प्रमाद का कषायों में अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका — असंयम को भी लेश्याभाव क्यों नहीं माना जाता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि असंयम का भी लेश्याकर्म में अन्तर्भाव हो जाता है।

शंका — मिथ्यात्व को लेश्यारूप क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान — मिथ्यात्व की लेश्या संज्ञा होवे, क्योंकि ऐसा स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं आता है।

अलेश्यावन्तो जीवाः कथं भवन्तीति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

अलेस्सिओ णाम कधं भवदि ?।।६२।।

खइयाए लद्धीए।।६३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्रयोरर्थः सुगमः। लेश्यायाः कारणभूतकर्मणां क्षयेण उत्पन्नजीवपरिणामः क्षायिका लब्धिः, तया लब्ध्या जीवः अलेश्यिको भवति। इदमेव सूत्रस्य तात्पर्यं। शरीरनामकर्मसत्त्वस्य अस्तित्वं प्रतीत्य क्षायिकत्वं न विरुध्यते, तस्य क्षायिकभावस्य शरीरनामकर्मणः तन्त्रत्वाभावात्।**

एवं लेश्यामार्गणायां स्वामित्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम
दशमोऽधिकारः समाप्तः।

किन्तु यहाँ कषायों की ही प्रधानता है, क्योंकि कषाय ही हिंसा आदिरूप लेश्याकर्म के कारण हैं और अन्य बंधकारणों में उनका अभाव है।

अब लेश्यारहित जीव कैसे होते हैं ? इस प्रकार प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव अलेश्यिक-लेश्यारहित कैसे होते हैं ?।।६२।।

क्षायिक लब्धि से जीव अलेश्यिक-लेश्यारहित होते हैं।।६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। लेश्या के कारणभूत कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए जीव परिणाम को क्षायिक लब्धि कहते हैं, उसी क्षायिक लब्धि से जीव अलेश्यिक — लेश्यारहित होता है। यही सूत्र का तात्पर्य है। शरीरनामकर्म की सत्ता का होना क्षायिकत्व के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि क्षायिक भाव शरीर नामकर्म के आधीन नहीं है।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा में स्वामित्व का प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका लेश्यामार्गणा नाम का
दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

संप्रति भव्याभव्यजीवानां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिओ अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि ?।।६४।।

पारिणामिएण भावेण।।६५।।

णेव भवसिद्धिओ णेव अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि ?।।६६।।

खइयाए लद्धीए।।६७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इमे भव्यजीवा अभव्यजीवाश्च पारिणामिकभावेन भवन्ति। भव्याभव्यत्वव्यतिरिक्ताः ये जीवन्मुक्ताः सिद्धाश्च ते क्षायिकलब्धिभावेन इति ज्ञातव्यं।**

एवं भव्यमार्गणायां स्वामित्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम
एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब भव्य-अभव्य जीवों का स्वामित्व प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणानुसार जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक किस कारण से होते हैं ?।।६४।।

पारिणामिक भाव से जीव भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक होते हैं।।६५।।

जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक किस कारण से होते हैं?।।६६।।

क्षायिक लब्धि से जीव न भव्यसिद्धिक न अभव्यसिद्धिक होते हैं।।६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये भव्य जीव और अभव्य जीव पारिणामिक भाव से होते हैं। भव्यत्व एवं अभव्यत्व से भिन्न जो जीवन्मुक्त-अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवान हैं वे क्षायिकलब्धि से समन्वित होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार भव्यमार्गणा में स्वामित्व का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का
ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अधुना सम्यक्त्वमार्गणायां सामान्येन सम्यग्दृष्टिस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।।६८।।

उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए।।६९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**दर्शनमोहनीयस्य उपशमेन उपशमसम्यक्त्वं भवति, क्षायिकेण क्षायिकं, क्षयोपशमेण वेदकसम्यक्त्वं च। एतेषां त्रयाणां सम्यक्त्वानां यदेकत्वं स सम्यग्दृष्टिः नाम। तस्य सम्यग्दृष्टेः इमे त्रयो भावा येन सन्ति तेन सम्यग्दृष्टिः उपशामिकया क्षायिकया क्षायोपशमिकया लब्ध्या भवतीति उक्तं भवति।**

कथमेकस्य त्रयो भावाः ?

नैतद् वक्तव्यं, पृथग्भूतसामान्यस्य एकस्य अक्रमेण अनेकवर्णानां यथा विरोधो नास्ति तथा एकस्य सम्यग्दर्शनस्य बहुपरिणामैः विरोधाभावात्।

त्रिविधानां सम्यग्दृष्टीनां भावप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

खइयसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।।७०।।

खइयाए लद्धीए।।७१।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब सम्यक्त्वमार्गणा में सामान्य सम्यग्दृष्टियों का स्वामित्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणानुसार जीव सम्यग्दृष्टि किस कारण से होते हैं।।६८।।

औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक लब्धि से जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं।।६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दर्शनमोहनीय के उपशम से उपशम सम्यक्त्व होता है, क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है और क्षयोपशम से वेदक सम्यक्त्व होता है। इन तीनों सम्यक्त्वों का जो एकत्व है, उसी का नाम सम्यग्दृष्टि है। चूँकि उस सम्यग्दृष्टि के ये तीन भाव होते हैं, इसीलिए सम्यग्दृष्टि औपशमिक, क्षायिक व क्षायोपशमिक लब्धि से समन्वित होता है, ऐसा कहा गया है।

शंका—एक ही सम्यग्दृष्टि के तीन भाव कैसे होते हैं ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि जैसे पृथग्भूत सामान्य एक के साथ एक अनेक वर्णों के होने में कोई विरोध नहीं आता, उसी प्रकार एक ही सम्यग्दर्शन के अनेक परिणामरूप होने में कोई विरोध नहीं है।

अब तीन प्रकार के सम्यग्दृष्टियों का भाव प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि किस कारण से होते हैं ?।।७०।।

क्षायिकलब्धि से जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि होते हैं।।७१।।

वेदगसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।।७२।।

खओवसमियाए लद्धीए।।७३।।

उवसमसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।।७४।।

उवसमियाए लद्धीए।।७५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**दर्शनमोहनीयस्य निःशेषविनाशः क्षयः। तस्मिन् उत्पन्नजीवपरिणामः लब्धिर्नाम। तया लब्ध्या क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति। सम्यक्त्वदेशघातिस्पर्धकानां अनन्तगुणहान्या उदयागतानां अत्यल्पदेश-घातित्वेन उपशांतानां येन क्षयोपशमसंज्ञा, तेन तत्रोत्पन्नजीवपरिणामः क्षयोपशमलब्धिसंज्ञितः। तया लब्ध्या वेदकसम्यक्त्वं भवति। दर्शनमोहनीयस्य उपशमेन उत्पन्नजीवपरिणामः उपशमलब्धिः, तया लब्ध्या उपशमसम्यक्त्वं भवति।**

सासादनादित्रिगुणस्थानवर्तिनां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

सासणसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।।७६।।

पारिणामिएण भावेण।।७७।।

सम्मामिच्छाइट्ठी णाम कधं भवदि ?।।७८।।

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि किस कारण से होते हैं ?।।७२।।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव वेदकसम्यग्दृष्टि होते हैं।।७३।।

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि किस कारण से होते हैं ?।।७४।।

औपशमिक लब्धि से जीव उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दर्शनमोहनीय कर्म के निःशेष—सम्पूर्ण विनाश को क्षय कहते हैं और क्षय से जो जीव का परिणाम उत्पन्न होता है, वह क्षायिक लब्धि कहलाती है। उसी क्षायिक लब्धि से जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता हे।

सम्यक्त्वप्रकृतिरूप देशघाती स्पर्धकों की अनन्तगुणी हानि होने से उदय में आये हुए अति अल्प देशघातिपने की अपेक्षा उपशान्त हुए उन सम्यक्त्व प्रकृति के स्पर्धकों का चूँकि क्षयोपशम नाम दिया गया है, इसीलिए उस क्षयोपशम से उत्पन्न जीवपरिणाम को क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। उसी क्षयोपशम लब्धि से वेदक सम्यक्त्व होता है। दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न जीव का परिणाम उपशमलब्धि है, इसी लब्धि से उपशम सम्यक्त्व की उत्पत्ति देखी जाती है।

अब सासादन आदि गुणस्थानवर्तियों का स्वामित्व प्रतिपादन करने के लिए छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि किस कारण से होते हैं ?।।७६।।

पारिणामिक भाव से जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होते हैं।।७७।।

जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि किस कारण से होते हैं ?।।७८।।

खओवसमियाए लद्धीए।।७९।।
मिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ?।।८०।।
मिच्छत्तस्स कम्मस्स उदएण।।८१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र पूर्ववत् निक्षेपान् कृत्वा नोआगमतः भावसासादनसम्यग्दृष्टिर्गृहीतव्यः। 'सो कधं भवदि' केन प्रकारेण भवतीति पृच्छासूत्रं कथितं। एषः सासादनपरिणामः क्षायिको न भवति, दर्शनमोहक्षयेणानुत्पत्तेः। न क्षायोपशमिकोऽपि, देशस्पर्धकानामुदयेनानुत्पत्तेः। उपशामिकोऽपि न भवति, दर्शनमोहोपशमेनानुत्पत्तेः। औदयिकोऽपि न भवति, दर्शनमोहस्योदयेनानुत्पत्तेः। पारिशेषन्यायात् पारिणामिकेन भावेन सासादनो भवति।**

कश्चिदाह—**अनंतानुबंधिनामुदयेन सासादनगुणस्थानस्योपलंभात् औदयिको भावः किन्न भवति ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**नैतद् वक्तव्यं, दर्शनमोहनीयस्य उदय-उपशम-क्षय-क्षयोपशमैः विना उत्पद्यते, इति सासादनगुणस्थानस्य पारिणामिकभावाभ्युपगमात्। नानन्तानुबंधिनामुदयः सासादनगुणस्थानस्य कारणं, चारित्रमोहनीयस्य तस्य दर्शनमोहनीयत्वविरोधात्।**

कश्चिदाह—**अनंतानुबंधिचतुष्कं तदुभयमोहनं चेत् ?**

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं।।७९।।
जीव मिथ्यादृष्टि किस कारण से होते हैं ?।।८०।।
मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं ?।।८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पहले के समान निक्षेपों को करके नोआगमभाव से सासादनसम्यग्दृष्टि का ग्रहण करना चाहिए। वह सासादनसम्यग्दृष्टि कैसे होते हैं अर्थात् किस प्रकार से होते हैं, ऐसा पृच्छा सूत्र कहा गया है। यह सासादनपरिणाम क्षायिक नहीं होता, क्योंकि दर्शनमोहनीय के क्षय से उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। सासादनपरिणाम क्षायोपशमिक भी नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहनीय के देशघाती स्पर्धकों के उदय से उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। सासादनपरिणाम औपशमिक भी नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहनीय के उदय से उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। सासादनपरिणाम औदायिक भी नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहनीय के उदय से उसकी उत्पत्ति नहीं होती है। अतएव पारिशेष न्याय से पारिणामिक भाव से सासादन परिणाम होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—

अनन्तानुबंधी कषायों के उदय से सासादन गुणस्थान उपलब्ध होता है, अतएव उसे औदायिक भाव क्यों नहीं कहते हैं ?

उसका समाधान करते हैं—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि यह दर्शनमोहनीय के उदय, उपशम, क्षय व क्षयोपशम के बिना उत्पन्न होता है, इसलिए सासादनगुणस्थान का पारिणामिक भाव स्वीकार किया है। नियम से अनन्तानुबंधी का उदय सासादनगुणस्थान का कारण नहीं है, क्योंकि वह चारित्रमोहनीय है, इसलिए उसे दर्शनमोहनीय मानने में विरोध आता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

अनन्तानुबंधी दर्शन और चारित्र दोनों का मोहन करने वाला है ?

आचार्यःप्राह—**भवतु नाम, किंतु नेदमत्र विवक्षितं। अनंतानुबंधिचतुष्कं चारित्रमोहनीयं चैवेति विवक्षायाः सासनगुणः पारिणामिकः भणितः।**

कश्चिदाशंकते—**सम्यग्मिथ्यात्वस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयेन जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्यतो भवति तेन तस्य क्षायोपशमिको भावो न युज्यते ?**

आचार्यः समाधत्ते—**भवतु नाम सम्यक्त्वं प्रतीत्य सम्यग्मिथ्यात्वस्पर्धकानां सर्वघातित्वं, किंतु अशुद्धनये विवक्षिते न सम्यग्मिथ्यात्वस्पर्धकानां सर्वघातित्वमस्ति, तेषामुदये सत्यपि मिथ्यात्वसंबलितसम्यक्त्व-कणस्योपलंभात्। तानि सर्वघातिस्पर्धकानि उच्यन्ते येषामुदयेन सर्वं घात्यते। न चात्र सम्यक्त्वस्य निर्मूलविनाशं पश्यामो वयं, सद्भूतासद्भूतपदार्थेषु तुल्यश्रद्धानदर्शनात्। ततो युज्यते सम्यग्मिथ्यात्वस्य क्षायोपशमिको भावः इति।**

मिथ्यात्वकर्मणः उदयेन मिथ्यादृष्टिर्भवति इति त्रिविधगुणस्थानवर्तिनां भावाः क्रमेण पारिणामिकः क्षायोपशमिकः औदयिकश्च प्रकीर्तिताः सन्ति।

एवं सम्यक्त्वमार्गणायां स्वामित्वभावनिरूपणत्वेन चतुर्दशसूत्राणि कथितानि।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम
द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

इसका आचार्य समाधान करते हैं कि—

भले ही अनन्तानुबंधी चतुष्क उभयमोहनीय हो, किन्तु यहाँ वैसी विवक्षा नहीं है। अनन्तानुबंधी चतुष्क चारित्रमोहनीय ही है, इसी विवक्षा से सासादन गुणस्थान को पारिणामिक कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—चूँकि सम्यग्मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीय प्रकृति के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय से जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है, इसलिए उसके क्षायोपशमिक भाव नहीं बनता है ?

आचार्य समाधान देते हैं—सम्यक्त्व की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व के स्पर्धकों में सर्वघातीपना भले ही हो, किन्तु अशुद्धनय की विवक्षा से सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के स्पर्धकों में सर्वघातीपना नहीं होता है, क्योंकि उसका उदय रहने पर भी मिथ्यात्वमिश्रित सम्यक्त्व कण पाया जाता है। सर्वघाती स्पर्धक तो उन्हें कहते हैं जिनका उदय होने से मूल का (प्रतिपक्षी गुण) घात हो जाता है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व में तो हम सम्यक्त्व का निर्मूल विनाश नहीं देखते, क्योंकि यहाँ सद्भूत और असद्भूतपदार्थों में समान श्रद्धान होता देखा जाता है। इसलिए सम्यग्मिथ्यात्व का क्षायोपशमिक भाव बन जाता है।

मिथ्यात्व कर्म के उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है, इस प्रकार तीनों गुणस्थानवर्ती जीवों के भाव क्रम से पारिणामिक, क्षायोपशमिक और औदयिक माने जाते हैं।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा में स्वामित्वभाव का निरूपण करने वाले चौदह सूत्र कहे गये हैं।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार
की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का
बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

संप्रति संज्ञिमार्गणायां भावप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णी णाम कधं भवदि ?।।८२।।

खओवसमियाए लद्धीए।।८३।।

असण्णी णाम कधं भवदि ?।।८४।।

ओदइएण भावेण।।८५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। नोइंद्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानां जातिवशेन अनंतगुणहान्या घातयित्वा देशघातित्वं प्राप्य उपशांतानां उदयेन संज्ञित्वदर्शनात्। इमे संज्ञिनः क्षायोपशमिकलब्ध्या भवन्ति। असंज्ञिनः औदयिकभावेन, नोइंद्रियावरणस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयेन असंज्ञित्वदर्शनात्। न च नोइंद्रियावरणमसिद्धं कार्यस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां कारणस्यास्तित्वसिद्धेः।**

संज्ञि-असंज्ञित्वविरहितानां भावनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णेव सण्णी णेव असण्णी णाम कधं भवदि ?।।८६।।

खइयाए लद्धीए।।८७।।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब संज्ञीमार्गणा में भावों का कथन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञीमार्गणानुसार जीव संज्ञी किस कारण से होते हैं ?।।८२।।

क्षायोपशमिक लब्धि से जीव संज्ञी होते हैं।।८३।।

जीव असंज्ञी किस कारण से होते हैं ?।।८४।।

औदयिक भाव से जीव असंज्ञी होते हैं।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। नोइंद्रियावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के अपनी जाति विशेष के कारण अनन्तगुणी हानिरूप घात के द्वारा देशघातीपने को प्राप्त होकर उपशान्त हुए उनके उदय से संज्ञिपना देखा जाता है। ये संज्ञी जीव क्षायोपशमिक लब्धि से होते हैं। असंज्ञी जीव औदयिक भाव से होते हैं, क्योंकि नोइंद्रियावरणकर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय से असंज्ञीपना देखा जाता है। नोइन्द्रियावरण कर्म असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि कार्य के अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा कारण के अस्तित्व की सिद्धि हो जाती है।

अब संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित सिद्धों के भाव निरूपण हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव न संज्ञी न असंज्ञी किस कारण से होते हैं ?।।८६।।

क्षायिकलब्धि से जीव न संज्ञी न असंज्ञी होते हैं।।८७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**ज्ञानावरणस्य निर्मूलक्षयेण उत्पन्नपरिणामः नोइन्द्रियनिरपेक्षलक्षणः क्षायिका लब्धिर्नाम। तया क्षायिकया लब्ध्या संज्ञित्वमसंज्ञित्वं न लभते। अर्हन्तो भगवन्तः सिद्धाश्च न संज्ञिनो नासंज्ञिनः।**

उक्तं च- **संज्ञ्यसंज्ञिद्वयावस्था-व्यतिरिक्तामलात्मने।**
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये[१]**।।३०।।**

एवं संज्ञिमार्गणायां सूत्रषट्कं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

संप्रति आहारमार्गणायां स्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारो णाम कधं भवदि ?।।८८।।
ओदइएण भावेण।।८९।।
अणाहारो णाम कधं भवदि ?।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ज्ञानावरण कर्म के निर्मूलक्षय से जो नोइन्द्रियनिरपेक्ष लक्षण वाला जीवपरिणाम उत्पन्न होता है, उसी को क्षायिक लब्धि कहते हैं। उसी क्षायिक लब्धि से जीव न संज्ञी और न असंज्ञी होते हैं। अरिहंत और सिद्ध भगवान संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित होते हैं। ।

सहस्रनाम स्तोत्र में श्री जिनसेन आचार्य ने भी कहा है—

श्लोकार्थ—हे भगवन्! जो संज्ञी और असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित अमल—पवित्र आत्मा हैं। ऐसे वीतसंज्ञक क्षायिकसम्यग्दृष्टि अरिहंत भगवान के लिए मेरा नमस्कार होवे।।३०।।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा में छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार की सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब आहारमार्गणा में स्वामित्व का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणानुसार जीव आहारक किस कारण से होते हैं ?।।८८।।
औदयिक भाव से जीव आहारक होते हैं।।८९।।
जीव अनाहारक किस कारण से होते हैं ?।।९०।।

---

१. सहस्रनामस्तोत्र।

ओदइएण भावेण पुण खइयाए लद्धीए।।९१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। औदारिक-वैक्रियिक-आहारकशरीराणामुदयेन आहारोभवति। तैजस-कार्मणयोरुदयेन आहारः किन्नोच्यते ?**

नोच्यते, विग्रहगतौ अपि आहारकत्वप्रसंगात्। न चैवं, विग्रहगतौ अनाहारित्वदर्शनात्।

अयोगिभगवतां सिद्धानां च अनाहारत्वं क्षायिकं घातिकर्मणां सर्वकर्मणां च क्षयेण। विग्रहगतौ पुनः औदयिकेन भावेन, तत्र सर्वकर्मणामुदयदर्शनात्।

एवं चतुर्दशमस्थले आहारमार्गणायां स्वामित्वकथनत्वेन सूत्राणि चत्वारि गतानि।

इतो विस्तरः—**घातिकर्मणां क्षयेण नवकेवललब्धय उत्पद्यन्ते—**

''ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च[१]।'' अत्र चशब्देन सम्यक्त्वं चारित्रं च गृह्यते।

ज्ञानावरणस्य कर्मणः दर्शनावरणस्य च कृत्स्नस्य क्षयात् केवले ज्ञानदर्शने क्षायिके भवतः। दानान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तसंक्षयादाविर्भूतं त्रिकालगोचरानन्तप्राणिगणानुग्रहकरं क्षायिकमभयदानं ।

लाभान्तरायाशेषनिरासात् परित्यक्तकवलाहारक्रियाणां केवलिनां यतः शरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाः सूक्ष्माः अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः संबंधमुपयान्ति स क्षायिको लाभः।

औदयिक भाव से तथा क्षायिक लब्धि से जीव अनाहारक होते हैं।।९१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। औदारिक, वैक्रियिक व आहारक शरीर नामकर्म प्रकृतियों के उदय से जीव आहारक होता है।

शंका—तैजस और कार्मण शरीरनामकर्म की प्रकृतियों के उदय से जीव आहारक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा मानने पर विग्रहगति में भी जीव के आहारक होने का प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि विग्रहगति में जीव के अनाहारकपना देखा जाता है।

अयोगिकेवली भगवान और सिद्धों के अनाहारकपना क्षायिक होता है, क्योंकि उनके क्रमशः घातिया कर्मों का व समस्त कर्मों का क्षय होता है। किन्तु विग्रहगति में औदयिक भाव से अनाहारकपना होता है, क्योंकि विग्रहगति में सभी कर्मों का उदय देखा जाता है।

इस प्रकार चौदहवें स्थल में आहारमार्गणा में स्वामित्व का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब इसका विस्तृत वर्णन करते हैं—घातिया कर्मों के क्षय से नौ केवल लब्धियाँ उत्पन्न होती हैं। उनके नाम—"क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य तथा च शब्द से क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र का ग्रहण किया जाता है। समग्र ज्ञानावरण कर्म के क्षय से केवलज्ञान और दर्शनावरण के क्षय से केवलदर्शन क्षायिक भाव है। दानान्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय से आविर्भूत त्रिकालगोचर अनन्त प्राणियों का हितकारक, भगवान का अहिंसामय उपदेश होता है, जिससे जीवों को अभयदान मिलता है, वह भगवान का उपदेश क्षायिकदान है।

सम्पूर्ण लाभान्तराय कर्म का अत्यन्त क्षय होने पर कवलाहार न करने वाले केवली भगवान के शरीर की स्थिति में कारणभूत, अन्य मनुष्यों में नहीं पाये जाने वाले असाधारण परमशुभ, सूक्ष्म, दिव्य, अनन्त पुद्गल परमाणुओं का प्रतिसमय केवली के शरीर में संबंधित होना क्षायिकलाभ है।

इससे कवलाहार के बिना कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक औदारिक शरीर की स्थिति कैसे रह सकती है ? यह

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सू. ४।

तस्मात्—"औदारिकशरीरस्य किञ्चिन्न्यूनपूर्वकोटिवर्षस्थितिः कवलाहारमन्तरेण कथं संभवति" ? इति श्वेतपटानां यद्वचनं तदशिक्षितकृतं विज्ञायते।

कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्य तिरोभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः। यत्कृताः पंचवर्णसुरभिकुसुमवृष्टि-विविधदिव्यगंध-चरणनिक्षेपस्थानसप्तपद्मपंक्ति-सुगंधितधूप-सुखशीतमारुतादयो भावाः।

निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य कर्मणः प्रलयात् प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। यत्कृताः सिंहासन-बालव्यजनाशोकपादप-छत्रत्रय-प्रभामंडल-गंभीरस्निग्धस्वरपरिणाम-देव-दुंदभिप्रभृतयो भावाः।

आत्मनः सामर्थ्यस्य प्रतिबन्धिनो वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तसंक्षयादुद्भूतवृत्ति क्षायिकमनन्तवीर्यम्।

दर्शनमोहत्रिकस्य चारित्रमोहस्य च पंचविंशतिविकल्पस्य निरवशेषक्षयात् क्षायिके सम्यक्त्वचारित्रे भवतः।

अत्र कश्चिदाह—**यद्यनन्तदानलब्ध्यादय उक्ता अभयदानादिहेतवो दानादिसंक्षयाद् भवन्ति सिद्धेष्वपि तत्प्रसंगः इति चेत् ?**

आचार्यः प्राह—**नैष दोषः, शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसंगः परमानन्दाव्याबाधरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत्।**

सिद्धत्वं हि सर्वेषां क्षायिकाणां भावानां साधारणमस्ति[१]।

एवं आहारमार्गणायां आहारानाहारजीवप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

श्वेताम्बरजनों का कथन निराधार हो जाता है। अर्थात् इस क्षायिक लाभ के कारण भगवान बिना आहार किए कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष काल तक रह सकते हैं।

सकल भोगान्तराय के नाश से उत्पन्न होने वाला सातिशय भोग क्षायिकभोग है। इसी से पुष्पवृष्टि, गंधोदकवृष्टि, चरणनिक्षेप स्थान में सप्त कमलों की पंक्ति की रचना, सुगंधित धूप, सुगंधित सुखद शीतल वायु का चलना आदि अतिशय होते हैं।

समस्त उपभोगान्तराय कर्म के नाश से उत्पन्न होने वाला सातिशय उपभोग क्षायिकउपभोग है। इसी से सिंहासन, चमर, अशोकवृक्ष, छत्र-त्रय, प्रभा मंडल, गंभीर स्निग्ध मधुर दिव्यध्वनि, देव दुंदुभि आदि क्षायिक उपभोग प्राप्त होते हैं।

आत्मा की शक्ति के प्रतिबंधक, वीर्यान्तराय कर्म के अत्यन्त क्षय से उत्पन्न शक्तिविशेष अनन्त क्षायिकवीर्य है।

अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार चारित्र मोह की और दर्शनमोह की सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृति और मिथ्यात्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों के पूर्ण क्षय हो जाने से क्षायिक सम्यग्दर्शन और शेष चारित्र मोह की २१ प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक चारित्र होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—दानान्तरायादि के क्षय होने से प्रगट होने वाली जो अभयदानादि के हेतु अनंतदानादि लब्धियाँ कही हैं, वह अभयदानादि सिद्धों में भी होना चाहिए, क्योंकि सिद्धों में भी दानान्तराय आदि का अभाव है ?

पुनः आचार्य देव इसका उत्तर देते हैं—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दानादिलब्धियों के कार्य के लिए शरीर नामकर्म और तीर्थंकर प्रकृति के उदय की भी अपेक्षा रहती है। इसलिए शरीर एवं तीर्थंकर प्रकृति का अभाव होने से सिद्धों में दानादि नहीं है। सिद्धों में जैसे केवलज्ञान रूप से अनंतवीर्य है, उसी प्रकार परमानंद अव्याबाध सुखरूप से लब्धियाँ रहती हैं।

सभी क्षायिक भावों में व्यापक सिद्धत्व का भी कथन उन विशेष क्षायिक भावोंमें ही साधारणरूप से हो गया है।

इस प्रकार से आहारमार्गणा में आहारक और अनाहारक जीवों का प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक अ. २, सू. ४ की टीका।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे द्वितीयखण्डे प्रथमे महाधिकारे सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

तात्पर्यमेतत्—**सर्वौदयिकभावानामभावं कृत्वा क्षायिकभावानां लब्धये एव अस्माकं प्रयासो वर्तते। तासामपि लब्धीनां प्राक् क्षायिकसम्यक्त्वलब्धिः कदा मे भवेदिति भावनया यत् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं अधुना मयि विद्यते तस्य प्रच्युतिर्न भवेत् तस्मिन् वा दोषा न प्रभवेयुः तत्सम्यक्त्वं क्षायिकंप्राप्तिपर्यन्तं मयि स्थेयादिति प्रार्थयामहे जिनचरणाब्जयोर्नित्यम्।**

मंगलं स्यान्महावीरः श्रीगौतमश्च मंगलम् ।
जिनशासनमाचन्द्रं, स्थेयात् कुर्याच्च मंगलम्।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबलिसूरिविरचितक्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य शिष्यः प्रथमपट्टाधिपः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जम्बूद्वीपरचनापावनप्रेरिका-गणिनी ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां एकजीवापेक्षया स्वामित्वानियोगद्वाराख्यः प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में प्रथम महाधिकार की सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

तात्पर्य यह है कि—समस्त औदयिक भावों का अभाव करके क्षायिक भावों की प्राप्ति हेतु ही यह हमारा प्रयास है। उन समस्त नौ क्षायिक लब्धियों में से सर्वप्रथम मुझमें क्षायिकसम्यक्त्व नाम की लब्धि कब प्रगट होगी, ऐसी भावना से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जो आज मुझमें विद्यमान है, वह छूटने न पावे अथवा उसमें दोष न उत्पन्न होने पावे तथा क्षायिकसम्यक्त्व की प्राप्ति होने तक वह मुझमें स्थित रहे, भगवान जिनेन्द्र के श्रीचरणों में मेरी नित्य ही यही प्रार्थना है।

श्लोकार्थ—भगवान महावीर सबके लिए मंगलकारी होवे, उनके शिष्य गौतमगणधर मंगलस्वरूप हों तथा संसार में जब तक चंद्रमा का प्रकाश रहे, तब तक जिनशासन इस धरा पर स्थित रहे और सबका मंगल करे, यही भावना है।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवत्पुष्पदंत-भूतबली द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ में श्रीभूतबली आचार्य द्वारा विरचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्रीवीरसेनाचार्य कृत धवला टीका को प्रमुख करके तथा नाना ग्रंथों के आधार से रचित इस ग्रंथ में बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के शिष्य प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व अनियोग नाम का प्रथम महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ एकजीवेन कालानुगमो द्वितीयो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

ॐ नमो मंगलं कुर्यात् , ह्रीं नमश्चापि मंगलम् ।
मोक्षबीजं महामंत्रं, अर्हं नमः सुमंगलम्।।१।।

अथ वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतितमे वैशाखशुक्लाप्रतिपत्तिथेरारभ्य पंचमीपर्यन्तसंजाता या पंचकल्याणकप्रतिष्ठा[१] श्रीऋषभदेवस्य प्रतिमानां, सा सर्वलोके कल्याणं वितनोतु। यस्यां प्रतिष्ठायां अक्षयतृतीयाख्यया प्रसिद्धायां वैशाखशुक्लातृतीयायां तपःकल्याणकेन प्रतिष्ठितायै पिच्छिका-कमंडलुसहितायै मूर्तये राजभ्यां सोमप्रभश्रेयांसाभ्यां आहारदानविधिर्विधिना संजाता। प्राणप्रतिष्ठां कारयित्वा पद्मावतीदेवी च 'ऋषभविहार' कालोनीमध्ये श्रीऋषभदेवस्य मंदिरस्थिते देवीवेद्यां स्थापिता। सप्तर्षिप्रतिमाश्च प्रतिष्ठिता बभूवुः। इमास्तीर्थकरप्रतिमाः सप्तर्षिप्रतिमाश्च शासनदेवता पद्मावती चापि सर्वत्र दिल्लीराजधान्यां देशे ग्रामे पुरे च सर्वभाक्तिकानां कल्याणं कुर्वन्तु सुभिक्षं क्षेममारोग्यं च वितरन्तु।

अथ एक जीव की अपेक्षा कालानुगम नाम का द्वितीय महाधिकार

मंगलाचरण

श्लोकार्थ— ॐ नमः बीजाक्षर हम सबके लिए मंगलकारी होवे और ह्रीं नमः बीजाक्षर मंत्र भी मंगलमयी होवे तथा मोक्षधाम का बीजभूत अर्हं नमः मंत्र भी मंगल प्रदान करे।।१।।

वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस (२५२३) में वैशाख शुक्ला प्रतिपदा तिथि से प्रारंभ करके वैशाख शुक्ला पंचमी तक भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा की जो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी है, वह समस्त लोक में—विश्व भर में कल्याणकारी होवे। जिसकी प्रतिष्ठा में अक्षयतृतीया नाम से प्रसिद्ध वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन तपकल्याणक से प्रतिष्ठित पिच्छि-कमण्डलु सहित ऋषभदेव की प्रतिमा को, हस्तिनापुर के राजा की प्रतिकृति के रूप में सोमप्रभ और श्रेयांसराजा के द्वारा इक्षुरस का आहार दिये जाने की विधि सम्पन्न हुई। उस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य ही दिल्ली की "ऋषभ विहार" कालोनी में शासन देवी पद्मावती माता की भी प्राण प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई, उन्हें वहाँ के ऋषभदेव मंदिर में निर्मित देवी की वेदी में विराजमान किया गया तथा उसी समय चारण ऋद्धिधारी सप्तऋषियों की प्रतिमा भी प्रतिष्ठित हुईं। ये सभी तीर्थंकर प्रतिमा, सप्तऋषि प्रतिमा तथा शासनदेवी पद्मावती माता सर्वत्र राजधानी दिल्ली में एवं सम्पूर्ण देश, ग्राम, नगर आदि के भक्तजनों का कल्याण करें एवं सुभिक्ष, क्षेम और आरोग्यता प्रदान करें, यही मंगलभावना है।

विशेषार्थ— मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र से १४ नवम्बर १९९६ को मंगल विहार करके महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा प्रान्त में धर्मप्रभावना करती हुई पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का चैत्र कृ. षष्ठी, ३० मार्च १९९७ को राजधानी दिल्ली में संघ सहित मंगल प्रवेश हुआ। उस दिन दिल्ली प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री साहबसिंह वर्मा ने पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती महोत्सव वर्ष का दीप प्रज्ज्वलन करके उद्घाटन किया। पुनः दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के माध्यम से पूरे वर्ष तक सम्पूर्ण देश में भगवान ऋषभदेव के प्रचार-प्रसार हेतु विभिन्न आयोजन करने की घोषणा की गई। इसी वर्ष के अन्तर्गत दिल्ली की ऋषभ विहार कालोनी में अक्षयतृतीया पर्व बड़े धूमधाम से

१. लघु पंचकल्याणप्रतिष्ठा।

अथ अन्तरस्थलान्तर्गतैश्चतुर्दशभिरधिकारैः षोडशाधिकद्विशतसूत्रैरेकजीवापेक्षया कालानुगमनामा द्वितीयोमहाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमेऽधिकारे गतिमार्गणायां अष्टत्रिंशत्सूत्राणि। तदनु द्वितीयेऽधिकारे-इंद्रियनाम्नि त्रयस्त्रिंशत्सूत्राणि। ततस्तृतीयेऽधिकारे कायमार्गणायां चतुर्विंशतिसूत्राणि। पुनः चतुर्थेधिकारे योगमार्गणानाम्नि अष्टादशसूत्राणि। पुनरपि पंचम्यां वेदमार्गणायां चतुर्दशसूत्राणि। तत्पश्चात् कषायेऽधिकारे चत्वारि सूत्राणि। तदनु ज्ञानमार्गणायां पंचदश सूत्राणि। ततः परं संयमेऽधिकारे द्वाविंशतिसूत्राणि। तदनंतरं दर्शनमार्गणायां अष्टौ सूत्राणि। ततश्च लेश्यायां मार्गणायां षट्सूत्राणि। तदनंतरं भव्यमार्गणायां पंचसूत्राणि। तत्पश्चात् सम्यक्त्वमार्गणाधिकारे षोडशसूत्राणि। ततः संज्ञिमार्गणायां षट् सूत्राणि। तत्पश्चात् आहारमार्गणायां सप्तसूत्राणीति समुदायपातनिका भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

ततश्च चतुर्भिः स्थलैरष्टत्रिंशत्सूत्रैः एकेन जीवेन कालानुगमे गतिमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले नरकगतौ नारकाणां कालप्रतिपादनत्वेन ''एगजीवेण कालाणुगमेण'' इत्यादिनवसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ तिरश्चां कालकथनत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिना नवसूत्राणि। पुनश्च तृतीयस्थले मनुष्यगतौ मनुष्याणां चतुर्विधानामपि कालनिरूपणत्वेन ''मणुसगदीए'' इत्यादि षट्सूत्राणि। ततश्च चतुर्थस्थले देवगतौ देवानां चतुर्णिकायानां एकजीवापेक्षया कालप्ररूपणत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिचतु-

---

मनाया गया था। उस समय ऋषभविहार कालोनी में लघुपंचकल्याणक प्रतिष्ठा के साथ-साथ विभिन्न आयोजन सम्पन्न हुए थे। इसी कार्यक्रम के संदर्भ में इस टीका के अंदर टीकाकर्त्री ने उल्लेख किया है।

अब अन्तरस्थलों से सहित चौदह अधिकारों में दो सौ सोलह सूत्रों के द्वारा एक जीव की अपेक्षा कालानुगम नाम का द्वितीय महाधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम अधिकार में गतिमार्गणा में अड़तीस सूत्र हैं। पुनः द्वितीय अधिकार में इंद्रियमार्गणा में तेंतीस सूत्र हैं। आगे कायमार्गणा नामक तृतीय अधिकार में चौबीस सूत्र हैं। पुनः योगमार्गणा नाम के चतुर्थ अधिकार में अठारह सूत्र हैं। उसके पश्चात् वेदमार्गणा नाम के पंचम अधिकार में चौदह सूत्र हैं। तत्पश्चात् कषायमार्गणा नामके छठे अधिकार में चार सूत्र हैं। पुनः ज्ञानमार्गणा नामक सातवें अधिकार में पन्द्रह सूत्र हैं। आगे संयममार्गणा नामक आठवें अधिकार में बाईस सूत्र हैं। तदनंतर दर्शनमार्गणा नामक नवमें अधिकार में आठ सूत्र हैं। उसके बाद लेश्यामार्गणा नामक दशवें अधिकार में छह सूत्र हैं। पश्चात् भव्यमार्गणा नामक ग्यारहवें अधिकार में पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् सम्यक्त्वमार्गणा नामक बारहवें अधिकार में सोलह सूत्र हैं। पुनः संज्ञीमार्गणा वाले तेरहवें अधिकार में छह सूत्र हैं। तत्पश्चात् आहारमार्गणा नामक चौदहवें अधिकार में सात सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अथ गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में विभक्त अड़तीस सूत्रों के द्वारा एक जीव की अपेक्षा कालानुगम प्रकरण में गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में नरकगति के नारकियों का काल प्रतिपादन करने वाले ''एगजीवेण कालाणुगमेण'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में तिर्यञ्चगति में तिर्यञ्चों का काल कथन करने वाले ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में मनुष्यगति में चारों प्रकार के मनुष्यों का काल कथन करने हेतु ''मणुसगदीए'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् चतुर्थ स्थल में देवगति में चारों निकाय के देवों का एक जीव की अपेक्षा काल कथन करने हेतु ''देवगदीए'' इत्यादि चौदह सूत्र हैं।

र्दशसूत्राणि। इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

संप्रति गतिमार्गणायां नरकगतौ एकजीवापेक्षया कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

एगजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।।१।।

जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि।।२।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।।३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।**

कश्चिदाह—**अत्र गतिसामान्यापेक्षया प्ररूपणा किन्न कृता ?**

तस्य समाधानं—**चतुर्गतिप्ररूपणेनैव तदवगमात्। तिरश्चो वा मनुष्यस्य वा दशसहस्रवर्षायुःस्थितिकेषु नारकेषु उत्पद्य निर्गतस्य जीवस्य दशसहस्रवर्षमात्रस्थितिदर्शनात्। एवं सप्तम्याःपृथिव्याः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुः-स्थितिं बध्वा तत्रोत्पद्य स्वकस्थितिं अनुभूय निर्गतस्य जीवस्य उत्कृष्टस्थितिर्भवति।**

प्रथमपृथिव्यां नारकाणां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

पढमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।।४।।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि।।५।।

यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब गतिमार्गणा में नरकगति में एक जीव की अपेक्षा काल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

एक जीव की अपेक्षा कालानुगम से गतिमार्गणा के अनुवाद से नरकगति में नारकी कितने काल तक रहते हैं ?।।१।।

नारकी जीव जघन्य से दस हजार वर्ष तक नरकगति में रहते हैं।।२।।

उत्कृष्ट से तेंतीस सागरोपम काल तक नरक में रहते हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—गति सामान्य की अपेक्षा यहाँ प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

इस शंका का समाधान करते हैं—क्योंकि चारों गतियों की प्ररूपणा से उसका ज्ञान हो ही जाता है। किसी तिर्यंच या मनुष्य के दश हजार वर्ष की आयुस्थिति वाले नारकियों में उत्पन्न होकर वहाँ से निकले जीव के नरक में दश हजार वर्ष प्रमाण स्थिति देखी जाती है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवी के लिए तेतीस सागरोपम की आयुस्थिति को बांधकर व वहाँ उत्पन्न होकर अपनी स्थिति पूरी करके निकले हुए जीव के तेंतीस सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति होती है।

अब प्रथम पृथिवी के नारकियों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

प्रथम पृथिवी में नारकी वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।४।।

प्रथम पृथिवी में नारकी जीव जघन्य से दस हजार वर्ष तक रहते हैं।।५।।

उक्कस्सेण सागरोवमं।।६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**'केवचिरं' शब्दः समय-क्षण-लव-मुहूर्त-दिवस-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सर-युग-पूर्व-पल्य-सागरोपमादीनि अपेक्षते।**

प्रथमपृथिव्याः जघन्योत्कृष्टायुषी सीमन्तादित्रयोदशइन्द्रकविलेषु तत्रस्थश्रेणिबद्ध-प्रकीर्णकेषु किमेवं भवतः आहोस्वित् न भवतः ?

एतेषु सर्वेषु च इमे जघन्योत्कृष्टायुषी न भवतः, किंतु सर्वेषां विलानां मध्ये स्थितनारकाणां पृथक्-पृथक् एव । तद्यथा—

श्रेणिबध्द-प्रकीर्णकसहिते सीमन्तकनामप्रथमप्रस्तरे जघन्यायुःदशसहस्रवर्षप्रमाणं, उत्कृष्टं नवतिसहस्रवर्षाणि। निरयनामद्वितीयप्रस्तरे समयाधिक-नवतिसहस्रवर्षाणि जघन्यमायुः, उत्कृष्टं पुनः नवतिलक्षवर्षाणि। रौरवनाम्नितृतीयप्रस्तरे समयाधिकनवतिलक्षवर्षाणि जघन्यमायुः, उत्कृष्टं असंख्यातपूर्वकोटिप्रमाणं। भ्रान्तनाम-चतुर्थप्रस्तरे जघन्यमायुः समयाधिकाः असंख्याताः पूर्वकोट्यः उत्कृष्टं सागरोपमस्य दशमभागः। अयं दशमांशः अग्रतनप्रस्तरेषु जघन्योत्कृष्टायुः प्राप्त्यर्थं 'मुखं' कथ्यते अल्पत्वात्, सागरोपमं भूमिः भवति बहुतरत्वात्।

अत्रोपयोगिनी करणगाथा—

मुहभूमीण विसेसो उच्छय भजिदो दु जो हवे वड्ढी।
वड्ढी इच्छागुणिदा मुहसहिया होइ वड्ढिफलं।।

पुनः एवमानीतवृद्धिं दशसु स्थानेषु स्थापयित्वा एकादि-एकोत्तरशलाकाभिः गुणयित्वा मुखप्रक्षेपे

प्रथम पृथिवी में नारकी जीव उत्कृष्ट से एक सागरोपम काल तक रहते हैं।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—'कितने काल तक' यह शब्द समय, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पल्योपम व सागरोपम आदि की अपेक्षा रखता है।

शंका—यह जो प्रथम पृथिवी की जघन्य और उत्कृष्ट आयु बतलाई गई है, सो क्या सीमन्तक, निरय, रौरव, भ्रान्तक, उद्भ्रान्त, संभ्रान्त, असंभ्रान्त, विभ्रान्त, तप्त, त्रसित, वक्रान्त, अवक्रान्त और विक्रान्त नामक तेरहों इन्द्रक बिलों तथा उनसे संबद्ध श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक सब बिलों की यह आयुस्थिति होती है, या नहीं होती ?

समाधान—प्रथम पृथिवी के उक्त समस्त बिलों की जघन्य और उत्कृष्ट आयु इतनी ही नहीं होती, किन्तु सब बिलों की पृथक्-पृथक् जघन्य और उत्कृष्ट आयु होती है। वह इस प्रकार है—

अपने श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों सहित सीमन्तक नामक प्रथम प्रस्तर में जघन्य आयु दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्ष प्रमाण होती है। निरय नाम के दूसरे प्रस्तर में जघन्य आयु एक समय अधिक नब्बे हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे लाख वर्ष है। रौरव नाम के तीसरे प्रस्तर में जघन्य आयु एक समय अधिक नब्बे लाख वर्ष और उत्कृष्ट आयु असंख्यात पूर्वकोटिप्रमाण होती है। भ्रान्त नामक चतुर्थ प्रस्तर में जघन्य आुय एक समय अधिक असंख्यात पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम के दशवें भाग होती है। यही सागरोपम का दशमांस आगे के पाथड़ों में जघन्य और उत्कृष्ट आयु प्राप्त करने के लिए 'मुख' कहलाता है, क्योंकि वह अल्प है तथा पूरा एक सागरोपम 'भूमि' कहलाती है, क्योंकि वह मुख की अपेक्षा बहुत है।

यहाँ उपयोगी करणगाथा इस प्रकार है—

गाथार्थ—मुख और भूमि का जो विशेष अर्थात् अन्तर हो उसे उत्सेध से भाजित कर देने पर जो वृद्धि का प्रमाण आता है, उस वृद्धि को अभीष्ट से गुणा करके मुख में जोड़ने पर वृद्धि का फल प्राप्त होता है।।

पुनः इस प्रकार लाये हुए वृद्धि के प्रमाण को दश स्थानों में स्थापित कर एक आदि एक-एक अधिक

कृते इच्छितप्रस्तराणां आयुर्भवति।

तस्य प्रमाणमिदं—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
जघन्यायुः	१०००० वर्ष	९०००० वर्ष एक समय अधिक	९००००००० वर्ष एक समय अधिक	असंख्यात पूर्वकोटि एकसमय अधिक	$\frac{१}{१०}$ सागर	$\frac{२}{१०}$ सागर	$\frac{३}{१०}$ सागर	$\frac{२}{५}$ सागर	$\frac{१}{२}$ सागर	$\frac{३}{५}$ सागर	$\frac{७}{१०}$ सागर	$\frac{४}{५}$ सागर	$\frac{९}{१०}$ सागर
उत्कृष्टायुः	९०००० वर्ष	९०००००० वर्ष	असंख्यात पूर्व कोटि वर्ष	$\frac{१}{१०}$ सागर	$\frac{२}{१०}$ सागर	$\frac{३}{१०}$ सागर	$\frac{२}{५}$ सागर	$\frac{१}{२}$ सागर	$\frac{३}{५}$ सागर	$\frac{७}{१०}$ सागर	$\frac{४}{५}$ सागर	$\frac{९}{१०}$ सागर	१ सागर

अयमर्थः सूत्रे अनुक्तः कथं ज्ञायते ?

किमिति न प्रोक्तः, उक्तश्चैव देशामर्शकभावेन।

एतत्सूत्रं देशामर्शकमिति कुतो ज्ञायते ?

गुरूपदेशात् ज्ञायते ।

संप्रति द्वितीयादिपृथिवीषु नारकाणां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।।७।।

जहण्णेण एक्क तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।८।।

उक्कस्सेण तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि।।९।।

के क्रम से बढ़ी हुई शलाकाओं से गुणितकर लब्ध को मुख में मिला देने से प्रत्येक अभीष्ट पाथड़े की आयु का प्रमाण निकल आता है। इस प्रकार निकला हुआ चतुर्थ आदि पापड़ों का आयु प्रमाण इस प्रकार है—

(इसका कोष्ठक ऊपर देखें)

शंका—यह अर्थ सूत्र में तो कहा नहीं गया, फिर वह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्यों नहीं कहा गया, देशामर्शक भाव से कहा ही गया है।

शंका—प्रस्तुत सूत्र देशामर्शक है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—गुरु उपदेश से जाना जाता है।

अब द्वितीय आदि पृथिवी के नारकियों का काल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

दूसरी पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक की पृथिवियों में नारकी जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।७।।

जघन्य से दूसरी पृथिवी में कुछ अधिक एक सागरोपम, तीसरी में कुछ अधिक तीन, चौथी में कुछ अधिक सात, पाँचवी में कुछ अधिक दश, छठवी में कुछ अधिक सत्तरह और सातवीं में कुछ अधिक बाईस सागरोपम काल तक नारकी जीव रहते हैं।।८।।

द्वितीयादि पृथिवियों में नारकी जीव उत्कृष्ट से क्रमशः तीन, सात, दश, सत्रह, बाईस और तेंतीस सागरोपम काल तक रहते हैं।।९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। अत्र सातिरेकपदेन एकसमयाधिकं ग्राह्यं।**

सूत्रे सातिरेकपदेन एकश्चैव समयोऽधिकः इति कथं ज्ञायते ?

'उवरिल्लुक्कस्सट्ठिदी समयाहिया जहण्णा' इति आगमवचनात् ज्ञायते। अस्यायमर्थः—प्रथमपृथिव्याः उत्कृष्टस्थितिर्द्वितीयपृथिव्यां जघन्यस्थितिः समयाधिका ज्ञातव्या। एवमेव सर्वत्र पटलेषु नारकेष्वपि। द्वितीयपृथिव्यां जघन्यायुः समयाधिकमेकं सागरोपमं। तृतीयपृथिव्यां समयाधिकत्रिसागरोपमानि। चतुर्थ्यां समयाधिकसप्तसागरोपमानि। पञ्चम्यां समयाधिकदशसागरोपमानि। षष्ठ्यां समयाधिकसप्तदश-सागरोपमानि। सप्तम्यां पृथिव्यां समयाधिकद्वाविंशति सागरोपमानि।

उत्कृष्टेण द्वितीयादिषु नरकेषु त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमानि यथासंख्यमिति। अत्र द्वे अपि सूत्रे देशामर्शके, अतः अनेनैव कथनेन प्रत्येकनरकपटलानामपि जघन्योत्कृष्टायुषी गृहीतव्ये भवतः।

अधुना द्वितीयायां पृथिव्यां एकादशप्रस्तराणि—इन्द्रकपटलानि संति तेषां नामान्युच्यन्ते—तनक-स्तनक-वनक-मनक-घात-संघात-जिव्ह-जिव्हक-लोक-लोलुप-स्तनलोलुपाख्यानि। एषामुत्कृष्टायूंषि दर्शयन्ति—

प्रस्तारः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
उत्कृष्टायुः	$१\frac{२}{११}$	$१\frac{५}{११}$	$१\frac{६}{११}$	$१\frac{८}{११}$	$१\frac{१०}{११}$	$३\frac{१}{११}$	$२\frac{३}{११}$	$२\frac{५}{११}$	$२\frac{७}{११}$	$२\frac{९}{११}$	३ सागर

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ 'सातिरेक' अर्थात् 'कुछ अधिक' शब्द से एक समय अधिक ग्रहण करना चाहिए।

शंका—सूत्र में 'सातिरेक' अर्थात् 'कुछ अधिक' शब्द आया है। उससे मात्र एक समय ही अधिक होता है। यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि "उत्तरोत्तर उपरिम पृथिवी की उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक होकर नीचे-नीचे की पृथिवियों की जघन्य स्थिति होती है' इस आगमवचन से ही जाना जाता है। इसका अर्थ यह है कि प्रथम पृथिवी की उत्कृष्ट स्थिति दूसरी पृथिवी की जघन्य स्थिति एक समय अधिक जानना चाहिए। इसी प्रकार सभी पटलों के नारकियों में भी जानना चाहिए। द्वितीय पृथिवी के नारकियों की जघन्य आयु एक समय अधिक एक सागरोपम होती है। तृतीय पृथिवी के नारकियों की जघन्य आयु एक समय अधिक तीन सागरोपम है। चतुर्थ पृथिवी के नारकियों की जघन्य आयु एक समयाधिक सात सागर प्रमाण है। पाँचवी पृथिवी के नारकियों की जघन्य आयु एक समय अधिक दश सागर प्रमाण है। छठी पृथिवी के नारकियों की जघन्य आयु सत्रह सागर प्रमाण है और सातवीं पृथिवी के नारकियों की जघन्य आयु एक समय अधिक बाईस सागर प्रमाण है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा द्वितीय आदि नरकों में क्रमशः नारकियों की आयु तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तेंतीस सागर प्रमाण होती है। यहाँ दोनों ही सूत्र देशामर्शक हैं, अतः इसी कथन के द्वारा प्रत्येक नरक पटलों की भी जघन्य और उत्कृष्ट आयु ग्रहण कर ली जाती है।

अब द्वितीय पृथिवी के ग्यारह प्रस्तर बतलाते हैं—

उन इन्द्रक पटलों के नाम कहते हैं—१. तनक २. स्तनक ३. वनक ४. मनक ५. घात ६. संघात ७. जिव्ह ८. जिव्हक ९. लोक १०. लोलुप और ११. स्तनलोलुप।

इन ग्यारह पटलों में रहने वाले नारकियों की उत्कृष्ट आयु बताते हैं—

प्रस्तारः-	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
उत्कृष्टायुः	$१\frac{२}{११}$	$१\frac{५}{११}$	$१\frac{६}{११}$	$१\frac{८}{११}$	$१\frac{१०}{११}$	$३\frac{१}{११}$	$२\frac{३}{११}$	$२\frac{५}{११}$	$२\frac{७}{११}$	$२\frac{९}{११}$	३ सागर

तृतीयायां पृथिव्यां नव प्रस्तराणि संति—तप्त-त्रसित-तपन-तापन-निदाघ-प्रज्वलित-उज्वलित-सुप्रज्वलित-संप्रज्वलितनामानि। एषामायुषां संदृष्टिः—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५	६	७	८	९
उत्कृष्टायुः	३ ४/९	३ ८/९	४ ३/९	४ ७/९	५ २/९	५ ६/९	६ १/९	६ ५/९	७ सागर

चतुर्थ्यां पृथिव्यां सप्तेन्द्रकपटलानि—आर-तार-मार-वान्त-तमः-खात-खातखातनामानि संति। एषामायुषामुत्कृष्टानां संदृष्टिः—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५	६	७
उत्कृष्टायुः	७ ३/७	७ ६/७	८ २/७	८ ५/७	९ १/७	९ ४/७	१० सागर

पंचम्यां पृथिव्यां पंचप्रस्तराणि—तमः-भ्रम-झष-अन्ध-तिमिस्रनामानि संति। तेषां उत्कृष्टायुषां संदृष्टिः—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५
उत्कृष्टायुः	११ २/५	१२ ४/५	१४ १/५	१५ ३/५	१७ सागर

षष्ठ्यां नरकभूमौ प्रस्तरानि त्रीणि—हिम-वर्दल-लल्लंकनामानि संति। एतेषामायुषामुत्कृष्टानां संदृष्टिः—

प्रस्तारं-	१	२	३
उत्कृष्टायुः	१८ २/३	२० १/३	२२ सागर

तीसरी पृथिवी में नौ प्रस्तर हैं उनके—१. तप्त २. त्रसित ३. तपन ४. तापन ५. निदाघ ६. प्रज्वलित ७. उज्वलित ८. सुप्रज्वलित ९. संप्रज्वलित नाम हैं। इनमें रहने वाले नारकियों की आयु संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५	६	७	८	९
उत्कृष्टायुः	३ ४/९	३ ८/९	४ ३/९	४ ७/९	५ २/९	५ ६/९	६ १/९	६ ५/९	७ सागर

चौथी पृथिवी में आर, तार, मार, वान्त, तम, खात, खातखात नामक सात इन्द्रकपटल हैं।। इनका आयु प्रमाण भी पहले के समान जानना चाहिए। उसकी संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५	६	७
उत्कृष्टायुः	७ ३/७	७ ६/७	८ २/७	८ ५/७	९ १/७	९ ४/७	१० सागर

पाँचवी पृथिवी में तम, भ्रम, झष, अन्ध और तिमिस्र नामक पाँच इन्द्रक हैं। उनके आयु प्रमाण की संदृष्टि इस प्रकार है—

प्रस्तारं-	१	२	३	४	५
उत्कृष्टायुः	११ २/५	१२ ४/५	१४ १/५	१५ ३/५	१७ सागर

सप्तम्यां नरकपृथिव्यां अवधिस्थाननाम एकमेवेन्द्रकपटलं। तत्र जघन्यायुः एकसमयाधिकद्वाविंशतिसागरोपमं, उत्कृष्टं च त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि।

इतो विस्तरः किंञ्चिदुच्यते नारकाणां—

सप्तस्वपि नरकेषु बिलानां संख्याः उच्यन्ते—

प्रथमादीनां नरकाणां क्रमेण त्रिंशल्लक्ष-पंचविंशतिलक्ष-पंचदशलक्ष-दशलक्ष-त्रिलक्ष-पञ्चोनैकलक्ष-पंचबिलानि संति। तत्र रत्नप्रभापृथिवीमारभ्य पञ्चमभुवः त्रिचतुर्थभागपर्यंतं अत्युष्णं पञ्चमभुवश्चतुर्थे भागे षष्ठ्यां सप्तम्यां च भुवि भवत्यतिशीतम्।

तत्र नरकेषु जन्म गृहीत्वा नारकाः उपरि उत्पतन्ति, नानाविधदुःखानि चानुभवन्ति।

तथाहि— अंतोमुहुत्तकाले तदो चुदा भूतलम्हि तिक्खाणं।
सत्थाणमुपरि पडिदू-णुड्डीय पुणोवि णिवडंति।।१८१।।[1]

ते नारकाः घर्मापृथिव्यायां उपपादस्थानेषूत्पन्नाः सप्तयोजनं सपादत्रिक्रोशपर्यन्तमुपरि उड्डीयन्ते। क्रमात् द्वितीयपृथिव्या आरभ्य पंचदशयोजन-सार्धद्वयक्रोशं, एकत्रिंशद्योजनं एकक्रोशं, द्वाषष्टियोजन-द्विक्रोशं, पंचविंशतियोजनाधिकैकशतयोजनं, पंचाशदधिकद्विशतयोजनपर्यंतं चोत्प्लवन्ते आ षष्ठीं, सप्तम्यां च नारकाः पंचशतयोजनपर्यन्तं उद्गच्छन्ति।

छठी पृथिवी में हिम, वर्दल और लल्लंक नामक तीन इन्द्रक हैं। उनके आयु प्रमाण की संदृष्टि यह है—

प्रस्तारं-	१	२	३
उत्कृष्टायुः	१८ २/३	२० १/३	२२ सागर

सातवीं पृथिवी में अवधिस्थान नामक एक ही इन्द्रक पटल है। वहाँ जघन्य आयु एक समय अधिक बाईस सागरोपम तथा उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरोपम है।

उन नारकियों का यहाँ कुछ विस्तार से वर्णन करते हैं—

सातों नरकों में बिलों की संख्या बतलाते हैं—

प्रथम आदि नरकों में क्रमशः तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख (९५ हजार) और पाँच बिल होते हैं। उनमें प्रथम रत्नप्रभा पृथिवी से पाँचवीं पृथिवी के तृतीय-चतुर्थ (३/४) भाग पर्यन्त अति उष्णता रहती है और पाँचवीं पृथिवी के चतुर्थ भाग में तथा छठी-सतवीं पृथिवी में अतिशीत पाई जाती है।

उन नरकों में जन्म लेकर नारकी ऊपर से नीचे गिरते हैं और नाना दुःखों का अनुभव करते हैं। कहा भी है—

गाथार्थ—नारकी जीव अन्तर्मुहूर्त काल में उपपाद स्थान से च्युत होकर नरक भूमि के तीक्ष्ण शस्त्रों पर गिरकर ऊपर उछलते हैं और पुनः उन्हीं पर गिरते हैं।।१८१।।

भावार्थ—पाँच के घन को सोलह से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने योजन प्रमाण प्रथम घर्मा पृथिवी के नारकी उछलते हैं तथा द्वितीयादि पृथिवियों के नारकी इनसे दूने-दूने उछलते हैं ऐसा जानना चाहिए।

घर्मापृथिवी के नारकी ७ योजन ३ $\frac{१}{४}$ कोश तक ऊपर उछलते हैं पुनः क्रम से द्वितीय पृथिवी प्रारंभ करके १५ योजन ढ़ाई कोश, ३१ योजन १ कोश, ६२ योजन २ कोश, १२५ योजन, २५० योजन और सातवीं माघवी पृथिवी के नारकी ५०० योजन ऊँचे उछलते हैं।

---

१. त्रिलोकसार गाथा १८१।

पुनश्च तत्रस्थाः पुराणनारका उड्डीय पतितान् तान् नारकान् विलोक्य तत्रागत्य बहुविधानि दुःखानि उत्पादयन्ति—

पौराणिका तदा ते दट्ठूणइणिट्ठुरारवागम्म।
खींचंति णिसिंचंति य वणेसु बहुखारवारीणि।।१८३।।
तेवि विहंगेण तदो जाणिद पुव्वावरारिसंबंधा।
असुहापुहविक्किरिया हणंति हण्णंति वा तेहिं।।१८४।।

तत्रापृथग्विक्रिया एव तेषां स्वशरीराणां—

वयवग्घ-घूग-कागहि-विच्छियभल्लूक गिद्धसुणयादिं।
सूलग्गि-कोंत-मोग्गर-पहुदी-संगे विकुव्वंति।।१८५।।
वेदालगिरी भीमा जंतसयुक्कडगुहा य पडिमाओ।
लोहणिहग्गिकणड्ढा परसूछुरिगासिपत्तवणं।।१८६।।
कूडा सामलिरुक्खा वयिदरणि-णदीउ खारजलपुण्णा।
पूयरुहिरा दुगंधा दहा य किमिकोडिकुलकलिदा।।१८७।।

ते वैतरणीं नदीं प्राप्य कीदृशा भवन्तीति चेत् ?

अग्गिभया धावंता मण्णंता सीयलंति पाणीयं ।
ते वयिदरणिं पविसिय खारोदयदड्ढसव्वंगा।।१८८।।

पुनः वहाँ रहने वाले पुराने नारकी उछल कर गिरने वाले नारकियों को देखकर वहाँ आकर बहुत प्रकार के दुःखों को उत्पन्न कराते हैं—

गाथार्थ—पुराने नारकी नये नारकियों को देखकर अति कठोर शब्द करते हुए पास आकर उन्हें मारते हैं और उनके घावों पर अति खारा जल सींचते हैं।।१८३।।

अर्थात् पुराने नारकी नवीन नारकी को देखकर अति कठोर शब्द बोलते हुए उनके पास आकर उन्हें मारते हैं। मारने से तथा शस्त्रों पर गिरने से जो घाव हो जाते हैं, उन पर वे अत्यन्त खारा जल सींच-सींचकर पीड़ा पहुँचाते हैं।

गाथार्थ—विभङ्गज्ञान से पूर्वापर के वैर का संबंध जानकर वे नवीन नारकी भी अशुभ और अपृथक् विक्रिया द्वारा उन्हें मारते हैं और उनके द्वारा स्वयं मारे जाते हैं।।१८४।।

अब वहाँ होने वाली उन नारकियों के शरीरों की अपृथक् विक्रिया होती है, ऐसा बतलाते हैं—

गाथार्थ—नारकी जीव अपने ही शरीर में भेड़िया, व्याघ्र, घुग्घू, कौआ, सर्प, बिच्छू, रीछ, गिद्ध, कुत्ता आदि रूप तथा त्रिशूल, अग्नि, बरही, सेल, मुद्गरादि रूप विक्रिया करते हैं।।१८५।।

अर्थात् नारकी जीव परस्पर दुःख देने के लिए अपने शरीर का व्याघ्रादिरूप तथा त्रिशूलादिरूप परिणमन कराकर नाना प्रकार के दुःख दूसरों को देते हैं और स्वयं भोगते हैं।

गाथार्थ—उन नरको में बेताल सदृश भीमाकृति पर्वत हैं। दुःखदायक सैकड़ों यंत्रों से भरी गुफाएँ हैं। वहाँ स्थित प्रतिमाएँ लोहमयी है एवं अग्निकणों से व्याप्त हैं। फरसी, छुरिकादि शस्त्र सदृश पत्रों से युक्त असिपत्र वन हैं। कूट शाल्मलि वृक्ष हैं। वहाँ की वैतरणी नाम की नदियाँ और तालाब खारे जल से भरे हैं, दुर्गन्धित पीप, खून से युक्त हैं तथा उनमें करोंड़ों कीड़े भरे हैं।।१८६-१८७।।

वे वैतरणी नदी को प्राप्त कर कैसे होते हैं ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ—अग्नि के भय से दौड़कर आने वाले नारकी 'यह शीतल जल है' ऐसा मानकर जब उस नदी में प्रवेश करते हैं, तो खारे जल से उनका सारा शरीर जल जाता है।।१८८।।

उट्ठिय वेगेण पुणो असिपत्तवणं पयांति छायेत्ति।
कुंतासि-सत्ति जट्ठिहिं छिज्जंते वादपडिदेहिं।।१८९।।

तेषां बहिर्दुःखसाधनानि बहूनि संति तत्र—

लोहोदय भरिदाओ कुंभीओ तत्तबहुकडाहा य।
संतत्तलोहफासा भू सूईसद्दुलाइण्णा।।१९०।।

तत्र क्षेत्रस्पर्शजदुःखं शृणु—

विच्छियसहस्सवेयण-समधियदुक्खं धरित्तिफासादो।
कुक्खक्खिसीसरोगग-छुधतिसभयवेयणा तिव्वा।।१९१।।

नरकभूमिषु भोजनं कीदृशं इति चेत् ?

सादिकुहिदातिगंधं मणिमप्पं मट्टिंय विभुंजंति।
घम्मभवा वंसादिसु असंखगुणिदासुहं तत्तो।।१९२।।

अर्थात् नवीन नारकी जीव अग्नि के भय से दौड़कर आते हैं और वैतरणी नदी के जल को शीतल मानकर शीतलता की कामना करते हुए उसमें प्रवेश कर जाते हैं किन्तु शीतलता मिलने के स्थान पर नदी के खारे जल से उनका सर्वाङ्ग दग्ध हो जाता है।

गाथार्थ—वे नारकी शीघ्र ही वहाँ से उठकर 'यहाँ छाया है' ऐसा मानते हुए असिपत्र वन में प्रवेश करते हैं। किन्तु वहाँ वायु से गिरने वाले सेल, तलवार, शक्ति और लकड़ी आदि के सदृश पत्रों से उनके शरीर छिद जाते हैं।।१८९।।

अर्थात् नारकी जीव अग्नि से तप्त हुए वैतरणी में प्रवेश करते हैं, वहाँ खारे जल के कारण उनकी वेदना और बढ़ जाती है। उस भंयकर वेदना से त्राण पाने के लिए वे शीतल छाया की कामना करते हुए वन में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ भी वाणों के समान तीखे पत्तों से उनके शरीर छिद जाते हैं।

वहाँ उन नारकियों के दुःखके बाह्य साधन बहुत से हैं, उन्हें कहते हैं—

गाथार्थ—उन नरकों में गर्म लोहे के समान जल से भरे कुम्भी पाक हैं, अत्यन्त गर्म कड़ाह हैं। वहाँ की भूमि गर्म, तपे हुए लोहे के समान स्पर्शवाली और सुई के समान पेनी दूब से व्याप्त है।।१९०।।

अर्थात् जिस प्रकार यहाँ हंडिया आदि में रखकर भोजन पकाते हैं तथा कड़ाही के गर्म तेल आदि में भोज पदार्थ तलते हैं, उसी प्रकार नरकों में नारकी जीव एक-दूसरे को कुंभी में रखकर पकाते हैं और गर्म कड़ाहों में डालकर तलते हैं।

अब वहाँ की भूमि के स्पर्श से होने वाले दुःख दृष्टान्त द्वारा कहते हैं, उन्हें सुनो—

गाथार्थ—हजार बिच्छुओं के एक साथ काटने पर जो वेदना होती है, उससे भी अधिक वेदना वहाँ की भूमि के स्पर्श मात्र से होती है। उन नारकियों को उदर, नेत्र एवं मस्तक आदि के रोगों से उत्पन्न तीव्र वेदना तथा भूख, प्यास, भय आदि की तीव्र बाधाएँ होती हैं।।१९१।।

अब नारकी जीवों का भोजन कैसा होता है ? उसे कहते हैं।

गाथार्थ—प्रथम घर्मा पृथिवी में उत्पन्न हुए नारकी जीव खानादि निकृष्ट प्राणियों के सड़े हुए कलेवरों की दुर्गन्ध से भी अधिक दुर्गन्ध वाली मिट्टी खाते हैं। वह दुर्गन्धित मिट्टी भी उन्हें अपनी भूख प्रमाण नहीं मिलती अर्थात् अल्प मात्रा में ही मिलती है, जिससे क्षुधा शांत नहीं होती। वंशादि पृथिवियों के नारकी इससे असंख्यातगुणित अशुभ मिट्टी का भक्षण करते हैं।।१९२।।

तत्रस्था मृत्तिका यदि अत्र मर्त्यलोके आगच्छेत् तर्हि कियन्तो जीवा म्रियन्ते ?

तदेवोच्यते—

पढमासणमिह खित्तं कोसद्धं गंधदो विमारेदि।
कोसद्धद्धहियधराट्ठियजीवे पत्थरक्कमदो।।१९३।।

प्रथमपृथिवीप्रथमपटलाशनं इह मनुष्यक्षेत्रे क्षिप्तं चेत् क्रोशार्धं गन्धतो विमारयति इत्याद्यर्थोऽवगन्तव्यः। तथापि ते तत्र न म्रियन्ते—

ण मरंति ते अकाले सहस्सखुत्तो वि छिण्णसव्वंगा।
गच्छंति तणुस्स लवा संघादं सूदगस्सेव।।१९४।।

एतद्दुःखं तत्र तर्हि ये केचित् तीर्थकरप्रकृतिबंधं कृत्वा तत्र गच्छन्ति तेषां मरणपर्यन्तमीदृशमेव दुःखमस्ति वा किंचिदन्तरं इति चेत् ? उच्यते—

तित्थयरसंतकम्मुवसग्गं णिरए णिवारयंति सुरा।
छम्मासाउगसेसे सग्गे अमलाणमालंको।।१९५।।

वहाँ की मिट्टी यदि मर्त्यलोक में आ जावे तो कितने जीव मर जाते हैं ? उसको बताते हैं—

गाथार्थ—प्रथम नरक के प्रथम पटल के नारकियों के भोजन की वह दुर्गन्धमय मिट्टी यदि मनुष्य क्षेत्र में डाल दी जाए तो वह अपनी दुर्गन्ध से आधे कोश के जीवों को मार डालेगी। इसी प्रकार प्रत्येक पटल के आधार की मिट्टी क्रम से आधा-आधा कोस अधिक पृथिवी स्थित जीवों को मारने की क्षमता वाली है।।१९३।।

इसका अर्थ यह है कि अंतिम नरक—सप्तम पृथिवी के अवधिस्थान नामक ४९वें पटल के नारकी जिस मिट्टी का आहार करते हैं, वह मिट्टी अपनी दुर्गन्ध से मध्यलोक में स्थित साढ़े चौबीस २४ $\frac{1}{2}$ कोस के जीवों को मारने की सामर्थ्यवाली होती है, ऐसा जानना चाहिए।

फिर भी वे मरते नहीं है, इस बात को बताते हैं—

गाथार्थ—फिर भी वहाँ सम्पूर्ण शरीर को हजारों बार छिन्न-भिन्न कर देने पर भी उन नारकी जीवों का अकाल में मरण नहीं होता। पारे के कणों के सदृश नारकी जीवों के शरीर के टुकड़े भी संघात को प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् पुनः पुनः मिल जाते हैं।।१९४।।

भावार्थ—जिस प्रकार पारे के कण छिन्न-भिन्न नहीं रह सकते, शीघ्र ही चारों ओर से आकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार नारकियों के शरीर खंड-खंड हो जाने पर भी मिल कर एक हो जाते हैं। आयु पूर्ण हुए बिना उनका मरण नहीं होता, चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो।

इतने दुःख नरक में हैं, तो जो तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके नरक में जाते हैं, उनको भी मरण पर्यंत ऐसे दुःख सहने पड़ते हैं अथवा कुछ अंतर होता है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—

गाथार्थ—नरक में जिन नारकी जीवों के तीर्थंकर नामकर्म सत्ता में हैं उनकी आयु के छः माह शेष रहने पर देवगण उन नारकियों का उपसर्ग निवारण कर देते हैं तथा स्वर्ग में भी तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले देवों की आयु छह माह शेष रहने पर माला नहीं मुरझाती हैं।

भावार्थ—तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले नारकियों की आयु छह माह शेष रहने पर देव उनके उपसर्ग दूर कर देते हैं तथा इसी प्रकृति की सत्ता वाले देवों की छह माह आयु शेष रहने पर माला नहीं मुरझाती है।

यथा श्रेणिकमहाराजस्तत्र प्रथमनरकेऽधुना सर्वाणि दुःखानि भुंक्ते। अग्रेतनोत्सर्पिणीकाले यदा स मातुर्गर्भे आगमिष्यति तस्मात् षण्मासपूर्वमेव सुराः तत्र गत्वा तस्योपसर्गं निवारयिष्यन्ति।

अहो भव्या! श्रूयंतां, एतन्नरकदुःखं श्रुत्वा प्रतिक्षणं चिंतनीयं। यत् वयं कदाचिदपि नरकगतिकारणं पापं न करिष्यामः, किंच यदि एकबारं नरकायुर्बध्नीयात् तर्हि तत्र गमनं अवश्यंभावि। राज्ञा श्रेणिकेन भगवन्महतिमहावीरजिनेन्द्रस्य समवसरणे त्रिंशद्वर्षपर्यन्तं दिव्यध्वनिः श्रुतः। किंतु नरकायुःप्रकृतेर्विच्छित्तिर्न जाता। तस्यायुषि अपकर्षणं तु जातं अतस्तत्र प्रथमनरके मध्यमायुः चतुरशीतिलक्षवर्षपर्यन्तमेव जातं।

तत्तो निर्गत्यासौ श्रेणिकचरः तीर्थकरो भविष्यति महापद्मनामधेयः।

ते नारका अपमृत्युं न लभन्ते—

अणवट्टसगाउस्से पुण्णे वादाहदब्भपडलं वा।
णेरइयाणं काया सव्वे सिग्घं विलीयंते।।१९६।।

ते नारकाः तत्रामरणांतं दुःखं भुञ्जन्ते—

खेत्तजणिदं असादं सारीरं माणसं च असुरकयं।
भुंजंति जहावसरं भवट्ठिदीचरिमसमयोत्ति[१]।।१९७।।

जैसे महाराजा श्रेणिक प्रथम नरक में आज सभी दुःखों को भोग रहे हैं। आगे आने वाले उत्सर्पिणी काल में जब वे माता के गर्भ में आएँगे, तब गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही देव वहाँ—नरक में जाकर उनके उपसर्ग का निवारण करेंगे।

अहो भव्यात्माओं! सुनो, नरकों के इन दुःखों को श्रवण करके प्रतिक्षण चिन्तन करो कि हम नरक गति को प्राप्त कराने के कारणभूत पापों को नहीं करेंगे, क्योंकि यदि एक बार भी नरक की आयु बंध गई तो नरक में अवश्यमेव जाना ही पड़ेगा। राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर जिनेन्द्र के समवसरण में तीस वर्ष तक दिव्यध्वनि को सुना किन्तु नरकायु नामक प्रकृति नष्ट नहीं हो पाई। हाँ, उस नरकायु की स्थिति का अपकर्षण तो हो गया अतः उनकी सप्तम नरक की आयु प्रथम नरक की मध्यम आयु के रूप में चौरासी हजार वर्ष की हो गई।

उस प्रथम नरक से निकलकर श्रेणिकचर महापद्म नाम के तीर्थंकर होंगे।

वे नारकी नरक में अकालमृत्यु को प्राप्त नहीं होते हैं—

गाथार्थ—अपनी अनपवर्त्य आयु के पूर्ण होते ही नारकियों का सम्पूर्ण शरीर उसी प्रकार विलय को प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार पवन से ताड़ित मेघपटल विलय हो जाते हैं।।१९६।।

अर्थात् जिनजीवों की भुज्यमान आयु का कदलीघात नहीं होता है—अकाल में आयु का नाश नहीं होता—जहाँ अकाल मरण नहीं होता है, उसे अनपवर्त्यायु कहते हैं। जिस प्रकार वायु से आहत मेघपटल नाश को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार अनपवर्त्य आयु समाप्त होते ही नारकियों का सम्पूर्ण शरीर विलय को प्राप्त हो जाता है।

वे नारकी वहाँ मरण पर्यन्त दुःख भोगते हैं—

गाथार्थ—नारकी जीव भवस्थिति के चरमसमय पर्यन्त यथाअवसर क्षेत्रजनित, मानसिक, शारीरिक और असुरकृत असाता कर्म को भोगते रहते हैं।।१९७।।

अर्थात् नरकों में उक्त चारों प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ प्राणी एक क्षण भी शांति का अनुभव नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त परस्पर उदीरित दुःख को भी वे नारकी भोगते हैं।

---

१. त्रिलोकसार गाथा १९६-१९७।

नरकेषु चतुर्विधानि दुःखानि—क्षेत्रसंबंधि-शारीरिक-मानसिक-असुरकृतानि। ये केचित् प्रतिशोधभावेन वैरं बध्नंति ते प्राणिनः नरकभूमौ गत्वा महद्दुःखं भुञ्जन्ते, श्रेणिकराजादिवत्। तथा च ये केचित् सम्यग्दृष्टयो जीवास्ते कदाचिदपि प्रतिशोधभावनां न कुर्वन्ति सीतामहासतीवत्।

पद्मपुराणे च दृश्यते—

महासतीसीता आर्यिकावस्थायां समाधिना मृत्वाच्युतस्वर्गे प्रतीन्द्रो[१] बभूव। एकदासौ प्रतीन्द्रस्तृतीयनरके गत्वा लक्ष्मण-रावणचरौ नारकौ सम्बोधयत्।

उक्तं च— **यदीच्छतात्मनः श्रेयस्तत एवं गतेऽपि हि। सम्यक्त्वं प्रतिपद्यस्व काले बोधिप्रदं शुभं।।**

इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूतं न भविष्यति। इह सेत्स्यन्ति सिद्ध्यन्ति सिषिधुश्च महर्षयः।।

इत्यादिप्रकारेण तौ संबोध्य सम्यग्दर्शनरत्नं च ग्राहयित्वा संतुष्टो बभूव[२]।

अन्यत्रापि द्रष्टव्यं—ऐशानस्वर्गादागत्य श्रीधरदेवो महाबलचरः द्वितीयनरके गत्वा शतमतिमंत्रिणो

नरकों में चार प्रकार के दुःख होते हैं—१. क्षेत्रसंबंधी २. शारीरिक ३. मानसिक ४. असुरकृत। जो जीव यहाँ प्रतिशोध भाव से—किसी से बदला लेने की भावना से वैर को बांध लेते हैं वे नरक भूमि में जाकर महान दुःखों को भोगते हैं, राजा श्रेणिक के समान। जो सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं वे कभी किसी के प्रति प्रतिशोध की भावना नहीं रखते हैं, महासती सीता के समान। अर्थात् राजा श्रेणिक ने धर्मविद्वेष के कारण मिथ्यात्व बुद्धि से अपनी रानी चेलना से बदला लेने की भावना रखते हुए वीतरागी सन्त यशोधर नामक मुनि के गले में मरा हुआ सर्प डालकर उन पर उपसर्ग किया अतः उन्होंने उसी क्षण नरक आयु का बंध कर लिया और पुनः तीर्थंकर महावीर के समवसरण में सम्यक्त्व प्राप्त करके तीस वर्ष तक धर्मध्यान करने के बावजूद भी उन्हें नरक के दुःख तो सहने ही पड़े, जबकि इससे विपरीत सम्यग्दर्शन से सुशोभित सती सीता ने अनेक संघर्षों को सहन करने के बाद भी किसी के प्रति विद्वेष भाव—बदला लेने का भाव नहीं किया, तो वह स्वर्ग में जाकर असीम सुख को भोगने लगी।

पद्मपुराण में भी कहा है—

महासती सीता ने आर्यिका अवस्था में समाधिपूर्वक मरण करके अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र का पद प्राप्त कर लिया। एक बार उस प्रतीन्द्र ने नरक में जाकर लक्ष्मण और रावणचर जीव को नरक में भी सम्बोधन प्रदान किया।

कहा भी है—

श्लोकार्थ—सीता ने नरक में जाकर दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा कि—हे भव्यात्मन्! यदि आप लोग अपना भला चाहते हैं तो इस दशा में स्थित होने पर भी सम्यक्त्व को प्राप्त करो। यह सम्यक्त्व समय पर बोधि को प्रदान करने वाला एवं शुभरूप है। इससे बढ़कर दूसरा कल्याणकारी न हुआ है, न था, न होगा। इसके रहते हुए महर्षिगण सिद्ध होंगे, अभी हो रहे हैं और पहले भी हुए थे।।

इत्यादि प्रकार से सीता का जीव प्रतीन्द्र-लक्ष्मण और रावण दोनों को सम्बोधित करके और उन्हें सम्यग्दर्शन ग्रहण करवाकर अतीव संतुष्ट हुआ।

अन्यत्र-आदिपुराण में भी दृष्टव्य है—

महाबल राजा जो समाधिपूर्वक मरण करके दूसरे ऐशान स्वर्ग में श्रीधर नाम का देव हुआ था, उस

---

१. पद्मपुराण पर्व १०९। २. पद्मपुराण पर्व १२३।

जीवं नारकं संबोध्य सम्यग्दर्शनं प्रापयत्। सम्यग्दर्शनप्रभावेण नारकः तत्तो निर्गत्य विदेहक्षेत्रे जयसेननामा-चक्रवर्तिपुत्रोऽभवत्। तस्मिन् भवेऽपि विवाहसमये श्रीधरदेवेन संबोधनं प्राप्य दीक्षां गृहीत्वासौ ब्रह्मस्वर्गे देवो बभूव[१]।

तात्पर्यमेतत्—**सम्यग्दर्शनस्य माहात्म्यं विज्ञाय नरकदुःखेभ्यो भीत्वा सततं धर्म एवाराधनीयो भवति। एवं प्रथमस्थले एकजीवापेक्षया कालानुगमे नारकाणां कालकथनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।**

अधुना तिर्यग्गतौ सामान्येन तिरश्चां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खो केवचिरं कालादो होंति ?।।१०।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।११।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति । मनुष्येभ्यः आगत्य तिर्यगपर्याप्तेषु उत्पद्य तत्र जघन्यायुःस्थितिं स्थित्वा तत्रत्यात् निर्गतस्य जीवस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रजघन्यकालो भवति। उत्कर्षेण अनर्पितगतिभ्यः आगत्य तिर्यक्षु उत्पद्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनकालपर्यंतं परिवर्त्य अन्यगतिं गतस्य सूत्रोक्तकालो भवति असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणमनन्तकालमिति। अत्रासंख्यातपुद्गलपरिवर्ते**

श्रीधर देव ने दूसरे नरक में जाकर शतमति मंत्री के जीव नारकी को सम्बोधन प्रदान करके उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त कराया था। सम्यग्दर्शन के प्रभाव से वह नारकी नरक से निकलकर विदेहक्षेत्र में चक्रवर्ति सम्राट् का जयसेन नामक पुत्र हुआ था। उस भव में भी जयसेन ने श्रीधरदेव से अपने विवाह के समय संबोधन प्राप्त करके जैनेश्वरी दीक्षा लेकर ब्रह्मस्वर्ग में देवपद को प्राप्त किया था।

तात्पर्य यह है कि—सम्यग्दर्शन का माहात्म्य जानकर हम सभी को नरक के दुःखों से भयभीत होकर सदैव धर्म की ही आराधना करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में नारकियों का काल कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यंचगति में सामान्य तिर्यंचों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१०।।

तिर्यंच गति में तिर्यंच जीव वहाँ जघन्य से क्षुद्रभव ग्रहण काल तक रहते हैं।।११।।

तिर्यंच जीव उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक रहते हैं, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। मनुष्यगति से आकर तिर्यंच अपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर वहाँ जघन्य आयु स्थिति प्रमाण काल तक रहकर वहाँ से निकलने वाले जीव के क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य काल पाया जाता है। उत्कृष्टरूप से अविवक्षित गतियों से आकर तिर्यंचों में उत्पन्न होकर आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गलपरिवर्तन काल तक तिर्यंचों में परिभ्रमण करके अन्यगति में जाने वाले जीव के सूत्रोक्त असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल पाया जाता है। यहाँ असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन

---

१. आदिपुराण पर्व १०।

उक्ते आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रा एव भवन्ति ।

ततोऽधिकं न भवतीति कथं ज्ञायते ?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात् ज्ञायते नावलिकायाः असंख्यातभागमात्रादधिकं।

जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणं कियत्प्रमाणं ?

उच्यते— **छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सबारमरणाणि**
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तो सि णिगोयवासम्मि।।२८।।
वियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणीहि ।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतोमुहुत्तस्स[1]।।२९।।

त्रिविधपंचेन्द्रियतिरश्चां कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी केवचिरं कालादो होंति ?।।१३।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं।।१४।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।१५।।

कहने पर आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही वे पुद्गल परिवर्तन होते हैं।

शंका — असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनों का तात्पर्य आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है, इससे अधिक नहीं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान — आचार्य परम्परागत उपदेश से यह जाना जाता है कि आवली के असंख्यातवें भाग मात्र अधिक नहीं है।

जघन्यकालरूप क्षुद्रभवग्रहण का कितना प्रमाण होता है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—

गाथार्थ — निगोदस्थान में निगोदिया जीव एक अन्तर्मुहूर्त में छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस (६६३३६) बार मरण करते हैं।।२८।।

विकलेन्द्रिय जीव क्रमशः अस्सी, साठ और चालिस बार अर्थात् एक अन्तर्मुहूर्त में दो इंद्रिय जीव अस्सी बार मरण करते हैं, तीन इन्द्रिय जीव साठ बार मरते हैं और चार इन्द्रिय जीव चालिस बार मरते हैं तथा पंचेन्द्रिय जीव एक अन्तर्मुहूर्त में चौबिस बार मरण करते हैं, ये ही इनके क्षुद्रभव जानना चाहिए।।२९।।

अब तीन प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का कालनिरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।१३।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक व पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहते हैं।।१४।।

उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपमप्रमाण काल तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीव रहते हैं।।१५।।

---

१. भावप्राभृत गाथा २८-२९।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। सामान्यपंचेन्द्रियतिरश्चां क्षुद्रभवग्रहणं कालं, तत्रापर्याप्तानां संभवात्। शेषयोर्द्वयोः पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमत्योः अंतर्मुहूर्तं, तत्रापर्याप्तानामभावात्। न च पर्याप्तेषु जघन्यायुःस्थितिप्रमाणं क्षुद्रभवग्रहणं कालं भवति, अंतर्मुहूर्तोपदेशस्य एतस्य निरर्थकत्वप्रसंगात्। जघन्यकालमेतत् कथितं।**

उत्कर्षेण—पंचेन्द्रियजीवान् मुक्त्वा अन्येन्द्रियजीवेभ्यः आगत्य पंचेन्द्रियतिर्यक्-पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्त-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु उत्पद्य यथाक्रमेण पंचनवति-सप्तचत्वारिंशत्-पंचदशपूर्वकोटि—कालप्रमाणं परिभ्रम्य दानेन दानानुमोदनेन वा त्रिपल्योपमायुःस्थितिकेषु भोगभूमिजेषु तिर्यक्षु स्वकायुःस्थितिं स्थित्वा देवेषूत्पन्नस्य एतावन्मात्रकालस्योपलंभात्।

कथं तिर्यक्षु दानस्य संभवः ?

न, किंच—**ये केचित् संयतासंयताः तिर्यंचः सचित्तभंजने गृहीतप्रत्याख्यानाः तेषां सल्लकिपल्लवादिं ददतां तिरश्चां तद्दानस्य अविरोधात्।**

उक्तं च—**''तिरिक्खसंजदासंजदाणं सचित्तभंजणे गहिदपच्चक्खाणाणं सल्लइपल्लवादिं देंततिरिक्खाणं तदविरोधात्[१]।''**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है, कारण कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचो में अपर्याप्त जीवों का होना संभव है। शेष दोनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त एवं स्त्रीवेदी तिर्यंचों का प्रमाण काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उनमें अपर्याप्त नहीं होते। अपर्याप्त जीवों में जघन्यायु स्थिति का प्रमाण क्षुद्रभवग्रहणकाल नहीं होता है, अर्थात् उससे अधिक होता है, क्योंकि यदि पर्याप्त काल के जघन्य आयु प्रमाण भी क्षुद्रभवग्रहणकाल मात्र होता तो प्रस्तुत सूत्र में अन्तर्मुहूर्त काल के उपदेश के निरर्थक होने का प्रसंग आ जाता। यह जघन्य काल की अपेक्षा वर्णन किया गया है।

उत्कृष्ट से—पंचेन्द्रियों को छोड़कर एकेन्द्रिय आदि अन्य जातीय जीवों में से आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवों में उत्पन्न होकर क्रमशः पंचानवे, सैंतालीस व पन्द्रह पूर्व कोटिप्रमाण तक परिभ्रमण करके दान देने से अथवा दान का अनुमोदन करने से तीन पल्योपम की आयु स्थिति वाले भोगभूमिज तिर्यंचों में उत्पन्न होकर अपनी आयु स्थिति प्रमाण काल तक वहाँ रहकर देवों में उत्पन्न होने वाले जीव के सूत्रोक्त काल घटित होता हुआ पाया जाता है।

शंका—तिर्यंचों में दान देना कैसे संभव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो तिर्यंच संयतासंयत जीव सचित्तभंजन के प्रत्याख्यान अर्थात् त्यागव्रत को ग्रहण कर लेते हैं उनके लिए शल्लकी के पत्तों आदि का दान करने वाले तिर्यंचों के दान देने में कोई विरोध नहीं आता है।

धवला टीका में कहा है—जो संयतासंयत तिर्यंच जीव सचित्तभंजन के प्रत्याख्यान करने वाले तिर्यंचों के लिए शल्लकी पत्ते आदि लाकर उन्हें देते हैं, उनके दान देने में कोई विरोध नही आता है।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७ (धवलाटीका समन्वित), पृ. १२३।

स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु अष्टाष्टपूर्वकोटिप्रमाणकालमेव जीवःतिष्ठति इति कथं ज्ञायते ?

उच्यते—''**आइरियपरंपरागयउवदेसादो**[१]।''

संप्रति पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां कालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।१६।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१७।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अविवक्षितपर्यायेभ्यः आगत्य पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेषूत्पद्य सर्वजघन्यकालेन भुज्यमानायुः कदलीघातेन घातयित्वा क्षुद्रभवग्रहणकालप्रमाणं स्थित्वा निर्गतस्य तदुपलंभात्।**

कश्चिदाह—**कदलीघातेन घातितभुज्यमानायुःस्थितिकेषु पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तेषु क्षुद्रभवग्रहणमात्रकालः किन्नोपलभ्यते ?**

आचार्यः प्राह—**नैतत्, तत्र अतिसुष्ठुघातं प्राप्तस्यापि भुज्यमानायुष्कस्यान्तर्मुहूर्तस्याधः पतनाभावात्। देव-नारकयोः क्षुद्रभवग्रहणमात्रा अन्तर्मुहूर्तमात्रा वा आयुःस्थितिः किन्नोपलभ्यते ?**

नोपलभ्यते, तत्र दशानां वर्षसहस्राणां अधः आयुषः बंधाभावात्, तत्रतनभुज्यमानायुष्कस्य कदली-घाताभावाच्च। जघन्यस्थितिकथनमेतत्।

शंका—स्त्री, पुरुष व नपुंसकवेदी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में आठ-आठ पूर्वकोटिप्रमाण काल तक ही जीव रहता है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परागत उपदेश से यह जाना जाता है।

अब पंचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यंचों के कालकथन हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ-

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।१६।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त रहते हैं।।१७।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त रहते हैं।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायों से आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर व सर्वजघन्य काल से भुज्यमान आयु को कदलीघात से नष्ट करके क्षुद्रभवग्रहण काल प्रमाणकाल तक रहकर निकल जाने वाले जीव के उपर्युक्त काल पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—कदलीघात से भुज्यमान आयु को नष्ट करने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों में क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल क्यों नहीं पाया जाता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं है, क्योंकि पर्याप्तकों में बहुत अच्छी तरह आयु का घात करने वाले जीव के भी अन्तर्मुहूर्त भुज्यमान आयु का इससे कम में पतन नहीं होता है।

शंका—देव और नारकी जीवों में क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अथवा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयु स्थिति क्यों नहीं पाई जाती है ?

समाधान—नहीं पाई जाती है, क्योंकि देव और नारकियों संबंधी आयु का बंध दश हजार वर्ष से कम नहीं होता है और उनकी भुज्यमान आयु का कदलीघात भी नहीं होता है। यह कथन जघन्य स्थिति की अपेक्षा है।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७ (धवलाटीका समन्वित), पृ. १२३।

उत्कर्षेण—**अविवक्षितपर्यायेभ्यः आगत्य पंचेन्द्रियतिर्यंगपर्याप्तेषूत्पद्य सर्वोत्कृष्टभवस्थितिप्रमाणकालं स्थित्वा निर्गतस्यापि अंतर्मुहूर्तादधिककालस्यानुपलंभात्।**

एवं तिर्यग्गतिनामद्वितीयान्तरस्थले नवसूत्राणि गतानि।

अधुना त्रिविधमनुष्याणां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

(मणुसगदीए) मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ?।।१९।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं।।२०।।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।२१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।**

अत्र कश्चिदाह—**अस्मिन् अधिकारे एकजीवस्य कालानुगमे क्रियमाणे—'मणुसो केवचिरं कालादो होदि' इति एकजीवविषयपृच्छया भवितव्यम् ?**

आचार्यदेवः समादधाति—**नैतद् वक्तव्यं, एकस्मिन्नपि जीवे एकानेकसंख्योपलक्षिते अशुद्धद्रव्यार्थिकनयविवक्षया अनेकत्वस्याविरोधात्।**

उत्कृष्टरूप से—किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायों से आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर और वहाँ सर्वोत्कृष्ट भवस्थितिप्रमाण काल तक रहकर निकलने वाले जीव के भी अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार तिर्यंचगति नाम के द्वितीय अन्तर स्थल में नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के मनुष्यों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

(मनुष्यगति में) मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।१९।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव मनुष्य और अन्तर्मुहूर्त काल तक मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनी रहते हैं।।२०।।

उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम काल तक जीव मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त व मनुष्यिनी रहते हैं।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

इस अधिकार में एक जीव का कालानुगम बतलाये जाने पर 'मनुष्य कितने काल तक रहता है' ऐसा एक जीव विषयक ही प्रश्न पूछा जाना चाहिए ?

आचार्यदेव इस शंका का समाधान करते हैं कि—

ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि एक व अनेक संख्या से उपलक्षित जीव में अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अनेकपने का कोई विरोध नहीं उत्पन्न होता।

सर्वत्र पृच्छापूर्वश्चैवार्थनिर्देशः किमर्थः क्रियते ?

न, वचनप्रवृत्तेः परार्थत्वप्रतिपादनफलत्वात्।

अत्र सामान्यमनुष्याणां जघन्यायुःस्थितिप्रमाणं क्षुद्रभवग्रहणं भवति, तत्रापर्याप्तानां संभवात्। पर्याप्त-मनुष्य-मनुष्यिनीषु जघन्यायुःस्थितिप्रमाणमंतर्मुहूर्तं, तत्र ततः अधः आयुःस्थितिविकल्पानामनुपलंभात्। जघन्यकालमेतत्।

उत्कर्षेण — अविवक्षितपर्यायेभ्यः आगत्य विवक्षितमनुष्येषूत्पद्य सप्तचत्वारिंशत्-त्रयोविंशति-सप्तपूर्वकोटिप्रमाणं यथाक्रमेण परिभ्रम्य दानेन दानानुमोदेन वा त्रिपल्योपमायुःस्थितिकमनुष्येषु भोगभूमिषु उत्पन्नस्य तदुपलंभात्।

संप्रति लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।२२।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।२३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अनर्पितपर्यायेभ्यः आगत्य लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्येषूत्पद्य कदलीघातेन भुज्यमा-नायुःघातेन क्षुद्रभवग्रहणप्रमाणकालं स्थित्वा ततो निर्गत्य अनर्पितपर्यायेषूत्पन्नस्य जीवस्य सूत्रोक्तकालस्य प्राप्तिर्भवति। जघन्यकालमेतत्।**

उत्कर्षेण अतिबारमेतेषु अपर्याप्तमनुष्येषु अतिदीर्घायुः भूत्वा उत्पन्नस्यापि घटिकाद्वयमात्रभवस्थितेः अभावात्।

शंका — सर्वत्र पृच्छापूर्वक ही अर्थ का निर्देश क्यों किया जा रहा है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि वचनप्रवृत्ति का फल पर के लिए प्रतिपादन करना है।

यहाँ सामान्य मनुष्यों की जघन्य आयु स्थिति का प्रमाण क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है, क्योंकि सामान्य मनुष्यों में अपर्याप्त जीवों का होना संभव है। किन्तु पर्याप्तक मनुष्य और मनुष्यिनियों में जघन्य आयु स्थिति का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उनमें (अपर्याप्तकों के अभाव से) आयु स्थिति के विकल्प अन्तर्मुहूर्त से कम के नहीं पाये जाते। यह कथन जघन्य काल की अपेक्षा है।

उत्कृष्ट की अपेक्षा — किन्हीं भी अविवक्षित पर्यायों से लेकर विवक्षित मनुष्यों में उत्पन्न होकर क्रमशः सैंतालीस, तेईस व सात पूर्वकोटि काल परिभ्रमण करके दान देकर अथवा दान का अनुमोदन करके तीन पल्योपम आयु स्थिति वाले भोगभूमिज मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीव के सूत्रोक्त काल पाया जाता है।

अब लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का काल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अपर्याप्तक मनुष्य वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।२२।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक जीव अपर्याप्त मनुष्य रहते हैं।।२३।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक अपर्याप्त मनुष्य रहते हैं।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — किन्हीं भी अन्य पर्यायों से आकर अपर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होकर कदलीघात से भुज्यमान आयु के घात द्वारा क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक रहकर व वहाँ से निकलकर किसी भी अन्य पर्याय में उत्पन्न होने वाले जीव के सूत्रोक्त काल की प्राप्ति होती है। यह कथन जघन्य काल की अपेक्षा है।

उत्कृष्ट से अनेकों बार अपर्याप्त मनुष्यों में अतिदीर्घायु होकर भी उत्पन्न हुए जीव के दो घड़ी प्रमाण

एवं तृतीयान्तरस्थले मनुष्याणां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

संप्रति सामान्येन देवानां कालव्यवस्थानिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ?।।२५।।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि।।२६।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।।२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **तिर्यग्भ्यः मनुष्येभ्यः वा आगत्य जघन्यायुःस्थितिमद्देवेषूत्पद्य निर्गतस्य एतावन्मात्रकालोपलंभात्। देवानां सामान्येन जघन्यायुः दशसहस्रवर्षप्रमाणं । उत्कर्षेण — सर्वार्थसिद्धिदेवेषु आयुर्बद्ध्वा क्रमेण तत्रोत्पद्य त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमप्रमाणं तत्र स्थित्वा निर्गतस्य उत्कृष्टायुरुपलंभात्।**

कश्चिदाह — **सप्ताष्टभवग्रहणपर्यंतं दीर्घायुःस्थितिकेषु देवेषु उत्पादिते कालो बहुशो लभ्यते इति चेत् ?**

आचार्यदेवः समाधत्ते — **नैतद् वक्तव्यं, किंच — देवानां नारकाणां भोगभूमितिरश्चां भोगभूमिमनुष्याणां च मृतानां पुनः तत्रैवानंतरमुत्पत्तेरभावात्।**

कुतः ?

अत्यन्ताभावादिति।

संप्रति भवनत्रिकदेवानां कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

काल तक भवस्थिति का होना असंभव है।

इस प्रकार तृतीय अन्तरस्थल में मनुष्यों का काल प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य से देवों की काल व्यवस्था का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

देवगति में देव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।२५।।

जघन्य से दश हजार वर्ष तक जीव देवगति में रहते हैं।।२६।।

उत्कृष्ट से तेंतीस सागरोपमकाल तक जीव देवगति में रहते हैं।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तिर्यंचों में या मनुष्यों में से आकर जघन्य आयु वाले देवों में उत्पन्न होकर वहाँ से निकले हुए जीव के सूत्रोक्त काल ही देवपर्याय में पाया जाता है। देवों में सामान्य से जघन्य आयु दश हजार वर्ष प्रमाण रहती है। उत्कृष्टरूप से — सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों में आयु को बांधकर क्रमशः वहाँ उत्पन्न होकर व तेंतीस सागरोपम काल तक वहाँ रहकर निकले हुए जीव के उत्कृष्टकाल पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — दीर्घायु स्थिति वाले देवों में सात-आठ भवों तक उत्पन्न कराने पर क्या और भी अधिक काल देवगति में पाया जा सकता है ?

आचार्य देव इसका समाधान देते हैं कि — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि देव, नारकी, भोगभूमिज तिर्यंच और भोगभूमिज मनुष्य, इनके मरने पर पुनः उसी पर्याय में अनन्तर उत्पत्ति नहीं पाई जाती है, कारण कि उनके वहाँ पुनः उत्पन्न होने का अत्यंत अभाव है।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि वहाँ उत्पन्न होने का अत्यंताभाव हो जाता है।

अब भवनत्रिक देवों का कालनिरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा-केवचिरं कालादो होंति ?।।२८।।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि, दसवासहस्साणि, पलिदोवमस्स अट्ठम-भागो।।२९।।

उक्कस्सेण सागरोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं।।३०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **भवनवासिनां वानव्यन्तराणां च जघन्यायुः स्थितिः दशसहस्रवर्षाणि। ज्योतिष्कदेवानां पल्योपमस्याष्टमभागः।**

उत्कर्षेण — भवनवासिनां आयुःस्थितिः अर्द्धसागरोपमाधिकं एकसागरोपमं। वानव्यन्तराणां ज्योतिष्कानां चार्धपल्योपममधिकं एकपल्योपमं। एतेषु त्रिष्वपि देवलोकेषु जघन्यायुषः आरभ्य उत्कृष्टायुःपर्यंतं उत्तरोत्तरं एकैकसमयाधिकेन क्रमेणायुः वर्धते, किंचात्र प्रस्तराणामभावात्।

इदानीं सौधर्मैशानादिसहस्रारकल्पवासिनां कालप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?।।३१।।

सूत्रार्थ —

भवनवासी वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।२८।।

जघन्य से दश हजार वर्ष तक, दश हजार वर्ष तक तथा पल्योपम के अष्टम भाग काल तक जीव क्रमशः भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव रहते हैं।।२९।।

उत्कृष्ट से क्रमशः कुछ अधिक एक सागरोपम, कुछ अधिक एक पल्योपम व कुछ अधिक एक पल्योपम काल तक जीव भवनवासी, वानव्यन्तर व ज्योतिषी देव रहते हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भवनवासी और वानव्यन्तर देवों की जघन्य आयु स्थिति दश हजार वर्ष है तथा ज्योतिषी देवों में जघन्य आयु स्थिति पल्योपम के आठवें भागप्रमाण है।

उत्कृष्ट से भवनवासी देवों में उत्कृष्ट आयु स्थिति का प्रमाण अर्ध सागरोपम अधिक एक सागरोपम होता है तथा वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में अर्ध पल्योपम अधिक एक पल्योपम होता है। इन तीनों देवलोकों में जघन्यायु से लेकर उत्कृष्ट आयु पर्यन्त उत्तरोत्तर एक-एक समय अधिक क्रम से आयु बढ़ती है, क्योंकि यहाँ प्रस्तरों का अभाव है।

अब सौधर्म-ईशान स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग तक के कल्पवासी देवों का कालप्ररूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव सौधर्म-ईशान से लगाकर शतार-सहस्रार पर्यन्त कल्पवासी देव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।३१।।

जहण्णेण पलिदोवमं वे सत्त दस चोद्दस सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३२।।

उक्कस्सेण वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सौधर्मैशानयोः सार्धैकपल्योपमं जघन्यायुः। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सार्धद्वय-सागरोपमं, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः सार्धसप्तसागरोपमं, लान्तव-कापिष्ठयोः सार्धदशसागरोपमं, शुक्रमहाशुक्रयोः सार्धचतुर्दशसागरोपमं, शतारसहस्त्रारयोः सार्धषोडशसागरोपमं च जघन्यायुः कथितं ।**

उत्कर्षेण—सौधर्मैशानयोः सार्धद्वयसागरोपमानि देशोनानि, सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सार्धसप्तसागरोपमाणि देशोनानि, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः सार्धदशसागरोपमाणि देशोनानि, लांतवकापिष्ठयोः सार्धचतुर्दशसागरोपमाणि किञ्चिन्न्यूनानि, शुक्रमहाशुक्रयोः सार्धषोडशसागरोपमाणि किञ्चिदूनानि, शतार-सहस्त्रारयोः सार्धाष्टादश-सागरोपमाणि किञ्चिन्न्यूनानि। अत्र किञ्चिन्न्यूनप्रमाणं आगमग्रन्थाद् ज्ञात्वा वक्तव्यं। एते द्वे अपि सूत्रे देशामर्शके स्तः। तेन एताभ्यां सूचितार्थस्य प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—

सौधर्मैशानकल्पयोः एकत्रिंशत्प्रस्तराणि संति—ऋतु-विमल-चंद्र-वल्गु-वीर-अरुण-नन्दन-नलिन-काञ्चन-रुधिर-चञ्च-मरुत्-ऋध्दीश-वैडूर्य-रुचक-रुचिर-अंक-स्फटिक-तपनीय-मेघ-अभ्र-हरित-पद्म-

---

जघन्य से कुछ अधिक एक पल्योपम, कुछ अधिक दो सागरोपम, कुछ अधिक सात सागरोपम, कुछ अधिक दश सागरोपम, कुछ अधिक चौदह सागरोपम व कुछ अधिक सोलह सागरोपम काल तक जीव सौधर्म-ईशान से लेकर शतार-सहस्त्रार तक के कल्पवासी देव रहते हैं।।३२।।

उत्कृष्ट से कुछ अधिक दो, कुछ अधिक सात, कुछ अधिक दश, कुछ अधिक चौदह, कुछ अधिक सोलह व कुछ अधिक अठारह सागरोपमकाल तक जीव सौधर्म-ईशान आदि कल्पों में रहते हैं।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सौधर्म और ईशान स्वर्गों में डेढ़ पल्योपम जघन्य आयु है। सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में अढ़ाई सागरोपम, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गों में साढ़े सात सागरोपम, लांतव और कापिष्ठ स्वर्गों में साढ़े दश सागरोपम, शुक्र और महाशुक्र में साढ़े चौदह सागरोपम तथा शतार और सहस्त्रार स्वर्गों में साढ़े सोलह सागरोपम जघन्य आयु कही गई है।

उत्कृष्ट से—सौधर्म-ईशान कल्पों में कुछ कम ढ़ाई सागरोपम, सनत्कुमार-माहेन्द्र में कुछ कम साढ़े सात सागरोपम, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में कुछ कम साढ़े दस सागरोपम, लांतव-कापिष्ठ में कुछ कम साढ़े चौदह सागरोपम, शुक्र-महाशुक्र में कुछ कम साढ़े सोलह सागरोपम तथा शतार-सहस्त्रार कल्पों में कुछ कम साढ़े अठारह सागरोपम उत्कृष्ट आयु प्रमाण होता है। यहाँ कुछ कम का प्रमाण आगम ग्रंथों से जानकर कहना चाहिए। ये दोनों ही सूत्र देशामर्शक हैं। इसलिए इन दोनों सूत्रों के द्वारा सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं वह इस प्रकार है—

सौधर्म और ईशान कल्प में ३१ प्रस्तर हैं—ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, कांचन, रुधिर, चंच, मरुत (मारुतज्ञ), ऋद्धीश (द्वीश), वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अंक, स्फटिक, तपनीय, मेघ

लोहितांक-वरिष्ठ-नंदावर्त-प्रभंकर-पिष्टाक-गज-मित्र-प्रभाख्यानि-संति। अत्र ऋतुनामप्रथमप्रस्तरे जघन्यायुः-सार्धैकपल्योपमं, उत्कृष्टमर्धसागरोपमं। अधुनात्र त्रिंशदिन्द्रकाणां वृद्धिरुच्यते—तत्रार्धसागरोपमं मुखं भवति, सार्द्धद्वयसागरोपमाणि भूमिः। भूमितः मुखमपनीय उच्छ्रयेण भागे हिते सागरोपमस्य पञ्चदशभागो वृद्धिर्भवति। इदमिच्छितप्रस्तरसंख्यया गुणयित्वा मुखे प्रक्षिप्ते विमलादीनां त्रिंशत्प्रस्तराणां आयूंषि भवन्ति।

कश्चिदाह—**सौधर्मैशानयोः एकत्रिंशत्प्रस्तराणि इति कथं ज्ञायते ?**

उच्यते— **''इगतीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क एक्काए ।**
उदुआदिविमाणिंदा तिरधियसट्ठी मुणेयव्वा[१]।।''

इति आर्षवचनाद् ज्ञायते।

अञ्जन-वनमाल-नाग-गरुड-लांगल-बलभद्र-चक्राख्यानि इमानि सप्तप्रस्तराणि सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पयोः संति। एतेषामायुःप्रमाणे आनीयमाने मुखं सार्धद्वय सागरोपमाणि, भूमिः सार्धसप्तसागरोपमाणि, सप्त उत्सेधः भवति। पूर्ववत् गणितं ज्ञातव्यं।

अरिष्ट-देवसमित-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरनामानि चत्वारि प्रस्तराणि ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरकल्पयोः। अत्रारिष्टे ८$\frac{१}{४}$ सागरोपमाणि देवसमिते नवसागरोपमाणि, ब्रह्मप्रस्तरे ९$\frac{३}{४}$ सागरोपमाणि, ब्रह्मोत्तरप्रस्तरे १०$\frac{१}{२}$ सागरोपमाणि।

लांतवकापिष्ठयोः ब्रह्मनिलय-लांतवनामनी-द्वे प्रस्तरे स्तः। अत्र ब्रह्मनिलये सार्धद्वादशसागरोपमाणि, लांतवप्रस्तरे सार्धचतुर्दशसागरोपमाणि।

अभ्र, हरित, पद्म, लोहिततादृक, वरिष्ठ, नंदावर्त, प्रभंकर, पिष्टाक, गज, मित्र और प्रभा इन नामों वाले हैं। इनमें से ऋतु नामक प्रथम प्रस्तर में जघन्य आयु डेढ़ पल्योपम व उत्कृष्ट आयु अर्ध सागरोपम प्रमाण है। अब यहाँ तीस इंद्रकों में वृद्धि का प्रमाण कहते हैं—वहाँ अर्ध सागरोपम मुख होता है और अढ़ाई सागरोपम भूमि है। अतएव भूमि में से वे मुख को घटाकर उच्छ्रय अर्थात् उत्सेध (३०) से भाग देने पर एक सागरोपम का पन्द्रहवाँ भाग वृद्धि का प्रमाण आता है। इसको अभीष्ट प्रस्तर की संख्या से गुणित करके मुख में मिला देने पर विमलादिक तीस प्रस्तरों की आयु का प्रमाण होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—सौधर्म-ईशान कल्प में इकतीस विमान प्रस्तर हैं, यह कैसे जाना जाता है ?

उसका समाधान करते हैं कि—

गाथार्थ—सौधर्म-ईशान कल्पों में इकतीस विमान प्रस्तर हैं, सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में सात, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में चार, लांतव-कापिष्ठ में दो, शुक्र-महाशुक्र में एक, शतार-सस्रार में एक, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पों में छह तथा नौ ग्रैवेयकों में एक-एक, अनुदिशों में एक और अनुत्तर विमानों में एक इस प्रकार ऋतु आदिक इन्द्रक विमान तिरेसठ जानना चाहिए।

ऐसा इस आर्ष वचन से जाना जाता है।

अंजन, वनमाल, नाग, गरुड, लांगल, बलभद्र और चक्र ये सात प्रस्तर सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में हैं। उनमें आयु का प्रमाण लाने पर मुख ढाई सागरोपम, भूमि साढ़े सात सागरोपम और उत्सेध सात है। पूर्ववत् गणित को जानना चाहिए।

अरिष्ट, देवसमित, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर, ये चार विमान-प्रस्तर ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पों में हैं। उनमें से अरिष्ट में सवा आठ सागरोपम, देवसमित में ९ सागरोपम है, ब्रह्म प्रस्तर में ९ सही तीन बटे चार (९$\frac{३}{४}$) सागरोपम और ब्रह्मोत्तर में साढ़े दश सागरोपम होता है।

लांतव-कापिष्ठ कल्पों में ब्रह्मनिलय और लांतव ये दो विमान प्रस्तर हैं। यहाँ ब्रह्म निलय में साढ़े बारह और लांतव प्रस्तर में साढ़े चौदह सागरोपम है।

---

१. धवला पुस्तक-७, पृष्ठ-१३१।

शुक्रमहाशुक्रयोः महाशुक्रनाम एकप्रस्तरं, तत्रायुःप्रमाणं सार्धषोडशसागरोपमाणि।
शतार-सहस्त्रारयोः सहस्त्रारनाम एकप्रस्तरं। तत्रायुः सार्धाष्टादशसागरोपमं ज्ञातव्यं।

संप्रति आनतादिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतदेवानां आयुःप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

आणदप्पहुडि जाव अवराइदविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?।।३४।।

जहण्णेण अट्ठारस वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३५।।

उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि।।३६।।

सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?।।३७।।

जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि।।३८।।

शुक्र-महाशुक्र कल्पों में महाशुक्र नाम का एक ही प्रस्तर है। वहाँ आयु का प्रमाण सागरोपम है।

शतार-सहस्त्रार कल्पों में सहस्त्रार नाम का एक ही प्रस्तर है। उसमें आयु प्रमाण साढ़े अठारह सागरोपम है, ऐसा जानना चाहिए।

अब आनत कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के देवों की आयु का प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आनत कल्प से लेकर अपराजित विमान तक के विमानवासी देव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।३४।।

जघन्य से सातिरेक अठारह, बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस व बत्तीस सागरोपम काल तक जीव क्रमशः आनत आदि अपराजित विमानवासी देव रहते हैं।।३५।।

उत्कृष्ट से बीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस और तेतीस सागरोपम काल तक जीव आनत-प्राणत आदि विमानवासी देव रहते हैं।।३६।।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।३७।।

जघन्य से और उत्कृष्ट से वहाँ तेंतीस सागरोपमप्रमाण काल तक सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव रहते हैं।।३८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। आनत-प्राणतकल्पयोः साधार्ष्टदशसागरोपमप्रमाणानि। आरणाच्युतकल्पयोः समयाधिकविंशति-सागरोपमाणि। उपरि यथाक्रमेण नवग्रैवेयकेषु द्वाविंशति-त्रयोविंशति-चतुर्विंशति-पंचविंशति-षड्विंशति-सप्तविंशति-अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशत्-त्रिंशत्-सागरोपमाणि समयाधिकानि। नवानुदिशेषु एकत्रिंशत्सागरोपमाणि समयाधिकानि। चतुःषु अनुत्तरेषु द्वात्रिंशत्सागरोपमाणि समयाधिकानि, जघन्यायुरेतत्कथितं।**

उत्कर्षेण—आनत-प्राणतकल्पयोः आनत-प्राणत-पुष्पकनामानि त्रीणि प्रस्तराणि। आनतप्रस्तरे एकोनविंशतिसागरोपमाणि, प्राणतप्रस्तरे सार्धेन एकोनविंशतिसागरोपमाणि, पुष्पकप्रस्तरे विंशतिसागरोपमाणि।

आरणाच्युतकल्पयोः सातंकर-आरण-अच्युतनामानि त्रिप्रस्तराणि।सातंकरे २०$\frac{२}{३}$ सागरोपमाणि, आरणे २१$\frac{१}{३}$ सागरोपमाणि, अच्युतप्रस्तरे द्वाविंशतिसागरोपमाणि।

एभ्यः उपरि नवग्रैवेयकेषु सुदर्शन-अमोघ-सुप्रबुद्ध-यशोधर-सुभद्र-सुविशाल-सुमनस्- सौमनस-प्रीतिंकरनामानि नवपटलानि। एषु पटलेषु वृद्धिहानी न स्तः, प्रत्येकं एकैकप्रस्तरस्य प्राधान्यात्। अस्यायमर्थः—प्रथमग्रैवेयके त्रयोविंशतिसागरप्रमाणं, अग्रे एकैकवृद्ध्या अंतिमग्रैवेयके एकत्रिंशत्सागरप्रमाणमुत्कृष्टायुः अस्ति।

नवानुदिशेषु आदित्यो नाम एक एव पटलं। तस्मिन्नायुः द्वात्रिंशत्सागरप्रमाणमायुः कथितं।

पंचानुत्तरेषु सर्वार्थसिद्धिसंज्ञितः एकश्चैव इन्द्रकप्रस्तरं। विजय-वैजयंत-जयंतापराजितनाम्नां श्रेणिबद्ध-

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। आनत-प्राणत कल्प में जघन्य आयु-प्रमाण साढ़े अठारह सागरोपम व आरण-अच्युत कल्प में एक समय अधिक बीस सागरोपम है। इससे ऊपर यथाक्रम से नव ग्रैवेयकों में क्रमशः सुदर्शन में बाईस, अमोघ में तेईस, सुप्रबुद्ध में चौबीस, यशोधर में पच्चीस, सुभद्र में छब्बीस, सुविशाल में सत्ताईस, सुमनस में अट्ठाईस, सौमनस में उनतीस और प्रीतिंकर में एक समय अधिक तीस सागरोपम प्रमाण जघन्य आयु स्थिति हैं। नव अनुदिशों में एक समय अधिक इकतीस सागरोपम प्रमाण जघन्य आयुस्थिति हैं। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तर विमानों में एक समय अधिक बत्तीस सागरोपमप्रमाण जघन्य आयु है।

उत्कृष्ट से—आनत-प्राणत कल्पों में तीन प्रस्तर हैं—आनत, प्राणत और पुष्पक। उनमें से आनत प्रस्तर में १९ सागरोपम, प्राणतप्रस्तर में साढ़े १९ सागरोपम और पुष्पक में २० सागरोपम आयुस्थिति है।

आरण-अच्युत कल्प में सातंकर, आरण और अच्युत ये तीन प्रस्तर हैं। आयु का प्रमाण इनमें से सांतकर में बीस सही दो बटे तीन सागरोपम, आरण में इक्कीस सही एक बटे तीन सागरोपम और अच्युत प्रस्तर में २२ सागरोपम है।

अच्युत कल्प से ऊपर नौ ग्रैवेयकों में नौ प्रस्तर हैं, जिनके नाम हैं—सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिंकर। इनमें आयुओं की हानिवृद्धि नहीं है, क्योंकि प्रत्येक में एक-एक प्रस्तर की प्रधानता है। इसका अर्थ यह है कि प्रथम ग्रैवेयक में २३ सागरोपम आयु है और आगे एक-एक सागर की वृद्धि करके अंतिम ग्रैवेयक में ३१ सागरप्रमाण उत्कृष्ट आयु हो जाती है।

नौ अनुदिशों में आदित्य नाम का एक ही प्रस्तर है, जिसमें आयु का प्रमाण ३२ सागरोपम कहा गया है। पाँच अनुत्तरों में सर्वार्थसिद्धि नाम का एक ही प्रस्तर है इनमें विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार विमानों की जघन्य आयु एक समय अधिक बत्तीस सागरोपम प्रमाण तथा उत्कृष्ट

विमानानां जघन्यायुः समयाधिकद्वात्रिंशत्सागरोपममात्रं, उत्कृष्टायुः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि।

पुनश्च जघन्योत्कृष्टभेदाभावात् सर्वार्थसिद्धिविमानस्य पृथक् प्ररूपणार्थं पृथगेव द्वे सूत्रे कथिते स्तः।

तात्पर्यमेतत्—**सर्वार्थसिद्धौ जघन्योत्कृष्टं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपममायुःप्रमाणम्।**

इदानीं गतिमार्गणायाः उपसंहारः क्रियते—

चतुर्गतिजीवानां जघन्योत्कृष्टायुःप्रमाणं ज्ञात्वा नारकायुर्भ्यः भीत्वा तिर्यगायुर्भ्योऽपि अपसृत्य मनुष्यायुः-देवायुषोः बंधं कृत्वा संसारपरिभ्रमणं निवारयितव्यं भव्यपुंगवैरिति।

इति श्रीषट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनामद्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमप्ररूपकः सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

आयु तेतीस सागरोपम है।

सर्वार्थसिद्धि विमान में जघन्य और उत्कृष्ट आयु का भेद नहीं है, इसलिए उसकी पृथक् प्ररूपणा के लिए पृथक् ही दो सूत्र कहे गये हैं।

तात्पर्य यह है कि—सर्वार्थसिद्धि विमान में जघन्य और उत्कृष्ट आयु तेंतीस सागर प्रमाण रहती है।

अब यहाँ गतिमार्गणा का उपसंहार किया जा रहा है—

चारों गति के जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट आयु का प्रमाण जानकर नरकायु सेभयभीत होकर तिर्यंच आयु को भी छोड़कर मनुष्यायु और देवायु का बंध करके भव्यात्माओं को अपने संसार पभ्रिमण का निवारण करना चाहिए।

विशेषार्थ—गोम्मटसार जीवकाण्ड में मार्गणाओं के प्रकरण में गतिमार्गणा का सुंदर वर्णन करते हुए आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती ने भी मनुष्यगति की दुर्लभता बतलाकर उसका सदुपयोग करने हेतु बारम्बार प्रेरणा प्रदान की है।

जिनके द्वारा अथवा जिनमें जीवों का मार्गण् अर्थात् अन्वेषण किया जाता है, उन्हें मार्गणा कहते हैं। मार्गणा के १४ भेद हैं—गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार। मार्गणा के दो भेद भी हैं—सान्तर और निरन्तर। उपर्युक्त चौदह मार्गणायें निरन्तर मार्गणा कहलाती हैं जिनमें अन्तर—विच्छेद नहीं पड़ता उनको निरंतर मार्गणा कहते हैं। संसारी जीवों के उपर्युक्त १४ मार्गणाओं में से किसी का विच्छेद नहीं पड़ता, वे सभी जीवों के सदा ही पाई जाती हैं, इसलिए निरन्तर मार्गणा कही जाती हैं, और जिनमें अंतर—विच्छेद पड़ जाता है उन्हें सान्तर मार्गणा कहते हैं। अर्थात् कुछ मार्गणा ऐसी भी हैं कि जिनमें समय के एक नियत प्रमाण तक विच्छेद पाया जाता है। उन्हीं को सांतर मार्गणा कहते हैं।

ये सान्तर मार्गणाएँ आठ हैं—उपशमसम्यक्त्व, सूक्ष्मसाम्परायसंयम, आहारककाययोग, आहारक-मिश्रयोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सासादन सम्यक्त्व और मिश्र ये आठ सांतर मार्गणाएँ हैं। उपशमसम्यक्त्व का उत्कृष्ट विरहकाल ७ दिन का है। सूक्ष्मसाम्पराय का महीना, आहारक काययोग का पृथक्त्व वर्ष, आहारकमिश्र का पृथक्त्व वर्ष, वैक्रियिकमिश्र का १२ मुहूर्त, अपर्याप्त मनुष्य का पल्य के असंख्यातवें भाग, सासादन सम्यक्त्व और मिश्र का पल्य के असंख्यातवें भाग है और सबका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। मतलब यह है कि यदि तीन लोक में कोई भी उपशमसम्यग्दृष्टि न रहे, तो ऐसा अन्तर सात दिन के लिए पड़ सकता है। उसके बाद कोई न कोई उपशमसम्यग्दृष्टि अवश्य ही होता है।

गति मार्गणा—गति नाम कर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय विशेष को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। गति शब्द के निरुक्ति के अनुसार तीन तरह के अर्थ संभव हैं।

गम्यते इति गतिः, गमनं वा गतिः और गम्यते अनेन सा गतिः। इन निरुक्ति अर्थों में गतिनाम कर्म के उदय से होने वाली जीव की नर नारक आदि पर्याय विशेष को ही ग्रहण करना चाहिए।

गति के चार भेद हैं — नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति।

नरकगति — जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव में स्वयं तथा परस्पर में प्रीति को प्राप्त नहीं होते हैं, उनको नारत कहते हैं। अर्थात् जो किसी भी अवस्था में स्वयं या परस्पर में प्रीति को प्राप्त न हों, वे नारत — नारकी कहलाते हैं अथवा जो 'नरान् कायंति' मनुष्यों को क्लेश पहुँचावें, उनको नारक कहते हैं क्योंकि नीचे सातों ही भूमियों में रहने वाले नारकी निरन्तर ही स्वाभाविक, शारीरिक, मानसिक, आगंतुक तथा क्षेत्रजन्य इन पाँच प्रकार के दुःखों से दुःखी रहते हैं। नरक गति नाम कर्म के उदय से जीव नरक में आयु पर्यंत महान कष्टों का अनुभव करते रहते हैं। न रमन्ते इति नारता — नारका — इस व्युत्पत्ति के अनुसार नारकी आपस में कभी भी प्रेम नहीं करते हैं।

तिर्यग्गति — जो मन, वचन, काय की कुटिलता को प्राप्त हों अथवा जिनकी आहारादि संज्ञाएं दूसरों को स्पष्ट दिखें और जो निकृष्ट अज्ञानी हों, जिनमें पाप की बहुलता हो, वे तिर्यंच कहलाते हैं। निरुक्ति के अनुसार 'तिरः तिर्यग्भावं — कुटिल परिणाम अन्वति इति तिर्यंच' जो कुटिल — मायाचार परिणामों को प्राप्त करें वे तिर्यंच कहलाते हैं। इससे तिर्यंचगति में मायाचार की बहुलता जानी जाती है।

मनुष्यगति — जो नित्य ही तत्व-अतत्व, आप्त-अनाप्त आदि का विचार करें, जो मन के द्वारा गुण-दोषादि का विचार-स्मरण आदि कर सकें, जो मन के विषय में उत्कृष्ट हों, शिल्प कलादि में कुशल हों तथा युग की आदि में मनुओं से उत्पन्न हुए हों, वे मनुष्य कहलाते हैं। 'मनु अवबोधने' मनु धातु से मनु शब्द बनता है और जो मनु की संतान हैं, उसे मनुष्य कहते हैं। यहाँ निरुक्ति के अनुसार अर्थ किया गया है।

देवगति — जो देवगति में रहने वाले अणिमा, महिमा आदि आठ ऋद्धियों से सुखी हों तथा रूप यौवन आदि से दीप्ति को प्राप्त हों, वे देव कहलाते हैं। 'दीव्यंति इति देवः' दिव् धातु क्रीड़ा, विजिगीषा, दीप्ति, मोद आदि अर्थ में है उससे देव शब्द निष्पन्न हुआ है।

इन चारों गतियों के अर्थ में निरुक्ति अर्थ प्रधान है किन्तु यह सर्वथा लागू नहीं होता है। मुख्यतः जो उन-उन गति नामकर्म के उदय से उस-उस भव को प्राप्त करते हैं, वे उस गति वाले कहलाते हैं।

सिद्धगति — एकेन्द्रिय आदि जाति, वृद्धावस्था, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, इनसे होने वाले दुःख आहारादि वाञ्छाएं, रोग आदि जिस गति में नहीं पाये जायें वह 'सिद्धगति' कहलाती है। इसे पंचम गति भी कहते हैं। यह सिद्धगति मार्गणातीत है सभी कर्मों के क्षय से प्रकट होती है।

तिर्यंचों के पाँच भेद हैं — सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच, योनिमती (भावस्त्री वेदी) तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच।

मनुष्यों के चार भेद हैं — सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, योनिमती (भाव स्त्रीवेदी) मनुष्य और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य। इनमें पंचेन्द्रिय भेद इसलिए पृथक् नहीं हैं कि मनुष्यों में पंचेन्द्रिय मनुष्य ही होते हैं एकेन्द्रिय आदि नहीं होते हैं।

पर्याप्त मनुष्यों की संख्या — ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६।

इन चारों गतियों में एक मनुष्य गति ही ऐसी गति है कि जिसमें आठों कर्मों का नाशकर यह जीव सिद्धपद को प्राप्त कर सकता है अतएव इस दुर्लभ मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके संयम को धारण करके संसार परम्परा को समाप्त करना चाहिए।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

सिद्धार्थस्यात्मजं वीरं वंदेहं भक्तिभावतः।
सर्वधर्मेषु प्राधान्यं शासनं यस्य वर्तते।।१।।
द्वादशांगांगबाह्यैर्या निर्मिता सा सरस्वती।
सदेहा[1] चाप्यदेहास्ति[2] वीरास्यजा[3] जयत्विह।।२।।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में मनुष्यगति का स्वरूप बताते हुए आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने कहा है—

मण्णंति जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मण्णुब्भवा य सव्वे, तम्हा ते माणुसा भणिदा।।

अर्थात् जो नित्य ही हेय-उपादेय, तत्व-अतत्व, आप्त-अनाप्त, धर्म-अधर्म आदि का विचार करें और जो मन के द्वारा गुणदोषादि का विचार स्मरण आदि कर सकें, जो पूर्वोक्त मन के विषय में उत्कृष्ट हों, शिल्पकला आदि में भी कुशल हों तथा युग की आदि में जो मनुष्यों से उत्पन्न हों, उनको मनुष्य कहते हैं।

मन का विषय तीव्र होने से गुणदोषादि विचार, स्मरण आदि जिसमें उत्कृष्टरूप से पाया जाये, अवधानादि करने में जिनका उपयोग दृढ़ हो तथा कर्मभूमि की आदि में आदीश्वर भगवान तथा कुलकरों ने जिनको व्यवहार का उपदेश दिया इसलिए जो उन्हीं की — मनुओं की संतान कहे या माने जाते हैं, उनको मनुष्य कहते हैं। क्योंकि अबबोधनार्थक मनु धातु से मनु शब्द बनता है और जो मनु की संतान हैं उनको कहते हैं मनुष्य। अतएव इस शब्द का यहाँ पर जो अर्थ किया गया है, वह निरुक्ति के अनुसार है। लक्षण की अपेक्षा से अल्पारंभ, परिग्रह के परिणामों द्वारा संचित मनुष्य आयु और मनुष्यगति नामकर्म के उदय से जो ढाईद्वीप के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले हैं उनको कहते हैं मनुष्य। ये ज्ञान विज्ञान मन पवित्र संस्कार आदि की अपेक्षा अन्य जीवों से उत्कृष्ट हुआ करते हैं। इसी मनुष्यगति से सिद्धगति प्राप्त होती है।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागमग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम का प्ररूपण करने वाला सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नामका प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — महाराजा सिद्धार्थ के पुत्र भगवान महावीर को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। जिनका सर्वधर्मों में प्रधान सार्वभौम जैनशासन इस धरती पर प्रवर्तित हो रहा है।।१।।

वह माता सरस्वती देवी इस धरा पर जयशील होवें जो भगवान महावीर के मुख से दिव्यध्वनि द्वारा उत्पन्न हुई हैं, वे द्वादशअंग और अंगबाह्यरूप अवयवों से निर्मित शरीराकार में भी हैं और अदेहरूप भी हैं।।२।।

१-२-३. स्वनिर्मित श्लोकाः सन्ति। देह सहित होकर भी जो देहरहित है और महावीर स्वामी के मुख से उत्पन्न हुई है।

षट्खण्डागमग्रन्थेन यैः ख्याता श्रुतपञ्चमी।
तं गुरुं ग्रन्थकर्तारौ ग्रन्थं[१] च ज्ञप्तये नुमः।।३।।

अथ जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रस्यार्यखंडे भारतदेशस्य राजधानी-'दिल्ली' नाममहानगरे प्रीतविहार 'कालोनी' मध्ये श्रीनाभिरायमण्डपे विराजमानाः प्रतिष्ठेयप्रतिमाः चतुर्विंशतिकल्पद्रुममहाविधानावसरे समवसरणमण्डलेषु विराजमानक्रियमाणाश्चतुर्विंशतितीर्थंकराणां चतुश्चतुर्जिनप्रतिमाश्च याः षण्णवतयो मूलनायकश्रीऋषभदेव-जिनप्रतिमा अन्याश्च या सर्वा अपि पंचकल्याणकप्रतिष्ठां प्राप्स्यन्ति। ताः सर्वाः प्रतिष्ठिता भूत्वा इह लोके जयन्तु मंगलं कल्याणमारोग्यं च सर्वेभ्यो भाक्तिकेभ्यो वितरन्तुतराम्।

अथ षट्खण्डागमस्य द्वितीयखंडे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयाधिकारे एकजीवापेक्षया कालानुगमे पंचभिरन्तरस्थलैः इन्द्रियमार्गणाधिकारः प्ररूप्यते त्रयस्त्रिंशत्सूत्रैरिति। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्येन एकेन्द्रियाणां कालनिरूपणत्वेन ''इन्दियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियाणां कालप्रतिपादनत्वेन ''बादरेइंदिया'' इत्यादिना नव सूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां कालकथन-मुख्यत्वेन ''सुहुमेइंदिया'' इत्यादिनवसूत्राणि। पुनः चतुर्थस्थले विकलत्रयाणां कालप्रतिपादनत्वेन ''बीइंदिया''

जिन निर्ग्रन्थ गुरुओं के निमित्त से षट्खण्डागम ग्रंथ रचना के कारण श्रुतपंचमी तिथि संसार में प्रसिद्ध हुई है, उन ज्ञानप्रदाता गुरुदेव श्रीधरसेनाचार्य को, ग्रंथकर्ता श्री पुष्पदंत-भूतबली आचार्य को एवं उनके द्वारा रचित षट्खण्डागम ग्रंथ को ज्ञान प्राप्ति हेतु हमारा बारम्बार नमस्कार है।।३।।

इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में भारतदेश की राजधानी दिल्ली महानगर के प्रीतविहार क्षेत्र (कालोनी) में श्रीनाभिरायमण्डप में विराजमान प्रतिष्ठेय प्रतिमाएं चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान के अवसर पर चौबीस समवसरणों के मण्डलों पर विराजमान की जाने वाली चौबीस तीर्थंकरों की चर-चार जिनप्रतिमाएं कुल मिलाकर छियानवे प्रतिमा, मूलनायक (कमल मंदिर में विराजमान होने वाली २१ इंच अष्ट धातु की पद्मासन) भगवान ऋषभदेव जिनप्रतिमा एवं अन्य जो भी प्रतिमाएं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित होंगी,वे सभी प्रतिष्ठित होकर इस लोक में जयशील होवें तथा सभी श्रद्धालु भक्तों के लिए मंगल, आरोग्य एवं कल्याण को करें, यही भावना है।

भावार्थ — षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड का प्रकरण पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने सन् १९९७ में श्रुतपंचमी के दिन (१० जून १९९७ को) लिखा है। उस दिन प्रीतविहार-दिल्ली में भक्तिमान श्रावक श्री अनिल कुमार जैन द्वारा अपने मकान के प्रांगण में निर्मित किये गये भगवान ऋषभदेव कमल मंदिर में विराजमान होने वाली भगवान ऋषभदेव जिनप्रतिमा का पंचकल्याणक महोत्सव प्रारंभ हुआ था। उसी पंचकल्याणक में आश्विन मास में होने वाले चौबीस कल्पद्रुम विधान की ९६ प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई थी इसीलिए उनका भी उल्लेख यहाँ किया गया है।

अब षट्खण्डागम के क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में द्वितीय अधिकार में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में पाँच अन्तरस्थलों के द्वारा तेंतीस सूत्रों से समन्वित इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से एकेन्द्रिय जीवों का काल निरूपण करने वाले ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले ''बादरेइंदिया'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का काल कथन करने वाले ''सुहुमेइंदिया'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। पुनः चतुर्थस्थल में विकलत्रय जीवों का काल बतलाने वाले ''बीइंदिया'' इत्यादि छह सूत्र

---

१. ग्रंथ-षट्खण्डागम ग्रंथ को।

इत्यादिसूत्रषट्कं। पुनश्च पंचमस्थले पंचेन्द्रियाणां कालनिरूपणत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादिना षट्सूत्राणि इति समुदायपातनिका कथिता भवति।

अधुना एकेन्द्रियाणां जीवानां सामान्येन कालप्ररूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?।।३९।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।४०।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।४१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अविवक्षितेन्द्रियजीवेभ्यः आगत्य कश्चिद् जीवः एकेन्द्रियेषु उत्पद्य कदलीघातेन घातितक्षुद्रभवग्रहणमात्रकालं स्थित्वा अन्यद्वीन्द्रियादिषु गतस्ततस्तत् क्षुद्रभवग्रहणकालमात्रं कालं जघन्येन भवति।**

उत्कर्षेण अविवक्षितेन्द्रियजीवेभ्यः एकेन्द्रियेषु उत्पद्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तने कुंभकारचक्रमिव परिवर्त्य अविवक्षितद्वीन्द्रियादिषु गतस्य तदुपलंभात्।

एवं प्रथमस्थले सामान्यैकेन्द्रियाणां कालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति बादरैकेन्द्रियाणां कालनिरूपणाय सूत्रनवकमवतार्यते —

बादरेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?।।४२।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।४३।।

हैं। उसके बाद पंचम स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का काल निरूपण करने वाले ''पंचिंदिय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब एकेन्द्रिय जीवों का सामान्य से काल प्ररूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।३९।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव एकेन्द्रिय रहते हैं।।४०।।

उत्कृष्ट से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल तक जीव एकेन्द्रिय रहते हैं।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। अन्य अविवक्षित इन्द्रियों वाले जीवों में से आकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर, कदलीघात से घातितक्षुद्रभवग्रहणमात्र काल रहकर अन्य द्वीन्द्रियादि जीवों में गये हुए जीव के वह क्षुद्रभवग्रहण मात्र काल जघन्य से होता है।

उत्कृष्टरूप से — अविवक्षित इन्द्रियों वाले जीवों में से आकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर आवली के असंख्यात भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन में कुम्भकार के चक्र के समान परिभ्रमण करके अविवक्षित द्वीन्द्रियादिक जीवों में गये हुए जीव के वह काल घटित होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य एकेन्द्रिय जीवों का कालनिरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर एकेन्द्रिय जीवों का काल निरूपण करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर एकेन्द्रिय जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।४२।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक वहाँ बादर एकेन्द्रिय जीव रहते हैं।।४३।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।४४।।

बादरएइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।४५।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४६।।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।४७।।

बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।४८।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।४९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।५०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। सामान्येन कश्चिद् जीवः अविवक्षितेन्द्रियेभ्यः आगत्य बादरैकेन्द्रियेषु उत्पद्य अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रं-असंख्यातासंख्यातावसर्पिण्युत्सर्पिणीमात्रकालं कुलालचक्रमिव तत्रैव परिभ्रम्य निर्गतस्तस्य एतदुत्कृष्टकालं संभवति।**

बादरैकेन्द्रियपर्याप्तेषु अंतर्मुहूर्तं मुक्त्वान्यस्य जघन्यायुषः अनुपलंभात्। उत्कर्षेण अनर्पितेन्द्रियेभ्यः आगत्य बादरैकेन्द्रियपर्याप्तेषूत्पद्य संख्यातानि सहस्रवर्षाणि तत्रैव परिभ्रम्य निर्गतस्य तदुपलंभात्।

बहुकं कालं तत्र किन्न हिंडते ?

उत्कृष्ट से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाणकाल तक वहाँ बादर एकेन्द्रिय जीव रहते हैं।।४४।।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।४५।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव वहाँ रहते हैं।।४६।।

उत्कृष्ट से संख्यात हजार वर्षों तक बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव वहाँ रहते हैं।।४७।।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।४८।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव वहाँ रहते हैं।।४९।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त जीव वहाँ रहते हैं।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्य से कोई जीव अविवक्षित इन्द्रियों वाले जीवों में से आकर बादर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाण काल तक वहाँ कुम्हार के चक्र के समान उसी पर्याय में परिभ्रमण करके निकलने वाले जीव के उत्कृष्टकाल का होना संभव रहता है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में अन्तर्मुहूर्त के सिवाय अन्य जघन्य आयु नहीं पाई जाती है। उत्कृष्ट से अन्य इन्द्रियों वाले जीवों में से आकर बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर संख्यात हजार वर्षों तक उसी पर्याय में परिभ्रमण करके निकले हुए जीव के उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

शंका—संख्यात हजार वर्षों से अधिक काल तक जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में क्यों नहीं भ्रमण करता है ?

न, किंच—श्रीवीरसेनाचार्येण कथ्यते—''केवलणाणादो विणिग्गयजिणवयणस्सेदस्स सयलपमाणेहिंतो अहियस्य विंसवादाभावा[१]।।''

बादरैकेन्द्रियापर्याप्तानां उत्कर्षेण कालमन्तर्मुहूर्तं—अनेकसहस्त्रबारं तत्रैव पुनः पुनः उत्पन्नस्यापि अंतर्मुहूर्तं मुक्त्वा उपरितनायुःस्थितीनामनुपलंभात्।

एवं द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियजीवकालप्रतिपादनत्वेन सूत्रनवकं गतम्।

संप्रति सूक्ष्मानां जीवानां कालप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते —

सुहुमेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?।।५१।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।५२।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।५३।।

सुहुमेइंदिया पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।५४।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।५५।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।५६।।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।५७।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।५८।।

समाधान—नहीं, क्योंकि श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है कि केवलज्ञान से निकले हुए व समस्त प्रमाणों से अधिक प्रमाणभूत इस जिनवचन के संबंध में विसंवाद नहीं हो सकता है।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तकाल होता है—अनेक हजारों बार उसी पर्याय में पुनः पुनः उत्पन्न हुए जीव के भी अन्तर्मुहूर्त को छोड़ और ऊपर की आयु स्थितियाँ नहीं पाई जाती हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले नौ सूत्रों का कथन पूर्ण हुआ।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का काल बतलाने हेतु नौ सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव वहाँ कितने काल तक रहते हैं ?।।५१।।

जघन्य से सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं।।५२।।

उत्कृष्ट से सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव असंख्यात लोकप्रमाण काल तक वहाँ रहते हैं।।५३।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव कितने काल तक वहाँ रहते हैं ?।।५४।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव रहते हैं।।५५।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव वहाँ रहते हैं।।५६।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव कितने काल तक वहाँ रहते हैं ?।।५७।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव रहते हैं।।५८।।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७ (धवलाटीका समन्वित), पृ. १३७।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।५९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सामान्येन सूक्ष्मैकेन्द्रियजीवानां उत्कर्षेण कथ्यते—अन्येन्द्रियेभ्यः आगत्य सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्य असंख्यातलोकमात्रकालं संतप्यमानजलमिव तत्रैव परिभ्रम्य निर्गते जीवे तदुपलंभात्।**

सूक्ष्मजीवस्थितिः बादरैकेन्द्रियस्थितितः अभ्यधिका किमर्थं न जाता ?

न जाता, बादरैकेन्द्रियेषु आयुर्बध्यमानवारेभ्यः सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु आयुर्बध्यमान-वाराणामसंख्यातगुणत्वात्।

एतत्कथं ज्ञायते ?

''एदम्हादो जिणवयणादो[१]।'' एतत्कथनेन इदं ज्ञायते यत् एतानि सूत्राणि जिनवचनान्येव, इदं श्रीवीरसेनाचार्यो ब्रवीति।

सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टस्थितयोऽन्तर्मुहूर्तमेव। उत्कर्षेण—अनेकसहस्रवारं तत्रोत्पन्नेऽपि अंतर्मुहूर्तादधिकभवस्थितेः अनुपलंभात्।

कश्चिदाशंकते—**सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानां उत्कृष्टभवस्थितिप्रमाणमन्तर्मुहूर्त्तमेव, सूक्ष्मानां जीवानां पुनः भवस्थितिः असंख्यातलोकप्रमाणं, कथमेतत् कथनं न विरुध्यते ?**

न विरुध्यते, पर्याप्तापर्याप्तकेषु असंख्यातलोकमात्रवारगतिं आगतिं च कुर्वतस्तस्य जीवस्य तदविरोधात्।

उत्कृष्ट से सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक वहाँ रहते हैं।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्य से सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट कथन करते हैं—अन्य इन्द्रियों वाले जीवों में से आकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होकर असंख्यात लोकप्रमाण काल तक तपाये हुए जल के समान उसी पर्याय में परिभ्रण करके निकले हुए जीव में उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति बादर एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति से अधिक क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं होती है, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय जीवों में जितनी बार आयु बंध होता है उनसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के असंख्यातगुणी अधिक बार आयु के बंध होते हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—''इस जिनवचन से ही यह बात जानी जाती है।'' इस कथन से यह जाना जाता है कि ये सूत्र जिनवचन ही है, यह श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही है, उत्कृष्ट से—अनेक सहस्रबार उसी-उसी पर्याय में उत्पन्न होने पर भी अन्तर्मुहूर्त से अधिक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की भवस्थिति नहीं पाई जाती है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों की उत्कृष्ट भवस्थिति का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही है, जब कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की भवस्थिति असंख्यात लोकप्रमाण है, यह बात परस्पर विरुद्ध क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव असंख्यात लोकप्रमाण बार पर्याप्तक और अपर्याप्तकों में आवागमन करते हैं, इसलिए उनके असंख्यात लोकप्रमाण होने में कोई विरोध नहीं आता है।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७ (धवला टीका समन्वित), पृ. १३९।

अस्यायमर्थः —**अत्र सूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तजीवानां मिलित्वा पुनः पुनः परिभ्रमणेन असंख्यातलोकमात्र-प्रमाणा स्थितिः जायते। किंतु पृथक् -पृथक् सूक्ष्मपर्याप्तजीवस्य अपर्याप्तजीवस्य अंतर्मुहुर्तमात्रमेव भवतीति ज्ञातव्यं।**

एतत् स्थितिकथनं ज्ञात्वा एकेन्द्रियजीवेषु अद्य प्रभृति मम जन्म न भवेत् इति भावनां भावयित्वा रत्नत्रयसाधनां कृत्वा संसारपरिभ्रमणं नाशयितव्यं भवद्भिरिति ।

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मजीवानां कालनिरूपणत्वेन सूत्रनवकं गतम् ।

इदानीं विकलत्रयाणां कालकथनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।६०।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं।।६१।।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।६२।।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।६३।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।६४।।

इसका अर्थ यह है कि — यहाँ सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के मिलकर पुनः पुनः परिभ्रमण से असंख्यात लोकमात्र प्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है, किन्तु सूक्ष्मपर्याप्त जीव और अपर्याप्त जीवों की पृथक्-पृथक् स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र ही होती है, ऐसा जानना चाहिए।

यह स्थिति कथन जानकर एकेन्द्रिय जीवों में अब कभी भी मेरा जन्म न होवे, ऐसी भावना भाते हुए रत्नत्रय की साधना करके आप सभी को अपने संसारपरिभ्रमण का अन्त करना चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्म जीवों का कालनिरूपण करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब विकलत्रय जीवों का काल कथन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त व चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव कितने काल तक वहाँ रहते हैं ?।।६०।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव विकलत्रय व विकलत्रय पर्याप्त होते हैं।।६१।।

उत्कृष्ट से विकलत्रय व विकलत्रय पर्याप्त जीव असंख्यात हजार वर्षों तक वहाँ रहते हैं।।६२।।

द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त व चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव कितने काल तक वहाँ रहते हैं ?।।६३।।

जघन्य से विकलत्रय अपर्याप्त जीव क्षुद्रभवग्रहण काल तक वहाँ रहते हैं।।६४।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।६५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र यथाक्रमेण द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियाणां स्वकान्तर्भूतापर्याप्तानां संभवात् तेषां क्षुद्रभवग्रहणमात्रं कालं, एतेषां चैव पर्याप्तानामन्तर्मुहूर्तं, तत्रापर्याप्तानामभावात्।**

उत्कर्षेण अविवक्षितेन्द्रियेभ्यः आगत्य द्वादशवर्षायुष्केषु द्वीन्द्रियेषु एकोनपंचाशद्रात्रिंदिवायुष्केषु त्रीन्द्रियेषु वा षण्मासायुष्केषु चतुरिन्द्रियेषु वा उत्पद्य बहुवारं तत्रैव परिवर्तनं कृत्वा निर्गतस्य तस्य विवक्षितद्वीन्द्रियादिजीवस्य सूत्रोक्तकालसंभवात्। अपर्याप्तानां एषां एव विकलत्रयाणां जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणकालमात्रं, उत्कर्षेण अंतर्मुहूर्तं।

एवं चतुर्थस्थले विकलत्रयजीवकालनिरूपणत्वेन षट् सूत्राणि गतानि।

अधुना पंचेन्द्रियाणां जीवानां कालनिरूपणाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।६६।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं।।६७।।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं।।६८।।

उत्कृष्ट से विकलत्रय अपर्याप्त जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक वहाँ रहते हैं।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ यथाक्रम से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में उनके अपर्याप्तकों का भी अन्तर्भाव है अतएव उन्हीं अपर्याप्तकों की अपेक्षा उनका जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण होता है। उन्हीं द्वीन्द्रियादिक जीवों में पर्याप्तकों का काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उनमें अपर्याप्तकों का अभाव है।

उत्कृष्ट से—अविवक्षित इन्द्रिय वाले जीवों में से आकर बारह वर्ष की आयु वाले द्वीन्द्रिय, उनचास रात्रि-दिन वाले तीन इंद्रिय तथा ६ मास की आयु वाले चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होकर बहुत बार उन्हीं पर्यायों में परिभ्रमण करके निकलने वाले जीव के सूत्रोक्त काल का होना संभव है।

उन्हीं विकलत्रय अपर्याप्त जीवों का जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल मात्र है और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तकाल होता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में विकलत्रय जीवों का काल निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय जीवों का काल निरूपण करने के लिए छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव कितने काल तक वहाँ रहते हैं ?।।६६।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल व अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं।।६७।।

उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक सागरोपमसहस्त्र व सागरोपमशत पृथक्त्व काल तक जीव क्रमशः पंचेन्द्रिय पर्याप्त रहते हैं।।६८।।

पंचिंदिय अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।६९।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।७०।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।७१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति ।**

पंचेन्द्रियाणां पूर्वकोटिपृथक्त्वेन अभ्यधिकसागरोपमसहस्राणि सामान्यजीवानामिति । पर्याप्तानां पुनः सागरोपमशतपृथक्त्वमिति यथासंख्यन्यायात्।

एवं पंचमस्थले पंचेन्द्रियाणां कालप्ररूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम् ।

जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं।।६९।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं।।७०।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रहते हैं।।७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सरल है।

पंचेन्द्रिय जीवों का काल पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण सामान्य जीवों की अपेक्षा कहा गया है। परन्तु पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों का काल सागरोपमशतपृथक्त्व ही है, ऐसा सूत्र में कथित 'यथासंख्य' न्याय से जाना जाता है।

इस प्रकार पंचम स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का काल प्ररूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

विशेषार्थ—इन्द्रियमार्गणा नामक इस अधिकार में एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों का काल बतलाया गया है। इस संदर्भ में गोम्मटसार जीवकाण्ड में इन्द्रियमार्गणा के विषय में वर्णन आया है कि जिस प्रकार नव ग्रैवेयक आदि में रहने वाले इन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि भेदों तथा स्वामी भृत्य आदि विशेष भेदों से रहित होने के कारण किसी के वशवर्ती नहीं है—स्वतंत्र हैं उसी प्रकार स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ भी अपने-अपने स्पर्श आदि विषयों में दूसरी रचना आदि की अपेक्षा न रखकर स्वतंत्र हैं। यही कारण है कि इनको इन्द्रों-अहमिन्द्रों के समान होने से इन्द्रिय कहते हैं।

इन्द्रियों के दो भेद—भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय।

भावेन्द्रिय के दो भेद—लब्धि और उपयोग। मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्रगट हुई अर्थ ग्रहण की शक्तिरूप विशुद्धि को 'लब्धि' कहते हैं और उसके होने पर अर्थ—विषय के ग्रहण करने रूप जो व्यापार होता है, उसे 'उपयोग' कहते हैं।

द्रव्येन्द्रिय के दो भेद—निर्वृति और उपकरण। आत्म प्रदेशों तथा आत्म सम्बद्ध शरीर प्रदेशों की रचना को निर्वृत्ति कहते हैं। निर्वृत्ति आदि की रक्षा में सहायकों को उपकरण कहते हैं।

जिन जीवों के बाह्य चिन्ह और उनके द्वारा होने वाला स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्द इन पाँच विषयों का ज्ञान हो, उनको क्रम से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। इनके भी अवान्तर भेद अनेक हैं।

एकेन्द्रिय जीव के केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय के स्पर्शन, रसना, त्रीन्द्रिय के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चतुरिन्द्रिय के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और पंचेन्द्रिय के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र।

इन्द्रियों का विषय—एकेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चार सौ धनुष है और द्वीन्द्रिय आदि

इति षट्खंडागमस्य श्री क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे गणिनीज्ञानमतीकृत-
सिद्धांतचिंतामणिटीकायां एकजीवापेक्षयाकालानुगमे
इंद्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

के वह दूना-दूना है।

चक्षु इंद्रिय के उत्कृष्ट विषय में विशेषता—सूर्य का भ्रमण क्षेत्र $५१०-\frac{४८}{११}$ योजन चौड़ा है। यह पृथ्वी तल से ८०० योजन ऊपर जाकर है। वह इस जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन एवं लवण समुद्र में $३३०-\frac{४८}{६१}$ योजन है अर्थात् समस्त गमन क्षेत्र $५१०-\frac{४८}{६१}$ योजन या $२०४३१४७-\frac{१३}{६१}$ मील है। इतने प्रमाण गमन क्षेत्र में सूर्य की १८४ गलियाँ हैं। इन गलियों में सूर्य क्रमशः एक-एक गली में संचार करते हैं इस प्रकार जम्बूद्वीप में दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा हैं।

चक्रवर्ती के चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय—जब सूर्य पहली गली में आता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। इस समय सूर्य अभ्यन्तर गली की ३,१५,०८९ योजन परिधि को ६० मुहूर्त में पूरा करता है। इस गली में सूर्य निषध पर्वत पर उदित होता है वहाँ से उसे अयोध्या नगरी के ऊपर आने में ९ मुहूर्त लगते हैं। जब-जब वह ३,१५,०८९ योजन प्रमाण उस वीथी को ६० मुहूर्त में पूरा करता है, तब वह ९ मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पूरा करेगा, इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{३,१५,०८९}{६०}$ **-९=४७,२६३**$\frac{७}{२०}$ योजन अर्थात् १,८९०५,३४,००० मील होता है।

इन्द्रियों का आकार—मसूर के समान चक्षु का, जव की नली के समान श्रोत्र का, तिल के फूल के समान घ्राण का तथा खुरपा के समान जिह्वा का आकार है। स्पर्शनेन्द्रिय के अनेक आकार हैं।

एकेन्द्रियादि जीवों का प्रमाण—स्थावर एकेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात है, शंख आदि द्वीन्द्रियजीव असंख्यातासंख्यात हैं, चिंवटी आदि त्रीन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं, मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं और निगोदिया जीव अनंतानंत हैं। अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति ये पाँच स्थावर और त्रस जीव असंख्यातासंख्यात हैं और जो वनस्पति के भेदों का दूसरा भेद साधारण है, वे साधारण वनस्पति जीव अनन्तानन्त प्रमाण हैं।

इन्द्रियातीत—अर्हंत और सिद्ध जीव इन्द्रियों के व्यापार से युक्त नहीं हैं, अवग्रह, ईहा आदि क्षयोपशम ज्ञान से रहित, इन्द्रिय सुखों से रहित, अतीन्द्रिय ज्ञान और अनन्त सुख से युक्त हैं। इन्द्रियों के बिना भी आत्मोत्थ निराकुल सुख का अनुभव करने से वे पूर्णतया सुखी हैं। ऐसे अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति हेतु हमें भी सतत पुरुषार्थ करना चाहिए और अपने काल की एक कला भी व्यर्थ नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में गणिनी
ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में एक
जीव की अपेक्षा से कालानुगम में इन्द्रियमार्गणा नाम
का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अत्र त्रिभिरन्तरस्थलैः चतुर्विंशतिसूत्रैः कालानुगमे कायमार्गणानामतृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले बादरस्थावरकायानां कालकथनमुख्यत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादि द्वादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले सूक्ष्मस्थावरकायजीवानां स्थितिप्रतिपादनत्वेन ''सुहुमपुढविकाइया'' इत्यादिषट्सूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले त्रसकायिकानां कालनिरूपणत्वेन ''तसकाइया'' इत्यादिषट्सूत्राणि इति समुदायपातनिका कथिता भवति।

तत्रेदानीं बादरपृथिवीकायिकादिजीवानां सामान्येन कालप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ?।।७२।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।७३।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।७४।।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदि पत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति ?।।७५।।

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन अन्तर स्थलों में चौबीस सूत्रों के द्वारा कालानुगम में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में बादर स्थावरकाय वाले जीवों के कालकथन की मुख्यता वाले ''कायाणुवादेण'' इत्यादि बारह सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में सूक्ष्मस्थावरकायिक जीवों की कालस्थिति का प्रतिपादन करने हेतु ''सुहुमपुढविकाइया'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में त्रसकायिक जीवों का कालनिरूपण करने वाले ''तसकाइया'' इत्यादि छह सूत्र हैं, यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

उनमें से यहाँ सर्वप्रथम बादर पृथिवीकायिक आदि जीवों का सामान्य से काल प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणानुसार जीव पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक व वायुकायिक कितने काल तक रहते हैं ?।।७२।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक व वायुकायिक रहते हैं।।७३।।

उत्कृष्ट से असंख्यातलोक प्रमाण काल तक जीव पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक व वायुकायिक रहते हैं।।७४।।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर वाले कितने काल तक रहते हैं ?।।७५।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।७६।।

उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी।।७७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कायमार्गणायां पृथिवीकायिकादिचतुष्कानां उत्कर्षेण अनर्पितकायात् आगत्य अर्पितकाये समुत्पद्य असंख्यातलोकमात्रकालं तत्र परिवर्त्य निर्गते तदुपलंभात्। पुनश्च बादरपृथ्वी-बादरजल-बादराग्नि-बादरवायु-बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरजीवाः जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणकालं। उत्कर्षेण—कर्मस्थितिप्रमाणं कालं। सूत्रे 'कम्मट्ठिदि' इति कथिते सप्ततिसागरोपमकोटाकोटिमात्रा गृहीतव्या कर्मविशेषस्थितिं मुक्त्वा कर्मसामान्यस्थितिग्रहणात्।**

'केचिदाचार्याः सप्ततिसागरोपमकोटाकोटिं आवलिकायाः असंख्यातभागेन गुणिते बादरपृथिवीकायिकादीनां कायस्थितिर्भवति इति भणंति।' तेषां कर्मस्थितिव्यपदेशः कार्ये कारणोपदेशात्।

इदं व्याख्यानमस्ति इति कथं ज्ञायते ?

कर्मस्थितिं आवलिकायाः असंख्यातभागेन गुणिते बादरस्थितिर्भवतीति परिकर्मवचनान्यथानुपपत्तेः। तत्र सामान्येन बादरस्थितिर्भवतीति यद्यपि उक्तं तर्हि अपि पृथिवीकायिकादीनां बादराणां प्रत्येककायस्थितिर्गृहीतव्या, असंख्यातासंख्याता अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यः संति इति सूत्रे बादरस्थितिप्ररूपणात्।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव बादर पृथिवीकायादिक पूर्वोक्त पर्यायों में रहते हैं।।७६।।

उत्कृष्ट से कर्मस्थितिप्रमाण काल तक जीव बादर पृथिवीकायादिक पूर्वोक्त पर्यायों में रहते हैं।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कायमार्गणा में पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकायिक जीवों का उत्कृष्ट से अविवक्षित काय से आकर और विवक्षित काय में उत्पन्न होकर असंख्यातलोकमात्र काल तक वहीं परिभ्रमण करके निकलने वाले जीव के सूत्र कथित काल पाया जाता है। पुनः बादर पृथ्वी, बादर जल, बादर अग्नि, बादर वायु, बादर वनस्पति, बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर धारण करने वाले जीवों का जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल है। उत्कृष्ट से कर्मस्थिति प्रमाण काल है। सूत्र में "कर्मस्थिति" ऐसा कहने पर सत्तर सागरोपम कोडाकोड़ीप्रमाण काल का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि कर्मविशेष की स्थिति को छोड़कर कर्मसामान्य की स्थिति का यहाँ ग्रहण किया गया है।

कितने आचार्य सत्तर सागरोपम कोड़ाकोड़ी को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर बादर पृथिवीकायिक जीवों की कायस्थिति का प्रमाण होता है ऐसा कहते हैं। किन्तु उनकी यह कर्मस्थिति यह संज्ञा कार्य में कारण के उपचार से सिद्ध होती है।

शंका—ऐसा व्याख्यान है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'कर्मस्थिति को आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर बादर स्थिति होती है' ऐसे परिकर्म के वचन की अन्यथा उपपत्ति नहीं बन सकती, इससे पूर्वोक्त व्याख्यान जाना जाता है। वहाँ पर यद्यपि सामान्य से 'बादरस्थिति होती है' ऐसा कहा है, तो भी पृथिवीकायिक बादर जीवों में प्रत्येक की कायस्थिति ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि सूत्र में बादरस्थिति का प्ररूपण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण किया गया है।

बादरपृथिवीकायिकादिबादरप्रत्येकवनस्पतिकायिकादीनां पर्याप्तापर्याप्तानां स्थितिप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।७८।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।७९।।

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।८०।।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।८१।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।८२।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।८३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **बादरपृथिव्यादिजीवानां पर्याप्तानां उत्कर्षेण स्थितिरुच्यते। अविवक्षित-**

अब बादरपृथिवीकायिक से लेकर बादरवनस्पतिकायिक पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों की स्थिति बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ? ।।७८।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि पर्याप्त रहते हैं।।७९।।

उत्कृष्ट से संख्यात हजार वर्षों तक जीव बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त रहते हैं।।८०।।

जीव बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादरवायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ?।।८१।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त रहते हैं।।८२।।

अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त रहते हैं।।८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — बादरपृथिवीकायिक आदि पर्याप्तक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति कहते हैं।

कायादागत्य बादरपृथ्वी-बादराप्-बादरतेजो-बादरवायु-बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरजीवेषु पर्याप्तकेषु यथाक्रमेण द्वाविंशतिवर्षसहस्र-सप्तवर्षसहस्र-त्रिदिवस-त्रिवर्षसहस्र-दशवर्षसहस्रायुष्केषु उत्पद्य संख्यातवर्षसहस्राणि तत्र स्थित्वा निर्गतस्य तदुपलंभात्।

येषामेवापर्याप्तानां जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं। उत्कर्षेण अंतर्मुहूर्तं इति कथितं।

एवं प्रथमस्थले सामान्य-स्थावराणां बादरस्थावराणां च कालकथनमुख्यत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति सूक्ष्मस्थावरकायजीवानां स्थितिप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।।८४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां एषां षण्णां सामान्येन जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणकालमात्रं, उत्कृष्टकालः असंख्यातलोकप्रमाणं। एषां पर्याप्तानां जघन्योत्कृष्टकालोऽपि अंतर्मुहूर्तं, अपर्याप्तानां जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणं उत्कर्षेण अंतर्मुहूर्तं।**

कश्चिदाह — **सूक्ष्मनिगोदग्रहणमनर्थकमस्मिन् सूत्रे, किंच — सूक्ष्मवनस्पतिकायिकग्रहणेनैव सिद्धेः। न**

अविवक्षित काय से आकर बादर पृथिवीकायिक बाइस हजार वर्ष, बादर जलकायिक जीव सात हजार वर्ष, बादर अग्निकायिक तीन दिन, बादर वायुकायिक तीन हजार वर्ष और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तक दस हजार वर्ष की आयु वाले जीवों में उत्पन्न होकर व संख्यात हजार वर्षों तक उसी पर्याय में रहकर निकलने वाले जीव के सूत्रोक्त प्रमाण काल पाया जाता है।

उन्हीं बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त जीवों की जघन्य स्थिति क्षुद्रभवग्रहण है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कही गई है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य स्थावर जीवों का और बादर स्थावर जीवों का काल कथन करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्मस्थावरकायिक जीवों की स्थिति का प्ररूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीव तथा इन्हीं के पर्याप्त व अपर्याप्त जीवों के काल का निरूपण क्रम से सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तों के समान है।।८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय छहों प्रकार के जीवों का सामान्य से जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणकालमात्र होता है और उत्कृष्टकाल असंख्यातलोकप्रमाण होता है, उसी प्रकार पर्याप्त जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त होता है। अपर्याप्त जीवों का जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणकाल और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल होता है।

यहाँ कोई शंका करता है —

सूत्र में सूक्ष्म निगोदियाजीवों का ग्रहण करना निरर्थक है, क्योंकि — सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों के

च सूक्ष्मवनस्पतिकायिकव्यतिरिक्ताः सूक्ष्मनिगोदाः सन्ति, तथानुपलंभात्।

आचार्यःप्राह—**नेदं युज्यते, यत्र सूत्रं नास्ति तत्राचार्यवचनानां व्याख्यानानां च प्रमाणत्वं भवति। यत्र पुनः जिनवचनविनिर्गतं सूत्रमस्ति न तत्र एतेषां प्रमाणत्वं। किंच-सूक्ष्मवनस्पतिकायिकान् भणित्वा सूक्ष्मनिगोद-जीवाः सूत्रे प्ररूपिताः, ततः एतेषां पृथक् प्ररूपणान्यथानुपपत्तेः। अतः सूक्ष्मवनस्पतिकायिक-सूक्ष्मनिगोदयोरस्ति विशेषः इति ज्ञायते ।**

तात्पर्यमेतत्—**सूक्ष्मवनस्पतिकायिकेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पृथक् संति इति एतस्मात् एव सूत्रात् ज्ञातव्यं भवति।**

इदानीं वनस्पतिकायिकानां स्थितिनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

वणप्फदिकाइया एइंदियाणं भंगो।।८५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**वनस्पतिकायिकानां जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणं उत्कृष्टकालः अनंतकालप्रमाणं असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनं च भवति।**

संप्रति निगोदजीवानां कालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति ?।।८६।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।८७।।

ग्रहण से ही उनका ग्रहण सिद्ध है तथा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों से भिन्न सूक्ष्म निगोदिया जीव नहीं हैं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि—यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ सूत्र नहीं हैं वहाँ आचार्य वचनों की और व्याख्यानों की प्रमाणता होती है। किन्तु जहाँ जिन भगवान के मुख से निर्गत सूत्र हैं वहाँ इनकी प्रमाणता नही होती। चूँकि सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों का पृथक् से कथन कर सूत्र में सूक्ष्म निगोदियाजीवों का निरूपण किया गया है, अतः इनके पृथक्प्ररूपण की अन्यथानुपपत्ति से सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदिया जीवों में भेद है, यह विशेष जाना जाता है।

तात्पर्य यह है कि—सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवों से सूक्ष्म निगोदिया जीव पृथक् हैं, ऐसा इसी सूत्र से जानना चाहिए।

अब वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक जीवों के काल का कथन एकेन्द्रिय जीवों के समान है।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वनस्पतिकायिक जीवों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण है, उत्कृष्टकाल अनंतकाल प्रमाण और असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल होता है।

अब निगोदिया जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

निगोदिया जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।८६।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक निगोदिया जीव उस पर्याय में रहते हैं।।८७।।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं।।८८।।

बादरणिगोदजीवा बादरपुढविकाइयाणं भंगो।।८९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उत्कर्षेण अनिगोदजीवस्य निगोदेषु उत्पन्नस्य सार्धद्वय-पुद्गलपरिवर्तनेभ्यः उपरि परिभ्रमणाभावात्। यथा बादरपृथ्वीकायिकानां जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणमुत्कृष्टः कर्मस्थितिप्रमाणं, तथैव बादरनिगोदजीवानां जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणं, उत्कृष्टः कर्मस्थितिः। बादरनिगोद-पर्याप्तानां उत्कृष्टकालः अंतर्मुहूर्तः। बादरनिगोदापर्याप्तानां जघन्यकालः क्षुद्रभवग्रहणमुत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तः।**

एवं द्वितीयस्थले सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादीनां कालनिरूपणत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

त्रसकायिकानां कालप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।९०।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं।।९१।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडीपुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवमसहस्साणि।।९२।।

तसकाइयअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।९३।।

उत्कृष्ट से अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक निगोदिया जीव उस पर्याय में रहते हैं।।८८।।

बादर निगोदियाजीवों का काल बादर पृथिवीकायिकों के समान है।।८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। उत्कृष्ट से जो अनिगोद अर्थात् निगोदपर्याय से भिन्न जीव निगोद जीवों में उत्पन्न होता है उसका अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनों से ऊपर परिभ्रमण नहीं होता है। जिस प्रकार बादर पृथिवीकायिकों का जघन्यकाल क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्टकाल कर्मस्थितिप्रमाण है, उसी प्रकार बादर निगोदजीवों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्टकाल कर्मस्थिति प्रमाण होता है। बादर निगोद पर्याप्तों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। बादर निगोद अपर्याप्तकों का जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सूक्ष्मपृथिवीकायिक आदि जीवों का काल निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए। अब त्रसकायिक जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ?।।९०।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्रम से त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त रहते हैं।।९१।।

उत्कृष्ट से त्रसकायिक जीव पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्त जीव केवल दो हजार सागरोपम काल तक रहते हैं।।९२।।

जीव त्रसकायिक अपर्याप्त कितने काल तक रहते हैं ?।।९३।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।९४।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।९५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। सामान्यत्रसकायिकानां पूर्वकोटिपृथक्त्वेनाधिक-द्विसागरोपमसहस्त्राणि। त्रसपर्याप्तानां द्विसहस्त्रसागरोपमानि चैव।**

एवं तृतीयस्थले त्रसजीवानां कालप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां काय-मार्गणानाम तृतीयोऽधिकारःसमाप्तः।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिरन्तरस्थलैः अष्टादशसूत्रैः योगमार्गणाधिकारः नामचतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले मनोयोगिवचनयोगिनां कालनिरूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले सामान्यकाययोगिनां कालप्रतिपादनत्वेन ''कायजोगी'' इत्यादिना सूत्रत्रयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले औदारिकादिकाययोगिनां कालकथनत्वेन ''ओरालिय'' इत्यादिना द्वादशसूत्राणि इति समुदायपातनिका कथ्यते।

संप्रति मनोयोगिवचनयोगिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक जीव त्रसकायिक अपर्याप्त रहते हैं।।९४।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव त्रसकायिक अपर्याप्त रहते हैं।।९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्य से त्रसकायिकों का उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तों का काल केवल दो हजार सागरोपम ही है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में त्रस जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन अन्तरस्थलों में अठारह सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा अधिकार नाम से चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का कालनिरूपण करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीयस्थल में सामान्यकाययोगी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु कायजोगी'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में औदारिक आदि काययोगी जीवों का काल कथन करने वाले ''ओरालिय'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।९६।।

जहण्णेण एयसमओ।।९७।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।९८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मनोयोगस्य तावत् एकसमयप्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—एको जीवः काययोगेन स्थित्वा काययोगकालस्य क्षयेण मनोयोगे आगतः, तेनैकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मृत्वा काययोगी जातः। लब्धो मनोयोगस्य एकसमयः। अथवा काययोगकालक्षयेण मनोयोगे आगते द्वितीयसमये व्याघातितस्य पुनरपि काययोगश्चैवागतः। लब्धो द्वितीयप्रकारेणैकसमयः। एवं शेषाणां चतुर्णां मनोयोगानां पंचानां वचनयोगानां च एकसमयप्ररूपणा द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां ज्ञातव्या।**

अविवक्षितयोगाद् विवक्षितयोगं गत्वा उत्कर्षेण तत्रान्तर्मुहूर्तं अवस्थानं प्रति विरोधाभावात्।

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां कालकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम् ।

इदानीं सामान्येन काययोगिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।।९९।।

सूत्रार्थ—

योगमार्गणानुसार पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।९६।।

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव जघन्य से एक समय तक रहते हैं।।९७।।

पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं।।९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन योगों में प्रथमतः मनोयोग के एक समय की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार है—एक जीव काययोग से स्थित होकर काययोग काल के क्षय से मनोयोग में आया, उसके साथ एक समय रहकर व द्वितीय समय में मरकर काययोगी हो गया। इस प्रकार मनोयोग का जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। अथवा काययोग काल के क्षय से मनोयोग के प्राप्त होने पर द्वितीय समय में व्याघात को प्राप्त हुए उसके फिर भी काययोग ही प्राप्त हो गया। इस तरह द्वितीय प्रकार से एक समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार शेष चार मनोयोग और पाँच वचनयोगों के भी एक समय की प्ररूपणा दोनों प्रकारों से जानना चाहिए।

अविवक्षित योग से विवक्षित योग को प्राप्त होकर उत्कृष्ट से वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थान होने में कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का काल कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्यरूप से काययोगी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

काययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।९९।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१००।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१०१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र एकजीवापेक्षयैव कालः प्ररूप्यते। अविवक्षितयोगात् काययोगं गतस्य जघन्यकालस्यापि अंतर्मुहूर्तप्रमाणं मुक्त्वा एकसमयादिप्रमाणानुपलंभात्। उत्कर्षेण—अनर्पितयोगात् काययोगं गत्वा तत्र सुष्ठु दीर्घकालं स्थित्वा कालं कृत्वा एकेन्द्रियेषूत्पन्नस्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गल-परिवर्तनानि परिवर्तितस्य काययोगोत्कृष्टकालोपलंभात्।**

एवं द्वितीयस्थले सामान्यकाययोगिनां स्थितिनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति औदारिककाययोगिनां स्थितिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।।१०२।।

जहण्णेण एगसमओ।।१०३।।

उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि।।१०४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मनोयोगेन वचनयोगेन व स्थित्वा तयोःकालक्षयेण औदारिककाययोगप्राप्तस्य द्वितीयसमये कालं कृत्वा योगान्तरं गतस्य एकसमयदर्शनात्। लब्धो जघन्यकालः। उत्कर्षेण—द्वाविंशतिवर्ष-सहस्रायुष्केषु पृथिवीकायिकेषु उत्पद्य सर्वजघन्येन कालेन औदारिकमिश्रकालं गमयित्वा पर्याप्तकस्य**

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव काययोगी रहते हैं।।१००।।

उत्कृष्ट से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक जीव काययोगी रहते हैं।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ एक जीव की अपेक्षा ही काल का प्ररूपण किया जा रहा है। अविवक्षित योग से काययोग को प्राप्त हुए जीव के जघन्य काल का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त को छोड़कर एक समयादिरूप नहीं पाया जाता है। उत्कृष्ट से—अविवक्षित योग से काययोग को प्राप्त होकर और वहाँ अतिशय दीर्घ काल तक रहकर काल को पूर्ण करके एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुए जीव के आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गल परिवर्तन भ्रमण करते हुए जीव के काययोग का उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सामान्यकाययोगी जीवों की स्थिति का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए। अब औदारिककाययोगी जीवों की स्थिति का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

औदारिककाययोगी जीव कितने काल तक रहते है ?।।१०२।।

जघन्य से एक समय तक जीव औदारिककाययोगी रहते हैं।।१०३।।

उत्कृष्ट से कुछ कम बाईस हजार वर्षों तक जीव औदारिककाययोगी रहते हैं।।१०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनोयोग अथवा वचनयोग के साथ रहकर उनके कालक्षय से औदारिककाययोग को प्राप्त होने के द्वितीय समय में मरकर योगान्तर को प्राप्त हुए जीव के एक समय काल देखा जाता है। उत्कृष्ट से—बाईस हजार वर्ष की आयु वाले पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होकर सर्वजघन्य

प्रथमसमयप्रभृति यावत् अंतर्मुहूर्तोनद्वाविंशतिसहस्रवर्षाणि तस्य तावत् औदारिककाययोगः उपलभ्यते।

औदारिकमिश्र-वैक्रियिक-आहारक-तन्मिश्र-कार्मणकाययोगिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते —

ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।।१०५।।

जहण्णेण एगसमओ।।१०६।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१०७।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।।१०८।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१०९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।११०।।

कम्मकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।।१११।।

जहण्णेण एगसमओ।।११२।।

काल से औदारिकमिश्रकाल को बिताकर पर्याप्ति को प्राप्त होने के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष तक औदारिककाययोग पाया जाता है।

अब औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, आहारक, आहारकमिश्र एवं कार्मणकाययोगी जीवों का काल बतलाने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी कितने काल तक रहते हैं ?।।१०५।।

जघन्य से एक समय तक जीव औदारिक मिश्रकाययोगी आदि रहते हैं।।१०६।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव औदारिकमिश्रकाययोगी आदि रहते हैं।।१०७।।

जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कितने काल तक रहते हैं ?।।१०८।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारक-मिश्रकाययोगी रहते हैं।।१०९।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी रहते हैं।।११०।।

जीव कार्मणकाययोगी कितने काल तक रहते हैं ?।।१११।।

जघन्य से एक समय तक जीव कार्मणकाययोगी रहते हैं।।११२।।

उक्कस्सेण तिण्णि समया।।११३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**औदारिककाययोगस्याविनाभाविदण्डसमुद्घातात् कपाटसमुद्घातगतजिनभगवति सयोगिनि औदारिकमिश्रस्य एकसमयः उपलभ्यते, तत्र औदारिकमिश्रेण विना अन्ययोगाभावात्। मनोवचनयोगेभ्यः वैक्रियिकयोगप्राप्तस्य द्वितीयसमये मृतस्य एकसमयः वैक्रियिककाययोगस्योपलभ्यते, मृतप्रथमसमये कार्मण-औदारिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगान् मुक्त्वा वैक्रियिककाययोगानुपलंभात्। मनोवचनयोगेभ्यः आहारककाययोगं गतस्य द्वितीयसमये मृतस्य मूलशरीरं प्रविष्टस्य वा आहारकाययोगस्यैक-समयो लभ्यते, मृतानां मूलशरीरप्रविष्टानां च प्रथमसमये आहारकाययोगानुपलंभात्। औदारिकमिश्रयोगिनः वैक्रियिककाययोगिनः आहारकाययोगिनः जीवस्य जघन्येन एतत्कालः कथितः।**

उत्कर्षेण—एतेषां कालः कथ्यते—मनोयोगात् वचनयोगाद्वा वैक्रियिक-आहारकाययोगं गत्वा सर्वोत्कृष्टं अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अन्ययोगस्यान्तर्मुहूर्तमात्रकालोपलंभात्। अनर्पितयोगादौदारिकमिश्रयोगं गत्वा सर्वोत्कृष्टकालं स्थित्वान्ययोगं गतस्य औदारिकमिश्रस्यान्तर्मुहूर्तमात्रोत्कृष्टकालोपलंभात्।

सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तेषु बादरैकेन्द्रियापर्याप्तेषु च सप्ताष्टभवग्रहणानि निरतंरमुत्पन्नस्य बहुशः कालः किन्नोपलभ्यते ?

न,ताः सर्वाः स्थितयः एकत्र कृतेऽपि अन्तर्मुहूर्तलाभात्।

कश्चिदाह—**वैक्रियिकमिश्रयोगिनः आहारमिश्रयोगिनश्च जघन्येनान्तर्मुहूर्तं कथितं, अत्र एकसमयः किन्न लभ्यते ?**

उत्कृष्ट से तीन समय तक जीव कार्मणकाययोगी रहते हैं।।११३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—औदारिककाययोग के अविनाभावी दण्डसमुद्घात से कपाटसमुद्घात को प्राप्त हुए सयोगीजिन में औदारिकमिश्र का एक समय काल पाया जाता है, क्योंकि उस अवस्था में औदारिकमिश्र के बिना अन्य योग नहीं पाया जाता। मनोयोग या वचनयोग से वैक्रियिककाययोग को प्राप्त होने के द्वितीय समय में मृत्यु को प्राप्त हुए जीव के वैक्रियिककाययोग का एक समय काल पाया जाता है, क्योंकि मर जाने के प्रथम समय में कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययेग को छोड़कर वैक्रियिककाययोग पाया नहीं जाता। मनोयोग अथवा वचनयोग से आहारककाययोग को प्राप्त होने के द्वितीय समय में मृत्यु को प्राप्त हुए या मूल शरीर में प्रविष्ट हुए जीव के आहारककाययोग का एक समय पाया जाता है, क्योंकि मृत्यु को प्राप्त और मूल शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के प्रथम समय में आहारककाययोग नहीं पाया जाता है। औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और आहारककाययोगी जीव का जघन्य से यह काल कहा गया है।

उत्कृष्टरूप से इनका काल कहते हैं—

मनोयोग अथवा वचनयोग से वैक्रियिक या आहारककाययोग को प्राप्त होकर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य योग को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल पाया जाता है तथा अविवक्षित योग से औदारिकमिश्रयोग को प्राप्त होकर तथा सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर अन्य योग को प्राप्त हुए जीव के औदारिकमिश्र का अन्तर्मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तों में और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तों में सात आठ भवग्रहण तक निरन्तर उत्पन्न हुए जीव के बहुत काल क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उन सब स्थितियों को इकट्ठा करने पर भी उनका योग अन्तर्मुहूर्तमात्र काल होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का जघन्यकाल

न लभ्यते, अत्र मरण-योगपरावृत्योरसंभवात्। शेषं सुगमं वर्तते।

एवं तृतीयस्थले काययोगिनां भेदप्रभेदानां जघन्योत्कृष्टकालनिरूपणत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिरन्तरस्थलैः चतुर्दशसूत्रैः एकजीवापेक्षया कालानुगमे वेदमार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले स्त्रीवेदिनां कालनिरूपणत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं । तदनु द्वितीयस्थले पुरुषवेदिनां जघन्योत्कृष्टकालप्रतिपादनत्वेन ''पुरिसवेदा'' इत्यादिसूत्रत्रयं । तत्पश्चात् तृतीयस्थले नपुंसकवेदिजीवानां स्थितिनिरूपणत्वेन ''णवुंसयवेदा'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं चतुर्थस्थले अपगतवेदानां कालकथनमुख्यत्वेन ''अवगदवेदा'' इत्यादिना पंचसूत्राणि इति समुदायपातनिका ।

संप्रति स्त्रीवेदिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अन्तर्मुहूर्त है तो यहाँ एक समय जघन्य काल क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

इसका समाधान करते हैं कि — नहीं, क्योंकि यहाँ मरण और योगपरावृत्ति का होना असंभव है।

शेष कथन सुगम है।

इस तरह से तृतीय स्थल में काययोगी जीवों के भेद-प्रभेदों का जघन्य और उत्कृष्ट काल निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के क्षुद्रकबंध नाम के प्रकरण में द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार अन्तरस्थलों में चौदह सूत्रों के द्वारा एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में वेदमार्गणा नाम का अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में स्त्रीवेदी जीवों का कालनिरूपण करने वाले ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में पुरुषवेदी जीवों का जघन्य और उत्कृष्टकाल प्रतिपादन करने हेतु ''पुरिसवेदा'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीयस्थल में नपुंसकवेदी जीवों की स्थिति निरूपण करने हेतु ''णवुंसयवेदा'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद चतुर्थ स्थल में अपगतवेदियों का काल कथन करने वाले ''अवगदवेदा'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब स्त्रीवेदी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केवचिरं कालादो होंति ?।।११४।।

जहण्णेण एगसमओ।।११५।।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं।।११६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चित् भावस्त्रीवेदी मुनिः उपशमश्रेणीतोऽवतीर्य सवेदो भूत्वा द्वितीयसमये मृतः, तत्र स्वर्गे गत्वा पुरुषवेदेन परिणतः, तस्य मुनेः एकसमयो लभ्यते जघन्येन ।**

उत्कर्षेण—अनर्पितवेदात् स्त्रीवेदं गत्वा पल्योपमशतपृथक्त्वं तत्रैव परिभ्रम्य पश्चादन्यवेदं गतः।

शतपृथक्त्वं इति किं ?

त्रिशतप्रभृति यावत् नवशतानि इति एते सर्वविकल्पाः शतपृथक्त्वमिति उच्यन्ते।

एवं प्रथमस्थले भावस्त्रीवेदिनां द्रव्यस्त्रीवेदिनां च स्थितिकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इदानीं पुरुषवेदिनां कालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होंति ?।।११७।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।११८।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।११९।।

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणानुसार जीव स्त्रीवेदी कितने काल तक रहते हैं ?।।११४।।

जघन्य से एक समय तक जीव स्त्रीवेदी रहते हैं।।११५।।

उत्कृष्ट से सौ पल्योपमपृथक्त्व काल तक जीव स्त्रीवेदी रहते हैं।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई भावस्त्रीवेदी मुनि उपशमश्रेणी से उतरकर सवेद अर्थात् स्त्रीवेदी होकर द्वितीय समय में मृत्यु को प्राप्त हो गये, वहाँ स्वर्ग में जाकर पुरुषवेद से परिणत हो गये, उन मुनि के जघन्य से एक समय पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—अविवक्षित वेद से स्त्रीवेद को प्राप्त होकर और पल्योपमशतपृथक्त्व काल तक वहीं-स्त्रीवेदियों में ही परिभ्रमण करके पश्चात् अन्य वेद को प्राप्त हो गया।

प्रश्न—शतपृथक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीन सौ से लेकर नौ सौ तक ये सभी विकल्प "शतपृथक्त्व" नाम से कहे जाते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भावस्त्रीवेदी जीवों की और द्रव्यस्त्रीवेदी जीवों की स्थिति का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पुरुषवेदी जीवों का काल कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव पुरुषवेदी कितने काल तक रहते हैं ?।।११७।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पुरुषवेदी रहते हैं।।११८।।

उत्कृष्ट से सौ सागरोपमपृथक्त्व काल तक जीव पुरुषवेदी रहते हैं।।११९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिद् मुनिः पुरुषवेदोदयेन उपशमश्रेणीं चटित्वा अपगतवेदो जातः, पुनः उपशमश्रेणीतोऽवतीर्यमाणः सवेदो भूत्वा वेदस्यादिं कृत्वा सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तकालं स्थितः, पुनरपि उपशमश्रेणीमारुह्य अपगतवेदाभावं गतः तस्य पुरुषवेदस्यान्तर्मूहूर्तमात्रकालः उपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—नपुंसकवेदे अनंतकालमसंख्यातलोकमात्रं वा स्थित्वा पुरुषवेदं गत्वा तं अत्यक्त्वा सागरोपम-शतपृथक्त्वं तत्रैव परिभ्रम्यान्यवेदं गतस्य तदुपलंभात्। अत्र शतपृथक्त्वेन नवतिशत सागरोपमं गृह्यते।

एवं द्वितीयस्थले पुरुषवेदिनां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

अधुना नपुंसकवेदानां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

णवुंसयवेदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१२०।।

जहण्णेण एयसमओ।।१२१।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१२२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**नपुंसकवेदोदयेन उपशमश्रेणिमारुह्य अवतीर्य सवेदो भूत्वा द्वितीयसमये कालं कृत्वा पुरुषवेदं गतः, तस्य भावनपुंसकवेदिनो मुनेः एकसमयो दृश्यते जघन्येन।**

पुरुषवेदस्य एकसमयः किन्न लब्धः ?

न, अपगतवेदो भूत्वा सवेदजातद्वितीयसमये कालं कृत्वा देवेषूत्पद्यते, तस्यापि पुरुषवेदं मुक्त्वा

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई मुनि पुरुषवेद के उदय से उपशमश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी हो गये, पुनः उपशमश्रेणी से उतरते हुए सवेद होकर वेद का आदि करके—वेद में सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर, फिर उपशम श्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदपने को प्राप्त हुए जीव के पुरुषवेद का जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

उत्कृष्टरूप से—नपुंसकवेद में अनन्तकाल अथवा असंख्यात लोकप्रमाणकाल तक रहकर पुरुषवेद को प्राप्त होकर और उसे न छोड़कर सौ सागरोपमपृथक्त्व काल तक उसमें ही परिभ्रमण करके अन्यवेद को प्राप्त हुए जीव के वह सूत्रोक्त काल पाया जाता है। यहाँ शतपृथक्त्व से ९०० सागरोपम शतपृथक्त्व से ग्रहण किये गये हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पुरुषवेदी जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब नपुंसकवेदी जीवों का काल बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

जीव नपुंसकवेदी कितने काल तक रहते हैं ?।।१२०।।

जघन्य से एक समय तक जीव नपुंसकवेदी रहते हैं।।१२१।।

उत्कृष्ट से अनंत काल तक जीव नपुंसकवेदी रहते हैं जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है।।१२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नपुंसकवेद के उदय से उपशमश्रेणी पर चढ़कर, फिर उतरकर, सवेद होकर और द्वितीय समय में मरकर पुरुषवेद को प्राप्त हुए भावनपुंसकवेदी जीव के नपुंसकवेद का जघन्य से एक समय काल देखा जाता है।

शंका—पुरुषवेद का जघन्यकाल एक समय क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपगतवेद होकर और सवेद होने के द्वितीय समय में मरकर देवों में उत्पन्न

अन्यवेदस्योदयाभावेन एकसमयो नोपलभ्यते ।

उत्कर्षेण — अविवक्षितवेदात् नपुंसकवेदं संप्राप्य आवलिकाया असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनकाल-प्रमाणं परिवर्तनं कृत्वा अन्यवेदं गतस्य तदुत्कृष्टकालं उपलभ्यते।

एवं तृतीयस्थले नपुंसकवेदस्थितिनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति अपगतवेदानां महामुनीनां कालप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

अवगतवेदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१२३।।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।१२४।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१२५।।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२६।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।१२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **कश्चिन्मुनिः उपशमश्रेणिमारुह्य अपगतवेदो भूत्वा एकसमय मात्रं तत्र स्थित्वा द्वितीयसमये मृत्वा वेदभावं गतस्य तज्जघन्यकालः उपलभ्यते। स्त्रीवेदोदयेन नपुंसकवेदोदयेन वा उपशमश्रेणिं चटित्वापगतवेदो भूत्वा सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा वेदभावं गतस्य तदुत्कृष्टकालो लभ्यते।**

क्षपकश्रेण्यपेक्षया कश्चिन्महासाधुः क्षपकश्रेणिं चटित्वापगतवेदो भूत्वा सर्वजघन्येन कालेन परिनिर्वृतिं संप्राप्तस्तस्य जघन्यकालः दृश्यते। उत्कर्षेण — कश्चिद् देवो नारको वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिः पूर्वकोट्यायुष्केषु

हुए, उसके भी पुरुषवेद को छोड़कर अन्य वेद के उदय का अभाव होने से एक समय काल नहीं पाया जाता है।

उत्कृष्ट से — अविवक्षित वेद से नपुंसकवेद को प्राप्त होकर और आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गलपरिवर्तनकाल तक परिभ्रमण करके अन्य वेद को प्राप्त हुए जीव के उत्कृष्टकाल पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में नपुंसकवेद की स्थिति का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेदी महामुनियों का काल प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव अपगतवेदी कितने काल तक रहते हैं ?।।१२३।।

उपशम की अपेक्षा जघन्य से एक समय तक जीव अपगतवेदी रहते हैं।।१२४।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव अपगतवेदी रहते हैं।।१२५।।

क्षपक की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक अपगतवेदी रहते हैं।।१२६।।

उत्कृष्ट से कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष तक जीव अपगतवेदी रहते हैं।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कोई मुनि उपशमश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी होकर और एक समय तक रहकर द्वितीय समय में मरकर सवेदपन को प्राप्त हुए जीव के एक समय काल पाया जाता है। स्त्रीवेद के उदय से या नपुंसकवेद के उदय से उपशमश्रेणी पर चढ़कर, अपगत वेदी होकर और सर्वोत्कृष्ट अर्न्तुहूर्त काल तक वहाँ रहकर वेदपने को प्राप्त हुए जीव के उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

क्षपक श्रेणी की अपेक्षा कोई महामुनि क्षपकश्रेणी पर चढ़कर और अपगतवेदी होकर सर्वजघन्य काल से मुक्ति को प्राप्त हुए। उनके सर्वजघन्य काल पाया जाता है। उत्कृष्ट से — कोई देव अथवा नारकी

मनुष्येषु उत्पन्नः, तत्राष्टवर्षाणि गमयित्वा संयमं प्रतिपद्य सर्वजघन्यकालेन क्षपकश्रेणिं चटित्वापगतवेदो भूत्वा केवलज्ञानं समुत्पाद्य देशोनपूर्वकोटिकालं विहृत्य अबंधकभावं गतस्तस्य तदुत्कृष्टकालः उपलभ्यते।

कश्चिद् द्रव्यवेदी पुरुषो भावेन स्त्रीवेदी नपुंसकवेदी पुरुषवेदी वा भवेत्, तस्य उत्तमसंहननादिद्रव्यक्षेत्र-कालभावसामग्रीभिः रत्नत्रयाराधना भवति। ततः अयं महामुनिः रागद्वेषादिविभावभावं त्यक्त्वा निरंतरं वैराग्यभावनां भावयति। तथाहि—

कति न कति न वारान् भूपतिर्भूरिभूतिः, कति न कति न वारानत्र जातोऽस्मि कीटः।
नियतमिति न कस्याप्यस्ति सौख्यं न दुःखं, जगति तरलरूपे किं मुदा किं शुचा वा[१]।।४७।।

इत्थं मुहुर्मुहुः संचिन्त्य ये महापुरुषाः शुद्धात्मानं ध्यायन्ति त एव अपगतवेदा भवन्ति, त एव शीघ्रं निजात्मानं परमात्मानं कृत्वा अनंतानंतकालं अतीन्द्रियसुखं अनुभवन्ति। ये केचित् एतन्मार्गमनुसरन्ति, ते आचार्यवर्यैरपि नमस्याः भवन्ति।

उक्तं च पद्मनंद्याचार्यदेवेन—

अनर्घ्यरत्नत्रयसंपदोऽपि, निर्ग्रन्थतायाः पदमद्वितीयम् ।
जयन्ति शान्ताः स्मरवैरिविध्वाः, वैधव्यदास्ते गुरुवो नमस्याः[२]।।५८।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि के पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर आठ वर्ष बिताकर संयम को प्राप्त कर, सर्वजघन्य काल में क्षपकश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी होकर, केवलज्ञान को उत्पन्न कर और कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके अबंधक अवस्था को प्राप्त हुए जीव के उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

कोई द्रव्यवेदी पुरुष भाव से यदि स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी अथवा पुरुषवेदी होता है, उसके उत्तम संहनन आदि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप सामग्री के मिल जाने पर रत्नत्रय की आराधना होती है। उसके पश्चात् वह महामुनि राग-द्वेष आदि विभाव भाव को त्यागकर निरन्तर वैराग्य भावना को भाते हैं।

उसी को बताते हैं—

श्लोकार्थ—इस संसार में कितनी-कितनी बार तो हम बड़ी-बड़ी संपत्ति के धारी राजा नहीं हुए क्या तथा कितनी-कितनी बार इसी संसार में हम क्षुद्र कीड़े नहीं हो चुके क्या, इसलिए यही मालूम होता है कि चंचलरूप इस संसार में किसी का सुख तथा दुःख निश्चित नहीं है, अतः सुख और दुःख के होने पर हर्ष और विषाद कदापि नहीं करना चाहिए।।

इस प्रकार बार-बार चिन्तवन करके जो महापुरुष शुद्धात्मा का ध्यान करते हैं वे ही अपगतवेदी बनते हैं, वे ही अपनी आत्मा को शीघ्र परमात्मा बनाकर अनन्तानन्त काल तक अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करते हैं। जो इस मार्ग का अनुसरण करते हैं वे आचार्यों के द्वारा भी नमस्कृत होते हैं।

श्री पद्मनंदि आचार्यदेव ने कहा है—

श्लोकार्थ—अमूल्य रत्नत्रयरूपी संपत्ति के धारी होकर भी जो निर्ग्रन्थपद के धारक हैं तथा शान्तमुद्रा के धारी होने पर भी जो कामदेवरूपी वैरी की स्त्री को विधवा करने वाले हैं, ऐसे वे शांत और उत्तमगुरु सदा नमस्कार करने योग्य हैं। वे सदा ही जयशील रहें।

अर्थात् जो रत्नत्रय के धारी हैं तथा निर्ग्रंथ हैं और शांत मुद्रा के धारक हैं तथा कामदेव के जीतने वाले हैं उन गुरुओं को सदा मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका-धर्मोपदेशामृत अधिकार-१, श्लोक ४७। २. पद्मनंदिपंचविंशतिका अ. १, श्लोक ५८।

एवं चतुर्थस्थले वेदविरहितानां महासाधूनां कालनिरूपणत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यामन्तरस्थलाभ्यां चतुर्भिः सूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले चतुःकषायाणां स्थितिप्रतिपादनत्वेन ''कसायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले अकषायाणां कालनिरूपणत्वेन ''अकसाई'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका भवति।

इदानीं सकषायिणां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई केवचिरं कालादो होंति ?।।१२८।।

जहण्णेण एयसमओ।।१२९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१३०।।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में वेदरहित महासाधुओं का कालनिरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो अन्तर स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चारों कषायों की स्थिति का प्रतिपादन करने वाले ''कसायाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अकषायी-कषायरहित जीवों का काल निरूपण करने वाले ''अकसाई'' इत्यादि एक सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कषाय सहित जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणा के अनुसार जीव क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी कब तक रहते है ?।।१२८।।

जघन्य से एक समय तक जीव क्रोधकषायी आदि रहते हैं।।१२९।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्रोधकषायी आदि रहते हैं।।१३०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अविवक्षितकषायात् क्रोधकषायं प्राप्य एकसमयं स्थित्वा कालं कृत्वा नरकगतिं मुक्त्वान्यगतिषु उत्पन्नस्य एकसमयोपलंभात्। क्रोधस्य व्याघातेन एकसमयो नास्ति, व्याघातितेऽपि क्रोधस्यैव समुत्पत्तेः।**

एवं शेषाणां त्रयाणां कषायाणां अपि एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या। विशेषेण तु एतेषां त्रयाणां कषायाणां व्याघातेनापि एकसमयप्ररूपणा कर्तव्या। मरणेन भण्यमाणे एकसमये मानस्य मनुष्यगतिं, मायायाः तिर्यग्गतिं, लोभस्य देवगतिं मुक्त्वा शेषासु तिसृषु गतिषु उत्पादयितव्या।

कुतः ?

नरकगति-मनुष्य-तिर्यग्-देवगतिषु उत्पन्नानां प्रथमसमये यथाक्रमेण क्रोध-मान-माया-लोभानां चैवोदयदर्शनात्। जघन्येन एतत्कालप्ररूपणा ज्ञातव्या।

अविवक्षितकषायात् विवक्षितकषायं गत्वोत्कृष्टकालं तत्र स्थितः कश्चिद् जीवः, तस्यापि अंतर्मुहूर्तादधिककालानुपलंभात्।

एवं प्रथमस्थले सकषायाणां कालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम् ।

संप्रति कषायविरहितानां कालकथनाय सूत्रमवतरति —

अकसाई अवगदवेदभंगो।।१३१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र अकषायाणां उपशमश्रेण्यपेक्षया जघन्येन एकसमयः, क्षपकश्रेण्यपेक्षया उत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तमिति। उत्कर्षेण उपशमश्रेणिं प्रतीत्य अंतर्मुहूर्तं, क्षपकश्रेणिमाश्रित्य देशोनपूर्वकोटिकालप्रमाणं भणितमस्ति।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अविवक्षित कषाय से क्रोधकषाय को प्राप्त होकर, एक समय रहकर और फिर मरकर नरकगति को छोड़ अन्य गतियों में उत्पन्न हुए जीव के एक समय पाया जाता है। क्रोध के व्याधात से एक समय नहीं पाया जाता, क्योंकि व्याघात को प्राप्त होने पर भी पुनः क्रोध की ही उत्पत्ति होती है।

इसी प्रकार शेष तीन कषायों की प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेष इतना है कि इन तीन कषायों के व्याघात से भी एक समय की प्ररूपणा करनी चाहिए। मरण की अपेक्षा एक समय कहने पर मान की मनुष्यगति, माया की तिर्यंचगति और लोभ की देवगति को छोड़कर शेष तीन गतियों में जीव को उत्पन्न करना चाहिए।

क्यों ?

कारण कि नरक, मनुष्य, तिर्यंच और देवगतियों में उत्पन्न हुए जीवों के प्रथम समय में यथाक्रम से क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय देखा जाता है। जघन्य से यह कालप्ररूपणा जानना चाहिए।

अविवक्षित कषाय से विवक्षित कषाय को प्राप्त करके वहाँ उत्कृष्टकाल तक रहकर कोई जीव स्थित रहा, क्योंकि उसके भी वहाँ अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कषाय सहित जीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब कषायरहित जीवों का काल कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों का काल अपगतवेदियों के समान होता है।।१३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ अकषायी जीवों का काल उपशम श्रेणी की अपेक्षा जघन्य से एक समय है और क्षपकश्रेणी की अपेक्षा उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट से उपशमश्रेणी की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त है

तात्पर्यमेतत्—**इमे क्रोधादिकषायाः सततं आत्मानं हिंसन्ति एषां निमित्तेन आत्मा संसारे परिभ्रमति एतज्ज्ञात्वा कषायान् कृशीकरणार्थं निरंतरं उपायो विधेयः। रागद्वेषमोहादीनां निराकरणाय परमसाम्यं भावनीयं, पुनश्च यैः रागादयः जिताः तेषां शरणं गृहीतव्यं। उक्तं च श्रीपद्मनन्दिदेवैः—**

रागो यस्य न विद्यते क्वचिदपि प्रध्वस्तमोहग्रहा—
दस्त्रादेः परिवर्जनात् न च बुधैर्द्वेषोऽपि संभाव्यते।
तस्मात् साम्यमथात्मबोधनमतो जातः क्षयः कर्मणा—
मानन्दादिगुणाश्रयस्तु नियतं सोऽर्हन् सदापातु वः[1]।।३।।

एवं द्वितीयस्थले अकषायाणां कालकथनमुख्यत्वेन एकं सूत्रं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधकनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारःसमाप्तः।

और क्षपकश्रेणी की अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण कहा गया है।

तात्पर्य यह है कि—ये क्रोधादि कषायें आत्मा की हमेशा हिंसा करते हैं, इन्हीं के निमित्त से आत्मा संसार में परिभ्रमण करता है ऐसा जानकर कषायों को कृश करने का निरन्तर पुरुषार्थ करना चाहिए। राग-द्वेष-मोह आदि का निराकरण करने हेतु परम समताभाव रखने की भावना भानी चाहिए, पुनः जिन्होंने रागादि को जीत लिया है, उनकी शरण को प्राप्त करना चाहिए।

आचार्य श्री पद्मनंदिदेव ने भी कहा है—

श्लोकार्थ—मोह तथा परिग्रह के नाश हो जाने के कारण न तो किसी पदार्थ में जिन अर्हंत भगवान का राग ही प्रतीत होता है तथा अर्हंत भगवान ने समस्त शस्त्र आदि को छोड़ दिया है इसलिए विद्वानों को किसी में जिन अर्हंत भगवान का द्वेष भी देखने में नहीं आता तथा द्वेष के न रहने के कारण जो शान्तस्वभावी हैं तथा शान्तस्वभावी होने के ही कारण जिन अर्हंत भगवान ने अपनी आत्मा को जान लिया है तथा आत्मा का ज्ञाता होने के कारण जो अर्हंत भगवान कर्मों से रहित हैं तथा कर्मों से रहित होने के ही कारण जो आनन्द आदि गुणों के आश्रयरूप हैं, ऐसे अर्हंत भगवान आप सबकी व हमारी सदा रक्षा करो अर्थात् ऐसे अर्हंत भगवान की मैं सदा शरण लेता हूँ। अर्थात् जो रागी तथा द्वेषी है और निरन्तर स्त्रियों में राग करता है तथा जो मोही है और शत्रु से भीत होकर जो निरन्तर शस्त्र को अपने पास रखता है तथा कर्मों का मारा नाना प्रकार की गतियों में भ्रमण करता रहता है, ऐसा स्वयं दुःखी व्यक्ति दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है ? किन्तु जो वीतराग हैं तथा काल मोह आदि जिनके पास भी नहीं फटकने पाते और जो जन्म मरणादि से रहित हैं और कर्मों के जीतने वाले हैं वही दूसरे की रक्षा कर सकते हैं, इसलिए ऐसे ही आप्त (अर्हन्त) की मैं शरण लेता हूँ।

इस तरह से द्वितीय स्थल में अकषायी जीवों का काल कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका, अधिकार-१, श्लोक-३।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिरन्तरस्थलैः पंचदशसूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले मत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानिनोः जघन्योत्कृष्टकालकथनत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रषट्कं ।ततः परं द्वितीयस्थले विभंगज्ञानिनां कालनिरूपणत्वेन ''विभंगणाणी'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले मतिश्रुतावधिज्ञानिनां कालकथनमुख्यत्वेन ''आभिणि'' इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनः चतुर्थस्थले मनःपर्ययकेवलज्ञानिनोः स्थिति-निरूपणत्वेन ''मणपज्जव'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं कुमतिकुश्रुतज्ञानिजीवानां कालप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी केवचिरं कालादो होदि ?।।१३२।।

अणादिओ अपज्जवसिदो।।१३३।।

अणादिओ सपज्जवसिदो।।१३४।।

सादिओ सपज्जवसिदो।।१३५।।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१३६।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।१३७।।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार अन्तरस्थलों में पन्द्रह सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में कुमति और कुश्रुत ज्ञानियों के जघन्य और उत्कृष्टकाल का कथन करने वाले ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय स्थल में विभंगावधि ज्ञानियों का कालनिरूपण करने हेतु ''विभंगणाणी'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीयस्थल में मति-श्रुत, अवधिज्ञानी जीवों का काल बतलाने वाले ''आभिणि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः चतुर्थ स्थल में मनःपर्यय और केवलज्ञानी भगवन्तों की स्थिति निरूपण करने वाले ''मणपज्जव'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणानुसार जीव मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी कितने काल तक रहते हैं ?।।१३२।।

मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवों का काल अनादि-अनन्त है।।१३३।।

उक्त दोनों प्रकार के अज्ञानियों का काल अनादि-सान्त है।।१३४।।

उक्त दोनों प्रकार के अज्ञानियों का काल सादि-सान्त है।।१३५।।

जो वह सादि-सान्त काल है उसका निर्देश इस प्रकार है — जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल है।।१३६।।

उक्त जीव उत्कृष्ट से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी रहते हैं।।१३७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अनादिकालात् सर्वे जीवाः कुमतिकुश्रुतज्ञानिनः एव। अभव्यजीवापेक्षया अभव्यसमानभव्यापेक्षया वा इमे जीवा अनाद्यनन्तकालपर्यन्ताः संति। भव्यजीवापेक्षया केचिदनादयः सपर्यवसानाः केचित् सादयः सपर्यवसानाश्च। ज्ञानात् अज्ञानं गतभव्यजीवानाश्रित्य इमे सादयःसान्ताः भवन्ति।**

यः कश्चिद् जीवः सादिः सान्तः सः सम्यक्त्वात् मिथ्यात्वं गत्वा मतिश्रुताज्ञाने प्रतिपद्य सर्वजघन्यकालमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा सम्यक्त्वं प्राप्य प्रतिपन्ने मतिश्रुतज्ञाने, तस्यैतत् जघन्यकालमन्तर्मुहूर्तं लभ्यते।

उत्कर्षेण देशोनं अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणं—कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्य बहिः त्रीण्यपि करणानि कृत्वा पुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये उपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा आभिनिबोधिक-श्रुतज्ञाने प्रतिपद्य सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा उपशमसम्यक्त्वे षडावलिकाः शेषाः संतीति सासादनं गत्वा मतिश्रुताज्ञानं आदिं कृत्वा मिथ्यात्वं गतः, पुनश्च पुद्गलपरिवर्तनस्यार्द्धं देशोनं परिभ्रम्य पश्चात् अन्तिमे भवे मतिश्रुतज्ञाने उत्पाद्य अन्तर्मुहूर्तेनाबंधकत्वं गतस्तस्य देशोनं अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकालमुपलभ्यते।

एवं प्रथमस्थले कुमतिकुश्रुतज्ञानकालप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रषट्कं गतं।

विभंगज्ञानिनां स्थितिनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

विभंगणाणी केवचिरं कालादो होदि ?।।१३८।।

जहण्णेण एगसमओ।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अनादिकाल से सभी जीव कुमति-कुश्रुत ज्ञानी ही हैं। अभव्य जीव की अपेक्षा अथवा अभव्य के समान भव्य जीव की अपेक्षा से ये जीव अनादि-अनन्त काल तक पाये जाते हैं। भव्यजीव की अपेक्षा कुछ जीव अनादि-सान्त होते हैं और कुछ सादि-सान्त होते हैं। ज्ञान से अज्ञान को प्राप्त हुए भव्य जीवों की अपेक्षा ये सादि-सान्त होते हैं।

जो कोई सादि-सान्त जीव हैं वह सम्यक्त्व से मिथ्यात्व को प्राप्त करके कुमति-कुश्रुत ज्ञान में जाकर वहाँ सर्व जघन्यकालस्वरूप अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करके मति-श्रुत ज्ञान में आ जाते हैं, उन जीवों के यह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्यकाल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणकाल को कहते हैं—

किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीव के अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल के बाहिर तीनों ही करणों को करके पुद्गल परिवर्तन के प्रथम समय में उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण कर आभिनिबोधक व श्रुतज्ञान को प्राप्त करके और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर उपशमसम्यक्त्व में छह आवलियाँ शेष रहने पर सासादनसम्यक्त्व को प्राप्त होकर मति और श्रुत अज्ञान को आदि करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ पुनः कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन काल तक भ्रमण करके पुनः अंतिम भव में मति एवं श्रुत ज्ञान को उत्पन्न कर अन्तर्मुहूर्त काल से अबंधक अवस्था को प्राप्त हुआ, उसके कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कुमति-कुश्रुतज्ञान के काल का प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब विभंगज्ञानी जीवों की स्थिति का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं।

सूत्रार्थ—

जीव विभंगज्ञानी कितने काल तक रहते हैं ?।।१३८।।

जघन्य से एक समय तक जीव विभंगज्ञानी रहते हैं।।१३९।।

उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि।।१४०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**जघन्येन—देवो नारको वा उपशमसम्यग्दृष्टिः उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयावशेषे सासादनं गत्वा विभंगज्ञानेन सह एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मृतस्तस्य एकसमयो लभ्यते। उत्कर्षेण—कश्चित् तिर्यङ् मनुष्यो वा त्रयस्त्रिंशत्सागरायुःस्थितिकेषु सप्तमपृथिव्याः नारकेषु उत्पद्य षट्पर्याप्तीः समाप्य विभंगज्ञानी भूत्वा अंतर्मुहूर्तोनत्रयस्त्रिंशत्सागरायुःस्थितिपर्यंतं स्थित्वा निर्गतस्तस्य तदुत्कृष्टकालः उपलभ्यते ।**

एवं द्वितीयस्थले विभंगज्ञानिनां कालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इदानीं त्रिविधज्ञानिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी केवचिरं कालादो होदि ?।।१४१।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४२।।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१४३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**जघन्यकालापेक्षया देवस्य नारकस्य वा मतिश्रुत-विभंगनामाज्ञानैः स्थितस्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा उत्पादितस्य मतिश्रुतावधिज्ञानस्य तत्र जघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं गतस्य तद्दर्शनात्। उत्कर्षेण—देवस्य नारकस्य वा प्रतिपन्नोपशमसम्यक्त्वेन सह समुत्पन्नमतिश्रुतावधिज्ञानस्य वेदकसम्यक्त्वं**

उत्कृष्ट से कुछ कम तेतीस सागरोपम काल तक जीव विभंगज्ञानी रहते हैं।।१४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य से—देव अथवा नारकी उपशमसम्यग्दृष्टि के उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय शेष रहने पर सासादनसम्यक्त्व को प्राप्त होकर और विभंगज्ञान के साथ एक समय रहकर द्वितीय समय में मृत्यु को प्राप्त होने पर उसके एक समय पाया जाता है। उत्कृष्ट से—कोई तिर्यंच अथवा मनुष्य तेंतीस सागरप्रमाण आयु वाले सप्तम पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न होकर, वहाँ छहों पर्याप्तियों को पूर्णकर विभंगज्ञानी होकर अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपमप्रमाण आयु स्थिति तक रहकर वहाँ से निकले हुए तिर्यंच अथवा मनुष्य के वह सूत्रोक्त उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में विभंगज्ञानियों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के ज्ञानियों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीव कितने काल तक रहते हैं।।१४१।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी रहते हैं।।१४२।।

उत्कृष्ट से कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपम काल तक जीव आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं अवधिज्ञानी रहते हैं।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य काल की अपेक्षा मति-श्रुत और विभंग नामक अज्ञानों के साथ स्थित देव अथवा नारकी के सम्यक्त्व को ग्रहण कर और मति, श्रुत एवं अवधिज्ञान को उत्पन्न करके उनमें जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त होने पर उक्त अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है।

उत्कृष्ट से—देव अथवा नारकी के प्राप्त हुए उपशमसम्यक्त्व के साथ मति, श्रुत और अवधि ज्ञान

प्रतिपद्य अविनष्टत्रिज्ञानैः सह अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा एतेनान्तर्मुहूर्तेनोनपूर्वकोट्यायुष्कमनुष्येषु उत्पद्य पुनः विंशतिसागरोपमिकेषु देवेषूत्पद्य पुनः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषूत्पद्य द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकेषु देवेषूत्पद्य पुनः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषूत्पद्य क्षायिकसम्यक्त्वं प्रारभ्य चतुर्विंशतिसागरोपमायुष्केषु देवेषु जन्म प्राप्य पुनरपि पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नो भूत्वा स्तोकावशेषे जीविते केवलज्ञानी भूत्वा अबंधकत्वं गतस्य चतुर्भिः पूर्वकोटिभिः सातिरेकषट्षष्टिसागरोपमाणामुपलंभात्।

कश्चिदाह—**वेदकसम्यक्त्वे षट्षष्टिसागरोपमाणि भ्रामयित्वा क्षायिकं प्रस्थाप्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुः-स्थितिकेषु देवेषूत्पाद्य अबंधकः किन्न कृतः ?**

आचार्यः प्राह—**नैतत् वक्तव्यं, सम्यक्त्वेन सह यदि संसारे सुष्ठु बहुकं कालं परिभ्रमति तर्हि चतुःपूर्वकोटिभिः सातिरेकषट्षष्टिसागरोपमाणि चैव परिभ्रमितः इति व्याख्यानान्तरदर्शनार्थमुपदेशात्।**

अंतर्मुहूर्ताधिकषट्षष्टिसागरोपमाणि किन्नोक्तानि ?

न, केवलवेदकसम्यक्त्वेन षट्षष्टिसागरोपमाणि संपूर्णानि परिभ्रम्य क्षायिकभावं गतस्य तदुपलंभात्।

एवं तृतीयस्थले त्रिविधज्ञानिनां कालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम् ।

मनःपर्ययकेवलिनां कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ?।।१४४।।

को उत्पन्न करके, वेदक सम्यक्त्व को प्राप्तकर अविनष्ट तीनों ज्ञानों के साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर इस अन्तर्मुहूर्त से हीन पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ पुनः बीस सागरोप्रमाण आयु वाले देवों में उत्पन्न होकर पुनः पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर पुनः बाईस सागरोपम आयु वाले देवों में उत्पन्न होकर पुनः पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर, क्षायिकसम्यक्त्व का प्रारंभ करके, चौबीस सागरोपम आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न होकर पुनः पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर, जीवन के थोड़ा शेष रहने पर केवलज्ञानी होकर अबंधक अवस्था को प्राप्त होने पर चार पूर्वकोटि अधिक छ्यासठ सागरोपम पाये जाते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—वेदक सम्यक्त्व के साथ छ्यासठ सागरोपमप्रमाण काल तक घुमाकर और फिर क्षायिकसम्यक्त्व को प्रारंभ कर तेतीस सागरोपमप्रमाण आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न कराकर अबंधक क्यों नहीं किया ?

तब आचार्य समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्व के साथ यदि जीव संसार में बहुत काल तक भ्रमण करे तो चार पूर्वकोटियों से कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपमप्रमाण काल तक ही भ्रमण करता है, ऐसा अन्य व्याख्यान दिखलाने के लिए वैसा उपदेश किया है।

शंका—अन्तर्मुहूर्त से अधिक छ्यासठ सागरोपम क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि केवल वेदकसम्यक्त्व के साथ सम्पूर्ण छ्यासठ सागरोपम काल तक भ्रमण करके क्षायिकभाव को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्त से अधिक छ्यासठ सागरोपम पाये जाते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में तीन प्रकार के ज्ञानियों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनःपर्ययज्ञानी एवं केवलज्ञानियों का काल निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

मनः पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१४४।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४५।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।१४६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**केनचिद् मुनिना परिणामप्रत्ययेन उत्पादितं मनःपर्ययज्ञानं, तेन सह सर्वजघन्यं कालं स्थित्वा असंयमं अबंधकभावं वा गतः तस्य एतत्काल उपलब्धः। एवमेव केनचित् संयतेन परिणामनिमित्तेन केवलज्ञानमुत्पादितं तत्र सर्व जघन्यकालं स्थित्वा अबंधकभावं गतः तस्यापि एतत्कालं जघन्यं कथ्यते।**

उत्कर्षेण—किञ्चिन्न्यूनं पूर्वकोटिप्रमाणं।

कुतः ?

गर्भादारभ्याष्टवर्षैः संयमं प्रतिपद्य आभिनिबोधिक-श्रुतज्ञाने संप्राप्य अंतर्मुहूर्तेन मनःपर्ययज्ञानं उत्पाद्य पूर्वकोटिकालं विहृत्य देवेषूत्पन्नः तस्य देशोनं पूर्वकोटिकालं लभ्यते।

एवमेव कश्चित् जीवः देवेभ्यः नारकेभ्यो वागत्य पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु क्षायिकसम्यक्त्वेन सह उत्पद्य गर्भाद्यष्टवर्षैः संयमं प्रतिपद्यान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा केवलज्ञानं उत्पाद्य देशोनपूर्वकोटिकालं विहृत्य अबंधकत्वं गतः तस्योत्कृष्टं कालं दृश्यते।

तात्पर्यमेतत्—मिथ्यात्वं त्यक्त्वा सम्यक्त्वमाहात्म्येन सम्यक्चारित्रं परिपाल्य घोरं तपश्चरणं कृत्वा केवलज्ञानमुत्पादनीयं, एतदेव मनुष्यपर्यायस्य सारं, षट्खंडागमग्रंथस्वाध्यायस्य सारं चेति निश्चित्य प्रत्यहं केवलज्ञानस्य प्राप्त्यर्थमेव भावना भावयितव्या अस्माभिरिति।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं।।१४५।।

उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक जीव मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी रहते हैं।।१४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—किन्हीं दिगम्बर मुनिराज के परिणामों के निमित्त से उत्पन्न हुए मनःपर्यय ज्ञानके साथ सर्वजघन्य काल वहाँ स्थित रहकर वे जब असंयम अथवा अबंधक भाव को प्राप्त होते हैं तब उनके यह जघन्य काल पाया जाता है। इसी प्रकार जब कोई संयत मुनिराज परिणामों के निमित्तसे केवलज्ञान को उत्पन्न कर लेते हैं और वहाँ सर्वजघन्य काल तक स्थित रहकर अबंधक भाव को प्राप्त हो जाते हैं उनके भी काल यह जघन्य कहा जाता है।

उत्कृष्ट से—यह किञ्चित् कम पूर्वकोटि प्रमाण काल होता है।

कैसे ?

क्योंकि गर्भ से लेकर आठ वर्ष के बाद संयम को प्राप्तकर आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान को उत्पन्न कर अन्तर्मुहूर्त से मनःपर्ययज्ञान को उत्पन्न कर और पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके देवों में उत्पन्न हुए जीव के कुछ कम पूर्वकोटि काल पाया जाता है।

इसी प्रकार कोई जीव देवों या नारकियों में से आकर, पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में क्षायिक सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न होकर गर्भ से लेकर आठ वर्षों में संयम को प्राप्तकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर, केवलज्ञान उत्पन्नकर और कुछ कम पूर्वकोटि तक विहार करके अबंधक अवस्था को प्राप्त हुआ तो उस जीव के कुछ कम पूर्वकोटि काल देखा जाता है।

तात्पर्य यह है कि—मिथ्यात्व का त्याग करके सम्यक्त्व के माहात्म्य से सम्यक् चारित्र का परिपालनकरके घोर तपश्चरण के द्वारा केवलज्ञान को उत्पन्न करना चाहिए यही मनुष्य पर्याय का सार हैऔर यही षट्खण्डागम के स्वाध्याय का सार है ऐसा निश्चित करके हम सभी को प्रतिक्षण केवलज्ञान की प्राप्ति करने हेतु ही भावना भानी चाहिए।

एवं चतुर्थस्थले मनःपर्ययकेवलज्ञानिनोः कालप्रतिपादनपरत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ पंचभिःस्थलैः द्वाविंशतिसूत्रैः संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्येन संयतस्य परिहारविशुद्धिसंयतस्य संयतासंयतस्य च स्थितिनिरूपणत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयतयोः कालप्ररूपणत्वेन ''सामाइय'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं तृतीयस्थले सूक्ष्मसांपरायिकसंयमिनः कालकथनमुख्यत्वेन ''सुहुमसांपराइय'' इत्यादिना पंच सूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले यथाख्यातशुद्धिसंयतानां कालप्रतिपादनत्वेन ''जहाक्खाद'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तदनंतरं पंचमस्थले असंयतानां कालकथनत्वेन ''असंजदा'' इत्यादिसूत्रषट्कं इति समुदायपातनिका।

इदानीं सामान्येन संयमिनां परिहारशुद्धिसंयतानां संयतासंयतानां च कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१४७।।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में मनःपर्यय और केवलज्ञानियों का काल प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रक बंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में ज्ञानमार्गणा नामका सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में बाईस सूत्रों के द्वारा संयम मार्गणा नाम का आठवाँ अधिकारप्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से संयत मुनि के और परिहारविशुद्धि संयत तथा संयतासंयत की स्थिति का निरूपण करने हेतु ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में सामायिक और छेदोपस्थापना संयमधारी मुनियों का काल प्ररूपण करने वाले ''सामाइय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में सूक्ष्मसांपराय संयमियों का काल कथन करने वाले ''सुहुमसांपराइय'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में यथाख्यातशुद्धि संयतों का काल प्रतिपादन करने वाले ''जहाक्खाद'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तदनंतर पंचम स्थल में असंयतों का काल कथन करने हेतु ''असंजदा'' इत्यादि छह सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सामान्यरूप से संयमियों का, परिहारविशुद्धि संयतों का और संयतासंयत जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणा के अनुसार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत मनुष्य कितने काल तक रहते हैं ?।।१४७।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१४८।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।१४९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिद् मनुष्यः संयमं परिहारशुद्धिसंयमं संयमासंयमं वा गृहीत्वा जघन्यकालमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वान्यगुणस्थानं गतः, तस्य जघन्यकालमुपलभ्यते। उत्कर्षेण—कश्चिन्मनुष्यः गर्भाद्यष्ट-वर्षेषु सत्सु संयमं प्रतिपद्य देशोनपूर्वकोटिं संयममनुपाल्य कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नः तस्य देशोनपूर्वकोटिमात्रसंयम-कालः उपलभ्यते।**

कश्चिन्मानवः सर्वसुखी भूत्वा त्रिंशद्वर्षाणि गमयित्वा संयमं प्रतिपद्य ततो वर्षपृथक्त्वेन तीर्थकरपादमूले प्रत्याख्याननामधेयं पूर्वं पठित्वा पुनः परिहारविशुद्धिसंयमं संप्राप्य देशोनपूर्वकोटिकालं स्थित्वा देवेषूत्पन्नः। अस्य मुनेः अष्टत्रिंशद्वर्षैः ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणं परिहारशुद्धिसंयमस्य काल उक्तः। केऽपि आचार्याः षोडशवर्षैरूनं, केऽपि द्वाविंशतिवर्षैरूनं पूर्वकोटिकालमिति भणन्ति।

संयतासंयतस्य तिरश्चां अंतर्मुहूर्तपृथक्त्वेन ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणमिति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयमिनां परिहारशुद्धिसंयतानां संयतासंयतानां चापि स्थितिनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति सामायिक-च्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतयोः कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१५०।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव संयत रहते हैं।।१४८।।

उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्वकोटि काल तक जीव संयत अवस्था में रहते हैं।।१४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई मनुष्य संयम को या परिहारविशुद्धिसंयम को अथवा संयमासंयम को ग्रहण करके वहाँ जघन्यरूप से अन्तर्मुहूर्त काल तक स्थित रहकर अन्य गुणस्थान को प्राप्त हुआ, इस प्रकार उनका जघन्य काल पाया जाता है। उत्कृष्टरूप से—कोई मनुष्य गर्भ से लेकर आठ वर्षों में संयम को प्राप्त करके कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक संयम का अनुपालन कर वहाँ से मरकर देवों में उत्पन्न हुए मनुष्य के कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमकाल पाया जाता है।

कोई मनुष्य सर्वसुखी होकर वहाँ तीस वर्ष व्यतीत करके संयम को प्राप्त करके वहाँ वर्षपृथक्त्व से तीर्थंकर के पादमूल में प्रत्याख्यान नामक पूर्व को पढ़कर पुनः परिहारविशुद्धिसंयम को प्राप्त करके वहाँ कुछ कम पूर्वकोटि काल तक रहकर पुनः देवों में जन्म धारण कर लिया। उन मुनि के अड़तीस वर्षों से कम पूर्वकोटिप्रमाण परिहारविशुद्धिसंयम का काल कहा गया है। कोई आचार्य सोलह वर्षों से और कोई बाईस वर्षों से कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण उसका काल कहते हैं।

संयतासंयत गुणस्थानवर्ती तिर्यंचों का अन्तर्मुहूर्त पृथक्त्व से कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण काल जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य संयमियों का, परिहारविशुद्धिसंयतों का एवं संयतासंयत जीवों की स्थिति का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों का काल निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयत कितने काल तक रहते हैं ?।।१५०।।

जहण्णेण एगसमओ।।१५१।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।१५२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चित् महामुनिः उपशमश्रेणीतोऽवतीर्यमाणः सूक्ष्मसांपरायिकसंयमात् सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमं प्रतिपद्य तत्र एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मृतस्तस्यैकसमय उपलभ्यते जघन्येन।**

उत्कर्षेण—पूर्वकोट्यायुष्कमनुष्यस्य गर्भाद्यष्टवर्षेषु सामायिकं-च्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमं चावाप्य अष्टवर्षोनपूर्वकोटिकालं विहृत्य देवेषूत्पन्नस्य तदुपलंभात्।

एवं द्वितीयस्थले सामायिकच्छेदोपस्थानासंयमकालप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना सूक्ष्मसांपरायिकमहासाधूनां कालप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१५३।।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।१५४।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१५५।।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१५६।।

जघन्य से एक समय तक जीव सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयत रहते हैं।।१५१।।

उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष काल तक रहते हैं।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई उपशमश्रेणी से उतरने वाले महामुनि के सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि संयम से सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम को प्राप्तकर और उसमें एक समय तक रहकर द्वितीय समय में मरने पर एक समय काल पाया जाता है।

उत्कृष्टरूप से—पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण आयु वाले मनुष्यों के गर्भ से लेकर आठ वर्षों में सामायिक-छेदोपस्थानिशुद्धिसंयम को प्राप्त कर और आठ वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष तक विहार करके देवों में उत्पन्न होने पर वह सूत्रोक्त उत्कृष्टकाल पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सामायिक और छेदोपस्थापना संयम का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्मसाम्परायिक महासाधुओं का काल प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ?।।१५३।।

उपशम की अपेक्षा जघन्य से एक समय तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं।।१५४।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं।।१५५।।

क्षपक की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि संयत रहते हैं।।१५६।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१५७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चित् महामुनिः उपशमश्रेण्यामारोहन् अनिवृत्तिकरण उपशमकः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतो जातः, एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मृत्वा देवो जातः। अथवा कश्चिदुपशांतकषायो महासाधुः ततोऽवतीर्य दशमगुणस्थाने आगत्य एकसमयानन्तरं मृतः। अनयोरेव मुन्योः एकसमयो लभ्यते जघन्यकालापेक्षया। उत्कर्षेण सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थाने अंतर्मुहूर्तादधिककालमवस्थानाभावात्।**

क्षपकश्रेण्यामारोहकस्य सूक्ष्मसांपरायिकक्षपकस्य महासाधोः मरणाभावात् जघन्येनोत्कर्षेण वा अंतर्मुहूर्तमेव कालो भवति।

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मसांपरायनामदशमगुणस्थानवर्तिनां उपशामकानां क्षपकाणां च स्थितिकथनमुख्यत्वेन पंच सूत्राणि गतानि।

संप्रति यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां कालकथनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१५८।।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।।१५९।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१६०।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत रहते हैं।।१५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई उपशम श्रेणी पर आरोहण करते हुए महामुनि अनिवृत्तिकरण, उपशमक, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि संयत हुए, वहाँ एक समय तक रहकर द्वितीय समय में मरकर देवगति में उत्पन्न हो गए। अथवा कोई उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती महासाधु वहाँ से उतरकर दशवें गुणस्थान में आकर वहाँ एक समय के बाद ही मरण को प्राप्त हो गये। काल की अपेक्षा इन दोनों ही मुनियों का जघन्य से एक समय काल होता है। उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल है, क्योंकि इससे अधिक काल के रहने का अभाव पाया जाता है।

क्षपक श्रेणी में आरोहण करने वाले सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती महासाधु के मरण का अभाव होता है, उनका जघन्य अथवा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही होता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक मुनियों की स्थिति का कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों के काल का प्ररूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत कितने काल तक रहते हैं ?।।१५८।।

उपशम की अपेक्षा जघन्य से एक समय तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धि संयत रहते हैं।।१५९।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं।।१६०।।

खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१६१।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।१६२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**उपशमश्रेण्यपेक्षया कश्चित् साधुः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धसंयतगुणस्थानवर्ती उपशान्तकषायत्वं संप्राप्य एकसमयमात्रकालं तत्र स्थित्वा द्वितीयसमये मृतस्तस्यैकसमयो लभ्यते। उपशांत-कषायस्यान्तर्मुहूर्तादधिककालाभावात् उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तमुच्यते।**

क्षपकश्रेण्यपेक्षया कश्चित् यतिः क्षपकश्रेणिमारुह्य क्षीणकषायगुणस्थाने यथाख्यातसंयमं प्रतिपद्य सयोगकेवली भूत्वान्तर्मुहूर्तेणाबंधकत्वं गतस्तस्य जघन्येन एतत्काल उपलभ्यते। उत्कर्षेण—गर्भाद्यष्टवर्षाणि गमयित्वा संयमं गृहीत्वा सर्वलघुकालेन मोहनीयकर्म क्षपयित्वा यथाख्यातसंयमी भूत्वा देशोनपूर्वकोटिं विहृत्याबंधकत्वं गतस्य तदुपलंभात्।

एतद् यथाख्यातसंयमप्राप्त्यर्थमेव भवद्भिः पुरुषार्थो विधेयः।

उक्तं च श्रीपद्मनन्दिसूरिणा—

मानुष्यं किल दुर्लभं भवभृतस्तत्रापि जात्यादयः।
तेष्वेवाप्तवचः श्रुतिः स्थितिरतस्तस्याश्च दृग्बोधने।।

क्षपक की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं।।१६१।।

उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष तक जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत रहते हैं।।१६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशमश्रेणी की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थानवर्ती कोई मुनिराज उपशान्तकषायपने को प्राप्त करके वहाँ एक समय मात्र काल तक रह करके द्वितीय समय में मरण को प्राप्त हो गये, उनके एक समय का काल प्राप्त होता है। उत्कृष्ट काल उनका अन्तर्मुहूर्त होता है। क्योंकि उपशांतकषाय का अन्तर्मुहूर्त से अधिक काल नहीं होता है।

क्षपक श्रेणी की अपेक्षा कोई महामुनिराज क्षपक श्रेणी पर चढ़कर क्षीणकषाय गुणस्थान में यथाख्यात-संयम को प्राप्त करके सयोगिकेवली बनकर अन्तर्मुहूर्त से अबन्धकपने को प्राप्त हुए मुनिराज के जघन्य से यह अन्तर्मुहूर्त का काल पाया जाता है। उत्कृष्ट से—गर्भ से आठ वर्षों को व्यतीत करके संयम को प्राप्त करके सर्वलघुकाल से मोहनीय कर्म का क्षपण करके यथाख्यात संयमी बनकर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण वर्ष तक पृथ्वीतल पर विहार करके अबंधक अवस्था को प्राप्त हुए मुनिराज के यह उत्कृष्टकाल—कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण काल पाया जाता है।

इस यथाख्यातसंयम की प्राप्ति हेतु हम सभी को पुरुषार्थ करना चाहिए।

श्री पद्मनंदि आचार्य ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—प्रथम तो इस संसाररूपी गहनवन में भ्रमण करते हुए प्राणियों को मनुष्य होना ही अत्यन्त कठिन है किन्तु किसी कारण से मनुष्य जन्म प्राप्त भी हो जावे, तो उत्तमजाति आदि मिलना अति दुःसाध्य है। यदि किसी प्रबलदैवयोग से उत्तमजाति भी मिल जावे तो अर्हंत भगवान के वचनों को सुनना बड़ा दुर्लभ है। यदि उनके सुनने का भी सौभाग्य प्राप्त हो जावे, तो संसार में अधिक जीवन नहीं मिलता है। यदि

प्राप्ते ते अपि निर्मले अपि परं स्यातां न येनोज्झिते।
स्वर्मोक्षैकफलप्रदे स च कथं न श्लाघ्यते संयमः[1]।।९७।।

अतो प्रत्यहं एषा भावना भावयितव्या—

शार्दूलविक्रीडितः— **ग्रीष्मे भूधरमस्तकाश्रितशिलां मूलं तरोः प्रावृषि।**
प्रोद्भूते शिशिरे चतुष्पथपदं प्राप्ताः स्थितिं कुर्वते।
ये तेषां यमिनां यथोक्ततपसां ध्यानप्रशान्तात्मनां ।
मार्गे संचरतो मम प्रशमिनः कालः कदा यास्यति[2]।।६।।

अनया भावनयैव शीघ्रं यथाख्यातचारित्रस्य पूर्णत्वं भविष्यति।

एवं चतुर्थस्थले यथाख्यातसंयमकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रपंचकं गतम् ।

संप्रति असंयतानां कालकथनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

असंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।१६३।।

अणादिओ अपज्जवसिदो।।१६४।।

अणादिओ सपज्जवसिदो।।१६५।।

सादिओ सपज्जवसिदो ।।१६६।।

अधिक जीवन भी मिले तो सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होनी अति कठिन है। यदि किसी पुण्य के उदय से अखण्ड तथा निर्मल सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति भी हो जावे, तो उस संयम धर्म के बिना वे स्वर्ग या मोक्षरूपी फल के देने वाले नहीं हो सकते, इसलिए सबकी अपेक्षा संयम अति प्रशंसनीय है अतः ऐसे संयम की अवश्य संयमियों को रक्षा करना चाहिए।

इसलिए प्रतिदिन ऐसी भावना भानी चाहिए—

श्लोकार्थ—जो योगीश्वर ग्रीष्मऋतु में पहाड़ों के अग्रभाग में स्थित शिला के ऊपर ध्यानाभ्यास में लीन होकर रहते हैं तथा वर्षाकाल में वृक्षों के मूल में बैठकर ध्यान करते हैं और शरदऋतु में चौड़े मैदान में बैठकर ध्यान लगाते हैं, उन शास्त्र के अनुसार तप के धारी तथा ध्यान से जिनकी आत्मा शांत हो गई है ऐसे योगीश्वरों के मार्ग में गमन करने के लिए मुझे भी कब वह समय मिलेगा ? अर्थात् मुझे वह समय शीघ्र ही प्राप्त हो, ऐसी भावना भाते रहना चाहिए।

इस भावना से ही शीघ्र यथाख्यातचारित्र की पूर्णता होगी।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में यथाख्यातसंयम के कालकथन की मुख्यता वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयत जीवों का काल बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव असंयत अवस्था में कितने काल तक रहते हैं ?।।१६३।।

अनादि-अनन्त काल तक जीव असंयत अवस्था में रहते हैं।।१६४।।

अनादि-सान्त काल तक जीव असंयत अवस्था में रहते हैं।।१६५।।

सादि-सान्त काल तक जीव असंयत अवस्था में रहते हैं।।१६६।।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका अधिकार-१, श्लोक-९७, पृ. ४२। २. पद्मनंदिपंचविंशतिका-यतिभावनाधिकार, श्लोक-६ पृ. १६१।

जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१६७।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।१६८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका- **—सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सादिसान्तकालः भव्यजीवस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं। कश्चित् संयतः परिणामप्रत्ययेनासंयमं गत्वा तत्र सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा संयमं गतस्तस्य एतत्कालः।**

अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये संयमं संप्राप्य उपशमसम्यक्त्वकाले षडावलिकावशेषेऽसंयमं गत्वा किञ्चिन्नूनं अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनं परिवर्त्य पुनः त्रीणि करणानि कृत्वा संयमं प्रतिपन्नस्य तदुत्कृष्टकालो लभ्यते।

तात्पर्यमेतत्—**संयमं प्रतिपद्याप्रमादी भूत्वा तस्य रक्षणं कर्तव्यं। पुनः कदाचिदपि असंयमो मा भवेदिति भावनीयं प्रतिक्षणम् ।**

एवं पंचमस्थले असंयतानां कालनिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम् ।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

जो वह सादि-सान्त असंयम है, उसका इस प्रकार निर्देश है—जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव असंयत रहते हैं।।१६७।।

उत्कृष्ट से कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक जीव असंयत रहते हैं।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। सादि-सान्त काल भव्यजीव के जघन्य से अन्तर्मुहूर्त होता है। किसी संयत जीव के परिणामों के निमित्त से असंयम को प्राप्त होकर और वहाँ सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर पुनः संयम को प्राप्त करने पर उक्त जघन्य काल पाया जाता है।

अर्धपुद्गलपरिवर्तन के प्रथम समय में संयम को ग्रहणकर उपशम सम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ शेष रहने पर असंयम को प्राप्त होकर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तनकाल तक भ्रमण कर पुनः तीन करणों को करके संयम को प्राप्त हुए जीव के वह सूत्रोक्त उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि—संयम को प्राप्त करके हमें अप्रमादी बनकर उसकी रक्षा करना चाहिए। पुनः कभी भी असंयम भाव न प्राप्त होने पावे, ऐसी भावना प्रतिक्षण भानी चाहिए।

इस प्रकार पंचम स्थल में असंयत जीवों का कालनिरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कहे गये कालानुगम प्रकरण में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिरन्तराधिकारैः अष्टसूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनां कालनिरूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं । ततः परं द्वितीयस्थले अचक्षुर्दर्शनिनां स्थितिप्रतिपादनत्वेन ''अचक्खु-'' इत्यादिना त्रीणिसूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले अवधिकेवलिदर्शनिनोः कालप्रतिपादनमुख्यत्वेन ''ओधि-'' इत्यादिसूत्रद्वयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति चक्षुर्दर्शनिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ?।।१६९।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१७०।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि।।१७१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **जघन्येन कश्चित् जीवः अचक्षुर्दर्शनेन स्थितः सन् चक्षुर्दर्शनं गत्वा जघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनोऽचक्षुर्दर्शनं गतः। उत्कर्षेण — कश्चिद् एकेन्द्रियो द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियो वा चतुरिन्द्रियादिजीवेषु उत्पद्य द्विसागरोपमसहस्त्राणि परिभ्रम्याचक्षुर्दर्शनिजीवेषूत्पन्नः तस्येदं उत्कृष्टं कालं लभ्यते।**

चक्षुर्दर्शनक्षयोपशमस्य एषः कालः निर्दिष्टः। उपयोगं प्रतीत्य पुनः जघन्योत्कृष्टाभ्यां चान्तर्मुहूर्तमात्र एव।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन अन्तराधिकारों में आठ सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी जीवों का काल निरूपण करने हेतु ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी जीवों की स्थिति का प्रतिपादन करने वाले 'अचक्खू'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में अवधिदर्शनी एवं केवलदर्शनी जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले ''ओधि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब प्रथमतः चक्षुदर्शनी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणानुसार जीव चक्षुदर्शनी कितने काल तक रहते हैं ?।।१६९।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव चक्षुदर्शनी रहते हैं।।१७०।।

उत्कृष्ट से दो हजार सागरोपम काल तक जीव चक्षुदर्शनी रहते हैं।।१७१।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जघन्य से किसी अचक्षुदर्शन सहित स्थित हुए जीव के चक्षुदर्शन को ग्रहण कर जघन्य अन्तर्मुहूर्त रहकर वहाँ पुनः अचक्षुदर्शनी हो गया, वहाँ चक्षुदर्शन का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। उत्कृष्ट से — कोई एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रियादि जीवों में उत्पन्न होकर दो हजार सागरोपम काल तक परिभ्रमण करके अचक्षुदर्शनी जीवों में उत्पन्न हुआ, उसके दो हजार सागरोपम का यह उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

चक्षुदर्शन के क्षयोपशम का यह काल कहा गया है। उपयोग की अपेक्षा तो चक्षुदर्शन का जघन्य व उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है।

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनवतां स्थितिनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम् ।

इदानीं अचक्षुर्दर्शनवतां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अचक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ?।।१७२।।

अणादिओ अपज्जवसिदो।।१७३।।

अणादिओ सपज्जवसिदो।।१७४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अभव्यजीवान् अभव्यसमभव्यजीवान् वा प्रतीत्याचक्षुर्दर्शनिनः अनाद्यनन्ताः, अचक्षुर्दर्शनक्षयोपशमरहितछद्मस्थानामनुपलंभात्। अनादिसान्ताः निश्चयेन सिद्धयमानभव्यजीवान् प्रतीत्य एष निर्देशः कृतः। अचक्षुर्दर्शनस्य सादित्वं नास्ति, केवलदर्शनात् अचक्षुर्दर्शनमागच्छतामभावात्।**

एवं द्वितीयस्थले अचक्षुर्दर्शनवतां कालकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना अवधिदर्शन-केवलदर्शनवतां कालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

ओधिदंसणी ओधिणाणीभंगो।।१७५।।

केवलदंसणी केवलणाणीभंगो।।१७६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अवधिदर्शनवतां एकजीवापेक्षया जघन्येन अंतर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण साधिकषट्षष्टि-सागरोपमकालो लभ्यते। केवलदर्शनिनां भगवतां जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिप्रमाणमिति ज्ञातव्यम्।**

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन वाले जीवों की स्थिति निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुदर्शनी जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव अचक्षुदर्शनी कितने काल तक रहते हैं ?।।१७२।।

जीव अनादि अनन्त काल तक अचक्षुदर्शनी रहते हैं।।१७३।।

जीव अनादि सान्त काल तक अचक्षुदर्शनी रहते हैं।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अभव्य जीव अथवा अभव्य के समान भव्य जीव (दूरानुदूर भव्य) की अपेक्षा अचक्षुदर्शनी अनादि-अनन्त होते हैं, क्योंकि अचक्षुदर्शन के क्षयोपशम से रहित छद्मस्थ जीवों का अभाव पाया जाता है। अनादि-सान्त निश्चय से सिद्ध होने वाले भव्य जीव की अपेक्षा यह निर्देश किया गया है। अचक्षुदर्शन के सादिपना नहीं होता है, क्योंकि केवलदर्शन से अचक्षुदर्शन में आने वाले जीवों का अभाव है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी जीवों का काल कथन करने की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अवधि दर्शन और केवलदर्शन वाले जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अवधिदर्शनी जीवों की कालप्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवों के समान होती है।।१७५।।

केवलदर्शनी भगवन्तों की कालप्ररूपणा केवलज्ञानी भगवन्तों के समान है।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अवधिदर्शन वाले जीवों का काल एक जीव की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट से कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपम काल होता है। केवलदर्शनी भगवन्तों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट से उनका काल कुछ कम पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण जानना चाहिए।

एवं तृतीयस्थले अवधिदर्शनकेवलदर्शनवतां कालकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यामन्तरस्थलाभ्यां षट्सूत्रैः लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिकाशुभलेश्यानाम् कालकथनमुख्यत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले त्रिकशुभ-लेश्यास्थितिकथनप्रकारेण ''तेउलेस्सिय-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि इति समुदायपातनिका।

इदानीं कृष्णादिलेश्यानां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?।।१७७।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१७८।।

इस प्रकार तृतीय स्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वाले जीवों का काल कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम नामक प्रकरण में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो अन्तरस्थलों में छह सूत्रों के द्वारा लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन अशुभ लेश्याओं के काल कथन की मुख्यता से ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं, उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तीन शुभ लेश्याओं की स्थिति का कथन करने वाले ''तेउलेस्सिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब यहाँ कृष्णादि लेश्याओं का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणानुसार जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या व कापोतलेश्या वाले कितने काल तक रहते हैं ?।।१७७।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल तक जीव कृष्णलेश्या, नीललेश्या व कापोतलेश्या वाले रहते हैं।।१७८।।

उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१७९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अनर्पितलेश्यायाः अविरुद्धायाः अर्पितलेश्यामागत्य सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा अविरुद्धलेश्यान्तरं गतस्तस्य जघन्यकालः कथितः। उत्कर्षेण तिर्यक्षु मनुष्येषु वा कृष्ण-नील-कापोतलेश्याभिः सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः त्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्तसागरोपमायुःस्थितिकेषु नारकेषु उत्पद्य कृष्णनील-कापोतलेश्याभिः सह स्वस्वात्मनः आयुःस्थितिं स्थित्वा तत्तो निर्गत्यान्तर्मुहूर्तकालं ताभिश्चैव लेश्याभिः गमयित्वा अविरुद्धलेश्यान्तरं गतस्य द्वाभ्यामन्तर्मुहूर्ताभ्यां समधिकत्रयस्त्रिंशत्-सप्तदश-सप्तसागरोपममात्र-त्रिकलेश्याकालोपलंभात्।**

एवं प्रथमस्थले कृष्णाद्यशुभलेश्याकालप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

अधुना तेजोलेश्यादिशुभलेश्यास्थितिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?।।१८०।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१८१।।

उक्कस्सेण बे-अट्ठारस-तेत्तीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१८२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**तेजो-पद्म-शुक्ललेश्याभिः सर्वोत्कृष्टमन्तर्मुहूर्तमात्रं स्थित्वा पुनः यथाक्रमेण**

उत्कृष्ट से कुछ अधिक तेतीस सागर, कुछ अधिक सत्तरह सागर व कुछ अधिक सात सागरोपम काल तक जीव कृष्ण नील व कापोत लेश्या वाले रहते हैं।।१७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अविवक्षित अविरुद्ध लेश्या से विवक्षित लेश्या में आकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्या में जाने वाले जीव के उक्त लेश्याओं का जघन्यकाल प्राप्त होता है। उत्कृष्ट से तिर्यंचों या मनुष्यों में कृष्ण, नील व कापोतलेश्या सहित सबसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल रहकर फिर तेतीस, सत्तरह व सात सागरोपम आयु स्थिति वाले नारकियों में उत्पन्न होकर कृष्ण, नील व कापोत लेश्याओं के साथ अपनी-अपनी आयु स्थिति प्रमाण काल तक रहकर वहाँ से निकलकर अन्तर्मुहूर्त काल उन्हीं लेश्याओं सहित व्यतीत किया, वहाँ अन्य अविरुद्ध लेश्या में गये हुए जीव के उक्त तीन लेश्याओं का दो अन्तर्मुहूर्त सहित क्रमशः तेतीस, सत्तरह व सात सागरोपमप्रमाण काल पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कृष्ण आदि अशुभ लेश्याओं का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तेजोलेश्या आदि शुभ लेश्याओं की स्थिति का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव पीतलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्या वाले कितने काल तक रहते हैं ?।।१८०।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव पीत, पद्म व शुक्ल लेश्या वाले रहते हैं।।१८१।।

उत्कृष्ट से कुछ अधिक दो सागर, कुछ अधिक अठारह सागर व कुछ अधिक तेतीस सागरोपम काल तक जीव क्रमशः पीत, पद्म व शुक्ल लेश्या वाले रहते हैं।।१८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— तेज (पीत), पद्म और शुक्ल लेश्याओं सहित सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तमात्र

सार्धद्वय-सार्धाष्टादश-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुः स्थितिकेषु देवेषूत्पद्यावस्थितलेश्याभिःस्वकस्वकायुः स्थिति-मनुपाल्य तत्तः च्युत्वान्तर्मुहूर्तकालं ताभिश्चैव लेश्याभिः स्थित्वा अविरुद्धलेश्यान्तरं गतस्य स्वकस्वकोत्कृष्टकाल उपलभ्यते ।

एवं द्वितीयस्थले शुभलेश्यास्थितिकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यत्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचभिः सूत्रैः भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः कथ्यते । तत्र तावत्प्रथमस्थले भव्यजीवानां कालकथनमुख्यत्वेन ''भवियाणुवादेण'' इत्यादि सूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले अभव्यानां स्थितिनिरूपणत्वेन ''अभविय-'' इत्यादि सूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

इदानीं भव्यमार्गणायां भव्यजीवकालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?।।१८३।।

काल तक रहकर पुनः यथाक्रम से ढाई हजार, साढ़े अठारह सागर व तेतीस सागरोपम आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ, वहाँ अवस्थित लेश्याओं सहित अपनी-अपनी आयुस्थिति को व्यतीत करके वहाँ से च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक उन्हीं लेश्याओं सहित रहकर अन्य अविरुद्ध लेश्या में गये हुए जीव के उक्त लेश्याओं का अपना-अपना उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में शुभ लेश्याओं का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम प्रकरण में गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी विरचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यत्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में भव्य जीवों के काल कथन की मुख्यता वाले ''भवियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों की स्थिति का निरूपण करने हेतु ''अभविय'' इत्यादि दो सूत्रों को कहेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भव्यमार्गणा में भव्य जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

भव्यमार्गणानुसार जीव भव्यसिद्धिक कितने काल तक रहते हैं ?।।१८३।।

अणादिओ सपज्जवसिदो।।१८४।।

सादिओ सपज्जवसिदो।।१८५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**भव्यजीवाः अनादयः सान्ताः, अनादिस्वरूपेणागतस्य भव्यभावस्यायोगिचरमसमये विनाशोपलंभात्।**

कश्चिदाह—**अभव्यसमानोऽपि भव्यजीवोऽस्ति इति अनादिः अनन्तो भव्यभावः किन्न प्ररूपितः ?**

आचार्यः समाधत्ते—**नैतद् वक्तव्यं, तत्र-भव्यत्वे अविनाशशक्तेरभावात्। यद्यप्यनादितोऽनन्तकालपर्यन्तं स्थितिसहिताः भव्यजीवाः संति, तर्ह्यपि तेषु शक्तिरूपेण संसारविनाशस्य संभावनाऽस्ति, न चाविनाशस्य।**

अत्र भव्यत्वशक्तेरेवाधिकारो न च व्यक्तेरिति कथं ज्ञायते ?

अनादिसान्तसूत्रस्यान्यथानुपपत्तेः। अनेनैव ज्ञायतेऽत्र भव्यत्वशक्तेरेवाधिकारो न च व्यक्तेरिति।

सादयः सान्ताश्च भव्यजीवाः संति।

कश्चिदाशंकते—**अभव्यो भव्यत्वं न गच्छति, भव्याभव्यभावयोरत्यन्ताभावप्रतिगृहीतयोरेकाधिकरणत्वविरोधात्। न सिद्धो भव्यो भवति, नष्टाशेषास्रवाणां पुनरुत्पत्तिविरोधात्। तस्मात् भव्यभावो न सादिरिति ?**

आचार्यः समादधाति—**नैष दोषः, पर्यायार्थिकनयापेक्षया कथंचित् भव्यजीवाः सादयः सान्ताः सिद्ध्यन्ति।**

जीव अनादि सान्त काल तक भव्यसिद्धिक रहते हैं।।१८४।।

जीव सादि सान्त काल तक भव्यसिद्धिक रहते हैं।।१८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— भव्य जीव अनादि-सान्त होते हैं, क्योंकि अनादिस्वरूप से आए हुए भव्यभाव का अयोगिकेवली के अन्तिम समय में विनाश पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—अभव्य के समान भी तो भव्य जीव होता है, इसलिए भव्यभाव को अनादि अनन्त क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

तब आचार्य समाधान देते हैं कि—ऐसा, नहीं कहना चाहिए, क्योंकि भव्य में अविनाश शक्ति का अभाव है। अर्थात् यद्यपि अनादि से अनन्त काल तक रहने वाले भव्य जीव हैं तो सही, पर उनमें शक्तिरूप से तो संसार विनाश की संभावना है, अविनाश की संभावना नहीं होती।

शंका— यहाँ भव्यत्वशक्ति का ही अधिकार है, उसकी व्यक्ति का अधिकार नहीं, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान— भव्यत्व को अनादि-सान्त कहने वाले सूत्र की अन्यथा उपपत्ति नहीं बन सकती, इसी से जाना जाता है कि यहाँ भव्यत्व शक्ति से अभिप्राय है न कि वह व्यक्तरूप है।

भव्यजीव सादि और सान्त होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—अभव्य जीव भव्यत्व को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि भव्य और अभव्य भाव एक-दूसरे के अत्यन्ताभाव को धारण करने वाले होते हैं, इसलिए उनका एक अधिकरण में रहना विरुद्ध है। सिद्ध भव्य नहीं होते हैं, क्योंकि जिन जीवों के समस्त कर्मास्रव नष्ट हो गये हैं उनके उन कर्मास्रवों की पुनः उत्पत्ति होने में विरोध आता है। अतः भव्यभाव सादि नहीं हो सकता ?

तब आचार्य समाधान करते हैं कि—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा भव्यजीव कथंचित् सादि-सान्त सिद्ध होते हैं।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण धवलाटीकायां—

''पज्जवट्ठियणयावलंबणादो अप्पडिवण्णे सम्मत्ते अणादि-अणंतो भवियभावो अंतादीदसंसारादो, पडिवण्णे सम्मत्ते अण्णो भवियभावो उप्पज्जइ पोग्गलपरियट्टस्स अद्धमेत्तसंसारावट्ठाणादो। एवं समऊण-दुसमऊणादिउवड्ढपोग्गलपरियट्टसंसाराणं जीवाणं पुध पुध भवियभावो वत्तव्वो। तदो सिद्धं भवियाणं सादि-सांतत्तमिदि[१]।।''

एवं प्रथमस्थले भव्यजीवानां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इदानीं अभव्यानां कालनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अभवियसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?।।१८६।।

अणादिओ अपज्जवसिदो।।१८७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अभव्यजीवाः अनाद्यनन्ताः संति। एकजीवापेक्षयापि तस्य कालोऽनादिः अनंत एव। अभव्यभावो नाम व्यञ्जनपर्यायः, तेनास्य विनाशेन भवितव्यमन्यथा द्रव्यत्वप्रसंगात् इति चेत् ?**

भवतु नाम व्यञ्जनपर्यायोऽयं, न च व्यञ्जनपर्यायस्य सर्वस्य विनाशेन भवितव्यमिति नियमोऽस्ति, एकान्तवादप्रसंगात्। न च न विनश्यति इति द्रव्यं भवति, उत्पादध्रौव्य-भंगसंगतस्य द्रव्यभावाभ्युपगमात्।

श्री वीरसेनाचार्य ने धवला टीका में कहा है—

''पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से जब तक सम्यक्त्व ग्रहण नहीं किया, तब तक जीव का भव्यभाव अनादि-अनन्तरूप है, क्योंकि उसका संसार अन्तरहित है। किन्तु सम्यक्त्व के ग्रहण कर लेने पर अन्य ही भव्यभाव उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाने पर फिर उसके केवल अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र काल तक संसार का अवस्थान रहता है। इसी प्रकार एक समय कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन संसार वाले, दो समय कम उपार्धपुद्गलपरिवर्तन संसार वाले आदि जीवों के पृथक्-पृथक् भव्यभाव का कथन करना चाहिए। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि भव्य जीव सादि-सान्त होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्यजीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अभव्य जीवों का काल निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव अभव्यसिद्धिक कितने काल तक रहते हैं ?।।१८६।।

जीव अनादि-अनन्त काल तक अभव्यसिद्धिक रहते हैं।।१८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अभव्य जीव अनादि-अनन्त हैं। एक जीव की अपेक्षा भी उनका काल अनादि-अनन्त ही है।

शंका— अभव्य भाव जीव की एक व्यंजनपर्याय है, इसलिए उसका विनाश होना चाहिए, नहीं तो अभव्यत्व के द्रव्यपने का प्रसंग आ जायेगा ?

समाधान— अभव्यभाव जीव की व्यंजनपर्याय भले ही हो, पर सभी व्यंजनपर्याय का नाश होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से एकान्तवाद का प्रसंग आता है। ऐसा भी नहीं है कि जो वस्तु विनष्ट नहीं होती वह द्रव्य होती है, क्योंकि जिसमें उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय पाये जाते हैं उसे

---

१. षट्खंडागम पु.-७, पृ.-१७७।

तात्पर्यमेतत्— **भव्यत्वं व्यञ्जनपर्यायोऽस्ति तथापि तस्यानन्तकालेनापि नाशो नास्ति। एवं द्रव्यं सर्वकालं कूटस्थं ध्रुवमेव एतदपि नास्ति। किंच द्रव्यस्य लक्षणं-''उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्''[१], पुनश्च ''सद्द्रव्यलक्षणं''[२]**

अतएव अभव्यजीवानां संसारस्य विनाशो नास्ति, तेषां संततं चतुर्गतिषु परिभ्रमणमेव, इति ज्ञात्वा 'वयं भव्याः' अस्माकं संसारोऽधुना स्वल्प एव, वयं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपत्रिरत्नेनैव त्रैलोक्यसाम्राज्यं गृहीतुं सक्षमा भविष्यामः, एवं निश्चित्य रत्नत्रयसाधनायां अप्रमादीभूय स्वशुद्धात्मतत्त्वं प्रतिक्षणं भावनीयं भवद्भिः इति ।

एवं द्वितीयस्थले अभव्यानां कालप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम् ।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ पंचभिरन्तरस्थलैः षोडशसूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते । ततस्तावत् प्रथमस्थले सामान्येन सम्यक्त्वमार्गणायां कालकथनप्रमुखेन ''सम्मत्ता'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यक्त्वस्थितिप्रतिपादनत्वेन 'खइय' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले

द्रव्यरूप से स्वीकार किया गया है।

तात्पर्य यह है कि— भव्यत्व भाव यद्यपि व्यञ्जनपर्याय है फिर भी उसका अनन्तकाल से भी विनाश नहीं होता है। इस प्रकार द्रव्य सर्वकाल कूटस्थ ध्रुव ही है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि द्रव्य का लक्षण— उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से युक्त सत् होता है और पुनः द्रव्य का लक्षण सत् है।

अतएव अभव्य जीवों के संसार का विनाश नहीं होता है, उनका चारों गतियों में सदैव परिभ्रमण होता रहता है ऐसा जानकर ''हम लोग भव्य हैं'' हमारा संसार अब अल्प ही है, हम सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप तीन रत्नों से ही तीनों लोकों का साम्राज्य प्राप्त करने में सक्षम होंगे, ऐसा निश्चित करके रत्नत्रय की साधना में प्रमादरहित होकर अपने शुद्धात्मतत्व की प्रतिक्षण भावना हम सभी को भानी चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का काल प्रतिपादन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यत्वमार्गणा नामका ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच अन्तर स्थलों में सोलह सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्व मार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से सम्यक्त्वमार्गणा में काल कथन की मुख्यता वाले ''सम्मत्ता'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय स्थल में क्षायिक सम्यक्त्व की स्थिति का प्रतिपादन करने हेतु

१-२. तत्वार्थसूत्र अ.-५, सूत्र संख्या ३०-२९।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां कालनिरूपणत्वेन ''वेदग'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च कालप्ररूपणत्वेन ''उवसम'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं पंचमस्थले सासादनानां मिथ्यादृष्टीनां च कालप्ररूपणत्वेन ''सासण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका।

इदानीं सम्यक्त्वमार्गणायां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।१८८।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१८९।।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१९०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**य कश्चिद् बहुशः सम्यक्त्वपर्यायेण परिणतः मिथ्यादृष्टी जीवः सम्यक्त्वं गत्वा जघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं गतः तस्यैष जघन्यकाल उपलभ्यते । कश्चित् जीवः त्रीण्यपि करणानि कृत्वा प्रथमसम्यक्त्वं गृहीत्वान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य तत्र तिसृभिः पूर्वकोटिभिः समधिक-द्विचत्वारिंशत्सागरोपमाणि गमयित्वा क्षायिकसम्यक्त्वं प्रतिष्ठाप्य चतुर्विंशति सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषूत्पद्य पुनः पूर्वकोटि-आयुःस्थितिकेषु मनुष्येषूत्पद्यावसानेऽबंधकत्वं गतस्तस्योत्कृष्टकालो लभ्यते सातिरेकं षट्षष्टिसागरप्रमाणमिति।**

एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टीनां कालप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

''खइय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों का काल निरूपण करने हेतु ''वेदग'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल प्ररूपण करने वाले ''उवसम'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् पंचम स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का काल प्ररूपण करने हेतु ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में काल का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणानुसार जीव सम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ?।।१८८।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सम्यग्दृष्टि रहते हैं।।१८९।।

उत्कृष्ट से कुछ अधिक छ्यासठ सागरोपम काल तक जीव सम्यग्दृष्टि रहते हैं।।१९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिसने अनेक बार सम्यक्त्व पर्याय प्राप्त कर ली है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व को प्राप्तकर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्व में जाने पर सम्यग्दर्शन का अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है।

किसी जीव ने तीनों ही करण करके प्रथम सम्यक्त्व ग्रहण किया और वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर वेदकसम्यक्त्व को धारण कर लिया। वहाँ तीन पूर्व कोटि अधिक ब्यालीस सागरोपमकाल व्यतीत करके क्षायिकसम्यक्त्व स्थापित किया और चौबीस सागरोपम आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात् पूर्वकोटि आयु स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर आयु के अन्त समय में अबंधक भाव प्राप्त कर लिया। ऐसे जीव के सम्यग्दर्शन का कुछ अधिक (चार पूर्वकोटि अधिक) छ्यासठ सागरोपमप्रमाण काल प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवों का कालनिरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां कालकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

खइयसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।१९१।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१९२।।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१९३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **वेदकसम्यग्दृष्टेर्जीवस्य दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य जघन्यकालेनाबंधकत्वं गतस्य तदुपलंभात्।**

उत्कर्षेण — चतुर्विंशतिप्रकृतिसत्ताकः सम्यग्दृष्टिर्देवो नारको वा पूर्वकोट्यायुष्कमुनष्येषु उत्पन्नः, गर्भाद्यष्ट-वर्षाणामन्तर्मुहूर्ताभ्यधिकानां उपरि क्षायिकं प्रतिष्ठाप्य देशोनपूर्वकोटिप्रमाणं स्थित्वा त्रयस्त्रिंशदायुःस्थितिदेवे-षूत्पद्य पुनः पूर्वकोट्याः स्थितिमुनष्येषूत्पद्यान्तर्मुहूर्तावशेषे संसारेऽबंधभावं गतः, तस्य द्वि-अंतर्मुहूर्ताधिकाष्ट-वर्षोणद्विपूर्वकोटिभिः साधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणामुपलभ्यते।

एवं द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां कालनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

वेदगसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।१९४।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१९५।।

अब क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का काल कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ?।।१९१।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि रहते हैं।।१९२।।

उत्कृष्ट से कुछ अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाणकाल तक जीव क्षायिकसम्यग्दृष्टि रहते हैं।।१९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — वेदकसम्यग्दृष्टि जीव के दर्शनमोहनीय का क्षपण करके क्षायिकसम्यक्त्व को उत्पन्न कर जघन्यकाल से अबंधक भाव को प्राप्त होने पर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से — जब चौबीस कर्मों की सत्ता वाला सम्यग्दृष्टि देव या नारकी पूर्वकोटि आयु वालेमनुष्यों में उत्पन्न होकर गर्भ से आठ वर्ष व अन्तर्मुहूर्त अधिक हो जाने पर क्षायिकसम्यक्त्व कोस्थापित करता है और कुछ कम पूर्वकोटि तक रहकर तेतीस सागरोपम की आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न होकर पुनः पूर्वकोटि आयु स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ, वहाँ अन्तर्मुहूर्तमात्र संसारकाल के अवशेष रहने पर अबंधक भाव को प्राप्त हो जातहै, तब उसके क्षायिकसम्यक्त्व का काल दो अन्तर्मुहूर्त से अधिक आठ वर्ष कम दो पूर्वकोटि सहिततेतीस सागरोपमप्रमाण पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों का काल निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

जीव वेदकसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ?।।१९४।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं।।१९५।।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि।।१९६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**दृष्टमोक्षमार्गः मिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वं गृहीत्वा जघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं गतस्तस्य एतद्जघन्यकालः उपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—उपशमसम्यक्त्वात् वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य शेषभुज्यमाना-युष्केनोनविंशतिसागरोपमा-युष्कस्थितिकेषु देवेषूत्पद्य ततो मनुष्येषु उत्पद्य पुनः मनुष्यायुष्केषु ऊनद्वाविंशति-सागरोपमायुष्केषु देवेषु उत्पद्य पुनो मनुष्यगतिं गत्वा भुज्यमानमनुष्यायुष्केन दर्शनमोहक्षपणपर्यंतभुक्ष्यमाण-मनुष्यायुष्केन च न्यूनचतुर्विंशति सागरोपमायुष्कस्थितिकेषु देवेषूत्पद्य मनुष्यगतिमागत्य तत्र वेदकसम्यक्त्व-कालोऽन्तर्मुहूर्तमात्रोऽस्ति इति दर्शनमोहक्षपणं प्रतिष्ठाप्य कृतकरणीयो भूत्वा कृतकरणीयचरमसमये स्थितस्य षट्षष्टिसागरोपममात्रकाल उपलभ्यते।

एवं तृतीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां कालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना उपशमसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

उवसमसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।१९७।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१९८।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।१९९।।

उत्कृष्ट से छ्यासठ सागरोपमकाल तक जीव वेदकसम्यग्दृष्टि रहते हैं।।१९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिसने मोक्षमार्ग देख लिया है, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव के, सम्यक्त्व ग्रहण करके जघन्य से वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्व में चले जाने पर वेदकसम्यक्त्व का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हो जाता है।

उत्कृष्ट से—कोई जीव उपशमसम्यक्त्व से वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त होकर शेष भुज्यमान आयु से कम बीस सागरोपम आयुस्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। फिर वहाँ से मनुष्यों में उत्पन्न होकर पुनः मनुष्यायु से कम बाईस सागरोपम आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। पुनः वहाँ से मनुष्यगति में जाकर भुज्यमान मनुष्यायु से तथा दर्शनमोह के क्षपण में जितना काल लगना संभव है, उतने काल प्रमाण आगे भोगी जाने वाली मनुष्यायु से कम चौबीस सागरोपम आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से पुनः मनुष्यगति में आकर वहाँ वेदकसम्यक्त्वकाल के अन्तर्मुहूर्त मात्र रहने पर दर्शनमोह के क्षपण को स्थापित कर कृतकरणीय—कृतकृत्यवेदक हो गया। ऐसे कृतकरणीय के अंतिम समय में स्थित जीव के वेदकसम्यक्त्व का छ्यासठ सागरोपमप्रमाण काल पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशमसम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि कितने काल तक रहते हैं ?।।१९७।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहते हैं।।१९८।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव उपशमसम्यग्दृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहते हैं।।१९९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिद् मिथ्यादृष्टिर्जीवः प्रथमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य षडावलिकाशेषे सासादनं गतस्तस्य तदुपलंभात्। एवमेव मिथ्यात्वात् वेदकसम्यक्त्वाद्वा सम्यग्मिथ्यात्वं गत्वा जघन्यकालं स्थित्वा गुणस्थानान्तरं गतःतस्य जघन्यकालो लभ्यते।**

इत्थमेव उत्कर्षेण उपशमसम्यक्त्वस्य सम्यग्मिथ्यात्वस्य चान्तर्मुहूर्तमेव।

एवं चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवयोः कालनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति सासादन-मिथ्यादृष्टिजीवानां कालप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।२००।।

जहण्णेण एयसमओ।।२०१।।

उक्कस्सेण छावलियाओ।।२०२।।

मिच्छादिट्ठी मदिअण्णाणीभंगो।।२०३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयावशेषे सासादनं गतस्य सासादनगुणस्थानस्य एकसमयकालोपलंभात्। एकसमयादारभ्य यावदुत्कर्षेण षडावलिकाः अवशेषाः संति, एषां मध्ये यावन्त उपशमसम्यक्त्वकालास्तावन्तश्चैव सासादनगुणस्थानविकल्पाः भवन्ति।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व को प्राप्त कर प्रथमोपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवली शेष रहने पर सासादन गुणस्थान में जाता है तब उसके उपशमसम्यक्त्व का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व से या वेदक सम्यक्त्व से सम्यग्मिथ्यात्व में जाकर व जघन्यकाल प्रमाण वहाँ रहकर अन्य गुणस्थान में जाने पर सम्यग्मिथ्यात्व का अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य काल पाया जाता है।

इसी प्रकार उत्कृष्टरूप से उपशमसम्यक्त्व का एवं सम्यग्मिथ्यात्व का काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव सासादनसम्यग्दृष्टि कितने काल तक रहते हैं ?।।२००।।

जघन्य से एक समय तक जीव सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं।।२०१।।

उत्कृष्ट से छह आवली काल तक जीव सासादनसम्यग्दृष्टि रहते हैं।।२०२।।

मिथ्यादृष्टि जीवों की काल प्ररूपणा मतिअज्ञानी जीवों के समान है।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशम सम्यक्त्व के काल में एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थान में जाने वाले जीव के सासादन गुणस्थान का एक समय काल पाया जाता है। एक समय से प्रारंभ करके अधिक से अधिक छह आवलियों तक का सासादन गुणस्थान का उत्कृष्टकाल है, इस मध्य जितना उपशमसम्यक्त्व का काल है, उतना ही सासादनगुणस्थान काल के विकल्प होते हैं।

कश्चिदाह—**य उपशमसम्यक्त्वकालं संपूर्णं स्थितः, सः सासादनगुणस्थानं न प्रतिपद्यते इति कथं ज्ञायते ?**

आचार्यः प्राह—**एतस्मादेव सूत्राद् ज्ञायते, आचार्यपरंपरागतोपदेशाच्च**[1]।

सासादनस्य उत्कृष्टकालः षडावलिकाः प्रमाणं भवति ।

मिथ्यात्वस्य अनाद्यनन्तं अनादिसान्तं सादिसान्तमिति त्रिविधाः विकल्पाः सन्ति। सादिसान्तकालः जघन्येनान्तर्मुहुर्तं, उत्कर्षेण उपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणमिति ज्ञातव्यं।

तात्पर्यमेतत्—**सम्यक्त्वमार्गणायां एकजीवापेक्षया कालस्य व्याख्यानं ज्ञात्वा महता प्रयत्नेन सम्यक्त्वकाल एवाश्रयणीयः। किंच—**

उक्तं श्रीमत्समन्तभद्रस्वामिना—

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम्[2]।।३४।।

एवं पंचमस्थले सासादनमिथ्यात्वकालनिरूपणत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

यहाँ कोई शंका करता है कि—जो जीव उपशमसम्यक्त्व के संपूर्ण काल तक उपशमसम्यक्त्व में रहता है वह सासादन गुणस्थान में नहीं जाता, यह कैसे जाना जाता है ?

तब आचार्य समाधान देते हैं कि—इसी प्रस्तुत सूत्र से ही तथा आचार्य परम्परागत उपदेश से यह बात जानी जाती है।

सासादनसम्यक्त्व का उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण होता है।

मिथ्यात्व के अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादि-सान्त इस प्रकार तीन प्रकार के विकल्प हैं। सादि-सान्त काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट से उपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—सम्यक्त्वमार्गणा में एक जीव की अपेक्षा काल का व्याख्यान जानकर बहुत प्रयत्न करके सम्यक्त्व के काल का ही आश्रय लेना चाहिए। क्योंकि श्री समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—तीनों लोकों में और तीनों कालों में संसारी प्राणियों के लिए सम्यक्त्व के समान हितकारी एवं मिथ्यात्व के समान कोई अहितकारी वस्तु नहीं है।

इस तरह से पंचम स्थल में सासादन एवं मिथ्यात्व का काल निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रक बंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. षट्खंडागम पु.७, पृ.१८२। २. रत्नकरण्डश्रावकाचार, श्लोक-३४ ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यामन्तरस्थलाभ्यां षड्भिः सूत्रैः संज्ञिमार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले संज्ञिनां कालकथनत्वेन ''सण्णियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवानां स्थितिनिरूपणपरत्वेन ''असण्णी'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति पातनिका।

संप्रति संज्ञिमार्गणायां कालनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णी केवचिरं कालादो होंति ?।।२०४।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।२०५।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।२०६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिद् जीवोऽसंज्ञिजीवेभ्यः निर्गत्य संज्ञ्यपर्याप्तकेषूत्पद्य क्षुद्रभवग्रहणप्रमाणकालं स्थित्वा असंज्ञित्वं गतः तस्य जघन्यकालः उपलभ्यते। उत्कर्षेण असंज्ञिभ्यः संज्ञिषूत्पद्य सागरोपमशतपृथक्त्वं तत्रैव परिभ्रम्य निर्गतस्य तदुपलंभात्।**

एवं प्रथमस्थले संज्ञिजीवकालकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

असंज्ञिजीवस्थितिप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

असण्णी केवचिरं कालादो होंति ?।।२०७।।

अथ संज्ञी मार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो अन्तरस्थलों में छह सूत्रों के द्वारा संज्ञी मार्गणा नाम का अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का काल कथन करने वाले ''सण्णियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों की स्थिति का निरूपण करने वाले ''असण्णी'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संज्ञीमार्गणा में काल का निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

संज्ञीमार्गणानुसार जीव कितने काल तक संज्ञी रहते हैं ?।।२०४।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक जीव संज्ञी रहते हैं।।२०५।।

उत्कृष्ट से सौ सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण काल तक जीव संज्ञी रहते हैं।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई जीव असंज्ञी जीवों में से निकलकर संज्ञी अपर्याप्तकों में उत्पन्न होकर क्षुद्रभव ग्रहण प्रमाण काल तक वहाँ रहकर पुनः असंज्ञी भाव को प्राप्त हुआ उस जीव के जघन्य काल पाया जाता है। उत्कृष्ट से असंज्ञी जीवों में से निकलकर जो संज्ञियों में उत्पन्न हो, वहीं पर सौ सागरोपमपृथक्त्व प्रमाण काल तक रहकर परिभ्रमण करके संज्ञीपने से निकलने वाले जीव के संज्ञित्व का सौ सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का काल कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों की स्थिति का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

जीव कितने काल तक असंज्ञी रहते हैं ?।।२०७।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।२०८।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।२०९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। एकेन्द्रियजीवादारभ्य असंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः ये केचिद् जीवाः ते सर्वेऽसंज्ञिन एव। ते असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणमनन्तकालमपि तत्रैव परिभ्रमन्ति न च संज्ञित्वं प्राप्नुवन्ति, एतज्ज्ञात्वा संज्ञित्वं पंचेंद्रियत्वं मनुष्यपर्यायं च संप्राप्य येन केनापि प्रकारेण रत्नत्रयमनुपालनीयं न च प्रमादः कर्तव्यः इति।**

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवकालकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन सप्तसूत्रैः आहारमार्गणानामाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारकजीवानां कालकथनप्रमुखेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं । ततः परं द्वितीयस्थले अनाहारकाणां स्थितिनिरूपणत्वेन ''अणाहारा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयम् इति समुदायपातनिका ।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक जीव असंज्ञी रहते हैं।।२०८।।

उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक जीव असंज्ञी रहते हैं, जो अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन के बराबर है।।२०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। एकेन्द्रिय जीव से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत जितने भी जीव हैं, वे सभी असंज्ञी ही होते हैं। वे जीव असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्तकाल तक भी उसी पर्याय में भ्रमण करते रहते हैं और संज्ञीपने को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, ऐसा जानकर संज्ञीपना, पञ्चेन्द्रियत्व एवं मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके जिस किसी भी प्रकार से रत्नत्रय का अनुपालन करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का काल कथन करने की मुख्यता वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का काल कथन करने वाले ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों की स्थिति का निरूपण करने वाले ''अणाहारा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

संप्रति आहारमार्गणायां आहारककालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारा केवचिरं कालादो होंति ?।।२१०।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं।।२११।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ।।२१२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **जघन्येन त्रीन् विग्रहान् कृत्वा सूक्ष्मैकेन्द्रियेषूत्पद्य चतुर्थसमये आहारी भूत्वा भुज्यमानायुषं कदलीघातेन घातयित्वावसाने विग्रहं कृत्वा निर्गतस्य त्रिसमयोनक्षुद्रभवग्रहणमात्राहारकालः उपलभ्यते। उत्कर्षेण विग्रहं कृत्वा आहारी भूत्वांगुलस्यासंख्यातभागमसंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणी-कालमात्रं परिभ्रम्य कृतविग्रहस्य तदुपलंभात्।**

एवं प्रथमस्थले आहारकजीवकालनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति अनाहारजीवानां स्थितिनिश्चयार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ?।।२१३।।

जहण्णेणेगसमओ।।२१४।।

अब आहारमार्गणा में आहारक जीवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आहारमार्गणानुसार जीव आहारक कितने काल तक रहते हैं ?।।२१०।।

जघन्य से तीन समय हीन क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल तक जीव आहारक रहते हैं।।२११।।

उत्कृष्ट से असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल तक जीव आहारक रहते हैं जो काल अंगुल के असंख्यातवें भाग के बराबर है।।२१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जघन्य से तीन मोड़े लेकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होकर चौथे समय में आहारक होकर भुज्यमान आयु को कदलीघात से छिन्न करके अंत में विग्रह करके निकलने वाले जीव के तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आहारकाल पाया जाता है। उत्कृष्ट से विग्रह करके आहारक हो, अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण परिभ्रमण कर विग्रह करने वाले जीव के यह उत्कृष्ट काल पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का काल निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों की स्थिति का निश्चय करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ-

जीव अनाहारक कितने काल तक रहते हैं ?।।२१३।।

जघन्य से एक समय तक जीव अनाहारक रहते हैं।।२१४।।

उक्कस्सेण तिण्णि समया।।२१५।।

अंतोमुहुत्तं।।२१६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। त्रिविग्रहकृतजीवे समुद्घातगतसयोगिकेवलिनि वा तदुत्कृष्टकालो लभ्यते। अयोगिकेवलिनोऽनाहारकस्यान्तर्मुहूर्तकाल उपलभ्यते।**

कश्चिदाह—**एषा कालप्ररूपणा बंधकानां जीवानां कथिता, न चायोगी भगवान् बंधकः, तत्रास्त्रवाभावात्। न चान्यत्रानाहारिणो जीवस्यान्तर्मुहूर्तमात्रः कालो लभ्यते। ततो नेदं सूत्रं घटते इति चेत् ?**

आचार्यः प्राह—**नैष दोषः, अघातिचतुष्ककर्मपुद्गलस्कंधानां लोकमात्रजीवप्रदेशानां चान्योन्यबंधमपेक्ष्या-योगिनामपि बंधकत्वाभ्युपगमात्।**

तर्हि ''मणुस्सा अबंधा वि अत्थि'' इति एतेन सूत्रेण सह विरोधो भवेत् ?

न भवेत्, किंच—योगकषायादिभ्यो जायमाननूतनबंधाभावं प्रतीत्य तत्र सूत्रे तथोपदेशात्।

आसु मार्गणासु कालकथनं ज्ञात्वा कालस्य क्षणिकत्वं विचार्य अविनाशिअनंतकालस्थायि-सिद्धपदप्राप्तये प्रयत्नो विधेयः, यस्य पदस्य प्रशंसा पूर्वाचार्यैः सर्वशास्त्रेषु गीयते। तथाहि—

जातिर्याति न यत्र यत्र च मृतो मृत्युर्जरा जर्जरा।
जाता यत्र न कर्मकायघटना नो वाग् रुजो व्याधयः।।

उत्कृष्ट से तीन समय तक जीव अनाहारक रहते हैं।।२१५।।

उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त काल तक ये जीव अनाहारक रहते हैं।।२१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। तीन मोड़ा लेने वाले जीव के अथवा समुद्घात करने वाले सयोगिकेवली भगवन्तों के अनाहारकपने का उत्कृष्टकाल तीन समय प्रमाण पाया जाता है। अयोगिकेवली भगवान के अनाहारकपने का काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—यह काल प्ररूपणा बंधक जीवों की अपेक्षा की गई है किन्तु अयोगी भगवान तो बंधकर्ता नहीं होते, क्योंकि उनके कर्मों के आस्रव का अभाव है और अन्यत्र कहीं अनाहारी जीव का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया नहीं जाता। अतएव यह अनाहारी का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल वाला सूत्रउनमें घटित नहीं होता है ?

तब आचार्य समाधान देते हैं कि—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि चार घातिया कर्मों के पुद्गल-स्कंधों का और लोकप्रमाण जीव प्रदेशों का परस्पर बंधन देखकर अयोगी जिनों के भी बंधकर्तृत्व स्वीकार किया है।

शंका—ऐसा मानने पर 'मनुष्य अबंधक भी होते हैं, इस सूत्र के साथ विरोध भी आ जावेगा।'

समाधान—ऐसा नहीं होगा, क्योंकि उक्त सूत्र में योग और कषाय आदि से उत्पन्न होने वाले नवीन बंध के अभाव की अपेक्षा से अयोगी केवलियों में नूतन बंध के अभाव का उपदेश किया गया है।

इन मार्गणाओं में काल का कथन जानकर समय के क्षणिकपने का विचार करके अविनाशी, अनंतकाल तक स्थाई रहने वाले सिद्धपद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए, ऐसे उस सिद्धपद की प्रशंसा पूर्वाचार्यों ने सभी शास्त्रों में गाई है।

श्री पद्मनंदि आचार्य ने भी पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथ में कहा है—

यत्रात्मैव परं चकास्ति विशदं ज्ञानैकमूर्तिर्विभुः।
नित्यं तत्पदमाश्रिता निरुपमा सिद्धाः सदा पान्तु वः[१]।।

यत्र जातिर्जन्म न विद्यते-पुनर्जन्म नास्ति, यत्र च मृत्युर्मृतः आयुःकर्मविनष्टे सति मृत्युः स्वयमेव मृतः समाप्तः पुनरागमनं न भविष्यति। यत्र जरा जर्जरा जाता-वृद्धावस्था वृद्धत्वं गता विनष्टा इति यावत्। यत्र च कर्मकायघटना नास्ति-न कर्मणां संबंधः, न च शरीरस्य संबंधोऽपि तत्र अशरीरत्वं एव। यत्र न वाणी न रुजो न व्याधयः सन्ति, इमाः शरीराश्रितत्वादिति। यत्रात्मा एव परं उत्कृष्टं केवलं वा चकास्ति। असौ आत्मा ज्ञानैकमूर्तिः-ज्ञानशरीरी,विभुः-व्यापकः त्रैलोक्ये अलोकाकाशेऽपि न चात्मप्रदेशैः ज्ञानरश्मिभिरेव। तन्नित्यं पदं आश्रिताः उपमाव्यतीताः सिद्धपरमेष्ठिनः सदा वो युष्माकं सर्वेषां मम च पान्तु — रक्षन्तु।

एवं द्वितीयस्थले अनाहाराणां स्थितिकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया कालानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम-चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ — जहाँ पर न जन्म है, न मरण है, न जरा है, न कर्मों का तथा शरीर का संबंध है, न वाणी है और न रोग है तथा जहाँ पर निर्मलज्ञान का धारण करने वाला प्रभु आत्मा सदा प्रकाशमान है, ऐसे उस अविनाशी पद में रहने वाले उपमारहित (अर्थात् जिनको किसी की उपमा ही नहीं दे सकते ऐसे) सिद्ध भगवान मेरी रक्षा करे, अर्थात् ऐसे सिद्धों की मैं शरण लेता हूँ।

अर्थात् जहाँ जाकर पुनः संसार में आकर जन्म नहीं लेना पड़ता है, जहाँ मृत्यु का मरण हो चुका है अर्थात् जहाँ आयुकर्म का विनाश हो जाने के कारण मृत्यु स्वयमेव समाप्त हो गई है, अतः पुनरागमन नहीं होगा। जहाँ जरा — वृद्धावस्था जर्जर हो गई है — नष्ट हो गई है ऐसा अभिप्राय है और जहाँ कर्मकाय की घटना नहीं है — कर्मों का संबंध ही नहीं रह गया है एवं शरीर का संबंध मात्र भी न होने से जहाँ अशरीरीपना प्रगट हो गया है। जहाँ न वाणी है, न रोग हैं, न व्याधियाँ हैं, क्योंकि ये सब चीजें शरीर के आश्रित होती हैं। जहाँ मात्र आत्मा ही उत्कृष्ट अथवा केवलरूप से सुशोभित हो रहा है। ऐसा वह आत्मा ज्ञानमूर्तिरूप — ज्ञानशरीरी है, विभु — व्यापक है अर्थात् वह तीनों लोकों में और अलोकाकाश में भी भले ही आत्मप्रदेशों के रूप से नहीं किन्तु ज्ञानरश्मियों से व्यापक है। उस अविनश्वर नित्य पद का आश्रय प्राप्त करने वाले उपमा रहित सिद्ध परमेष्ठी भगवान हमारी, तुम्हारी एवं सभी की रक्षा करें।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों की स्थिति का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका श्लोक १०९ पृ. ४७। २. आषाढ़ शु. द्वितीया।

श्रीऋषभदेवजन्मजयन्तीमहामहोत्सववर्षान्तर्गते भारतस्य राजधानीदिल्लीमहानगरे सादतपुरग्रामे[२] भगवत्तीर्थकरश्रीशांतिनाथजिनमंदिरस्य शिलान्यासः अत्रस्थ-भव्यजीवानां सर्वसिद्धौ समृद्धये शान्तये च भूयादिति काम्यते मया श्रीशांतिनाथपादाब्जयोः वंदनां कारं कारं भक्तिभावेनेति।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खंडागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे एकजीवापेक्षया कालानुगमे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रंथाधारेण विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यस्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरगुरुवर्यस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यवर्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीपरचना-प्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां षोडशाधिकद्विशतसूत्रैः कालप्ररूपकोऽयं द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

श्री ऋषभदेव जन्मजयंती महोत्सव वर्ष के अन्तर्गत भारत की राजधानी दिल्ली महानगर में सादतपुर नामक कालोनी में तीर्थंकर भगवान श्री शांतिनाथ जिनमंदिर का शिलान्यास यहाँ के समस्त भव्य जीवों की सर्वसिद्धि, समृद्धि और शांति के लिए होवे, यही श्रीशांतिनाथ भगवान के चरण कमलों की भक्तिभावपूर्वक वंदना करते हुए मेरी मंगलकामना है।

भावार्थ—६ जुलाई १९९७ में तदनुसार आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी के संघ सान्निध्य में दिल्ली की सादतपुर कालोनी में वहाँ की सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के श्रद्धालु भक्तों द्वारा उपर्युक्त जिनमंदिर का शिलान्यास सम्पन्न हुआ, उसी दिन पूज्य माताजी ने षट्खण्डागम टीका के उपरोक्त प्रकरण को लिखते हुए अपनी मंगल भावना व्यक्त की है। वर्तमान में वहाँ जिनमंदिर बनकर पूर्ण हो चुका है, जो कि भव्यात्माओं के लिए चिरकाल तक सम्यग्दर्शन प्राप्ति का निमित्त बनेगा।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा कालानुगम में श्रीवीरसेनाचार्यकृत धवला टीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचकव्रर्ती श्री शांतिसागरगुरुवर्य के प्रथम पट्टाधीश श्रीवीरसागराचार्यवर्य की शिष्या जम्बूद्वीप रचना निर्माण की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में दो सौ सोलह सूत्रों के द्वारा काल का प्ररूपण करने वाला यह द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ अन्तरानुगमो तृतीयो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

श्रीशांतिनाथमानम्य, तीर्थेशं चक्रवर्तिनम्।
अंतरानुगमं वक्ष्ये, नैरन्तर्यसुखाप्तये।।१।।

अथ चतुर्दशाधिकारैः एकपञ्चाशदधिकशतसूत्रैः एकजीवापेक्षया अंतरानुगमनामतृतीयोमहाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावद् गतिमार्गणायां चतुस्त्रिंशत्सूत्राणि संति। इन्द्रियमार्गणायां द्वादश। कायमार्गणायां द्वादश। योगाधिकारे एकविंशतिः। वेदमार्गणाधिकारे त्रयोदश। कषायाधिकारे चत्वारि। ज्ञानमार्गणायां एकादश। संयमाधिकारे दश। दर्शनमार्गणायां सप्त। लेश्यायां षट्। भव्यमार्गणायां द्वे। सम्यक्त्वमार्गणायां नव। संज्ञिमार्गणायां षट्। आहारमार्गणायां चत्वारि सूत्राणि वक्ष्यन्ते इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अत्रापि गत्यनुवादेन चतुर्भिरन्तरस्थलैः चतुस्त्रिंशत्सूत्राणि कथयिष्यन्ते। तत्र तावत् प्रथमस्थले नरकगतौ नारकाणां अन्तरनिरूपणत्वेन ''एगजीवेण'' इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले तिरश्चां मनुष्याणां चान्तरप्रतिपादनत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले भवनत्रिकदेवानां

अथ अन्तरानुगम नामक तृतीय महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—तीर्थंकर और चक्रवर्ती पद समन्वित श्री शांतिनाथ भगवान को नमस्कार करके अब मेरे द्वारा निरन्तर—शाश्वत सुख की प्राप्ति हेतु अन्तरानुगम का कथन किया जाएगा।।१।।

अब चौदह अधिकारों के द्वारा एक सौ इक्यावन (१५१) सूत्रों में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नामका तृतीय महाधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम गतिमार्गणा में चौंतीस (३४) सूत्र हैं। द्वितीय इन्द्रियमार्गणा में बारह सूत्र हैं। तृतीय कायमार्गणा में बारह सूत्र हैं। चतुर्थ योगमार्गणा अधिकार में इक्कीस सूत्र हैं। पंचम वेदमार्गणा अधिकार में तेरह सूत्र हैं। छठे कषायमार्गणा अधिकार में चार सूत्र हैं। सप्तम ज्ञानमार्गणा अधिकार में ग्यारह सूत्र हैं। अष्टम संयममार्गणा अधिकार में दश सूत्र हैं। नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में सात सूत्र हैं। दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में छह सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में नौ सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञीमार्गणा अधिकार में छह सूत्र हैं। चौदहवें आाहारमार्गणा अधिकार में चार सूत्र कहेंगे। इस प्रकार से महाधिकार के प्रारंभ में यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अथ गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ

यहाँ भी गतिमार्गणा के अनुवाद से चार अन्तरस्थलों के द्वारा चौंतीस सूत्रों में गतियों का वर्णन करेंगे। उनमें से प्रथम स्थल में नरकगति में नारकियों का अन्तर निरूपण करने वाले ''एगजीवेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में तिर्यंच जीवों और मनुष्यों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''तिरिक्खगदीए''

सौधर्मैशानादिषोडशकल्पवासिदेवानां चान्तरकथनमुख्यत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादि षोडशसूत्राणि। तदनन्तरं चतुर्थस्थले नवग्रैवेयकादिसर्वार्थसिद्धिविमानवासिनां कल्पातीतानां अंतरकथनप्रकारेण ''णवगेवज्ज'' इत्यादिना अष्टौ सूत्राणि इति पातनिका कथिता।

संप्रति एकजीवापेक्षया नारकाणामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

एगजीवेण अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।३।।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अत्र पृच्छासूत्रे 'केवचिरं' एतत्कथनेन एकद्वित्रिप्रभृति अनंतपर्यंतं अंतरपृच्छा कृता भवति।**

मूलौघविषयकपृच्छा किन्न कृता ?

न, किंच — मूलौघप्रतिबद्धकालप्ररूपणाभावात्।

किमिति तस्य गुणस्थानविषयस्य कालः नोक्तः ?

इत्यादि छह सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में भवनत्रिक देवों का एवं सौधर्म-ईशान आदि सोलह कल्पवासी देवों का अन्तर कथन करने वाले ''देवगदीए'' इत्यादि सोलह सूत्र हैं। तदनन्तर चतुर्थ स्थल में नवग्रैवेयक से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक के कल्पातीत देवों का अन्तर कथन करने वाले ''णवगेवज्ज'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। यह गतिमार्गणा अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब एक जीव की अपेक्षा नारकी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्रअवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम से गतिमार्गणानुसार नरकगति में नारकी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१।।

जघन्य से नरकगति में नारकी जीवों का अन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है।।२।।

उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक नरकगति से नारकी जीवों का अन्तर होता है, जो अनन्त काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।३।।

इस प्रकार सातों पृथिवियों में नारकी जीवों का अन्तर होता है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ पृच्छा सूत्र में 'केवचिरं' अर्थात् 'कितने काल तक' इस कथन के द्वारा एक-दो-तीन से लेकर अनन्त तक अन्तरपृच्छा की गई है।

शंका — यहाँ मूलोघविषयक अर्थात् गुणस्थानों की अपेक्षा अन्तरसंबंधी पृच्छा क्यों नहीं की गई ?

समाधान — नहीं, क्योंकि मूलोघसंबंधी कालप्ररूपणा का अभाव होने से उक्त प्ररूपणा नहीं की गई ?

शंका — मूलोघसंबंधी उन गुणस्थान विषयक काल क्यों नहीं बतलाया गया ?

नैष दोषः, तस्यानुक्तसिद्धेः।

अत्र कश्चिन्नारकजीवः नरकान्निर्गतः, तिर्यक्षु मनुष्येषु वा गर्भोपक्रान्तिकपर्याप्तकेषु उत्पद्य सर्वजघन्यायुः-कालाभ्यन्तरे नरकायुः बद्ध्वा कालं कृत्वा पुनो नरकेषूत्पन्नस्तस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तान्तरमुपलभ्यते।

उत्कर्षेण — नारकजीवस्य नरकान्निर्गत्यानर्पितगतिषु आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि परिवर्त्य पश्चात् नरकेषूत्पन्नस्य सूत्रोक्तोत्कृष्टान्तरमुपलभ्यते।

एवं षट्सु पृथिवीषु ज्ञातव्यमन्तरं। सप्तम्यां पृथिव्यां तु एष एव विशेषः — तत्रत्यान्निर्गत्य तिर्यक्ष्वेवोत्पद्यते न मनुष्येषु इति मन्तव्यं।

एवं प्रथमस्थले नारकाणामन्तरकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इदानीं सामान्येन तिरश्चामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।६।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **तिर्यग्भ्यः मनुष्येषूत्पद्य कदलीघातयुक्त-क्षुद्रभवग्रहणमात्रकालं स्थित्वा पुनः तिर्यक्षूत्पन्नस्य तज्जघन्यान्तरमुपलभ्यते। उत्कर्षेण — तिरश्चः तिर्यग्भ्यः निर्गतस्य शेषगतिषु सागरोपमशत-**

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बिना कहे उसकी सिद्धि हो जाती है। यहाँ कोई नारकी जीव नरक से निकलकर तिर्यंच अथवा मनुष्यों में गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर वहाँ सबसे जघन्य आयु काल के अन्दर नरकायु का बंध करके वहाँ अपना काल व्यतीत करके पुनः नरकों में उत्पन्न हुए नारकी जीव के नरकगति में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से — नारकी जीव के नरक से निकलकर अविवक्षित गतियों में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके पुनः नरकों में उत्पन्न होने पर सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर प्रमाण पाया जाता है।

इस प्रकार से छह नरक पृथिवियों में अन्तर को जानना चाहिए। सातवीं पृथिवी में यह अन्तर है कि — "वहाँ से निकलकर नारकी जीव तिर्यंचों में ही उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं, ऐसा मानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नारकियों का अन्तर कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य से तिर्यंचों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यंचगति से तिर्यंच जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक तिर्यंच जीवों का तिर्यंचगति से अन्तर होता है।।६।।

उत्कृष्ट से सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण काल तक तिर्यंच जीवों का तिर्यंचगति से अन्तर पाया जाता है।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तिर्यंच जीवों में से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न हो कदलीघातयुक्त क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक रहकर पुनः तिर्यंचों में उत्पन्न हुए जीव के क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है।

पृथक्त्वादुपरि अवस्थानाभावात् सूत्रोक्तोत्कृष्टान्तरमुपलभ्यते।

अधुना चतुर्विधतिरश्चां चतुर्विधमनुष्याणां चान्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरक्खपज्जत्ता, पंचिदिंयतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुस्सा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।८।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।९।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।।१०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **विवक्षितगतेर्निर्गत्याविवक्षितगतिषूत्पद्य क्षुद्रभवग्रहणप्रमाणकालं स्थित्वा पुनो विवक्षितगतिमागतस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रान्तरोपलंभात्।**

उत्कर्षेण — विवक्षितगतेर्निर्गत्य एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियादि-अविवक्षितगतिषु आवलिकायाः असंख्यात-भागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि भ्रमित्वा विवक्षितगतिमागतस्य तदुपलंभात्।

एवं द्वितीयस्थले तिर्यग्मनुष्ययोः अन्तरकथनमुख्यत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना सामान्येन देवानां भवनत्रिकदेवानां सौधर्मैशानदेवानां चान्तरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

उत्कृष्ट से — तिर्यंच जीव के तिर्यंचों में से निकलकर शेष गतियों में सौ सागरोपमपृथक्त्वकाल से ऊपर ठहरने का अभाव होने से उनके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

अब चार प्रकार के तिर्यंच एवं चार प्रकार के मनुष्यों का अन्तर प्रतिपादन करनेहेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ —

तिर्यंचगति से पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त एवं मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी तथा मनुष्य अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।८।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक उक्त तिर्यंचों का तिर्यंचगति से तथा मनुष्यों का मनुष्यगति से अन्तर होता है।।९।।

उत्कृष्ट से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक पूर्वोक्त तिर्यंचों का तिर्यंचगति से और मनुष्यों का मनुष्यगति से अन्तर होता है, जो अनन्त होता है।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — विवक्षित गति से निकलकर अविवक्षित गतियों में उत्पन्न होकर व वहाँ क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल रहकर पुनः विवक्षित गति में आए हुए जीव के क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से — विवक्षित गति से निकलकर एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय आदि अविवक्षित गतियों में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक भ्रमण कर विवक्षित गति में आये हुए जीव के सूत्रोक्त प्रमाण अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यंच और मनुष्यों का अन्तर कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्य से देवों में भवनत्रिक देवों का और सौधर्म-ईशान स्वर्ग के देवों का अन्तर बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।११।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।।१३।।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवा देवगदिभंगो।।१४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**जघन्येन—देवगतेरागत्य तिर्यग्मनुष्यगर्भोपक्रान्तिकपर्याप्तकेषूत्पद्य समाप्य पर्याप्तीः देवायुषं बंधयित्वा देवेषूत्पन्नस्य अंतर्मुहूर्तान्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण—देवगतेरवतीर्य शेषत्रिसृषु गतिषु आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि उत्कृष्टतया परिवर्त्य पुनः देवगतौ आगमने विरोधाभावात्।**

यथात्र देवगतेर्जघन्योत्कृष्टान्तरं प्रोक्तं, तथैव भवनत्रिकदेवानां सौधर्मैशानदेवानामपि चान्तरं ज्ञातव्यं।

कश्चिदाह—अत्र सूत्रे ''भवणवासिय..... देवा'' इत्युक्ते देवानामिति कथं कथितं ?

आचार्यःप्राह—''आई-मज्झंतवण्णसरलोओ'' इति प्राकृतव्याकरणसूत्रेण 'णं' शब्दो लुप्तोऽभवत् अतो 'देवा' इति पदेन 'देवाणं' एवं गृहीतव्यं[२]।

सूत्रार्थ—

देवगति में देवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।११।।

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक देवों का देवगति में अन्तर होता है।।१२।।

उत्कृष्ट से अनन्त काल तक देवगति से देवों का अन्तर होता है, जो अनन्त असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है।।१३।।

भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी व सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवों का अन्तर देवगति के समान ही है।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य से—देवगति से आकर गर्भोपक्रान्तिक पर्याप्त तिर्यंचों व उन्हें मनुष्यों में उत्पन्न होकर पर्याप्तियाँ पूर्ण कर देवायु बांधकर पुनः देवों में उत्पन्न हुए जीव के देवगति में अन्तर्मुहूर्तप्रमाण का अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट से—देवगति से निकलकर शेष तीन गतियों में अधिक से अधिक आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गलपरिवर्तन काल तक उत्कृष्टरूप से परिभ्रमण कर पुनः देवगति में आगमन करने में कोई विरोध नहीं आता है।

जिस प्रकार देवगति में जघन्य से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल कहा गया है, उसी प्रकार इन भवनवासी आदि देवों का जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—इस सूत्र में ''भवणवासिय.....देवा'' ऐसा कहने पर 'देवानां' ऐसा क्यों कहा गया है ?

आचार्य इसका उत्तर देते हैं कि—

आदि, मध्य व अन्त में आये हुए व्यंजन और स्वरों का प्राकृत व्याकरण के सूत्र से 'णं' शब्द का लोप हो गया अतः 'देवा' इस पद से 'देवानां' ऐसा ग्रहण कर लेना चाहिए।

१-२. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-१९०-१९१।

संप्रति सानत्कुमारादि अच्युतान्तानां देवानां अंतरप्रतिपादनाय सूत्रद्वादशकमवतार्यते —

सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१५।।

जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं।।१६।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१७।।

बम्ह-बम्हुत्तर-लांतव-काविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१८।।

जहण्णेण दिवसपुधत्तं।।१९।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।२०।।

सुक्क-महासुक्क-सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।२१।।

जहण्णेण पक्खपुधत्तं।।२२।।

अब सानत्कुमार स्वर्ग से लेकर अच्युत स्वर्ग तक के देवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु बारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१५।।

जघन्य से मुहूर्तपृथक्त्व काल तक सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर होता है।।१६।।

उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक सनत्कुमार और माहेन्द्र देवों का देवगति से अन्तर होता है। जो अनन्तकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।१७।।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१८।।

जघन्य से दिवसपथक्त्वमात्र ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर होता है।।१९।।

उत्कृष्ट से अनन्त काल तक ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर व लान्तव-कापिष्ठ देवों का देवगति में अन्तर होता है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।२०।।

शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्त्रार कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक होता है ?।।२१।।

कम से कम पक्षपृथक्त्वकाल तक शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्त्रार कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर होता है।।२२।।

उक्कस्सेण अंणतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।२३।।

आणद-पाणद-आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।२४।।

जहण्णेण मासपुधत्तं।।२५।।

उक्कस्समणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।२६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चित् सनत्कुमारस्वर्गस्य माहेन्द्रस्वर्गस्य वा देवः तिरश्चो मनुष्यस्य वा भवसंबंधि-मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाणां जघन्यस्थितिं बंधयित्वा तिर्यक्षु मनुष्येषु वोत्पद्य परिणामप्रत्ययेन पुनः सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः आयुर्बंधं कृत्वा सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः उत्पन्नस्य जघन्यमन्तरं भवतीति कथनं ज्ञातव्यं। उत्कृष्टान्तरं सर्वत्र सुगममेव।**

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठदेवानां बद्धायुष्कानां दिवसपृथक्त्वादधः स्थितिबंधाभावात्।

कश्चिदाह—अणुव्रत-महाव्रतैर्विना तिर्यञ्चो मनुष्याः वा गर्भादनिष्क्रान्ता एव कथं देवेषु उत्पद्यन्ते ?

आचार्यदेवः समाधत्ते—नैतत्, परिणामप्रत्ययेन गर्भेष्वेव दिवसपृथक्त्वजीवितानां तिर्यग्मनुष्यपर्याप्तानां ततोऽनन्तरं गर्भेष्वेव मृतानां तत्रब्रह्मादिचतुष्कस्वर्गेषु उत्पत्तेर्विरोधाभावात्[१]।

उत्कृष्ट से अनन्त काल तक उक्त देवों का देवगति में अन्तर होता है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।२३।।

आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवों का देवगति में अन्तर कितने काल तक रहता है ?।।२४।।

जघन्य से मास पृथक्त्व तक उक्त देवों का देवगति में अन्तर होता है।।२५।।

उत्कृष्ट से अनन्तकाल आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पवासी देवों का अन्तर होता है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यंच या मनुष्य आयु को बांधने वाले कोई सनत्कुमार और माहेन्द्र देवों के तिर्यंच व मनुष्य भवसंबंधी जघन्य स्थिति का प्रमाण मुहूर्तपृथक्त्व पाया जाता है। भवसंबंधी मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण जघन्य तिर्यंच व मनुष्य आयु को बांधकर तिर्यंचों में व मनुष्यों में उत्पन्न होकर परिणामों के निमित्त से पुनः सनत्कुमार और माहेन्द्र देवों की आयु बांधकर सनत्कुमार-माहेन्द्र देवों में उत्पन्न हुए जीवों का मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण जघन्य अन्तर होता है। ऐसा कथन जानना चाहिए, उत्कृष्ट अन्तर सर्वत्र सुगम ही है।

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव-कापिष्ठ स्वर्ग के बद्धायुष्क देवों के दिवसपृथक्त्व से नीचे की स्थिति के बंध का अभाव पाया जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

अणुव्रत और महाव्रत के बिना तिर्यंच और मनुष्य जो अभी गर्भ से निकले ही नहीं हैं, वे देवों में कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?

आचार्य समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं है, क्योंकि परिणामों के निमित्त से गर्भ में ही दिवसपृथक्त्वप्रमाण जीवित रहने वाले तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तक जीवों के गर्भ में ही मर जाने पर वहाँ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव-

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-१९३।

शुक्रादिचतुष्ककल्पवासिनां पक्षपृथक्त्वं जघन्यान्तरं कथितं। इत्थमेव आनताद्यच्युतकल्पवासिनां सप्ताष्टौ वा मासप्रमाणं जघन्यान्तरं भवति एष मासपृथक्त्वस्यार्थो गृहीतव्यः। सहस्रारस्वर्गादुपरि इमे देवाः तिर्यगायुर्न बध्नन्ति तेभ्यः च्युत्वा मनुष्या एव भवन्तीति।

कश्चिदाशंकते — एते मनुष्येषु उत्पद्यमाना मनुष्या अपि गर्भाद्यष्टवर्षेषु गतेषु अणुव्रतानां महाव्रतानां वा ग्राहिणो भवन्ति। न चाणुव्रतमहाव्रतैविना आनतादिषु उत्पत्तिरस्ति, तथोपदेशाभावात्। ततो नात्र मासपृथक्त्वान्तरं युज्यते, किंतु वर्षपृथक्त्वेनान्तरेण भवितव्यम् ?

अत्राचार्यदेवः परिहरति — अणुव्रतमहाव्रतैः संयुक्ताश्चैव तिर्यञ्चो मनुष्या वा आनतप्राणतदेवेषूत्पद्यन्ते न चैष नियमोऽस्ति, किंच-एतन्मन्यमाने तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टीनां षड्रज्जुस्पर्शनसूत्रेण[१] सह विरोधात्। न चानतप्राणतासंयतसम्यग्दृष्टयो मनुष्यायुषः जघन्यस्थितिं बध्नन्तो वर्षपृथक्त्वादधो बध्नन्ति, महाबंधे जघन्यस्थितिबंधाद्धा छेदे सम्यग्दृष्टीनामायुषो वर्षपृथक्त्वमात्रस्थितिप्ररूपणात्। ततः आनत-प्राणतमिथ्यादृष्टेर्मनुष्यायुः मासपृथक्त्वमात्रं बंधयित्वा पुनो मनुष्येषूत्पद्य मासपृथक्त्वं जीवित्वा पुनः संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्संमूर्च्छिमपर्याप्तकेषु अंतर्मुहूर्तायुष्केषु उत्पद्य पर्याप्तको भूत्वा संयमासंयमं प्रतिपद्यानतादिषु आयुर्बंधयित्वा उत्पन्नस्य जघन्यमन्तरं भवतीति वक्तव्यं। उत्कृष्टान्तरं स्पष्टमेव ज्ञातव्यं।

कापिष्ठ इन चार स्वर्गों में उत्पन्न होने में कोई विरोध नहीं आता है।

शुक्रादि चतुष्क — शुक्र-महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्गों के कल्पवासी देवों का जघन्य अन्तर पक्ष पृथक्त्व कहा गया है। इसी प्रकार से आनतादि से लेकर अच्युत स्वर्ग तक के कल्पवासी देवों का जघन्य अन्तर सात अथवा आठ मास प्रमाण होता है, यह मासपृथक्त्व का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। सहस्रार स्वर्ग से ऊपर के ये देव तिर्यंच आयु का बंध नहीं करते हैं, वहाँ से च्युत होकर वे मनुष्य ही होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

ये मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी गर्भ से लेकर आठ वर्ष तक व्यतीत हो जाने पर अणुव्रत व महाव्रतों को ग्रहण करने वाले होते हैं और अणुव्रतों को व महाव्रतों को ग्रहण न करने वाले मनुष्यों की आनत आदि देवों में उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं पाया जाता है। अतएव आनत आदि चार देवों का मासपृथक्त्व अन्तर कहना युक्त नहीं है, क्योंकि उनका अन्तर वर्ष पृथक्त्व होना चाहिए ?

आचार्य देव उक्त शंका का परिहार कहते हैं — महाव्रतों से संयुक्त ही तिर्यंच व मनुष्य आनत-प्राणत देवों में उत्पन्न हो ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का जो छह राजु स्पर्शन बतलाने वाला सूत्र है, उससे विरोध होता है। और आनत-प्राणत कल्पवासी असंयतसम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायु की जघन्य स्थिति बांधते हुए वे वर्ष पृथक्त्व से कम की आयु स्थिति नहीं बांधते है, क्योंकि महाबंध में जघन्य स्थितिबंध के काल विभाग में सम्यग्दृष्टि जीवों की आयु स्थिति का प्रमाण वर्षपृथक्त्वमात्र प्ररूपित किया गया है। अतः आनत-प्राणत कल्पवासी मिथ्यादृष्टि देव के मासपृथक्त्वप्रमाण मनुष्यायु बांधकर फिर मनुष्यों में उत्पन्न हो मासपृथक्त्व जीवित रहकर पुनः अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच समूर्च्छन पर्याप्त जीवों में उत्पन्न होकर पर्याप्तक हो संयमासंयम ग्रहण करके आनतादि कल्पों की आयु बांधकर वहाँ उत्पन्न हुए जीव के सूत्रोक्त मासपृथक्त्व प्रमाण जघन्य अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर स्पष्ट ही जानना चाहिए।

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-१९५।

एवं तृतीयस्थले भवनत्रिकादि कल्पवासिदेवानां जघन्योत्कृष्टान्तरप्रतिपादनत्वेन षोडश सूत्राणि गतानि।

संप्रति कल्पातीतानां नवग्रैवेयकविमानवासिनां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णवगेवज्जविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।२७।।

जहण्णेण वासपुधत्तं।।२८।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।२९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **नवग्रैवेयकवासिनोऽहमिन्द्राः वर्षपृथक्त्वादधः जघन्यायुःस्थितिं न बध्नन्ति। उत्कर्षेण मिथ्यादृष्टीनां अभव्यानां वा अनंतकालपरिभ्रमणं संभवतीति ज्ञातव्यं। ये केचिद् भव्या अपि मिथ्यात्ववशेन पंचपरावर्तनं कुर्वन्ति तेषामपि एतत्कालं संभवति अभव्यानां तु संभवत्येवेत्यर्थः।**

नवानुदिशविमानवासिनां अन्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३०।।

इस प्रकार तृतीय स्थल में भवनत्रिक से लेकर कल्पवासी तक के देवों का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादन करने वाले सोलह सूत्र पूर्ण हुए।

अब कल्पातीत देवों में नव ग्रैवेयक विमानवासी देवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।२७।।

जघन्य से वर्षपृथक्त्व काल तक नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों का अन्तर होता है।।२८।।

उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों का अन्तर होता है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — नौ ग्रैवेयकवासी अहमिन्द्र देव वर्षपृथक्त्व से नीचे-पहले जघन्य आयु स्थिति का बंध नहीं करते हैं। उत्कृष्टरूप से मिथ्यादृष्टि अथवा अभव्य जीवों का संसार में अनन्तकाल तक परिभ्रमण संभव होता है, ऐसा जानना चाहिए। जो कोई भव्य जीव भी मिथ्यात्व के कारण पंचपरावर्तन करते हैं, उनके भी यह काल संभावित होता है और अभव्य जीवों के तो अनंतकाल तक संसार परिभ्रमण संभव रहता ही है।

अब नव अनुदिश विमानवासी देवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अनुदिश आदि अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३०।।

जहण्णेण वासपुधत्तं।।३१।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।३२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सम्यग्दृष्टीनां वर्षपृथक्त्वादधः आयुषो जघन्यस्थितिबंधाभावात्। उत्कर्षतः—नवानुदिशविमानवासिनोऽहमिन्द्रस्य पूर्वकोट्यायुष्कमनुष्येषूत्पद्य पूर्वकोटिं जीवित्वा सौधर्मैशानयोर्गत्वा तत्र सार्धद्वयसागरोपमप्रमाणकालं गमयित्वा पुनः पूर्वकोट्यायुष्कमनुष्येषूत्पद्य संयमं गृहीत्वा स्वस्वात्मनो विमाने उत्पन्नस्य सातिरेकद्विसागरोपममात्रान्तरं उपलभ्यते।**

संप्रति सर्वार्थसिद्धिनिवासिनामहमिन्द्राणां अन्तरप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३३।।

णत्थि अंतरं, णिरंतरं।।३४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सर्वार्थसिद्धिविमानाद् मनुष्यगतिमवतीर्णस्य मोक्षं मुक्त्वान्यत्र गमनं नास्ति। 'णत्थि अंतरं णिरंतरं' अस्मिन् सूत्रे पुनरुक्तदोषप्रसंगात् द्वयोः पदयोः संग्रहः कर्तव्यः इति चेत् ? नैष दोषः, द्वौ अपि नयौ अवलम्ब्य स्थितानां द्विविधानामपि शिष्याणामनुग्रहार्थं तथाविधप्ररूपयतः सूत्रस्य पुनरुक्तदोषाभावात्। किंच 'णत्थि अंतरं' इति वचनं पर्यायार्थिकनयाश्रितशिष्याणामनुग्रहकारकं,**

जघन्य से वर्ष पृथक्त्व काल तक अनुदिश से लेकर अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवों का अन्तर होता है।।३१।।

उत्कृष्ट से कुछ अधिक दो सागरोपमप्रमाण काल तक अनुदिश से लेकर अपराजित पर्यन्त विमानवासी देवों का अन्तर होता है।।३२।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सम्यग्दृष्टि जीवों के आयु का जघन्य स्थितिबंध वर्षपृथक्त्व से नीचे नहीं होता है, क्योंकि अनुदिशादि अहमिन्द्र देव के पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर पूर्वकोटि काल तक जीवित रहकर सौधर्म-ईशान स्वर्ग को जाकर वहाँ ढाई सागरोपमकाल व्यतीत कर पुनः पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर संयम को ग्रहण करके अपने-अपने विमान में उत्पन्न होने पर उनका अन्तरकाल कुछ अधिक दो सागरोपमप्रमाण प्राप्त होता है।

अब सर्वार्थसिद्धि विमानवासी अहमिन्द्रों का अन्तर निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३३।।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों का अन्तर नहीं होता, वह गति निरन्तर है।।३४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—सर्वार्थसिद्धि से मनुष्यगति में उतरने वाले जीव का मोक्ष के सिवाय अन्यत्र गमन नहीं होता है।

शंका—'सर्वार्थसिद्धि विमानवासियों का कोई अन्तरकाल नहीं होता, वह गति निरन्तर है' ऐसा कहने में पुनरुक्त दोष का प्रसंग आता है, अतएव दो पदों में से किसी एक का ही संग्रह करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयों का अवलम्बन करने वाले दोनों प्रकार के शिष्यों के अनुग्रह के लिए उक्त प्रकार से प्ररूपण करने वाले सूत्रकार के पुनरुक्ति

विधिव्यतिरिक्ते प्रतिषेधे एव व्यापृतत्वात्। 'णिरंतरं' इति वचनं द्रव्यार्थिकनयाश्रितशिष्यानुग्राहकं, प्रतिषेध-विरहितविधेः प्रतिपादनत्वात्।

तात्पर्यमेतत्—'विजयादिषु द्विचरमाः।' इति सूत्रेण विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वं[1] तेषामहमिन्द्राणां सिद्धं। अत्र पुनः सर्वार्थसिद्धिविमाने उत्पद्य ततश्च्युता नियमेन मनुष्यभवमवाप्य दैगम्बरीदीक्षामादाय स्वशुद्धात्मानं ध्यायन्तः सन्तः तस्मिन्नेव भवे सिद्ध्यन्ति अतो न तेषामन्तरं भवतीति ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले कल्पातीतदेवानामन्तरकथनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

दोष नहीं आता है, क्योंकि अन्तर नहीं है, यह वचनपर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने वाले शिष्यों का अनुग्रहकारी है, क्योंकि यह वचन विधि से रहित प्रतिषेध में ही व्यापार करता है। 'निरन्तर है' यह वचन द्रव्यार्थिक शिष्यों का अनुग्राहक है, क्योंकि वह प्रतिषेध से रहित विधि का प्रतिपादक है।

'तात्पर्य यह है कि—'विजयादिषु द्विचरमाः' अर्थात् विजय, वैजयंत, जयन्त, अपराजित इन चार अनुत्तर विमान के देव द्विचरम—मनुष्य के दो भव लेकर मोक्ष जाते हैं। इस सूत्र के अनुसार विजय आदि विमानों से च्युत होकर सम्यक्त्व से पतित न होकर मनुष्यों में जन्म लेकर संयम की आराधना करके अर्थात् मुनिव्रत का पालन करते हुए समाधिपूर्वक मरण करके पुनः विजय आदि विमानों में जन्म धारण करते हैं और वहाँ से च्युत होकर पुनः मनुष्य भव में आकर सिद्धपद को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा द्विचरमदेहपना उन अहमिन्द्र देवों के सिद्ध होता है।

यहाँ साररूप में यह जानना है कि यहाँ पुनः सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होकर वहाँ से च्युत होने वाले देव नियम से मनुष्य भव को प्राप्त करके जैनेश्वरी दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करके अपने शुद्धात्मा का ध्यान करते हुए उसी भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, अतः उनके अन्तर नहीं होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में कल्पातीत देवों का अन्तर बतलाने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ, अध्याय ४, सूत्र २६

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन द्वादशसूत्रैः एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे इन्द्रियमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्येन एकेन्द्रियाणामन्तरकथनत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियाणामन्तरप्रतिपादनत्वेन ''बादरएइंदिय-'' इत्यादिना त्रीणिसूत्राणि। तत्पश्चात् तृतीयस्थले सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामन्तरनिरूपणत्वेन ''सुहुमे-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले द्वीन्द्रियादि-पंचेन्द्रियान्तानामन्तरनिरूपणत्वेन ''बीइंदिय-'' इत्यादिसूत्रत्रयं इति समुदायपातनिका।

संप्रति इंद्रियमार्गणायां एकेन्द्रियाणामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३५।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।३६।।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।।३७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां जीवानां अंतरं कियत्कालपर्यन्तं भवति, इति पृच्छासूत्रमवतार्य जघन्योत्कृष्टाभ्यामंतरं प्रतिपादितमत्र ।**

कश्चिदाह—एकबारपृच्छायाश्चैव सकलार्थप्ररूपणायाः संभवात् किमर्थं पुनः पुनः पृच्छा क्रियते ?

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में बारह सूत्रों के द्वारा एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर बतलाने हेतु ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''बादरएइंदिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''सुहुमे'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''बीइंदिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब इन्द्रियमार्गणा में एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३५।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल तक एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर होता है।।३६।।

उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपमप्रमाण काल तक एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर होता है।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन्द्रिय मार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है इस प्रकार का पृच्छा सूत्र अवतरित करके यहाँ उनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर प्रतिपादित किया गया है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

एक बार पृच्छा से ही समस्त अर्थ का प्ररूपण होना संभव होने से, फिर बार-बार यह पृच्छा क्यों की जाती है ?

आचार्यो ब्रूते — नेमानि पृच्छासूत्राणि, किंतु आचार्याणामाशंकितवचनानि उत्तरसूत्रोत्पत्तिनिमित्तानि, ततो न दोषोऽस्ति ।

जघन्येनान्तरं क्षुद्रभवग्रहणकालमात्रं। उत्कर्षेण — एकेन्द्रियेभ्यो निर्गतः त्रसकायिकेषु एव भ्रमन् पूर्वकोटि-पृथक्त्वाधिक-द्विसागरोपमसहस्रमात्रत्रसस्थितेः उपरि तत्रावस्थानं न करोतीति तस्योत्कृष्टांतरं ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले सामान्येनैकेन्द्रियाणामन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना बादरैकेन्द्रियजीवानामंतरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३८।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।३९।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।४०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **बादरैकेन्द्रियेभ्यो निर्गत्य सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु असंख्यातलोकमात्रकालादुपरि अवस्थानाभावात्।**

भवतु नाम एतदन्तरं बादरैकेन्द्रियाणां, न तेषां पर्याप्तानामपर्याप्तानां च, सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु अविवक्षितबादरैकेन्द्रियेषु च परिभ्रमतः पूर्वोक्तान्तरात् अत्यधिकान्तरं लभ्यते ?

आचार्य इस शंका का समाधान करते हैं कि —

ये पृच्छासूत्र नहीं है, किन्तु आचार्यों के आशंकात्मक वचन हैं, जो अगले सूत्र की उत्पत्ति के निमित्त के रूप में कहे गये हैं, इसलिए कोई दोष नहीं है।

जघन्य से इनका अन्तर क्षुद्रभवग्रहण काल मात्र है। उत्कृष्टरूप से — एकेन्द्रिय जीवों में से निकलकर त्रसकायिक जीवों में ही भ्रमण करने वाले जीव के पूर्वकोटिपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपमप्रमाण स्थिति से ऊपर त्रसकायिकों में रहने का अभाव है, यह उनका उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य से एकेन्द्रियों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३८।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणमात्र काल तक उक्त एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर होता है।।३९।।

उत्कृष्ट से बहुत असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उक्त एकेद्रिय जीवों का अन्तर होता है।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — बादर एकेन्द्रिय जीवों में से निकलकर सूक्ष्म एकेन्द्रियों में बहुत असंख्यात लोक प्रमाण काल से ऊपर रहना संभव नहीं है। अर्थात् वहाँ उनके अवस्थान का अभाव पाया जाता है।

शंका — यह बहुत असंख्यात लोकप्रमाण काल का अन्तर बादर एकेन्द्रिय सामान्य जीवों का भले ही हो, परन्तु यह अन्तर पृथक्-पृथक् बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों व अपर्याप्तकों का नहीं हो सकता, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियें में तथा अविवक्षित पर्याप्त या अपर्याप्त बादर एकेन्द्रियों में परिभ्रमण करने वाले उसके पूर्वोक्त अन्तर से अधिक बड़ा अन्तरकाल प्राप्त होता है ?

भवतु नाम, पूर्वोक्तान्तरात् एतस्यान्तरस्य अत्यधिकत्वं, तर्ह्यपि एतेषामन्तरकालः पूर्वोक्तान्तरकाल इव असंख्यातलोकमात्र एव, नानन्तः, अनंतान्तरोपदेशाभावात् बादरैकेन्द्रियाणां जीवानामिति ।

एवं द्वितीयस्थले बादरैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानां अंतरकथनमुख्यत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इदानीं सूक्ष्मैकेन्द्रियाणामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।४१।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।४२।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पि-णीओ-उस्सप्पिणीओ।।४३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूक्ष्मैकेन्द्रियेभ्यो निर्गतस्य बादरैकेन्द्रियेषु चैव भ्रमतः बादरैकेन्द्रियस्थितेरुपरि अवस्थानाभावात्। तेषां पर्याप्तापर्याप्तानामपि एतस्मादन्तरादधिकमन्तरं भवति, अविवक्षितसूक्ष्मैकेन्द्रियेष्वपि संचारोपलंभात्। किंतु तर्ह्यपि अंगुलस्य असंख्यातभागमात्रं एवान्तरं भवति, अन्योपदेशाभावात्[१]।**

समाधान — पूर्वोक्त अन्तर से यह पर्याप्तक व अपर्याप्तकों का अलग-अलग अन्तर काल अधिक बड़ा भले ही हो, पर तो भी इन पर्याप्त व अपर्याप्त एकेन्द्रिय बादर जीवों का अन्तर पूर्वोक्त अन्तरकाल के समान असंख्यात लोकप्रमाण रहता है। अनन्त नहीं होता है, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय जीवों के अनन्त कालप्रमाण अन्तर का उपदेश नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।४१।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर होता है।।४२।।

उत्कृष्ट से असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर होता है, जो अंगुल के असंख्यावें भाग प्रमाण होता है।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सूक्ष्म एकेन्द्रियों में से निकलकर बादर एकेन्द्रियों में ही भ्रमण करने वाले जीव के बादर एकेन्द्रिय की स्थिति से ऊपर वहाँ रहने का अभाव है। उक्त जीवों के पर्याप्त व अपर्याप्त का अलग-अलग अन्तर यद्यपि पूर्वोक्त प्रमाण से अधिक होता है, फिर भी उन जीवों का अविवक्षित सूक्ष्म एकेन्द्रियों में भी संचार पाया जाता है। किन्तु फिर भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण ही अन्तर होता है, क्योंकि इस प्रमाण से अधिक प्रमाण का अन्य कोई उपदेश नहीं पाया जाता है।

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-२०१

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मानां एकेन्द्रियाणां अंतरकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

द्वीन्द्रियादिपंचेन्द्रियान्तानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।४४।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।४५।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।४६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विवक्षितेन्द्रियेभ्यो निर्गतस्य अविवक्षितेन्द्रियादिषु आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनकालप्रमाणं परिवर्तने विरोधाभावात्।**

एवं चतुर्थस्थले द्वीन्द्रियादिजीवानां अंतरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इंद्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों का तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।४४।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक द्वीन्द्रियादि जीवों का अन्तर होता है।।४५।।

उत्कृष्ट से अनन्त काल तक उक्त द्वीन्द्रियादि जीवों का अन्तर होता है, जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन के बराबर होता है।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। विवक्षित इन्द्रियों वाले जीवों में से निकलकर अविवक्षित एकेन्द्रिय आदि जीवों में आवली के असंख्यातवें भाग पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमण करने में कोई विरोध नहीं आता है।

इस तरह से चतुर्थ स्थल में दो इंद्रिय आदि जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन द्वादशसूत्रैः कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावद् प्रथमस्थले पृथ्वीचतुष्कानामन्तरनिरूपणत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले वनस्पतिकायिक-निगोदानां अंतरकथनमुख्यत्वेन ''वणप्फदि-'' इत्यादिसूत्रत्रयं । ततः परं तृतीयस्थले बादरवनस्पतिकायिक-प्रत्येकशरीरजीवानामंतरनिरूपणत्वेन ''बादरवणप्फदि-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। तदनंतरं चतुर्थस्थले त्रसकायिकानामंतरप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणीति समुदायपातनिका।

संप्रति कायमार्गणायां पृथिव्यादिचतुष्कानामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।४७।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।४८।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।४९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **विवक्षितपृथिवीकायिकादिशरीरं मुक्त्वा अविवक्षितवनस्पतिकायादिषु आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि परिभ्रमितुं संभवोपलंभात्।**

अथ कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में बारह सूत्रों के द्वारा कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पृथ्वीचतुष्क का अन्तर निरूपण करने वाले ''कायाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''वणप्फदि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''बादरवणप्फदि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका अधिकार के प्रारंभ में कही गई है।

अब कायमार्गणा में पृथिवीकायिकचतुष्क का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।४७।।

कम से कम क्षुद्रभवग्रहण काल तक पृथिवीकायिक आदि उक्त जीवों का अन्तर होता है।।४८।।

उत्कृष्ट से असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अनन्त काल तक उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवों का अन्तर होता है।।४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — विवक्षित पृथिवीकायिक आदि काय को छोड़कर अविवक्षित वनस्पतिकाय आदि जीवों में आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तन भ्रमण करना संभव है।

एवं प्रथमस्थले पृथिवीकायिकादिचतुष्काणामंतरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इदानीं वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

वणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५०।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।५१।।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।।५२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अर्पितवनस्पतिकायाद् निर्गतस्यानर्पितपृथिवीकायादिषु एव परिभ्रमतः असंख्यातलोकप्रमाणकालं मुक्त्वान्यस्यान्तरस्यासंभवात्।**

एवं द्वितीयस्थले निगोदजीवानां अंतरकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरजीवानामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५३।।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पृथिवीकायिक के चार भेद वाले जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वनस्पतिकायिक निगोदिया बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५०।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक उक्त वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर होता है।।५१।।

उत्कृष्ट से असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उक्त वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का अन्तर होता है।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — विवक्षित वनस्पतिकाय से निकलकर अविवक्षित पृथिवीकायादिकों में ही भ्रमण करने वाले जीव के असंख्यातलोकप्रमाण काल को छोड़कर अन्य कालप्रमाण अन्तर होना असंभव है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में निगोदिया जीवों का अन्तर कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५३।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।५४।।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं।।५५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**विवक्षितवनस्पतिकायेभ्यो निर्गतस्याविवक्षितनिगोदजीवादिषु भ्रमतः सार्धद्वयपुद्गलपरिवर्तनेभ्योऽधिकांतरानुपलंभात्।**

एवं तृतीयस्थले प्रत्येकवनस्पतिजीवानां अंतरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

त्रसकायिकानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतरति —

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५६।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।५७।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ।५८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**विवक्षितत्रसकायेभ्यो निर्गत्याविवक्षितवनस्पतिकायिकादिषु आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानामुपलंभात्।**

एवं चतुर्थस्थले त्रसकायिकानामंतरनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर होता है।।५४।।

उत्कृष्ट से अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का अन्तर होता है।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विवक्षित वनस्पतिकायिक जीवों में से निकलकर अविवक्षित निगोद आदि जीवों में भ्रमण करने वाले जीव के ढाई पुद्गलपरिवर्तनों से अधिक अन्तरकाल नहीं पाया जा सकता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में प्रत्येक वनस्पति जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसकायिक जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त व अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५६।।

जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक उक्त त्रसकायादि जीवों का अन्तर होता है।।५७।।

उत्कृष्ट से अनन्त काल तक त्रसकायादि उक्त जीवों का अन्तर होता है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण के बराबर है।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विवक्षित त्रसकायिक जीवों में से निकलकर अविवक्षित वनस्पतिकायादि जीवों में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ स्थलपंचकेन एकविंशतिसूत्रैः योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनामंतरनिरूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले सामान्यकाय-योगिनामौदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनामन्तरकथनत्वेन ''कायजोगीणं-'' इत्यादिसूत्रषट्कं । तदनु तृतीयस्थले वैक्रियकवैक्रियकमिश्रयोगिनामंतरकथनत्वेन ''वेउव्विय-'' इत्यादिषट्सूत्राणि । तदनंतरं चतुर्थस्थले आहाराहार-मिश्रकाययोगिनामंतरनिरूपणत्वेन ''आहारकायजोगि-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। तत्पश्चात् पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनामन्तरप्ररूपणत्वेन ''कम्मइय-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका।

अधुना योगमार्गणायां मनोयोगिवचनयोगिनामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५९।।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा योगमार्गणा नामका चतुर्थ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में मनोयागी और वचनयोगी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में सामान्य काययोगी, औदारिक एवं औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''कायजोगीणं'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके आगे तृतीय स्थल में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''वेउव्विय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''आहारकायजोगि'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम स्थल में कार्मणकाययोगियों का अन्तर प्ररूपण करने वाले ''कम्मइय'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब योगमार्गणा में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणानुसार पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५९।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।६०।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।६१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मनोयोगात्काययोगं वचनयोगं वा गत्वा सर्वजघन्यमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनो मनोयोगं आगतस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तान्तरोपलंभात्। शेषचतुर्मनोयोगिनां पंचवचनयोगिनां चैवमेवांतरं प्ररूपयितव्यं, भेदाभावात्।**

अत्र एकसमयः किन्न लभ्यते ?

न, यदा एकमनोयोगस्य वचनयोगस्य वा व्याघातो भवति, अथवा विवक्षितयोगिनो जीवस्य मरणं भवति, तदा केवलं एकसमयांतरेण पुनः अनन्तरसमये तस्यैव मनोयोगस्य वचनयोगस्य वा प्राप्तिर्न संभवति।

उत्कर्षेण—मनोयोगात् वचनयोगं गत्वा तत्र सर्वोत्कृष्टकालं स्थित्वा पुनः काययोगं गत्वा तत्रापि सर्वचिरं कालं गमयित्वा एकेन्द्रियेषूत्पद्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि परिवर्त्य पुनो मनोयोगं गतस्य तदुपलंभात्। शेषचतुर्मनोयोगिनां पंचवचनयोगिनां चैवं अंतरं कथयितव्यम्, विशेषाभावात्।

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनामंतरनिरूपणपरत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

जघन्य से पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों का अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।।६०।।

उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक पाँच मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का जो अंतर होता है वह असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण के बराबर होता है।।६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनोयोग से काययोग में अथवा वचनयोग में जाकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल तक वहाँ रहकर पुनः मनोयोग में आने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है। शेष चार मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों का भी इसी प्रकार अन्तर प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि इस अपेक्षा उन सबमें कोई अन्तर नहीं है।

शंका—यहाँ एक समयप्रमाण अन्तर क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जब एक मनोयोग या वचनयोग का विघात हो जाता है या विवक्षित योग वाले जीव का मरण हो जाता है, तब केवल एक समय के अन्तर से पुनः अनन्तर समय में उसी मनोयोग या उसी वचनयोग की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

उत्कृष्ट से—मनोयोग से वचनयोग में जाकर वहाँ अधिक काल तक रहकर पुनः काययोग में जाकर और वहाँ भी सबसे अधिक काल व्यतीत करके एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गलपरिवर्तन में परिभ्रमण कर पुनः मनोयोग में आये हुए जीव के उक्त प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है। शेष चार मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीवों का अन्तरकाल इसी प्रकार प्ररूपित करना चाहिए, क्योंकि इस अपेक्षा से उनमें कोई विशेषता नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इदानीं सामान्येन काययोगिनामन्तरनिरूपणाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।६२।।

जहण्णेण एगसमओ।।६३।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।६४।।

ओरालियकायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।६५।।

जहण्णेण एगसमओ।।६६।।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।६७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**काययोगात् मनोयोगं वचनयोगं वा गत्वा एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मृते व्याघातिते वा काययोगं गतस्य जघन्येनैकसमयः उपलभ्यते। उत्कर्षेण—काययोगात् मनोयोगं वचनयोगं च परिपाटीक्रमेण द्वयोरपि योगयोः सर्वोत्कृष्टकालं स्थित्वा पुनः काययोगमागतस्यान्तर्मुहूर्तमात्रान्तरं लभ्यते।**

औदारिककाययोगस्यान्तरमेवमेव ज्ञातव्यं।

औदारिकमिश्रयोगिनोऽपर्याप्तभावेन मनोवचनयोगविरहितस्य कथमन्तरस्य एकसमयो भवति ?

अब सामान्य से काययोगी जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

काययोगी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।६२।।

जघन्य से एक समय तक काययोगी जीवों का अन्तर होता है।।६३।।

काययोगी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है।।६४।।

औदारिककाययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर एक समय होता है।।६५।।

औदारिक काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का जघन्य अन्तर एक समय होता है।।६६।।

औदारिककाययोगी व औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है।।६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—काययोग से मनोयोग में या वचनयोग में जाकर एक समय वहाँ रहकर दूसरे समय में मरण करने या योग के व्याघातित होने पर पुनः काययोग को प्राप्त हुए जीव के एक समय का जघन्य अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्ट से—काययोग से मनोयोग और वचनयोग में परिपाटी से क्रमशः जाकर और उन दोनों ही योगों में उनके सर्वोत्कृष्ट काल तक रहकर पुनः काययोग में आए हुए जीव के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है।

औदारिककाययोगी जीवों का अन्तर इसी प्रकार जानना चाहिए।

शंका—औदारिकमिश्रकाययोगी तो अपर्याप्त अवस्था में होता है जब कि जीव के मनोयोग और

न, औदारिकमिश्रकाययोगात् एकविग्रहं कृत्वा कार्मणयोगे एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये औदारिकमिश्रं गतस्य एकसमयान्तरं उपलभ्यते।

उत्कर्षेण — औदारिककाययोगात् चतुर्मनोयोगचतुर्वचनयोगेषु परिणम्य कालं कृत्वा त्रयस्त्रिंशदायुःस्थितिकेषु देवेषूत्पद्य स्वकस्थितिं स्थित्वा द्वौ विग्रहौ कृत्वा मनुष्येषूत्पद्य औदारिकमिश्रकाययोगेन दीर्घकालं स्थित्वा पुनः औदारिककाययोगं गतस्य नवभिरन्तर्मुहूर्तैः द्वाभ्यां समयाभ्यां सातिरेकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपममात्रान्तरोपलंभात्।

औदारिकमिश्रयोगस्य अंतर्मुहूर्तोनपूर्वकोटिसातिरेकाणि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अंतरं भवति। नारकेभ्यः पूर्वकोट्यायुष्कमनुष्येषूत्पद्य औदारिकमिश्रकाययोगस्यादिं कृत्वा सर्वलघुकालेन पर्याप्तीः समाप्य औदारिक-काययोगेनान्तरं कृत्वा देशोनपूर्वकोटिकालं गमयित्वा त्रयस्त्रिंशदायुःस्थितिमद्देवेषूत्पद्य पुनः विग्रहं कृत्वा औदारिकमिश्रकाययोगं गतस्य तदुपलंभात्।

एवं द्वितीयस्थले काययोगि-औदारिक-औदारिकमिश्रयोगिनामन्तरकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

इदानीं वैक्रियक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनामंतरप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

वेउव्वियकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।६८।।

वचनयोग होता ही नहीं है, अतएव औदारिकमिश्रकाययोग का एक समय अन्तर किस प्रकार हो सकता है ?

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोग से एक विग्रह करके कार्मणकाययोग में एक समय रहकर दूसरे समय में औदारिकमिश्रकाययोग में आए हुए जीव के औदारिकमिश्रकाययोग का एक समय अन्तर प्राप्त होता है।

उत्कृष्ट से — औदारिककाययोग से चार मनोयोगों व चार वचनयोगों में परिणमित हो मरण कर तेतीस सागरोपमप्रमाण आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न होकर वहाँ अपनी स्थितिप्रमाण रहकर पुनः दो विग्रह करके मनुष्यों में उत्पन्न हो औदारिकमिश्रकाययोग के साथ दीर्घ काल तक रहकर पुनः औदारिककाययोग के प्राप्त हुए जीव के नौ अन्तर्मुहूर्तों व दो समयों से अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण औदारिककाययोग का अन्तर प्राप्त होता है।

औदारिकमिश्रकाययोग का भी अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि से अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है, क्योंकि नारकियों में से निकलकर पूर्वकोटि आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न होकर औदारिकमिश्रकाययोग का प्रारंभ कर कम से कम काल में पर्याप्तियों को पूर्ण करके औदारिककाययोग के द्वारा औदारिकमिश्रकाययोग का अन्तर कर, कुछ कम पूर्वकोटि काल व्यतीत करके तेतीस सागरोपम की आयु वाले देवों में उत्पन्न हो, पुनः विग्रह करके औदारिकमिश्रकाययोग को प्राप्त होने वाले जीव के उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में काययोगी जीवों में औदारिक और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिककाययोगी का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।६८।।

जहण्णेण एगसमओ।।६९।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।७०।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।७१।।

जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरेयाणि।।७२।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।७३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**वैक्रियिककाययोगात् मनोयोगं वचनयोगं वा गत्वा तत्रैकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये व्याघातवशेन वैक्रियिककाययोगं गतस्य तदुपलंभात्। उत्कर्षेण सूत्रोक्तकालान्तरं सुगममेव ।**

वैक्रियिकमिश्रकाययोगस्य जघन्येन कथ्यते—तिर्यग्भ्यः मनुष्येभ्यो वा देवेषु नारकेषु वा उत्पद्य दीर्घकालेन षट्पर्याप्तीः परिपूर्य वैक्रियिककाययोगेन वैक्रियिकमिश्रकाययोगं अंतरयित्वा देशोनदशवर्षसहस्राणि स्थित्वा तिर्यक्षु मनुष्येषु वोत्पद्य सर्वजघन्यकालेन पुनरागत्य वैक्रियिकमिश्रं गतस्य सातिरेकदशवर्ष-मात्रान्तरोपलंभात्।

कथमेतेषां सातिरेकत्वं ?

न, किंच—वैक्रियिकमिश्रकालात् तिर्यग्मनुष्य पर्याप्तानां गर्भजानां जघन्यायुषो बहुत्वोपलंभात्[१]।

वैक्रियिककाययोगियों का जघन्य अन्तर एक समय है।।६९।।

वैक्रियिककाययोगियों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन बराबर है।।७०।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।७१।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का जघन्य अन्तर कुछ अधिक दश हजार वर्ष प्रमाण होता है।।७२।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण के बराबर है।।७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वैक्रियिककाययोग से मनोयोग या वचनयोग में जाकर वहाँ एक समय तक रहकर दूसरे समय में उस योग का व्याघात हो जाने के कारण वैक्रियिककाययोग को प्राप्त करने वाले जीव के एक समय प्रमाण अन्तर पाया जाता है। उत्कृष्टरूप से सूत्र कथित अन्तर सुगम ही है।

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोग का जघन्य अन्तर कहा जा रहा है—तिर्यंचों से अथवा मनुष्यों से देव व नारकियों में उत्पन्न होकर दीर्घ काल द्वारा छह पर्याप्तियाँ पूरी कर वैक्रियिककाययोग के द्वारा वैक्रियिकमिश्रकाययोग का अन्तर करके कुछ कम दश हजार वर्ष तक वहीं रहकर तिर्यंचों अथवा मनुष्यों में उत्पन्न हो, सबसे कम काल में पुनः देव या नरक गति में आकर वैक्रियिकमिश्रयोग को प्राप्त हुए जीव के कुछ अधिक दश हजार वर्ष प्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है।

शंका—इन दश हजार वर्षों के अधिकपना कैसे कहा गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैक्रियिकमिश्रयोग के काल की अपेक्षा तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्त गर्भज जीवों की जघन्य आयु बहुत पायी जाती है।

---

१. धवला पुस्तक ७, पृ. २१०।

उत्कर्षेण—वैक्रियिकमिश्रयोगात् वैक्रियिककाययोगं गत्वान्तरं कृत्वा असंख्यातपुद्गलपरिवर्तनानि परिवर्त्य वैक्रियिकमिश्रं गतस्य तदुपलंभात्।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनामन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

आहार-आहारमिश्रयोगिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।७४।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।७५।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।७६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**आहारकाययोगादन्ययोगं गत्वा सर्वलघुकालं स्थित्वा पुनः आहारकाययोगं गतस्यान्तर्मुहूर्तान्तरमुपलभ्यते।**

एकसमयः किन्नोपलभ्यते ?

न लभ्यते, आहारकाययोगस्य व्याघाताभावात्। एवं आहारमिश्रकाययोगस्यापि वक्तव्यं। विशेषतया-आहारशरीरमुत्थाप्य सर्वजघन्येन कालेन पुनरपि उत्थापयतः प्रथमतः अंतरपरिसमाप्तिः कर्तव्या।

उत्कृष्ट से—वैक्रियिकमिश्रकाययोग से वैक्रियिककाययोग में जाकर वैक्रियिकमिश्रकाययोग का अन्तर प्रारंभ कर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनकाल तक परिभ्रमण कर पुनः वैक्रियिकमिश्रकाययोग में जाने वाले जीव के यह उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोगी एवं वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।७४।।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है।।७५।।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है।।७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आहारककाययोग से अन्य योग में जाकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त वहाँ रहकर पुनः आहारककाययोग को प्राप्त हुए जीव के आहारककाययोग का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

शंका—आहारककाययोग का एक समय मात्र अन्तर क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आहारककाययोग का व्याघात नहीं होता है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोग का भी अन्तर कहना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि आहारक शरीर को उत्पन्न करके सबसे कम काल में फिर भी आहारकशरीर को उत्पन्न करने वाले जीव के पहले ही अन्तर की समाप्ति कर देनी चाहिए।

उत्कर्षेण किञ्चिन्न्यूनं अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनकालप्रमाणं। तथाहि—अनादिमिथ्यादृष्टिजीवेनार्द्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाणस्य कालावशेषे प्रथमसमये उपशमसम्यक्त्वं संयमं च युगपत् गृहीतं। तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा (१) अप्रमत्तो भूत्वा (२) आहारशरीरं बंधयित्वा (३) अप्रमत्तात् प्रच्युत्य प्रमत्तो भूत्वा (४) आहारशरीरमुत्थाप्यान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा (५) आहारकाययोगी भूत्वा तस्यादिं कृत्वा एकसमयं स्थित्वा मृतः। इत्थमाहारकाययोगस्यान्तरं प्रारब्धं। पश्चात् तेनैव जीवेन उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणकालं परिभ्रम्यान्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे किञ्चित् न्यूनमर्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणमन्तरकालं समाप्य (६) अन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा (७) अबंधभावं गतः, तस्य यथाक्रमेण आहारकाययोगस्याष्टभिः आहारमिश्रकाययोगस्य सप्तभिर्वा अंतर्मुहूर्तैःऊनमर्द्धपुद्गल-परिवर्तनमात्रमन्तरं उपलभ्यते।

एवं चतुर्थस्थले आहारकाय-आहारमिश्रकाययोगिनामंतरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इदानीं कार्मणकाययोगिनामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।७७।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं।।७८।।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।।७९।।

उत्कृष्ट से कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल प्रमाण अन्तर है। वह इस प्रकार है—

अनादि मिथ्यादृष्टि एक जीव के अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण संसार शेष रहने के प्रथम समय में उपशमसम्यक्त्व और संयम इन दोनों का एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) अप्रमत्त होकर (२) आहारशरीर को बंध करके (३) अप्रमत्त से च्युत हो प्रमत्त होकर (४) आहारकशरीर को उत्पन्न करके वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहा (५) और आहारकाययोगी होकर उसका प्रारंभ करके वहाँ एक समय रहकर मर गया। इस प्रकार आहारककाययोग का अन्तर प्रारंभ हुआ। पश्चात् वही जीव उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमण करके संसार के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल समाप्त कर (६) वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर (७) अबंधक भाव को प्राप्त हो गया। ऐसे जीव के यथाक्रम से आहारककाययोग का आठ और आहारकमिश्रकाययोग का सात अन्तर्मुहूर्त से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में आहारककाययोगी एवं आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब कार्मणकाययोगी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।७७।।

कार्मणकाययोगियों का जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण होता है।।७८।।

कार्मणकाययोगियों का उत्कृष्ट अन्तर असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण होता है, जो अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण के बराबर होता है।।७९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**त्रिविग्रहाणि कृत्वा क्षुद्रभवग्रहणकारकजीवेषूत्पद्य पुनो विग्रहं कृत्वा निर्गतस्तस्य त्रिसमयोनक्षुद्रभवग्रहणमात्रान्तरमुपलभ्यते, जघन्यान्तरमेतत्। उत्कर्षेण—कार्मणकाययोगादौदारिकमिश्रं वैक्रियिकमिश्रं वा गत्वा असंख्यातासंख्याताः अवसर्पिण्युत्सर्पिणीप्रमाणाः अंगुलस्यासंख्यातभागमात्राः तत्र स्थित्वा पुनः विग्रहं गतस्तस्यैतत्कालो लभ्यते ।**

एवं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनामंतरनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन त्रयोदशसूत्रैः वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। अत्र तावत् प्रथमस्थले स्त्रीवेदानामन्तरकथनमुख्यत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले पुरुषवेदानामंतर-निरूपणत्वेन ''पुरिस-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले भावनपुंसकवेदानामंतरप्ररूपणत्वेन ''णवुंसय-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं चतुर्थस्थले अपगतवेदानामंतरप्रतिपादनत्वेन ''अवगद-'' इत्यादिना सूत्र चतुष्टयमिति समुदायपातनिका ।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीन विग्रह करके क्षुद्रभवग्रहण करने वाले जीवों में उत्पन्न हो पुनः विग्रह करके निकलने वाले जीव के तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण कार्मणकाययोग का जघन्य अन्तर प्राप्त होता है। उत्कृष्ट से—कार्मणकाययोग से औदारिकमिश्र अथवा वैक्रियिकमिश्रकाययोग में जाकर अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण काल वहाँ रहकर पुनः विग्रहगति को प्राप्त हुए जीव के कार्मणकाययोग का सूत्रोक्त अन्तर काल पाया जाता है।

इस प्रकार पंचम स्थल में कार्मणकाययोगी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में तेरह सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में स्त्रीवेदियों का अन्तर कथन करने हेतु ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में पुरुषवेदी जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''पुरिस-'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में भाव नपुंसकवेदी जीवों का अन्तर प्ररूपण करने वाले ''णवुंसय-'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में अपगतवेदियों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु ''अवगद'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

इदानीं स्त्रीवेदानामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।८०।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।८१।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।८२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति । स्त्रीवेदात् निर्गतस्य पुरुष-नपुंसकवेदेषु चैव भ्रमतः आवलिकायाः असंख्यातभागमात्र पुद्गलपरिवर्तनानामंतरस्वरूपेणोपलंभात् उत्कृष्टान्तरमेतत्।**

एवं प्रथमस्थले स्त्रीवेदान्तरप्रतिपादनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना पुरुषवेदानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

पुरिसवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।८३।।

जहण्णेण एगसमओ।।८४।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।८५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**जघन्येन कश्चिन्महामुनिः पुरुषवेदेनोपशमश्रेणिमारुह्यापगतवेदो भूत्वा एकसमयस्यान्तरं कृत्वा द्वितीयसमये कालं कृत्वा पुरुषवेदेषूत्पन्नस्य एकसमयमात्रान्तरोपलंभात्। उत्कर्षेण सुगममेव।**

अब स्त्रीवेदी जीवों का अन्तर बताने के लिए तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।८०।।

स्त्रीवेदी जीवों का जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल तक होता है।।८१।।

स्त्रीवेदी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण काल के बराबर है।।८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। स्त्रीवेद से निकलकर पुरुषवेद और नपुंसकवेद में ही भ्रमण करने वाले जीव के आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनरूप स्त्रीवेद का उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में स्त्रीवेदियों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पुरुषवेदी जीवों का अन्तर कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

पुरुषवेदियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।८३।।

पुरुषवेदियों का जघन्य अन्तर एक समय होता है।।८४।।

पुरुषवेदियों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण के बराबर होता है।।८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य से कोई महामुनि पुरुषवेद सहित उपशमश्रेणी में चढ़कर अपगतवेदी हो एक समयप्रमाण पुरुषवेद का अन्तर करके दूसरे समय में मरणकर पुरुषवेदी जीवों में उत्पन्न होने वाले जीव के पुरुषवेद का एक समय प्रमाण अन्तर पाया है। उत्कृष्ट से कथन सुगम है।

एवं द्वितीयस्थले पुरुषवेदानामंतरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

नपुंसकवेदानामंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णवुंसयवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।८६।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।।८७।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।८८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अपर्याप्तकेषु क्षुद्रभवग्रहणमात्रायुःस्थितिकेषु नपुंसकवेदं मुक्त्वा स्त्री-पुरुष-वेदानामनुपलंभात् , पर्याप्तकेष्वपि अंतर्मुहूर्तमात्रकालव्यतिरिक्तं क्षुद्रभवग्रहणानुपलंभात्, अत्र नपुंसकवेदेषु क्षुद्रभवग्रहणमात्रान्तरं न लभ्यते।**

उत्कर्षेण — नपुंसकवेदान्निर्गतस्य स्त्रीपुरुषवेदेषु एव परिभ्रमतः सागरोपमशतपृथक्त्वादुपरि तत्रावस्थानाभावात्।

एवं तृतीयस्थले नपुंसकवेदान्तरनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना वेदविरहितानां महासाधूनामंतरप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।८९।।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९०।।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पुरुषवेदियों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब नपुंसकवेदी जीवों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

नपुंसकवेदियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।८६।।

नपुंसकवेदियों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है।।८७।।

नपुंसकवेदियों का उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण होता है।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयु वाले अपर्याप्तक जीवों में नपुंसकवेद को छोड़कर स्त्री व पुरुषवेद नहीं पाया जाता है और पर्याप्तकों में अन्तर्मुहूर्त के सिवाय क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण काल नहीं पाया जाता है। यहाँ नपुंसकवेदियों में क्षुद्रभवग्रहणमात्र अन्तर नहीं पाया जाता है।

उत्कृष्ट से — नपुंसकवेद से निकले हुए जीव का स्त्री-पुरुष वेदों में ही परिभ्रमण करते हुए सागरोपमशतपृथक्त्व से ऊपर वहाँ रहने का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में नपुंसकवेदी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदरहित महासाधुओं का अंतर बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अपगतवेदी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।८९।।

उपशम की अपेक्षा अपगतवेदी जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है।।९०।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।९१।।

खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।।९२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चित् साधुः उपशमश्रेणितोऽवतीर्य सर्वजघन्यमन्तर्मुहूर्तं सवेदी भूत्वान्तरं कृत्वा पुनः उपशमश्रेणिं चटित्वा अवेदत्वं गतस्तस्य जघन्यकालमुपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवः त्रीण्यपि करणानि कृत्वार्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये सम्यक्त्वं संयमं च युगपत् संप्राप्यान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा उपशमश्रेणिमारुह्यापगतवेदी भूत्वाधोऽवतीर्य सवेदो भूत्वांतरं कृत्वा उपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनकालं भ्रमित्वा पुनोऽन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे उपशमश्रेणिं चटित्वापगतवेदो भूत्वान्तरं समाप्तं कृतः, पुनश्च ततोऽवतीर्य क्षपकश्रेणिं चटित्वा अबंधकत्वं गतस्तस्य तदुपलभ्यते।

क्षपकश्रेण्यारोहकाणामपगतवेदानां पुनः वेदपरिणामानुत्पत्तेर्नास्ति तेषामन्तरं इति ज्ञातव्यं।

यः कश्चित् भव्यपुंगवः परवस्तुभ्यो रतिमपहृत्य स्वशुद्धात्मनि प्रीतिं विधत्ते स एव स्वसंवेदनज्ञानबलेन कर्मणां निर्जरां कृत्वापगतवेदो भूत्वा स्वशुद्धात्मोत्थं परमानंदसुखं अनुभवति स एव ज्ञानी भवति।

उक्तं च श्रीपद्मनंदिदेवैः ज्ञानस्य माहात्म्यं—

अज्ञो यद्भवकोटिभिः क्षपयति स्वं कर्म तस्माद् बहुः।
स्वीकुर्वन् कृतसंवरः स्थिरमना ज्ञानी तु तत्तत्क्षणात्।।

उपशम की अपेक्षा अपगतवेदी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण होता है।।९१।।

क्षपक की अपेक्षा अपगतवेदी जीवों का अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं।।९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई साधु उपशमश्रेणी से उतरकर सबसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल तक सवेदी होकर अपगतवेद का अन्तर कर पुनः उपशमश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेद भाव को प्राप्त होने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके अर्धपुद्गलपरिवर्तन के प्रथम समय में सम्यक्त्व और संयम को एक साथ ग्रहण किया और अन्तर्मुहूर्त रहकर उपशमश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी हो गया। वहाँ से फिर नीचे उतरकर सवेदी अपगतवेदी का अन्तर प्रारंभ किया और उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमण कर पुनः संसार के अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहने पर उपशमश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी हो अन्तर को समाप्त किया। पश्चात् फिर नीचे उतरकर क्षपक श्रेणी पर चढ़कर अबंधकभाव प्राप्त किया। इस प्रकार अपगतवेदियों का कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

क्षपकश्रेणी चढ़ने वालों के एक बार अपगतवेदी हो जाने पर पुनः वेद परिणाम की उत्पत्ति नहीं होती, यही उनका अन्तर जानना चाहिए।

जो कोई भव्यपुंगव परवस्तु से राग को छोड़कर अपनी शुद्धात्मा में प्रीति करते हैं, वही स्वसंवेदन ज्ञान के बल से कर्मों की निर्जरा करके वेदरहित होकर अपनी शुद्ध आत्मा से उत्पन्न परमानंद सुख का अनुभव करते हैं, वही सच्चे ज्ञानी कहलाते हैं।

श्री पद्मनंदि आचार्यदेव ने भी ज्ञान का माहात्म्य बताते हुए कहा है—

तीक्ष्णक्लेशहयाश्रितोऽपि हि पदं नेष्टं तपः स्यन्दनो।
नेयं तन्नयति प्रभुं स्फुटतरज्ञानैकसूतोज्झितः[१]।।

अज्ञानी मुनिः यावन्ति कर्माणि कोटिभवैः क्षपयति, तदपेक्षयापि बहूनि कर्माणि ज्ञानी संवरसहितः त्रिगुप्तिगुप्तः सन् एकाग्रमनाः भूत्वा नाशयति, किंच—ज्ञानसारथिरहितः तपःस्यन्दनः आत्मानं मोक्षस्थानं नेतुं न क्षमो भवतीति ज्ञात्वा ब्रह्मचर्यबलेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राण्याराध्य अपगतवेदो भूत्वा क्षपकश्रेणिमारुह्य स्वशुद्धात्मपदं प्राप्तव्यं भवद्भिरिति।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे
गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम
पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः कषायमार्गणानाम अधिकारो निगद्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सकषायवतां जीवानां अंतरनिरूपणत्वेन ''कसायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले अकषायवतां अंतरप्रतिपादनत्वेन ''अकसाई'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका भवति।

श्लोकार्थ—अज्ञानी जीव कठोर तप आदि के द्वारा जितने कर्मों को करोड़ वर्ष में क्षय करता है, उससे अधिक कर्मों को, स्थिर मन होकर संवर का धारी ज्ञानी (आत्मज्ञानी) जीव क्षणमात्र में क्षय कर देता है, सो ठीक ही है क्योंकि जिस तपरूपी रथ में तीक्ष्णक्लेशरूपी घोड़े लगे हुए हैं, किन्तु ज्ञानरूपी सारथी नहीं हैं, तो वह तपरूपी रथ कदापि आत्मारूपी प्रभु को मोक्षस्थान में नहीं ले जा सकता है।।

अज्ञानी मुनि जिन कर्मों को करोड़ों भवों की तपस्या द्वारा क्षय करते हैं, ज्ञानी मुनि उसकी अपेक्षा भी बहुत अधिक कर्मों को संवरसहित एवं तीन गुप्तियों से समन्वित होते हुए एकाग्रमना होकर नाश कर देते हैं, क्योंकि ज्ञानरूपी सारथी से रहित तपरूपी रथ आत्मा को मोक्षस्थान तक ले जाने में सक्षम नहीं होता है, ऐसा जानकर आप सभी को ब्रह्मचर्य के बल से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करके अपगतवेदी बनकर क्षपकश्रेणी में चढ़कर निज शुद्धात्म पद को प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नाम का अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''कसायाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का अन्तर कथन करने हेतु ''अकसाई'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका-श्लोक-१३०, पृ.५६

अधुना सकषायिजीवानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई-माणकसाई-मायकसाई-लोभकसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।९३।।

जहण्णेण एगसमओ।।९४।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।९५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कस्यचिद् जीवस्य क्रोधेन स्थित्वा मानादिं गतस्य द्वितीयसमये व्याघातेन, कालं कृत्वा नारकेषु उत्पादेन वा, आगतक्रोधोदयस्य एकसमयान्तरोपलंभात्। एवमेव शेषकषायाणामेकसमयान्तर-प्ररूपणा कर्तव्या। केवलं तु व्याघातेऽन्तरस्य एकसमयो नास्ति, व्याघाते क्रोधकषायस्यैवोदयदर्शनात्। किंतु मरणेन एकसमयो वक्तव्यः, मनुष्य-तिर्यग्देवेषु उत्पन्नप्रथमसमये मानमायालोभानां नियमेनोदयदर्शनात् प्रोक्तं जघन्यांतरं।**

उत्कर्षेण विवक्षितकषायाद् अविवक्षितकषायं गत्वोत्कृष्टमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा विवक्षितकषायमागतस्य तदुत्कृष्टकालोपलंभात्।

एवं प्रथमस्थले कषायसहितानां जीवानामंतरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

अब सकषायी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।९३।।

क्रोधादि चार कषाय वाले जीवों का जघन्य अन्तर एक समय होता है।।९४।।

क्रोधादि चार कषाय वाले जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।।९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—किसी जीव के क्रोधकषाय के साथ रहकर मानादि कषाय में जाने के दूसरे ही समय में व्याघात से अथवा मरणकर नारकी जीवों में उत्पत्ति हो जाने से क्रोध के उदय को प्राप्त हुए जीव के क्रोधकषाय का एक समय मात्र अन्तरकाल प्राप्त होता है। इसी प्रकार शेष कषायों के भी अन्तर की प्ररूपणा करनी चाहिए। केवल विशेषता यह है कि मानादि कषायों के व्याघात होने पर एक समय प्रमाण अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि व्याघात होने पर क्रोध का ही उदय देखा जाता है। किन्तु मरण के द्वारा मानादिकषायों का एक समय प्रमाण अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि मनुष्य, तिर्यंच व देवों में उत्पन्न हुए जीव के प्रथम समय में क्रमशः मान, माया व लोभ का नियम से उदय देखा जाता है। यह जघन्य अन्तर कहा गया है।

उत्कृष्ट से—विवक्षित कषाय से अविवक्षित कषाय में जाकर उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्तप्रमाणकाल तक रहकर विवक्षित कषाय में आये हुए जीव के उस कषाय का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इदानीमकषायिणामंतरनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

अकसाई अवगदवेदाण भंगो।।९६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**जघन्येनांतर्मुहूर्तमंतरं। उत्कर्षेण उपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणं। क्षपकं प्रतीत्य नास्त्यन्तरमिति ज्ञातव्यं अपगतवेदिनामिव।**

तात्पर्यमेतत्—क्रोधादिकषायारीन् कृशीकृत्य अकषायावस्थां प्राप्तुकामैः भवद्भिः स्वशुद्धात्मभावना भावयितव्या। पुनश्च—

यदा मोहात् प्रजायेते, रागद्वेषौ तपस्विनां।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात्[१]।।३९।।

इति चिंतनीयं निरन्तरम् ।

एवं द्वितीयस्थले अकषायिणामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अब कषायरहित जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अकषाय वाले जीवों का अन्तर अपगतवेदी जीवों के समान होता है।।९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण होता है। क्षपक की अपेक्षा अन्तर नहीं होता, निरन्तर है। इस प्रकार इस अपेक्षा से अकषाय वाले जीवों के अन्तर में अपगतवेदियों के अन्तर से भेद नहीं है।

तात्पर्य यह है कि—क्रोधादि कषायरूपी शत्रुओं को कृश करके अकषाय अवस्था को प्राप्त करने की इच्छा से आप सभी को अपनी शुद्धात्मा की भावना भानी चाहिए। पुनश्च कहा भी है—

श्लोकार्थ—जिस समय तपस्वियों के मोहकर्म के उदय से राग और द्वेष उत्पन्न होने लगें, उसी क्षण वे अपनी स्वस्थ आत्मा की भावना भाएँ, जिससे क्षणमात्र में वे रागद्वेष शांत हो जाएंगे।।३९।।

ऐसा निरन्तर चिंतन करते रहना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में कषाय रहित जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. समाधिशतक, श्लोक ३९।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन एकादशसूत्रैः ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते । तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिमिथ्याज्ञानिनां अंतरनिरूपणत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिना षट्सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले पंचविधज्ञानिनामंतरप्ररूपणत्वेन ''आभिणि'' इत्यादि सूत्रपञ्चकमिति समुदायपातनिका।

इदानीं मत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानिनां अंतरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी-सुदअण्णाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।९७

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।९८।।

उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।।९९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **मतिश्रुताज्ञानाभ्यां सम्यक्त्वं गृहीत्वा सम्यग्ज्ञानेषु जघन्यकालान्तरं प्राप्य पुनः मतिश्रुताज्ञाने गतस्य तदुपलंभात्। उत्कर्षेण — मतिश्रुताज्ञानिनोः सम्यक्त्वं गृहीत्वा संज्ञानेषु षट्षष्टिसागरोपम-देशोनकालस्यान्तरं प्राप्य पुनः सम्यग्मिथ्यात्वं गत्वा मिश्रज्ञानैः अंतरित्वा पुनः सम्यक्त्वं गृहीत्वा षट्षष्टिसागरदेशोन कालं भ्रमित्वा मिथ्यात्वं गतस्य तदुपलंभात्।**

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में ग्यारह सूत्रों के द्वारा ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों मिथ्याज्ञानी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में पाँचों प्रकार के ज्ञानी जीवों का अन्तर प्ररूपण करने हेतु ''आभिणि'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब कुमति और कुश्रुतज्ञानियों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणानुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।९७।।

मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।।९८।।

मति अज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम अर्थात् एक सौ बत्तीस सागरोपमकाल होता है।।९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मति अज्ञान व श्रुत अज्ञान अर्थात् कुमति-कुश्रुत ज्ञान से सम्यक्त्व ग्रहण कर मतिज्ञान व श्रुतज्ञान में आकर जघन्य काल का अन्तर देकर पुनः कुमति-कुश्रुत ज्ञान को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है। उत्कृष्टरूप से — मति-श्रुतअज्ञानी जीव के सम्यक्त्व को ग्रहण करके सम्यग्ज्ञान द्वारा कुछ कम छ्यासठ सागरोपम काल प्रमाण अन्तर देकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्व में जाकर मिश्रज्ञानों का अन्तर देकर पुनः सम्यक्त्व ग्रहण करके कुछ कम छ्यासठ सागरोपमप्रमाण काल

कुतो देशोनत्वं ?

उपशमसम्यक्त्वकालाद् द्वय-षट्षष्टि-अभ्यन्तरमिथ्यात्वकालस्य बहुत्वोपलंभात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां ज्ञानं मतिश्रुताज्ञानमिति मत्वा केचित् आचार्याः सम्यग्मिथ्यात्वेन सह नान्तरं कुर्वन्ति । तन्न घटते, सम्यग्मिथ्यात्वभावायत्तज्ञानस्य सम्यग्मिथ्यात्वं च प्राप्तजात्यन्तरस्य मतिश्रुताज्ञानत्वविरोधात्।

विभंगावधिज्ञानिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

विभंगणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१००।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१०१।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१०२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिद् देवो नारको वा विभंगज्ञानी दृष्टमार्गः सम्यक्त्वं गृहीत्वावधिज्ञानेन सह जघन्यमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा विभंगज्ञानं मिथ्यात्वं च युगपत् प्रतिपन्नस्तस्य जघन्यान्तरमुपलभ्यते। उत्कर्षेण — विभंगज्ञानस्य मति-अज्ञानं गत्वान्तरं प्राप्यावलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनकालप्रमाणं परिवर्त्य विभंगज्ञानं गतस्य तदुपलंभात्।**

तक परिभ्रमण कर मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले के दो छ्यासठ सागरोपमप्रमाण मतिश्रुत अज्ञानों का अन्तरकाल पाया जाता है।

शंका—दो छ्यासठ सागरोपमों में जो कुछ कम काल बतलाया है, ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि उपशमसम्यक्त्वकाल से दो छ्यासठ सागरोपमों के भीतर मिथ्यात्व का काल अधिक पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि के ज्ञान को मति-श्रुत अज्ञानरूप मानकर कितने ही आचार्य पूर्वोक्त अन्तर प्ररूपणा में सम्यग्मिथ्यात्व के साथ अन्तर नहीं करते हैं। पर यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वभाव के आधीन हुआ ज्ञान सम्यग्मिथ्यात्व के समान प्राप्त वह ज्ञान एक अन्य जाति का बन जाता है अतः उस ज्ञान को मति श्रुत अज्ञानरूप मानने में विरोध आता है।

अब विभंगावधिज्ञानियों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

विभंगज्ञानियों का अन्तर कितने काल होता है ?।।१००।।

विभंगज्ञानियों का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।।१०१।।

विभंगज्ञानियों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है, जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन के बराबर होता है।।१०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिसने सम्यक्त्व को प्राप्त करने का मार्ग देख लिया है, ऐसे किसी विभंगज्ञानी देव या नारकी जीव के सम्यक्त्व ग्रहण कर अवधिज्ञान के साथ जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर विभंगज्ञान और मिथ्यात्व को एक साथ प्राप्त होने पर विभंगज्ञान का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है। उत्कृष्ट से—विभंगज्ञान से मति अज्ञान को प्राप्तकर अन्तर प्रारंभ कर आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुद्गलपरिवर्तनप्रमाणकाल तक परिभ्रमण कर विभंगज्ञान को प्राप्त होने वाले जीव के विभंगज्ञान का सूत्रोक्त अन्तर काल पाया जाता है।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनामंतरनिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

इदानीं पंचविधज्ञानिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते —

आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१०३।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१०४।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।१०५।।

केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१०६।।

णत्थि अंतरं णिरंतरं।।१०७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **कश्चिद् देवो नारको वा मतिश्रुतावधिज्ञानेषु स्थितः, मिथ्यात्वं गत्वा कुमति-कुश्रुत-विभंगाज्ञानैरन्तरं प्राप्य पुनः मति-श्रुतावधिज्ञानं आगतः तस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तान्तरमुपलभ्यते।**

एवं मनःपर्ययज्ञानी संयतः तज्ज्ञानं विनाश्यान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा तस्यैव ज्ञानस्य पुनः आनेतव्यः।

उत्कर्षेण — कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिर्जीवः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्य प्रथमसमये उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपद्य तत्रैव देवनारकेषु विरोधाभावात् मतिश्रुतावधिज्ञानान्युत्पाद्य षडावलिकाप्रमाणं उपशमसम्यक्त्वकालमस्ति

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के अज्ञानी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब पाँच प्रकार के ज्ञानी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवों का अन्तर कितने काल होता है ?।।१०३।।

आभिनिबोधिक आदि उक्त चार ज्ञानियों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है।।१०४।।

आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण होता है।।१०५।।

केवलज्ञानियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१०६।।

केवलज्ञानियों में केवलज्ञान का अन्तर ही नहीं है, वह ज्ञान निरन्तर है।।१०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मति, श्रुत और अवधिज्ञानों में स्थित किसी देव या नारकी जीव के मिथ्यात्व में जाकर कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान व विभंगअज्ञान के द्वारा अन्तर को प्राप्त करके पुनः मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान में आने पर उक्त ज्ञानों का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी संयत जीव मनःपर्ययज्ञान को नष्ट करके अन्तर्मुहूर्त काल तक उस ज्ञान के बिना रहकर फिर उसी ज्ञान में लाया जाना चाहिए।

उत्कृष्ट से — किसी अनादिमिथ्यादृष्टि जीव ने अपने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल के प्रथम समय में उपशमसम्यक्त्व को ग्रहण किया और उसी अवस्था में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान उत्पन्न किये,

इति सासादनं गत्वान्तरं प्राप्य पुनः मिथ्यात्वेनार्द्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाणं भ्रमित्वान्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे सम्यक्त्वं प्रतिपद्य मतिश्रुतज्ञानयोरन्तरं समानीय पुनः अंतर्मुहूर्तं गत्वावधिज्ञानमुत्पाद्य तत्रैव तदनंतरं अपि समानीयान्तर्मुहूर्तेन केवलज्ञानमुत्पाद्याबंधभावं गतस्तस्योपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनान्तरमुपलभ्यते।

एवं मनःपर्ययज्ञानस्यान्तरं—उपशमसम्यक्त्वेन सह मनःपर्ययज्ञानस्य विरोधात् प्रथमसम्यक्त्वकालं समाप्य मुहूर्तपृथक्त्वे गते मनःपर्ययज्ञानस्यादौ अंते चान्तरं अस्य ज्ञानस्योत्पादयितव्यं।

केवलज्ञानस्य नास्त्यन्तरं, किंच-केवलज्ञाने समुत्पन्ने पुनः तस्य विनाशाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—अस्य केवलज्ञानस्य प्राप्त्यर्थमेव स्वाध्यायो ध्यानं तपश्चरणदीक्षाग्रहणादिकं वर्तते, प्रतिदिनं प्रतिक्षणं वा मम अस्य ज्ञानस्य लब्धये प्रयासो भवेदिति याचेऽहं पुनः पुनः भगवत्केवलितीर्थकरपादपयोरुहेषु।

एवं द्वितीयस्थले मतिज्ञानादिज्ञानपंचकानामन्तरप्ररूपणत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

क्योंकि देव और नारकी जीवों में उक्त अवस्था में इनके उत्पन्न होने में कोई विरोध नहीं आता है। फिर उपशम सम्यक्त्व के काल में छह आवली शेष रहने पर वह जीव सासादनगुणस्थान में गया और इस प्रकार मतिज्ञान आदि तीनों ज्ञानों का अन्तर प्रारंभ हो गया। फिर उसी जीव ने मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमण कर संसार के अन्तर्मुहूर्तमात्र शेष रहने पर सम्यक्त्व को ग्रहण करके मति-श्रुत ज्ञानों का अन्तर पूरा किया। पुनः अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत करके उसने अवधिज्ञान उत्पन्न कर लिया और उसी अवस्था में ही अवधिज्ञान का अन्तर पूरा किया। फिर उसने अन्तर्मुहूर्त काल से केवलज्ञान उत्पन्न कर अबंधक भाव प्राप्त कर लिया। ऐसे जीव के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान का उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

इसी प्रकार मनःपर्यय ज्ञान का भी उत्कृष्ट अन्तर उपशमसम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान का विरोध होने के कारण प्रथमोपशमसम्यक्त्व का काल समाप्त कर मुहूर्तपृथक्त्व हो जाने पर आदि में व अन्त के अन्तर में मनःपर्ययज्ञान को उत्पन्न कराना चाहिए।

केवलज्ञानियों के कोई अन्तर नहीं पाया जाता है, क्योंकि केवलज्ञान उत्पन्न होने पर फिर उसका विनाश नहीं होता है।

तात्पर्य यह है कि—इस केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए ही स्वाध्याय, ध्यान, तपश्चरण, दीक्षा ग्रहण आदिक कार्य किये जाते हैं। प्रतिदिन अथवा प्रतिक्षण मेरा इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास सफल होवे, ऐसी पुनः पुनः तीर्थंकर केवली भगवान के चरण कमलों में मेरी याचना है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मतिज्ञानादि पाँचों ज्ञानों का अन्तर प्ररूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण दशभिः सूत्रैः संयममार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यसंयत-सामायिकच्छेदोपस्थापन-परिहारशुद्धिसंयत—संयतासंयतानामन्तरप्रतिपादनार्थं ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि-सूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातशुद्धिसंयतानामन्तरप्ररूपणत्वेन ''सुहुम-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु तृतीयस्थले असंयतजीवानामंतरप्रतिपादनपरत्वेन ''असंजदाणं'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका।

इदानीं सामान्यसंयत-सामायिकच्छेदोपस्थापन-परिहारशुद्धिसंयत-संयतासंयतानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धि-संजद-संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१०८।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१०९।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।११०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। विवक्षितसंयमे स्थितः कश्चिद् जीवः असंयमं गत्वा पुनः विवक्षितसंयमे जघन्यकालेनान्तर्मुहूर्तेन आगतः, तस्य जघन्यान्तरं । सामायिक-छेदोपस्थापनसंयतः**

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में दश सूत्रों के द्वारा संयम मार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य संयत, सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धिसंयत-संयतासंयत और असंयत जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यातशुद्धि संयतों का अन्तर प्ररूपण करने हेतु ''सुहुम'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में असंयत जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने के लिए ''असंजदाणं'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्र की समुदायपातनिका हुई।

अब यहाँ पर सामान्य संयत, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धिसंयत एवं संयतासंयतों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

संयममार्गणानुसार संयत, सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारविशुद्धि-संयत और संयतासंयत जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१०८।।

संयत आदि उक्त संयमी जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।।१०९।।

संयत आदि उक्त संयमी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। विवक्षित संयम में स्थित किसी जीव को असंयम में ले जाकर जघन्य काल में पुनः विवक्षित संयम में लाने पर उस संयम का उक्त जघन्य

उपशमश्रेणिं चटित्वा सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातसंयमेषु गत्वान्तरं प्राप्य पुनोऽधः अवतीर्य सामायिक-छेदोपस्थापनसंयमेषु प्रविष्टस्तस्य जघन्यांतरं। परिहारशुद्धिसंयमात् सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयमं गृहीत्वा जघन्येनान्तर्मुहूर्तेण पुनः परिहारशुद्धिसंयममागतस्य जघन्यान्तरं ज्ञातव्यं।

उत्कर्षेण — अनादिमिथ्यादृष्टिः कश्चिद् जीवः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये प्रथमसम्यक्त्वं संयमं च युगपद् गृहीत्वान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं गत्वान्तरं प्राप्य उपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनं भ्रमित्वा पुनोऽन्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे संयमं प्रतिपद्य अंतरं समानीयान्तर्मुहूर्तं स्थित्वाऽबंधकत्वं गतस्तस्योपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनमात्रान्तर-मुपलभ्यते। परिहारशुद्धिसंयमे तु वर्षपृथक्त्वेन विना एतत्संयमग्रहणाभावात् अंतरेऽपि एष नियमो ज्ञातव्यः[१]।

संयतासंयतस्यापि अवसाने त्रीण्यपि करणानि कृत्वोपशमसम्यक्त्वं संयमासंयमं च गृहीतप्रथमसमयेऽन्तरं समानीयान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा संयमं गृहीत्वा अबंधकत्वं गतः इति वक्तव्यं ।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयमादीनामन्तरकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यातसंयतानामन्तरप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सुहुमसांपराइसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१११।।

अन्तर प्राप्त होता है, केवल विशेषता यह है कि सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीव के उपशम श्रेणी पर चढ़कर सूक्ष्मसाम्पराय व यथाख्यात संयमों के द्वारा अन्तर देकर पुनः श्रेणी से नीचे उतरने पर सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमों में आने पर उन दोनों संयमों का जघन्य अन्तर होता है तथा परिहारशुद्धिसंयम से सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम में ले जाकर अन्तर्मुहूर्त काल से पुनः परिहारशुद्धिसंयम में आये हुए जीव के परिहारशुद्धिसंयम का जघन्य अन्तर जानना चाहिए।

उत्कृष्ट से — अनादिमिथ्यादृष्टि कोई जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन के आदि समय में प्रथम सम्यक्त्व एवं संयम दोनों को एक साथ ग्रहण करके वहाँ अन्तर्मुहूर्त स्थित रहकर मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त करके उपार्ध पुद्गल परिवर्तन भ्रमण करके पुनः अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे। संसार में संयम को प्राप्त करके अन्तर को प्राप्त करके वहाँ अन्तर्मुहूर्त स्थित रहकर अबन्धकपने को प्राप्त हुआ उसके उपार्ध पुद्गलपरिवर्तन मात्र अन्तर प्राप्त हुआ। परिहारविशुद्धि संयम में तो वर्षपृथक्त्व के बिना इस संयम के ग्रहण का अभाव पाया जाता है इसलिए अन्तर में भी यही नियम जानना चाहिए।

संयतासंयत जीव के भी अवसान-अन्त में तीनों ही करणों को करके उपशम सम्यक्त्व व संयमासंयम को ग्रहण करने के प्रथम समय में ही अन्तरकाल समाप्त करके वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर संयम ग्रहण करके पुनः अबंधकपना प्राप्त होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य संयम आदि का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्मसांपराय-यथाख्यात संयतों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतों और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों का अन्तर कितने काल प्रमाण होता है ?।।१११।।

---

१. धवला पुस्तक ७, पृ. २२३।

उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।११२।।
उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।११३।।
खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।।११४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिन्महामुनिः उपशमश्रेण्यामारोहमाणः सूक्ष्मसांपरायिकसंयतः उपशान्तकषायो भूत्वा यथाख्यातसंयमेन अंतरं प्राप्य पुनः सूक्ष्मसांपरायिकसंयते पतितस्तस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तकालं लभ्यते। तथैव यथाख्यातसंयमात् अधोऽवतीर्य कश्चित् साधुः तत्र जघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः क्रमेणोपरि चटित्वा उपशांतकषायो वीतरागछद्मस्थो भूत्वा यथाख्यातसंयमं गतस्तस्यैतत्काल उपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिः त्रीण्यपि करणानि कृत्वा अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये प्रथमसम्यक्त्वं संयमं च युगपद् गृहीत्वान्तर्मुहूर्तेण सर्वजघन्येनोपशमश्रेणिं चटित्वा सूक्ष्मसांपरायिको जातः तत्र जघन्यान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा उपशान्तकषायो भूत्वा पुनः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतो बभूव, स एव मुनिः तस्य प्रथमसमये यथाख्यातशुद्धिसंयमस्यान्तरं आदिं कृत्वा पुनरन्तर्मुहूर्तेण अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने निपत्य सामायिकच्छेदोपस्थापनसंयमयोः पतितप्रथमसमये सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमान्तरस्यादिं कृत्वा क्रमेणाधोऽवतीर्य उपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनं भ्रमित्वावसाने सम्यक्त्वं संयमं च गृहीत्वोपशमश्रेणिं चटित्वा सूक्ष्मसांपरायिकः उपशान्तकषायश्च

उपशम की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातशुद्धिसंयतों के जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।।११२।

सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातशुद्धिसंयतों का उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।११३।।

क्षपक की अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों का अन्तर नहीं होता है, वे निरन्तर हैं।।११४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशम श्रेणी चढ़ते हुए कोई महामुनि जो सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान से उपशांतकषाय होकर यथाख्यात संयम को प्राप्त करके अन्तर को प्राप्त हुआ। पुनः सूक्ष्मसाम्परायसंयम में आया, पुनः सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयम में गिरने पर उनके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तरकाल पाया जाता है इस प्रकार यथाख्यात संयम से नीचे गिरकर जघन्य से अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर पुनः क्रम से ऊपर चढ़कर उपशांतकषाय होकर यथाख्यात संयम ग्रहण करने वाले जीव के यथाख्यात संयम का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—कोई अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करण करके अर्धपुद्गलपरिवर्तन के आदि संयम में प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयम को एक साथ ग्रहण कर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल से उपशमश्रेणी पर चढ़कर सूक्ष्मसाम्परायिक हुआ और वहाँ जघन्य से अन्तर्मुहूर्तमात्र रहकर उपशांतकषाय हो गया। पश्चात् पुनः सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत हो गया। उसने प्रथम समय में ही यथाख्यात शुद्धिसंयम का अन्तर प्रारंभ किया। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल से अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में गिरकर सामायिक व छेदोपस्थापनाशुद्धि संयमों में गिरने के प्रथम समय में सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयम का अन्तर प्रारंभ किया। फिर क्रम से नीचे उतरकर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमण कर अन्त में सम्यक्त्व और संयम को एक साथ ग्रहण कर उपशमश्रेणी पर चढ़कर तथा सूक्ष्मसाम्परायिक और उपशांत कषाय होकर पुनः सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत होकर क्रम से दोनों अन्तरकालों को

भूत्वा सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतः पुनः भूत्वा क्रमेण द्वे अंतरे समानीयाधोऽवतीर्य पुनः क्षपकश्रेणिं चटित्वाबंधकत्वं गतस्योपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यान्तरमुपलभ्यते।

क्षपकश्रेण्यां जघन्योत्कृष्टयोर्द्वयोरन्तरालयोः परिसमाप्तिः किन्न कृता ?

न, अत्रोपशामकानामधिकारोऽस्ति।

क्षपकं प्रतीत्य नास्त्यन्तरं, निरन्तरं। किंच—क्षपकाणां पुनः आगमनाभावात्।

एवं तृतीयस्थले सूक्ष्मसांपरायिक-यथाख्यातशुद्धिसंयतानामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति असंयतानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।११५।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।११६।।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।।११७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिदसंयतः संयमं संप्राप्य जघन्यमन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः असंयमं गतस्तस्य जघन्यकाल उपलभ्यते। उत्कर्षेण—कश्चित् संज्ञी पंचेन्द्रियः सम्मूर्च्छिमः पर्याप्तजीवः षड्भिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तको भूत्वा विश्रम्य विशुद्धो भूत्वा संयमासंयमं गृहीत्वान्तरं कृत्वा देशोनपूर्वकोटिप्रमाणं जीवितः सन् अनंतरं कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नप्रथमसमये असंयतो भूत्वान्तरं समानीतं, तस्यान्तर्मुहूर्तोनपूर्वकोटिमात्रान्तरं उपलभ्यते।**

अस्या मार्गणायाः अयमभिप्रायः ज्ञातव्यः—यदयं संयमो महान् दुर्लभोऽस्ति अतएव—

समाप्त कर नीचे उतरकर पुनः क्षपकश्रेणी पर चढ़ा और अबंधक भाव को प्राप्त हो गया। ऐसे जीव के सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातशुद्धिसंयम का उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

शंका—क्षपकश्रेणी में जघन्य और उत्कृष्ट इन दोनों अन्तरों की परिसमाप्ति क्यों नहीं की है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ उपशामकों का अधिकार है।

'क्षपक की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरंतर नहीं है, क्योंकि क्षपक श्रेणी वाले पुनः लौटकर नहीं आते हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सूक्ष्मसाम्परायिक, यथाख्यातशुद्धि संयतों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयत जीवों का अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

असंयतों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।११५।।

असंयतों का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र है।।११६।।

असंयतों का उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि होता है।।११७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई असंयत जीव संयम ग्रहण कर वहाँ जघन्य से अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर पुनः असंयम को प्राप्त होता है तो उसके अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर प्राप्त होता है। उत्कृष्टरूप से—किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्त जीव ने छहों पर्याप्तियों से पूर्ण होकर विश्राम ले, विशुद्ध हो, संयमासंयम ग्रहणकर असंयत का अन्तर प्रारंभ किया और कुछ कम पूर्वकोटि काल जीकर पुनः मरणकर देवों में उत्पन्न होने के प्रथम समय में असंयत होकर अन्तर समाप्त किया अर्थात् असंयम भाव ग्रहण किया। ऐसे जीव के असंयम का अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

इस मार्गणा का अभिप्राय यह जानना चाहिए कि यह संयम महान् दुर्लभ है, इसलिए—

मानुष्यं प्राप्य पुण्यात्प्रशममुपगता रोगवद्भोगजालं ।
मत्वा गत्वा वनान्तं दृशि विदि चरणे ये स्थिताः संगमुक्ताः।।
कःस्तोता वाक्पथातिक्रमणपटुगुणैराश्रितानां मुनीनां।
स्तोतव्यास्ते महद्भिर्भुवि य इह तदंघ्रिद्वये भक्तिभाजः[१]।।७१।।

संप्रति अस्मिन् दुःषमे काले एतादृशो मुनयो न सन्ति, ये केचित् संति न ते भावलिंगिनः इति ये कथयन्ति तेषां कृते आचार्याः श्रीपद्मनन्दिदेवाः ब्रुवन्ति—

संप्रत्यस्ति न केवली किल कलौ त्रैलोक्यचूडामणिः।
तद्वाचः परमासतेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिकाः।।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तेषां समालंबनं ।
तत्पूजा जिनवाचि पूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः[२]।।६८।।

एतज्ज्ञात्वा अद्य कालेऽपि भावलिंगिदिगंबरा विचरन्ति तेषां उपासना कर्तव्या तथैव जिनागमानामपि भक्तिः पूजा आराधना स्वाध्यायादयश्च विधातव्या निरन्तरमिति। यावदसंयतावस्था वर्तेत पुनश्च स्वयमपि जैनेश्वरीं दीक्षां समादाय मोक्षपुरूषार्थे प्रयत्नः कर्तव्यः।

एवं चतुर्थस्थले असंयतानामन्तरनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ—पुण्ययोग से मनुष्यभव को पाकर तथा शान्ति को प्राप्त होकर और भोगों को रोग तुल्य जानकर तथा वन में जाकर समस्त परिग्रह से रहित होकर जो यतीश्वर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र में स्थित होते हैं, वचनागोचर गुणों से सहित उन मुनियों की प्रथम तो कोई स्तुति का करने वाला ही नहीं मिलता है, यदि कोई स्तुति कर भी सके तो वे ही पुरुष उनकी स्तुति कर सकते हैं, जो उन मुनियों के चरण कमलों की आराधना करने वाले महात्मा पुरुष हैं।।७१।।

आज इस दुःषमकाल में इस प्रकार के मुनि नहीं है और जो मुनि हैं वे भावलिंगी नहीं हैं, ऐसा जो लोग कहते हैं उनके प्रति आचार्य श्री पद्मनंदिदेव कहते हैं कि—

श्लोकार्थ—यद्यपि इस समय इस कलिकाल में तीन लोक के चूड़ामणि केवली भगवान विराजमान नहीं है, तो भी इस भरतक्षेत्र में समस्त जगत को प्रकाशित करने वाली उन केवली भगवान की वाणी मौजूद है तथा उन वचनों के आधार श्रेष्ठ रत्नत्रय के धारी मुनि हैं इसलिए उन मुनियों की पूजन तो सरस्वती की पूजन है तथा सरस्वती की पूजन साक्षात् केवली भगवान की पूजन है, ऐसा भव्य जीवों को समझना चाहिए।।६८।।

ऐसा जानकर आज इस पंचमकाल में भी भावलिंगी दिगम्बर मुनिराज विचरण करते हैं उनकी उपासना करना चाहिए, इसी प्रकार से जिनागम की भी पूजा-भक्ति-आराधना और स्वाध्याय आदि निरन्तर करना चाहिए। जब तक असंयत अवस्था में रहें तब तक तो भक्ति आदि करें, पुनश्च स्वयं भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करके मोक्षपुरुषार्थ का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में असंयतों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

१-२. पद्मनंदिपंचविंशतिका पृ. ३०-३१।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां सप्तभिः सूत्रैः दर्शनमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते—तत्र प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनामन्तरनिरूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले अचक्षुर्दर्शनि-अवधि-केवलिदर्शनिनामंतर कथनत्वेन ''अचक्खु-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति समुदायपातनिका।

इदानीं चक्षुर्दर्शिनिनामंतरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।११८।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।११९।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१२०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**यः कश्चित् चक्षुर्दर्शनी जीवः एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-लब्ध्यपर्याप्तकेषु क्षुद्रभवग्रहणमात्रायुःस्थितिकेषु अन्यतरेषु अचक्षुर्दर्शनी भूत्वोत्पद्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रमन्तरं कृत्वा पुनः चतुरिन्द्रियादिषु चक्षुर्दर्शनी भूत्वोत्पन्नः, तस्य क्षुद्रभवग्रहणमात्रान्तरमुपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—कश्चिद् जीवः चक्षुर्दर्शनिजीवेभ्यो निर्गत्य अचक्षुर्दर्शनिषु उत्पद्य अंतरं प्राप्य आवलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनानि गमयित्वा पुनः चक्षुर्दर्शनिषु उत्पन्नस्तस्योपलंभात्।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी जीवों का, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''अचक्खु'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चक्षुदर्शनी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।११८।।

चक्षुदर्शनी जीवों का अन्तरकाल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण होता है।।११९।।

चक्षुदर्शनी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल होता है, जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन के बराबर होता है।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो कोई चक्षुदर्शनी जीव क्षुद्रभवग्रहणमात्र आयु स्थिति वाले किसी भी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय व त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकों में अचक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है पुनः अचक्षुदर्शनी होकर और क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण काल चक्षुदर्शन का अन्तर कर पुनः चतुरिन्द्रियादिक जीवों में चक्षुदर्शनी होकर उत्पन्न होता है, उस जीव के चक्षुदर्शन का क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—कोई जीव चक्षुदर्शनी जीव में से निकलकर अचक्षुदर्शनी जीवों में उत्पन्न हो अन्तर को प्राप्त कर आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनों को बिताकर पुनः चक्षुदर्शनी जीवों में उत्पन्न हुआ, उस जीव के चक्षुदर्शन का सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनामन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना अचक्षुर्दर्शनि-अवधिदर्शनि-केवलदर्शनिनामन्तरप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१२१।।

णत्थि अंतरं णिरंतरं।।१२२।।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।।१२३।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।१२४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अचक्षुर्दर्शनमन्तरं केवलदर्शनानन्तरमेव, ततः पुनः अचक्षुर्दर्शनोत्पत्तेरभावात् नास्त्यन्तरं। अवधिदर्शनस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्तं, उत्कर्षेणोपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनमात्रमिति। केवलदर्शनस्य नास्त्यन्तरं।**

एवं द्वितीयस्थले अचक्षुरादिदर्शनिनामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधकनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुदर्शनी-अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अचक्षुदर्शनी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१२१।।

अचक्षुदर्शनी जीवों का अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर होते हैं।।१२२।।

अवधिदर्शनी जीवों के अन्तर की प्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवों के समान है।।१२३।।

केवलदर्शनी जीवों के अन्तर की प्ररूपणा केवलज्ञानी जीवों के समान है।।१२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अचक्षुदर्शन का अन्तर केवलदर्शन उत्पन्न होने के पहले-पहले ही हो सकता है, उसके केवलदर्शन होने के बाद पुनः अचक्षुदर्शन की उत्पत्ति नहीं होती है।

अवधिदर्शनी जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। केवलदर्शन का अन्तर नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अचक्षु आदि दर्शन वाले जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन षट्सूत्रैः अंतरानुगमे लेश्यामार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले अशुभत्रिकलेश्यानामन्तरनिरूपणत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले शुभत्रिकलेश्यानामन्तरकथनमुख्यत्वेन ''तेउलेस्सिय-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणीति समुदायपातनिका।

इदानीं अशुभत्रिकलेश्यानामन्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१२५।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२६।।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कृष्णलेश्यावतः नीललेश्यां, नीललेश्यावतः कापोतलेश्यां, कापोतलेश्यस्य तेजोलेश्यां गत्वा स्व-स्वात्मनः लेश्यायां जघन्यकालेनागतस्यान्तर्मुहूर्तान्तरोपलंभात्।**

उत्कर्षेण—कश्चित् पूर्वकोट्यायुष्को मनुष्यः गर्भाद्यष्टवर्षाणामभ्यन्तरे षडन्तर्मुहूर्ताः सन्तीति कृष्णलेश्यायां परिणाम्य आदिं कृत्वा पुनः नील-कापोत-तेजः-पद्म-शुक्ललेश्यासु परिपाटीक्रमेणान्तरं प्राप्य संयमं गृहीत्वा

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा अन्तरानुगम में लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों अशुभ लेश्याओं का अन्तर निरूपण करने वाले ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय स्थल में तीनों शुभ लेश्याओं का अन्तर कथन करने वाले ''तेउलेस्सिय'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका है।

अब प्रारंभ की तीनों अशुभ लेश्याओं का अन्तर निरूपण करने हेत तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या वाले जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१२५।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवों का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है।।१२६।।

कृष्ण नील और कापोत लेश्या वाले जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेंतीस सागरोपमप्रमाण होता है।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कृष्ण लेश्या वाले जीव के नीललेश्या में, नीललेश्या वाले जीव के कापोत लेश्या में व कापोतलेश्या वाले जीव के तेजोलेश्या में जाकर अपनी-अपनी पूर्व लेश्या में जघन्य काल के द्वारा पुनः वापिस आने से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—कोई एक पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला मनुष्य गर्भ से लेकर आठ वर्ष के भीतर छह अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर कृष्ण लेश्यारूप से स्वयं को परिणमन प्रारंभ करके पुनः नील, कापोत, पीत, पद्म

तिसृषु शुभलेश्यासु देशोनपूर्वकोटिकालं स्थित्वा पुनः त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु देवेषूत्पद्य तत्तः आगत्य मनुष्येषूत्पद्य शुक्ल-पद्म-तेजो-नीललेश्यायाः क्रमेण परिणाम्यान्ते कृष्णलेश्यायामागतः, तस्य दशान्तर्मुहूर्तेनाष्टवर्षैः न्यूनं पूर्वकोटिकालं सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं अंतरमुपलभ्यते। एवमेव नीलकापोतलेश्ययोरपि वक्तव्यं। केवलं तु-अष्ट-षडन्तर्मुहूर्तोनाष्टवर्षैः न्यूनं पूर्वकोटिं त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमां सातिरेकां भवतीति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थलेऽशुभत्रिकलेश्यानामन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना शुभत्रिकलेश्यानामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१२८।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१२९।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१३०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **तेजः-पद्म-शुक्ललेश्याभ्योऽविरूद्धामन्यलेश्यां गत्वा जघन्यकालेन प्रतिनिवृत्य स्व-स्वात्मनो लेश्याणामागतस्य जघन्यान्तरमुपलभ्यते।**

और शुक्ल लेश्याओं में परिपाटी क्रम से जाकर अन्तर करता हुआ, संयम ग्रहणकर तीन शुभ लेश्याओं में कुछ कम पूर्वकोटिकालप्रमाण रहा और फिर तेतीस सागरोपम आयु स्थिति वाले देवों में उत्पन्न हुआ। फिर वहाँ से आकर मनुष्यों में उत्पन्न होकर शुक्ल, पद्म, पीत, कापोत और नीललेश्यारूप से क्रम से स्वयं को परिणमाकर अन्त में कृष्ण लेश्या में आ गया। ऐसे जीव के दश अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष से हीन पूर्वकोटि अधिक कापोतलेश्या के उत्कृष्ट अन्तरकाल का प्ररूपण करना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि नीललेश्या का अन्तर कहते समय आठ और कापोत लेश्या का अन्तर कहते समय छह अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष से हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण अन्तरकाल होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीनों अशुभ लेश्याओं का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन शुभ लेश्याओं का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

पीतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या वाले जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१२८।।

पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या वाले जीवों का जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।।१२९।।

पीत, पद्म और शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल होता है, जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण के बराबर होता है।।१३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पीत, पद्म व शुक्ल लेश्या से अपनी अविरोधी अन्य लेश्याओं में जाकर व जघन्य काल से लौटकर पुनः अपनी-अपनी पूर्व लेश्या में आने वाले जीव के अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है।

उत्कर्षेण—अर्पितलेश्यातः अविरूद्धानर्पितलेश्यां गत्वान्तरं प्राप्यावलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनेषु कृष्णनीलकापोतलेश्याभिः अतिक्रान्तेषु अर्पितलेश्यामागतस्य सूत्रोक्तोत्कृष्टान्तरमुपलभ्यते ।

तात्पर्यमेतत्—अशुभलेश्याः परिहृत्य शुभलेश्याभिः परिणमनं कुर्वन् निजशुद्धपरमात्मतत्त्वं ध्यायन् ध्यायन् शुक्ललेश्यां संप्राप्य शुक्लध्यानबलेन घातिकर्माणि निहत्य आर्हंत्यावस्था प्रापणीया भवतीति निश्चित्य निरंतरं स्वशुद्धात्मभावनामेव भावयामीति लक्ष्यं मम वर्तते।

एवं द्वितीयस्थले शुभत्रिकलेश्यान्तरनिरूपणत्वेन सूत्राणि त्रीणि गतानि ।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन प्रश्नोत्तररूपेण द्वाभ्यां सूत्राभ्यां भव्यमार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले प्रश्नरूपेण ''भवियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं । ततः परं द्वितीयस्थले प्रत्युत्तररूपेण ''णत्थि'' इत्यादिना सूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

इदानीं भव्यमार्गणायां अंतरकथनप्रश्नरूपेण सूत्रमवतरति —

उत्कृष्ट से—विवक्षित लेश्या से अविरुद्ध अविवक्षित लेश्याओं को प्राप्त हो अन्तर को प्राप्त हुआ। पुनः आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलनपरिवर्तनप्रमाण काल के कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओं के साथ बीतने पर विवक्षित लेश्या को प्राप्त हुए जीव के उक्त लेश्याओं का सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह है कि—मनुष्य अशुभ लेश्याओं को दूर हटाकर शुभ लेश्यारूप से परिणमन करते हुए निज शुद्ध परमात्म तत्त्व को ध्या-ध्याकर शुक्ललेश्या को प्राप्त करके शुक्लध्यान के बल से घाति कर्मों को नष्ट करके अर्हन्त अवस्था की प्राप्ति के योग्य होता है ऐसा निर्णय करके मैं अपनी शुद्धात्म भावना को ही भाऊँ यही मेरा लक्ष्य है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तीन शुभ लेश्याओं का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्रों के द्वारा भव्यमार्गणा अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में प्रश्नरूप से ''भवियाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में प्रत्युत्तररूप से ''णत्थि'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भव्यमार्गणा में अन्तर बतलाने हेतु प्रश्नरूप से सूत्र अवतरित होता है —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१३१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **भव्यजीवानामभव्यजीवानां चान्तरं कियच्चिरं कालात् भवति इति प्रश्ने सति श्रीभूतबलिसूरिवर्येण उत्तरयति।**

एवं प्रथमस्थले भव्याभव्यजीवानामन्तरकथनस्य प्रश्ने सूत्रमेकं गतं।

अधुना अनयोरुत्तरकथनार्थं सूत्रमेकमवतरति —

णत्थि अंतरं णिरंतरं।।१३२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **भव्यजीवानामभव्यजीवानां परस्परं परिणमनाभावात् नास्त्यन्तरं अनयोः।**

तात्पर्यमेतत् — भव्याः कदाचिदपि न अभव्या भवितुमर्हन्ति न चाभव्या भव्याः भवितुमपि। अतएव ''वयं भव्याः'' इति निश्चित्य रत्नत्रयबलेन भव्यत्वशक्तिः प्रकटीकर्तव्या। तथैव एभिर्भव्यपुंगवैः भेदाभेदरत्नत्रयमाराध्य जन्मजरामरणदुःखानि विनिहत्य परमानन्दामृतं परमं धाम प्राप्तं त एव धन्यास्तेषां पादपयोरुहेषु वयं सततं प्रणिपतामः भक्तिभावेन।

एवं द्वितीयस्थले भव्याभव्यानां निरन्तरत्वकथनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ —

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भव्य जीवों का और अभव्य जीवों का अन्तर कितने काल का होता है, ऐसा प्रश्न होने पर श्री भूतबली आचार्य उत्तर देते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्य और अभव्य जीवों के अन्तर कथन के प्रश्नरूप में एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब इन दोनों के अन्तर का उत्तरकथन करने वाला एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के जीवों का अन्तर नहीं होता है अतः वे निरन्तर हैं।१३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भव्य जीव कभी भी अभव्य नहीं हो सकते हैं और अभव्य भी कभी भव्य नहीं बन सकते हैं। इसलिए ''हम भव्य हैं'' ऐसा निश्चित करके रत्नत्रय धारण करके अपनी भव्यत्वशक्ति को प्रकट करना चाहिए तथा जिन भव्य पुंगवों-भव्य आत्माओं ने भेदाभेदरूप रत्नत्रय की आराधना करके जन्म-जरा-मृत्युरूप दुःखों को नष्ट करके परमानंदअमृतरूपी परम धाम को प्राप्त कर लिया, वे ही धन्य हैं, उनके चरणकमलों में हम भक्तिभावपूर्वक सदैव नमन करते हैं।

इस तरह से द्वितीय स्थल में भव्य और अभव्य जीवों के निरन्तरपने का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन नवभिः सूत्रैः अन्तरानुगमे सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत्प्रथमस्थले त्रिविधसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां चान्तरनिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिना पंचसूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले सासादन-मिथ्यात्वसहितानां अंतरप्रतिपादनत्वेन ''सासण-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति पातनिका भवति।

इदानीं सामान्यसम्यग्दृष्टि-वेदक-उपशमसम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१३३।।

जहण्णेण अंतोमुहत्तं।।१३४।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।१३५।।

खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१३६।।

णत्थि अंतरं णिरंतरं।।१३७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **कश्चित् सम्यग्दृष्टिः मिथ्यात्वं गत्वा जघन्येन कालेन पुनः सम्यक्त्वमागतस्तस्य**

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा अन्तरानुगम में सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के सम्यग्दृष्टियों का और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का अन्तर निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में सासादनसम्यक्त्व और मिथ्यात्वसहित जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने वाले ''सासण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सामान्यसम्यग्दृष्टि-वेदकसम्यग्दृष्टि-उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सामान्य सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१३३।।

उक्त जीवों का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है।।१३४।।

उक्त जीवों का उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।१३५।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१३६।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — कोई सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व को प्राप्त होकर जघन्य काल से पुनः

जघन्यान्तरमुपलभ्यते । एवं वेदकसम्यग्दृष्टि-उपशमसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनामपि जघन्यान्तरं, भेदाभावात्। उपशमसम्यग्दृष्टेः किंचिदन्तरं — कश्चित् उपशमसम्यक्त्वसहितो महामुनिः उपशमश्रेणीतोऽवतीर्णः, वेदक-सम्यक्त्वेन जघन्यकालस्यान्तरं प्राप्य पुनः उपशमश्रेणिं समारोहणार्थं दर्शनमोहनीयमुपशम्य उपशमसम्यक्त्वं गतस्तस्य जघन्यान्तरं वक्तव्यं।

उत्कर्षेण — कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये सम्यक्त्वं गृहीत्वान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा मिथ्यात्वं गत्वोपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यान्तरालं कृत्वावसाने सम्यक्त्वं संयमं च युगपत् गृहीत्वान्तरं समानीयान्त-र्मुहूर्तेणाबंधकत्वं गतः। तस्योपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनान्तरमुपलभ्यते। एवं सर्वत्रागमाविरोधेन ज्ञातव्यं।

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां नास्त्यन्तरं, तेषां सम्यक्त्वान्तरगमनाभावात्।

एवं प्रथमस्थले सम्यग्दृष्ट्यादीनामन्तरकथनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

अधुना सासादन-मिथ्यादृष्टिजीवानामन्तरप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१३८।।

जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१३९।।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।।१४०।।

सम्यक्त्व को प्राप्त होने तक उसके उक्त जघन्य अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियों का भी जघन्य अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि उसमें विशेषता का अभाव है। उपशमसम्यग्दृष्टि में किंचित् अन्तर है कि उपशमसम्यक्त्व सहित कोई महामुनि उपशमश्रेणी से उतरे और वेदकसम्यक्त्व से जघन्य काल प्रमाण अन्तर प्राप्त करके पुनः उपशमश्रेणी पर चढ़ने के लिए दर्शनमोहनीय को उपशमाकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुए, उनके वह जघन्य अन्तर कहना चाहिए।

उत्कृष्ट से — किसी अनादिमिथ्यादृष्टि के अर्धपुद्गलपरिवर्तन के प्रथम समय में सम्यक्त्व को ग्रहणकर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त होने पर उपार्ध अर्थात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर को प्राप्त हो अन्त में सम्यक्त्व एवं संयम को एक साथ ग्रहणकर अन्तर को समाप्त करते हुए अन्तर्मुहूर्त से अबंधकत्व को प्राप्त होने पर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। इस प्रकार सर्वत्र आगम के अविरोधरूप से अन्तर जानना चाहिए।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में अन्य सम्यक्त्व में जाने का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सम्यग्दृष्टि आदि जीवों का अन्तर कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१३८।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों का जघन्य अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है।।१३९।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।।१४०।।

मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो।।१४१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कश्चिद् जीवः प्रथमसम्यक्त्वं गृहीत्वान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा सासादनगुणस्थानं गत्वादिं कृत्वा मिथ्यात्वं गत्वान्तरं प्राप्य सर्वजघन्येन पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रोद्वेलनकालेन सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्योः प्रथमसम्यक्त्वप्रायोग्यसागरोपमपृथक्त्वमात्रस्थितिसत्कर्म स्थापयित्वा त्रीण्यपि करणानि कृत्वा पुनः प्रथमसम्यक्त्वं गृहीत्वा षडावलिकावशेषे उपशमसम्यक्त्वकाले सासादनं गतः तस्य पल्योपमस्या-संख्यातभागमात्रान्तरमुपलभ्यते।**

कश्चिदाह—उपशमश्रेणीतोऽवतीर्य सासादनं गत्वान्तर्मुहूर्तेण पुनरपि उपशमश्रेणिं चटित्वावतीर्य सासादनं गतस्यान्तर्मुहूर्तमात्रान्तरमुपलभ्यते, इदमत्र किन्न प्ररूपितं ? न चोपशमश्रेणीतोऽवतीर्णोपशमसम्यग्दृष्टयः सासादनं न गच्छन्तीति नियमोऽस्ति ''आसाणं पि गच्छेज्ज[१]'' इति कषायप्राभृते चूर्णिसूत्रदर्शनात् ?

अत्र परिहारः उच्यते—उपशमश्रेणीतोऽवतीर्णोपशमसम्यग्दृष्टिः एक एव जीवः द्विवारं सासादनगुणस्थानं न प्रतिपद्यते इति। तस्मिन् भवे सासादनं प्रतिपद्य उपशमश्रेणिमारुह्य तस्मादवतीर्णोऽपि न सासादनं प्रतिपद्यते एष अभिप्रायः एतस्य सूत्रस्य। तेनान्तर्मुहूर्तमात्रं जघन्यान्तरं नोपलभ्यते।

उत्कर्षेण—कश्चिदनादिमिथ्यादृष्टिः अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनस्यादिसमये गृहीतसम्यक्त्वस्य सासादनं गत्वोपार्द्ध-पुद्गलपरिवर्तनं भ्रमित्वान्तर्मुहूर्तावशेषे संसारे प्रथमसम्यक्त्वं गृहीत्वा एकसमयं सासादनं भूत्वान्तरं समानीय

मिथ्यादृष्टि का अन्तर मति-अज्ञानी के समान है।।१४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई जीव प्रथम सम्यक्त्व को ग्रहणकर और अन्तर्मुहूर्त रहकर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हो करके पुनः मिथ्यात्व में जाकर अन्तर को प्राप्त हुआ, वहाँ सबसे जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण उद्वेलनकाल के द्वारा सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियों के प्रथमसम्यक्त्व के योग्य सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिसत्व को स्थापित कर तीनों ही करणों को करके पुनः प्रथम सम्यक्त्व को ग्रहणकर उपशमसम्यक्त्वकाल में छह आवलियों के शेष रहने पर सासादन को प्राप्त हुआ, उस जीव के पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—उपशमश्रेणी से उतरकर सासादन को प्राप्त हो अन्तर्मुहूर्त से फिर भी उपशमश्रेणी पर चढ़कर व उतरकर सासादन को प्राप्त हुए जीव के अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर प्राप्त होता है, उसका यहाँ निरूपण क्यों नहीं किया ? और उपशमश्रेणी से उतरे हुए उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन को नहीं प्राप्त होते, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ''सासादन को भी प्राप्त होता है' इस प्रकार कषायप्राभृत में चूर्णिसूत्र देखा जाता है ?

यहाँ उक्त शंका का परिहार कहते हैं—उपशमश्रेणी से उतरा हुआ उपशम सम्यग्दृष्टि एक ही जीव दो बार सासादनगुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है। उसी भव में सासादन को प्राप्त कर पुनः उपशमश्रेणी पर आरूढ़ हो उससे उतरा हुआ भी जीव सासादन को प्राप्त नहीं होता है, यह इस सूत्र का अभिप्राय है। इस कारण अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त नहीं होता है।

उत्कृष्ट से—किसी अनादिमिथ्यादृष्टि के अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण के प्रथम समय में सम्यक्त्व को ग्रहणकर सासादन को प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमणकर संसार के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर प्रथम

---

१. षट्खंडागम पु. ७, (धवला टीका समन्वित) पृ. २३३।

पुनः मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं च क्रमेण गत्वाऽबंधकत्वं गतस्तस्योपार्द्धपुद्गलपरिवर्तनान्तरमुपलभ्यते।

मिथ्यादृष्टेर्जघन्येनान्तर्मुहूर्तं उत्कर्षेण द्वे षट्षष्टिसागरोपमे देशोने।

तात्पर्यमेतत्—एतत्सम्यक्त्वमार्गणां पठित्वा अंतरं विज्ञाय क्षायिकसम्यक्त्वलब्धये भावना भावयितव्या। यावत्केवलिश्रुतकेवलिपादमूलं न लभेत तावत्प्रयत्नेन क्षयोपशमसम्यग्दर्शनमेव संरक्षणीयं, तस्याष्टांगानि अपि संरक्षणीयानि।

उक्तं च श्रीमत्समन्तभद्रस्वामिना—

नांगहीनमलं छेत्तुं , दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मंत्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनाम्[१]।।२१।।

सम्यक्त्व को ग्रहणकर एक समय सासादन में रहकर अन्तर को समाप्त कर पुनः क्रमसे मिथ्यात्व और सम्यक्त्व को प्राप्त करके अबंधक भाव को प्राप्त होने पर कुछ कम उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तर प्राप्त होता है।

मिथ्यादृष्टि के जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपमकाल का अन्तर पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि—इस सम्यक्त्वमार्गणा को पढ़कर अन्तर जानकर क्षायिकसम्यक्त्व की प्राप्ति हेतु सदैव भावना भानी चाहिए। जब तक केवली-श्रुतकेवली भगवन्तों का पादमूल न प्राप्त होवे, तब तक क्षयोपशम सम्यग्दर्शन का ही संरक्षण करना चाहिए और उसके आठों अंगों का संरक्षण करते हुए पालन करना चाहिए।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है—

श्लोकार्थ—जैसे एक अक्षर से भी न्यून मंत्र विष की वेदना को दूर नहीं कर पाता है, उसी प्रकार एक अंग से भी न्यून—हीन सम्यग्दर्शन संसार की जन्म-मरण परम्परा को समाप्त नहीं कर सकता है।।२१।।

विशेषार्थ—भव्यात्माओं! जिस प्रकार से मकान का मूल आधार नींव है और वृक्ष का मूल आधार उसकी जड़े हैं उसी प्रकार से धर्म का मूल आधार सम्यग्दर्शन है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना धर्मरूपी मकान अथवा धर्मरूपी वृक्ष ठहर नहीं सकता है। जीवरक्षारूप आत्मा का परिणाम दया है, वह दया ही धर्म का लक्षण है। तीर्थंकर देव ने तथा अन्य केवलज्ञानियों ने अपने गणधर चक्रवर्ती, इन्द्र आदि शिष्यों को यही उपदेशा है। इसे अपने कानों से सुनकर सम्यग्दर्शन से हीन मनुष्य को नमस्कार नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म की जड़स्वरूप सम्यग्दर्शन जिसके पास नहीं है वह धर्मात्मा कैसे हो सकता है और जो धर्मात्मा नहीं है वह वंदना या नमस्कार का पात्र कैसे हो सकता है। सम्यग्दर्शन शून्य मनुष्य को तो आहार दान आदि भी नहीं देना चाहिए। क्योंकि कहा भी है.....''मिथ्यादृग्भ्यो ददानं दाता मिथ्यात्ववर्धकः।'' मिथ्यादृष्टियों को दान देने वाला दाता मिथ्यात्व को बढ़ाने वाला है।

अब प्रश्न यह होता है कि सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य कौन है ? उसका उत्तर यह है कि जो तीर्थंकर परमदेव की प्रतिमा को नहीं मानते हैं, उनकी पूजा नहीं करते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं। जो कहते हैं कि पंचमकाल में मुनि नहीं होते हैं, व्रतों से क्या प्रयोजन है ? आत्मा का ही पोषण करना चाहिए उसे दुःख नहीं देना चाहिए। मयूर पंख की बनी पिच्छी सुन्दर नहीं होती है सूत की पिच्छिका ही ग्राह्य है मयूर पंख की पिच्छिका से तो हिंसा होती है। आत्मा ही देव है अन्य कोई देव नहीं है। भगवान महावीर के बाद आठ केवली हुए हैं न कि तीन। महापुराण आदि विकथाएं हैं। इत्यादि प्रकार से जो उत्सूत्र कथन करने वाले हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं क्योंकि

---

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार-श्लोक-२१।

जिनागम में जिनप्रतिमाओं के दर्शन, वंदन, नमस्कार आदि की बहुत ही महिमा बताई गई है। आचार्यों ने कहा है कि जिस प्रकार चिंतामणि आदि रत्न अचेतन होकर भी फलदायी हैं वैसे ही जिनेन्द्रदेव की कृत्रिम व अकृत्रिम प्रतिमाओं के दर्शन, पूजन से अनंत संसार में संचित पाप समूह नष्ट हो जाता है। जिनबिंब के दर्शन से निकाचित मिथ्यात्व आदि कर्मों के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं तथा उनकी पूजा में अष्टद्रव्य सामग्री में पुष्प, चंदन, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि का स्पष्ट कथन है। रामचंद्र आदि महापुरुषों ने पुष्पादि से जिनप्रतिमाओं की पूजा की है जिनपूजा का फल अचिन्त्य है। इसके लिए मेंढक का उदाहरण सर्वजन सुप्रसिद्ध ही है।

उसी प्रकार से इस पंचमकाल में मुनि हैं, होते हैं और होंगे ही। श्री गुणभद्र सूरि ने भी कहा है कि जो स्वयं मोह को छोड़कर कुलपर्वतों के समान पृथ्वी का उद्धार करने वाले हैं, समुद्र के समान स्वयं धन की इच्छा से रहित होकर रत्नों के स्वामी हैं, आकाश के समान व्यापक होने से किन्हीं के द्वारा स्पष्ट न होकर विश्व की विश्रांति के कारण हैं, ऐसे अपूर्व गुणों के धारक प्राचीन मुनियों के निकट में रहने वाले कितने ही साधु आज भी विद्यमान हैं। श्री सोमदेव सूरि ने भी कहा है कि—

'कलौ काले चले चित्ते, देहे चान्नादि कीटके।'
एतच्चित्रं यदद्यापि, जिनरूपधरा नराः।

यह कलिकाल है, मनुष्यों का चित्त अत्यंत चंचल है और शरीर अन्न का कीड़ा बना हुआ है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज भी जिनमुद्रा के धारक दिगम्बर साधु दिख रहे हैं। श्री कुन्दकुन्ददेव ने भी मोक्षपाहुड़ में कहा है कि—

भरहे दुस्सम काले, धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे, ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।

भरत क्षेत्र में इस दुःषम काल में साधुओं को धर्मध्यान होता है, वे आत्मा के स्वभाव में स्थित होते हैं किन्तु ऐसा जो नहीं मानते हैं वे अज्ञानी हैं।

उसी प्रकार से श्री पूज्यपाद आचार्य ने व्रतों के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा है कि—व्रतों से स्वर्ग को प्राप्त करना अच्छा है किन्तु अव्रती रहकर नरक जाना अच्छा नहीं है। दूसरी बात यह है कि व्रती नियम से स्वर्ग ही जाता है अन्य तीन गतियों में नहीं जाता है। कहा भी है—

अणुव्रत और महाव्रत को प्राप्त करने वाला जीव देवायु का ही बंध करता है अन्य तीन आयु का नहीं। हाँ, महाव्रती तो कदाचित द्रव्यादि सामग्री के अनुकूल होने से मोक्ष प्राप्त कर लेता है लेकिन आज इस पंचम काल में मोक्ष संभव नहीं है। इसी प्रकार से कायक्लेश आदि तप के द्वारा शरीर को क्लेश पहुँचाने का भी जैनशासन में कथन है। प्रकारान्तर से देखा जाये तो सम्यग्दृष्टि शरीर से भिन्न आत्मा की श्रद्धा करने वाले हैं। अतः शरीर आदि के क्लेश में आत्मा को दुःखी नहीं मानते हैं तभी तो वे केशलोंच, उपवास आदि से शरीर के शोषण में लगे रहते हैं। इसी प्रकार से श्री कुंदकुंददेव ने मूलाचार में मयूरपिच्छी के पाँच गुण बतलाए हैं और मुनियों को उसी के लेने का विधान किया है सूतादि की पिच्छी नहीं मानी है। यथा—धूलि और पसीना को ग्रहण नहीं करना, मृदु होना, सुकुमार होना, लघु—वजन में हल्की होना जिसमें ये पाँच गुण होते हैं ऐसी मयूर पंखों की पिच्छी जीव दया का साधन होने से संयम का उपकरण है।

जैनाचार्यों ने शासन देवता को भी उनके योग्य अर्घ्य आदि देकर पूजन का विधान किया है। हाँ, जिनेन्द्रदेव सदृश वे उपासनीय नहीं हैं। उसी प्रकार से जब तक आत्मा शुद्धोपयोग में स्थिर होने में असमर्थ

है तब तक के लिए पंचपरमेष्ठी परमदेव माने गये हैं उनकी वंदना, ध्यान करना आदि का महामुनियों के लिए भी विधान है। श्री गौतम स्वामी ने स्वयं ही चैत्यभक्ति में पंचपरमेष्ठी, कृत्रिम, अकृत्रिम प्रतिमाओं की विशेष भक्ति वंदना की है। भगवान महावीर के बाद गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी ये तीन ही अनुबद्ध केवली हुए हैं। महापुराण आदि कथाएं प्रथमानुयोग के अन्तर्गत होने से विकथाएं नहीं हैं ऐसा समझना चाहिए।

जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से च्युत हो जाते हैं वे कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक संसार में परिभ्रमण कर सकते हैं जो अनंतकाल के सदृश बहुत ही बड़ा माना गया है। जैसे कि मरीचिकुमार सम्यक्त्व से च्युत होकर असंख्यातों भवों तक एकेन्द्रियादि दुर्गतियों में भटकता रहा है। यही कारण है कि आचार्यदेव सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट को दीर्घसंसारी मान रहे हैं। किन्तु जो सम्यग्दृष्टि तो है कारणवश चारित्र से भ्रष्ट है अर्थात् या तो उन्होंने अणुव्रत-महाव्रत लिया ही नहीं है इसलिए चारित्र से शून्य हैं तो भी वे सम्यग्दृष्टि होने के नाते संसार, शरीर और भोगों से उदासीन रहते हैं इसलिए किसी न किसी दिन वे चारित्र ग्रहण कर मोक्ष को प्राप्त कर ही लेंगे क्योंकि सम्यग्दृष्टि यदि चारित्रमोह के तीव्रोदय से चारित्र ग्रहण नहीं कर पाते हैं तो भी वे चारित्रधारी साधुओं की, व्रतिकों की निंदा कथमपि नहीं करते हैं और जो चारित्रधारियों की निंदा या उपेक्षा करते हैं वे सम्यग्दृष्टि ही नहीं हैं ऐसा समझना।

अथवा यदि कदाचित् कोई सम्यग्दृष्टि अणुव्रती-महाव्रती बनकर उन व्रतों में दोष लगा देता है या कदाचित् उन व्रतों को भंग कर देता है तो भी वह कालांतर में गुरु से प्रायश्चित्त लेकर या पुनर्व्रत ग्रहण कर पुनर्दीक्षा आदि लेकर शुद्ध हो जाता है तो उसे मोक्ष का अधिकारी माना जा सकता है। क्योंकि रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्ष का कारण है मात्र सम्यग्दर्शन अकेला मोक्ष का कारण नहीं है यह बात अन्यत्र ग्रंथों में वर्णित है। यहाँ समझने की बात यही है कि चारित्र से भ्रष्ट या शून्य मनुष्य सम्यक्त्व के प्रभाव से बहुत जल्दी ही अपने चारित्र को सुधार सकता है किन्तु सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो जाने के बाद तो यदि वह निगोद आदि पर्याय में, एकेन्द्रिय आदि स्थावर योनियों में चला गया तो उसे वहाँ समझाने वाला कौन मिलेगा ? षट्प्राभृत ग्रन्थ के टीकाकार श्री श्रुतसागरसूरि ने भी चारित्रभ्रष्ट में महाराज श्रेणिक आदि का उदाहरण रखा है। राजा श्रेणिक चारित्र से भ्रष्ट न होकर चारित्र से हीन थे और सम्यक्त्व से सहित थे अतः केवली के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके आगे तीर्थंकर होने वाले हैं। ऐसे ही पुष्पडाल मुनि का उदाहरण लिया जा सकता है कि जो द्रव्य से चारित्रवान होते हुए भाव से पत्नी के साथ भोगों की आकांक्षा लिए हुए थे। उनको भी वारिषेण मुनि ने स्थितिकरण करके सच्चे भावलिंगी चारित्रवान बना दिया था अथवा श्री समंतभद्र स्वामी जैसे महामुनि का ही उदाहरण लीजिए। गुरु की आज्ञा से भस्मक जैसी महाव्याधि को दूर करने के लिए ही उन्होंने अन्य वेष धारण किया था। सम्यक्त्व के प्रभाव से ही चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति प्रगट कर देने की योग्यता रखने वाले श्री समंतभद्र स्वामी सम्यग्दर्शन से सहित थे। इसीलिए उन्होंने पुनः चारित्रग्रहण कर लिया था और वे मोक्ष के अधिकारी माने गये हैं इसलिए चारित्रभ्रष्ट सिद्ध हो जाते हैं। इस कथन से यहाँ पर ब्रह्मचर्य आदि से भ्रष्ट व्रती या मुनि को नहीं लेना चाहिए, क्योंकि महाव्रत में भ्रष्ट हुए मुनि तो सम्यग्दृष्टि न रहकर मिथ्यादृष्टि ही हो जायेंगे। उत्कृष्ट मुनिपद में या व्रती पद में अनर्गल चेष्टा करने वाले तो महापापी ही माने जायेंगे।

भगवान आदिनाथ के समक्ष दीक्षा लेकर नग्न वेष में फल खाकर नदी का पानी पीकर अनर्गल चर्या करते हुए साधुओं को देखकर वनदेवता ने स्पष्ट निषेध किया था कि तुम इस निर्ग्रंथ दिगम्बर वेष में रहकर यह अनर्गल चेष्टा मत करो, यह तीनलोक पूज्य अर्हंत मुद्रा है। तब उन साधुओं ने तापसियों के नाना वेष

बनाकर ही पाखण्ड मत चलाया था। इससे स्पष्ट है कि दिगम्बर वेष में अनर्गल चर्या कथमपि ग्राह्य नहीं है।

वास्तव में छ्यानवे हजार रानियों के साथ रहने वाला चक्रवर्ती, पंचमगुणस्थानवर्ती निर्दोष श्रावक कहा जाता है और वह दान पूजादि सत्कर्म करने से पुण्यवान है। किन्तु ब्रह्मचारी के वेष में रहकर यदि कोई परस्त्री का सेवन कर लेता है तो वह पापी, व्यभिचारी, नीच कहलाता है वह व्रती श्रावक या अव्रती सम्यग्दृष्टि की कोटि में नहीं आ सकता है क्योंकि अनर्गल चेष्टा होने से वह मिथ्यादृष्टि है, धर्म से शून्य है। पद विरुद्ध क्रिया करने से सम्यग्दृष्टि संज्ञा उसे कैसे आ सकती है?

इसलिए यहाँ पर चरित्रभ्रष्ट से चरित्रहीन अर्थ लेना ही उपयोगी है और जब वह चारित्र ग्रहण कर लेता है तभी मोक्ष प्राप्त कर लेता है चारित्र बिना नहीं।

इसलिए श्रावकों के लिए दान, पूजा आदि सत्क्रियाओं का निषेध कभी नहीं करना चाहिए। सदैव आस्तिक भाव से सहित रहना चाहिए।

'जो सम्यक्त्वरूपी रत्न से भ्रष्ट हैं वे बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हुए भी आराधना से रहित हैं अतः वे वहीं के वहीं भ्रमण करते रहते हैं।

जो मनुष्य सम्यक्त्वरूपी रत्न से शून्य होकर दान, पूजा आदि प्रशस्त कार्यों का निषेध करते हैं वे तर्क, व्याकरण, छंद, अलंकार, साहित्य और सिद्धांत आदि ग्रंथों को जानते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के वचनों की श्रद्धारूप आराधना से शून्य होने के कारण नरक निगोद आदि दुर्गतियों में ही घूमते रहते हैं।

आराधना के चार भेद हैं—दर्शन आराधना, ज्ञान आराधना, चारित्र आराधना और तप आराधना। इनमें से जब तक सम्यग्दर्शन नहीं है तब तक पहली आराधना ही नहीं है तो पुनः आगे की आराधनाओं के न मिलने से वह मनुष्य अनंत संसार में ही भ्रमण करता रहता है। जो मनुष्य दान, पूजा आदि प्रशस्त क्रियाओं का निषेध करके अनर्गल उपदेश देते हैं वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं अतः उनके कोई भी आराधना नहीं है। वास्तव में श्रावक को निश्चय रूप आत्मधर्म की प्राप्ति हो नहीं सकती है, वह शुद्ध आत्मतत्त्व की श्रद्धा करते हुए भी शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव और ध्यान कर नहीं सकता है अतएव उसके लिए ग्यारह प्रतिमाओं की चर्यारूप व्यवहार धर्म ही उपादेय है। वह एकदेश चारित्र के बल से ही अपनी आत्मशक्ति को बढ़ाता है अतः वह जब तक गृहस्थ है तब तक उसे दान, पूजा आदि क्रियाओं को करना ही है। आचार्यों ने श्रावक के पूजा, दान, शील और उपवास ये चार धर्म माने हैं। यदि कोई इन क्रियाओं का निषेध करते हैं तो वे उत्सूत्र प्ररूपणा करने से मिथ्यादृष्टि ही हैं ऐसा अर्थ फलित होता है अतः आगम के अनुकूल चर्या करते हुए उसी के अनुरूप उपदेश देकर अपने सम्यक्त्वरूपी रत्न को सुरक्षित रखना चाहिए।

'सम्यग्दर्शन से रहित मनुष्य अच्छी तरह उग्र-उग्र तपश्चरण करते हुए भी हजार करोड़ वर्षों में भी बोधि को नहीं प्राप्त कर पाते हैं, ऐसा दर्शनप्राभृत गाथा ५ में कहा है।'

जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से पतित हैं वे भले ही कठिन से कठिन मासोपवास आदि विशिष्ट तपों का आचरण करते हों तो भी हजार करोड़ वर्षों में भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त बोधि को नहीं प्राप्त कर पाते हैं अर्थात् सम्यक्त्व के बिना अनंतकाल पुरुषार्थ करके भी मुक्ति को नहीं प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा समझ करके निश्चयधर्म में प्रधानभूत दान, पूजा आदि व्यवहारधर्म को नहीं छोड़ना चाहिए। तात्पर्य यही है कि निश्चयधर्म को प्राप्त कराने के लिए कारणभूत ऐसा व्यवहारधर्म सर्वथा उपादेय है क्योंकि मुनियों के लिए तो निश्चयधर्म की प्राप्ति तक ही वह साधन माना गया है लेकिन

श्रावकों के लिए तो पंचसूना के पाप को हल्का करने के लिए दान, पूजादि क्रियाएं अवश्य करने योग्य ही हैं। यदि कोई श्रावक पद में रहकर भी दान, पूजा को छोड़कर अपने आपको गुरु कहलाकर पूजा कराने लगता है या दान पूजादि को हेय कहकर छोड़ने का उपदेश देने लगता है तो वह आचार्यों के कथनानुसार सम्यग्दृष्टि नहीं है।

जो भव्यजीव सम्यक्त्व ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य को वृद्धिंगत करते हुए कलिकाल के कलुषित पाप से रहित होते हैं वे सभी महापुरुष शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।

जिन वचन में श्रद्धा रखना सम्यक्त्व है, जिनागम का पठन-पाठन आदि करना ज्ञान है, पदार्थ की सामान्य सत्ता का अवलोकन होना दर्शन है, अपनी शारीरिक शक्ति को नहीं छिपाना बल है और आत्मा की शक्ति का नाम वीर्य है। जिनके ये गुण वृद्धिंगत हो रहे हैं वे भव्यजीव हैं वे ही कलिकाल में प्रगट हुए नाना प्रकार से मिथ्यात्वरूप पाप से बच सकते हैं।

आचार्यों का कहना है कि 'इस पंचमकाल में जो शौच धर्म से रहित हैं — मलिन हैं, वर्णव्यवस्था का लोप करके चाहे जहाँ भिक्षा से भोजन ग्रहण कर लेते हैं, मांसाहारी लोगों के यहाँ भी प्रासुक अन्न ले लेते हैं, म्लेच्छ और श्मशानवासी लोगों के यहाँ भी भोजन कर लेते हैं वे धर्म से शून्य हैं और जो देव, शास्त्र, गुरु की पूजा निषेध करने वाले हैं वे सम्यग्दर्शन से रहित होने से मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं। इससे विपरीत शौच धर्म को धारण करने वाले, वर्ण संकर, जाति संकर, सूतक-पातक आदि दोषों से रहित श्रावक के यहाँ निर्दोष प्रासुक आहार लेने वाले मुनि ही मोक्षमार्गी हैं।

जिसके हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवाहित रहता है उसका कर्मरूपी बालू का बांध बद्ध होने पर भी नष्ट हो जाता है।

संसाररूपी संताप का निवारण करने वाला होने से तथा पापरूपी कलंक का प्रक्षालन करने वाला होने से सम्यग्दर्शन निर्मल, शीतल और स्वादिष्ट पानी के समान है। जिस मनुष्य के हृदय में जलपूर के समान सम्यग्दर्शन सदा प्रवाहित रहता है, उसके चिरकाल से संचित भी पापकर्म रूपी बालू का बांध नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार कोरे घड़े पर स्थित धूलि चिपकती नहीं है उसी प्रकार से सम्यग्दृष्टि से लगा हुआ पापकर्म बंध को प्राप्त नहीं होता है। यह सब सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य है।

'जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, सम्यग्ज्ञान से भ्रष्ट हैं और सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हैं अर्थात् इन तीनों से शून्य हैं वे भ्रष्टों में भी विशिष्ट भ्रष्ट हैं तथा अन्य मनुष्यों को भी भ्रष्ट कर देते हैं।

सम्यग्दर्शन के निसर्गज और अधिगमज की अपेक्षा अथवा निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा दो भेद हैं। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक की अपेक्षा तीन भेद हैं। आज्ञा सम्यक्त्व, मार्ग सम्यक्त्व आदि की अपेक्षा दश भेद हैं। ज्ञान के शब्दशुद्धि, अर्थशुद्धि, उभयशुद्धि, कालशुद्धि, उपधानशुद्धि, विनयशुद्धि, अनिन्हवशुद्धि और बहुमानशुद्धि की अपेक्षा से आठ भेद हैं। चारित्र के पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति रूप से तेरह भेद होते हैं। जो इन रत्नत्रय से भ्रष्ट हैं वे अन्य लोगों को भी भ्रष्ट कर देते हैं अथवा यदि श्रावकों के लिए कहा जाये तो जो श्रावक सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत से बारहव्रत रूप एकदेश चारित्र से भ्रष्ट हैं वे अन्य अपने आश्रित को भी उन्मार्गगामी ही बनायेंगे।

जो मनुष्य धर्म के अभ्यासी, संयम, तप, नियम, योग और उत्तरगुणों के धारी महामुनियों के दोष कहते

हैं — उनमें मिथ्या दोषों का आरोप करते हैं वे स्वयं तो चारित्र से पतित हैं हीं, दूसरों को भी चारित्र से पतित कर देते हैं।

जिस प्रकार मूल — जड़ के नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा आदि परिवार की वृद्धि नहीं होती है उसी प्रकार जो जिनदर्शन अर्थात् जिनेन्द्रदेव के मत से अथवा सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं — रहित हैं वे मूल से ही रहित हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते हैं। जिस प्रकार मूल अर्थात् जड़ के होने से वृक्ष के स्कंध, शाखा आदि परिवार का बहुत रूप से विस्तार फैलता चला जाता है उसी प्रकार से अर्हंत भगवान का मत अथवा सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग का मूल कहा गया है।

जिस प्रकार मूल से ही वृक्ष का तना वृद्धि को प्राप्त होता है और मूल से ही वृक्ष की शाखाओं और उपशाखाओं का समूह पत्ते पुष्प आदि से युक्त होता है उसी प्रकार जिनदर्शन ही रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग को फलित करने वाला है।

जो स्वयं तो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट — रहित हैं और सम्यग्दृष्टियों को — सम्यक्त्व सहित मुनियों को नमस्कार नहीं करते हैं वे अव्यक्तभाषी अथवा गूंगे होते हैं तथा उनके लिए रत्नत्रय की प्राप्ति दुर्लभ है।'

सम्यग्दर्शन के निसर्गज, अधिगमज की अपेक्षा दो भेद हैं। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक की अपेक्षा तीन भेद हैं। आज्ञासमुद्भव, मार्गसमुद्भव, सूत्रसमुद्भव, बीजसमुद्भव, संक्षेपसमुद्भव, विस्तार-समुद्भव, अर्थसमुद्भव, अवगाढ़ और परमावगाढ़ इनकी अपेक्षा दश भेद हैं।

इन सम्यक्त्वों से जो भ्रष्ट हैं — रहित हैं, मयूरपिच्छिका, कमण्डलु और जिनशास्त्र इन संयम शौच और ज्ञान के उपकरणों से रहित हैं, गृहस्थ वेष के धारी हैं अर्थात् स्वयं अव्रती हैं और संयमी सम्यग्दृष्टि मुनियों के चरण युगलों में नहीं झुकते हैं उन्हें 'नमोस्तु' कहकर नमस्कार नहीं करते हैं, अभिमान से खड़े रहते हैं वे अस्पष्टभाषी गूंगे हो जाते हैं पुनः उन्हें लाखों जन्म में बोधि रत्नत्रय की प्राप्ति होना कठिन हो जाता है।

दर्शनपाहुड़ की गाथा २० में कहा है —

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स।।३१।।

इस प्रकार से जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को हे भव्य जीवों! तुम भावपूर्वक धारण करो। यह सम्यग्दर्शनरूपीरत्न उत्तम क्षमा आदि गुणों तथा सम्यग्दर्शन आदि तीन रत्नों में सर्वश्रेष्ठ रत्न है और मोक्षरूपी महल में चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी है।

पुनरपि आचार्यदेव कहते हैं —

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।२२।।

जो करना शक्य है उसे तो करना चाहिए और जो करना शक्य नहीं है उसका श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि केवली भगवान ने श्रद्धान करने वाले के ही सम्यक्त्व कहा है।

आजकल कुछ लोग चारित्र पालन करने में स्वयं प्रमादी होते हुए चारित्र को ढोंग या पाखंड अथवा यह व्यवहार चारित्र हेय है ऐसा कहकर उपेक्षा कर देते हैं और चारित्र के धारकों की निंदा, अवहेलना आदि करते

एवं द्वितीयस्थले सासादनादिगुणस्थानयोरन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

हैं, उन्हें द्रव्यलिंगी, पाखंडी, मिथ्यादृष्टि आदि कहते हैं। उनके प्रति ही भगवान कुंदकुंददेव का यह उपदेश है कि जितना शक्य हो उतना करो, जो कुछ शक्य न हो उस पर श्रद्धान करो यही सम्यक्त्व है क्योंकि मोक्षमार्ग में अपनी शक्ति को छिपाना भी आत्म वंचना है। इसीलिए प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है कि मोक्षमार्ग में अपने आत्म गुणों को वृद्धिंगत करने का ही सतत पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। प्रमाद को छोड़कर संसार के दुःख से छुड़ाने वाली देवपूजा, गुरुपास्ति आदि आवश्यक क्रियाओं को शक्ति से बाहर न समझकर यथायोग्य करते ही रहना चाहिए और चारित्रधारी संयमी या देशव्रती श्रावकों की निंदा न करके उनके गुणों में अनुरक्त होते हुए उनकी प्रशंसा करनी चाहिए यही गृहस्थ का कर्तव्य है। इस प्रकार सम्यक्त्व का माहात्म्य जानकर अपने सम्यक्त्व को सदैव दृढ़ रखना चाहिए तथा शक्ति के अनुसार देशसंयम या सकल संयम को धारण करके क्रमशः मोक्षपथ के पथिक बनना चाहिए, यही सम्यक्त्वमार्गणा में अन्तर समझने का सार है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में सासादन आदि गुणस्थानों का अन्तर बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन षड्भिः सूत्रैः अन्तरानुगमे संज्ञिमार्गणानामधिकारःप्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले संज्ञिजीवानामन्तरकथनेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रत्रयं । तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवानामंतरप्रतिपादनत्वेन ''असण्णीण-'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणीति समुदायपातनिका।

इदानीं संज्ञिमार्गणायां संज्ञिनामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१४२।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१४३।।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१४४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। संज्ञिजीवेभ्योऽसंज्ञित्वं गत्वा असंज्ञिजीवानां स्थितिं स्थित्वा संज्ञिजीवेषूत्पन्नस्यावलिकायाः असंख्यातभागमात्रपुद्गलपरिवर्तनान्तरमुपलभ्यते।**

एवं प्रथमस्थले संज्ञिनामन्तरनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

असंज्ञिजीवानामन्तरनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१४५।।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा अन्तरानुगम में संज्ञीमार्गणा नाम का अधिकारप्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का अन्तर कथन करने वाले "सण्णिया" इत्यादि तीन सूत्र हैं पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु "असण्णीण" इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संज्ञीमार्गणा में संज्ञी जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१४२।।

संज्ञी जीवों का अन्तर जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१४३।।

संज्ञी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। जो असंख्येय पुद्गलपरिवर्तनों के बराबर है।।१४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। संज्ञी जीवों से असंज्ञियों में जाकर और वहाँ असंज्ञी की स्थितिप्रमाण रहकर संज्ञियों में उत्पन्न हुए जीव के आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

असंज्ञी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१४५।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।१४६।।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।।१४७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**असंज्ञिजीवेभ्यः संज्ञिनामवस्थां गत्वा संज्ञिस्थितिं भ्रमित्वा असंज्ञिषूत्पन्नस्य सागरोपमशतपृथक्त्वमात्रान्तरमुपलभ्यते।**

तात्पर्यमेतत्—''हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्[१]।'' इति सूत्रकथितेन ये संज्ञिनो जीवाः त एव समीचीनज्ञानेऽधिकारत्वं प्राप्नुवन्ति ततः कारणात् संज्ञित्वं संप्राप्य 'कदाचिदपि वयमसंज्ञित्वं न गच्छेम' इति भावयित्वा मोक्षपुरुषार्थे एव प्रयत्नो विधेयः।

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवानामन्तरप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

असंज्ञी जीवों का अन्तर जघन्य से क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है।।१४६।।

असंज्ञी जीवों का उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंज्ञियों से संज्ञियों में जाकर और वहाँ संज्ञी की स्थितिप्रमाण काल तक भ्रमणकर असंज्ञियों में उत्पन्न हुए जीव के सौ सागरोपमपृथक्त्वमात्र अन्तर प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह है कि—"हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में जो समर्थ है, वही ज्ञान कहलाता है और वही ज्ञान प्रमाण है।" इस सूत्र कथित सिद्धान्त के द्वारा जो संज्ञी जीव हैं, वे ही समीचीन ज्ञान को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, इस कारण से संज्ञीपने को प्राप्त करके हम पुनः कभी भी असंज्ञीपने को प्राप्त न होने पाएं ऐसी भावना भाते हुए मोक्षपुरुषार्थ में ही प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. परीक्षामुख, सूत्र २।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः अन्तरानुगमे आहारमार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारजीवानां अंतरकथनत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारिणामन्तरनिरूपणत्वेन ''अणाहारा'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका सूचिता भवति।

इदानीं आहारकजीवानामन्तरप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१४८।।
जहण्णेण एगसमयं।।१४९।।
उक्कस्सेण तिण्णिसमयं।।१५०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। एकविग्रहं कृत्वा गृहीतशरीरस्य जीवस्य जघन्येनैक-समयस्यान्तरमुपलभ्यते। उत्कर्षेण त्रीन् विग्रहान् कृत्वा गृहीतशरीरस्य जीवस्य त्रिसमयान्तरं लभ्यते ।**

एवं प्रथमस्थले आहारकाणामन्तरनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अनाहारकाणामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो।।१५१।।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा अन्तरानुगम में आहारमार्गणा नाम का अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का अन्तर कथन करने वाले ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु ''अणाहारा'' इत्यादि एक सूत्र हैं। सूत्रों की यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब आहारक जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१४८।।
आहारक जीवों का अन्तर जघन्य से एक समय मात्र होता है।।१४९।।
आहारक जीवों का उत्कृष्ट अन्तर तीन समय प्रमाण है।।१५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। एक विग्रह करके शरीर के ग्रहण कर लेने पर जघन्य से एक समय का अन्तर प्राप्त होता है। उत्कृष्ट से तीन विग्रहों को करके ग्रहण किये गये शरीर वाले जीव के तीन समय का अन्तर प्राप्त होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का अन्तर बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनाहारक जीवों का अन्तर कार्मणकाययोगियों के समान है।।१५१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अनाहारकाणां जीवानां जघन्येनान्तरं त्रिसमयोनक्षुद्रभवग्रहणकालमात्रं। उत्कर्षेणाङ्गुलस्यासंख्यातभागः असंख्यातासंख्याताः अवसर्पिण्युत्सर्पिण्यः ज्ञातव्याः। इत्येताभ्यां जघन्योत्कृष्टान्ताराभ्यां द्वयोरभेदात्।**

अयमत्राभिप्रायः—एकजीवापेक्षयान्तरानुगमं विज्ञाय यत्र नैरन्तर्यं सुखमतीन्द्रियमस्ति तत्र मोक्षे एव स्पृहा विधातव्या। तस्य मोक्षस्य कारणं यत् चिच्चैतन्यमयं ज्योतिः तदेवात्मस्वरूपं परं तेजो वर्तते। तस्य कृते प्रयत्नः कर्तव्यः। उक्तं च श्रीपद्मनन्दिसूरिवर्येण—

केवलज्ञानदृक्सौख्य-स्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।।२०।।

इति ज्ञेयं तदेवैकं श्रवणीयं तदेव हि।
दृष्टव्यं च तदेवैकं नान्यन्निश्चयतो बुधैः।।२१।।

गुरूपदेशतोऽभ्यासाद् वैराग्यादुपलभ्य यत्।
कृतकृत्यो भवेद् योगी, तदेवैकं न चापरम्[१]।।२२।।

एवं द्वितीयस्थले अनाहाराणामन्तरनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनाहारक जीवों का जघन्य से अन्तर तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट से अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र अंतर असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण जानना चाहिए। क्योंकि इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर की अपेक्षा दोनों में कोई भेद नहीं है।

यहाँ अभिप्राय यह है कि—एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम जानकर जहाँ शाश्वत और अतीन्द्रिय सुख है, उस मोक्ष को प्राप्त करने की ही इच्छा करना चाहिए। उस मोक्ष का कारण जो चिच्चैतन्य स्वरूपमय ज्योति है, वही आत्मा का परं—उत्कृष्ट तेज है। उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

श्री पद्मनंदि आचार्य ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—जो उत्कृष्ट आत्मस्वरूपतेज है वह केवलदर्शन तथा केवलज्ञान और अनंतसुख स्वरूप ही है। इसलिए जिसने इस तेज को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया और जिसने इस तेज को देख लिया, उसने सब कुछ देख लिया तथा जिसने इस तेज को सुन लिया, उसने सब कुछ सुन लिया ऐसा समझना चाहिए।।२०।।

इसलिए भव्य जीवों को निश्चय से एक चैतन्यस्वरूप ही जानने योग्य है तथा वही एक सुनने योग्य है और वही देखने योग्य है किन्तु उससे भिन्न कोई भी वस्तु न तो जानने योग्य है तथा न सुनने योग्य है और न देखने ही योग्य है, ऐसा समझना चाहिए।।२१।।

गुरु के उपदेश से तथा शास्त्र के अभ्यास से और वैराग्य से जिसको पाकर योगीश्वर कृतकृत्य हो जाते हैं, वह यही चैतन्यस्वरूपतेज और कोई नहीं है।।२२।।

इस तरह से द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का अन्तर निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका-एकत्वाधिकार, पृ. १४०-१४१, श्लोक-२०, २१, २२।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे एकजीवापेक्षया अन्तरानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अस्मिन् मध्यलोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रस्यार्यखंडे द्वौ एव शाश्वततीर्थौ अयोध्यानगरी सम्मेदशिखरपर्वतं च। तत्तीर्थकरजन्मभूमिं निर्वाणभूमिं च नमस्कृत्य निजात्मशुद्ध्यर्थं निर्वाणप्राप्तसर्वसिद्धान् वंदामहे वयं भक्तिभावेन त्रिसंध्यं त्रिकरणशुद्ध्या तीर्थकरवाचश्च हृदि स्थापयामः संसारसमुद्रतरणाय सुलभेनेति।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खंडागमस्य श्रीमद्भूतबलिसूरिविरचितक्षुद्रकबंध-नाम्नि द्वितीयखंडे एकजीवापेक्षयान्तरानुगमे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनाना-ग्रंथाधारेण विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाचार्यस्य श्रीवीरसागरगुरोः शिष्या-जम्बूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणि-टीकायां एकपंचाशदधिकशतसूत्रैः एकजीवापेक्षयान्तरानुगमो नाम तृतीयोमहाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

इस मध्यलोक में जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में अयोध्या नगरी और सम्मेदशिखर पर्वत ये दो ही शाश्वत तीर्थ हैं। उस तीर्थंकर जन्मभूमि (अयोध्या) एवं निर्वाणभूमि (सम्मेदशिखर) को नमस्कार करके अपनी आत्मशुद्धि हेतु निर्वाण को प्राप्त समस्त सिद्धों की हम भक्तिभाव से वंदना करते हैं तथा तीनों संध्याओं में त्रिकरणशुद्धिपूर्वक और संसारसमुद्र से सुलभतया तिरने हेतु तीर्थंकर वचनों को हृदय में स्थापित करते हैं।

इस प्रकार श्रीमान भगवान पुष्पदंत-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ में श्री भूतबली आचार्य द्वारा विरचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम में श्रीवीरसेनाचार्य कृत धलवाटीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की सम्प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में एक सौ इक्यावन सूत्रों के द्वारा वर्णित एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नाम का तृतीय महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ भंगविचयानुगमो चतुर्थो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

स्वचतुष्टयभावेन, सिद्धास्तिष्ठन्ति सिद्धिदाः।
चतुष्टयपरैर्हीनास्तान् नुमोऽस्तित्वसिद्धये।।१।।

अथ चतुर्दशभिरधिकारैः त्रयोविंशतिसूत्रैः नानाजीवापेक्षया भंगविचयानुगमो नाम चतुर्थो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमेऽधिकारे नानाजीवैः गतिमार्गणायां भंगविचयानुगमकथनत्वेन ''णाणाजीवेहि'' इत्यादिसूत्रषट्कं। ततः परं द्वितीयेऽधिकारे इंद्रियमार्गणायां अस्तित्वनास्तित्वप्रतिपादनत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु तृतीयेऽधिकारे कायमार्गणायां अस्तित्वकथनत्वेन '' कायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं । तत्पश्चात् चतुर्थेऽधिकारे योगानुवादेन अस्तित्व-नास्तित्व भंगकथनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं पंचमेऽधिकारे वेदमार्गणायां अस्तित्वभंगनिरूपणत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं ।तदनु षष्ठेऽधिकारे कषायानुवादेन अस्तित्वनिरूपणत्वेन ''कसायाणु-'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं सप्तमेऽधिकारे ज्ञानमार्गणायां अस्तित्वकथनपरत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिना सूत्रमेकं। तत्पश्चात् अष्टमेऽधिकारे संयममार्गणायां अस्तित्वप्ररूपणत्वेन ''संजमाणुवादेण ''इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनः नवमेऽधिकारे दर्शनमार्गणायां अस्तित्वकथनत्वेन ''दंसणाणु-'' इत्यादिसूत्रमेकं। पुनरपि दशमेऽधिकारे लेश्यामार्गणायां भंगकथनप्रकारेण ''लेस्साणु-''

अथ भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—सिद्धि के प्रदाता जो सिद्ध भगवान स्वचतुष्टय—स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप से समन्वित एवं परचतुष्टय—परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से रहित होकर सिद्धशिला पर विराजमान हैं, उन समस्त सिद्ध परमेष्ठियों की हम अपने अस्तित्व की सिद्धि के लिए नमस्कार करते हैं।।१।।

अब चौदह अधिकारों में तेईस सूत्रों के द्वारा नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयानुगम नाम का चतुर्थ महाधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम अधिकार में गतिमार्गणा के अन्दर नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयानुगम का कथन करने वाले ''णाणजीवेहि'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। आगे द्वितीय अधिकार में इन्द्रियमार्गणा के अन्तर्गत अस्तित्व-नास्तित्व का प्रतिपादन करने वाले ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके पश्चात् कायमार्गणा नाम के तृतीय अधिकार में अस्तित्व कथन की मुख्यता वाला ''कायाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् चतुर्थ अधिकार में योगमार्गणा के अनुवाद से अस्तित्व-नास्तित्व भंग के कथन की मुख्यता वाले ''जोगाणुवोदण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनंतर वेदमार्गणा नाम के पंचम अधिकार में अस्तित्व भंग का निरूपण करने हेतु ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद छठे अधिकार में कषायमार्गणा के अनुवाद से अस्तित्व निरूपण करने वाला ''कसायाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः ज्ञानमार्गणा नामक सातवें अधिकार में अस्तित्व कथन की मुख्यता वाला ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् संयममार्गणा नाम वाले अष्टम अधिकार में अस्तित्व प्ररूपण करने हेतु ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः नवमें अधिकार में दर्शनमार्गणा के अन्तर्गत अस्तित्व कथन करने वाला ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनरपि लेश्यामार्गणा नाम के दशवें अधिकार में भंगों का कथन करने वाला ''लेस्साणु''

इत्यादिना सूत्रमेकं । ततः परं एकादशेऽधिकारे भव्यमार्गणायां भंगकथनत्वेन ''भविया-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् द्वादशेऽधिकारे सम्यक्त्वमार्गणायां अस्तित्व-नास्तित्वकथनपरत्वेन ''सम्मत्ताणु-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं त्रयोदशेऽधिकारे संज्ञिमार्गणायां अस्तित्वकथनत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रमेकं तदनु चतुर्दशेऽधिकारे आहारमार्गणायां आहारानाहारजीवा नामस्तित्वनिरूपणत्वेन ''आहाराणु-'' इत्यादिना सूत्रमेकमिति समुदायपातनिका।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

इदानीं नरकगतौ नारकाणामस्तित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया णियमा अत्थि।।१।।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**विचयो विचारणा।**

केषां ?

अस्ति-नास्तिभंगाणां ।

कुतोऽवगम्यते ? ''णेरइया णियमा अत्थि '' इति सूत्रनिर्देशात्।

न बंधकाधिकारे एतस्यान्तर्भावोऽस्ति। सर्वकालं नियमेन पुनः अनियमेन च मार्गणानां मार्गणाविशेषाणां

इत्यादि एक सूत्र है। उसके पश्चात् भव्यमार्गणा नाम के ग्यारहवें अधिकार में भंग कथन करने वाला ''भविया'' इत्यादि एक सूत्र है। तत्पश्चात् सम्यक्त्वमार्गणा नाम के बारहवें अधिकार में अस्तित्व-नास्तित्व का कथन करने वाले ''सम्मत्ताणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उससे आगे संज्ञीमार्गणा नाम के तेरहवें अधिकार में अस्तित्व का कथन करने वाला ''सण्णिया'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः आहारमार्गणा नाम के चौदहवें अधिकार में आहारक-अनाहारक जीवों का अस्तित्व निरूपण करने वाला ''आहाराणु'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार से यह महाधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

अब नरकगति में नारकियों का अस्तित्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयानुगम से गतिमार्गणानुसार नरकगति में नारकी जीव नियम से हैं।।१।।

इसी प्रकार सातों पृथिवियों में नारकी जीव नियम से होते हैं।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विचय शब्द का अर्थ है विचार करना।

शंका—किनकी विचारणा करना ?

समाधान—''अस्ति-नास्ति भंगों का विचार करना'' यह अर्थ लेना है।

शंका—यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान—यह 'नारकी जीव नियम से हैं' इस सूत्र के निर्देश से जाना जाता है।

चास्तित्वप्ररूपणात्र यास्ति, तस्याः सामान्यास्तित्वप्ररूपणायां अंतर्भावविरोधात्। सप्तसु पृथिवीषु नारकाणां नियमितास्तित्वापेक्षया सामान्यप्ररूपणायाः भेदाभावात्।

सामान्यप्ररूपणायाश्चैव विशेषप्ररूपणायां सिद्धायां किमर्थं पुनः प्ररूपणा क्रियते ?

न, सप्तानां पृथिवीनां नियमेनास्तित्वाभावेऽपि सामान्येन नियमात् अस्तित्वस्य विरोधाभावात्।

अधुना तिर्यग्गतौ मनुष्यगतौ तिरश्चां मनुष्याणां च अस्तित्वप्रतिपादनाय सूत्र द्वयमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ णियमा अत्थि।।३।।

मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि सिया णत्थि।।४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**तिर्यग्गतौ पंचविधानां तिरश्चां अस्तित्वं नियमेनास्ति । अतीतानागतवर्तमानकालेषु एतासां मार्गणानां मार्गणाविशेषाणां च गंगाप्रवाहस्येव व्युच्छेदाभावात्। मनुष्यापर्याप्तानां-लब्ध्यपर्याप्तानां कदाचिदस्तित्वं भवति कदाचिन्न भवति।**

कुतः ?

स्वभावात्।

इसका बंधकाधिकार में अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ जो सर्वकाल नियम से व अनियम से मार्गणा एवं मार्गणा विशेषों की अस्तित्वप्ररूपणा है, उसका सामान्य अस्तित्वप्ररूपणा में अन्तर्भाव होने का विरोध है। क्योंकि सातों पृथिवियों में नारकियों के नियमित अस्तित्व की अपेक्षा सामान्य प्ररूपणा से कोई भेद नहीं है।

शंका—सामान्य प्ररूपणा से ही विशेष प्ररूपणा के सिद्ध होने पर पुनः प्ररूपणा किसलिए की गई है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सात पृथिवियों के नियम से अस्तित्व के अभाव में भी सामान्यरूप से नियमतः अस्तित्व के होने में कोई विरोध नहीं है।

अब तिर्यंचगति में और मनुष्यगति में तिर्यंच और मनुष्यों का अस्तित्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तथा मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी नियम से होते हैं।।३।।

मनुष्य अपर्याप्त कथंचित् हैं और कथंचित् नहीं है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यंचगति में पाँचों प्रकार के तिर्यंचों का अस्तित्व नियम से पाया जाता है। क्योंकि, अतीत-अनागत व वर्तमान कालों में इन मार्गणा विशेषों का गंगा प्रवाह के समान व्युच्छेद नहीं होता है। मनुष्य अपर्याप्तों का कदाचित् अस्तित्व होता है और कदाचित् नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ऐसा ही स्वभाव है।

कः स्वभावो नाम ?

अभ्यन्तरभावः स्वभावो निगद्यते । अस्यायमर्थः—वस्तुनो वस्तुस्थितेर्वा तस्या अवस्थाया नाम स्वभावः, यस्तस्याभ्यन्तरगुणः बाह्यापरिस्थितेः नावलम्बते।

देवगतौ देवानामस्तित्वख्यापनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवगदीए देवा णियमा अत्थि।।५।।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु।।६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**देवगतौ त्रिष्वपि कालेषु देवानां विरहाभावात् ते नियमात् संति। भवनवासिदेवानां प्रभृति सर्वार्थसिद्धिविमानपर्यन्तानां देवानां अस्तित्वं सर्वकालेषु सिद्धमेव ।**

एवं चातुर्गतिकानां जीवानामस्तित्वं नास्तित्वं च प्ररूपकं सूत्रषट्कं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमे चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

शंका—स्वभाव किसे कहते हैं ?

समाधान—आभ्यन्तर भाव को स्वभाव कहते हैं। इसका यह अर्थ है कि—वस्तु या वस्तुस्थिति की उस व्यवस्था को उसका स्वभाव कहते हैं जो कि उसका भीतरी गुण है और वह बाह्य परिस्थिति पर अवलम्बित नहीं है।

अब देवगति में देवों का अस्तित्व ज्ञापित करने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

देवगति में देव नियम से पाये जाते हैं।।५।।

इसी प्रकार भवनवासियों से लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानों तक देव नियम से होते हैं।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवगति में तीनों ही कालों में देवताओं के विरह का अभाव पाया जाता है, क्योंकि वहाँ वे नियम से सदाकाल रहते हैं। भवनवासी देवों से लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान पर्यन्त सभी विमानों में देवों का अस्तित्व सभी कालों में सिद्ध ही है।

इस प्रकार चतुर्गति में रहने वाले जीवों का अस्तित्व और नास्तित्व प्ररूपित करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामके द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नाम के चतुर्थ महाधिकार में सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

इदानीं इन्द्रियमार्गणायां अस्तिभंगप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि।।७।।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि।।८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियबादरसूक्ष्माः पर्याप्तापर्याप्ताः, द्वीन्द्रियादयश्च पर्याप्तापर्याप्ताः सर्वे इमे जीवाः त्रिष्वपि कालेषु संति व्युच्छेदाभावात्।**

एवं इंद्रियमार्गणास्तित्वकथनत्वेन द्वे सूत्रेगते।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

यहाँ इन्द्रियमार्गणा में अस्ति भंग का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार एकेन्द्रिय बादर-सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त जीव नियम से रहते हैं।।७।।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीव नियम से रहते हैं।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त जीव एवं दो इन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त ये सभी जीव तीनों ही कालों में होते हैं, क्योंकि इनके व्युच्छेद का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा का अस्तित्व कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामके द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नाम के चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इंद्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अधुना कायमार्गणायामस्तिभंगकथनार्थं सूत्रमवतरति —

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि।।९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतासां मार्गणानां मार्गणाविशेषाणां च प्रवाहस्य व्युच्छेदाभावात्।**

एवं कायमार्गणास्तित्वभंगनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब कायमार्गणा में अस्तित्व भंग कहने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोदजीव बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, अपर्याप्त एवं त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त, अपर्याप्त जीव नियम से हैं।।९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन मार्गणाओं एवं मार्गणा विशेषों के प्रवाह का कभी व्युच्छेद नहीं होता है।

इस तरह से कायमार्गणा में अस्तित्व भंग का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

योगमार्गणायामस्तिनास्तिभंगकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि १०।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि सिया णत्थि।।११।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनः आहार-आहारमिश्रयोगिनो मुनयश्च कथंचित् संति कथंचित् न संति, सान्तरस्वभावत्वात्। न च स्वभावः परपर्यनुयोगार्हः अतिप्रसंगात्।**

एवं योगमार्गणाभंगकथनत्वेन सूत्रे द्वे गते।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब योगमार्गणा में अस्ति-नास्ति भंग का कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणा के अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी नियम से हैं।।१०।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी कदाचित हैं, कदाचित् नहीं हैं।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और आहारक-आहारकमिश्रकाययोगी मुनि कथंचित् होते हैं और कथंचित् नहीं होते हैं, क्योंकि ये मार्गणाएं सान्तर स्वभाव वाली हैं एवं स्वभाव दूसरों के प्रश्न के योग्य नहीं होता है, चूँकि ऐसा होने से अतिप्रसंग दोष आता है।

इस तरह से योगमार्गणा में भंगों का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

वेदमार्गणायामस्तित्वकथनाय सूत्रमवतरति —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा णियमा अत्थि।।१२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतेषां त्रिवेदानामपगतवेदानां च जीवानां गंगाप्रवाहस्येव व्युच्छेदाभावात् नियमात् ते सन्त्येव।**

एवं वेदमार्गणास्तित्वकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अधुना कषायमार्गणायामस्तित्वकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई णियमा अत्थि।।१३।।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब वेदमार्गणा में अस्तित्व का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव नियम से हैं।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन तीनों वेद सहित एवं वेदरहित अपगतवेदी सिद्धों का अस्तित्व गंगानदी के प्रवाह के समान सतत रहता है, अर्थात् वे नियम से सदैव विद्यमान रहते हैं, क्योंकि उनका व्युच्छेद का अभाव पाया जाता है।

इस प्रकार वेदमार्गणा में अस्तित्व को बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में वेदमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब कषायमार्गणा में अस्तित्व कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीव नियम से हैं।।१३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कषायमार्गणायां क्रोधादिचतुःकषायसहिताः जीवाः संसारे सर्वकालं सन्त्येव, अकषायिनो जीवा अपि सर्वदा विद्यन्त एव। अन्यथा संसारमोक्षयोरेवाभावः स्यात्।**

तात्पर्यमेतत्—**'वयमपि एतज्ज्ञात्वा क्रोधादिकषायान् कृशीकृत्य शनैः शनैः अकषायिनो भविष्यामः' इति भावयितव्यं अहर्निशम्।**

एवं कषायमार्गणास्तित्वभंगनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अधुना ज्ञानमार्गणायामस्तिभंगप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणी केवलणाणी णियमा अत्थि।।१४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रस्यार्थःसुगमोऽस्ति। 'णाणिणो' इतिबहुवचननिर्देशः सूत्रे किं न कृतः इति चेत् ?**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कषायमार्गणा में क्रोधादि चारों कषाय से सहित जीव संसार में सर्वकाल हमेशा रहते ही हैं, अकषायी-कषायरहित जीव भी सर्वदा ही रहते हैं। अन्यथा संसार और मोक्ष दोनों का ही अभाव जो जाएगा।

तात्पर्य यह है कि—'हम सभी ऐसा जानकर क्रोधादि कषायों को कृश करके धीरे-धीरे कषायरहित बनेंगे', ऐसी अहर्निश भावना भानी चाहिए।

इस तरह से कषायमार्गणा में अस्तित्व भंग का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब ज्ञानमार्गणा में अस्ति भंग का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी नियम से हैं।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्र का अर्थ सुगम है।

शंका—सूत्र में "णाणिणो" ऐसा बहुवचन निर्देश क्यों नहीं किया गया है ?

न, प्राकृतव्याकरणनियमेन इकारान्तपुरुषलिंग-नपुंसकलिंग शब्देभ्यः उत्पन्नप्रथमाबहुवचनस्य विकल्पेन लोपोपलंभात्। 'जहा पव्वए अग्गी जलंति, मत्ता हत्थी एंति।' इत्यत्र 'अग्गी' एवं 'हत्थी' पदयोः प्रथमाबहुवचनविभक्तेर्लोपो दृश्यते[१]।

एवं ज्ञानमार्गणानां संततमस्तित्वकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संयममार्गणाधिकारः

संयममार्गणानामस्ति-नास्तिभंगविचयाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा णियमा अत्थि।।१५।।

सुहुमसांपराइयसंजदा सिया अत्थि सिया णत्थि।।१६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रस्यार्थः सुगमोऽस्ति। मोक्षप्राप्ताभिमुखसंयताः वीतरागछद्मस्थसंयताः**

समाधान—नहीं, क्योंकि प्राकृत व्याकरण के नियम से इकारान्त पुल्लिंग और नपुंसकलिंग शब्दों से उत्पन्न प्रथमा के बहुवचन का विकल्प से लोप पाया जाता है। जैसे-पव्वए अग्गी जलंति (पर्वत पर अग्नि जलती हैं) मत्ता हत्थी एंति (मत्त हाथी आते हैं) यहाँ 'अग्गी' और 'हत्थी' पदों में प्रथमाबहुवचनविभक्ति का लोप हो गया है।

इस तरह से ज्ञानमार्गणा में जीवों का सतत अस्तित्व कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब संयममार्गणा में अस्ति-नास्ति भंगविचय का कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संयममार्गणानुसार सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव नियम से हैं।।१५।।

सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रों का अर्थ सुगम है। मोक्षप्राप्ति के अभिमुख हुए संयत मुनिराज,

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-२८९

देशसंयताः असंयताश्च सर्वेऽपि जीवाः अस्मिन्ननादिसंसारे सर्वकालं सन्त्येव। केवलं सूक्ष्मसांपरायिकमुनयो दशमगुणस्थानवर्तिनः कथंचित् संति कथंचित् न संति।

एवं संयममार्गणानामस्तिनास्तिभंगनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अधुना दर्शनमार्गणास्तित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी णियमा अत्थि।।१७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **सूत्रस्यार्थः सुगमोऽस्ति। इमे दर्शनमार्गणासहिताः जीवाः सर्वकालं संति।**

एवं दर्शनमार्गणास्तित्वनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

वीतरागछद्मस्थ संयत, देशसंयत और असंयत ये सभी जीव इस अनादि संसार में सर्वकाल रहते ही हैं। केवल सूक्ष्मसाम्परायिक दशमगुणस्थानवर्ती मुनि कथंचित् हैं, कथंचित् नहीं हैं।

इस प्रकार संयममार्गणा में अस्ति-नास्ति भंग का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दर्शनमार्गणा का अस्तित्व बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी नियम से हैं।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त सूत्र का अर्थ सुगम है। ये दर्शनमार्गणा समन्वित जीव सर्वकाल पाये जाते हैं।

इस तरह से दर्शनमार्गणा में अस्तित्व निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

इदानीं लेश्यामार्गणासु अस्तित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया णियमा अत्थि।।१८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सर्वे संसारिणः लेश्यावन्त एव, अतस्ते सर्वकालं विद्यन्ते।**

एवं लेश्यास्तित्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

संप्रति भव्यमार्गणायामस्तित्वकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णियमा अत्थि।।१९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सिद्धिपुरस्कृताः—मुक्तिगामिनो भव्या नाम, तद्विपरीता अभव्याः। सिद्धाः न**

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब लेश्यामार्गणा में अस्तित्व का प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीव नियम से हैं।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी संसारी जीव लेश्यावान् ही होते हैं, अतः वे सर्वकाल विद्यमान रहते हैं।

इस तरह से लेश्या में अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब भव्यमार्गणा में अस्तित्व का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक नियम से हैं।।१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सिद्धिपुरस्कृत अर्थात् मोक्षगामी जीवों को भव्य और इनसे विपरीत

भव्या न चाभव्याः, तद्विपरीतस्वभावत्वात्।

भव्याभव्यजीवाः इव सिद्धा अपि नियमेन संति पुनः तेषामस्तित्वमत्र किन्नोक्तं ?

न, बंधाधिकारेऽत्र तेषां सिद्धानामबंधकानां संभवाभावात्।

एवं भव्यत्वमार्गणास्तित्वनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

इदानीं सम्यक्त्वमार्गणायामस्ति-नास्तिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी णियमा अत्थि।।२०।।

उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सिया अत्थि सिया णत्थि।।२१।।

जीवों को अभव्य कहते हैं। सिद्ध जीव न तो भव्य हैं और न अभव्य हैं, क्योंकि उसका स्वरूप भव्य और अभव्य दोनों से विपरीत है।

शंका — भव्य व अभव्यों के समान 'सिद्ध भी नियम से हैं पुनः उनका अस्तित्व क्यों नहीं कहा ?'

समाधान — नहीं, क्योंकि बंधकाधिकार में अबंधक सिद्धों की संभावना का अभाव है।

इस प्रकार भव्यमार्गणा में भव्यों का अस्तित्व बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब सम्यक्त्वमार्गणा में अस्ति-नास्ति भंग का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नियम से हैं।।२०।।

उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं।।२१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमो वर्तते।**

एतेषां त्रयाणां मार्गणावचनानां सान्तरस्वरूपत्वदर्शनात्।

एवं सम्यक्त्वमार्गणानामस्तिनास्तिनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

संज्ञिमार्गणायामस्तिभंगकथनाय सूत्रमवतरति —

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी णियमा अत्थि।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संसारे संज्ञिनः समनस्काः, असंज्ञिनोऽमनस्काः जीवाः निरन्तरं सन्त्येव।**

एवं संज्ञिमार्गणास्तित्वकथनपरत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। इन तीन मार्गणा प्रभेदों का सान्तर स्वरूप दिखाया जा चुका है।

इस तरह से सम्यक्त्वमार्गणा में अस्ति-नास्ति भंग का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब संज्ञीमार्गणा में अस्ति भंग का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव नियम से हैं।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संसार में संज्ञी—समनस्क और असंज्ञी—अमनस्क जीव निरन्तर हैं ही हैं।

इस तरह से संज्ञीमार्गणा में अस्तित्व का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

आहारमार्गणास्तित्वकथनार्थं सूत्रमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा णियमा अत्थि।।२३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**आहारकाः अनाहारकाश्च नियमेन संति। अत्र नानाजीवैः भंगविचयानुगमाधिकारे चतुर्दशमार्गणाः संति। आसु मार्गणासु अंतरमार्गणाः अष्टौ संति। तासामेव मार्गणानामत्र अस्तिनास्तिद्वयभंगौ प्ररूपितौ, शेषाः मार्गणाः अस्तिभंगरूपेणैव।**

उक्तं च— उवसमसुहुमाहारे वेगुव्वियमिस्सणर अपज्जत्ते।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणा अट्ठ।।१४३।।
सत्तदिणाच्छम्मासा वासपुधत्तं च बारहमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमओ दु।।१४४।।
पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा।
विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोद्धव्वो।।१४५।।

लोके नानाजीवापेक्षया विवक्षितगुणस्थानं विवक्षितमार्गणास्थानं वा त्यक्त्वा गुणस्थानान्तरे मार्गणान्तरे वा गत्वा पुनर्यावत्तद्विवक्षितं गुणस्थानं मार्गणास्थानं वा नायाति तावान् कालः अंतरं नाम। तच्चोत्कृष्टेन

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब आहारमार्गणा में अस्तित्व का कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणानुसार आहारक और अनाहारक जीव नियम से होते हैं।।२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के जीव नियम से रहते हैं। यहाँ नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयानुगम अधिकार में चौदह मार्गणाएँ बताई गई हैं। इन मार्गणाओं में आठ अन्तर मार्गणा हैं। उन्हीं मार्गणाओं के यहाँ अस्ति-नास्ति दो भंग प्ररूपित किये गये हैं, शेष मार्गणाएँ अस्तिभंगरूप ही हैं। जैसा कि गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रंथ में कहा भी है—

गाथार्थ— उपशमसम्यक्त्व, सूक्ष्मसाम्पराय संयम, आहारक काययोग, आहारकमिश्रकाययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सासादन सम्यक्त्व और मिश्र ये आठ सान्तर मार्गणाएँ हैं।।१४३।

उक्त आठ अन्तरमार्गणाओं का उत्कृष्ट काल क्रम से सात दिन, छः महीना, पृथक्त्व वर्ष, पृथक्त्व वर्ष, बारह मुहूर्त और अन्त की तीन मार्गणाओं का काल पल्य के असंख्यातवें भाग है और जघन्य काल सबका एक समय है।।१४४।।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहित पंचमगुणस्थान का उत्कृष्ट विरहकाल चौदह दिन और छठे, सातवें गुणस्थान का उत्कृष्ट विरहकाल पंद्रह दिन समझना चाहिए।।१४५।।

लोक में नाना जीवों की अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान अथवा विवक्षित मार्गणास्थान को त्यागकर अन्य गुणस्थान अथवा अन्य मार्गणास्थान में जाकर पुनः जब तक विवक्षित गुणस्थान अथवा

औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सप्त दिनानि । तदनन्तरं कश्चित् स्यादेवेत्यर्थः। सूक्ष्मसांपरायसंयमिनां षण्मासाः। आहारकतन्मिश्रकाययोगिनां वर्षपृथक्त्वं । त्रिकादुपरि नवकादधः पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा। वैक्रियिकमिश्रकाय-योगिनां द्वादशर्मुहूर्ताः। लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्याणां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च प्रत्येकं पल्या-संख्यातैकभागमात्रं एवं सान्तरमार्गणा अष्टौ। तासां जघन्येनान्तरमेकसमय एव ज्ञातव्यः। लोके उपशमसम्य-ग्दृष्टयादयो यदि न संति तदा उत्कर्षेणोक्तस्व-स्वकालपर्यन्तमेव तेषामष्टानामभावस्ततो नाधिकः कालः।

अथ सान्तरमार्गणाविशेषं चात्र प्ररूपयति—

विरहकालः लोके नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टेनांतरं प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहितायाः विरताविरतेः— अणुव्रतस्य, चतुर्दशदिनानि। तत्सहितविरतेः—महाव्रतस्य पञ्चदश दिनानि। तु पुनः, द्वितीयसिद्धान्तापेक्षया चतुर्विंशतिदिनानि। इदमुपलक्षणं इत्येकजीवापेक्षयापि उक्तमार्गणानामन्तरं प्रवचनानुसारेण बोद्धव्यम्[१]।

एवं आहारमार्गणायां अस्तित्वनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतं।

इति श्री षट्खण्डागमग्रन्थे क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भंगविचयानुगमनाम चतुर्थे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

मार्गणास्थान में नहीं आता है, तब तक के काल को अन्तर कहते हैं। वह अन्तर उत्कृष्ट से औपशमिक सम्यग्दृष्टियों का सात दिन है। अर्थात् तीनों लोकों में कोई भी जीव उपशमसम्यक्त्वधारी यदि न हो, तो अधिक से अधिक सात दिन तक न हो उसके बाद कोई अवश्य ही होगा। इसी तरह सूक्ष्मसाम्पराय संयमियों का उत्कृष्ट अन्तर छह मास है। आहारक और आहारकमिश्रकाययोग वालों का उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। तीन से ऊपर और नौ से नीचे की संख्या की आगम में पृथक्त्व संज्ञा है। वैक्रियिक मिश्रकाययोगियों का अन्तर बारह मुहूर्त है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि में से प्रत्येक का अन्तर पल्य का असंख्यातवाँ भाग काल है। इस प्रकार सान्तरमार्गणा आठ हैं। इनका जघन्य अन्तर एक समय ही जानना चाहिए। लोक में यदि उपशमसम्यग्दृष्टि आदि न हों, तो उत्कृष्ट से उक्त अपने-अपने काल पर्यन्त ही उन आठों का अभाव हो सकता है, इससे अधिक काल तक नहीं है।

आगे सान्तर मार्गणाविशेष को कहते हैं—

विरहकाल अर्थात् लोक में नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित विरताविरत अर्थात् अणुव्रती जीवों का चौदह दिन है और प्रथमोपशमसम्यक्त्व सहित विरत अर्थात् महाव्रत का विरहकाल पन्द्रह दिन है। किन्तु द्वितीय सिद्धान्त की अपेक्षा चौबीस दिन है। यह कथन उपलक्षणरूप है। अतः एक जीव की अपेक्षा भी उक्त मार्गणाओं का अन्तर प्रवचन के अनुसार जानना चाहिए।

इस तरह से आहारमार्गणा में अस्तित्व भंग का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. गोम्मटसारजीवकांड, जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका। (पृ. २७६-२७७)।

तात्पर्यमेतत्—**गुणस्थानमार्गणास्थानातीतं यत् किमपि पदं तदेव स्वपदं, इति ज्ञात्वा स्वशुद्धात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानं, तस्यैव ज्ञानं, तत्रैव निश्चलत्वं चेति निश्चयरत्नत्रयं समालम्ब्य निजपरमानन्दस्थानमेव प्राप्तव्यं।**

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खंडागमस्य श्रीमद्भूतबलिसूरिविरचिते क्षुद्रक-बंधनाम्नि द्वितीयखंडे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रंथाधारेण विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या-जम्बूद्वीप-रचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणि-टीकायां नानाजीवापेक्षया भंगविचयानुगमो-नाम चतुर्थो महाधिकारः समाप्तः।

तात्पर्य यह है कि—गुणस्थान और मार्गणास्थान से अतीत—रहित जो कोई भी पद है, वही स्वपद—निज पद है। ऐसा जानकर निज शुद्ध आत्म तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, उसी का ज्ञान एवं उसी में निश्चलता—दृढ़ता रखते हुए निश्चयरत्नत्रय का आलम्बन लेकर निज परमानन्द स्थान को ही प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ में श्री भूतबली आचार्य विरचित क्षुद्रक बंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा रचित धवला टीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में नाना जीव की अपेक्षा भंगविचयानुगम नामक चतुर्थ महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ द्रव्यप्रमाणानुगमो पंचमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

अनन्तानन्तसिद्धा ये, लोकाग्रे स्थायिनः सदा।
तान्नत्वा ब्रूमहे संख्याः, सर्वसंसारिप्राणिनाम्।।१।।

अथ चतुर्दशभिरधिकारैः एकसप्तत्यधिकशतसूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमनामा पंचमो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमाधिकारे चतुर्गतिनिरूपणत्वेन ''दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण'' इत्यादिना षट्पञ्चाशत् सूत्राणि कथ्यन्ते। तदनु द्वितीयाधिकारे इन्द्रियमार्गणायां संख्यानिरूपणत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्राष्टकं। ततः परं तृतीयाधिकारे कायमार्गणायां द्रव्यप्रमाणनिरूपणपरत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिना एकोनविंशतिसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थाधिकारे योगमार्गणायां संख्याकथनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिना अष्टादश सूत्राणि। तदनंतरं पंचमाधिकारे वेदमार्गणायां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रदशकं। तदनु षष्ठाधिकारे कषायाधिकारे संख्यानिरूपणत्वेन ''कसाया-'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं सप्तमेऽधिकारे ज्ञानमार्गणायां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रदशकं। ततः पुनः अष्टमेऽधिकारे संख्याकथनत्वेन संयममार्गणायां ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वादशकं। पुनश्च नवमेऽधिकारे दर्शनमार्गणायां द्रव्यप्रमाणप्ररूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। पुनरपि दशमाधिकारे लेश्यामार्गणायां संख्याकथनत्वेन ''लेस्सा-'' इत्यादिसूत्राष्टकं। ततः परं एकादशाधिकारे भव्यमार्गणायां द्रव्यप्रमाणकथनपरत्वेन ''भविया-'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं द्वादशाऽधिकारे

अथ द्रव्यप्रमाणानुगम नामक पंचम महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—लोक के अग्रभाग पर सदाकाल विराजमान रहने वाले अनन्तानन्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके हम समस्त संसारी प्राणियों की संख्या बताते हैं।।१।।

अब चौदह अधिकारों में एक सौ इकहत्तर सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम नाम का पंचम महाधिकार प्रारंभ किया जा रहा है। उनमें से प्रथम अधिकार में चारों गतियों का निरूपण करने वाले ''दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण'' इत्यादि छप्पन सूत्र कहेंगे। उसके बाद द्वितीय अधिकार में इन्द्रियमार्गणा में संख्या निरूपण करने वाले ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। पुनः तृतीय अधिकार में कार्यमार्गणा की संख्या बतलाने वाले ''कायाणुवादेण'' इत्यादि उन्नीस सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ अधिकार में योगमार्गणा में संख्या का निरूपण करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि अठारह सूत्र हैं। तदनंतर पंचम अधिकार में वेदमार्गणा में द्रव्यप्रमाण का कथन करने वाले ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि दश सूत्र हैं। उसके बाद छठे अधिकार में कषायमार्गणा में संख्या का निरूपण करने वाले ''कसाया-'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर सप्तम अधिकार में ज्ञानमार्गणा के द्रव्यप्रमाण का निरूपण करने वाले ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि दश सूत्र हैं। उसके बाद आठवें अधिकार में संयममार्गणा में संख्या का कथन करने वाले ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। पुनश्च नवमें अधिकार में दर्शनमार्गणा में द्रव्यप्रमाण का प्ररूपण करने वाले ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि सात सूत्र हैं। आगे दशवें अधिकार में लेश्यामार्गणा में संख्याकथन करने हेतु ''लेस्सा-'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। उसके बाद ग्यारहवें अधिकार में भव्यमार्गणा में द्रव्यप्रमाण का कथन करने वाले ''भविया-'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर

सम्यक्त्वाधिकारे संख्यानिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् त्रयोदशाधिकारे संज्ञिमार्गणायां संख्याकथनपरत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं चतुर्दशाधिकारे जीवानां द्रव्यप्रमाणनिरूपणत्वेन ''आहाराणुवादेण '' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन षट्पंचाशत्सूत्रैः द्रव्यप्रमाणनुगमे गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले नरकगतौ नारकाणां संख्यानिरूपणत्वेन ''दव्वपमाणाणुगमेण'' इत्यादिना त्रयोदशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिरश्चां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिसूत्राष्टकं। ततः परं तृतीयस्थले मनुष्याणां संख्याप्रतिपादनत्वेन ''मणुसगदीए'' इत्यादिसूत्राष्टकं। तदनंतरं चतुर्थस्थले देवगतौ देवानां संख्याप्रतिपादनपरत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिसप्तविंशतिसूत्राणि इति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं नरकगतौ सामान्यनारकाणां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

दव्वपमाणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१।।

असंखेज्जा।।२।।

बारहवें अधिकार में सम्यक्त्वमार्गणा में संख्या का निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र है। तत्पश्चात् तेरहवें अधिकार में संज्ञीमार्गणा के अन्तर्गत संख्या का कथन करने वाले "सण्णिया-" इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद चौदहवें अधिकार में आहारमार्गणा में जीवों के द्रव्यप्रमाण का निरूपण करने वाले ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। इस महाधिकार के प्रारंभ में सम्पूर्ण सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में छप्पन सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में नरकगति के नारकी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले ''दव्वपमाणाणुवादेण'' इत्यादि तेरह सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में तिर्यंच जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में मनुष्यों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु ''मणुसगदीए'' इत्यादि आठ सूत्र हैं तदनंतर चतुर्थ स्थल में देवगति में देवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु ''देवगदीए'' इत्यादि सत्ताईस सूत्र हैं। अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब नरकगति में सामान्य नारकियों की संख्या का निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

द्रव्यप्रमाणानुगम से गतिमार्गणानुसार नरकगति की अपेक्षा नारकी जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ?।।१।।

नारकी जीव द्रव्यप्रमाण से असंख्यात हैं।।२।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।३।।

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ।।४।।

पदरस्स असंखेज्जदिभागो।।५।।

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणिदेण।।६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—एता मार्गणाः सर्वकालं संति, एताश्च सर्वकालं न संति इति नानाजीवभंगविचयानुगमेन ज्ञापयित्वा संप्रति तासु मार्गणासु स्थितजीवानां प्रमाणप्ररूपणार्थं द्रव्यानियोगद्वारं आगतं। तत्र चतुर्गतिजीवेषु अपि अत्र सूत्रे 'णेरइया' इति वचनेन नरकगतिसंबद्धनारकजीवेभ्यो व्यतिरिक्तद्रव्यादीनां प्रतिषेधः कृतः।

'केवडिया' इति पदेन आशंका कृता श्रीआचार्यदेवेन। अस्या एव उत्तरं अग्रिमसूत्रे संख्यातानन्तयोः प्रतिषेधार्थमसंख्यातवचनं। इदमपि असंख्यातं त्रिविधं तेषु कतम-मसंख्यातमिति ज्ञापनार्थं—कालापेक्षया असंख्यातासंख्याताभिः अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभिः अपहृता भवन्ति नारकाः। क्षेत्रापेक्षया असंख्यातजगत्श्रेणीप्रमाणाः नारका जीवाः संति। पुनश्च उक्तनारकाः जगत्प्रतरस्या-संख्यातभागप्रमाणा असंख्यातजगच्छ्रेणीप्रमाणाः संति। एतेन सूत्रेण उत्कृष्टासंख्यातासंख्यातस्य प्रतिषेधः कृतः। तासां श्रेणीनां विष्कंभसूची सूच्यंगुलस्य द्वितीयवर्गमूलेन गुणितं तस्यैव प्रथमवर्गमूलप्रमाणं। अत्र विष्कंभसूची-अवहारकाल-द्रव्याणां खंडित-भाजित-विरलित-अपहृत-प्रमाण-कारण-निरुक्ति-विकल्पैः प्ररूपणा कर्तव्या।

काल की अपेक्षा नारकी जीव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के द्वारा अपहृत होते हैं।।३।।

क्षेत्र की अपेक्षा नारकी जीव असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण हैं।।४।।

उक्त नारकी जीव जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण हैं।।५।।

उन जगत्श्रेणियों की विष्कम्भसूची, सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणित उसी के प्रथम वर्गमूल प्रमाण है।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये मार्गणाएं सर्वकाल हैं और ये मार्गणाएं सर्वकाल नहीं है, इस प्रकार नाना जीवों की अपेक्षा भंगविचयानुगम से ज्ञान कराकर अब उन मार्गणाओं में स्थित जीवों के प्रमाण के निरूपणार्थ द्रव्यानुयोग द्वार आया है। उनमें चतुर्गति के जीवों में भी इस वचन से शेष गतियों का प्रतिषेध किया है। 'नारकी' इस वचन से नरकगति से संबद्ध नारकियों के अतिरिक्त अन्य द्रव्यादिकों का प्रतिषेध किया है।

कितने हैं ? इस पद से आचार्य देव ने आशंका की है। इसी का उत्तर अग्रिम सूत्र में दिया है कि संख्यात व अनन्त का प्रतिषेध करने के लिए 'असंख्यात' वचन आया है। यह असंख्यात भी तीन प्रकार का है। उनमें से यह कौन सा असंख्यात है ? यह बतलाने के लिए—काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों के द्वारा नारकी जीव अपहृत होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातजगत् श्रेणी प्रमाण नारकी जीव हैं। पुनश्च उक्त नारकी जीव जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण हैं। इस सूत्र से उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रतिषेध किया गया है। उन श्रेणियों की विष्कंभसूची सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने पर उसी का प्रथम वर्गमूलप्रमाण होता है। यहाँ विष्कंभसूची-अवहारकाल द्रव्यों की खण्डित, भाजित, विरलित, अपहृत, प्रमाण, कारण और निरुक्ति के भेदों से प्ररूपणा करना चाहिए।

अधुना प्रथमादिसप्तपृथिवीषु नारकाणां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया।।७।।

विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।८।।

असंखेज्जा।।९।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।१०।।

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो।।११।।

तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ।।१२।।

पढमादियाणं सेडिवग्गमूलाणं संखेज्जाणमण्णोण्णब्भासो।।१३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः द्रव्यप्रमाणानुगमनाम प्रकरणे प्राक्कथितोऽस्ति। सामान्यतया यत्संख्या नारकाणां कथिता, पृथिव्यां प्रथमायां सैव ज्ञातव्या । द्वितीयादिषु पृथिवीषु असंख्यातासंख्यातसंख्या ज्ञातव्या।**

अब प्रथम पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक में नारकियों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादित करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सामान्य नारकियों के समान ही प्रथम पृथिवी के नारकियों का द्रव्यप्रमाण है।।७।।

द्वितीय पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी के नारकी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।८।।

द्वितीयादि छह पृथिवियों के नारकी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।९।।

द्वितीय पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी के नारकी काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।१०।।

क्षेत्र की अपेक्षा द्वितीय पृथिवी से लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवी के नारकी जगश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।११।।

जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण उस श्रेणी का आयाम (लम्बाई) असंख्यात योजनकोटि है।।१२।।

पूर्वोक्त असंख्यात कोटि योजनों का प्रमाण प्रथमादिक संख्यात जगत्श्रेणीवर्ग मूलों के परस्पर गुणनफलरूप है।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के प्रकरण में पहले कहा जा चुका है। सामान्यतया जो संख्या नारकियों की कही गई है, प्रथम पृथिवी में भी वही जानना चाहिए। द्वितीय आदि पृथिवियों में असंख्यातासंख्यात की संख्या जाननी चाहिए।

एवं प्रथमस्थले नारकाणां संख्याकथनत्वेन त्रयोदश सूत्राणि गतानि।
अधुना सामान्यतिरश्चां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयं अवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१४।।

अणंता।।१५।।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।१६।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।१७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र कालापेक्षया अनन्तानन्ताभिः अवसर्पिण्युत्सर्पिणीभिरपि तिर्यञ्चोऽपहृताः न भवन्ति। अतीतकालग्रहणात्।**

अपहृते सति को दोषः ?

न, सर्वेषां भव्यजीवानां व्युच्छेदप्रसंगात्। अत्र परीतानंत-युक्तानंतयोः प्रतिषेधः कृतः, अतः अनंतानन्तभेदो गृहीतव्यः। क्षेत्रापेक्षयापि जघन्योत्कृष्टानन्तयोः प्रतिषेधो ज्ञातव्यः। अनन्तानन्तस्य त्रिभेदोऽत्र ज्ञातव्यः, जघन्योत्कृष्ट-तद्व्यतिरिक्तभेदात्। अतः सूत्रे ''लोगा'' इति पदेन तद्व्यतिरिक्तानन्तानन्तभेदो गृहीतव्यः । सामान्येन तिरश्चां संख्याकथनेनात्र एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यंताः सर्वेऽपि तिर्यञ्चो गृहीतव्याः।

इदानीं चतुर्विधतिरश्चां संख्यानिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

इस प्रकार प्रथम स्थल में नारकियों की संख्या बतलाने वाले तेरह सूत्र पूर्ण हुए।
अब सामान्य तिर्यंचों की संख्या प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ?।।१४।।

तिर्यंचगति में तिर्यंचजीव द्रव्यप्रमाण से अनन्त हैं।।१५।।

तिर्यंच जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं।।१६।।

तिर्यंच जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से भी तिर्यंच जीव अपहृत नहीं होते हैं, क्योंकि यहाँ अतीत काल का ग्रहण किया गया है।

शंका—अनंतानंत अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों से इनके अपहृत होने पर कौन सा दोष आता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा होने पर सब भव्य जीवों के व्युच्छेद का प्रसंग आ जावेगा। इस सूत्र के द्वारा परीतानन्त और मुक्तानन्त का प्रतिषेध किया गया है। अतः अनन्तानन्त भेद ग्रहण करना चाहिए। क्षेत्र की अपेक्षा भी जघन्य और उत्कृष्ट अनन्त का प्रतिषेध जानना चाहिए। यहाँ अनन्त के भी जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्त के भेद से तीन भेद होते हैं। अतः सूत्र में ''लोगा'' इस पद से तद्व्यतिरिक्त नाम का अनन्तानन्त का भेद यहाँ ग्रहण करना चाहिए। सामान्य से तिर्यंचों की संख्या के कथन से यहाँ एकेन्द्रिय जीव से पंचेन्द्रिय पर्यन्त सभी तिर्यंचों को ग्रहण करना चाहिए।

अब चारों प्रकार के तिर्यंचों की संख्या निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१८।।

असंखेज्जा।।१९।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।२०॥

खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण।।२१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—पंचेन्द्रियाः तिर्यंचः असंख्याताः भवन्ति। असंख्यातोऽपि त्रिविधः। परीतासंख्यात-युक्तासंख्यात-असंख्यातासंख्याताः इति। अत्र असंख्यातासंख्यातो भेदः गृहीतव्यः।

श्रीगौतमस्वामिगणधरदेवेन प्रोक्तं प्रतिक्रमणदण्डकसूत्रेषु—

''तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं, से पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आउकाइया

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१८।।

उक्त तिर्यंच द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।१९।।

उक्त चारों तिर्यंचजीव काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत होते हैं।।२०।।

क्षेत्र की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों के द्वारा क्रमशः देव अवहारकाल से असंख्यातगुणे हीन काल से, संख्यातगुणे हीन काल से, संख्यातगुणे काल से और असंख्यातगुणे हीन काल से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंख्यात होते हैं। असंख्यात के भी तीन भेद होते हैं—परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात। इनमें से यहाँ असंख्यातासंख्यात भेद ग्रहण करना चाहिए।

श्री गौतम गणधर स्वामी ने भी प्रतिक्रमणदण्डक सूत्रों में कहा है—

उस प्रतिक्रमण दण्डक का पद्यानुवाद प्रस्तुत है—

इनमें हिंसा का त्याग महाव्रत, प्रथम कहा है जिनवर ने।
भूकायिक जीव असंख्याता-संख्यात व जलकायिक इतने।।
अग्नीकायिक भि असंख्यातासंख्यात पवनकायिक इतने।
जो वनस्पतिकायिक प्राणी, वे सभी अनन्तानन्त भणें।।

जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाउकाइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणंताणंता[१]'' इत्यादयः। तथैव बेइंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, इत्यादयः। एवमेव पंचिंदिया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया पोदाइया जराइया रसाइया संसेदिमा सम्मुच्छिमा उब्भेदिमा उववादिमा[२]'' इत्यादयः।

एतेषु दण्डकसूत्रेषु पृथिव्यादिचतुष्कजीवाः असंख्यातासंख्याताः प्रोक्ताः, द्वीन्द्रियादयो विकलत्रयाः असंख्यातासंख्याताः प्रत्येकमिमे भवन्ति। पंचेन्द्रिया जीवाश्च तिर्यंचो मनुष्याः देवा नारकाश्च सर्वे मिलित्वापि असंख्यातासंख्याता एव, केवलं वनस्पतिकायिका एव अनन्तानन्ताः भवन्ति।

एवं द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ तिरश्चां द्रव्यप्रमाणकथनपरत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

संप्रति सामान्यमनुष्य-लब्ध्यपर्याप्तमनुष्ययोः संख्यानिरूपणाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

मणुसगदीए मणुस्स मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।। २२।।

असंखेज्जा।।२३।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।२४।।

खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो।।२५।।

इत्यादिरूप से एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा के त्यागरूप अहिंसा महाव्रत बताया है। इसी प्रकार से दो इंद्रिय जीव असंख्यातासंख्यात हैं उनका त्याग अहिंसा महाव्रत है। ऐसे ही तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय वाले जीवों के प्रति अहिंसा का भाव होता है तथा इसी प्रकार से अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, पसीनज, सम्मूर्च्छनज, उद्भेदिम और उपपादज के भेदों से पंचेन्द्रिय जीव असंख्यातासंख्यात होते हैं।

इन दण्डक सूत्रों में पृथिवीकायिक आदि चतुष्क — पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव असंख्यातासंख्यात कहे गये हैं। दो इन्द्रिय आदि विकलत्रय सभी जीवों की संख्यागणना असंख्यातासंख्यात है और पंचेन्द्रिय जीवों में तिर्यंच, मनुष्य, देव और नारकी सब मिलकर भी असंख्यातासंख्यात ही हैं, केवल वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्तानन्त होते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यंचगति के तिर्यंचों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब सामान्यमनुष्य और लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों की संख्या निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्यगति में मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।२२।।

मनुष्य और मनुष्य अपर्याप्त द्रव्यप्रमाण से असंख्यात है।।२३।।

मनुष्य और मनुष्यअपर्याप्तक काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।२४।।

क्षेत्र की अपेक्षा मनुष्य व मनुष्यअपर्याप्त जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२५।।

१-२. यतिप्रतिक्रमण से

तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ।।२६।।

मणुस-मणुसअपज्जत्तएहि रूवं रूवापक्खित्तएहि सेडी अवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण।।२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मनुष्यगतौ सामान्यमनुष्ये त्रिविधाः अपि मनुष्याः गर्भिता भवन्ति। मनुष्यापर्याप्ताः-लब्ध्यपर्याप्तकाः मनुष्याः स्त्रीणां कक्षकुक्षिस्थानेषु उद्भवन्ति ।**

संप्रति पर्याप्तमनुष्य-योनिमतीमनुष्यभेदयोः द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुस्सपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया ?।।२८।।

कोडाकोडाकोडीए उवरिं कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो।।२९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एवं सामान्येन यद्यपि सूत्रे उक्तं तथ्यपि आचार्यपरंपरागतेन गुरूपदेशेनाविरुद्धेण पंचमवर्गस्य घनमात्रो मनुष्यपर्याप्तराशिर्भवतीति गृहीतव्यः। तस्य प्रमाणमिदं—**

७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६।

अत्र गाथा उच्यते— तललीनमधुगविमलं, धूमसिलागाविचोरभयमेरू।
तटहरिखझसा होंति हु, माणुसपज्जत्तसंखंका।।

उस जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागरूप श्रेणी अर्थात् पंक्ति का आयाम असंख्यात योजनकोटि है।।२६।।

सूच्यंगुल के प्रथम वर्गमूल को उसके ही तृतीय वर्गमूल से गुणित करने पर जो लब्ध आवे उसे शलाकारूप से स्थापित कर रूपाधिक मनुष्यों और रूपाधिक मनुष्य अपर्याप्तों द्वारा जगश्रेणी अपहृत होती है।।२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनुष्यगति में सामान्य मनुष्य में तीनों प्रकार के मनुष्य गर्भित हो जाते हैं। अपर्याप्त मनुष्य अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, मनुष्यिनी स्त्रियों की कांख—कुक्षि स्थानों में उत्पन्न होते हैं।

अब पर्याप्तमनुष्य एवं योनिमती मनुष्यों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनियाँ द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितनी हैं ?।।२८।।

कोड़ाकोड़ाकोड़ी के ऊपर और कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी के नीचे अर्थात् छह वर्गों के ऊपर तथा सात वर्गों के नीचे अर्थात् छठे और सातवें वर्ग के बीच की संख्याप्रमाण मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनियाँ हैं।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस प्रकार यद्यपि सामान्य से सूत्र में कहा है, तथापि आचार्य परम्परा से आये हुए गुरु के अविरुद्ध उपदेश से पंचम वर्ग से घनप्रमाण मनुष्य पर्याप्त राशि है, इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए। उसका प्रमाण यह है—७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६।

यहाँ गाथासूत्र प्रस्तुत है—

केनाक्षरेण कस्यांकस्य बोधो भवति इति चेत् ?

अस्य परिज्ञानार्थं एका गाथा वर्तते—

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरञनशून्यं संख्या, मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यम्।।

अनया गाथया उपर्युक्तप्राकृतगाथायाः अर्थबोधो भवति तयैव गाथया पर्याप्तमनुष्याणां संख्या परिज्ञायते।

कश्चिदाह—एष उपदेशः 'कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो' इति सूत्रवाक्येन कथं न विरुध्यते ?

आचार्यः प्राह—न विरुध्यते, एककोटाकोटाकोटाकोटिमादिं कृत्वा यावत् रूपोनदशकोटाकोटा-कोटाकोटिपर्यंतं इदं सर्वमपि कोटाकोटाकोटाकोटिपदेन ग्रहणात्। न च एतस्य स्थानस्योत्कृष्टं उल्लंघ्य मनुष्यपर्याप्तराशिः स्थिता, अष्टानां कोटाकोटाकोटाकोटीनां अधः तस्यावस्थानदर्शनात्।

पर्याप्तमनुष्यराशिचतुःभागेषु त्रिभागप्रमाणाः मनुष्यिन्यः, एकश्चतुर्भागः पुरुषनपुंसकराशिर्भवति।

एवं तृतीयस्थले मनुष्याणां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

देवगतौ देवानां संख्यानिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

देवगदीए देवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।३०।।

गाथार्थ— तकारादि अक्षरों से सूचित क्रमशः छह, तीन, तीन, शून्य, पाँच, नौ, तीन, चार, पाँच, तीन, नौ, पाँच, सात, तीन, तीन, चार, छह, दो, चार, एक, पाँच, दो, छह, एक, आठ, दो, दो, नौ और सात ये मनुष्यपर्याप्तराशि की संख्या के अंक हैं।।

किस अंक का बोध किस अक्षर से होता है ? इसका परिज्ञान कराने के लिए एक गाथा है—

गाथार्थ— क-ख इत्यादि नौ अक्षरों से क्रमशः एक, दो आदि नौ संख्या तक ग्रहण करना चाहिए। जैसे—क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। इसी प्रकार ट-ठ इत्यादि से भी एक-दो-दो क्रम से नौ तक, प से म तक पाँच और य से ह तक आठ अक्षरों से क्रमशः एक-दो आदि आठ तक अंकों का ग्रहण करना चाहिए। स्वर, ञ और न शून्य के सूचक हैं। मात्रा और उपरिम अक्षर को छोड़ देना चाहिए, अर्थात् उससे किसी अंक का बेध नहीं होता है।।

इस गाथा से उपर्युक्त प्राकृत गाथा का अर्थ बोध होता है। उसी प्राकृत गाथा के अनुसार पर्याप्त मनुष्यों की संख्या का ज्ञान होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—यह उपदेश कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी से नीचे इस सूत्र से कैसे विरोध को प्राप्त नहीं होता है ?

तब आचार्य समाधान देते हैं कि—इसमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि एक कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी से लेकर एक कम दस कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी तक इन सबको भी कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी पद से ग्रहण किया गया है और इस स्थान के उत्कृष्ट का उल्लंघन कर मनुष्यपर्याप्तराशि स्थित नहीं है, क्योंकि उसका अवस्थान आठ कोड़ाकोड़ाकोड़ाकोड़ी के नीचे देखा जाता है।

पर्याप्तमनुष्यराशि के चार भागों में से तीन भाग प्रमाण मनुष्यिनियाँ हैं और एक चतुर्थांश पुरुष व नपुंसक राशि है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनुष्यों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब देवगति में देवों की संख्या निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

देवगति में देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।३०।।

असंखेज्जा।।३१।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।३२।।

खेत्तेण पदरस्स बेछप्पण्णंगुलसदवग्गपडिभाएण।।३३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—'असंख्याताः' इतिवचनेन संख्यातानंतयोः प्रतिषेधः कृतः।

उक्तं च— निरस्यन्ती परस्यार्थं, स्वार्थं कथयति श्रुतिः।
तमो विधुन्वती भास्यं, यथा भासयति प्रभा।।

यथा प्रभान्धकारं नाशयति प्रकाशनीयं परपदार्थं प्रकाशयति, तथैव श्रुतिः—शास्त्रं परस्याभीष्टं निराकृत्य स्वस्याभीष्टं अर्थं कथयति।

कालापेक्षया असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीभिः देवाः अपहृताः भवन्ति। क्षेत्रापेक्षया कथ्यते—द्विशत-षट्पंचाशदंगुलानां वर्गः—पंचषष्टिसहस्र-पंचशत-षट्त्रिंशत्प्रतरांगुलप्रमाणं भवति। एतेन जगत्प्रतरे भागे कृते यल्लब्धं तद् देवराशिप्रमाणं भवति।

संप्रति भवनत्रिकदेवानां संख्याप्रतिपादनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यन्ते—

भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।३४।।

देवगति में देव द्रव्यप्रमाण से असंख्यात हैं।।३१।।

देव काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।३२।।

क्षेत्र की अपेक्षा देवों का प्रमाण जगत्प्रतर के दो सौ छप्पन अंगुलों के वर्गरूप प्रतिभाग से प्राप्त होता है।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—"असंख्यात" इस शब्द के द्वारा संख्यात व अनन्त का प्रतिषेध किया गया है। कहा भी है—

श्लोकार्थ— श्रुति पर के अभीष्ट का निराकरण करती है और अपने अभीष्ट अर्थ को कहती है। जिस प्रकार प्रभा अंधकार को नष्ट करती हुई प्रकाशनीय पदार्थ का प्रकाशन करती है।।

अर्थात् जैसे प्रभा—सूर्य की रश्मियाँ अंधकार को नष्ट कर देती हैं और प्रकाशनीय—प्रकाशित होने योग्य पर पदार्थ को प्रकाशित कर देती हैं, वैसे ही श्रुति—शास्त्र पर-दूसरों के अभीष्ट—इच्छित अर्थ का निराकरण करके अपने अभीष्ट अर्थ का कथन करता है।

काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के द्वारा देव अपहृत होते हैं। अब क्षेत्र की अपेक्षा कथन किया जा रहा है—दो सौ छप्पन अंगुलों का वर्ग पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तिस प्रतरांगुल प्रमाण होता है। इसके द्वारा जगत्प्रतर में भाग देने पर जो लब्ध आता है, वह देवराशि का प्रमाण होता है।

अब भवनत्रिक देवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु ग्यारह सूत्रों को अवतरित किया जा रहा है—

सूत्रार्थ—

भवनवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।३४।।

असंखेज्जा।।३५।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।३६।।

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ।।३७।।

पदरस्स असंखेज्जदिभागो।।३८।।

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण।।३९।।

वाणवेंतरदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।४०।।

असंखेज्जा।।४१।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।४२।।

खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण।।४३।।

जोदिसिया देवा देवगदिभंगो।।४४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः शब्दार्थापेक्षया सुगमोऽस्ति। भवनवासिदेवाः क्षेत्रापेक्षया असंख्यातजगत्श्रेणीप्रमाणाः संति, तथा च जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागः। तासां असंख्यातजगच्छ्रेणीनां**

भवनवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।३५।।

काल की अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।३६।।

क्षेत्र की अपेक्षा भवनवासी देव असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण हैं।।३७।।

उक्त असंख्यात जगत्श्रेणियाँ जगप्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।३८।।

उन असंख्यात जगत्श्रेणियों की विष्कम्भसूची सूच्यंगुल को सूच्यंगुल के वर्गमूल से गुणित करने पर जो लब्ध हो, उतनी है।।३९।।

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।४०।।

वानव्यन्तर देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।४१।।

काल की अपेक्षा वानव्यन्तर देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।४२।।

क्षेत्र की अपेक्षा वानव्यन्तर देवों का प्रमाण जगत्प्रतर के संख्यात सौ योजनों के वर्गरूप प्रतिभाग से प्राप्त होता है।।४३।।

ज्योतिषी देवों का प्रमाण देवगति के समान है।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—शब्दार्थ की अपेक्षा सूत्रों का अर्थ सुगम है। भवनवासी देव क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात जगत् श्रेणी प्रमाण हैं और जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उन जगत् श्रेणियों की विष्कंभसूची कहते हैं—

विष्कंभसूची कथ्यते—

सूच्यंगुलं तस्यैव प्रथमवर्गमूलेन गुणिते तासां असंख्यातजगच्छ्रेणीनां विष्कंभसूची भवति।

वानव्यन्तरदेवानां संख्या द्रव्यप्रमाणेन असंख्याता भवति, कालापेक्षया असंख्यातासंख्यातावसर्पिणी-उत्सर्पिणीभिः अपहृता भवन्ति इमे देवाः। क्षेत्रापेक्षया तत्प्रायोग्यसंख्यातयोजनशतानां वर्गं कृत्वा तेन जगत्प्रतरे अपवर्तिते वानव्यन्तरदेवानां प्रमाणं भवति। ज्योतिष्कदेवानां प्रमाणं सामान्येन सामान्यदेवगतिभंग-सदृशमेव।

संप्रति सौधर्मैशानादिसहस्रारपर्यंतदेवानां संख्याकथनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।४५।।

असंखेज्जा।।४६।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।४७।।

खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ।।४८।।

पदरस्स असंखेज्जदिभागो।।४९।।

तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं बिदियं तदियवग्ग-मूलगुणिदेण।।५०।।

सूच्यंगुल को उसी के प्रथम वर्गमूल से गुणित करने पर उन असंख्यात जगच्छ्रेणियों की विष्कंभसूची होती है।

वानव्यन्तर देवों की संख्या द्रव्यप्रमाण से संख्यात होती है। काल की अपेक्षा ये देव असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के द्वारा अपहृत होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा तत्प्रायोग्य संख्यात सौ योजनों का वर्ग करके उससे जगत्प्रतर के अपवर्तित करने पर वानव्यन्तर देवों का प्रमाण होता है। सामान्य से ज्योतिषी देवों का प्रमाण सामान्य देवगति के भंगों के समान होता है।

अब सौधर्म-ईशान स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त के देवों की संख्या कथन हेतु सात सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं—

सूत्रार्थ—

सौधर्म एवं ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।४५।।

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।४६।।

सौधर्म-ईशान कल्पवासी देव काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।४७।।

पूर्वोक्त देव क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात जगत्श्रेणी प्रमाण हैं।।४८।।

ये असंख्यात जगत्श्रेणियाँ जगत्प्रतर के असंख्यात भागप्रमाण हैं।।४९।।

उन असंख्यात जगत्श्रेणियों की विष्कंभसूची सूच्यंगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित सूच्यंगुल के द्वितीय वर्गमूलप्रमाण है।।५०।।

सणक्कुमार जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुढवीभंगो।।५१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**घनांगुलस्य तृतीयवर्गमूलमात्रजगच्छ्रेणीप्रमाणाः सौधर्मैशानकल्पेषु देवाः संति। सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोः ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः लान्तवकापिष्ठयोः शुक्रमहाशुक्रयोः शतारसहस्त्रारयोश्च क्रमशः जगच्छ्रेण्याः एकादश-नवम-सप्तम-पंचम-चतुर्थवर्गमूलानां जगच्छ्रेण्याः भागहाररूपेणोपलब्धिर्भवति। एते भागहाराः अत्र भवन्तीति कथं ज्ञायते ?**

आचार्यपरंपरागताविरुद्धोपदेशात्।

आनतादि-सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तदेवानां द्रव्यप्रमाणकथनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।५२।।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।५३।।

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।५४।।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासिय देवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।५५।।

संखेज्जा।।५६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**आनताद्यपराजितविमानवासिदेवेभ्यः अंतर्मुहूर्तेण पल्योपममपहृतं भवति। अत्र आवलिकायाः**

सनत्कुमार से लेकर शतार-सहस्त्रार कल्प तक के कल्पवासी देवों का प्रमाण सप्तम पृथिवी की संख्या के समान है।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — घनांगुल के तृतीय वर्गमूल मात्र जगत्श्रेणी प्रमाण सौधर्म और ईशान कल्पों में देव होते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में, लांतव-कापिष्ठ में, शुक्र-महाशुक्र में तथा शतार-सहस्त्रार स्वर्ग में क्रमशः जगत् श्रेणी के ग्यारहवें, नौवें, सातवें, पांचवें एवं चौथे वर्गमूलों की जगत्श्रेणी के भागहाररूप से उपलब्ध होते हैं।

प्रश्न — ये भागहार यहाँ होते हैं ऐसा कैसे जाना जाता है ?

उत्तर — आचार्य परम्परा से आये हुए विरोधरहित उपदेश से ऐसा जाना जाता है।

अब आनत स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान पर्यन्त देवों का द्रव्यप्रमाण बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आनत विमान से लेकर अपराजित विमान तक के विमानवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।५२।।

उक्त देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।।५३।।

इन देवों के द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।।५४।।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।५५।।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा संख्यात हैं।।५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — आनत स्वर्ग से लेकर अपराजित विमानवासी तक के देवों से अन्तर्मुहूर्त

असंख्यातभागः संख्यातावलिका वान्तर्मुहूर्तं नास्ति, किंतु असंख्यातावलिकाः अन्तर्मुहूर्तमिति गृहीतव्यं ।

असंख्यातावलिकानां अंतर्मुहूर्तत्वं कथं ?

न, कार्ये कारणोपचारेण तासां तदविरोधात्[१]।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासिनोऽहमिन्द्राः संख्याता एव भवन्तीति ।

एवं चतुर्थस्थले देवगतौ देवानां संख्यानिरूपणत्वेन सप्तविंशतिसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेनाष्टभिः सूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः। तत्र तावत् प्रथमस्थले एकेन्द्रियाणां संख्यानिरूपणार्थं ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले द्वीन्द्रियादीनां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''बीइंदिय-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति पातनिका।

इदानीं एकेन्द्रियजीवानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

के द्वारा पल्योपम अपहृत होता है। यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग अथवा संख्यात आवलियाँ अन्तर्मुहूर्त नहीं है, किन्तु यहाँ असंख्यात आवलियाँ अन्तर्मुहूर्त हैं, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

शंका — असंख्यात आवलियों को अन्तर्मुहूर्तपना कैसे बन सकता है ?

समाधान — कार्य में कारण का उपचार करने से असंख्यात आवलियों के अन्तर्मुहूर्तपना बनने में कोई विरोध नहीं आता है।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी अहमिन्द्र देव संख्यात ही होते हैं।

इस तरह से चतुर्थ स्थल में देवगति में देवों की संख्या निरूपण करने वाले सत्ताईस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में आठ सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में दो इन्द्रिय आदि जीवों का द्रव्यप्रमाण कहने वाले ''बीइंदिय'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब एकेन्द्रिय आदि जीवों की संख्या प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-२६७।

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।५७।।

अणंता।।५८।।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।५९।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।६०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्येन एकेन्द्रियाः बादराः सूक्ष्माः, इमे पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च अनंता भवन्ति। तेष्वपि वनस्पतिकायेषु एव ज्ञातव्याः। अत्र अनंतानंताः अपि अजघन्यानुत्कृष्टाः एव गृहीतव्याः।**

एवं प्रथमस्थले एकेन्द्रियजीवानां संख्यानिरूपणत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

संप्रति द्वीन्द्रियादिपंचेंद्रियपर्यन्तानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।६१।।

असंखेज्जा।।६२।।

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।५७।।

पूर्वोक्त एकेन्द्रिय जीव (पृथक्-पृथक्) अनन्त हैं।।५८।।

उक्त जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं।।५९।।

क्षेत्र की अपेक्षा उक्त नौ प्रकार के एकेन्द्रिय जीव अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से अनन्त होते हैं। उनमें भी वनस्पतिकायिकों में ही अनन्त जीव होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ अनन्तानन्त को भी अजघन्य और अनुत्कृष्टरूप से ही ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादित करनेहेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उन्हीं के पर्याप्त व अपर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।६१।।

उक्त द्वीन्द्रियादिक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।६२।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।६३।।

खेत्तेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरं अवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण।।६४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र अजघन्यानुत्कृष्टासंख्यातासंख्यातप्रमाणं गृहीतव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले द्वीन्द्रियादिजीवानां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इंद्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

पूर्वोक्त द्वीन्द्रियादिक जीव काल की अपेक्षा असंख्यातसंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत हैं।।६३।।

क्षेत्र की अपेक्षा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय तथा उन्हीं के पर्याप्त एवं अपर्याप्त जीवों द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग और सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ अजघन्य अनुत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात प्रमाण ग्रहण करना चाहिए।

इस तरह से द्वितीय स्थल में दो इन्द्रिय आदि जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण एकोनविंशतिसूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे कायमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले पृथिवीकायिकादिजीवानां संख्यानिरूपणत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिना चतुर्दशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां संख्याकथनमुख्यत्वेन ''वणप्फदि-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं तृतीयस्थले त्रसकायिकानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनत्वेन ''तसकाइय-'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका भवति।

इदानीं पृथिव्यादिजीवानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादर-वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।६५।।

असंखेज्जा लोगा।।६६।।

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।६७।।

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब यहाँ तीन स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में कायमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पृथिवीकायिक आदि जीवों की संख्या निरूपण करने हेतु ''कायाणुवादेण'' इत्यादि चौदह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों की संख्या कथन करने वाले ''वणप्फदि'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में त्रसकायिक जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने वाला ''तसकाइय'' इत्यादि एक सूत्र है। सूत्रों की यह समुदायपातनिका है।

अब पृथिवीकायिक आदि जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इन्हीं के अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्म तेजकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और इन्हीं चार सूक्ष्मों के पर्याप्त व अपर्याप्त, ये प्रत्येक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।६५।।

उक्त जीवों में प्रत्येक जीवराशि असंख्यात लोकप्रमाण है।।६६।।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।६७।।

असंखेज्जा।।६८।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।६९।।

खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण।।७०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्येन पृथिव्यादिचतुष्कजीवाः बादरपृथिव्यादिवनस्पतिकायिकप्रत्येक-शरीरपर्यन्ता जीवाः एषामेवापर्याप्ताः, सूक्ष्मपृथिव्यादिचतुष्कसामान्याः तेषामेव पर्याप्तापर्याप्ताश्च इमे षड्विंशतिविधा जीवाः असंख्यातलोकप्रमाणाः भवन्ति। बादरपृथिवीकायिक-बादराप्कायिक-बादरवनस्पति-कायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्ताः इमे त्रिविधा जीवाः असंख्यातासंख्याता भवन्ति।**

संप्रति बादरतेजस्कायिक-बादरवायुकायिकपर्याप्तयोः संख्यानिरूपणाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।७१।।

असंखेज्जा।।७२।।

असंखेज्जावलियवग्गो आवलियघणस्स अंतो।।७३।।

उक्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।६८।।

उक्त जीव काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।६९।।

क्षेत्र की अपेक्षा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवों द्वारा सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से पृथिवी आदि चतुष्क जीव, बादर पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्यन्त जीव और इन्हीं के अपर्याप्त भेद वाले जीव, सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदि चतुष्क सामान्य तथा उन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त ये छब्बीस प्रकार के जीव असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्तक ये तीनों प्रकार के जीव असंख्यातासंख्यात होते हैं।

अब बादर तेजस्कायिक और बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवों की संख्या निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव द्रव्य की अपेक्षा कितने हैं ?।।७१।।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।७२।।

उक्त असंख्यात का प्रमाण असंख्यात आवलियों के वर्गरूप है, जो आवली के घन के भीतर आता है।।७३।।

बादरवाउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।।७४।।

असंखेज्जा।।७५।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।७६।।

खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि।।७७।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।७८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र वादरतेजस्कायिकजीवानां पर्याप्तानां संख्या कथ्यते। असंख्यातावलिका इत्युक्ते प्रतरावलिकाप्रभृति उपरिमवर्गाणां ग्रहणं प्राप्ते तन्निवारणार्थमावलिघनस्यान्तः इत्युक्तं भवति। बादरवायुकायिकपर्याप्तानां संख्या—घनलोके तत्प्रायोग्यसंख्यातरूपैः भागे कृते बादरवायुकायिकपर्याप्त राशिर्भवति।**

एवं प्रथमस्थले पृथिव्यादिजीवानां संख्याकथनमुख्यत्वेन चतुर्दशसूत्राणि गतानि।

संप्रति वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां द्रव्यप्रमाणनिरूपणार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्व-पमाणेण केवडिया ?।।७९।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।७४।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।७५।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।७६।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाण हैं।।७७।।

उन असंख्यात जगत्प्रतरों का प्रमाण लोक का असंख्यातवाँ भाग है।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ बादर अग्निकायिक पर्याप्तक जीवों की संख्या कही जा रही है। असंख्यात आवली ऐसा कहने पर प्रतरावली आदि उपरिम वर्गों के ग्रहण के प्राप्त होने पर उनके निवारणार्थ "आवली के घन के भीतर है" ऐसा कहा गया है। बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवों की संख्या घनलोक में तत्प्रायोग्यसंख्यातरूप से भाग करने पर बादर वायुकायिकपर्याप्तराशि होती है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में पृथिवी आदि जीवों की संख्या कथन की मुख्यता वाले चौदह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का द्रव्यप्रमाण निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव, वनस्पतिकायिक बादर जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म जीव, वनस्पतिकायिक बादर पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त जीव, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, निगोद बादर जीव, निगोद सूक्ष्म जीव, निगोद बादर पर्याप्त जीव, निगोद बादर अपर्याप्त जीव, निगोद सूक्ष्म पर्याप्त जीव और निगोद सूक्ष्म अपर्याप्त जीव, ये प्रत्येक द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।७९।।

अणंता।।८०।।

अंणताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।८१।।

खेत्तेण अंणताणंता लोगा।।८२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इमे अनंतानंताः अजघन्योत्कृष्टानंतानन्तप्रमाणाः ज्ञातव्याः।**

एवं द्वितीयस्थले निगोदजीवसंख्यानिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति त्रसकायिकानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।।८३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्यत्रसजीवाः आवलिकायाः असंख्यातभागेन अपवर्तितप्रतरांगुलानां जगत्प्रतरे भागे कृते यावत्प्रमाणं तावद भवंति। पर्याप्तत्रसाः संख्यातरूपैः अपर्वाततप्रतरांगुलानां जगत्प्रतरे भागे कृते यावत् प्रमाणं तावद्भवंति। अपर्याप्तत्रसाः आवलिकायाः असंख्यातभागेनापवर्तितप्रतरांगुलानां जगत्प्रतरे भागे कृते यावन्तः तावन्तो भवन्ति। द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः जीवाः असंख्यातासंख्याताः भवन्तीति ज्ञातव्यं।**

एवं तृतीयस्थले त्रसकायिकजीवानां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

ऊपर कही गई प्रत्येक जीवों की राशि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त है।।८०।।

उक्त प्रत्येक जीवराशि काल की अपेक्ष अनन्तानन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होती है।।८१।।

उक्त प्रत्येक जीवराशि क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण है।।८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— ये अनंतानंत जीव अजघन्य उत्कृष्ट अनंतानंत प्रमाण होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में निगोदियाजीवों की संख्या का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसकायिक जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन हेतु सूत्र अवतरित होता है —

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों का प्रमाण क्रमशः पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के समान है।।८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— सामान्य त्रसजीव आवली के असंख्यातवें भाग से अपवर्तित प्रतरांगुलों का जगत्प्रतर में भाग करने पर जो प्रमाण आवे, उतने प्रमाण होते हैं। पर्याप्त त्रस जीव संख्यातरूपों से अपवर्तित प्रतरांगुलों का जगत्प्रतर में भाग करने पर जितना प्रमाण आवे, उतने होते हैं। अपर्याप्त त्रस जीव आवली के असंख्यातवें भाग अपवर्तित प्रतरांगुलों का जगत्प्रतर में भाग करने पर जितना प्रमाण होता है, उतने होते हैं। दो इन्द्रिय आदि त्रस जीव असंख्यातासंख्यात होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस तरह से तृतीय स्थल में त्रसकायिक जीवों का द्रव्यप्रमाण बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ स्थलचतुष्टयेन अष्टादशसूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते । तत्र तावत् प्रथमस्थले मनोयोगिवचनयोगिनां संख्यानिरूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रषट्कं । तदनु द्वितीयस्थले औदारिक-औदारिकमिश्र-कार्मणकाययोगिनां संख्याकथनत्वेन ''कायजोगि-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं तृतीयस्थले वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां द्रव्यप्रमाणनिरूपणत्वेन ''वेउव्विय-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं चतुर्थस्थले आहारकमुनीनां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''आहार'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति समुदायपातनिका।

अधुना पंचमनोयोगिपंचवचनयोगिनां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।८४।।

देवाणं संखेज्जदिभागो।।८५।।

वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।८६।।

असंखेज्जा।।८७।।

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में अठारह सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों की संख्या निरूपण करने वाले "जोगाणुवादेण" इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः आगे द्वितीय स्थल में औदारिक-औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोगी जीवों की संख्या का कथन करने वाले "कायजोगि" इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का द्रव्यप्रमाण निरूपण करने हेतु "वेउव्विय" इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके आगे चतुर्थ स्थल में आहारक मुनियों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले "आहार" इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब पाँचों मनोयोगी एवं पाँचों वचनयोगियों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणानुसार पाँच मनोयोगी और सत्य, असत्य व उभय ये तीन वचनयोगी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।८४।।

पाँच मनोयोगी और तीन वचनयोगी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।८५।।

सामान्य वचनयोगी और असत्यमृषा अर्थात् अनुभय वचनयोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।८६।।

सामान्य वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।८७।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।८८।।

खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण।।८९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्यमनोयोगि-सत्यमनोयोगि-असत्यमनोयोगि-उभयमनोयोगि-अनुभयमनोयोगिनः, सत्यवचनयोगि-असत्यवचनयोगि-उभयवचनयोगिनश्च इमे अष्टविधा योगमार्गणासहिताः देवानां संख्यातभागाः। सामान्यवचनयोगि-अनुभयवचनयोगिनोः असंख्याता भवन्ति।**

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्राणि षड् गतानि।

संप्रति औदारिककाययोगि-कार्मणकाययोगिनां द्रव्यप्रमाणनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइय-कायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।९०।।

अणंता।।९१।।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।९२।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।९३।।

सामान्य वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगी काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।८८।।

क्षेत्र की अपेक्षा सामान्य वचनयोगी और असत्यमृषावचनयोगियों द्वारा सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य मनोयोगी, सत्यमनोयोगी, असत्यमनोयोगी, उभयमनोयोगी और अनुभयमनोयोगी जीवों के तथा सत्यवचनयोगी, असत्यवचनयोगी और उभयवचनयोगी इन आठ प्रकार की योगमार्गणा से सहित देवों का द्रव्यप्रमाण संख्यातवाँ भाग है। सामान्य वचनयोगी और अनुभय वचनयोगी जीवों का द्रव्यप्रमाण असंख्यात होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब औदारिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीवों का द्रव्यप्रमाण निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

सामान्य काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मण-काययोगी, द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।९०।।

उक्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त है।।९१।।

उक्त जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होते हैं।।९२।।

उक्त जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।९३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्येन काययोगिनः औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोगिनः कार्मणकाययोगिनश्च जीवाः एकेन्द्रियवनस्पतिकायिकजीवापेक्षया अनंतानंता भवन्ति। अत्र मध्यमानंतानंतप्रमाणं गृहीतव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले औदारिकादियोगसहितानां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनोः द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

वेउव्वियकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।९४।।

देवाणं संखेज्जदिभागूणो।।९५।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया।।९६।।

देवाणं संखेज्जदिभागो।।९७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**देवेषु पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगि-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां राशयः देवानां संख्यातभागमात्रा भवन्ति, एताः देवराशिभ्यः अपनीते अवशेषं वैक्रियिककाययोगिप्रमाणं भवति।**

संख्यातवर्षसहस्रोपक्रमणकालसंचितसंख्यातखण्डे कृते एकखण्डं वैक्रियिकमिश्रराशिप्रमाणं भवति।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिककाययोगसहितानां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन सूत्राणि चत्वारि गतानि।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— सामान्य से काययोगी जीव तथा औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोगी एवं कार्मणकाययोगी जीव एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीवों की अपेक्षा अनन्तानन्त होते हैं। यहाँ अनन्तानन्त से मध्यम अनन्तानन्त का प्रमाण ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में औदारिक आदि योग सहित जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादित करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।९४।।

वैक्रियिककाययोगी देवों के संख्यातवें भाग कम है।।९५।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।९६।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— देवों में पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी राशियाँ देवों के संख्यातवें भागप्रमाण होती हैं। इन राशियों को देवराशि में से घटा देने पर अवशेष वैक्रियिक काययोगियों का प्रमाण होता है।

संख्यात वर्षसहस्र में होने वाले उपक्रमणकालों में संचित देवराशि के संख्यात खण्ड करने पर उनमें से एक खण्ड वैक्रियिकमिश्रकाययोगी राशि का प्रमाण होता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिककाययोगसहित जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना आहारककायसहितानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।९८।।

चदुवण्णं।।९९।।

आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१००।।

संखेज्जा।।१०१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **आहारककाययोगिमुनयः द्रव्यप्रमाणापेक्षया चतुःपञ्चाशद् भवन्ति। आहारकमिश्रयोगिनः चतुःपंचाशत् संख्याभ्यन्तरे एव भवन्ति न च बहिः। आचार्यपरंपरागतोपदेशेन पुनः इमे सप्तविंशतिप्रमाणा भवन्ति ।**

एवं चतुर्थस्थले योगमार्गणायां आहारकयोगिमुनीनां संख्याकथनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

अब आहारककाययोग सहित जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादित करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आहारककाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।९८।।

आहारककाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा चौवन हैं।।९९।।

आहारकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१००।।

आहारकमिश्रकाययोगी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा संख्यात हैं।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — आहारककाययोगी मुनि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा चौव्वन होते हैं। आहारकमिश्रकाययोगी चौव्वन संख्या के भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं अर्थात् उससे अधिक नहीं होते हैं। आचार्य परम्परा से आये हुए उपदेश के अनुसार पुनः ये सत्ताईस संख्या प्रमाण होते हैं।

इस तरह से चतुर्थ स्थल में योगमार्गणा में आहारककाययोगी मुनियों की संख्या का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन दशभिः सूत्रैः वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिवेदानां संख्या कथनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्राष्टकं । तदनु द्वितीयस्थले अपगतवेदानां द्रव्यप्रमाण-प्रतिपादनत्वेन ''अवगद-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

अधुना त्रिविधवेदवतां संख्यानिरूपणाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१०२।।

देवीहि सादिरेयं।।१०३।।

पुरिसवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१०४।।

देवेहि सादिरेयं।।१०५।।

णवुंसयवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१०६।।

अणंता।।१०७।।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।१०८।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।१०९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**देवराशिं त्रयस्त्रिंशत्खण्डप्रमाणं कृत्वा तेभ्यः एकखण्डेऽपनीते देवीनां प्रमाणं**

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में दश सूत्रों के द्वारा वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार प्रारंभ होरहा है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों वेदों की संख्या का कथन करने हेतु "वेदाणुवादेण" इत्यादि आठ सूत्र हैं।पुनः द्वितीय स्थल में अपगतवेदियों का द्रव्यप्रमाण बतलाने वाले "अवगद" इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब तीनों प्रकार के वेद वाले जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुसार स्त्रीवेदी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१०२।।

स्त्रीवेदी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवियों से कुछ अधिक है।।१०३।।

पुरुषवेदी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१०४।।

पुरुषवेदी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों से कुछ अधिक है।।१०५।।

नपुंसकवेदी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१०६।।

नपुंसकवेदी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।१०७।।

नपुंसकवेदी जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों के द्वारा अपहृत नहीं होते हैं।।१०८।।

नपुंसकवेदी जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।१०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवराशि के तेंतीस खण्ड करके उनमें एक खण्ड के कम कर देने पर

भवति। पुनस्तत्र तिर्यग्मनुष्ययोः स्त्रीवेदराशिं प्रक्षिप्ते सर्वस्त्रीवेदराशिर्भवति, इति देवीभिः सातिरेकं कथ्यते।

देवराशिं त्रयस्त्रिंशत्खण्डप्रमाणं कृत्वा तत्रैकखण्डं देवानां पुरुषवेदप्रमाणं। पुनस्तत्र तिर्यग्मनुष्यपुरुषवेदराशौ प्रक्षिप्ते सर्वपुरुषवेदप्रमाणं भवतीति देवेभ्यः सातिरेकप्रमाणं भवति।

नपुंसकवेदानां जीवानां संख्याः अनंतानंतप्रमाणाः एकेंद्रियजीवराशिविवक्षित्वात्। अत्र मध्यमानंतानंतसंख्याः गृहीतव्याः न च उत्कृष्टानंतानंतसंख्या इति।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधवेदानां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्राण्यष्टौ गतानि।

संप्रति अपगतवेदानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अवगदवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।११०।।

अणंता।।१११।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र उत्कृष्टयुक्तानन्तं जघन्यमनंतानंतं चोल्लंघ्य अजघन्यानुत्कृष्टानन्तानन्ते अवस्थितस्य असंख्यातभागभूतापगतवेदराशिः अनंतानंतो भवतीति अविरुद्धाचार्योपदेशो वर्तते।**

एवं द्वितीयस्थलेऽपगतवेदानां संख्याकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

देवियों का प्रमाण होता है पुनः उसमें तिर्यंच व मनुष्य संबंधी स्त्रीवेद राशि को जोड़ देने पर सर्व स्त्रीवेदराशि होती है, इसीलिए "स्त्रीवेदी देवियों से कुछ अधिक है, ऐसा कहा है।

देवराशि के तेंतीसखण्डप्रमाण करके उनमें से एक खण्ड देवों का पुरुषवेदप्रमाण है। पुनः उसको तिर्यंच और मनुष्य की पुरुषवेदराशि में जोड़ देने पर सर्व पुरुषवेद का प्रमाण प्राप्त होता है। इसीलिए "पुरुषवेदियों से कुछ अधिक होता हे" ऐसा कहा है।

नपुंसकवेदी जीवों की संख्या अनन्तानन्त प्रमाण है, क्योंकि यहाँ एकेन्द्रिय जीवराशि की विवक्षा है। यहाँ 'अनन्तानन्त' शब्द से मध्यम अनन्तानन्त की संख्या ग्रहण करना चाहिए, उत्कृष्ट अनन्तानन्त की संख्या नहीं लेना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीनों वेद वाले जीवों की संख्या निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेदियों का द्रव्यप्रमाण बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

अपगतवेदी जीव द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ?।।११०।।

अपगतवेदी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ उत्कृष्ट युक्तानन्त और जघन्य अनन्तानन्त का उलंघन करके अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्त में जो संख्या उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण होकर भी अपगतवेदराशि अनन्तानन्त हैं, ऐसा आगम से अविरुद्ध आचार्यों का उपदेश है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अपगतवेदियों की संख्या का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन सूत्रषट्केन कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चतुर्विधकषाय-सहितानां संख्यानिरूपणत्वेन ''कसाया-'' सूत्रचतुष्टयं गतं। तदनु द्वितीयस्थले कषायरहितानां द्रव्यप्रमाण-प्रतिपादनत्वेन ''अकसाई-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका सूचिता भवति।

अधुना चतुर्विधकषायसहितानां द्रव्यप्रमाणनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ?।।११२।।

अणंता।।११३।।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।११४।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।११५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र कषायसहितानां जीवानां संख्या मध्यमानंतानंताः ज्ञातव्याः। एकेन्द्रियप्रभृति-सर्वजीवानां विवक्षितत्वात्।**

एवं प्रथमस्थले चतुर्विधकषाययुक्तानां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चार प्रकार की कषाय से सहित जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु ''कसाया'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादित करने वाले ''अकसाई'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब चारों प्रकार की कषाय से सहित जीवों का द्रव्यप्रमाण निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणा के अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।११२।।

उक्त चारों कषाय वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।११३।।

उक्त चारों कषाय वाले जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं।।११४।।

उक्त चारों कषाय वाले जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।११५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ कषायसहित जीवों की संख्या मध्यम अनन्तानन्त जानना चाहिए, क्योंकि इसमें एकेन्द्रिय से लेकर सभी जीवों की विवक्षा है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चारों प्रकार की कषाय से युक्त जीवों की संख्या निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

संप्रति कषायरहितानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ?।।११६।।

अणंता।।११७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अनंतस्य नवभेदाः सन्ति।**

कश्चिदाह — नवविधेषु अनंतेषु कस्मिन् भेदे अकषायराशिर्भवति ?

तत्रोत्तरं दीयते-अजघन्यानुत्कृष्टानंतानंते भवति।

कुतः ?

कथ्यते — ''जम्हि जम्हि अणंतयं मग्गिज्जदि तम्हि तम्हि अजहण्णाणुक्कस्समणंताणंतयं घेत्तव्वं इदि परियम्मवयणादो [१]**।''**

एवं द्वितीयस्थले कषायरहितानां छद्मस्थादिजीवानां सिद्धानां च द्रव्यप्रमाणनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अब कषायरहित जीवों का द्रव्यप्रमाण बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायरहित जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।११६।।

उक्त जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।११७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अनन्त के नौ भेद होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है — नौ प्रकार के अनन्तों में किस अनन्त में कषायरहित जीवराशि ली गई है?

इसका समाधान देते हैं — अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्त में कषायरहित जीवराशि पाई जाती है।

प्रश्न — क्यों ?

उत्तर — क्योंकि जहाँ-जहाँ अनन्त की खोज करनी हो, वहाँ-वहाँ अजघन्यानुत्कृष्ट अनन्तानन्त को ग्रहण करना चाहिए, यह परिकर्म सूत्र का वचन है।

इस तरह से द्वितीय स्थल में कषायरहित, छद्मस्थादि जीवों का एवं सिद्धों का द्रव्यप्रमाण बताने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. षट्खण्डागम-धवला पुस्तक-७, पृष्ठ-२८५

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन दशभिः सूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनां संख्यानिरूपणत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले पंचविधज्ञानिनां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''आभिणि-'' इत्यादिसूत्रसप्तकमिति समुदायपातनिका।

संप्रति त्रिविधाज्ञानिनां संख्यानिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयभंगो।।११८।।

विभंगणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।११९।।

देवेहि सादिरेयं।।१२०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। साधिक-द्विशतषट्पंचाशदंगुलानां वर्गेण जगत्प्रतरे भागे कृते देवविभंगज्ञानिनां प्रमाणं भवति। पुनः अत्र त्रिगतिविभंगज्ञानिप्रमाणे प्रक्षिप्ते सर्वविभंगज्ञानिप्रमाणं भवति इति देवेभ्यः सातिरेकमिति प्रमाणप्ररूपणं कृतं।**

एवं प्रथमस्थले त्रिविधकुज्ञानिनां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति पंचविधज्ञानिनां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में दश सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में ज्ञानमार्गणा नामका सप्तम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के अज्ञानी जीवों की संख्या का निरूपण करने हेतु ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में पाँच प्रकार के ज्ञानियों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले ''आभिणि'' इत्यादि सात सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब तीन प्रकार के अज्ञानी जीवों की संख्या निरूपण हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मतिअज्ञानी व श्रुतअज्ञानियों का प्रमाण नपुंसकवेदी जीवों की संख्या के समान है।।११८।।

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।११९।।

विभंगज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों से कुछ अधिक हैं।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। कुछ अधिक दो सौ छप्पन अंगुलों के वर्ग का जगत्प्रतर में भाग देने पर देव विभंगज्ञानियों का प्रमाण होता है। पुनः इनमें तीन गतियों के विभंगज्ञानियों का प्रमाण मिला देने पर देवगति के समस्त विभंगज्ञानियों का प्रमाण प्राप्त होता है, इसी कारण विभंगज्ञानी देवों से कुछ अधिक है' इस प्रकार उनकी प्रमाणप्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मिथ्याज्ञानियों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब पाँच प्रकार के ज्ञानियों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र अवतरित होते हैं —

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१२१।।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१२२।।

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।१२३।।

मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१२४।।

संखेज्जा।।१२५।।

केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१२६।।

अणंता।।१२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मति-श्रुतावधिज्ञानिनां संख्या आवलिकायाः असंख्यातभागोऽन्तर्मुहूर्तमिति गृहीतव्यं। आचार्यपरंपरागतोपदेशात्। मनःपर्ययज्ञानिनः संख्याताः। केवलज्ञानिनोऽनंताः सिद्धपरमेष्ठिनां विवक्षितत्वात्।**

एवं द्वितीयस्थले पंचभेदज्ञानसहितानां द्रव्यप्रमाणनिरूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१२१।।

उक्त तीन ज्ञान वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।१२२।।

उक्त तीन ज्ञान वाले जीवों की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।।१२३।।

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१२४।।

मनःपर्ययज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा संख्यात हैं।।१२५।।

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१२६।।

केवलज्ञानी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मति, श्रुत और अवधिज्ञानियों की संख्या आवली का असंख्यात भाग अन्तर्मुहूर्त है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि आचार्य परम्परा से आया हुआ ऐसा ही उपदेश है। मनःपर्ययज्ञानियों की संख्या संख्यात है। केवलज्ञानी अनन्त हैं, क्योंकि इनमें सिद्ध परमेष्ठियों की संख्या भी सम्मिलित है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पाँचों प्रकार के ज्ञानियों का द्रव्यप्रमाण निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां द्वादशसूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पंचविधसंयतानां संख्याप्रतिपादनत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिसूत्राष्टकं। तदनु द्वितीयस्थले संयतासंयत-असंयतजीवानां संख्यानिरूपणत्वेन ''संजदासंजदा'' इत्यादिना सूत्रचतुष्टयमिति पातनिका सूचिता भवति।

अधुना संयममार्गणायां सामान्यसंयत-पंचविधसंयतानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१२८।।

कोडिपुधत्तं।।१२९।।

परिहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१३०।।

सहस्सपुधत्तं।।१३१।।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१३२।।

सदपुधत्तं।।१३३।।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में बारह सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पाँच प्रकार के संयतों की संख्या का प्रतिपादन करने वाले ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों की संख्या का निरूपण करने वाले ''संजदासंजदा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संयममार्गणा में सामान्यसंयत एवं पाँच प्रकार के संयतों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु आठ सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणा के अनुसार संयत और सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१२८।।

संयत और सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कोटिपृथक्त्वप्रमाण हैं।।१२९।।

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण से कितने हैं ?।।१३०।।

परिहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा सहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं।।१३१।।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१३२।।

सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा शतपृथक्त्व हैं।।१३३।।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१३४।।

सदसहस्सपुधत्तं।।१३५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सामान्येन संयताः षष्ठगुणस्थानादारभ्य चतुर्दशगुणस्थानपर्यन्ताः भवन्ति। इमे सर्वे त्रिसंख्योननवकोटिप्रमाणाः संयता भवन्ति अधिकतमाः इति। मध्यलोके सार्धद्वयद्वीपेषु सप्तत्यधिकशतकर्मभूमयः सन्ति, तासु सर्वासु कर्मभूमिषु युगपद् यदि अधिकतमाः संयता भवेयुः तर्हि प्रमत्ताद्ययोगिकेवलिपर्यन्ताः एतावन्तः भवन्तीति ज्ञातव्यं।**

उक्तं च—

सत्ताइं अट्ठंताच्छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।
अंजुलि मउलियहत्थो तियरणसुद्धो णमंसामि[१]।।

एवं प्रथमस्थले संयतानां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम् ।

इदानीं संयतासंयत-असंयतजीवानां संख्याकथनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१३६।।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१३४।।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा शतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं।।१३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। सामान्य से संयत छठे गुणस्थान से प्रारंभ होकर चौदहवें गुणस्थान तक होते हैं। ये सभी तीन कम नौ कोटि संख्या प्रमाण संयत अधिकतम होते है। मध्यलोक में ढाई द्वीपों में एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं, उन सभी कर्मभूमियों में एक साथ यदि अधिक से अधिक संयत—दिगम्बर मुनिराज होवें, तो प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त इतने तीन कम नव करोड़ मुनि होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने कहा भी है—

गाथार्थ— सात आदि में आठ अन्त में और दोनों अंकों के मध्य में छह जगह नौ का अंक "अंकानां वामतो गतिः" के निमयानुसार रखने पर सम्पूर्ण संयमियों का प्रमाण होता है। अर्थात् छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के सर्व संयमियों का प्रमाण तीन कम नौ करोड़ है। इन सबको मैं हाथ जोड़कर शिर झुकाकर मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—प्रमत्त वाले जीव ५९३९८२०६, अप्रमत्त वाले २९६९९१०६, उपशमश्रेणी वाले चारों गुणस्थानवर्ती ११९६, क्षपकश्रेणी वाले चार गुणस्थानवर्ती २३९२, सयोगी जिन ८९८५०२ इन सबका जोड़ ८९९९९३९९ होता है। सो इसको सर्वसंयमियों के प्रमाणों से घटाने पर शेष अयोगी जीवों का प्रमाण ५९८ रहता है। इसको भी संयमियों के प्रमाण में जोड़ने से संयमियों का कुल प्रमाण तीन कम नौ करोड़ होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में संयत मुनियों की संख्या का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत और असंयत जीवों की संख्या का कथन करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ—

संयतासंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१३६।।

---

१. गोम्मटसार जीवकांड, गाथा ६३३

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१३७।।
एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।१३८।।
असंजदा मदिअण्णाणिभंगो।।१३९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**असंख्यातावलिरूपान्तर्मुहूर्तेण पल्योपमे भागे कृते संयतासंयतद्रव्यमागच्छति। असंयताः मत्यज्ञानिप्रमाणाः सन्ति।**

एवं द्वितीयस्थले संयतासंयत-असंयतजीवसंख्याकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां सप्तभिःसूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनां संख्याप्रतिपादनत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीस्थले अचक्षुर्दर्शनिनां अवधिकेवलदर्शनिनां च द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''अचक्खु'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति पातनिका भवति।

अधुना चक्षुर्दर्शनिनां संख्याप्रतिपादनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते—

संयतासंयत द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।१३७।।
संयतासंयत की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।।१३८।।
असंयतों का प्रमाण मतिअज्ञानियों की संख्या के समान है।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यात आवलीरूप अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम में भाग देने पर संयतासंयत जीवों का द्रव्यप्रमाण प्राप्त होता है। असंयत जीवों की संख्या कुमतिज्ञानियों की संख्याप्रमाण है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों की संख्या का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने वाले ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी एवं केवलदर्शनी जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने हेतु ''अचक्खु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब चक्षुदर्शनी जीवों की संख्या प्रतिपादन हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं—

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१४०।।

असंखेज्जा।।१४१।।

असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।।१४२।।

खेत्तेण चक्खुदंसणीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण।।१४३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूच्यंगुलस्य संख्यातभागस्य वर्गं कृत्वा एतेन जगत्प्रतरे भागे कृते चक्षुर्दर्शनिनां जीवानां राशिर्भवति। अत्र यदि चक्षुर्दर्शनावरण-क्षयोपशमेनोपलक्षित-चतुरिन्द्रियादि-अपर्याप्तराशिर्गृह्येत, तर्हि प्रतरांगुलस्यासंख्यातभागो जगत्प्रतरस्य भागहारो भवति। किन्तु सोऽत्र न गृहीतः, अपर्याप्तराशौ पर्याप्तराशिरिव चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावात्, द्रव्यचक्षुर्दर्शनाभावाद्वा। एतेन उत्कृष्टासंख्यातासंख्यातस्य प्रतिषेधः कृतः ततो मध्यमासंख्यातासंख्यातो गृह्यते।**

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शिनां संख्याप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति अचक्षुर्दर्शनि-अवधिदर्शनि-केवलदर्शनिनां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो।।१४४।।

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुसार चक्षुदर्शनी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१४०।।

चक्षुदर्शनी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा असंख्यात हैं।।१४१।।

चक्षुदर्शनी जीव काल की अपेक्षा असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत होते हैं।।१४२।।

क्षेत्र की अपेक्षा चक्षुदर्शनियों द्वारा सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग के वर्गरूप प्रतिभाग से जगत्प्रतर अपहृत होता है।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग का वर्ग करके उसका जगत्प्रतर में भाग देने पर चक्षुदर्शनी जीवों की राशि होती है। यहाँ यदि चक्षुदर्शनावरण के क्षयोपशम से उपलक्षित चतुरिन्द्रियादि अपर्याप्त राशि का ग्रहण किया जाये, तो प्रतरांगुल का असंख्यातवाँ भाग जगत्प्रतर का भागहार होता है। परन्तु उसे यहाँ नहीं ग्रहण किया है, क्योंकि अपर्याप्तराशि में पर्याप्तराशि के समान चक्षुदर्शनोपयोग का अभाव है अथवा द्रव्यचक्षुदर्शन का अभाव है। इस सूत्र के द्वारा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रतिषेध किया गया है। इसलिए मध्यम असंख्याता- संख्यात ग्रहण किया जाता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनियों की संख्या बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुदर्शनी-अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

अचक्षुदर्शनियों का प्रमाण असंयतों के समान है।।१४४।।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।।१४५।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।१४६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अचक्षुर्दर्शनवन्तो जीवाः एकेन्द्रियप्रभृतिछद्मस्थपंचेन्द्रियपर्यन्ताः भवन्ति अतोऽनन्तानंताः। अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत् केवलदर्शनवन्तो भगवन्तः केवलज्ञानिसमसंख्याः।**

एवं द्वितीयस्थले अचक्षुरवधिकेवलदर्शनवतां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन अष्टभिः सूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे लेश्यामार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अशुभत्रिकलेश्यानां संख्यानिरूपणत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले शुभत्रिकलेश्यावतां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनत्वेन ''तेउ-'' इत्यादिसूत्रसप्तकमिति समुदायपातनिका भवति।

संप्रति त्रिकाशुभलेश्यासहितानां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

अवधिदर्शनियों का प्रमाण अवधिज्ञानियों के समान है।।१४५।।

केवलदर्शनियों का प्रमाण केवलज्ञानियों के समान है।।१४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अचक्षुदर्शन वाले जीव एकेन्द्रिय से लेकर छद्मस्थ पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं अतः उनकी संख्या अनन्तानन्त है। अवधिदर्शनियों की संख्या अवधिज्ञानियों के समान है और केवलदर्शन वाले भगवन्तों की संख्या केवलज्ञानी भगवन्तों की संख्याप्रमाण ही होती है।

इस तरह से द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों की संख्या निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में आठ सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों अशुभ लेश्याओं का निरूपण करने हेतु ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में तीनों शुभ लेश्या वाले जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने वाले ''तेउ'' इत्यादि सात सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब तीनों अशुभ लेश्या वाले जीवों की संख्या निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित हो रहा है —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया असंज-दभंगो।।१४७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **द्रव्यार्थिकनयापेक्षया असंयतानां एव अशुभलेश्याः भवन्ति अतो नास्ति भेदः, पुनः पर्यायार्थिकनयापेक्षयास्ति भेदः। सः भेदः ज्ञात्वा वक्तव्योऽस्ति।**

''कृष्ण-नील-कापोतलेश्या एकशः द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्ताः, अनंतानंताभिरुत्सर्पिण्युत्सर्पिणीभिर्ना-पह्रियन्ते कालेन, क्षेत्रेणानन्तानन्तलोकाः[1]।।''

एवं प्रथमस्थले त्रिकाशुभलेश्यावतां संख्याकथत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अधुना शुभत्रिकलेश्यावतां द्रव्यप्रमाणकथनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

तेउलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१४८।।

जोदिसियदेवेहि सादिरेयं।।१४९।।

पम्मलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१५०।।

सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो।।१५१।।

सुक्कलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१५२।।

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणा के अनुसार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीवों का प्रमाण असंयतों के समान है।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा असंयत जीवों के ही अशुभ लेश्याएँ होती हैं, अतः कोई भेद नहीं है। पुनः पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा भेद है, वह भेद जानकर कथन करना चाहिए।

कृष्ण-नील-कापोत लेश्या एक-एक भी द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्तानन्त हैं। काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों से वे अपहृत नहीं होती हैं, क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन अशुभ लेश्या वाले जीवों की संख्या का कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब तीन शुभ लेश्या वालों का द्रव्यप्रमाण कहने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तेजोलेश्या वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१४८।।

तेजोलेश्या वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा ज्योतिषी देवों से कुछ अधिक हैं॥१४९।।

पद्मलेश्या वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१५०।।

पद्मलेश्या वाले जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।१५१।।

शुक्ललेश्या वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने है ?।।१५२।।

---

१. धवला पुस्तक-७, पृष्ठ-२९२ (टिप्पण से)।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१५३।।

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।१५४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**साधिकद्विशतषट्पंचाशदंगुलानां वर्गेण जगत्प्रतरे भागे कृते यल्लब्धं तेजोलेश्यावतां ज्योतिष्कदेवानां प्रमाणं भवति। पुनस्तत्र भवनवासि-वानव्यन्तर-तिर्यग्मनुष्यतेजोलेश्यावतां राशौ प्रक्षिप्तायां सर्वा तेजोलेश्याराशिर्भवति। तेन ज्योतिष्कदेवेभ्यः सातिरेकमिति प्रोक्तं। तत्प्रायोग्यैः संख्यातप्रतरांगुलैः जगत्प्रतरे भागे कृते पद्मलेश्याराशिर्भवति।**

शुक्ललेश्यावतां प्रमाणं पल्योपमस्यासंख्यातभागः। अत्रावहारकालः असंख्यातावलिमात्रः, एतेन पल्योपमे भागे कृते शुक्ललेश्याराशिर्भवति।

एवं द्वितीयस्थले शुभत्रिकलेश्यानां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन सूत्रसप्तकं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

शुक्ललेश्या वाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।१५३।।

शुक्ललेश्या वाले जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।।१५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—साधिक—कुछ अधिक दो सौ छप्पन अंगुलों के वर्ग का जगत्प्रतर में भाग देने पर जो लब्ध हो, उतने तेजोलेश्या वाले ज्योतिषी देव हैं। पुनः उसमें भवनवासी, वानव्यन्तर, तिर्यंच और मनुष्य तेजोलेश्या वालों की राशि को जोड़ने पर सभी तेजोलेश्या वालों की राशि होती है। इसी कारण 'तेजोलेश्या वालों का प्रमाण ज्योतिषी देवों से कुछ अधिक है, ऐसा कहा है। तत्प्रायोग्य संख्यात प्रतरांगुलों का जगत्प्रतर में भाग देने पर पद्मलेश्या वालों का प्रमाण प्राप्त होता है।

शुक्ल लेश्या वाले जीवों का प्रमाण पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। यहाँ अवहारकाल असंख्यात आवली मात्र है, इसको पल्योपम में भाग देने पर शुक्ललेश्या वाले जीवों की राशि प्राप्त होती है।

इस तरह से द्वितीय स्थल में तीनों शुभ लेश्या वाले जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन षट्सूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे भव्यमार्गणानामाधिकारो निगद्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले भव्यजीवानां संख्याकथनत्वेन ''भवियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थलेऽभव्यजीवानां द्रव्यप्रमाणनिरूपणत्वेन ''अभव-'' इत्यादिना सूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

अधुना भव्यजीवानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१५५।।

अणंता।।१५६।।

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।१५७।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।१५८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **इमे भव्यजीवाः मध्यमान्तानन्तप्रमाणाः भवन्ति।**

एवं प्रथमस्थले भव्यजीवानां संख्याकथनपरत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम् ।

संप्रति अभव्यजीवानां द्रव्यप्रमाणप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में भव्य जीवों की संख्या का कथन करने वाले ''भवियाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों का द्रव्यप्रमाण निरूपण करने वाले ''अभव'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब भव्य जीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

भव्यमार्गणा के अनुसार भव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१५५।।

भव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।१५६।।

भव्यसिद्धिक जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं।।१५७।।

भव्यसिद्धिक जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।१५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये सभी भव्यजीव मध्यम अनन्तानन्त प्रमाण होते हैं।

भावार्थ — यहाँ १५५वें सूत्र पृच्छासूत्र के द्वारा भव्यजीवों की संख्या पूछी गई है अतः उसके उत्तर में तीन सूत्र कहे गये हैं। उनमें १५६वें सूत्र के द्वारा संख्यात और असंख्यात का प्रतिषेध किया है, क्योंकि सभी वचन अपने प्रतिपक्ष का निराकरण करके स्वकीय अभीष्ट अर्थ के प्रतिपादक होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्यजीवों की संख्या का कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अभव्यजीवों का द्रव्यप्रमाण प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१५९।।

अणंता।।१६०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्राभव्यजीवानां राशेःप्रमाणं जघन्ययुक्तानंतं भवति, आचार्यपरंपरागतोपदेशात्। कश्चिदाह—व्यये न सति अव्युच्छिन्नराशेः अनंतव्यपदेशः कथं कथ्यते ?**

तस्योत्तरं दीयते—नैतद् वक्तव्यं, अनंतस्य केवलज्ञानस्यैव विषये अवस्थितानां संख्यानामुपचारेणानन्तत्वविरोधाभावात्।

अत्र विशेषो ज्ञातव्यः—

भव्याः द्विविधाः—ये नियमेन मोक्षं प्राप्स्यन्ति, पुनश्च ये कदाचिदपि मोक्षं न प्राप्स्यन्ति तत्प्राप्तियोग्यसामग्री-अभावात्।

अथवा भव्याः त्रिविधाः—

उक्तं गोम्मटसारजीवकाण्डे जीवतत्त्वप्रदीपिकाटीकायां—

''सामग्रीविशेषैः रत्नत्रयानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमितुं योग्यो भव्यः। तद्विपरीतोऽभव्यः। तौ च मिथ्यादृष्टौ द्वौ। तत्र अभव्यराशिः जघन्ययुक्तानन्तमात्रः तेनोनः सर्वसंसारी भव्यराशिः। स च आसन्नभव्यः दूरभव्यः अभव्यसमभव्यश्चेति त्रेधाः[१]।''

अभव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१५९।।

अभव्यसिद्धिक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।१६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ अभव्य जीवों की राशि का प्रमाण जघन्य युक्तानन्त होता है, क्योंकि आचार्य परम्परा से आया हुआ ऐसा ही उपदेश है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—व्यय के न होने से व्युच्छित्ति को प्राप्त न होने वाली अभव्यराशि के 'अनन्त' यह संज्ञा कैसे संभव है ?

उसका समाधान देते हैं कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अनन्त केवलज्ञान के ही विषय में अवस्थित संख्याओं के उपचार से अनन्तपना होने में कोई विरोध नहीं आता है।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि—

भव्य जीव दो प्रकार के हैं—एक तो वे, जो नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगे और दूसरे वे जो कभी भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाएंगे, क्योंकि उनके मोक्ष प्राप्ति की योग्यता का ही अभाव पाया जाता है।

अथवा भव्य जीव तीन प्रकार के भी होते हैं—

गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका में कहा है—

''सामग्री विशेष के द्वारा रत्नत्रय और अनन्तचतुष्टयस्वरूप से परिणमन करने योग्य जो जीव हैं वह भव्य कहलाते हैं, उससे विपरीत अभव्य होते हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को दोनों प्राप्त करते हैं। इनमें से अभव्य जीवों की राशि जघन्य युक्तानन्तप्रमाण है। उनसे हीन सब संसारी भव्य जीवों की राशि है। वे भव्यजीव—आसन्न भव्य, दूर भव्य और अभव्यसमभव्य के भेद से तीन प्रकार के हैं।''

---

१. गोम्मटसार जीवकांड गाथा ७०४, पृ. ९२८-९२९ (ज्ञानपीठ से प्रकाशित)

तत्त्वार्थवार्तिकग्रंथे श्रीमद्भट्टाकलंकदेवैरपि कथितम्—

१. कालानियमाच्च निर्जरायाः।९। यतो न भव्यानां कृत्स्नकर्मनिर्जरापूर्वकमोक्षकालस्य नियमोऽस्ति। केचिद् भव्याः संख्येयेन कालेन सेत्स्यन्ति, केचिदसंख्येयेन, केचिदनन्तेन, अपरे अनन्तानन्तेनापि न सेत्स्यन्तीति। ततश्च न युक्तं—'भव्यस्य कालेन निःश्रेयसोपपत्तेः।' इति।''

कश्चित् कथयति—यत् यो अभव्यसमभव्यः स कदाचिदपि न सेत्स्यति असौ अभव्यः एव कथयितव्यः इति चेत् ? तथाहि—

२.''योनन्तेनापि कालेन न सेत्स्यत्यसावभव्य एवेति चेत्, न, भव्यराश्यन्तर्भावात्।९। स्यादेतत्—अनन्तकालेनापि यो न सेत्स्यत्यसौ अभव्यतुल्यत्वादभव्य एव। अथ सेत्स्यति सर्वो भव्यः, तत उत्तरकालं भव्यशून्यं जगत्स्यादिति ?

तन्न, किं कारणम् ? भव्यराश्यन्तर्भावात्। यथा योऽनन्तकालेनापि कनकपाषाणो न कनकीभविष्यति न तस्यान्धपाषाणत्वं कनकपाषाणशक्तियोगात्, यथा वा आगामिकालो योऽनन्तेनापि कालेन नागमिष्यति न तस्यागामित्वं हीयते, तथा भव्यस्यापि स्वशक्तियोगाद् असत्यामपि व्यक्तौ न भव्यत्वहानिः।''

इमे भव्यजीवाः कदाचिदपि अभव्या न भवन्ति न चाभव्याः कदाचिदपि भव्याः भविष्यन्ति इति

तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में श्रीमान् भट्टाकलंकदेव के द्वारा भी कहा गया है—

''निर्जरा का काल निश्चित भी नहीं है।।९।। क्योंकि भव्य जीवों के सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरापूर्वक मोक्ष का काल निश्चित नहीं है। कोई भव्य जीव संख्यात काल में सिद्ध पद प्राप्त करेंगे, कोई असंख्यात भव में और कोई अनन्तकाल में सिद्ध होंगे। कोई ऐसे भी भव्य जीव हैं, जो अनन्तानन्त काल में भी सिद्ध नहीं होंगे। इसलिए यह कहना भी ठीक नहीं है कि—भव्य जीव को काल के अनुसार मोक्ष होता है।

यहाँ कोई कहता है कि—जो अभव्यसमभव्य जीव है, वह कभी भी सिद्ध नहीं होगा। इसलिए उसे तो अभव्य ही कहना चाहिए ? उसी को कहते हैं—

प्रश्न—जो अनन्तकाल में भी सिद्ध नहीं होगा, उसको अभव्य कहना चाहिए ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि उनका भव्यराशि में अन्तर्भाव होता है।

शंका—जो अनन्तानन्त काल में मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा, वह अभव्यतुल्य होने से अभव्य ही है। यदि सभी भव्य जीव मोक्ष चले जायेंगे, तो आगे भविष्यकाल में यह संसार भव्यों से शून्य—खाली हो जायेगा ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि कभी भी मोक्ष को नहीं प्राप्त करने वालों का भी भव्यराशि में ही अन्तर्भाव होता है। जैसे—वह स्वर्णपाषाण जो कभी भी सोना नहीं बनेगा, उसे अंध पाषाण नहीं कह सकते हैं, क्योंकि उसमें स्वर्णपाषाणत्व शक्ति की योग्यता है। अथवा ऐसा आगामी काल जो अनन्तकाल में भी नहीं आयेगा, उसे अनागामी नहीं कह सकते हैं। उसी प्रकार भव्यजीव के भी उसकी भव्यत्वशक्ति की योग्यता के कारण सिद्धि की प्रगटता न होने पर भी उसे अभव्य नहीं कहा जा सकता है, प्रत्युत् वह भव्यराशि में ही शामिल है।

ये भव्यजीव कभी भी अभव्य नहीं होते हैं और न अभव्य जीव कभी भी भव्य होंगे, यह जानकर ''हम

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक अध्याय १, सूत्र ३, पृ. ६३-६४। २. तत्त्वार्थवार्तिक अध्याय २, सूत्र ७, पृ. २९९।

ज्ञात्वा ''वयं भव्याः'' इति निश्चित्य रत्नत्रयमाराध्य भव्यत्वशक्तिः प्रकटीकर्तव्या ।

एवं द्वितीयस्थले अभव्यानां संख्यानिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः द्रव्यप्रमाणानुगमे सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सम्यग्दृष्ट्यादिसंख्यानिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणु'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिद्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''मिच्छा-'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

संप्रति सम्यग्दृष्ट्यादिजीवानां संख्याप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मादिट्ठी उवसम-सम्मादिट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१६१।।

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१६२।।

सब भव्य हैं'' ऐसा निश्चय करके रत्नत्रय की आराधना करते हुए अपनी भव्यत्वशक्ति प्रगट करना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अभव्य जीवों की संख्या निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा द्रव्यप्रमाणानुगम में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सम्यग्दृष्टि आदि की संख्या निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाला ''मिच्छा'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सम्यग्दृष्टि आदि जीवों की संख्या प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१६१।।

पूर्वोक्त जीव राशियाँ पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।१६२।।

एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।।१६३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र सामान्यसम्यग्दृष्टीनां वेदकसम्यग्दृष्टीनां च अवहारकालः आवलिकायाः असंख्यातभागः, सूत्राविरुद्धगुरूपदेशात्। क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां पुनः संख्यातावलिकाः। अवशेषाणां उपशम-सम्यग्दृष्टीनां सासादनानां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च असंख्यातावलिकाः अवहारकालः ज्ञातव्यो भवति।**

एवं प्रथमस्थले सम्यग्दृष्ट्यादिजीवानां संख्याप्रतिपादनपरत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इदानीं मिथ्यादृष्टिजीवानां द्रव्यप्रमाणकथनाय सूत्रमवतरति—

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।।१६४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मिथ्यादृष्ट्योऽसंयतभंगसमानाः भवन्ति, द्रव्यार्थिकनयाश्रितत्वात्। पर्यायार्थिक-कनयेन तु अस्ति भेदः चतुर्गुणस्थानपर्यंताः सर्वेऽसंयता एवेति, अतो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ता भवन्ती ज्ञातव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले मिथ्यादृष्टिसंख्याकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

उक्त जीवों द्वारा अन्तर्मुहूर्त से पल्योपम अपहृत होता है।।१६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सामान्य सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि ऐसा सूत्र से अविरुद्ध गुरुओं का उपदेश है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अवहारकाल संख्यात आवली तथा शेष उपशमसम्यग्दृष्टि आदि तीन का अवहारकाल असंख्यात आवलीप्रमाण ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सम्यग्दृष्टि आदि जीवों की संख्या प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब मिथ्यादृष्टि जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

मिथ्यादृष्टि जीवों का द्रव्यप्रमाण असंयत जीवों के समान है।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या असंयत जीवों के भंग के समान होती है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय के आश्रय से दोनों में कोई भेद नहीं पाया जाता है। पर्यायार्थिक नय से तो भेद है। चतुर्थ गुणस्थान तक सभी जीव असंयत ही होते हैं अतः मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त होते हैं।

इस तरह से द्वितीय स्थल में मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन सूत्रत्रयेण संज्ञिमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते । तत्र प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां संख्या-निरूपणत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिजीवसंख्याकथनत्वेन ''असण्णी'' इत्यादिसूत्रमेकं। इति पातनिका भवति।

इदानीं संज्ञिजीवसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णी दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१६५।।

देवेहि सादिरेयं।।१६६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सर्वे देवा संज्ञिनः, तत्र नारक-मनुष्यराशिं असंख्यातजगच्छ्रेणीप्रमाणं पुनः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागमात्रतिर्यक्संज्ञिराशिं च प्रक्षिप्ते सकलसंज्ञिनां जीवानां प्रमाणं भवति।**

एवं प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां संख्याकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं असंज्ञिजीवानां संख्यानिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

असण्णी असंजदभंगो।।१६७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियजीवादारभ्य चतुरिन्द्रियपर्यन्ताः सर्वेऽसंज्ञिन एव, पंचेन्द्रियतिर्यक्ष्वपि केचिदसंज्ञिनः संति। अतः द्रव्यार्थिकनयावलंबनेन असंयतप्रमाणाः तथापि पर्यायार्थिकनयापेक्षया तेभ्यो**

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों की संख्या निरूपण करने वाले ''सण्णिया'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों की संख्या का कथन करने वाला एक सूत्र है। यह सूत्रों की पातनिका है।

अब संज्ञी जीवों की संख्या प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संज्ञीमार्गणा के अनुसार संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१६५।।

संज्ञी जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा देवों से कुछ अधिक हैं।।१६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी देव संज्ञी ही होते हैं, उनमें असंख्यात जगत्श्रेणिप्रमाण नारक और मनुष्य राशि को तथा जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण तिर्यंच संज्ञीराशि को मिलाने पर समस्त संज्ञियों का प्रमाण उत्पन्न होता है।

इस प्रकार संज्ञी जीवों की संख्या बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों की संख्या निरूपण करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीवों का प्रमाण असंयतों के समान है।।१६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय जीव से प्रारंभ करके चार इन्द्रिय तक के सभी जीव असंज्ञी ही होते हैं, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में भी कुछ तिर्यंच असंज्ञी होते हैं। अतः द्रव्यार्थिक नय के

न्यूनाः संति।

एवं द्वितीयस्थले असंज्ञिनां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम् ।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः आहारकमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारानाहारकाणां संख्यानिरूपणत्वेन ''आहारा-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले कालापेक्षया क्षेत्रापेक्षया चाहारकानाहारकाणां द्रव्यप्रमाणकथनत्वेन ''अणंता-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

संप्रति आहारमार्गणायां आहारानाहारजीवसंख्याप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ?।।१६८।।

अणंता।।१६९।।

अवलंबन से असंज्ञी जीवों का प्रमाण असंयत जीवों के समान है फिर भी पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उनसे न्यून हैं।

इस तरह से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक और अनाहारक जीवों की संख्या निरूपण करने वाले ''आहारा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में काल की अपेक्षा और क्षेत्र की अपेक्षा आहारक एवं अनाहारक जीवों का द्रव्यप्रमाण कथन करने वाले ''अणंता'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब आहारमार्गणा में आहारक और अनाहारक जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

आहारमार्गणा के अनुसार आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ?।।१६८।।

आहारक और अनाहारक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा अनन्त हैं।।१६९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सर्वे संसारिणः प्राणिनः आहारकाः, विग्रहगतौ अनाहारकाश्चातोऽनन्तानन्ताः भवन्ति सामान्येन।**

एवं प्रथमस्थले आहारानाहारजीवप्रमाणकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

कालक्षेत्रापेक्षया एषामेव संख्याप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।।१७०।।

खेत्तेण अणंताणंता लोगा।।१७१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इमे आहारिणोऽनाहारिणोऽपि अनंतानंतावसर्पिण्युत्सर्पिणीभ्योऽधिकाः संति कालापेक्षया। क्षेत्रापेक्षया च इमे अनंतानंतलोकप्रमाणाः। लोक एक एव, तथापि एकस्मिन् लोके यावन्तः प्रदेशाः तत्सदृशाः अनंतानंतलोकाः यदि भवेयुः कल्पनायां तावन्तोऽमीः जीवाः संतीति ज्ञातव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले आहारमार्गणायां जीवानां प्रमाणकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे द्रव्यप्रमाणानुगमे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी संसारी जीव आहारक होते हैं और विग्रह गति में अनाहारक होते हैं, इसलिए सामान्यरूप से ये अनन्तानन्त प्रमाण होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक और अनाहारक जीवों का प्रमाण बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब काल और क्षेत्र की अपेक्षा इन्हीं जीवों की संख्या का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारक और अनाहारक जीव काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणियों से अपहृत नहीं होते हैं।।१७०।।

आहारक और अनाहारक जीव क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं।।१७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के जीव भी काल की अपेक्षा अनन्तानन्त अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी कालों से अधिक होते हैं तथा क्षेत्र की अपेक्षा ये अनन्तानन्त लोकप्रमाण हैं। लोक एक ही है, फिर भी एक उसी लोक में जितने प्रदेश हैं, यदि कल्पना में उसके समान ही अनन्तानन्त लोक हो जावें, तो उतनी संख्या प्रमाण जीव हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में आहारमार्गणा में जीवों का प्रमाण कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में द्रव्यप्रमाणानुगम में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

इदं षोडशकारणपर्व प्रतिवर्षं त्रिवारमायाति। तस्मिन्नपि भाद्रपद्मासे श्रावकजनाः साधवः साध्व्यश्च महत्या प्रभावनया पर्वराजमिति मत्वा षोडषकारणभावनानां पूजां उपासनां जाप्यादिकं कृत्वा सातिशयपुण्यं संचिन्वते। इदं त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमस्य वर्षस्य पर्वराजः सर्वजगति मम च मंगलं तनोतु इति मया भावना भाव्यते[१]।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीत-षट्खंडागमस्य द्वितीयखंडे श्रीभूतबलिसूरि-विरचितद्रव्यप्रमाणानुगमे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रंथाधारेण विंशतितमशताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्तीश्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यः तस्य शिष्याजम्बूद्वीपरचना-प्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां द्रव्यप्रमाणानुगमो नामायं पंचमो महाधिकारः समाप्तः।

यह सोलहकारण पर्व प्रतिवर्ष एक वर्ष में तीन बार आता है। उसमें भी भाद्रपद मास में श्रावकजन तथा साधु-साध्वी सभी लोग महती प्रभावनापूर्वक इसे पर्वराज समझकर सोलहकारणभावना की पूजा-उपासना-जाप्य आदि करके सातिशय पुण्य का सम्पादन करते हैं। यह वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईसवें (२५२३) वर्ष का पर्वराज सम्पूर्ण जगत् के लिए एवं मेरे लिए मंगलकारी होवे, यही मेरी भावना है।

अर्थात् सन् १९९७ में भाद्रपद कृ. दशमी के दिन (२७ अगस्त को) संस्कृत टीकाकर्त्री पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड में क्षुद्रकबंध के अन्तर्गत इस द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के महाधिकार को पूर्ण करते हुए भादों मास के सोलहकारण पर्व का स्मरण किया है।

इस प्रकार श्री मद्भगवत्पुष्पदन्त-भूतबली आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित द्रव्यप्रमाणानुगम नामक प्रकरण में श्री वीरसेनाचार्य द्वारा विरचित धवलाटीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में द्रव्यप्रमाणानुगम नामक पंचम महाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. एतत्प्रकरणं भाद्रपद कृष्णादशम्यां वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे लिखितमस्ति (२७-८-१९९७)।

अथ क्षेत्रानुगमो षष्ठो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

भावना दृष्टिशुद्ध्याद्यास्तीर्थकृत्पुण्यहेतुकाः ।
इमाः षोडशसंख्यास्ताः, नुमो भावविशुद्धये ।।१।।

अथ चतुर्दशभिरधिकारैः चतुर्विंशत्यधिकशतसूत्रैः क्षेत्रानुगमो नाम षष्ठो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावद् गतिमार्गणायां सप्तदश सूत्राणि प्रथमोऽधिकारे संति। द्वितीयोऽधिकारे इंद्रियमार्गणायां चतुर्दशसूत्राणि। तृतीये कायमार्गणाधिकारे विंशतिसूत्राणि। चतुर्थे योगमार्गणाधिकारे सप्तदशसूत्राणि। पंचमे वेदमार्गणाधिकारे नवसूत्राणि। षष्ठे कषायमार्गणाधिकारे द्वे सूत्रे। सप्तमे ज्ञानमार्गणाधिकारे एकादशसूत्राणि। अष्टमे संयमाधिकारे त्रीणि सूत्राणि। नवमे दर्शनमार्गणाधिकारे सप्त सूत्राणि। दशमे लेश्याधिकारे षट् सूत्राणि। एकादशे भव्यमार्गणाधिकारे सूत्रे द्वे। द्वादशे सम्यक्त्वमार्गणाधिकारे अष्टौ सूत्राणि। त्रयोदशे संज्ञिमार्गणाधिकारे चत्वारि सूत्राणि। चतुर्दशोऽधिकारे आहारमार्गणायां चत्वारि सूत्राणीति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अथ तावत्प्रथमतः चतुर्भिःस्थलैः सप्तदशसूत्रैः गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले नरकगतौ क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''खेत्ताणुगमेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ क्षेत्रस्थान-कथनपरत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिना चत्वारि सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले मनुष्यगतौ क्षेत्रवर्णनपरत्वेन

अथ क्षेत्रानुगम नामक छठा महाधिकार प्रारंभ

—मंगलाचरण —

श्लोकार्थ —दर्शनविशुद्धि आदि भावनाएं तीर्थंकर नामकर्म का बंध कराने में हेतु हैं, इनकी संख्या सोलह है अर्थात् ये सोलहकारण भावनाएं होती हैं, इनको भावविशुद्धि के लिए हम नमस्कार करते हैं।।१।।

अब चौदह अधिकारों में एक सौ चौबिस सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम नाम का छठा महाधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से गतिमार्गणा नाम के प्रथम अधिकार में सत्रह सूत्र हैं। द्वितीय इन्द्रियमार्गणा अधिकार में चौदह सूत्र हैं। तृतीय कायमार्गणा अधिकार में बीस सूत्र हैं। चतुर्थ योगमार्गणा अधिकार में सत्रह सूत्र हैं। पंचम वेदमार्गणा अधिकार में नौ सूत्र हैं। छठे कषायमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। सप्तम ज्ञानमार्गणा अधिकार में ग्यारह सूत्र हैं। आठवें संयममार्गणा अधिकार में तीन सूत्र हैं। नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में सात सूत्र हैं। दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में छह सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में आठ सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञीमार्गणा अधिकार में चार सूत्र हैं। चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में चार सूत्र हैं। इस प्रकार अधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अथ गतिमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब उनमें से सर्वप्रथम चार स्थलों में सत्रह सूत्रों के द्वारा गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में नरक गति में क्षेत्र निरूपण की मुख्यता वाले ''खेत्ताणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में तिर्यंच गति में क्षेत्रस्थान का कथन करने वाले ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादि चार

''मणुसगदीए'' इत्यादि सूत्रसप्तकं। तदनंतरं चतुर्थस्थले देवगतौ क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादि सूत्रत्रयं इति पातनिका कथितास्ति ।

इदानीं गतिमार्गणायां नरकगतौ नारकाणां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२।।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**आगमे स्वस्थानं द्विविधं—स्वस्थानस्वस्थानं विहारवत्स्वस्थानमिति। वेदनाकषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-तैजस-आहारक-केवलिसमुद्घातभेदैः समुद्घातः सप्तधा। उपपादो द्विविधः—ऋजुगतिपूर्वको विग्रहगतिपूर्वकश्चेति ।**

अत्र नरकगतौ नारकाणां स्वस्थानं द्विविधमपि वर्तते। वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकभेदेन समुद्घातश्चतुर्विधोऽस्ति। किंच—नारकेषु आहारकसमुद्घातो नास्ति महर्द्धिप्राप्तानां ऋषीणामभावात्। केवलिसमुद्घातोऽपि नास्ति, तत्र सम्यक्त्वं मुक्त्वा व्रतगन्धस्यापि अभावो वर्तते। तैजससमुद्घातोऽपि तत्र न युज्यते, विना महाव्रतैस्तदभावोऽस्ति।

सूत्र हैं। आगे तृतीय स्थल में मनुष्यगति में क्षेत्र का वर्णन करने वाले ''मणुसगदीए'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तदनन्तर चतुर्थ स्थल में देवगति में क्षेत्र का निरूपण करने वाले ''देवगदीए'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब गतिमार्गणा में नरकगति में नारकियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

क्षेत्रानुगम में गतिमार्गणा के अनुसार नरकगति में नारकी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१।।

नारकी जीव उक्त तीन पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।२।।

इसी प्रकार सात पृथिवियों में नारकी जीव पूर्वोक्त पदों की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— आगम में स्वस्थान दो प्रकार का बताया गया है—१. स्वस्थानस्वस्थान २. विहारवत्स्वस्थान। वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली समुद्घात के भेद से समुद्घात सात प्रकार का होता है। उपपाद के दो भेद हैं—ऋजुगतिपूर्वक और विग्रहगतिपूर्वक।

यहाँ नरकगति में नारकियों का स्वस्थान दोनो प्रकार का भी होता है। वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणांतिक के भेद से समुद्घात चार प्रकार का है। यहाँ नारकियों में आहारक समुद्घात नहीं है, क्योंकि महर्द्धिप्राप्त ऋषियों का वहाँ अभाव है। केवलिसमुद्घात भी नहीं है, क्योंकि वहाँ सम्यक्त्व को छोड़कर व्रत की गंध भी नहीं है। तैजस समुद्घात भी वहाँ नहीं है, क्योंकि महाव्रतों के ग्रहण किये बिना तैजससमुद्घात नहीं होता है।

तत्र वेदनावशेन स्वशरीरात् बाह्यमेकप्रदेशमादिं कृत्वा यावदुत्कृष्टेन स्वशरीरत्रिगुणविस्फूर्जनं वेदनासमुद्घातो नाम। कषायतीव्रतया स्वशरीरात् जीवप्रदेशानां त्रिगुणविस्फूर्जनं कषायसमुद्घातो नाम। विविधर्द्धिमाहात्म्येन संख्यातासंख्यातयोजनानि शरीरेण व्याप्य जीवप्रदेशानामवस्थानं वैक्रियिकसमुद्घातो नाम। आत्मात्मनः स्थितप्रदेशात् यावदुत्पद्यमानक्षेत्रं इति आयामेन एकप्रदेशमादिं कृत्वा यावदुत्कर्षेण शरीरत्रिगुणबाहल्येन कांडैकस्तंभस्थित-तोरण-हल-गोमूत्राकारेण अंतर्मुहूर्तावस्थानं मारणान्तिकसमुद्घातो नाम।

उपपादो द्विविधः—ऋजुगतिपूर्वको विग्रहगतिपूर्वकश्च। तत्र एकैकोऽपि द्विविधः—मारणान्तिकसमुद्घात-पूर्वकस्तद्विपरीतकश्चेति।

तैजसशरीरं द्विविधं—प्रशस्तमप्रशस्तं च । अनुकंपानिमित्तात् दक्षिणांसविनिर्गतं राष्ट्रविप्लव-मारि-रोगादिप्रशमक्षमतः स्वपरहितं श्वेतवर्णं नव-द्वादशयोजनरुन्द्रायामं प्रशस्तं नाम, तद्विपरीतमितरदप्रशस्तं।

आहारसमुद्घातो नाम—हस्तप्रमाणेन सर्वांगसुंदरेण समचतुरस्रसंस्थानेन हंसधवलेन रस-रुधिर-मांस-मेदास्थि-मज्जा-शुक्रसप्तधातुवर्जितेन विषाग्नि-शस्त्रादिसकलबाधामुक्तेन वज्र-शिला-स्तंभ-पर्वत-गमनदक्षेण स्वशीर्षादुद्गतेन देहेन तीर्थकरपादमूलगमनं।

दण्डकपाटप्रतरलोकपूरणानि केवलिसमुद्घातो नाम।

आत्मात्मनः उत्पन्नग्रामादीनां सीम्नोऽन्तः परिभ्रमणं स्वस्थानस्वस्थानं नाम। तस्मात् बाह्यप्रदेशे हिंडनं विहारवत्स्वस्थानं नाम।

इनमें वेदना के वश से अपने शरीर से बाहर एक प्रदेश से लेकर उत्कृष्ट से अपने शरीर से तीन गुने आत्मप्रदेशों के फैलने का नाम वेदनासमुद्घात है। कषाय की तीव्रता से जीव प्रदेशों का अपने शरीर से तिगुणे प्रमाण फैलने को कषायसमुद्घात कहते हैं। विविध ऋद्धियों के माहात्म्य से संख्यात व असंख्यात योजनों को शरीर से व्याप्त करके जीवप्रदेशों के अवस्थान को वैक्रियिकसमुद्घात कहते हैं। आयाम की अपेक्षाअपने-अपने रहने के प्रदेश से लेकर उत्पन्न के क्षेत्र तक तथा बाहल्य से एक प्रदेश से लेकर उत्कृष्ट से शरीर से तिगुणे बाहल्यरूप (जीवप्रदेशों के) काण्ड, एक खम्भस्थित तोरण, हल व गोमूत्र के आकार से अन्तर्मुहूर्त तक रहने को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं।

उपपाद दो प्रकार का है—ऋजुगतिपूर्वक और विग्रहगतिपूर्वक। इनमें दोनों भेद भी मारणान्तिक समुद्घातपूर्वक और तद्विपरीत—मारणान्तिक समुद्घातरहित के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं।

तैजस शरीर प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से दो-दो प्रकार के होते है। उनमें अनुकम्पा से प्रेरित होकर दाहिनी कंधे से निकले हुए राष्ट्रविप्लव, मारी रोग आदि विशेष के शांत करनेरूप से अपना और दूसरे का हितकारक श्वेतवर्ण तथा नौ योजन विस्तृत एवं बारह योजन दीर्घ समुद्घात को प्रशस्त और इससे विपरीत को अप्रशस्त तैजस समुद्घात कहते हैं।

हस्तप्रमाण, सर्वांगसुन्दर, समचतुरस्रसंस्थान संयुक्त हंस के समान धवल, रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओं से रहित विष, अग्नि एवं शस्त्रादि समस्त बाधाओं से मुक्त वज्र, शिला, स्तंभ, जल व पर्वत में से गमन करने में दक्ष तथा अपने मस्तक से उत्पन्न हुए शरीर से तीर्थंकर के पादमूल में जाने का नाम आहारकसमुद्घात है।

दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणरूप जीव प्रदेशों की अवस्था को केवलिसमुद्घात कहते हैं। अपने-अपने उत्पन्न होने के ग्रामादिकों की सीमा के भीतर परिभ्रमण करने को स्वस्थानस्वस्थान और इससे बाह्य प्रदेश में घूमने को विहारवत्स्वस्थान कहते हैं।

तत्र 'नारकाः आत्मनः पदैः कियत्क्षेत्रे भवन्ति' इति आशंकासूत्रं।

एवमाशंक्य आचार्यवर्येण श्रीभूतबलि-देवेन उत्तरसूत्रं भणितं—

इमे नारकाः स्वस्थानेन समुद्घातेन उपपादेन लोकस्यासंख्यातभागे क्षेत्रे निवसंति।

अत्र लोकः पंचविधः—ऊर्ध्वलोकः अधोलोकः तिर्यग्लोकः मनुष्यलोकः सामान्यलोकश्चेति। सूत्रे लोकग्रहणेन एतेषां पंचानां अपि लोकानां ग्रहणं कर्तव्यं।

कुतः ?

देशामर्शकत्वात्। इमे नारकाः सर्वपदैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे भवन्ति, मनुष्यलोकादसंख्यातगुणे च । तद्यथा—स्वस्थानस्वस्थानराशिः मूलराशेः संख्यातबहुभागाः, विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-समुद्घातराशयः मूलराशेः संख्यातभागप्रमाणाः।

अत्र विशेषः—वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातेषु अवगाहना नवगुणी गृहीतव्या। अन्यच्च—तत्रासंख्यातभागप्रमाणजीवाः मारणान्तिकसमुद्घातं विनैव कालं कुर्वन्ति, तथा तत्र बहुपुण्यशालिनां प्राणिनां अभावात् असंख्यातबहुभागप्रमाणजीवाः मारणान्तिकसमुद्घातं कुर्वन्ति[१]। एवं सप्तसु पृथिवीषु नारकाणां क्षेत्रप्ररूपणा ज्ञातव्या।

एवं प्रथमस्थले नारकाणां क्षेत्रप्ररूपणानिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम् ।

संप्रति तिर्यग्गतौ तिरश्चां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते?।।४।।

उनमें 'नारकी जीव अपने पदों से कितने क्षेत्र में रहते हैं' यह आशंकासूत्र है—

इस प्रकार आशंका करके आचार्यवर्य श्री भूतबली देव ने उत्तर सूत्र कहा है।

ये नारकी जीव स्वस्थानरूप समुद्घात से उपपाद से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

यहाँ लोक पाँच प्रकार का है—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यग्लोक, मनुष्यलोक और सामान्यलोक। यहाँ सूत्र में लोक के ग्रहण से इन पाँचों ही लोकों का ग्रहण करना चाहिए।

ऐसा क्यों ?

क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है। नारकी जीव सर्वपदों से चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, वह इस प्रकार है—स्वस्थानस्वस्थानराशि मूलराशि के संख्यात बहुभाग है तथा विहारवत्स्वस्थानराशि, वेदनासमुद्घातराशि, कषायसमुद्घातराशि एवं वैक्रियिकसमुद्घात-राशि, ये राशियाँ मूलराशि के संख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं।

यहाँ विशेषता यह है कि—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात में आत्मप्रदेशों की अवगाहना शरीर से नौ गुणी जानना चाहिए और दूसरी बात यह है कि वहाँ असंख्यात भागप्रमाणजीव मारणांतिक समुद्घात के बिना ही काल—मरण करते हैं तथा वहाँ बहुत पुण्यवान प्राणियों का अभाव होने से असंख्यातवें भागमात्र ऋजुगति से मारणान्तिक समुद्घात करते हैं। इस प्रकार सातों पृथिवियों में नरकियों की क्षेत्रप्ररूपणा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में नारकियों की क्षेत्रप्ररूपणा का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यंचगति में तिर्यंचों का क्षेत्रनिरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच स्वस्थान, समुद्घात और उपपादपद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।४।।

१. धवला पु. ७, पृ. ३०२।

सव्वलोए।।५।।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादपदानि तिर्यक्षु सन्ति, अवशेषाणि न संति।**

एतैः पदैः तिर्यञ्चः कियत्क्षेत्रे तिष्ठन्तीति आशंक्य परिहारो भण्यते—

'सर्वलोके'।

कुतः ?

आनन्त्यात्।

पुनः इमे लोकाकाशे न सम्मान्ति ?

नैतदाशंकनीयं, लोकाकाशे अनन्तावगाहनशक्तिसंभवात्। एतत्सामान्यतिरश्चां कथनं ज्ञातव्यं।

शेष चतुर्विधपंचेन्द्रियतिरश्चां क्षेत्रं लोकस्यासंख्येयभागं ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले तिरश्चां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना मनुष्यगतौ मनुष्याणां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते—

तिर्यंच जीव उक्त पदों की अपेक्षा सर्वलोक में रहते हैं।।५।।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव स्वस्थान समुद्घात और उपपादपद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।६।।

उक्त चार प्रकार के तिर्यंच जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद ये पद तिर्यंचों में होते हैं, शेष पद उनके नहीं होते हैं। इन पदों की अपेक्षा तिर्यंच जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं इस प्रकार आशंका करके उसका परिहार करते हैं—

वे सर्वलोक में रहते हैं।

कैसे ?

क्योंकि, वे अनन्त है। अनन्त होने से वे लोक में नहीं समाते हैं ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि लोकाकाश में अनन्त अवगाहनशक्ति संभव है। यह सामान्य तिर्यंचों का कथन जानना चाहिए।

शेष चार प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में तिर्यंचों का क्षेत्र निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्यगति में मनुष्यों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।९।।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।१०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।११।।

असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा।।१२।।

मणुसअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मनुष्यगतौ मनुष्याः त्रिविधाः—सामान्यमनुष्याः पर्याप्तमनुष्याः स्त्रीवेदिमनुष्याश्च मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे तिष्ठन्ति, एषां संख्यातजीवानां क्षेत्रग्रहणात्। इमे त्रिविधाः मनुष्याः उपपादगताः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति, प्रधानीकृतमनुष्यापर्याप्तोपपाद-**

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनी स्वस्थान व उपपाद पद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।८।।

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य स्वस्थान व उपपाद पदों की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में रहते हैं।।९।।

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य समुद्घात से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१०।।

उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।११।।

समुद्घात की अपेक्षा उक्त तीनों प्रकार के मनुष्य लोक के असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं।।१२।।

मनुष्य अपर्याप्त स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१३।।

मनुष्य अपर्याप्त पूर्वोक्त तीनों पदों की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में रहते हैं।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनुष्यगति में मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—सामान्यमनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और स्त्रीवेदी मनुष्य। ये सभी मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि यहाँ पर इन संख्यात जीवों के क्षेत्र का ग्रहण है। उपपाद पद को प्राप्त ये तीनों प्रकार के मनुष्य तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ मनुष्य अपर्याप्तों के उपपाद

क्षेत्रात्। विशेषेण तु — मनुष्यपर्याप्त-मानुषीणामुपपादक्षेत्रं चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपाद-संख्येयगुणं।

समुद्घातेन — वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-तैजस-आहार-दण्ड-कपाट-प्रतर-लोकपूरण-समुद्घाताः संति।

अत्र मानुषीणां भाववेदानामपि तैजसाहारौ समुद्घातौ न स्तः। प्रतरलोकपूरणसमुद्घातापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागे सर्वलोके च तिष्ठन्ति, जीवप्रदेशविरहितलोकाकाशप्रदेशाभावात्।

एवं तृतीयस्थले मनुष्याणां क्षेत्रकथनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

अधुना देवगतौ देवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१६।।

भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभंगो।।१७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **अत्र देवगतौ तैजसाहारकेवलिसमुद्घाताः न संति देवेषु तेषामस्तित्वविरोधात्। सर्वार्थसिद्धिविमानवासिनो देवाः स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदपरिणताः मानुषक्षेत्रस्य**

क्षेत्र की प्रधानता है। विशेषता यह है कि — मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों का उपपादक्षेत्र चार लोकों के असंख्यातवें भाग तथा ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र में है।

समुद्घात पद से वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस, आहार, दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण, इन सब समुद्घातों का संग्रह किया गया है।

यहाँ भाववेदी मनुष्यिनियों के भी तैजस और आहारकशरीर नहीं होते हैं। प्रतर और लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में तथा सम्पूर्ण लोक में वे भाववेदी मनुष्य रहते हैं, क्योंकि जीव प्रदेशों से विरहित लोकाकाश प्रदेशों का अभाव पाया जाता है अर्थात् इस अवस्था में जीवप्रदेशों से रहित लोकाकाश के प्रदेशों का अभाव है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में मनुष्यों का क्षेत्र कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब देवगति में देवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

देवगति में देव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१५।।

देव उपर्युक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।१६।।

भवनवासियों से लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक का क्षेत्र देवगति के समान है।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ देवगति में तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात नहीं है, क्योंकि देवों में इनके अस्तित्व का विरोध पाया जाता है।

सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात इन पदों से परिणत होकर मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमान में वेदनासमुद्घात

संख्यातभागे तिष्ठन्ति, तत्र सर्वार्थसिद्धौ वेदना-कषाय समुद्घातानां तेभ्यः समुत्पद्यमानस्तोकविसर्पणं प्रतीत्य तथोपदेशात् कारणे कार्योपचारात् वा।

एवं चतुर्थस्थले देवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनामषष्ठे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिःस्थलैः चतुर्दशसूत्रैः इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते । तत्र तावत् प्रथमस्थले क्षेत्रानुगमे एकेन्द्रियजीवानां क्षेत्रकथनपरत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रषट्कं । तदनु द्वितीयस्थले विकलत्रयाणां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''बेइंदिय''इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियाणां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''पंचिंदिय'' इत्यादिषट्सूत्राणि इति समुदायपातनिका।

अधुना एकेन्द्रियाणां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१८।।

और कषायसमुद्घातों को प्राप्त उनमें उत्पन्न होने वाले देवों के स्तोक विसर्पण की अपेक्षा करके उस प्रकार का उपदेश दिया जाता है अथवा कारण में कार्य का उपचार करने से वैसा उपदेश किया गया है।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में देवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामक छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में चौदह सूत्रों के द्वारा इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथल स्थल में क्षेत्रानुगम में एकेन्द्रिय जीवों के क्षेत्रकथन की मुख्यता वाले ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में विकलत्रय जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने वाले ''बेइंदिय'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले ''पंचिंदिय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब एकेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणानुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१८।।

सव्वलोगे।।१९।।

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।२०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२१।।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।२२।।

सव्वलोए।।२३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र एकेन्द्रियेषु विहारवत्स्वस्थानं नास्ति, स्थावराणां विहारभावविरोधात्। समुद्घातेषु तैजसाहारकेवलिसमुद्घाता न संति। सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु वैक्रियिकसमुद्घातोऽपि नास्ति। अतः स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपरिणताः सूक्ष्मैकेन्द्रियास्तेषां पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च सर्वलोके संति, आनन्त्यात्।**

बादरैकेन्द्रियाः पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च त्रयाणां लोकानां संख्यातभागे, नर-तिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च तिष्ठन्ति।

किं कारणं ?

मंदरपर्वतमूलादुपरि यावत् शतारसहस्त्रारकल्प इति पंचरज्जु-उत्सेधेन समचतुरस्त्रा लोकनाली वातेन आपूर्णा। तस्मिन् 'एकोनपंचाशद्रज्जुप्रतराणां यदि एकं जगत्प्रतरं लभ्यते तर्हि पंचरज्जुमात्ररज्जुप्रतराणां किं लभामः' इति फलगुणितमिच्छितं प्रमाणेनापवर्तिते द्वे पंचभागोन-एकोनसप्ततिरूपैः घनलोके भागे

पूर्वोक्त एकेन्द्रिय जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।१९।।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।२०।।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।२१।।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।२२।।

उक्त बादर एकेन्द्रिय जीव समुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ एकेन्द्रियों में विहारवत्स्वस्थान नहीं होता, क्योंकि स्थावर जीवों के विहार का विरोध है। समुद्घातों में तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलिसमुद्घात एकेन्द्रियों में नहीं है। सूक्ष्म एकेन्द्रियों में वैक्रियिकसमुद्घात भी नहीं है। अतः स्वस्थान, वेदनासमुदघात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद इन पदों से परिणत सूक्ष्म एकेन्द्रिय व उनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीव तीन लोकों के संख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

शंका—उक्त क्षेत्रप्रमाण का कारण क्या है ?

समाधान—क्योंकि मन्दर पर्वत—सुमेरु पर्वत के मूलभाग से ऊपर शतार-सहस्त्रार कल्प तक पाँच राजु ऊँची, समचतुष्कोण लोकनाली वायु से परिपूर्ण है। उनमें उनचास प्रतररज्जुओं का यदि एक जगत्प्रतर प्राप्त होता है, तो पाँच राजु प्रमाण राजुप्रतरों का कितना जगत्प्रतर प्राप्त होगा, इस प्रकार फलराशि से गुणित इच्छाराशि को प्रमाणराशि से अपवर्तित करने पर दो बटे पाँच भाग कम उनहत्तर रूपों से घनलोक को भाजित

हते एकभागः आगच्छति। पुनः तस्मिन् लोकपर्यन्तस्थितवातक्षेत्रं संख्यातयोजनबाहल्यजगत्प्रतरप्रमाणं, अष्टपृथिवीक्षेत्रं बादरजीवाधारभूतं संख्यातयोजनबाहल्यजगत्प्रतरप्रमाणं, अष्टपृथिवीनां अधः-स्थितसंख्यातयोजनबाहल्यजगत्प्रतरप्रमाणवातक्षेत्रं आनीय प्रक्षिप्ते लोकस्य संख्यातभागमात्रं अनन्तानंतबादरैकेन्द्रिय-बादरैकेन्द्रियपर्याप्त-बादरैकेन्द्रियापर्याप्तजीवापूरितं क्षेत्रं जातं ।

तेन इमे त्रयोऽपि बादरैकेन्द्रियाः स्वस्थानेन त्रयाणां लोकानां संख्यातभागे तिष्ठन्ति इति कथितं भवति।

कश्चिदाह—एते त्रयोऽपि बादरैकेन्द्रियाः मारणान्तिक-उपपादपदाभ्यां सर्वलोके भवन्ति। वेदना-कषायसमुद्घाताभ्यां त्रयाणां लोकानां संख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यां असंख्यातगुणे। वैक्रियिकपदेन बादरैकेन्द्रियापर्याप्तव्यतिरिक्त-बादरैकेन्द्रियाः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे भवन्ति। ततः'समुद्घातेन सर्वलोके' इति वचनं न घटते ?

नैष दोषः, देशामर्शकत्वात्।

एवं प्रथमस्थले एकेन्द्रियाणां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

संप्रति द्वीन्द्रियादिविकलत्रयाणां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।२४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२५।।

करने पर लब्ध एक भागप्रमाण प्राप्त होता है। पुनः उसमें संख्यात योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण लोकपर्यन्त स्थित वातक्षेत्र को संख्यात योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण ऐसे बादर जीवों के आधारभूत आठ पृथिवी क्षेत्र को और आठ पृथिवियों के नीचे स्थित संख्यात योजन बाहल्यरूप जगत्प्रतरप्रमाण वातक्षेत्र को लेकर मिला देने पर लोक के संख्यातवें भागमात्र अनन्तानन्त बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त व बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों से परिपूर्ण क्षेत्र होता है।

इस कारण ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय स्वस्थान से तीन लोकों के संख्यातवें भाग में एवं मनुष्य लोक व तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा कहा है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—ये तीनों ही बादर एकेन्द्रिय जीव मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक में रहते हैं। वेदना और कषाय समुद्घात से तीनों लोकों के संख्यात भाग में रहते है तथा मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोक से असंख्यात गुणे क्षेत्र में रहते हैं। वैक्रियिक पद से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तों को छोड़ शेष दो बादर एकेन्द्रिय चार लोकों के असंख्यातवें भाग में रहते हैं इस कारण 'समुद्घात से सर्वलोक में रहते हैं' यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब दो इन्द्रिय आदि विकलत्रय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और इन तीनों के पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।२४।।

उक्त द्वीन्द्रियादिक जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।२५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्वस्थानस्वस्थानविहारवत्स्वस्थानवेदनाकषायसमुद्घातगता एते द्वीन्द्रियादयः षडपि वर्गाः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति, पर्याप्तक्षेत्रस्य प्राधान्यात्। एतेषां चैव त्रयोऽपर्याप्ताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, पल्योपमस्य असंख्यातभागेन खण्डितोत्सेधघनांगुलमात्रावगाहनत्वात्। मारणान्तिकउपपादगताः नवापि वर्गाः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे नर-तिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति। वैक्रियिकपदं विकलत्रयेषु नास्ति, स्वाभाविकत्वात्।**

एवं द्वितीयस्थले विकलत्रयजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इदानीं पंचेन्द्रियाणां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।२६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।२७।।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।२८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।।२९।।

पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त ये द्वीन्द्रियादिक छहों वर्ग तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ पर्याप्त क्षेत्र की प्रधानता है। इन्हीं के तीन अपर्याप्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि वेपल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाजित उत्सेध घनांगुलप्रमाण अवगाहना से युक्त होते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात व उपपादपद को प्राप्त नौ ही जीवराशियाँ तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। वैक्रियिक पद विकलत्रय जीवों में नहीं होता है, क्योंकि उनका वैसा ही स्वभाव है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में विकलत्रय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान और उपपादपदों की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।२६।।

पंचेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान और उपपादपद की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।२७।।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घात की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।२८।।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभाग में अथवा सर्वलोक में रहते हैं।।२९।।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।३०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः त्रयाणां लोकानां असंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति, प्रधानीकृतपर्याप्तराशेः संख्यातभागत्वात्। तैजसाहारसमुद्घातगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे। दण्डगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्राद् असंख्यातगुणे । कपाटसमुद्घातगताः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। मारणान्तिकसमुद्घातगताः त्रयाणां लोकानाम-संख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे । एतेषां क्षेत्रविन्यासः ज्ञात्वा कर्तव्यः।**

'लोकस्यासंख्यातभागः' इति निर्देशेन सूचितार्थाः एते। अथवा लोकस्यासंख्यातभागाः, वातवलयं मुक्त्वा प्रतरसमुद्घाते शेषाशेषलोकमात्राकाशप्रदेशे विसर्प्य स्थितजीवप्रदेशोपलंभात्। सर्वलोके वा, लोकपूरणे केवलिसमुद्घाते सर्वलोकाकाशं विसर्प्य स्थितजीवप्रदेशानामुपलंभात्।

तात्पर्यमेतत्—पंचेन्द्रियजीवानां केवलिभगवतां केवलिसमुद्घाते लोकपूरणे एव सर्वलोकः आपूर्णः ज्ञातव्यः। एकेन्द्रियाः अपि सर्वलोके तिष्ठन्ति अत्र तेषां विवक्षा नास्ति इति निश्चेतव्यः।

एवं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनामषष्ठे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमती-कृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इंद्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढ़ई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि वे प्रधानभूत पर्याप्तराशि के संख्यातवें भाग हैं। तैजससमुद्घात और आहारक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुष क्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। दण्ड समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैंकपाटसमुद्घात को प्राप्त वे ही जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहतेहैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इनका क्षेत्रविन्यास जानकर करना चाहिए।

लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं''इस निर्देश से यह अर्थ सूचित है अथवा उक्त जीवों का क्षेत्र लोक के असंख्यात बहुभाग प्रमाण है, क्योंकि प्रतरसमुद्घात में वातवलय को छोड़कर शेष समस्त लोकमात्र आकाश प्रदेश में फैलकर स्थित जीवप्रदेश पाये जाते हैं। अथवा सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि लोकपूरणसमुद्घात में सर्वलोकाकाश में फैलकर स्थित जीव प्रदेश पाये जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि—पंचेन्द्रिय जीवों में केवली भगवन्तों के केवलीसमुद्घात में लोकपूरणसमुद्घात काल में ही आत्मा के प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होते हैं ऐसा जानना चाहिए। एकेन्द्रिय जीव भी सर्वलोक में रहते हैं यहाँ उनकी विवक्षा नहीं है, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिः स्थलैः विंशतिसूत्रैः क्षेत्रानुगमे कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते । तत्र तावत् प्रथमस्थले सूक्ष्मकायिकस्थावराणां क्षेत्रकथननिरूपणे ''कायाणुवादेण'' इत्यादिना द्वे सूत्रे स्तः । तदनु द्वितीयस्थले बादरस्थावरकायजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''बादरपुढवि'' इत्यादि एकादश सूत्राणि। तदनंतरं तृतीयस्थले वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''वणप्फदिकाइय'' इत्यादिसूत्रषट्कं। ततः परं चतुर्थस्थले त्रसकायिकानां क्षेत्रकथनपरत्वेन ''तसकाइय'' इत्यादिना सूत्रमेकमिति समुदायपातनिका।

इदानीं कायमार्गणायां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय-सुहुमपुढविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।३२।।

सव्वलोगे।।३३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्येन पृथिव्यादिचतुष्कं सूक्ष्मपृथिव्यादिचतुष्कं च इमे अष्टौ पर्याप्तापर्याप्तभेदेन षोडशविधाः भवन्ति। इमे सर्वेऽपि स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः सर्वलोके संति, असंख्यातलोकपरिमाणत्वात्। तेजस्कायिकेषु वैक्रियिकसमुद्घातगताः पंचानां लोकानामसंख्यातभागे,**

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में बीस सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सूक्ष्मकायिक स्थावर जीवों का क्षेत्र कथन करने हेतु ''कायाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में बादर स्थावरकाय जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले ''बादरपुढवि'' इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''वणप्फदिकाइय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनश्च चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक जीवों का क्षेत्र कथन करने वाला ''तसकाइय'' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कायमार्गणा में क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।३२।।

उपर्युक्त पृथिवीकायिकादि जीव उक्त पदों से सर्व लोक में रहते हैं।।३३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से पृथिवी आदि चतुष्क एवं सूक्ष्म पृथिवी आदि चतुष्क ये आठों पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह प्रकार के होते हैं। ये सभी स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त ये पृथिवीकायिकादि सोलह जीवराशियाँ सर्वलोक में

अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रावगाहनत्वात्। वायुकायिकेषु वैक्रियिकसमुद्घातगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे तिष्ठन्ति। ''मानुषक्षेत्रापेक्षया कियत्क्षेत्रे तिष्ठन्तीति न ज्ञायते[१]।''

एवं प्रथमस्थले सूक्ष्मपृथिव्यादिचतुष्काणां क्षेत्रकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

संप्रति वायुकायवर्जितबादरपृथिव्यादिचतुःस्थावरणां अपर्याप्तानां पर्याप्तानां च प्रतिपादनाय सूत्रषट्क-मवतार्यते —

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।३४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३५।।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।३६।।

सव्वलोगे।।३७।।

बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।३८।।

रहती हैं, क्योंकि वे असंख्यात लोकप्रमाण हैं। तेजस्कायिकों में वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए जीव पाँच लोकों के असंख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि वे अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहना वाले हैं। वायुकायिकों में वैक्रियिक समुद्घात को प्राप्त हुए जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में रहते हैं तथा मानुषक्षेत्र की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं, यह ज्ञात नहीं है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में सूक्ष्म पृथिवीकायादि चतुष्क का क्षेत्र कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब वायुकायिक से रहित बादर पृथिवी आदि चार स्थावर जीवों में अपर्याप्तक एवं पर्याप्तकों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर व उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थान से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।३४।।

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादिक जीव स्वस्थान से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३५।।

उक्त बादर पृथिवीकायिकादि जीव समुद्घात व उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं?।।३६।।

उक्त बादर पृथिवीकायिकादि जीव समुद्घात व उपपाद से सर्वलोक में रहते हैं।।३७।।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर तेजस्कायिक पर्याप्त व बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।३८।।

---

१. षट्खंडागम पु. ७, धवला टीका-पृ. ३३०।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।३९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इदं देशामर्शकसूत्रं, तेनैतेन आमृष्टार्थेन अनामृष्टार्थः उच्यते। तद्यथा—बादरपृथिव्याद्यष्टजीवराशयः स्वस्थानगताः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति, अपर्याप्तसहितानां पृथिवीकायिकानां जीवानां पृथिवीः आश्रित्यावस्थानात्।**

सप्तपृथिव्यः अधःसंति, अष्टमपृथिवी ईषत्प्राग्भारनामा उपरि वर्तते।

मेरु-कुलपर्वतानां देवानां इन्द्रक-श्रेणीबद्ध-प्रकीर्णकविमानक्षेत्रं चात्रैव दृष्टव्यं, सर्वत्र तत्र पृथिवीकायिकानां संभवात्। बादरपृथिवीकायिकाः बादराप्कायिकाः बादरतेजस्कायिकाः बादरवनस्पतिकायिकाः प्रत्येकशरीराः एतेषां चैवापर्याप्ताः भवनविमानाष्टपृथिवीषु निचितक्रमेण निवसंति।

कश्चिदाह—तेजोऽब्वृक्षाणां कथं तत्र संभवः ?

तस्योत्तरं आह—नैतद् वक्तव्यं, इन्द्रियैरग्राह्याणां अतिशयसूक्ष्माणां पृथिवीसम्बद्धानां तेषां जीवानामस्तित्वस्य विरोधाभावात्[१]।

बादरवायुकायिकपर्याप्तापर्याप्तानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।४०।।

उपर्युक्त बादर पृथिवीकायिकादि पर्याप्त जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह देशामर्शक सूत्र है, इस कारण इसके द्वारा आमृष्ट अर्थात् गृहीत अर्थ से अनामृष्ट अर्थात् अगृहीत अर्थ को कहते हैं। वह इस प्रकार है—बादरपृथिवी आदि आठ जीवराशियाँ स्वस्थान को प्राप्त होकर तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि अपर्याप्त सहित पृथिवीकायिक जीवों का अवस्थान पृथिवियों का ही आश्रय करके है।

सात नरक पृथिवियाँ नीचे—अधोलोक में हैं और ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथिवी ऊपर ऊर्ध्वलोक में पाई जाती है।

मेरु पर्वत, कुलपर्वत तथा देवों के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों का क्षेत्र भी यहीं पर देखना चाहिए, क्योंकि वहाँ सब जगह पृथिवीकायिक जीवों की संभावना है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके ही अपर्याप्त जीव भी भवनवासियों के विमानों में व आठ पृथिवियों में निचित क्रम से निवास करते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—तेजस्कायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की वहाँ कैसे संभावना है ?

उसका समाधान दिया जा रहा है कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इन्द्रियों से अग्राह्य व अतिशय सूक्ष्म पृथिवीसम्बद्ध उन जीवों के अस्तित्व का कोई विरोध नहीं है।

अब बादर वायुकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

बादर वायुकायिक और उनके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थान की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।४०।।

---

१. षट्खंडागम (धवलाटीका समन्वित) पु. ७, पृ. ३३२।

लोगस्स संखेज्जदिभागे।।४१।।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे।।४२।।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।४३।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।४४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**बादरवायुकायिकाः सामान्येन, अस्यैवापर्याप्ताः स्वस्थानेन लोकस्य संख्यातभागे—त्रयाणां लोकानां संख्यातभागे। नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च तिष्ठन्ति, समचतुरस्रलोकनालिं पंचरज्ज्वायतमापूर्य तेषां सर्वकालमवस्थानात्। इमे जीवाः मारणान्तिकसमुद्घातेन उपपादेन च सर्वलोके, असंख्यातलोकपरिमाणत्वात्। इमे वायुकायिकपर्याप्ताः लोकस्य संख्यातभागे क्षेत्रे तिष्ठन्ति।**

एवं द्वितीयस्थले बादरपृथिव्यादिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

अधुना वनस्पतिनिगोदजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।४५।।

बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं।।४१।।

उक्त जीव समुद्घात व उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ? सर्वलोक में रहते हैं।।४२।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।४३।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद से लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—बादर वायुकायिक सामान्य से और उन्हीं के अपर्याप्त जीव स्वस्थान से लोक के संख्यातवें भाग में—तीनों लोकों के संख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि समचतुष्कोण पाँच राजू आयत लोकनाली को व्याप्त करके उनका सर्वकाल में अवस्थान पाया जाता है। ये जीव मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा सर्वलोक में असंख्यात लोक प्रमाण हैं। ये वायुकायिक पर्याप्तक जीव लोक के संख्यातवें भाग क्षेत्र में रहते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में बादर पृथिवी आदि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक, वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद जीव, निगोद जीव पर्याप्त, निगोद जीव अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म

सव्वलोए।।४६।।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।४७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।४८।।

समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।४९।।

सव्वलोए।।५०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूक्ष्मवनस्पतिनिगोदजीवानां अवस्थानं सर्वलोके भवति, सर्वलोकं निरन्तरेण व्याप्य अवस्थानात्।**

बादराणामिव सूक्ष्मानां लोकस्यैकदेशेऽवस्थानं किं न भवेत् ?

न भवेत् , 'सुहुमा सव्वत्थ जलथलागासेसु होंति' इति वचनेन सह विरोधात्।

बादरवनस्पतिकायिका बादरनिगोदजीवाः तस्यैव पर्याप्ता अपर्याप्ताः स्वस्थानेन लोकस्यासंख्यातभागे तिष्ठन्ति। त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणे स्थाने तिष्ठन्ति, पृथिवीः आश्रित्यैव बादराणामवस्थानात्। मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे संति।

वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव, सूक्ष्म निगोदजीव पर्याप्त और सूक्ष्म निगोदजीव अपर्याप्त ये स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।४५।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।४६।।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोदजीव, बादर निगोद पर्याप्त और बादर निगोदजीव अपर्याप्त स्वस्थान से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।४७।।

उक्त जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।४८।।

उपर्युक्त जीव समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।४९।।

उक्त जीव समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा सर्वलोक में रहते हैं।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्म वनस्पति निगोदिया जीवों का अवस्थान सर्वलोक में होता है, क्योंकि सर्वलोक को व्याप्त कर निरन्तर इनका अवस्थान पाया जाता है।

शंका—बादर जीवों के समान सूक्ष्म जीवों का लोक के एक देश में अवस्थान क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर 'सूक्ष्म जीव जल, स्थल व आकाश में सर्वत्र होते हैं' इस वचन से विरोध आ जावेगा।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद जीव उनके पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीव स्वस्थान से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। तिर्यग्लोक से संख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि पृथिवियों का आश्रय लेकर ही बादर जीवों का अवस्थान पाया जाता है। मानुष क्षेत्र की अपेक्षा ये असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

मारणान्तिकसमुद्घातेन उपपादेन च सर्वलोके संति, आनन्त्यात्।

एवं तृतीयस्थले वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां क्षेत्रकथनप्रकारेण षट्सूत्राणि गतानि।

अधुना त्रसकायिकानां क्षेत्रनिरूपणार्थं सूत्रमवतार्यते —

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।।५१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इमे त्रसजीवाः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः त्रयाणां लोकानां असंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति। केवलिसमुद्घातेन तैजसमुद्घातेन आहारसमुद्घातेन च अपर्याप्तपदेनापि भेदो नास्ति पंचेन्द्रियभंगवत् इति वक्तव्यं।**

एवं चतुर्थस्थले त्रसजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठेमहाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः ।

मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों से सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसकायिक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित किया जाता है —

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों के क्षेत्र का निरूपण पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के समान है।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये त्रस जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में व मानुष क्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। तथा केवलिसमुद्घात, तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदों से एवं अपर्याप्त पदों से भी कोई भी भेद नहीं है। अतएव 'उक्त त्रस जीवों का क्षेत्र पंचेन्द्रिय जीवों के समान है' ऐसा कहना चाहिए।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में त्रस जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामके द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ पंचभिःस्थलैः सप्तदशसूत्रैः क्षेत्रानुगमे महाधिकारे योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां क्षेत्रकथनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''कायजोगि'' इत्यादिसूत्रपंचकं। ततः परं तृतीयस्थले वैक्रियिककाय-वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां क्षेत्रकथनपरत्वेन ''वेउव्विय'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं चतुर्थस्थले आहारकाय-आहारआहारमिश्रयोगिनां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''आहारकाय'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''कम्मइय-'' इत्यादिना द्वे सूत्रे इति समुदायपातनिका।

इदानीं मनोवचनयोगिनां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।५२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।५३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **मनोयोगिनां वचनयोगिनां च षट्समुद्घाताः संति केवलिसमुद्घातं विहाय। उपपादपदं एषां नास्ति, तत्र काययोगं मुक्त्वा अन्ययोगाभावात्।**

अथ योगमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब पाँच स्थलों में सत्रह सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम नाम के महाधिकार में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का क्षेत्र कथन करने हेतु ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में औदारिक एवं औदारिकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले ''कायजोगि'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः तृतीय स्थल में वैक्रियिककाय एवं वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र कथन करने वाले ''वेउव्विय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले ''आहारकाय'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम स्थल में कार्मणकाययोगी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''कम्मइय'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका है।

अब मनोयोगी और वचनयोगियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणानुसार पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।५२।।

पाँचों मनोयोगी व पाँचों वचनयोगी जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।५३।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मनोयोगी और वचनयोगी जीवों के केवलीसमुद्घात को छोड़कर छहों समुद्घात होते हैं। उनके उपपाद पद नहीं है, क्योंकि उनके केवल काययोग रहता है और अन्य योगों का अभाव पाया जाता है।

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां क्षेत्रकथननिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।
अधुना औदारिक-औदारिकमिश्रकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।५४।।

सव्वलोए।।५५।।

ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।५६।।

सव्वलोए।।५७।।

उववादं णत्थि।।५८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्येन काययोगिनः एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः स्वस्थान-समुद्घात-उपपादैश्च सर्वलोके संति। औदारिकमिश्रकाययोगिनश्चापि सर्वलोके संति। औदारिककाययोगिनोऽपि स्वस्थानापेक्षया समुद्घातैश्च सर्वलोके संति। तदेवोच्यते—स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिकपदैः सर्वलोके, सर्वत्र औदारिककाययोगिनो जीवाः अनन्ताः संति। विहारवत्स्वस्थानपदेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति, त्रसराशिं मुक्त्वान्यत्र विहाराभावात्।**

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनोयोगी और वचनयोगी जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए। अब औदारिक एवं औदारिकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।५४।।

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।५५।।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।५६।।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक में रहते हैं।।५७।।

औदारिककाययोगी जीवों के उपपाद पद नहीं होता है।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से काययोगी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद के साथ सर्वलोक में रहते हैं। औदारिकमिश्रकाययोगी जीव भी सर्वलोक में पाये जाते हैं। औदारिककाययोगी जीव भी स्वस्थान की अपेक्षा और समुद्घात के द्वारा सर्वलोक में रहते हैं। उसी के विषय में कहते हैं—स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा उक्त जीव सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि सर्वत्र अवस्थान के अविरोधी औदारिक काययोगी जीव अनन्त हैं। विहारवत्स्वस्थान पद की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में

वैक्रियिक-तैजस-दण्ड-समुद्घातगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। विशेषेण— तैजससमुद्घातगताःमानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे। औदारिककाययोगे कपाट-प्रतर-लोकपूरण-आहारपदानि न संति, औदारिककाययोगेन तेषां विरोधात्।

औदारिककाययोगे उपपादपदमपि नास्ति, अनेन योगेन उपपादस्य विरोधात्।

एवं द्वितीयस्थले औदारिक-तन्मिश्रयोगिनां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

संप्रति वैक्रियिक-तन्मिश्रयोगिनां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।५९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।६०।।

उववादो णत्थि।।६१।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।६२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।६३।।

और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि त्रसराशि को छोड़कर उक्त जीवों का अन्य एकेन्द्रिय जीवों में विहार का अभाव है। वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और दण्डसमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। विशेष इतना है कि तैजससमुद्घात को प्राप्त उक्त जीव मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। औदारिककाययोग में कपाटसमुद्घात, प्रतरसमुद्घात, लोकपूरणसमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद नहीं हैं, क्योंकि औदारिककाययोग के साथ उनका विरोध है अर्थात् इनके औदारिकमिश्रकाययोग रहता है।

औदारिक काययोग में उपपाद पद नहीं है, क्योंकि उस पद के साथ इसका विरोध पाया जाता है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में औदारिक एवं औदारिकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगी स्वस्थान और समुद्घात से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।५९।।

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।६०।।

वैक्रियिककाययोगियों के उपपाद पद नहीं होता है।।६१।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी स्वस्थान की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।६२।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।६३।।

समुग्घाद-उववादा णत्थि।।६४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः वैक्रियिककाय-योगिनः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति प्रधानीकृतज्योतिष्कराशित्वात्। मारणान्तिकसमुद्घातेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्याम-संख्यातगुणे संति। उपपादपदं अत्र नास्ति। अनेन योगेन उपपादस्य विरोधात्।**

देवराशिसंख्यातभागमात्रवैक्रियिकमिश्रकाययोगिनः संति। वैक्रियिकमिश्रयोगे समुद्घाताः उपपादमपि न संति।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिक-तन्मिश्रयोगिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना आहारकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो।।६५।।

आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो।।६६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानपरिणताः आहारकाययोगिमुनयः चतुर्णां लोकानाम-संख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे । मारणान्तिकसमुद्घातगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे,**

उनके समुद्घात व उपपाद पद नहीं होता है।।६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से वैक्रियिक काययोगी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ ज्योतिषी देवों की राशि की प्रधानता हैं। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक की अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ उपपाद पद नहीं है, क्योंकि वैक्रियिक काययोग के साथ उपपाद पद का विरोध है।

देवराशि के संख्यातवें भागमात्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हैं क्योंकि वैक्रियिकमिश्रकाययोग में समुद्घात और उपपाद पद भी नहीं होते हैं

इस प्रकार से तृतीय स्थल में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारककाययोगियों के क्षेत्र का निरूपण वैक्रियिककाययोगियों के क्षेत्र के समान है।।६५।।

आहारकमिश्रकाययोगियों का क्षेत्र वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के समान है।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र से परिणत आहारककाययोगी मुनि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे इति। आहारमिश्रकाययोगिनोऽपि चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे इति ज्ञातव्यं।

एवं चतुर्थस्थले आहारकमुनीनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

कार्मणकाययोगिनां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ?।।६७।।

सव्वलोए।।६८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**कार्मणकाययोगिनां जीवराशिः यद्यपि अनंतसर्वजीवराशेः असंख्यातभागमात्रः तथापि सर्वलोकेऽस्ति इति ज्ञातव्यं।**

एवं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनां प्राणिनां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः ।

आहारक मिश्रकाययोगी मुनि भी चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में आहारक मुनियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब कार्मणकाययोगियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।६७।।

कार्मणकाययोगी जीव सर्वलोक में रहते हैं।।६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कार्मणकाययोगियों की जीवराशि यद्यपि अनंतसर्वजीवराशि के असंख्यातवें भागमात्र है, फिर भी वे सर्वलोक में पाए जाते हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से पंचम स्थल में कार्मणकाययोग वाले जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नाम के छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां नवभिः सूत्रैः क्षेत्रानुगमे महाधिकारे वेदमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधवेदानां क्षेत्रकथनप्रमुखेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले वेदरहितानां महासाधूनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''अवगद'' इत्यादिसूत्रपंचकमिति पातनिका कथितास्ति ।

अधुना त्रिविधवेदसहितानां क्षेत्रकथनार्थं सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।६९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।७०।।

णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।७१।।

सव्वलोए।।७२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **स्त्रीवेदाः स्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगताः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे संति, प्रधानीकृत-देवीस्त्रीवेदराशित्वात्। मारणान्तिक-उपपादगताः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे,नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे।**

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम नामके महाधिकार में वेदमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों वेदों का क्षेत्र कथन करने की मुख्यता वाले ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में वेदरहित महासाधुओं का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''अवगद'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका कही गई है।

अब तीनों प्रकार के वेद सहित जीवों का क्षेत्र कथन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणा के अनुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।६९।।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।७०।।

नपुंसकवेदी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।७१।।

नपुंसकवेदी जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्त्रीवेदी जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ देवियों की स्त्रीवेदराशि प्रधान है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को प्राप्त स्त्रीवेदी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

एवं पुरुषवेदानामपि वक्तव्यं। विशेषेणात्र तैजस-आहारसमुद्घातौ स्तः, तयोर्वर्तमानाः जीवाः पुरुषवेदाः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे वर्तन्ते।

नपुंसकवेदिनो जीवाः स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादगताः सर्वलोके संति, आनन्त्यात्। वैक्रियिकसमुद्घातगताः तिर्यग्लोकस्यासंख्यातभागे, त्रसराशिग्रहणात्।

नपुंसकवेदाः एकेन्द्रियाः सर्वलोके तिलेषु तैलवत् व्याप्ताः संति इति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधवेदानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति अपगतवेदानां क्षेत्रप्ररूपणाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।७३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।७४।।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।७५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।।७६।।

उववादं णत्थि।।७७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **चतुर्णां लोकानामसंखेयभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्येयभागे तिष्ठन्ति, अत्र संख्यात-उपशामक-क्षपकजीवानां ग्रहणं वर्तते ।**

इसी प्रकार पुरुषवेदियों का क्षेत्र भी कहना चाहिए। यहाँ विशेष इतना है कि पुरुषवेदियों में तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद भी हैं। उन पदों में वर्तमान पुरुषवेदी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

नपुंसकवेदी जीव स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं। वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त जीव तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि यहाँ त्रसराशि का ग्रहण है।

नपुंसकवेदी एकेन्द्रिय जीव सर्वलोक में तिल में तेल के समान ठसाठस व्याप्त हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में तीनों वेदों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेदियों का क्षेत्र प्ररूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अपगतवेदी जीव स्वस्थान से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।७३।।

अपगतवेदी जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।७४।।

अपगतवेदी जीव समुद्घात की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।७५।।

अपगतवेदी जीव समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं।।७६।।

अपगतवेदी जीवों में उपपाद पद नहीं होता है।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अपगतवेदी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं, क्योंकि यहाँ संख्यात उपशामक और क्षपक जीवों का ग्रहण किया गया है।

मारणान्तिकसमुद्घातगताः उपशामकाः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। एवं दण्डगता अपि कपाटगताः अपि एवमेव। विशेषेण—तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे इति वक्तव्यं। प्रतरगताः लोकस्यासंख्यातेषु भागेषु, वातवलयेषु जीवप्रदेशाभावात्। लोकपूरणसमुद्घाते सर्वलोके, जीवप्रदेशैः अनवष्टब्धलोकप्रदेशाभावात्।

तत्रापगतवेदानां महासाधूनां उपपादं नास्ति, तत्रोत्पद्यमानजीवाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—द्रव्यवेदेन पुरुषा एव केचित् भाववेदेन स्त्रीवेदाः नपुंसकवेदा वा भवितुं शक्यन्ते त एव मोक्षं गच्छन्ति, त एव महामुनयः नवमगुणस्थानस्यापगतवेदादुपरि वेदरहिताः उपशामकाः क्षपकाः वा तस्मिन् भवेऽन्यस्मिन् भवे वा सिद्धयन्ति इति ज्ञात्वा सम्यग्दर्शनं दृढीकर्तव्यं, किंच सम्यग्दृष्टय एव द्रव्यपुरूषाः मोक्षाधिकारिणो भवन्ति।

एवं द्वितीयस्थले अपगतवेदानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः ।

मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उपशामक जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और अढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार दण्डसमुद्घात को प्राप्त केवली भगवान भी चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। कपाटसमुद्घात को प्राप्त जीवों का क्षेत्र भी इसी प्रकार है। विशेष इतना है कि वे तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए। प्रतरसमुद्घात को प्राप्त वे ही जीव लोक के असंख्यात बहुभागों में रहते हैं, क्योंकि इस अवस्था में वातवलयों में जीवप्रदेशों का अभाव रहता है। लोकपूरणसमुद्घात को प्राप्त केवली भगवान सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि जीव प्रदेशों से अनवष्टब्ध—अस्पर्शित लोकप्रदेशों का इस अवस्था में अभाव रहता है अर्थात् लोक के सम्पूर्ण प्रदेश उनके द्वारा स्पर्शित हो जाते हैं।

वहाँ वेदरहित महासाधुओं का उपपाद नहीं होता है, क्योंकि अपगतवेदियों में उत्पन्न होने वाले जीवों का अभाव पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि—द्रव्यवेद से जो पुरुष ही हैं, वे कदाचित् कोई यदि भाववेद से स्त्रीवेदी अथवा नपुंसकवेदी भी हैं, तो भी द्रव्यपुरुषवेदी ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। वे ही महामुनि नवमें गुणस्थान के ऊपर वेदरहित उपशामक अथवा क्षपक मुनिराज उसी भव में अथवा अगले भव में सिद्ध होते हैं यह जानकर अपने सम्यग्दर्शन को दृढ़ करना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दृष्टी द्रव्यपुरुषवेदी ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अपगतवेदियों का क्षेत्रनिरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामके द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ द्वाभ्यां स्थलाभ्यां सूत्रद्वयेन क्षेत्रानुगमे कषायमार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले कषायसहितानां जीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''कसाया'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले कषायरहितानां महामुनीनां क्षेत्रकथनत्वेन ''अकसाई'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

अधुना कषायसहितानां जीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो।।७८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपदैः सर्वलोकावस्थानं चतुर्विधकषायसहितानां जीवानां, वैक्रियिकाहारपदाभ्यां त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः। विशेषेण — अत्र तैजसाहारपदे स्तः, नपुंसकवेदे न स्तः अप्रशस्तत्वात्।**

एवं प्रथमस्थले क्रोधादिकषायसहितानां क्षेत्रनरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम् ।

संप्रति कषायरहितानां जीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

अकसाई अवगदवेदभंगो।।७९।।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम में कषायमार्गणा अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने हेतु ''कसाया'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में कषायरहित महामुनियों का क्षेत्र कथन करने वाला ''अकसाई' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कषायसहित जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु सूत्र अवतरित किया जाता है —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों का क्षेत्र नपुंसकवेदियों के समान है।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त चारों कषाय वाले जीव स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा सर्वलोक में अवस्थान से तथा वैक्रियिक और आहारकसमुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें व तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग से एवं ढाईद्वीप की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं। विशेषता यह है कि यहाँ तैजस और आहारक समुद्घातपद हैं, किन्तु अप्रशस्त होने से नपुंसकवेदियों में ये नहीं होते हैं।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में क्रोधादिककषायसहित जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब कषायरहित जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेत सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

अकषायी जीवों का क्षेत्र अपगतवेदियों के समान है।।७९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूक्ष्मकषायगुणस्थानादुपरि उपशान्तकषाय-क्षीणकषाय-सयोगिकेवलि-अयोगिकेवलिनां क्षेत्रं वेदरहितानां महामुनीनां क्षेत्रवत् ज्ञातव्यं।**

तात्पर्यमेतत्—क्रोधं क्षमया जेतव्यं, मानं मार्दवगुणेन, मायां सरलमनोवाक्काययोगेन आर्जवेन, लोभं च निर्लोभपरिणामेन शौचधर्मेण परिहृत्य अनादिनिधनदशलक्षणपर्वणि यद्भावितं निकटातीत-काले तदेव पुनः पुनः भावयितव्यं। उत्तमक्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्या-गाकिंचन्यब्रह्मचर्यनामान इमे दशधर्माः युगादिब्रह्मणा श्रीऋषभदेवभगवता प्रथमतीर्थकरेण युगादौ प्रतिपादिताः ततः प्रभृति द्वितीयतीर्थकराजितनाथादिवर्धमानपर्यन्तजिनेन्द्रदेवैः निरूपिताश्च अद्य प्रभृति वर्तन्ते इमे धर्माः, तान् सर्वान् सदा वंदामहे । तथा च—

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।[१]

एवं द्वितीयस्थले कषायविरहितानां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम् ।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम-षष्ठोऽधिकारः समाप्तः ।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्मकषाय नामक दशवें गुणस्थान से ऊपर उपशांत कषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवली और अयोगकेवली भगवन्तों का क्षेत्र वेद हित महामुनियों के क्षेत्र के समान जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—क्रोध कषाय को क्षमा से जीतना चाहिए, मानकषाय को मार्दवगुण से, माया कषाय को सरल मन-वचन-काय योगरूप आर्जव गुण से तथा लोभ कषाय को निर्लोभ परिणामरूप शौच धर्म से जीत करके अनादिनिधिन दशलक्षण पर्व में जिन दशधर्मों की भावना भाई जाती है, उनकी ही पुनः पुनः भावना करना चाहिए।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्यरूप ये दश धर्म हैं, इन्हें युग की आदि में युगादिब्रह्मा, श्री ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर भगवान ने प्रतिपादित किया था। तब से लेकर द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ से वर्धमानपर्यन्त सभी जिनेन्द्र भगवन्तों के द्वारा ये निरूपित किये गये हैं और आज तक ये धर्म उसी प्रकार चल रहे हैं, उन सभी धर्मों को हम नमस्कार करते हैं। कहा भी है—

श्लोकार्थ—जो धर्म सर्वसुखों की खान है, सर्वजन हितकारी है, उस धर्म को ज्ञानीजन धारण करते हैं। धर्म से ही मोक्षसुख की प्राप्ति होती है, उस धर्म के लिए मेरा नमस्कार है। इस संसार में प्राणियों के लिए धर्म के सिवाय दूसरा कोई मित्र नहीं है, जिस धर्म का मूल दया है, उस धर्म को मैं प्रतिदिन चित्त में धारण करता हूँ, हे धर्म! तुम मेरी रक्षा करो।।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का क्षेत्रकथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. वीरभक्ति से उद्धृत, श्लोक-७।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिःस्थलैः एकादशसूत्रैः क्षेत्रानुगमे ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः कथ्यते । तत्र प्रथमस्थले मत्यज्ञानि-श्रुताज्ञानि-विभंगज्ञानि-मनःपर्ययज्ञानिनां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''णाणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले मतिश्रुतावधिज्ञानिनां क्षेत्रप्रतिपादनपरत्वेन ''आभिणि-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं तृतीयस्थले केवलिज्ञानिनां क्षेत्रकथनप्रमुखत्वेन ''केवलणाणी'' इत्यादिसूत्रपंचकमिति समुदाय-पातनिका।

संप्रति कुमति-कुश्रुत-विभंग-मनःपर्ययज्ञानिनां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयवेदभंगो।।८०।।

विभंगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।८१।।

लोगस्ससंखेज्जदिभागे।।८२।।

उववादं णत्थि।।८३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च एकेन्द्रियादयः सर्वे जीवाः सर्वलोके संति। विभंगज्ञानिनो मनःपर्ययज्ञानिनश्च लोकस्य संख्यातभागे संति सामान्येन कथितं।**

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में ग्यारह सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम में ज्ञानमार्गणा नाम के सप्तम अधिकार का कथन प्रारंभ किया जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु ''आभिणि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में केवलज्ञानी भगवन्तों का क्षेत्रकथन करने वाले ''केवलणाणी'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कुमति-कुश्रुत, विभंगज्ञानी एवं मनःपर्ययज्ञानियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुवाद से मति अज्ञानी और श्रुतअज्ञानियों का क्षेत्र नपुंसकवेदियों के समान है।।८०।।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव स्वस्थान व समुद्घात से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।८१।।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।८२।।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवों के उपपाद पद नहीं होता है।।८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— कुमति और कुश्रुतज्ञानी एकेन्द्रिय आदि सभी जीव सर्वलोक में रहते हैं। विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवलोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं, ऐसा सामान्यरूप से कथन किया है।

विशेषेण कुअवधिज्ञानिनां क्षेत्रं कथ्यते — स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातगतास्त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणे संति, प्रधानीकृतदेवपर्याप्तराशित्वात्। मारणान्तिकसमुद्घातगता एवमेव। विशेषतया — तिर्यग्लोकादसंख्यातगुणे सन्तीति वक्तव्यं।

मनःपर्ययज्ञानिमहामुनीनां क्षेत्रमुच्यते — स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातगताः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपात् संख्यातभागे। मारणान्तिकसमुद्घातगताश्चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति इति।

विभंगज्ञानिनां मनःपर्ययज्ञानिनां च उपपादं नास्ति, अपर्याप्तकाले संभवाभावात्।

एवं प्रथमस्थले कुमतिकुश्रुतविभंग-मनःपर्ययज्ञानिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति त्रिविधज्ञानिनां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।८४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।८५।।

विशेषरूप से कुअवधिज्ञानियों का क्षेत्र कहा जा रहा है — स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात को प्राप्त विभंगज्ञानी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ देवों की पर्याप्तराशि प्रधान हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त विभंगज्ञानियों के क्षेत्र का प्ररूपण भी इसी प्रकार है। विशेष इतना है कि वे तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए।

अब मनःपर्ययज्ञानी महामुनियों का क्षेत्र कहते हैं — स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात को प्राप्त मनःपर्ययज्ञानी महामुनि चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात प्राप्त वे ही जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप के असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

विभंगज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियों के उपपाद नहीं है, क्योंकि अपर्याप्तकाल में इन दोनों ज्ञानों की संभावना नहीं पाई जाती है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में कुमति-कुश्रुत-कुअवधि और मनःपर्ययज्ञानियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के ज्ञानियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।८४।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।८५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**इमे मतिश्रुतावधिज्ञानिनः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादगताः एते चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे क्षेत्रे तिष्ठन्ति। एवं तैजसाहारपदयोः मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे तिष्ठन्ति।**

एवं द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं केवलिज्ञानिभगवतां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते —

केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।८६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।८७।।

समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।८८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।।८९।।

उववादं णत्थि।।९०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्वस्थान-विहारवत्स्वस्थानाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागं मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागं च मुक्त्वा उपरि स्पर्शनाभावात्। समुद्घातापेक्षया दंडगताश्चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। कपाटगतास्त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्ध-**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये मति-श्रुत-अवधिज्ञानी जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्व-स्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद को प्राप्त ये उपर्युक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात इन पदों की अपेक्षा मनुष्यक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में तीनों प्रकार के ज्ञानियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए। अब केवलज्ञानी भगवन्तों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

केवलज्ञानी भगवान स्वस्थान की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।८६।।

केवलज्ञानी भगवान स्वस्थान से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।८७।।

समुद्घात की अपेक्षा केवलज्ञानी कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।८८।।

समुद्घात की अपेक्षा केवलज्ञानी जीव लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं ?।।८९।।

केवलज्ञानियों के उपपाद पद नहीं होता है।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान और विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा चार लोकों के असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग को छोड़कर ऊपर स्पर्शन का अभाव पाया जाता है। दण्डसमुद्घात को प्राप्त केवलज्ञानी जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। कपाटसमुद्घात को प्राप्त केवलज्ञानी तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में

द्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। प्रतरगताः केवलिनः लोकस्यासंख्यातेषु भागेषु। लोकपूरणसमुद्घाते सर्वलोके तिष्ठन्ति — आत्मप्रदेशैः सर्वलोकं पूरयन्ति इति।

अपर्याप्तकाले केवलज्ञानाभावात् केवलिनां भगवतां उपपादं नास्ति इति ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले केवलिनां भगवतां क्षेत्रकथनप्रमुखत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैः संयममार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पंचविधसंयमिनां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं द्वितीयस्थले असंयमिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''असंजदा'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

अधुना संयमधारिणां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाई भंगो।।९१।।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभंगो।।९२।।

और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। प्रतर समुद्घात को प्राप्त केवलज्ञानी लोक के असंख्यात बहुभागों में रहते हैं। लोकपूरणसमुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक में रहते हैं अर्थात् अपने आत्मप्रदेशों से सम्पूर्ण लोक को पूरित कर लेते हैं।

अपर्याप्तकाल में केवलज्ञान का अभाव होने से केवली भगवन्तों के उपपादपद नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में केवली भगवन्तों का क्षेत्र कथन करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम अधिकार में पाँच प्रकार के संयमियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंयमियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''असंजदा'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका है।

अब संयमधारी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणानुसार संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवों का क्षेत्र अकषायी जीवों के समान है।।९१।।

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धि संयत और संयतासंयत जीवों का क्षेत्र मनःपर्ययज्ञानियों के समान है।।९२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सामान्येन संयमिनः यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताश्च अकषायिवत् क्षेत्रे तिष्ठन्ति इति सूत्रे कथितं तद् द्रव्यार्थिकनयापेक्षयैव, पर्यायार्थिकनयापेक्षयास्ति भेदः तदेवोच्यते—**

स्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-तैजसाहारसमुद्घातगताश्चतुर्णांलोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे। मारणांतिकसमुद्घातेन चतुर्णां लोकानां असंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्यासंख्यातगुणे। केवलिसमुद्घातगताः लोकस्यासंख्यातभागे, असंख्यातेषु भागेषु वा सर्वलोके वा । एवं यथाख्यातशुद्धिसंयतानां ज्ञातव्यं, विशेषण तु यथाख्यातसंयमिनां तैजसाहारपदे न स्तः।

परिहारशुद्धिसंयतानां तैजसाहारसमुद्घातौ न स्तः। सूक्ष्मसांपरायिकसंयतानां विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक पदानि न संति। संयतासंयतानामपि तैजसाहारकेवलिसमुद्घाताः न संति, उपपादमपि नास्ति।

एवं प्रथमस्थले पंचविधसंयमिनां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति असंयतानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते—

असंजदा णवुंसयभंगो।।९३।।

सिद्धान्तचितांमणिटीका—**इमे असंयताः प्रथमगुणस्थानादारभ्य चतुर्थगुणस्थानं यावत् भवन्ति, तथैव एकेन्द्रियजीवादारभ्य पंचेन्द्रियाः अपि भवन्ति। नरकेषु सर्वे नारका असंयता एव, देवगतौ सर्वेऽपि देवाः देव्यश्च असंयता एव। तिर्यक्षु असंज्ञिनो जीवाः सर्वे असंयता एव, मनुष्येषु चतुर्थगुणस्थानपर्यन्ताः असंयता**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य संयमी जीव तथा यथाख्यातविहारशुद्धि संयत जीव कषायरहित जीवों के सदृश क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा सूत्र में कहा गया है। यह कथन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से ही है, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उसमें जो भेद है, उसे बताते हैं—

स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात को प्राप्त संयत जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त उक्त जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। केवलिसमुद्घात को प्राप्त वे ही संयत जीव लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं। इसी प्रकार यथाख्याशुद्धिसंयत जीवों का क्षेत्र भी जानना चाहिए। विशेष इतना है कि उनके तैजस और आहारक पद नहीं होते हैं।

परिहारशुद्धि संयमियों के तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक संयमियों के विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपद नहीं हैं। संयतासंयतों के भी तैजस, आहारक और केवलीसमुद्घात नहीं हैं और उनके उपपाद पद भी नहीं होता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में पाँच प्रकार के संयमियों का क्षेत्र कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंयत जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

असंयत जीवों का क्षेत्र नपुंसकवेदी जीवों के समान है।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये असंयत जीव प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक होते हैं, उसी प्रकार से एकेन्द्रिय जीव से लेकर पंचेन्द्रिय जीव भी होते हैं। नरकों में सभी नारकी असंयत ही हैं, देवगति में सभी देव और देवियाँ असंयत ही हैं। तिर्यंचों में असंज्ञी जीव सभी असंयत ही होते हैं, मनुष्यों में

एव सन्ति। अतः एषां तैजसाहारकेवलिसमुद्घाताः न भवन्ति, वैक्रियिकसमुद्घाते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे एव तिष्ठन्ति।

एवं द्वितीयस्थले असंयतानां क्षेत्रकथनमुख्यत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेनसप्तभिः सूत्रैः क्षेत्रानुगमे दर्शनामार्गणानामनवमोऽधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं द्वितीयस्थले शेषत्रिविधदर्शनिनां क्षेत्रकथनमुख्यत्वेन ''अचक्खु-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका भवति।

संप्रति चक्षुर्दर्शनवतां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।।९४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।९५।।

चतुर्थ गुणस्थान तक सभी असंयत ही हैं। अतः इनके तैजस, आहारक और केवलीसमुद्घात नहीं होते हैं, वैक्रियिक समुद्घात में ये तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में ही रहते हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में असंयतों का क्षेत्र कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनियों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में शेष तीन प्रकार के दर्शनधारी जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले ''अचक्खु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चक्षुदर्शनी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी जीव स्वस्थान से और समुद्घात से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।९४।।

चक्षुदर्शनी जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।९५।।

उववादं सिया अत्थि, सिया णत्थि। लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि। जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडिखेत्ते ?।।९६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः चक्षुर्दर्शन-धारिणस्त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। तैजसाहार-पदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागे। मारणान्तिकपदेन त्रयाणां लोकानाम-संख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च तिष्ठन्ति।**

लब्ध्यपेक्षया उपपादपदेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणे च तिष्ठन्तीति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनसहितानां क्षेत्रकथनत्वेन चत्वारि सूत्राणि गतानि।

इदानीं अचक्षुरादिदर्शनवतां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो।।९८।।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।।९९।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।१००।।

चक्षुदर्शनी जीवों के उपपाद पद कथंचित् होता है और कथंचित् नहीं होता है। लब्धि की अपेक्षा उपपाद पद होता है किन्तु निर्वृत्ति की अपेक्षा नहीं होता है। यदि लब्धि की अपेक्षा उपपाद पद होता है तो उसकी अपेक्षा से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।९६।।

उपपाद की अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव लोक के असंख्यतावें भाग में रहते हैं।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों की अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पदों की अपेक्षा चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

लब्धि की अपेक्षा उपपाद पद से चक्षुदर्शनी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में और मनुष्य लोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन सहित जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुदर्शन आदि जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ —

अचक्षुदर्शनी जीवों का क्षेत्र असंयत जीवों के समान होता है।।९८।।

अवधिदर्शनियों का क्षेत्र अवधिज्ञानियों के समान है।।९९।।

केवलदर्शनियों का क्षेत्र केवलज्ञानियों के समान है।।१००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अचक्षुर्दर्शनवन्तो जीवाः प्रथमगुणस्थानादारभ्य द्वादशगुणस्थानवर्तिक्षीणकषायपर्यन्ताः भवन्ति। अवधिज्ञानिवत् अवधिदर्शनवन्तः, केवलज्ञानिवत् केवलज्ञानिनो भगवन्तो भवन्तीति ज्ञातव्यं।**

एवं द्वितीयस्थले अचक्षुरवधिकेवलदर्शनसहितानां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण षड्भिः सूत्रैः क्षेत्रानुगमे लेश्यामार्गणाधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधाशुभलेश्यावतां क्षेत्रकथनत्वेन ''लेस्सा-'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं द्वितीयस्थले तेजःपद्मलेश्यासहितानां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''तेउ-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु तृतीयस्थले शुक्ललेश्यानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''सुक्क-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति पातनिका सूचिता भवति।

इदानीं अशुभलेश्यावतां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असंजदभंगो।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अचक्षुदर्शन वाले जीव प्रथम गुणस्थान से लेकर बारहवें क्षीणकषायवर्ती गुणस्थान तक होते हैं। अवधिदर्शनी जीवों का क्षेत्र अवधिज्ञानियों के समान है तथा केवलदर्शनी भगवन्तों का क्षेत्र केवलज्ञानी भगवन्तों के समान होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी एवं केवलदर्शनी जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ के क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम में लेश्यामार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार की अशुभ लेश्या वाले जीवों का क्षेत्र कथन करने वाला ''लेस्सा'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में तेजो-पद्मलेश्या वाले जीवों का क्षेत्र कथन करने हेतु ''तेउ'' इत्यादि दो सूत्र हैं। आगे तृतीय स्थल में शुक्ललेश्यायुक्त जीवों का क्षेत्र बतलाने वाले ''सुक्क'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब अशुभलेश्या वाले जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीवों का क्षेत्र असंयतों के समान है।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका-एतास्तिस्रोऽपि लेश्याः प्रथमगुणस्थानाच्चतुर्थगुणस्थानपर्यंताः सन्ति, अतएव असंयतभंगवत् कथितं। तदेवोच्यते —

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपदैः एतेषां लेश्यावतां सर्वलोकेऽवस्थानं। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकपदाभ्यां त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणेऽवस्थानं च। एषां वैक्रियिकपदेन तिर्यग्लोकस्यासंख्यातभागेऽवस्थानमपि अत्राप्रधानं अस्ति।

एवं त्रिविधाशुभलेश्याधारिणां क्षेत्रकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

तेजःपद्मलेश्यासहितानां जीवानां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि-खेत्ते।।१०२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **पीतलेश्यापेक्षया स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः त्रिलोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति, प्रधानीकृतदेवराशित्वात्।**

पद्मलेश्यावतां स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदनाकषायपदैः त्रिलोकानामसंख्यातभागे,

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये तीनों ही अशुभ लेश्याएँ प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थगुणस्थान तक होती हैं, अतएव इनका क्षेत्र कथन असंयतों के भंग के समान कहा गया है। उसको कहते हैं —

स्वस्थान-स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद, इन पदों की अपेक्षा सर्वलोक में उनका अवस्थान पाया जाता है तथा विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में एवं ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में अवस्थान है। वैक्रियिकसमुद्घात की अपेक्षा उक्त जीव तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं। किन्तु वह यहाँ अप्रधान है।

इस प्रकार से तीनों अशुभ लेश्याधारियों का क्षेत्र कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब तेज-पद्म लेश्या सहित जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तेजोलेश्या वाले और पद्मलेश्या वाले जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं।।१०२।।

उक्त दो लेश्या वाले जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।१०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पीतलेश्या की अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक पदों से सहित जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ देवराशि की प्रधानता है।

पद्मलेश्या वाले जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों

तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सादूर्ध्वद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे निवसंति, प्रधानीकृततिर्यग्राशित्वात्। वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादपदैः चतुर्लोकानामसंख्यातभागे सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति, सनत्कुमार-माहेन्द्रजीवानां प्राधान्यात्।

एवं द्वितीयस्थले पीत-पद्मलेश्यावतोः क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं शुक्ललेश्याधारिणां क्षेत्रनिरूपणार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सुक्कलेस्सिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१०४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।१०५।।

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र लेश्यायां उपपादजीवाः संख्याता एव, मनुष्येभ्यश्चैवागमनात्। वेदना-कषाय-वैक्रियिक-दण्डसमुद्घात-मारणान्तिकपदैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे सन्ति। तैजसाहारयोरपि एवमेव, विशेषेण तु मानुषलोकस्य संख्यातभागे इति वक्तव्यं। शेषकेवलिपदानि सुगमानि सन्ति।**

तात्पर्यमेतत् — अशुभलेश्याः विहाय शुभलेश्या विधातव्या महता प्रयत्नेन भवद्भिः। किंच — शुभलेश्या-

---

से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ तिर्यंचराशि प्रधान है। वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि यहाँ सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प के देवों की प्रधानता है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में पीत और पद्मलेश्या वाले जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ललेश्याधारी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

शुक्ललेश्या वाले जीव स्वस्थान और उपपाद पदों से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१०४।।

शुक्ललेश्या वाले जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।१०५।।

शुक्ललेश्या वाले जीव समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ लेश्या में उपपादगत जीव असंख्यात ही हैं, क्योंकि मनुष्यों में से ही यहाँ जीवों का आगमन होता है। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, केवलीसमुद्घात और मारणान्तिक पदों की अपेक्षा चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदों के भी क्षेत्र का निरूपण करना चाहिए। विशेष इतना है कि इन पदों की अपेक्षा उक्त जीव मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग में रहते हैं, ऐसा कहना चाहिए। शेष केवलिसमुद्घात — कपाट, प्रतर और लोकपूरण पद सुगम हैं।

तात्पर्य यह है कि — अशुभ लेश्याओं को छोड़कर सभी को प्रयत्नपूर्वक शुभलेश्याओं को ग्रहण करना

भिरेवोत्थानं जीवानां न चाशुभलेश्यापरिणतानां। अतः पीतपद्मलेश्याभ्यां परिणम्याग्रे शुक्ललेश्यया शुक्लध्यानमवलम्ब्य केवलज्ञानज्योतिः प्रकटयितव्यमिति।

एवं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यावतां क्षेभनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां क्षेत्रानुगमे भव्यमार्गणाधिकारः कथ्यते—तत्र प्रथमस्थले भव्याभव्य-जीवानां प्रश्नापेक्षया क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''भविया-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले भव्याभव्यजीवानां क्षेत्रापेक्षया उत्तरनिरूपणत्वेन ''सव्व-'' इत्यादिसूत्रमेकं इति पातनिका सूचिता भवति।

संप्रति भव्याभव्यजीवानां क्षेत्रव्यवस्थायाः ज्ञातुं प्रश्नरूपेण सूत्रमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**भव्यमार्गणायां भव्यसिद्धजीवाः अभव्यसिद्धजीवाश्च स्वस्थानापेक्षया समुद्घातेन**

चाहिए, क्योंकि शुभ लेश्याओं से ही जीवों का उत्थान होता है और अशुभ लेश्या से परिणत जीवों का उत्थान नहीं हो पाता है। अतः पीत-पद्म लेश्यारूप भावों से परिणत होकर शुक्ललेश्या के द्वारा शुक्लध्यान का अवलंबन लेकर हमें केवलज्ञानज्योति को प्रकट करना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में शुक्ललेश्या वाले जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा क्षेत्रानुगम में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में प्रश्न की अपेक्षा भव्य और अभव्य जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''भविया'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में भव्य-अभव्य जीवों का क्षेत्र की अपेक्षा उत्तर निरूपण करने वाला ''सव्व' इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब भव्य और अभव्य जीवों की क्षेत्र व्यवस्था को जानने हेतु प्रश्न रूप से एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१०७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— भव्यमार्गणा में भव्यसिद्ध जीव और अभव्यसिद्ध जीव स्वस्थान की

उपपादेन च कियति क्षेत्रे तिष्ठन्ति ? इति आचार्यश्रीभूतबलिदेवेन प्रश्नापेक्षया सूत्रं रचितमत्र।

एवं प्रथमस्थले भव्याभव्यजीवक्षेत्रज्ञापनार्थं प्रश्नरूपेण सूत्रमेकं गतं।

अधुना उभयसिद्धजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं उत्तररूपेण सूत्रमवतार्यते —

सव्वलोगे।।१०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादैः अभव्या जीवाः सर्वलोके तिष्ठंति, आनन्त्यात्। इमे अभव्याः विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकपदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे।**

कुतः ?

बंधसंबंधि-अल्पबहुत्वसूत्रात् ज्ञायते। तदेवोच्यते —''सव्वत्थोवा धुवबंधगा, सादियबंधगा असंखेज्जगुणा, अणादियबंधगा असंखेज्जगुणा, अद्धुवबंधगा विसेसाहिया धुवबंधगेणूणसादियबंधगेणेत्ति ''तसरासिमस्सिदूण वुत्तबंधप्पाबहुगसुत्तादो णज्जदे।।[१]''

अतः त्रसकायिकेषु अभव्यसिद्धजीवाः पल्योपमस्यासंख्यातमात्राः सन्ति।

कथमेतज्ज्ञायते ?

अपेक्षा समुद्घात से और उपपाद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ? ऐसा आचार्य श्री भूतबली देव ने प्रश्न की अपेक्षा यहाँ सूत्र को रचा है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के जीवों का क्षेत्र निरूपण बतलाने हेतु प्रश्नरूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब उभयसिद्ध जीवों का क्षेत्र बतलाने हेतु उत्तररूप से एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

भव्यसिद्धिक व अभव्यसिद्धिक जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।१०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा अभव्यसिद्धिक जीव सर्वलोक में रहते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं। ये अभव्यजीव विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

शंका—यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान—यह बात बंध संबंधी अल्पबहुत्व सूत्र से जाना जाता है, उसी को कहते हैं—ध्रुवबंधक जीव सबसे स्तोक हैं, सादि बन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं, अनादि बंधक जीव असंख्यातगुणे हैं और अध्रुवबन्धक जीव, ध्रुवबंधकों से रहित सादि बंधकों के प्रमाण से विशेष अधिक हैं, इस प्रकार त्रसराशि का आश्रय लेकर कहे गये बंधसंबंधी अल्पबहुत्वानियोगद्वार के सूत्र से जाना जाता है।

अतः त्रसकायिकों में अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि त्रसकायिकों में अभव्यसिद्धिक जीव पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र ही हैं ?

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका समन्वित) पु. ७, पृ. ३६०।

पल्योपमस्य असंख्यातभागमात्रत्रससादिकबंधकेभ्यः त्रसध्रुवबंधकानां असंख्यातगुणहीनत्वस्यान्यथानुपपत्तेः। भव्यजीवानां क्षेत्रप्ररूपणा प्रथमगुणस्थानादारभ्य चतुर्दशगुणस्थानपर्यन्ताः पूर्ववद् वेदितव्या।

एवं द्वितीयस्थले भव्याभव्यजीवक्षेत्रप्ररूपणत्वेन उत्तररूपेण एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिरधिकारैः अष्टभिः सूत्रैः सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले वेदक-उपशम-सासादनसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रकथनत्वेन ''वेदग'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं तृतीयस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''सम्मामिच्छा'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति पातनिका।

अधुना सम्यक्त्वमार्गणायां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।१०९।।

समाधान — क्योंकि यदि ऐसा न माना जाये, तो पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र त्रस सादिबंधकों की अपेक्षा त्रस ध्रुवबंधकों के असंख्यातगुणहीनता बन नहीं सकती है।

भव्यसिद्धिक जीवों की क्षेत्र प्ररूपणा प्रथम गुणस्थान से प्रारंभ करके चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में भव्य और अभव्य जीवों की क्षेत्रप्ररूपणा करने हेतु उत्तररूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब तीन अधिकारों में आठ सूत्रों के द्वारा सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में वेदक-उपशम और सासादन सम्यग्दृष्टियों का क्षेत्रकथन करने हेतु 'वेदग'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र बतलाने वाले ''सम्मामिच्छा'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि स्वस्थान और उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१०९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।११०।।

समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन सम्यग्दृष्टयः क्षायिकसम्यग्दृष्टयश्च स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-उपपादेन चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति, पल्योपमस्यासंख्येयभागमात्रराशित्वात्। वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकैः सम्यग्दृष्टयः क्षायिकसम्यग्दृष्टयश्च चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणे। तैजसाहार-केवलिसमुद्घातगतानां पूर्ववद् वेदितव्यं।**

एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टीनां क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां च क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति वेदकादिजीवानां त्रिविधानां क्षेत्रनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।११२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।११३।।

सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।११०।।

सम्यग्दृष्टि व क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव समुद्घात की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं।।१११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और उपपादपद से चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं, क्योंकि उक्त जीवराशि पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र है। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदों की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव चार लोकों के असंख्यातवें भाग में व मानुषक्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार तैजससमुद्घात, आहारकसमुद्घात और केवलीसमुद्घात वाले मुनि एवं भगवन्तों के क्षेत्र का प्रमाण पूर्ववत् जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में सामान्य सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का क्षेत्रनिरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टि आदि जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।११२।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा असंख्यात बहुभागों में अथवा सर्वलोक में रहते हैं।।११३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमः। उपशमसम्यग्दृष्टिषु मारणान्तिकोपपादपदस्थितजीवाः संख्याताः एव।**

एवं द्वितीयस्थले वेदक-उपशम-सासादनसम्यग्दृष्टीनां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टिजीवक्षेत्रकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।।।११४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।११५।।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सम्यग्मिथ्यादृष्टयः स्वस्थानस्वस्थानविहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति।**

सामान्येन मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रमसंयतवत् ज्ञातव्यं, विशेषेण तु गुणस्थानव्यवस्था कथयितव्या।

एवं तृतीयस्थले सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां क्षेत्रकथनमुख्यत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। उपशमसम्यग्दृष्टियों में मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों में स्थित जीव संख्यात ही होते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थान की अपेक्षा कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।११४।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थान से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।।११५।।

मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र असंयत जीवों के समान है।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से चार लोकों के असंख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

सामान्य से मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र असंयत जीवों के समान जानना चाहिए। विशेषरूप से गुणस्थान व्यवस्था को कहना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का क्षेत्र कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः संज्ञिमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''सण्णि'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले असंज्ञिनां क्षेत्रप्रतिपादनत्वेन ''असण्णी'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका।

इदानीं संज्ञिजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि-खेत्ते ?।।११७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।११८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः संज्ञिनो जीवाः समनस्काः पंचेन्द्रिया नारकाः तिर्यञ्चो मनुष्याः देवाश्च सर्वे त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति। एवं मारणान्तिकोपपादेष्वपि वक्तव्यं। तिर्यग्लोकाद-संख्यातगुणे इति विशेषो ज्ञातव्यः।**

एवं प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु ''सण्णि'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने वाले ''असण्णी'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संज्ञी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपादपद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।११७।।

संज्ञी जीव उक्त पदों से लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं ?।।११८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से संज्ञी जीव तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। इसी प्रकार मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों के विषय में भी कहना चाहिए। तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं ऐसा विशेषरूप से जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का क्षेत्रनिरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इदानीं असंज्ञिजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रद्वयं अवतार्यते —

असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।।११९।।

सव्वलोगे।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादैः असंज्ञिनो जीवाः सर्वलोके सन्ति। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकपदाभ्यां त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे। विशेषेण वैक्रियिकपदेन तिर्यग्लोकस्यासंख्यातभागे सन्ति।**

एवं द्वितीयस्थलेऽसंज्ञिजीवक्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशाधिकारः समाप्तः।

अब असंज्ञी जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

असंज्ञी जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।११९।।

असंज्ञी जीव उक्त पदों से सर्वलोक में रहते हैं।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से असंज्ञी जीव सर्वलोक में रहते हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं। विशेष इतना है कि वैक्रियिक पद की अपेक्षा तिर्यग्लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत्प्रथमस्थले आहारकजीवानां क्षेत्रनिरूपणत्वेन ''आहारा-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारजीवानां क्षेत्रकथनमुख्यत्वेन ''अणाहारा'' इत्यादिना द्वे सूत्रे इति पातनिका सूचिता भवति।

संप्रति आहारकजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि-खेत्ते ?।।१२१।।

सव्वलोगे।।१२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपदैः सर्वलोके सन्ति, आनन्त्यात्। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकपदाभ्यां त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागे, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणे तिष्ठन्ति।**

एवं प्रथमस्थले आहारकजीवानां क्षेत्रप्ररूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इदानीं अनाहारजीवानां क्षेत्रप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अणाहारा केवडिखेत्ते ?।।१२३।।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने हेतु "आहारा" इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों के क्षेत्र कथन की मुख्यता वाले "अणाहारा" इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदाय पातनिका सूचित की गई है।

अब आहारक जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

आहारमार्गणानुसार आहारक जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पद से कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१२१।।

आहारक जीव उक्त पदों से सर्व लोक में रहते हैं।।१२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से आहारक जीव सर्व लोक में रहते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग में और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों का क्षेत्र प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों का क्षेत्र बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अनाहारक जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं ?।।१२३।।

सव्वलोए।।१२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**विग्रहगतौ जीवा अनाहारका एव। ''एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकाः[१]'' इति सूत्रात्। इमे जीवाः सर्वलोके सन्ति, आनन्त्यात्।**

कश्चिदाह—अत्र भवस्य प्रथमसमयेऽवस्थितानां उपपादं भवति, द्वितीयादिद्विसमययोः स्थितानां स्वस्थानं भवति। इति द्वयोः पदयोः लभ्यमानयोः किमर्थं तौ द्वौ पदौ नोक्तौ ?

तस्य समाधानं क्रियते—न, तत्र क्षेत्रभेदानुपलंभात्।

एवं द्वितीयस्थले अनाहारजीवक्षेत्रनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमनाम षष्ठे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अस्य क्षेत्रानुगमस्योपसंहारः क्रियते—एषु त्रिषु लोकेषु असंख्यातप्रदेशसमन्वितेषु इमे जीवा सर्वत्र भ्राम्यन्ति। मंदरमेरु[२]पर्वतादधः अष्टप्रदेशान् मुक्त्वा सर्वत्र एकोऽपि प्रदेशो नावशिष्टः यत्र मया जन्म न गृहीतं अतोऽधुना लोकाग्रभागं गन्तुमिच्छया अस्मिन् बृहत्कल्पद्रुममहामण्डलविधानावसरे चतुर्विंशति-

---

अनाहारक जीव सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।।१२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विग्रह गति में जीव अनाहारक ही होते हैं। ''एक-दो अथवा तीन समय तक जीव अनाहारक होते हैं'' इस सूत्र वचन के अनुसार अनाहारक जीव विग्रहगति में एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक होते हैं। ये जीव सम्पूर्ण लोक में रहते हैं, क्योंकि ये अनन्त होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

यहाँ भव के प्रथम समय से अवस्थित जीवों के उपपाद होता है और द्वितीयादिक दो समयों में स्थित जीवों के स्वस्थान पद होता है। इस प्रकार दो पदों की प्राप्ति होने पर किसलिए उन दो पदों को यहाँ नहीं कहा ?

इसका समाधान करते हैं कि—नहीं, क्योंकि उनमें क्षेत्रभेद नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में क्षेत्रानुगम नामके छठे महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का क्षेत्र निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस क्षेत्रानुगम का उपसंहार किया जाता है—असंख्यात प्रदेश समन्वित इन तीनों लोकों में ये जीव सर्वत्र भ्रमण करते हैं। मंदरमेरु—सुमेरु पर्वत के नीचे आठ प्रदेशों को छोड़कर शेष सभी जगह एक भी प्रदेश ऐसा नहीं है, जहाँ मैंने जन्म न ग्रहण किया हो, अतः अब लोक के अग्रभाग पर (सिद्धशिला पर) जाने की इच्छा से इस वृहत् कल्पद्रुम महामण्डल विधान (चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान) के अवसर पर (अक्टूबर १९९७ में) यही कामना है कि चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों के

---

१. तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय-२, सूत्र ३०। २. सुदर्शनमेरु।

समवसरणमण्डलरचनासु विराजमानाः षण्णवतिजिनप्रतिमाः चतुर्विंशतितीर्थकराणां मह्यं कल्पद्रुमवत्फलं प्रयच्छन्तु। अस्यां दिल्लीराजधान्यां भारतदेशे संपूर्णे विश्वे चापि सर्वभाक्तिकानां अत्र स्थापनानिक्षेपेण पूजायां उपविष्टानां भरतादिचक्रवर्तिनां महामण्डलीक-मण्डलीक-महाराजाधिराजानां जिनधर्मानुयायिनां सर्वधर्मनिष्ठानां जनानां मंगलं कुर्वन्तु, सर्वत्र क्षेमं सुभिक्षं आरोग्यं च वितरन्तु, शांतिं तुष्टिं पुष्टिं च कुर्वन्तु, देशस्य पर्यावरणशुद्धिं चापि कुर्वन्तु इति भाव्यतेऽस्माभिरस्मिन् विजयादशमीदिवसे लोकविश्रुते।

जिनधर्मोऽयं जयतुतराम्।

समवसरणभूमिं श्रद्धयानम्य मूर्ध्ना। त्रिभुवनगुरुनाथं तीर्थकर्तारमाद्यम्।।
अनवधिगुणरत्नं देवदेवं त्रिसंध्यम्। निरुपमसुखमाप्तं नौम्यहं स्वात्मसिद्ध्यै।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्यान्तर्गते श्रीमद्भूतबलिसूरिविरचित-क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीचारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर-महामुनिः तस्य पट्टाचार्यः श्रीवीरसागरसूरिः तस्य शिष्याजंबूद्वीप-रचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणि-टीकायां चतुर्विंशत्यधिकशतसूत्रैः क्षेत्रानुगमो नाम षष्ठो महाधिकारः समाप्तः।

समवसरण मण्डल की रचना में विराजमान चौबीसों तीर्थंकरों की ९६ प्रतिमाएँ मुझे कल्पवृक्ष के समान फल प्रदान करें। ये सभी तीर्थंकर भगवान इस राजधानी दिल्ली में, सम्पूर्ण भारत वर्ष में एवं पूरे विश्व में समस्त भाक्तिकों को, इस मण्डल विधान की पूजन में भाग ले रहे स्थापना निक्षेप से पूजन में भाग ले रहे भरत आदि चक्रवर्तियों को, महामण्डलीक-मण्डलीक-महाराजा-राजागण, जिनधर्म के अनुयायी सभी धर्मनिष्ठ श्रावक-श्राविकाओं के लिए मंगलकारी होवें। सर्वत्र क्षेम-सुभिक्ष और आरोग्यता का संचार होवे, शांति-तुष्टि और पुष्टि करें, देश के पर्यावरण की शुद्धि होवे, ऐसी आज लोकप्रसिद्ध विजयादशमी के दिन इस टीका को लिखते हुए मेरी भावना है। यह शाश्वत जिनधर्म सदैव जयशील होवे।

श्लोकार्थ—समवसरण की भूमि को श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाकर नमन करके प्रथम तीर्थंकर, त्रिभुवन के गुरु, असीमित गुणरत्न के भण्डार, देवों के देव भगवान आदिनाथ जो कि अनुपम सुख को प्राप्त कर चुके हैं, उनको मैं स्वात्मसिद्धि के लिए तीनों कालों में नमस्कार करती हूँ।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के अन्तर्गत श्रीभूतबली आचार्य विरचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्रीवीरसेनाचार्य कृत धवलाटीका प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर महामुनि के प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में एक सौ चौबीस सूत्रों में निबद्ध क्षेत्रानुगम नाम का छठा महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ स्पर्शनानुगमो सप्तमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

जिनपतयस्तत्प्रतिमास्तदालयास्तन्निषद्यकाः स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम्[१]।।१।।

त्रैलोक्ये सर्वश्रेष्ठतीर्थकरभगवतां कल्पद्रुममहापूजाविधिना चक्रवर्तिनो महापूजां कुर्वन्ति तेभ्यस्तीर्थ-करेभ्यो नित्यं मे नमो नमः। किंच—तीर्थकरभगवत्सदृशं पुण्यं चक्रवर्तिसदृशं वैभवं चास्मिन् जगति कस्यापि नास्ति।

अथ षट्खंडागमस्य द्वितीयखण्डे चतुर्दशभिः अधिकारैः एकोनाशीत्यधिकद्विशतसूत्रैः स्पर्शनानुगमो सप्तमो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावद् गतिमार्गणायां अष्टचत्वारिंशत्सूत्राणि। द्वितीयस्यामिन्द्रियमार्गणायां एकविंशतिसूत्राणि। तृतीयकायमार्गणायां एकोनत्रिंशत्सूत्राणि। चतुर्थे योगमार्गणाधिकारे त्रिंशत्सूत्राणि। पंचमे वेदमार्गणाधिकारे अष्टादशसूत्राणि। षष्ठे कषायाधिकारे द्वे सूत्रे। सप्तमज्ञानमार्गणायां विंशतिसूत्राणि। अष्टमे संयममार्गणाधिकारे नव सूत्राणि। नवमे दर्शनाधिकारे पंचदश सूत्राणि। दशमे लेश्यामार्गणाधिकारे चतुर्विंशतिसूत्राणि। एकादशे भव्याधिकारे सूत्रद्वयं। द्वादशे सम्यक्त्वमार्गणाधिकारे षट्चत्वारिंशत्सूत्राणि। त्रयोदशे संज्ञिमार्गणाधिकारे एकादशसूत्राणि। चतुर्दशे आहाराधिकारे चत्वारि सूत्राणि इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ स्पर्शनानुगम नामक सातवाँ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ— श्री जिनेन्द्र भगवान, उनकी प्रतिमाएँ, उनके मंदिर और उनके निषद्यास्थल ये चारों ही भव्यप्राणियों के संसारभ्रमण को नष्ट करने में हेतु होवें, यही प्रार्थना है।।१।।

तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ तीर्थंकर भगवान् की महापूजा चक्रवर्ती राजागण कल्पद्रुम महापूजा विधि से करते हैं, उन सभी तीर्थंकर भगवान को मेरा पुनः पुनः नमस्कार होवे। क्योंकि इस संसार में तीर्थंकर भगवान के सदृश पुण्य और चक्रवर्ती के सदृश वैभव किसी का भी नहीं होता है।

अब इस षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीयखण्ड में चौदह अधिकारों में दो सौ उन्यासी सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम नाम का सातवाँ महाधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम गतिमार्गणा में अड़तालीस सूत्र हैं। द्वितीय इन्द्रियमार्गणा में इक्कीस सूत्र हैं। तृतीय कायमार्गणा में उन्नीस सूत्र हैं। चतुर्थ योगमार्गणा में तीस सूत्र हैं। पाँचवें वेदमार्गणा अधिकार में अट्ठारह सूत्र हैं। छठे कषायमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। सातवें ज्ञानमार्गणा अधिकार में बीस सूत्र हैं। आठवें संयममार्गणा अधिकार में नौ सूत्र हैं। नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में पन्द्रह सूत्र हैं। दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में चौबीस सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में छियालिस सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञीमार्गणा अधिकार में ग्यारह सूत्र हैं और चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

---

१. नंदीश्वरभक्ति—श्री पूज्यपादाचार्यकृत।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

तत्र प्रथमतः गतिमार्गणायां चतुर्भिःस्थलैः अष्टचत्वारिंशत्सूत्रैः स्पर्शनानुगमे गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः कथ्यते। अस्यां नरकगतौ प्रथमस्थले नारकाणां स्पर्शनकथनत्वेन ''फोसणाणुगमेण'' इत्यादिना एकादश सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले तिर्यग्गतौ तिरश्चां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिषट्सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले मनुष्यगतौ स्पर्शनप्रतिपादनपरत्वेन ''मणुस'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले देवानां स्पर्शनप्ररूपणत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिना चतुर्विंशतिसूत्राणि इति पातनिका कथिता।

इदानीं नरकगतौ नारकाणां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रैकादशकमवतार्यते —

फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएहि[1] सत्थाणेहि केवडि-खेत्तं फोसिदं ?।।१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२।।

समुग्घादेण उववादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।४।।

छच्चोद्दसभागा वा देसूणा।।५।।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

यहाँ सर्वप्रथम गतिमार्गणा में चार स्थलों में अड़तालिस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार कहा जा रहा है। इसमें नरकगति में प्रथम स्थल में नारकियों का स्पर्शन कहने वाले ''फोसणाणुगमेण'' इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में तिर्यञ्चगति में तिर्यञ्चों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में मनुष्यगति में स्पर्शन का प्रतिपादन करने वाले ''मणुस'' इत्यादि सात सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थल में देवों का स्पर्शन प्ररूपित करने वाले ''देवगदीए'' इत्यादि चौबीस सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई है।

अब नरकगति में नारकियों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु ग्यारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

स्पर्शनानुगम से गतिमार्गणानुसार नरकगति में नारकी जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१।।

नारकियों द्वारा स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२।।

नारकियों के द्वारा समुद्घात व उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।३।।

नारकियों के द्वारा उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट हैं।।४।।

अथवा उक्त नारकियों द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है।।५।।

---

१. 'णेरइया' इति पाठांतरं।

पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाण-समुग्घाद-उववादपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७।।

विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९।।

समुदग्घाद-उववादेहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो एग-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दसभागा वा देसूणा।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। षट्पृथिवीनां नारकाणां वेदनाकषाय-वैक्रियिकपदपरिणतानां अतीतकालापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागः स्पृष्टः। किन्तु वर्तमानकालापेक्षया एषामेव नारकाणां वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादपदैः परिणतानां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च क्षेत्रं स्पृष्टं। अतीतकालापेक्षया मारणान्तिक-उपपादपदाभ्यां यथाक्रमेण चतुर्दशभागेषु एक-द्वि-त्रि-चतुः-पंच-षट्भागाः स्पृष्टाः भवन्ति द्वितीयादिपृथिवीगतनारकाणामिति। किंच-**

प्रथम पृथिवी में नारकी जीवों के द्वारा स्वस्थान समुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।६।।

प्रथम पृथिवी के नारकियों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।७।।

द्वितीय से लेकर सप्तम पृथिवी तक के नारकियों के द्वारा स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट हैं ?।।८।।

उपर्युक्त नारकियों द्वारा स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।९।।

उक्त नारकियों के द्वारा समुद्घात व उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१०।।

उक्त नारकियों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा चौदह भागों में से कुछ कम क्रमशः एक, दो, तीन, चार पाँच और छह भाग स्पृष्ट है।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सरल है। छह पृथिवी के नारकियों द्वारा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से परिणत उक्त नारकियों के द्वारा अतीतकाल की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। किन्तु वर्तमान काल की अपेक्षा छह पृथिवियों के नारकियों के द्वारा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से परिणत होकर चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। अतीतकाल की अपेक्षा मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदों से द्वितीयादि छह पृथिवियों के नारकियों के द्वारा यथाक्रम से

तिरश्चां नारकाणां चातीतकाले सर्वदिशाभ्यः आगमनगमनसंभवात्[१]।

एवं प्रथमस्थले नारकाणां स्पर्शनकथनमुख्यत्वेन एकादश सूत्राणि गतानि।

इदानीं तिर्यग्गतौ तिरश्चां स्पर्शनप्रतिपादनार्थं सूत्रषट्कमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१२।।

सव्वलोगो।।१३।।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१४।।

लोगस्स असंखेज्जदि भागो।।१५।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वेषां तिरश्चां सर्वलोकः क्षेत्रं स्पृष्टं भवति।**

कुछ कम चौदह भागों में से एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि तिर्यंच व नारकियों का अतीतकाल में सब दिशाओं से आगमन और गमन संभव है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में नारकियों का स्पर्शन बतलाने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब तिर्यंचगति में तिर्यंचों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१२।।

तिर्यंच जीव उक्त पदों से सर्व लोक स्पर्श करते हैं।।१३।।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेद्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों के द्वारा स्वस्थान से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१४।।

उपर्युक्त चार प्रकार से तिर्यंचों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।१५।।

उक्त तीन प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के द्वारा समुद्घात व उपपाद पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१६।।

उपर्युक्त तिर्यंचों के द्वारा उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से एकेन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रियपर्यन्त सभी तिर्यंचों द्वारा सर्वलोक क्षेत्र स्पृष्ट होता है।

---

१. षट्खण्डागम धवलाटीकासमन्वित पु. ७, पृ. ३७४।

कश्चिदाह — लवणसमुद्र-कालोदसमुद्र-स्वयंभूरमणसमुद्रविरहितासंख्यातसमुद्रेषु अविहरमाणानां त्रसानामस्तित्वं कथं भवति ?

आचार्यः प्राह — नैतद् वक्तव्यं, तत्र पूर्ववैरिणां देवानां प्रयोगेन त्रसानां तिरश्चां विहारे — आगमने विरोधाभावात्[1]।

भोगभूमिप्रतिभागरूपद्वीपानामन्तराले स्थितेषु असंख्यातसमुद्रेषु स्वस्थानपदस्थिताः तिर्यञ्चो न सन्ति।

विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदपरिणतैः त्रिविधपंचेन्द्रियतिर्यग्भिः त्रिलोकानाम-संख्यातभागक्षेत्रं, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागक्षेत्रं सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणक्षेत्रं च स्पृष्टं, मित्रामित्रदेवानां वशेन एतेषां सर्वद्वीपसमुद्रेषु संचरणं प्रति विरोधाभावात्[2]।

मारणान्तिक-उपपादपदाभ्यां इमे तिर्यञ्चस्त्रिविधाः अतीतकाले सर्वलोकं स्पृशन्ति।

कश्चिदाशंकते — लोकनाल्याः बहिः त्रसकायिकानां सर्वकालसंभवाभावात् सर्वलोकः स्पृष्टः। इति वचनं न युज्यते ?

आचार्यदेवः प्राह — नैष दोषः, मारणान्तिक-उपपादपरिणतत्रसजीवान् मुक्त्वा शेषत्रसानां बहिः अस्तित्वप्रतिषेधात्।

स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषायपदपरिणतैः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तजीवैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च क्षेत्रं स्पृष्टं।

यहाँ कोई शंका करता है — लवणसमुद्र, कालोदधि, स्वयंभूरमण समुद्र से रहित असंख्यात समुद्रों में विहार नहीं करने वाले त्रस जीवों का अस्तित्व वहाँ कैसे पाया जाता है ?

आचार्यदेव इस शंका का समाधान करते हैं — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ पूर्व जन्म के वैरी देवों के प्रयोग से त्रस तिर्यंचों के विहार में-आगमन में कोई विरोध नहीं है।

भोगभूमि प्रतिभागरूप द्वीपों के अन्तराल में स्थित असंख्यात समुद्रों में स्वस्थानपद में स्थित तिर्यंच नहीं हैं।

विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात, इन चार पदों से परिणत तीन प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि मित्र व शत्रुरूप देवों के वश से इनके सर्वद्वीप समुद्रों में संचार करने में कोई विरोध नहीं आता है।

मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदों से परिणत इन तीन पंचेन्द्रिय तिर्यंचों द्वारा अतीतकाल में सर्वलोक स्पृष्ट होता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — लोकनाली के बाहर सर्वदाकाल में त्रसकायिक जीवों की सर्वदा संभावना न होने से 'सर्व लोक स्पृष्ट है' यह कहना योग्य नहीं है ?

आचार्यदेव समाधान करते हैं — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदों से परिणत त्रस जीवों को छोड़कर शेष त्रस जीवों के अस्तित्व का लोकनाली के बाहर प्रतिषेध है।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों से परिणत पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

---

१. षट्खण्डागम धवलाटीकासमन्वित पु. ७, पृ. ३७५। २. षट्खण्डागम धवला टीका समन्वित पु. ७, पृ. ३७७।

कुतः ?

कर्मभूमिप्रतिभागे स्वयंप्रभपर्वतपरभागे सार्धद्वयद्वीप-समुद्रेषु चातीतकाले तत्र सर्वत्र संभवात्। तेन तैः स्पृष्टक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः कथितः।

कश्चिदाह—अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रावगाहनानां अपर्याप्ततिरश्चां संख्यातांगुलप्रमाणोत्सेधःकथं लभ्यते ?

नैतद् वक्तव्यं, मृतपंचेन्द्रियादित्रसकायिकानां कलेवरेषु अंगुलस्य संख्यातभागमादिं कृत्वा यावत् संख्यातयोजना इति क्रमवृद्ध्या स्थितेषु उत्पद्यमानानामपर्याप्तानां संख्यातांगुलोत्सेधोपलंभात्। अथवा सर्वेषु द्वीपसमुद्रेषु पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्ताः भवन्ति, पूर्ववैरिदेवसंबंधेन कर्मभूमिप्रतिभागोत्पन्नपंचेन्द्रियतिरश्चां एकबंधनबद्धषड्जीवनिकायावगाढौदारिकदेहानां सर्वद्वीपसमुद्रेषु अवस्थानदर्शनात्।

मारणान्तिकोपपादैः पुनः सर्वलोकः स्पृष्टः, एतेषां सर्वलोके प्रतिषेधाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले तिरश्चां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना मनुष्यगतौ मनुष्याणां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१८।।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि कर्मभूमि प्रतिभाग में स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में और ढाईद्वीप-समुद्रों में अतीतकाल की अपेक्षा वहाँ उनकी सर्वत्र संभावना पाई जाती है। इसीलिए उनके द्वारा स्पृष्ट क्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र अवगाहना वाले अपर्याप्त जीवों का संख्यात अंगुल प्रमाण उत्सेध कैसे पाया जाता है ?

आचार्य देव इसका समाधान करते हैं—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अंगुल के संख्यातवें भाग को आदि लेकर संख्यात योजन तक क्रम वृद्धि से स्थित मृत पंचेन्द्रियादि त्रसकायिक जीवों के शरीर में उत्पन्न होने वाले अपर्याप्तों का संख्यात अंगुलप्रमाण उत्सेध पाया जाता है। अथवा सभी द्वीप-समुद्रों में पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि पूर्व के बैरी देवों के संबंध से एक बंधन से बद्ध षट्जीव निकायों से व्याप्त औदारिक शरीर को धारण करने वाले कर्मभूमि प्रतिभाग में उत्पन्न हुए पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का सर्व समुद्रों में अवस्थान देखा जाता है। मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों से परिणत उक्त जीवों का सर्वलोक में प्रतिषेध नहीं है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में तिर्यंचों का स्पर्शन बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनुष्यगति में मनुष्यों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनियों द्वारा स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१९।।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा।।२१।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।।२३।।

मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं भंगो।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन मनुष्याः मनुष्यपर्याप्ताः मानुष्यः स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्व-स्थानाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः स्पृष्टः, अतीतकाले पूर्ववैरिसंबंधेनापि मानुषोत्तरशैलात् परतः मनुष्याणां गमनाभावात्। मानुषक्षेत्रस्य पुनः संख्यातभागः स्पृष्टः, उपरिगमनाभावात्। अथवा विहारेण मानुषलोकः देशोनः स्पृष्टः इति केचिद् भणन्ति, पूर्ववैरिदेवसंबंधेन ऊर्ध्वं देशोनयोजनलक्षोत्पादनसंभवात्।**

मारणान्तिकसमुद्घातेन इमे त्रिविधाः अपि मनुष्याः सर्वलोकं स्पृशन्ति, अतीते काले सर्वस्मिन् लोकक्षेत्रे मनुष्याणां मारणान्तिकेन गमनोपलंभात्। दण्ड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणप्ररूपणा प्रागेव प्ररूपिता अस्ति।

उक्त तीन प्रकार के मनुष्यों द्वारा स्वस्थान से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।१९।।

उपर्युक्त मनुष्यों के द्वारा समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२०।।

उपर्युक्त मनुष्यों के द्वारा समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग, असंख्यात बहुभाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२१।।

उपर्युक्त मनुष्यों के द्वारा उपपाद पद की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२२।।

उपर्युक्त मनुष्यों के द्वारा उपपाद पद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२३।।

अपर्याप्त मनुष्यों के स्पर्शन का निरूपण पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों के समान है।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और योनिमती—स्त्रीवेदी मनुष्यिनियों द्वारा स्वस्थानस्वस्थान व विहारवत्स्वस्थान से चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि अतीतकाल में पूर्व के बैरी देवों के संबंध से भी मानुषोत्तर पर्वत के आगे मनुष्यों के गमन का अभाव है। परन्तु मानुषक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि मानुषक्षेत्र के ऊपर उक्त मनुष्यों का गमन नहीं है। अथवा विहार की अपेक्षा कुछ कम मानुषलोक स्पृष्ट है, ऐसा कोई आचार्य कहते हैं, क्योंकि पूर्वबैरी देवों के संबंध से ऊपर कुछ कम एक लाख योजन तक उत्पादन की संभावना है।

मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा उक्त तीन प्रकार के मनुष्यों के द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि अतीतकाल की अपेक्षा सम्पूर्ण लोक क्षेत्र में मारणान्तिकसमुद्घात से मनुष्यों का गमन पाया जाता है। दण्ड, कपाट, प्रतर व लोकपूरण समुद्घात पदों की प्ररूपणा पहले ही की जा चुकी है, अर्थात् यह समुद्घात केवली भगवन्तों के ही होता है।

उपपादैः एते मनुष्याः लोकस्यासंख्यातभागं स्पृशन्ति वर्तमानाकालापेक्षया। अतीते घनसर्वलोकः स्पृष्टः, मनुष्येषु उत्पद्यमानैः सर्वलोकावस्थितसूक्ष्मजीवैः आपूर्यमाणलोकदर्शनात्।

कश्चिदाह — पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनबाहल्यतिर्यक्प्रतरमात्राकाशप्रदेशस्थितमनुष्यैः सर्वलोकः कथमापूर्यते ?

आचार्यः प्राह — नैतद् वक्तव्यं, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्विविपाकयोग्याकाशप्रदेशैः सर्वलोकपर्यन्तेषु मध्ये च समयाविरोधेनावस्थितैः निर्गत्य संख्यातासंख्यात-योजनायामेन मनुष्यगतिमुपगतैः सर्वातीतकाले सर्वलोकापूर्णं प्रति विरोधाभावात्।

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याः स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषायसमुद्घातैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागोऽतीते काले स्पृष्टः, मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।

एवं तृतीयस्थले मनुष्याणां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्।

इदानीं देवगतौ सामान्यदेवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

देवगदीए देवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२६।।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२७।।

उपपाद पदों के द्वारा ये तीनों प्रकार के मनुष्य वर्तमानकाल की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं। अतीतकाल की अपेक्षा सर्व घनलोक स्पृष्ट है, क्योंकि मनुष्यों में आकर उत्पन्न होने वाले सर्वलोक में स्थित सूक्ष्म जीवों से परिपूर्ण लोक देखा जाता है।

यहाँ कोई शंका करता है कि — पैंतालीस लाख योजन बाहल्य वाले तिर्यक् प्रतर मात्र आकाश प्रदेशों में स्थित मनुष्यों के द्वारा सर्वलोक कैसे पूर्ण किया जाता है ?

आचार्य देव इसका समाधान देते हैं — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि लोक के पर्यन्त भागों में व मध्य में भी समय — आगम से अविरोधरूप से स्थित ऐसे मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के विपाक योग्य आकाश प्रदेशों से निकलकर संख्यात एवं असंख्यात योजन आयामरूप से मनुष्यगति को प्राप्त हुए मनुष्यों द्वारा सर्व अतीतकाल में सर्वलोक के पूर्ण करने में कोई विरोध नहीं है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों द्वारा स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की अपेक्षा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग व मानुषक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग अतीतकाल में स्पृष्ट है। मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों से सर्वलोक स्पृष्ट है।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में मनुष्यों का स्पर्शन बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब देवगति में सामान्य देवों का स्पर्शन बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

देवगति में देव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।२५।।

देव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।।२६।।

देवों द्वारा समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-णव-चोद्दस भागा वा देसूणा।।२८।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२९।।

लोगस्स असंखेज्जदि भागो छच्चोद्दसभागा वा देसूणा।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन देवाः स्वस्थानेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागं, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागं सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणितक्षेत्रं च स्पृशन्ति।**

तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागत्वं कथं ?

नैष दोषः, चन्द्र-सूर्य-बुध-बृहस्पति-शनि-शुक्र-अंगारक-नक्षत्र-तारागण-अष्टविधव्यन्तरविमानैश्च रुद्धक्षेत्राणां तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्राणामुपलंभात्। विहारापेक्षया अष्ट चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः। मेरुमूलादुपरि षड्रज्जुमात्रोऽधः द्विरज्जुमात्रो विहारः, तेनाष्ट चतुर्दशभाग इति उक्तः।

ते केनोनाः ?

तृतीयपृथिव्याः अधस्तनयोजनसहस्रेणोनाः इति ज्ञातव्याः।

समुद्घातापेक्षया असंख्यातभागः स्पृष्टः देवगतीनां देवैः। तेन वर्तमानक्षेत्रापेक्षया क्षेत्रप्ररूपणावत् प्ररूपणा ज्ञातव्या।

संप्रति अतीतकालापेक्षया क्षेत्रं निरूप्यते—वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः चतुर्दशरज्जूनां अष्टभागाः स्पृष्टाः।

समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह व नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२८।।

उपपाद की अपेक्षा देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२९।।

उपपाद की अपेक्षा देवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से देव स्वस्थान की अपेक्षा तीनलोक का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र को स्पर्श करते हैं।

शंका—तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग कैसे घटित होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि चन्द्र, सूर्य, बुद्ध, बृहस्पति, शनि, शुक्र, अंगारक (मंगल), नक्षत्र, तारागण और आठ प्रकार के व्यंतर विमानों से रुद्ध क्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण पाये जाते हैं। विहार की अपेक्षा इनके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। मेरुमूल से ऊपर छह राजुमात्र और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्र में देवों का विहार है, इसलिए 'आठ बटे चौदह भाग' ऐसा कहा है।

शंका—वे आठ बटे चौदह भाग किससे कम हैं ?

समाधान—तृतीय पृथिवी के नीचे एक सहस्र योजन से कम हैं ऐसा जानना चाहिए।

समुद्घात की अपेक्षा देवगति के देवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। इसलिए वर्तमान की अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणा के समान यह प्ररूपणा जानना चाहिए।

अब अतीतकाल संबंधी क्षेत्रप्ररूपणा कही जा रही है—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों की अपेक्षा राजू के आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।

कुतः ?

विहरमाणानां देवानां स्वकविहारक्षेत्रस्यान्तरे वेदना-कषाय-विक्रियाणामुपलंभात्। मारणान्तिक-समुद्घातेन नव चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। मेरुमूलादुपरि सप्त अधो द्विरज्जुमात्रक्षेत्राभ्यन्तरेऽतीते काले सर्वत्र कृतमारणान्तिकदेवानामुपलंभात्।

उपपादैः इमे देवाः वर्तमानक्षेत्रापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागं स्पृशन्ति। अतीतक्षेत्रापेक्षया षट् चतुर्दशभागं देशोनं स्पृशन्ति।

कुतः एतत् क्षेत्रं स्पृशन्ति ?

आरण-अच्युतकल्पपर्यंतं तिर्यग्मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां संयतासंयतानां चोपपादोपलंभात्।

एवं सामान्यदेवानां क्षेत्रस्य स्पर्शनं निरूपितं। अधुना चतुर्विधदेवानां स्पर्शनं कथ्यते।

इदानीं भवनत्रिकदेवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।३१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धट्ठा वा अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।३२।।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।३३।।

प्रश्न — ऐसा क्यों है ?

उत्तर — क्योंकि विहार करने वाले देवों के अपने विहार क्षेत्र के भीतर वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पद पाये जाते हैं। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि मेरुमूल से ऊपर सात और नीचे दो राजुमात्र क्षेत्र के भीतर सर्वत्र अतीतकाल में मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त देव पाये जाते हैं।

उपपाद की अपेक्षा ये देव वर्तमान क्षेत्र की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं। अतीत क्षेत्र की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श करते हैं।

प्रश्न — इतना क्षेत्र कैसे स्पर्श करते हैं ?

उत्तर — क्योंकि आरण-अच्युत कल्प तक तिर्यंच व मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों और संयतासंयतों का उपपाद पाया जाता है।

इस प्रकार सामान्य देवों के क्षेत्र का स्पर्शन निरूपित किया गया है। अब चारों प्रकार के देवों का स्पर्शन कहा जा रहा है।

अब भवनत्रिक देवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।३१।।

पूर्वोक्त देव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग साढ़े तीन राजु अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।।३२।।

समुद्घात की अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।३३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धट्ठा वा अट्ठ-णव-चोद्दस भागा वा देसूणा।।३४।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।३५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इमे त्रिविधा अपि देवाः वर्तमानक्षेत्रप्ररूपणापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागं स्पृशन्ति। अतीतकालं प्रतीत्य स्वस्थानेन वानव्यन्तरज्योतिष्कदेवाभ्यां त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।**

कुतः ?

वर्तमानकालेऽपि तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागं व्याप्यावस्थानात्।

भवनवासिदेवैः स्वस्थानेन चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थानेन चतुर्दशभागेषु सार्धत्रयभागाः स्पृष्टाः।

कुतः ?

भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवानां मेरुमूलादधो द्वे रज्जू, उपरि सौधर्मविमानशिखरध्वजदण्डपर्यंतं इति सार्धैकरज्जुमात्रस्वकनिमित्तविहारः उपलभ्यते। परप्रत्ययेन पुनः देवैरानीतैः देवाः चतुर्दशभागेषु अष्टभागाः स्पृष्टाः देशोनाः। उपरिमदेवैः नीयमाना देवा सार्धचतुःरज्जुप्रमाणं स्वप्रत्ययेन च सार्धत्रयरज्जुप्रमाणं क्षेत्रं गच्छन्ति इति देवानां अष्ट चतुर्दशभागस्पर्शनं भवति।

समुद्घात की अपेक्षा उपर्युक्त देवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा चौदह भागों में से कुछ कम साढ़े तीन भाग अथवा कुछ कम आठ व नौ भाग स्पृष्ट हैं ?।।३४।।

उपपाद पद की अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।३५।।

उपपाद पद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये तीनों प्रकार के देव वर्तमान क्षेत्रप्ररूपणा की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं। अतीतकाल की अपेक्षा-स्वस्थान पद से वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट पाया जाता है।

प्रश्न—ऐसा क्यों हैं ?

उत्तर—क्योंकि वर्तमान काल में तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग को व्याप्त कर उनका अवस्थान पाया जाता है।

भवनवासी देवों द्वारा स्वस्थान की अपेक्षा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा चौदह भागों में से साढ़े तीन भाग स्पृष्ट हैं।

प्रश्न—क्यों ?

उत्तर—क्योंकि भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों का मेरुमूल से नीचे दो राजु और ऊपर सौधर्म विमान के शिखर पर स्थित ध्वजादण्ड तक डेढ़ राजुमात्र स्वनिमित्तक विहार पाया जाता है। परन्तु परनिमित्तक विहार की अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि उपरिम देवों से ले जाये गये देव साढ़े चार राजु और स्वनिमित्त से साढ़े तीन राजु प्रमाण तक गमन कर सकते हैं, इसलिए देवों का स्पर्शन आठ बटे चौदह भाग प्रमाण होता है।

समुद्घातेन वर्तमानक्षेत्रापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागः स्पृष्टः।

संप्रति वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः चतुर्दशभागेषु सार्धत्रयभागाः अष्टभागा वा स्पृष्टाः, स्वक-परप्रत्ययाभ्यां परिभ्राम्यतां भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्कदेवानां वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः सह परिणतानां एतावत्प्रमाणं क्षेत्रं उपलभ्यते।

मारणान्तिकसमुद्घातेन चतुर्दशभागेषु नव भागा देशोनाः स्पृष्टाः, मेरुमूलादधः द्विरज्जुमात्रं मार्गं गत्वा स्थितदेवानां भवनवास्यादीनां घनोदधिस्थिताप्कायिकजीवेषु मारणान्तिकसमुद्घातपरिणतानां नव चतुर्दशभागमात्रस्पर्शनं उपलभ्यते।

उपपादैः लोकस्यासंख्यातभागः स्पृष्टः। अतीतकालेन उपपादपरिणतैः भवनत्रिकदेवैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। ज्योतिष्काणां नवशतयोजनबाहल्यं तिर्यक् प्रतरं स्थापयित्वा ऊर्ध्वमेकोनपंचाशत्खण्डानि कृत्वा प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं उपपादक्षेत्रं भवति। वानव्यन्तराणां योजनलक्षबाहल्यं तिर्यक्प्रतरं स्थापयित्वा ऊर्ध्वमेकोनपंचाशत्खण्डानि कृत्वा प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रमुपपादक्षेत्रं भवति। भवनवासिदेवानां लक्षयोजनबाहल्यं रज्जुप्रतरं स्थापयित्वा पूर्वमिव खण्डानि प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रमुपपादक्षेत्रं भवति।

इदानीं सौधर्मादिसहस्रारकल्पपर्यन्तकल्पवासिदेवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

समुद्घात के द्वारा वर्तमान क्षेत्र की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।

अब वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों की अपेक्षा चौदह भागों में साढ़े तीन अथवा आठ भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि स्वनिमित्त से या परनिमित्त से विहार करने वाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों का वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात एवं वैक्रियिक समुद्घात पदों के साथ परिणत होने पर इतने प्रमाण क्षेत्र पाया जाता है।

मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा कुछ कम नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि मेरुमूल से नीचे दो राजुमात्र मार्ग में जाकर स्थित भवनवासी आदि देवों का घनोदधि वातवलय में स्थित जलकायिक जीवों में मारणान्तिक समुद्घात करते समय नौ बटे चौदह भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है।

उपपाद पदों की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकाल की अपेक्षा उपपाद पद से परिणत भवनत्रिक अर्थात् भवनवासी, वानव्यंतर और ज्योतिषी देवों द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। ज्योतिषी देवों के नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यग्प्रतर को स्थापित कर ऊपर में उनके उनचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग मात्र उपपाद क्षेत्र होता है। वानव्यन्तर देवों के एक लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर को स्थापित कर व ऊपर से उनचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग मात्र उपपाद क्षेत्र होता है। भवनवासियों के भी एक लाख योजन बाहल्यरूप राजु प्रतर को स्थापित कर व उनके पूर्व के समान ही खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग मात्र उपपाद क्षेत्र होता है।

अब सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्रारकल्प तक के निवासी देवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादं देवभंगो।।३७।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा।।३८।।

सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।३९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।४०।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।४१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो तिण्णि-अद्धट्ठ-चत्तारि-अद्धवंचम-पंचचोद्दसभागा वा देसूणा।।४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणावत् ज्ञातव्या। अतीतकालमाश्रित्य प्ररूपणायां अपि द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन देवगतिवत् भंगो भवति, न च पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन।**

कुतः ?

सूत्रार्थ—

सौधर्म-ईशान कल्पवासी देवों के स्पर्शन का निरूपण स्वस्थान और समुद्घात की अपेक्षा सामान्य देवों के समान है।।३७।।

उपपाद पद की अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ? उपपाद पद की अपेक्षा उक्त देवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा चौदह भागों में कुछ कम डेढ़ भागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है।।३८।।

सनत्कुमार से लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक के देव स्वस्थान और समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।३९।।

उपर्युक्त देव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।।४०।।

उक्त देवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।४१।।

उक्त देवों द्वारा उपपाद पद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा चौदह भागों में कुछ कम तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पाँच भाग स्पृष्ट है।।४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वर्तमानप्ररूपणा को क्षेत्रप्ररूपणा के समान जानना चाहिए। अतीतकाल की अपेक्षा प्ररूपणा करने पर भी द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से देवगति के समान भंग होता है, पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन से ऐसा नहीं है।

प्रश्न—ऐसा क्यों है ?

स्वस्थानेन सौधर्मेशानदेवैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपरिणतैः अष्ट-नव-चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः इति निर्दिष्टत्वात्।

उपपादपदेन वर्तमानापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागः, अतीतकालापेक्षया चतुर्दशभागेषु सार्धैकभागप्रमाणं क्षेत्रं स्पृष्टं।

कुतः ?

तिर्यग्मनुष्ययोरतीते काले प्रभाप्रस्तरे उत्पद्यमानानां देवानां सार्धैकरज्जुबाहल्येन युक्तरज्जुप्रतरमात्र-स्पर्शनोपलंभात्।

सनत्कुमारादिसहस्रारस्वर्गपर्यन्तस्थितदेवानां वर्तमानापेक्षया लोकस्य असंख्यातभागस्पर्शनक्षेत्रं। अतीतकाले स्वस्थानेन लोकस्यासंख्यातभागः, विमानरुद्धक्षेत्रस्य चतुर्णां लोकानामसंख्यातभाग-मात्रप्रमाणत्वात्। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपदपरिणतैः चतुर्दशभागेषु अष्टभागाः देशोनाः स्पृष्टाः, त्रसजीवान् मुक्त्वा एतेषां देवानां उत्पत्तेरभावात्।

उत्पादेनापि अतीतकाले यथाक्रमेण त्रि-सार्धत्रि-चतुः-सार्धचतुः-पंचभागाः चतुर्दशभागेषु स्पृष्टाः। तद्यथा— मेरुमूलात् रज्जुत्रयं उपरि चटित्वा सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोः परिसमाप्तिः, तत उपरि अर्द्धरज्जुं गत्वा ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरकल्पयोः परिसमाप्तिः, तत उपरि अर्द्धरज्जुं गत्वा लांतव-कापिष्ठस्वर्गयोः परिसमाप्तिः, एतस्मादुपरि अर्द्धरज्जुं गत्वा शुक्र-महाशुक्रकल्पयोः अवसानं, तत्तोऽर्द्धरज्जुं गत्वा शतार-सहस्रारकल्पयोः परिसमाप्तिर्भवतीति ज्ञातव्यं।

उत्तर—स्वस्थान से सौधर्म, ईशान कल्पवासी देवों द्वारा चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है तथा विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिक और मारणान्तिकसमुद्घात पदों से परिणत देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह और नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, ऐसा निर्दिष्ट किया गया है।

उपपाद पद से वर्तमान काल की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग और अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम चौदह भागों में डेढ़ भाग प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है।

प्रश्न—ऐसा क्यों हैं ?

उत्तर—क्योंकि अतीतकाल की अपेक्षा प्रभा पटल में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच व मनुष्यों का डेढ़ राजु बाहल्य से युक्त राजुप्रतर मात्र स्पर्शन पाया जाता है।

सनत्कुमार स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त देवों के वर्तमान काल की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्शन क्षेत्र है। अतीतकाल में स्वस्थान की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि विमानरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण चारों लोकों के असंख्यातवें भाग मात्र है। विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदों से परिणत उक्त देवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि त्रस जीवों को छोड़ अन्यत्र उनकी उत्पत्ति का अभाव पाया जाता है।

उत्पाद की अपेक्षा से भी अतीतकाल में यथाक्रम से चौदह भागों में तीन, साढ़े तीन, चार, साढ़े चार और पाँच भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि मेरुमूल से तीन राजु ऊपर चढ़कर सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों की समाप्ति हो जाती है, इससे ऊपर अर्ध राजु जाकर ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पों की समाप्ति है, उससे ऊपर अर्ध राजु जाकर लान्तव-कापिष्ठ कल्पों की समाप्ति है उससे ऊपर अर्ध राजु जाकर शुक्र-महाशुक्र कल्पों का अन्त है तथा उससे अर्ध राजु ऊपर जाकर शतार-सहस्रार कल्पों की समाप्ति होती है, ऐसा जानना चाहिए।

अधुना आनतादिचतुःस्वर्गवासिनां देवानां स्पर्शनकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

आणद जाव अच्चुदकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।४३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा।।४४।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।४५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धछट्ठ-छचोद्दसभागा वा देसूणा।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **वर्तमानप्ररूपणा क्षेत्रवत् भवति। अतीतकालापेक्षया स्वस्थानपरिणतदेवैः लोकस्यासंख्यातभागः स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपदपरिणतैः चतुर्दशसु षड्भागाः स्पृष्टाः, मेरुमूलादधस्तेषां गमनाभावेन तत्र विक्रियासमुद्घातादीनामभावात्।**

उपपादापेक्षया एतेषां देवानां स्पर्शनं-आनत-प्राणतकल्पयोः चतुर्दशभागेषु सार्धपंचभागाः, आरणाच्युत-कल्पवासिनां देवानां चतुर्दशभागेषु षड्भागाः ज्ञातव्याः।

तात्पर्यमत्र — देवाः सम्यग्दर्शनं संप्राप्य मध्यलोके जिनदेव पंचकल्याणावसरेषु आगत्य तीर्थंकरस्य जन्माभिषेकं समवसरणं चावलोक्य जिनभक्तिप्रभावेन महत्पुण्यं संपादयन्ति। तीर्थकरदिव्यध्वनिं श्रुत्वा

अब आनत स्वर्ग आदि चार स्वर्गों के निवासी देवों का स्पर्शन बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

आनत से लेकर अच्युत कल्प तक के देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।४३।।

उपर्युक्त देवों द्वारा स्वस्थान व समुद्घात पदों की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।४४।।

उपपाद की अपेक्षा उक्त देवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।४५।।

उपपाद की अपेक्षा उक्त देवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा चौदह भागों में से कुछ कम साढ़े पाँच या छह भाग स्पृष्ट हैं।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ वर्तमान प्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान होती है। अतीतकाल की अपेक्षा स्वस्थान पद से परिणत उक्त देवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिक समुद्घात पदों से परिणत उक्त देवों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि मेरुमूल से नीचे उसका गमन न होने के कारण वहाँ वैक्रियिक समुद्घातादिकों का अभाव है।

उपपाद की अपेक्षा उन देवों का स्पर्शन आनत-प्राणत कल्प में चौदह भागों में साढ़े पाँच भाग और आरण-अच्युत कल्प में छह भाग प्रमाण जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि — देवगण सम्यग्दर्शन को प्राप्त करके मध्यलोक में जिनेन्द्र भगवन्तों के पंचकल्याणक अवसरों पर आकर तीर्थंकर का जन्माभिषेक और समवसरण का अवलोकन करके जिनभक्ति के प्रभाव से

संसारपरिभ्रमणस्यान्तं कर्तुं इच्छन्ति। मनुष्यपर्यायमपि प्राप्तुं समीहन्ते। वयं मनुष्याः मनुष्यभवसारं सम्यक्त्वं संयमं च देशसंयमं वा संप्राप्य स्वजन्म सफलीकुर्वाणाः अपि निरन्तरं स्वात्मतत्त्वभावना भावयितव्याऽस्माभिरिति।

अधुना नवग्रैवेयकप्रभृति-सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तविमानवासिनामहमिन्द्राणां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयम-वतार्यते —

णवगेवज्ज जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।४७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिक-उपपादपदैः अतीतवर्तमानाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विशेषेण तु — सर्वार्थसिद्धौ मारणान्तिक-उपपादविरहितशेषपदैः मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः इति वक्तव्यं।**

तात्पर्यमत्र — एतत्सर्वं ज्ञात्वा भेदाभेदरत्नत्रयभावनां भावयद्भिः अस्माभिः संसारसमुद्रोत्तरणोपायो विधातव्यः।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

महान् पुण्य का सम्पादन करते हैं। वे तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि को सुनकर अपने संसार परिभ्रमण का अन्त करने की इच्छा करते हैं और मनुष्यपर्याय को भी प्राप्त करना चाहते हैं। हम लोग मनुष्य हैं अतः मनुष्य भव का सार सम्यक्त्व और संयम अथवा देशसंयम को प्राप्त करके अपना जन्म सफल करते हुए निरन्तर स्वात्मतत्त्व भावना को हमें सदैव भाते रहना चाहिए।

अब नव ग्रैवेयक से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त सभी अहमिन्द्रों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ —

नौ ग्रैवेयकों से लेकर सर्वार्थसिद्धिविमान तक के देव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।४७।।

उपर्युक्त देव उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा अतीत व वर्तमानकाल से चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि — सर्वार्थसिद्धि में मारणान्तिक व उपपाद पदों को छोड़कर शेष पदों की अपेक्षा मानुष क्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है, ऐसा कहना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि — हम सभी को यह सब जानकर भेदाभेद रत्नत्रय की भावना भाते हुए संसार समुद्र से पार होने का उपाय करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम नामके महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इंद्रियमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिःस्थलैः एकविंशतिसूत्रैः स्पर्शनानुगमे इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले एकेन्द्रियाणां सूक्ष्मबादरभेदसहितानां स्पर्शनप्ररूपणत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिना षट् सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले विकलत्रयाणां स्पर्शनकथनत्वेन ''बीइंदिय'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं तृतीयस्थले पंचेन्द्रियाणां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''पंचिंदिय-'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले पंचेन्द्रियापर्याप्तजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''पंचिंदियअपज्जत्ता'' इत्यादिना पंच सूत्राणि इति समुदायपातनिका भवति।

अधुना एकेन्द्रियजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।४९।।

सव्वलोगो।।५०।।

बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।५१।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।५२।।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब चार स्थलों में इक्कीस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सूक्ष्म और बादर भेदों सहित एकेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन प्ररूपित करने वाले "इंदियाणुवादेण" इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में विकलत्रय जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले "बीइंदिय" इत्यादि चार सूत्र हैं। तदनंतर तृतीय स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन निरूपित करने वाले "पचिंदिय" इत्यादि छह सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु "पंचिंदियअपज्जत्ता" इत्यादि पाँच सूत्र हैं। इस प्रकार यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब एकेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ —

इंद्रियमार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।४९।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों से सर्व लोक स्पर्श करते हैं।।५०।।

बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।५१।।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदों की अपेक्षा लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।५२।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।५३।।

सव्वलोगो।।५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इन्द्रियमार्गणायां सामान्येन एकेन्द्रिया एकेन्द्रियपर्याप्ता एकेंद्रियापर्याप्ताश्च, सूक्ष्मैकेन्द्रियाः सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताश्च इमे षड्विधा जीवाः वर्तमानक्षेत्रस्पर्शनापेक्षया क्षेत्रवत् स्पृशन्ति। अतीतकालापेक्षया स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादपदैः सर्वलोकं स्पृशन्ति, वैक्रियिकपदेन लोकस्य संख्यातभागं स्पृशन्ति। विशेषेण-सूक्ष्माणां जीवानां वैक्रियिकपदं नास्ति।**

सामान्येन बादरैकेन्द्रिया बादरैकेन्द्रियपर्याप्ताः बादरैकेन्द्रियापर्याप्ताश्च त्रिविधा अपि जीवा लोकस्य संख्यातभागं स्पृशन्ति।

वायुकायिकजीवापूरितं पंचरज्जुबाहल्यं रज्जुप्रतरं, बादरैकेन्द्रियजीवापूरितसप्तपृथिव्यश्च, तासां पृथिवीनां अधः-स्थितविंशति-विंशतियोजनसहस्रबाहल्यं त्रि-त्रिवातवलयक्षेत्राणि लोकान्तस्थितवायुकायिकक्षेत्रं च एकत्रीकृते त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणः क्षेत्रविशेष उत्पद्यते। तेन संख्यातभागोऽतीतवर्तमानयोः कालयोः लभ्यते।

एतेषां बादरैकेन्द्रियाणां स्पर्शनं वेदना-कषायाभ्यां अतीते काले त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः, नर-तिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणः स्पृष्टो भवति। एवं वैक्रियिकपदेनापि, पंचरज्जु-आयततिर्यक्प्रतरे सर्वत्र

समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।५३।।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट है।।५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन्द्रियमार्गणा में सामान्य से एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त और एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त ये छहों प्रकार के भेद वाले एकेन्द्रिय जीव वर्तमान क्षेत्र स्पर्शन की अपेक्षा क्षेत्रप्ररूपणा के समान स्पर्श करते हैं। अतीतकाल की अपेक्षा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से सर्व लोक का स्पर्श करते हैं। वैक्रियिक पद से लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं। विशेष इतना है कि सूक्ष्म जीवों के वैक्रियिक पद नहीं होता है।

सामान्य से बादर एकेन्द्रिय जीव, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव इस प्रकार तीनों ही एकेन्द्रिय जीव लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।

वायुकायिक जीवों से परिपूर्ण पाँच राजु बाहल्यरूप राजु प्रतर, बादर एकेन्द्रिय जीवों से परिपूर्ण सात पृथिवियाँ हैं, उन पृथिवियों के नीचे स्थित बीस-बीस सहस्र योजन बाहल्यरूप तीन-तीन वातवलय क्षेत्र हैं तथा लोकान्त में स्थित वायुकायिक क्षेत्र को एकत्रित करने पर तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग और मनुष्य लोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र विशेष उत्पन्न होता है। इसलिए अतीत व वर्तमान कालों में लोक का संख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है।

उन बादर एकेन्द्रिय जीवों के द्वारा वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों से अतीतकाल में तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग तथा मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार वैक्रियिक पद की अपेक्षा भी तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि अतीतकाल की अपेक्षा पाँच राजु आयत तिर्यक् प्रतर में सर्वत्र विक्रिया करने वाले

विक्रियमाण वायुकायिकानां अतीतकाले उपलंभात्। मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।

एवं प्रथमस्थले एकेन्द्रियसूक्ष्म-बादर-पर्याप्तापर्याप्तजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन षट्सूत्राणि गतानि।

इदानीं विकलत्रयजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।५५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५६।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।५७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र स्वस्थानक्षेत्रे आनीयमाने स्वयंप्रभपर्वतात् परभागस्थितक्षेत्रमानीय संख्यातसूच्यंगुलैः गुणिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागमात्रं स्वस्थानक्षेत्रं भवति। विहारवत्स्वस्थानक्षेत्रमानीयमाने तिर्यक्प्रतरं स्थापयित्वा संख्यातयोजनानि बाहल्यं भवन्ति, इति संख्यातयोजनैः गुणयित्वा पुनः एतद् बाहल्यस्य एकोनपंचाशत्खण्डानि प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति। अपर्याप्तविकलेन्द्रियाणां विहारवत्स्वस्थानं नास्ति।**

वायुकायिक जीव पाये जाते हैं। मारणान्तिकसमुद्घात व उपपाद पदों से सर्वलोक स्पृष्ट है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में एकेन्द्रिय सूक्ष्म-बादर-पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब विकलत्रय जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।५५।।

उपर्युक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।५६।।

समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।५७।।

समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। यहाँ स्वस्थान क्षेत्र को लाने पर स्वयंप्रभ पर्वत के पर—उत्तर भाग में स्थित क्षेत्र को लाकर संख्यात सूच्यंगुलों से गुणित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भागमात्र स्वस्थान क्षेत्र होता है। विहारवत्स्वस्थान क्षेत्र के निकालने पर तिर्यक्प्रतर को स्थापित कर संख्यात योजन बाहल्य हैं, अतः संख्यात योजनों से गुणित कर पुनः इस बाहल्य के उनंचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग होता है। अपर्याप्त जीवों के विहारवत्स्वस्थान नहीं है।

एषां जीवानां असंख्यातभागः क्षेत्रं वर्तमानकालापेक्षया वर्तते। वेदना-कषाय-पदाभ्यां अतीते काले त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। किंच — पूर्ववैरिसंबंधेन तिर्यक्प्रतरे सर्वस्मिन् क्षेत्रे हिंडमानविकलत्रयाणां सर्वत्रातीते कषायवेदनयोरुपलंभात्। एष वा शब्दस्यार्थः। मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः, सर्वत्र गमनागमनविरोधाभावात्। विकलेन्द्रियापर्याप्तानां वेदनाकषायक्षेत्रयोः स्पर्शनं स्वस्थानवत्, तत्र विहारवत्स्वस्थानस्याभावात्।

एवं द्वितीयस्थले विकलेन्द्रियाणां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इदानीं पंचेन्द्रियपर्याप्तानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।५९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।६०।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।६१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा।।६२।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।६३।।

इन जीवों का लोक का असंख्यातवाँ भाग क्षेत्र है यह निर्देश वर्तमान काल की अपेक्षा है। वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की अपेक्षा अतीतकाल में तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि पूर्व जन्म के बैरियों के संबंध से सर्व तिर्यक्प्रतर में घूमने वाले विकलेन्द्रिय जीवों के सर्वत्र अतीतकाल की अपेक्षा कषाय समुद्घात व वेदनासमुद्घात पद पाये जाते हैं। यह "वा" शब्द से सूचित अर्थ है। मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों से सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि सर्वत्र उक्त जीवों के गमनागमन में कोई विरोध नहीं पाया जाता है। विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की अपेक्षा क्षेत्र का निरूपण स्वस्थान पद के समान है, क्योंकि विहारवत्स्वस्थान पद का उनमें अभाव देखा जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में विकलेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वस्थान पदों से कितने क्षेत्र को स्पर्श करते हैं ?।।५९।।

उपर्युक्त जीव स्वस्थानपदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग राजू का स्पर्श करते हैं।।६०।।

समुद्घातों की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।६१।।

समुद्घातों की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग, कुछ कम आठ बटे चौदह भाग, असंख्यात बहुभाग, अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।६२।।

उपर्युक्त जीवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।६३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।।६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**लोकस्यासंख्यातभागः वर्तमानापेक्षया। संप्रति वाशब्दस्यार्थः कथ्यते। सामान्यपंचेन्द्रियैः पर्याप्तपंचेन्द्रियैश्च स्वस्थानपदैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। एतस्मिन् क्षेत्रे आनीयमाने रज्जुप्रतरं स्थापयित्वा संख्यातांगुलैः गुणयित्वा त्रसजीववर्जितसमुद्रैः व्याप्तक्षेत्रमपनीय प्रतराकारेण स्थापिते तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति।**

अपर्याप्तपंचेन्द्रियतिरश्चां अपर्याप्तविकलेन्द्रियाणां च स्वस्थानक्षेत्रं पुनः स्वयंप्रभपर्वतस्य परतः एव भवति, भोगभूमिप्रतिभागे तेषामुत्पत्तेरभावात्।

अथवा पूर्ववैरिदेवप्रयोगेण भोगभूमिप्रतिभागद्वीप-समुद्रेषु पतिततिर्यक्कलेवरेषु अपर्याप्त-त्रसाणामुत्पत्तिरस्ति इति केचिद् भणन्ति, तेषामभिप्रायेण क्षेत्रे आनीयमाने संख्यातांगुलबाहल्यं रज्जुप्रतरं स्थापयित्वा एकोनपंचाशत्-खण्डानि कृत्वा प्रतराकारेण स्थापिते अपर्याप्तस्वस्थानक्षेत्रं तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागो भवति। एवं विहारवत्स्वस्थानेनापि, मित्रामित्रदेवप्रयोगेण सर्वद्वीपसमुद्रेषु विहारस्य विरोधाभावात्।

विशेषेण—देवानां विहारमाश्रित्य अष्टचतुर्दशभागाः देशोना भवन्ति। एषामेव पंचेन्द्रियाणां वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, विहरमाणदेवानां सर्वत्र वेदना-कषाय-विक्रियाणां विरोधाभावात्। तैजसाहारपदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः।

उपर्युक्त जीवों के द्वारा उपपाद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा सर्व लोक स्पृष्ट है।।६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— 'लोक का असंख्यातवाँ भाग' यह कथन वर्तमानकाल की अपेक्षा किया गया है। अब यहाँ 'वा' शब्द का अर्थ कहा जा रहा है। सामान्य पंचेन्द्रिय और पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों के द्वारा स्वस्थानपदों से तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इस क्षेत्र के निकालने में राजुप्रतर को स्थापित कर व संख्यात अंगुलों से गुणित कर और उनमें से त्रस जीव रहित समुद्रों से व्याप्त क्षेत्र को कम कर प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग प्राप्त होता है।

किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का स्वस्थान क्षेत्र स्वयंप्रभ पर्वत के पर भाग में ही है, क्योंकि भोगभूमिप्रतिभाग में उनकी उत्पत्ति का अभाव है।

अथवा पूर्ववैरी देवों के प्रयोग से भोगभूमि प्रतिभागरूप द्वीप-समुद्रों में पड़े हुए तिर्यंच शरीरों में त्रस अपर्याप्तों की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहने वाले आचार्यों के अभिप्राय से उक्त क्षेत्र के निकालते समय संख्यात अंगुल बाहल्यरूप राजुप्रतर को स्थापित करके व उनके उनचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर अपर्याप्त जीवों का स्वस्थान क्षेत्र तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार विहारवत्स्वस्थान पद की अपेक्षा भी स्पर्शन प्ररूपणा करना चाहिए, क्योंकि मित्र व शत्रु स्वरूप देवों के प्रयोग से सर्वद्वीप-समुद्रों में विहार का कोई विरोध नहीं है।

विशेष इतना है कि—देवों के विहार का आश्रय करके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग होते हैं। इन्हीं पंचेन्द्रिय जीवों के द्वारा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि विहार करने वाले देवों के सर्वत्र वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिक-

दण्डगतैश्चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणः। एवं कपाटगतैरपि, केवलं तु तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणः। एष वा शब्दस्यार्थः। प्रतरगतैरसंख्यातभागाः, वातवलयान् मुक्त्वा सर्वत्रापूरणात्। मारणान्तिकेन लोकपूरणसमुद्घातैश्च सर्वलोकः स्पृष्टः।

सर्वलोकस्थितसूक्ष्मैकेन्द्रियेभ्यः पंचेन्द्रियेषु आगत्य उत्पद्यमानप्रथमसमयजीवानां सर्वलोके व्याप्तत्वदर्शनात् उपपादापेक्षया सर्वलोकः स्पृष्टः।

स्वस्थान-समुद्घात-उपपादेषु एकविकल्परूपेषु कथं सर्वत्र बहुवचननिर्देशः सूत्रे ?

नैतद् वक्तव्यं, तेषु सर्वेषु स्वगतानेकविकल्पसंभवात्।

एवं तृतीयस्थले पर्याप्तपंचेन्द्रिय-सामान्यपंचेन्द्रियाणां स्पर्शनकथनेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना अपर्याप्तपंचेन्द्रियाणां स्पर्शनकथनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।६५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।६६।।

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।६७।।

समुद्घात पदों के विरोध का अभाव है। तैजससमुद्घात व आहारकसमुद्घात पदों से चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मानुषलोक का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है (क्योंकि यह मुनियों के ही होगा)। दण्ड-समुद्घात को प्राप्त केवलियों द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इसी प्रकार कपाटसमुद्घात को प्राप्त जीवों द्वारा भी स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि उनके द्वारा तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह 'वा' शब्द से सूचित अर्थ है। प्रतरसमुद्घात को प्राप्त जीवों के द्वारा लोक का असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि इस अवस्था में लोक वातवलयों को छोड़कर सर्वत्र जीव प्रदेशों से पूर्ण होता है। मारणान्तिकसमुद्घात व लोकपूरणसमुद्घात पदों से सर्वलोक स्पृष्ट है।

सर्वलोक में स्थित सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में से पंचेन्द्रिय जीवों में आकर उत्पन्न होने के प्रथमसमयवर्ती जीवों के सर्व लोक में व्याप्त देखे जाने से उपपाद की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

शंका — स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों के एक विकल्परूप होने पर सर्वत्र बहुवचन का निर्देश कैसे किया है ?

समाधान — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उनमें स्वगत अनेक विकल्पों की संभावना है।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में पर्याप्त पंचेन्द्रिय और सामान्य पंचेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्थान की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।६५।।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श करते हैं।।६६।।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा समुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।६७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।६८।।

सव्वलोगो वा।।६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अतीतकालापेक्षया त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। समुद्घातैः—वेदना-कषायपदैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। एष वा शब्दार्थः। मारणान्तिकोपपादैः सर्वलोकः स्पृष्टः।**

तात्पर्यार्थः—पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्ततिरश्चां लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां चैतत् स्पर्शनं कथितं। एतत्सर्वं पठित्वा लब्ध्यपर्याप्तभवाः कदाचिदपि अस्माकं न भवेयुरिति भावयितव्यं। पंचेन्द्रियेषु पर्याप्तेषु मनुष्यपर्यायं लब्ध्वा चतुर्विंशतितीर्थंकराणां शासनं जिनशासनं संप्राप्तं मया महता पुण्ययोगेन, तस्मिन्नपि अंतिमतीर्थंकर-सिद्धार्थराजात्मज-प्रियकारिणीनंदन-वर्धमान-सन्मति-वीर-महावीरातिवीरनामधेयस्य श्रीमहावीरस्वामिनः शासनं संप्रति वर्तते तत्पंचमकालान्त्यवीरांगजमुनिपर्यंतं अविच्छिन्नं चलिष्यति, तस्य भगवतः चतुर्विंशत्यधिक-पंचविंशतिशततमस्य वीरनिर्वाणसंवत्सरस्य नूतनवर्षस्य प्रथमदिवसः वर्षपर्यन्तं मह्यं संघस्य जगतां च सर्वभव्यानां मंगलं तनोतु इति भाव्यतेऽद्य कार्तिकशुक्लाप्रतिपत्तिथौ नववर्षमंगलवेलायां।

पावापुर्यां सरोवरमध्यस्थितो महतिमहावीरभगवान् कार्तिककृष्णामावस्यायां प्रातः प्रत्यूषबेलायां निर्वाणपदं प्राप, तत्क्षणे इंद्रादिदेवगणैः निर्वाणपूजां कृत्वा दीपमालिकाभिः पावानगरी प्रकाशिता, ततः

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त पदों की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।६८।।

अथवा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों द्वारा उक्त पदों से सर्व लोक स्पृष्ट है।।६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— अतीतकाल की अपेक्षा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। समुद्घात पद से पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों द्वारा वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों से तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह 'वा' का अर्थ है। मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचों का एवं लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का यह स्पर्शन कहा गया है। यह सब पढ़कर हमें यह भावना भानी चाहिए कि हमें कभी भी लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में जन्म न लेना पड़े। पंचेन्द्रियपर्याप्तकों में मनुष्यजन्म प्राप्त करके हमने चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का जिनशासन बड़े पुण्ययोग से प्राप्त किया है, उसमें भी आज वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर, राजा सिद्धार्थ के पुत्र, रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) के नंदन, वर्धमान-सन्मति-वीर-महावीर और अतिवीर नाम से प्रसिद्ध श्री महावीर स्वामी का जिनशासन चल रहा है, यह जिनशासन पंचमकाल के अंत तक श्री वीरांगजमुनि पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चलता रहेगा। उन भगवान महावीर के नाम से प्रचलित वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ चौबीसवें वर्ष के नूतन संवत्सर का प्रथम दिवस (१ नवम्बर १९९७) मेरे संघ के लिए तथा सम्पूर्ण विश्व के लिए पूरे वर्ष तक मंगलमय होवे, यह आज कार्तिक शुक्ला एकम् तिथि की नूतन वर्ष की मंगल बेला में महावीर भगवान के चरणों में मेरी भावना है।

पावापुरी नगरी में सरोवर के मध्य स्थित होकर महति महावीर भगवान के कार्तिक कृष्णा अमावस तिथि की प्रत्यूष बेला में (ब्रह्ममुहूर्त में) जब निर्वाणपद को प्राप्त किया था, तब उसी क्षण इन्द्रादि देवगणों ने

प्रभृति दीपावलीपर्व प्रसिद्धं जातं।

उक्तं च श्री जिनसेनाचार्येण—

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया, सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया।
तदा स्म पावानगरी समन्ततः, प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते।।१९।।
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात्, प्रसिद्धदीपालिकयात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं, जिनेन्द्रनिर्वाणविभूतिभक्तिभाक्[1]।।२१।।

तीर्थकृद्गुणरत्नानां, गणना कैर्न पार्यते।
अनन्तशो नमस्तेभ्यस्त्रयरत्नस्य लब्धये।।१।।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

उनके निर्वाणकल्याणक की पूजा करके दीपमालिका सजाकर पावानगरी को प्रकाशमान किया था, उसी समय से इस धरती पर दीपावली पर्व प्रसिद्ध हुआ है—प्रारंभ हुआ है।

श्री जिनसेनाचार्य ने हरिवंशपुराण में कहा है—

श्लोकार्थ— भगवान महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् सुर और असुरों के द्वारा जलाई गई बहुत भारी दैदीप्यमान दीपकों की पंक्ति से पावानगरी का आकाश सब ओर से जगमगा उठा।।१९।।

उस समय से लेकर भगवान के निर्वाणकल्याण की भक्ति से युक्त संसार के प्राणी इस भरतक्षेत्र में प्रतिवर्ष आदरपूर्वक प्रसिद्ध दीपमालिका के द्वारा भगवान महावीर की पूजा करने के लिए उद्यत रहने लगे अर्थात् उन्हीं की स्मृति में दीपावली का उत्सव मनाने लगे।।२१।।

भावार्थ— वर्तमान में भारत की धरती पर अनेक संवत् (वीर निर्वाण संवत्, विक्रम संवत्, शक संवत्, ईसवी सन् आदि) प्रचलित हैं किन्तु इन सभी में सबसे अधिक प्राचीन वीर निर्वाण संवत् ही है अतः सम्पूर्ण जैन समाज को यही संवत् प्रधानता से मानना चाहिए और अपने बही खाते को कार्तिक शुक्ला एकम् के नव वर्ष से प्रारंभ करना चाहिए।

श्लोकार्थ— तीर्थंकर भगवान के गुणरत्नों की गणना किसी के द्वारा पार नहीं पाई जा सकती है अर्थात् उनके गुणों की गणना कोई नहीं कर सकता है। तीन रत्नों की प्राप्ति हेतु मेरा उन्हें अनन्तबार नमस्कार है।।१।।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम नामके महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग-६६।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिःस्थलैः एकोनत्रिंशत्सूत्रैः स्पर्शनानुगमे कायमार्गणानामतृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सूक्ष्मस्थावराणां स्पर्शनकथनत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले बादरकायस्थावराणां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''बादरपुढवि-'' इत्यादिना विंशतिसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''वणप्फदि-'' इत्यादिना षट्सूत्राणि। तदनंतरं चतुर्थस्थले त्रसकायिकजीवानां स्पर्शनकथनमुख्यत्वेन ''तसकाइय-'' इत्यादिसूत्रमेकमिति समुदायपातनिका।

इदानीं कायमार्गणायां सूक्ष्मस्थावरजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-सुहुम-पुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।७०।।

सव्वलोगो।।७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन पृथिव्यादिचतुष्काः सूक्ष्मपृथिवीकायिकादिचतुष्काश्च इमे अष्टौ विधाः पर्याप्तापर्याप्तभेदेन षोडशधा भवन्तीति। इमे सर्वे जीवाः अतीतकालापेक्षया स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिकोपपादपदैः सर्वलोकं स्पृशन्ति। तेजस्कायिकैः वैक्रियिकपदेन त्रयाणां लोकानाम-**

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में उनतीस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में सूक्ष्म स्थावर जीवों का स्पर्शन प्ररूपण करने हेतु ''कायाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में बादर पृथिवीकायिक जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''बादरपुढवि'' इत्यादि बीस सूत्र हैं। उसके बाद तृतीय स्थल में वनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने वाले ''वणप्फदि'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला ''तसकाइय'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कायमार्गणा में सूक्ष्म स्थावर जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मतेजस्कायिक, सूक्ष्मवायुकायिक और उन्हीं के पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।७०।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों की अपेक्षा सर्व लोक स्पर्श करते हैं।।७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से पृथिवी आदि चतुष्क और सूक्ष्मपृथिवीकायिक आदि चारों ये आठ भेद पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह हो जाते हैं। ये सभी जीव अतीतकाल की अपेक्षा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से उक्त सर्वलोक का स्पर्श करते

संख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।

कर्मभूमिप्रतिभागस्वयंभूरमणद्वीपार्धे चैव किल तेजस्कायिका भवन्ति, नान्यत्रेति केऽपि आचार्या भणन्ति, तेषामभिप्रायेण तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः।

अन्येऽपि आचार्या भणन्ति, 'सर्वेषु द्वीपसमुद्रेषु तेजस्कायिकबादरपर्याप्ता संभवन्ति इति।' किञ्च — स्वयंभूरमणद्वीपसमुद्रेषूत्पन्नानां बादरतेजस्कायिकपर्याप्तानां वातेन ह्रियमाणाणां क्रीडनशीलदेवपरतन्त्राणां वा सर्वद्वीपसमुद्रेषु सविक्रियमाणानां गमनसंभवात्।

केऽपि आचार्याः 'तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणः स्पृष्टः' इति भणन्ति, सर्वपृथिवीषु बादरतेजःपर्याप्तानां संभवात्।

कश्चित् पृच्छति — त्रिष्वपि उपदेशेषु कोऽत्र ग्राह्यः ?

आचार्यः प्राह — तृतीयोऽत्र गृहीतव्यः, युक्त्या अनुगृहीतत्वात्। न च सूत्रं त्रयाणामेकस्यापि मुक्तकण्ठं भूत्वा प्ररूपकमस्ति। प्रथम उपदेशः व्याख्यानैः व्याख्यानाचार्यैश्च सम्मत इत्यत्र स एव निर्दिष्टः।

वायुकायिकैः वैक्रियिकपदेन त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकाभ्यां असंख्यातगुणः स्पृष्टः, पंचरज्जुबाहल्यं तिर्यक्प्रतरमापूर्यातीतकालेऽवस्थानात्।

एवं प्रथमस्थले कायमार्गणायां सूक्ष्मजीवस्पर्शनकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं बादरपृथिवीकायिकादिवनस्पतिकायिकप्रत्येकजीवानां वायुकायिकवर्जितानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते —

हैं। अग्निकायिक जीवों के द्वारा वैक्रियिकपद की अपेक्षा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है।

कर्मभूमिप्रतिभागरूप अर्ध स्वयंभूरमण द्वीप में ही तेजस्कायिक जीव होते हैं, अन्यत्र नहीं। ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। उनके अभिप्राय से उक्त स्पर्शनक्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग होता है।

सर्व द्वीप समुद्रों में अग्निकायिक बादर पर्याप्त जीव संभव है' ऐसा कुछ आचार्य कहते हैं, क्योंकि स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्रों में उत्पन्न बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवों का वायु से उड़कर जाने के कारण अथवा क्रीडनशील देवों के परतंत्र होने से सर्वद्वीप समुद्रों में विक्रिया युक्त होकर गमन संभव होता है।

कुछ आचार्यों का कहना है कि उक्त जीवों के द्वारा वैक्रियिक समुद्घात की अपेक्षा तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि सर्व पृथिवियों में बादर अग्निकायिक पर्याप्त संभव हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि उपर्युक्त तीनों उपदेशों में कौन सा उपदेश यहाँ ग्राह्य है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं — तीसरा उपदेश यहाँ ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि वह युक्ति से अनुगृहीत है। सूत्र इन तीन उपदेशों में से एक का भी मुक्तकण्ठ होकर प्ररूपक नहीं है। पहिला उपदेश व्याख्यानों और व्याख्यानाचार्यों से सम्मत है, इसलिए यहाँ उसी का निर्देश किया है।

वायुकायिक जीवों के द्वारा वैक्रियिक पद से तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि उक्त जीवों का अतीत काल की अपेक्षा पाँच राजु तिर्यक्प्रतर को पूर्ण कर अवस्थान होता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में कायमार्गणा में सूक्ष्म जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब वायुकायिक वर्जित बादर पृथिवीकायिक आदि वनस्पतिकायिक प्रत्येक जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।७२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७३।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।७४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७५।।

सव्वलोगो वा।।७६।।

बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।७७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।७८।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।७९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।८०।।

सूत्रार्थ—

बादरपृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक, बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येक शरीर और उनमें प्रत्येक के अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।७२।।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।७३।।

समुद्घात और उपपाद पदों से उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट हैं ?।।७४।।

समुद्घात व उपपाद पदों से उक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।७५।।

अथवा उक्त पदों की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।।७६।।

बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर तेजस्कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त जीव स्वस्थान पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।७७।।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदों की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।७८।।

समुद्घात व उपपाद पदों की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।७९।।

समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।८०।।

सव्वलोगो वा।।८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **बादरपृथिवी-जल-अग्नि-बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरजीवाः सामान्येन, इमे चतुर्विधा अपि अपर्याताश्च स्वस्थानेनातीतकालेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातगुणः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः।**

कुतः ?

एषां सर्वकालमष्टपृथिवीः भवनविमानानि चाश्रित्यावस्थानात्।

समुद्घातपदैः उपपादैश्च वर्तमानापेक्षया उपर्युक्तक्षेत्रमेव स्पर्शनम्।

अथवा मारणान्तिकोपपादपदाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः, वर्तमानातीतकालदर्शनात्। वैक्रियिकपदस्य पूर्वमिव त्रिविधं व्याख्यानं कर्तव्यम्।

उपर्युक्तचतुर्विधाः पर्याप्तजीवाः अतीतकालापेक्षया त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः, अपर्याप्तजीवानामिव पर्याप्तानामपि सर्वपृथिवीषु अवस्थानविरोधाभावात्। न चाष्टसु पृथिवीषु पृथिवी-जलाग्नि-वायुबादराणां बादरवनस्पतिकायिक-प्रत्येकशरीराणां चापर्याप्ता एव भवन्तीति युक्तिरस्ति। अन्याचार्यव्याख्यानं पुनः एवं न भवति।

एतत् कथं ?

बादराप्कायिकपर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्ताभ्यां स्वस्थान-वेदना-कषायपरिणतैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः, चित्रापृथिव्याः उपरिमभागान् मुक्त्वा बादराप्कायिकपर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तजीवयोः अन्यत्रावस्थानाभावात्।

अथवा समुद्घात व उपपाद की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है।।८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — बादर पृथिवी-जल-अग्नि और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीव सामान्य से ये चारों प्रकार के जीव और अपर्याप्त जीव स्वस्थान से अतीतकाल की अपेक्षा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातगुणा और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं।

क्यों ? क्योंकि इन जीवों का सर्वकाल में आठ पृथिवियों और भवन विमानों का आश्रय लेकर अवस्थान होता है।

समुद्घात पदों से और उपपादपदों से वर्तमान की अपेक्षा से उपर्युक्त क्षेत्र का कथन ही स्पर्शन है।

अथवा मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि इन पदों में वर्तमान और अतीतकाल देखे जाते हैं। वैक्रियिक पद का पूर्व के समान ही तीन प्रकार से व्याख्यान करना चाहिए।

उपर्युक्त चारों प्रकार के पर्याप्त जीवों के द्वारा अतीतकाल की अपेक्षा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि अपर्याप्तों के समान पर्याप्त जीवों का भी सभी पृथिवियों में अवस्थान होने में विरोध का अभाव पाया जाता है। आठ पृथिवियों में पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक व वायुकायिक बादर जीवों तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीव अपर्याप्त ही होते हैं, ऐसी युक्ति नहीं है। पुनः अन्य आचार्यों का व्याख्यान ऐसा नहीं है।

शंका — यह कैसे है ?

समाधान — बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों के द्वारा स्वस्थान, वेदनासमुद्घात व कषायसमुद्घात पदों से परिणत जीवों के द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग और तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है, क्योंकि चित्रा पृथिवी के उपरिम भाग को छोड़कर बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवों के अन्यत्र अवस्थान का अभाव है।

एवं बादरनिगोदप्रतिष्ठितपर्याप्तानामपि वक्तव्यं, प्रत्येकशरीरत्वं प्रतिभेदाभावात्।

एवमेव बादरतेजस्कायिकपर्याप्तानामपि ज्ञातव्यं, स्वयंप्रभपर्वतस्य परभागे चैव एतेषामवस्थानात्। एतच्चान्याचार्याणां व्याख्यानं चक्षुरिन्द्रियप्रमाणबलेन प्रवृत्तं। पृथिवीकायिकाः सर्वपृथिवीषु भवन्तीति इदमपि व्याख्यानं चक्षुरिन्द्रियप्रमाणबलप्रवृत्तं एव। न च पृथिवीकायिकादयः अंगुलस्यासंख्यातभागमात्रशरीरा इन्द्रियग्राह्याः, येन इन्द्रियबलेन विधिप्रतिषेधौ भवेताम्।

तस्मात् सर्वपृथिवीः आश्रित्य एतेषां बादरापर्याप्तानामिव पर्याप्तानामपि अवस्थानेन भवितव्यं, विरोधाभावात्।

तत्र नरकपृथिवीषु ज्वलन्तोऽग्नयः बहन्त्यः नद्यश्च न सन्तीति यदि अभाव उच्यते, तदपि न घटते।

उक्तं च— **षष्ठ-सप्तमयोः शीतं, शीतोष्णं पंचमे स्मृतम्।**
चतुर्ष्वत्युष्णमुद्दिष्टस्तासामेव महीगुणाः[1] ।।

इत्थं तत्रापि अप्कायिक-तेजस्कायिकजीवानां संभवात्।

कथं पृथिवीनामधः प्रत्येकशरीराणां संभवः ?

नैतत्, शीतेनापि समुत्पद्यमानपणग-कुहुनादीनामुपलंभात्।

उष्णतायां प्रत्येकशरीरजीवानां कथं संभवः ?

नैतत् वक्तव्यं, अत्युष्णेऽपि समुत्पद्यमानजवासपादीनामुपलंभात्।

इसी प्रकार बादर निगोद-प्रतिष्ठित पर्याप्तों का भी कथन करना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक शरीरत्व के प्रति दोनों में कोई भेद नहीं है।

इसी प्रकार बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवों को भी जानना चाहिए, क्योंकि स्वयंप्रभ पर्वत के पर— उत्तर भाग में ही इनका अवस्थान है। यह अन्य आचार्यों का व्याख्यान चक्षु इन्द्रियरूप प्रमाण के बल से प्रवृत्त है। 'पृथिवीकायिक जीव सर्व पृथिवियों में होते हैं' यह भी व्याख्यान चक्षु इन्द्रिय के बल से ही प्रवृत्त है और पृथिवीकायिकादि अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर वाले जीव इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, जिसमें इन्द्रिय बल से उनका विधान व प्रतिषेध हो सके।

अतएव सर्व पृथिवियों का आश्रय लेकर इनके बादर अपर्याप्त जीवों के समान पर्याप्त जीवों का भी अवस्थान होना चाहिए, क्योंकि उसमें कोई विरोध नहीं है।

वहाँ नरकपृथिवियों में जलती हुई अग्नियाँ और बहती हुई नदियाँ नहीं हैं, इस कारण यदि उनका अभाव कहते हो, तो वह भी घटित नहीं होता है। क्योंकि कहा भी है—

श्लोकार्थ— छठी और सातवीं पृथिवी में शीत तथा पाँचवीं में शीत व उष्ण दोनों माने गये हैं। शेष चार पृथिवियों में उत्पन्न उष्णता है। ये उनके ही पृथिवीगुण हैं।।

इस प्रकार उन नरक पृथिवियों में जलकायिक व अग्निकायिक जीवों की संभावना रहती है।

शंका— पृथिवियों के नीचे प्रत्येक शरीर जीवों की संभावना कैसे है ?

समाधान— ऐसा नहीं है, क्योंकि शीत से भी उत्पन्न होने वाले पणग औन कुहुन आदि वनस्पति विशेष पाये जाते हैं।

शंका— उष्णता में प्रत्येक शरीर जीवों का उत्पन्न होना कैसे संभव है ?

समाधान— ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि अत्यन्त उष्णता में भी उत्पन्न होने वाले जवासप आदि वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

---

१. धवला पुस्तक-७, पृष्ठ ४०५।

इमे बादरस्थावरजीवाः वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागं, तिर्यग्लोकात् संख्यातगुणं, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणं च स्पृशन्ति। मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोकं स्पृशन्ति, एतेषां सर्वत्र गमनागमनं प्रति विरोधाभावात्।

अधुना बादरवायुकायिकपर्याप्तापर्याप्तानां स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रदशकमवतार्यते —

बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।८२।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।८३।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।८४।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।८५।।

सव्वलोगो वा।।८६।।

बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।८७।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।८८।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।८९।।

लोगस्स संखेज्जदिभागो।।९०।।

सव्वलोगो वा।।९१।।

ये बादर स्थावर जीव वेदनासमुद्घात-कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातपदों की अपेक्षा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक से संख्यातगुणा और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं। मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों से सर्वलोक स्पर्श करते हैं, क्योंकि इन जीवों के सर्वत्र गमनागमन के प्रति कोई विरोध नहीहै।

अब बादरवायुकायिकपर्याप्त और अपर्याप्त जीवों का स्पर्शन प्ररूपित करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर वायुकायिक और उसके ही अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।८२।।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।८३।।

उपर्युक्त जीव समुद्घात व उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।८४।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों से लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।८५।।

अथवा सर्वलोक स्पर्श करते हैं।।८६।।

बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।८७।।

उपर्युक्त जीव स्वस्थान पदों से लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।८८।।

समुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।८९।।

उक्त पदों की अपेक्षा लोक का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।९०।।

अथवा उपर्युक्त जीवों द्वारा समुद्घात व उपपाद से सर्व लोक स्पृष्ट है।।९१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन बादरवायुकायिकाः अपर्याप्ताश्च स्वस्थानैः लोकस्य संख्यातभागं स्पृशन्ति, पंचरज्जुबाहल्यरज्जुप्रतरमापूर्यावस्थानात्। लोकान्तेऽष्टपृथिवीनामधोऽपि अवस्थानमस्ति, किन्तु तदेतस्यासंख्यातभागमात्रमस्ति। वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः, नर-तिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोकः स्पृष्टः।**

बादरवायुकायिकापर्याप्तैः स्वस्थानैः अतीतवर्तमानाभ्यां पंचरज्जुबाहल्यरज्जुप्रतरमापूर्य तिष्ठन्ति अतः संख्यातभागं स्पृशन्ति। एतैरेव वेदना-कषाय-मारणान्तिकोपपादैः त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणः स्पृष्टः।

मारणान्तिकोपपादैः सर्वलोकः वर्तमाने किन्न स्पृश्यते ?

न, पंचरज्जुबाहल्यरज्जुप्रतरं मुक्त्वान्यत्र मारणान्तिकोपपादान् क्रियमाणजीवानां सुष्ठु स्तोकत्वोपलंभात्। वैक्रियिकपदेन क्षेत्रवत्।

मारणान्तिकोपपादाभ्यां सर्वलोको वा स्पृष्टः, अतीतकालविवक्षितत्वात्।

एवं द्वितीयस्थले बादरकायिकस्थावरकायजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन विंशतिसूत्राणि गतानि।

इदानीं वनस्पतिकायिकनिगोदजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से बादर वायुकायिक और अपर्याप्त जीव लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं, क्योंकि पाँच राजू बाहल्यरूप राजू प्रतर को पूर्ण कर उन जीवों का अवस्थान होता है। लोक के अन्त में एवं आठ पृथिवियों के नीचे भी उनका अवस्थान है, किन्तु वह इसके असंख्यातवाँ भाग मात्र है। वेदना-कषाय और वैक्रियिक पदों से तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग, मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक स्पर्श किया जाता है।

बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीव स्वस्थान पदों से अतीत और वर्तमानकालों की अपेक्षा पाँच राजू बाहल्यरूप राजू प्रतर को पूर्ण करके रहते हैं, अतः संख्यातवाँ भाग स्पर्श करते है। इसीलिए वेदना-कषाय-मारणान्तिक और उपपाद पदों से तीन लोकों का संख्यातवाँ भाग तथा मनुष्यलोक एवं तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्शित होता है।

शंका—मारणान्तिक समुद्घात व उपपाद पदों से वर्तमान में सर्वलोक स्पर्श क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पाँच राजू बाहल्यरूप राजु प्रतर को छोड़कर अन्यत्र मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद को करने वाले जीव बहुत थोड़े पाये जाते हैं। वैक्रियिक पद की अपेक्षा क्षेत्र के समान प्ररूपणा जानना चाहिए।

मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि अतीतकाल की विवक्षा है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बादर स्थावरकायिक जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले बीस सूत्र पूर्ण हुए।

अब वनस्पतिकायिक निगोद जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक, निगोदजीव, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात व उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।९२।।

सव्वलोगो।।९३।।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।९४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।९५।।

समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।९६।।

सव्वलोगो।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन वनस्पतिकायिका निगोदजीवाः, सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः सूक्ष्मनिगोदजीवाः, एषामेव पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च स्वस्थानसमुद्घात-उपपादपदैः सर्वलोकं स्पृशन्ति, आनन्त्यात्, सर्वत्र जल-स्थलाकाशेषु अवस्थानं प्रति विरोधाभावाच्च।**

बादरवनस्पतिकायिका बादरनिगोदजीवा एषामेव पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च स्वस्थानैः लोकस्यासंख्यातभागं स्पृशन्ति, अष्टपृथिवीः एवाश्रित्यावस्थानात्। मारणान्तिकोपपादाभ्यां अतीतवर्तमानकालयोः सर्वलोकं स्पृशन्ति, सर्वलोकापूरणात्।

एवं तृतीयस्थले बादरवनस्पतिकायिक-निगोदजीवानां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

इदानीं त्रसकायिकजीवस्पर्शनकथनाय सूत्रमवतार्यते —

उपर्युक्त जीव उक्त पदों से सर्व लोक का स्पर्श करते हैं।।९३।।

बादर वनस्पतिकायिक व बादर निगोद जीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।९४।।

पूर्वोक्त जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।९५।।

समुद्घात व उपपाद पदों से उक्त जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।९६।।

समुद्घात व उपपाद पदों से उक्त जीवों द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से वनस्पतिकायिक निगोदिया जीव, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्मनिगोद जीव और इन्हीं के पर्याप्त और अपर्याप्त जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से सर्वलोक का स्पर्श करते हैं, क्योंकि वे अनन्त हैं तथा जल, स्थल व आकाश में सर्वत्र उनके अवस्थान के प्रति कोई विरोध नहीं है।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोदिया जीव तथा उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव स्वस्थान पदों से लोक के असंख्यातवें भाग को स्पर्श करते हैं, क्योंकि आठों पृथिवियों का ही आश्रय करके उनका अवस्थान पाया जाता है। मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों से अतीत और वर्तमानकालों में सर्वलोक का स्पर्श करते हैं, क्योंकि उनके द्वारा सम्पूर्ण लोक पूर्ण किया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में बादरवनस्पतिकायिक निगोदिया जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब त्रसकायिक जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्तभंगो।।९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन त्रसजीवाः त्रसकायिकपर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च सामान्येन पंचेन्द्रिय-पंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तवत् स्पृशन्ति। एतत्कथनं द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेनैव, पर्यायार्थिकनयापेक्षयास्ति किंचिदन्तरं। त्रसेषु विकलेन्द्रियाः अपि गर्भिता भवन्ति इति। तत इंद्रियमार्गणापेक्षया ज्ञात्वा अत्र वक्तव्यं।**

तात्पर्यमेतत्—एतत्स्थावरकाय-त्रसकायजीवानां स्पर्शनं ज्ञात्वा सततं चिन्तनीयं, यत्-त्रसपर्यायेष्वपि पंचेन्द्रियत्वं मनुष्यत्वं च संप्राप्य रत्नत्रयं लब्ध्वा एष प्रयासो विधेयः, पुनः अस्माकं स्थावरकायो न भवेत् परंपरया सिद्धालयं लप्स्यामहे वयम्। पुनश्च चिच्चैतन्यस्वरूपमात्मानं भावयितुं कामयामहे।

उक्तं च श्रीपद्मनन्द्याचार्येण— चिदानंदैकसद्भावं, परमात्मानमव्ययम्।
प्रणमामि सदा शान्तं, शान्तये सर्वकर्मणाम्[१]।।१।।

एवं चतुर्थस्थले त्रसकायिकस्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे क्षेत्रानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों के स्पर्शन का निरूपण पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के समान है।।९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से त्रसजीव, त्रसकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सामान्य से पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त के समान क्षेत्र को स्पर्श करते हैं। यह कथन द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन से ही है, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा कुछ अन्तर है। त्रस जीवों में विकलेन्द्रिय जीव भी गर्भित रहते हैं। उसके पश्चात् इन्द्रियमार्गणा की अपेक्षा जानकर यहाँ कथन करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—उन स्थावरकाय और त्रसकाय जीवों का स्पर्शन जानकर सदैव चिंतन करना चाहिए कि त्रस पर्यायों में भी पंचेन्द्रियपना और मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके रत्नत्रय पाकर हम ऐसा प्रयास करें कि पुनः हमें स्थावरकाय प्राप्त न होने पाए तथा परम्परा से हम सिद्धालय को प्राप्त करें। पुनश्च चिच्चैतन्यस्वरूप आत्मा की भावना हेतु हम इच्छा करते हैं।

श्री पद्मनंदि आचार्य ने कहा है—

श्लोकार्थ—चिदानंद एकसद्भावरूप, अव्यय—शाश्वत एवं परमशांत परमात्मा को मैं सर्व कर्मों की शांति—समाप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।।१।।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में त्रसकायिक जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा स्पर्शनानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका-एकत्वाधिकार, श्लोक १।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ पंचभिः स्थलैः त्रिंशत्सूत्रैः स्पर्शनानुगमे योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले मनोवचनयोगिनां स्पर्शनकथनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः परं द्वितीयस्थले काययोगिनां औदारिकयोगिनां च स्पर्शननिरूपणत्वेन ''कायजोगि'' इत्यादि सूत्रपंचकं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले वैक्रियिककाययोगिनां स्पर्शनकथनत्वेन ''वेउव्विय'' इत्यादिसूत्रदशकं। तदनंतरं चतुर्थस्थले आहारकाययोगिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''आहार'' इत्यादिसूत्रषट्कं। ततः परं पंचमस्थले कार्मणयोगिनां स्पर्शनकथनमुख्यत्वेन ''कम्मइय'' इत्यादिना सूत्रद्वयमिति समुदायपातनिका भवति।

अधुना पंचमनोयोगि-पंचवचनयोगिनां स्पर्शनप्ररूपणाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।९९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१००।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।१०१।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१०२।।

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब पाँच स्थलों में तीस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में मनोयोगी एवं वचनयोगी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में सामान्य काययोगी एवं औदारिककाययोगी जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''कायजोगि'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् तृतीय स्थल में वैक्रियिक काययोगियों का स्पर्शन बतलाने वाले ''वेउव्विय'' इत्यादि दश सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में आहारककाययोगियों का स्पर्शन निरूपण करने वाले ''आहार'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः पंचमस्थल में कार्मणकाययोगियों का स्पर्शन कथन करने वाले ''कम्मइय'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवों का स्पर्शन प्ररूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणानुसार पाँच मनोयोगी और पाँच वचनयोगी जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।९९।।

पूर्वोक्त जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।१००।।

अथवा उक्त जीव स्वस्थान पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।।१०१।।

पूर्वोक्त जीवों द्वारा समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१०२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१०३।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।।१०४।।

उववादो णत्थि।।१०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थानेनार्पितजीवैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। एष वा शब्दस्यार्थः। विहारवत्स्वस्थानेन चतुर्दशभागेषु अष्टभागा देशोनाः स्पृष्टाः, अष्टरज्जुबाहल्यलोकनाल्यां मनोवचनयोगिनां विहारोपलंभात्।**

आहारतैजसपदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातैः अष्टचतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः, अष्टरज्ज्वायतलोकनाल्यां सर्वत्रातीते काले वेदना-कषायविक्रियमाणानां उपलंभात्। मारणान्तिकेन सर्वलोकः स्पृष्टः।

मनोवचनयोगानामुपपादभावात् एषां योगसहितानामुपपादो नास्ति।

एवं प्रथमस्थले मनोवचनयोग-सहितानां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्।

इदानीं काययोगिनां औदारिकमिश्रौदारिककाययोगिस्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

पूर्वोक्त जीवों द्वारा समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।१०३।।

अथवा उन्हीं जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग या सर्व लोक स्पृष्ट हैं।।१०४।।

पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवों के उपपाद पद नहीं होता है।।१०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थान से सहित जीवों के द्वारा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह 'वा' शब्द का अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान के द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि आठ राजू बाहल्ययुक्त लोकनाली में मनोयोगी-वचनयोगी जीवों का विहार पाया जाता है।

आहारकसमुद्घात और तैजससमुद्घात पदों की अपेक्षा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मानुषक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि आठ राजु आयत लोकनाली में सर्वत्र अतीतकाल में वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।

मनोयोगी और वचनयोगी जीवों के उपपाद का अभाव होने से इन योगसहित जीवों के उपपाद नहीं है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनो-वचनयोग सहित जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब काययोगी जीवों में औदारिककाय और औदारिकमिश्रकाययोगियों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१०६।।

सव्वलोगो।।१०७।।

ओरालियकायजोगी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१०८।।

सव्वलोगो।।१०९।।

उववादं णत्थि।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिकपदैः वर्तमानातीतकालयोः इमे सामान्यकाय-योगिनः औदारिकमिश्रयोगिनश्च सर्वलोकं स्पृशंति, सर्वत्र गमनागमनावस्थानं प्रति विरोधाभावात्। विहार वत्स्वस्थान-वैक्रियिकपदाभ्यां वर्तमानक्षेत्रवत्। अतीतेन अष्टचतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः। वैक्रियिकपदेन त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः। तैजसाहारपदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः।**

अत्र वाशब्देन विना कथमेषोऽर्थोऽत्र व्याख्यायते ?

नैष दोषः, एतस्य सूत्रस्य देशामर्शकत्वात्।

सूत्रार्थ—

काययोगी और औदारिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१०६।।

उपर्युक्त जीव उक्त पदों से सर्वलोक स्पर्श करते हैं।।१०७।।

औदारिक काययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१०८।।

औदारिककाययोगी जीव स्वस्थान व समुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श करते हैं।।१०९।।

औदारिककाययोग में उपपाद पद नहीं होता है।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात पदों से वर्तमान व अतीतकालों में ये सामान्य काययोगी एवं औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सर्वलोक का स्पर्श करते हैं, क्योंकि उन जीवों के सर्वत्र गमनागमन और अवस्थान में कोई विरोध नहीं है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिक समुद्घात पदों से वर्तमान क्षेत्र के समान है और अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है। वैक्रियिक पद की अपेक्षा तीन लोकों के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है। तैजस समुद्घात और आहारकसमुद्घात पदों से चार लोकों के असंख्यातवें भाग व मानुषक्षेत्र के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है।

शंका—यहाँ प्रस्तुत सूत्र में वा शब्द के बिना यहाँ इस अर्थ का व्याख्यान कैसे किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है।

विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिक-तैजसाहारपदानि औदारिकमिश्रे न सन्ति।

औदारिककाययोगिभिः स्वस्थानस्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिकपदैः वर्तमानातीतकालयोः सर्वलोकः स्पृष्टः, विहारवत्स्वस्थानेन वर्तमानक्षेत्रवत्। इदं सूत्रं देशामर्शकं कृत्वा सर्वमिदं व्याख्यानं सूत्रारूढं कर्तव्यं। उपपादकाले औदारिककाययोगस्याभावात् अत्र उपपादमपि नास्ति।

एवं द्वितीयस्थले औदारिकयोगसहितानां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

संप्रति वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोगिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते —

वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१११।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।११२।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।।११३।।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।११४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।११५।।

अट्ठ-तेरहचोद्दसभागा देसूणा।।११६।।

विहारवत्स्वस्थान, वैक्रियिकसमुद्घात, तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात पद औदारिकमिश्रयोग में नहीं होते हैं।

स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिक समुद्घात पदों से औदारिककाययोगी जीवों ने वर्तमान और अतीतकालों में सर्वलोक का स्पर्श किया है। विहारवत्स्वस्थान से वर्तमान काल की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र के समान है। यह सूत्र देशामर्शक करके यह सम्पूर्ण व्याख्यान सूत्रारूढ़ करना चाहिए। उपपाद काल में औदारिककाययोग का अभाव होने से वहाँ उपपाद नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में औदारिककाययोग सहित जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का स्पर्शन प्रतिपादित कसे हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१११।।

वैक्रियिककाययोगी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।११२।।

अतीतकाल की अपेक्षा वैक्रियिककाययोगी जीव कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।।११३।।

उक्त जीव समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।११४।।

उक्त जीव समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।११५।।

उक्त जीव अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह और तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।।११६।।

उववादं णत्थि।।११७।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।११८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।११९।।

समुग्घाद-उववादं णत्थि।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**वैक्रियिकयोगिभिः स्वस्थानैः लोकस्यासंख्यातभागः, वर्तमानकालप्रधानत्वात्। अतीतकाले एतैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणश्च स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थानेन अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, अष्टरज्जुबाहल्यलोकनाल्यां वैक्रियिककाययोगेन देवानां विहारोपलंभात्। एतेनैव तृतीयनरकपर्यंतं गत्वा देवाः नारकान् संबोधयन्ति।**

वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। मारणान्तिकेन त्रयोदशचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः।

कुतः ?

मेरुमूलादुपरि सप्त अधः षड्रज्जु-आयामलोकनालिमापूर्य वैक्रियिककाययोगेनातीते काले कृतमारणान्तिकजीवानामुपलंभात्। एषां उपपादं नास्ति, तत्र वैक्रियिककाययोगाभावात्।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां विहारवत्स्वस्थानं नास्ति।

वैक्रियिककाययोगी जीवों में उपपाद पद नहीं होता है।।११७।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।११८।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।११९।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के समुद्घात और उपपाद नहीं होते हैं।।१२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वैक्रियिककाययोगी जीवों के द्वारा स्वस्थानपदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया गया है, क्योंकि वहाँ वर्तमानकाल की प्रधानता है। अतीतकाल में इनके द्वारा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया गया है। विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है, क्योंकि आठ राजू मोटी लोकनाली में वैक्रियिककाययोग से देवों का विहार पाया जाता है। इसी कारण से तृतीय नरक पर्यन्त जाकर देवगण नारकियों को सम्बोधन प्रदान करते हैं।

वेदना-कषाय और वैक्रियिकपदों के द्वारा जीव आठ बटे चौदह भाग का स्पर्श करते हैं। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श करते हैं।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि मेरुमूल से ऊपर सात और नीचे छह राजू आयाम वाली लोकनाली को पूर्ण करके वैक्रियिककाययोग के साथ अतीतकाल में मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त जीव पाये जाते हैं। उन जीवों का उपपाद नहीं है, क्योंकि वहाँ वैक्रियिककाययोग का अभाव है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवों के विहारवत्स्वस्थान नहीं है।

कश्चिदाशंकते — भवतु नाम, मारणान्तिकोपपादयोरभावः, एतयोर्द्वयोर्वैक्रियिकमिश्रकाययोगेन सह विरोधाभावात्। वैक्रियिकस्यापि तत्राभावो भवतु, अपर्याप्तकाले तदसंभवात्। न पुनः वेदना-कषाययोस्तत्रासंभवः, नारकेषु अपर्याप्तकाले एव तयोरुपलंभात् ?

अत्र परिहरति आचार्यदेवः — भवतु नाम नारकेष्वपर्याप्तकाले तयोर्वेदनाकषाययोः संभवः, किन्तु तत्र स्वस्थानक्षेत्रादधिकं क्षेत्रं न लभ्यते इति तयोः प्रतिषेधः कृतः।

किमिति न लभ्यते ?

जीवप्रदेशानां तत्र शरीरत्रिगुणविस्फुरणाभावात्।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिक-तन्मिश्रयोगधारिणां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

अधुना आहारकाययोगिनां स्पर्शनकथनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१२१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१२२।।

उववादं णत्थि।।१२३।।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदों का अभाव भले ही हो, क्योंकि इन दोनों का वैक्रियिकमिश्रकाययोग के साथ विरोध का अभाव है। इसी प्रकार वैक्रियिकसमुद्घात का भी उनके अभाव भले ही होवे, क्योंकि अपर्याप्तकाल में वैक्रियिकसमुद्घात का होना असंभव है। किन्तु वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की उनमें असंभावना नहीं है, क्योंकि नारकियों के ये दोनों समुद्घात अपर्याप्तकाल में ही पाये जाते हैं ?

यहाँ आचार्यदेव इस शंका का परिहार करते हैं कि —

नारकियों के अपर्याप्तकाल में वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों की संभावना भले ही हो, किन्तु उनमें स्वस्थान क्षेत्र से अधिक क्षेत्र नहीं पाया जाता है। इसी कारण उनका प्रतिषेध किया है।

शंका — स्वस्थान क्षेत्र से अधिक क्षेत्र वहाँ क्यों नहीं पाया जाता है ?

समाधान — क्योंकि उनमें जीव प्रदेशों के शरीर से तीन गुने बिस्फुरण का अभाव है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रयोगधारी जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारककाययोगियों का स्पर्शन बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आहारककाययोगी जीव स्वस्थान और समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१२१।।

आहारककाययोगी जीव उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।१२२।।

आहारककाययोगी जीवों के उपपाद पद नहीं होता है।।१२३।।

आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१२४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१२५।।

समुग्घाद-उववादं णत्थि।।१२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**वर्तमानस्पर्शनं क्षेत्रवत्। अतीतापेक्षया स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषायपदैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। मारणान्तिकेन चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, मानुषक्षेत्रादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। अत्रोपपादं नास्ति, अत्यन्ताभावेनापसारितत्वात्। आहारमिश्रकाययोगे विहारवत्स्वस्थानं नास्ति। समुद्घातोपपादौ च न स्तः, अत्यन्ताभावेन निराकृतत्वात्।**

एवं चतुर्थस्थले आहार-तन्मिश्रयोगसहितानां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

कार्मणकाययोगसहितानां स्पर्शनकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१२७।।

सव्वलोगो।।१२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**''विग्रहगतौ कर्मयोगः'' इति निमित्तेन सर्वस्य संसारिप्राणिनः विग्रहगतौ कार्मणकाययोगोऽस्ति इति ते जीवा सर्वलोकं स्पृशन्ति।**

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१२४।।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।१२५।।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवों के समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं।।१२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— वर्तमानकाल का स्पर्शन क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। अतीतकाल की अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात और कषायसमुद्घात पदों से आहारककाययोगी जीवों के द्वारा चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मानुषक्षेत्र का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया गया है। मारणान्तिक समुद्घात से चार लोकों के असंख्यातवें भाग और मानुषक्षेत्र से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है। यहाँ उपपाद पद नहीं है, क्योंकि वह अत्यन्ताभाव रूप से बहुत ही दूर है। आहारकमिश्रकाययोग में विहारवत्स्वस्थान नहीं है। समुद्घात और उपपाद नहीं होते हैं, क्योंकि यहाँ भी वे अत्यन्तभाव से निराकृत—बहुत दूर हैं।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में आहारक और आहारकमिश्रकाययोग सहित जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब कार्मणकाययोग सहित जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कार्मणकाययोगी जीव कितने क्षेत्र को स्पर्श करते हैं ?।।१२७।।

कार्मणकाययोगियों द्वारा सर्वलोक का स्पर्श किया जाता है।।१२८।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— ''विग्रहगति में कार्मणकाययोग रहता है'' इस निमित्त से सभी संसारी प्राणी के विग्रहगति में कार्मणकाययोग होता है। इस प्रकार वे जीव सम्पूर्ण लोक का स्पर्श करते हैं।

तात्पर्यमेतत्—ये केचिन्महापुरुषाः पंचेन्द्रियाणि संयम्य स्वमनोमर्कटं वशीकुर्वंते त एव योगं निरुध्य अयोगिनो भूत्वा सर्वकर्माणि निहन्ति, सिद्धालयं गत्वानन्तानंतकालं सुखमनुभवन्तीति योगमार्गणास्पर्शनपठनस्य फलं ज्ञातव्यं।

तीर्थकराणां योगनिरोधकालं च शास्त्रे श्रूयते—

आद्यश्चतुर्दशदिने विनिवृत्तयोगः, षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशा, मासेन ते यतिवरास्त्वभवन् वियोगाः[१]।।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे क्षेत्रानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकार समाप्तः।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिःस्थलैः अष्टादशसूत्रैः स्पर्शनानुगमे वेदमार्गणानाम् पंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पुरुष-स्त्रीवेदानां स्पर्शनकथनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिना नव सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले नपुंसकवेदानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''णवुंसयवेदा'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं अपगतवेदानां स्पर्शनकथनत्वेन ''अवगद'' इत्यादिसूत्रसप्तकमिति समुदायपातनिका भवति।

तात्पर्य यह है कि—जो कोई महापुरुष पाँचों इन्द्रियों को संयमित करके अपने मनरूपी बन्दर को वश में कर लेते हैं, वे ही योगों का निरोध करके अयोगी होकर सर्वकर्मों को नष्ट करते हैं और सिद्धालय में जाकर वहाँ अनन्तानन्त काल तक सुख का अनुभव करते हैं, ऐसा योगमार्गणा के अन्तर्गत स्पर्शनानुगम प्रकरण के पढ़ने का फल जानना चाहिए।

जैसा कि तीर्थंकरों के योग निरोध का काल शास्त्र में सुना जाता है—

श्लोकार्थ—भगवान ऋषभदेव चौदह दिन का योग निरोध करके सिद्ध हुए एवं भगवान महावीर बेला दो दिन का योग निरोध करके मोक्ष को प्राप्त हुए। शेष बाइस तीर्थंकरों ने एक-एक माह का योग निरोध करके अघातिया कर्मों का नाश करके मोक्षधाम को प्राप्त किया है।।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा स्पर्शनानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में योगमार्गणा नामक चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में अठारह सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में नपुंसकवेदी जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु ''णवुंसयवेदा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में अपगतवेदी जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु ''अवगद'' इत्यादि सात सूत्र हैं, यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

---

१. निर्वाणभक्ति, श्रीपूज्यपादकृत-श्लोक २६।

अधुना स्त्री-पुरुषवेदधारिणां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रनवकमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१२९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१३०।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।।१३१।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१३२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१३३।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।।१३४।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१३५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१३६।।

सव्वलोगो वा।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्वस्थानेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। अत्र वानव्यन्तरज्योतिष्काणां विमानैः रुद्धक्षेत्रं गृहीत्वा लोकस्य**

अब स्त्रीवेद और पुरुषवेदधारी जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु नौ सूत्र अवतरित हो रहे हैं—

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१२९।।

स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।१३०।।

अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों ने स्वस्थान पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है।।१३१।।

स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीव समुद्घातों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं?।।१३२।।

समुद्घात की अपेक्षा उक्त जीव लोक का असंख्यातवां भाग स्पर्श करते हैं।।१३३।।

अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का अथवा सर्वलोक का स्पर्श किया है।।१३४।।

उपपाद पद की अपेक्षा स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१३५।।

उपपाद पद की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।१३६।।

अथवा, उपपाद पद की अपेक्षा अतीतकाल में उक्त जीवों द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान से उक्त जीवों ने तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है। यहाँ वानव्यन्तर और ज्योतिषी

संख्यातभागः साधयितव्यः। विहारवत्स्वस्थानैः पुनः अष्ट चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, देवीभिः सह देवानामष्ट चतुर्दशभागेषु अतीते काले संचारोपलंभात्।

वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदपरिणतैः अष्ट चतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः।

कुतः ?

देवीभिः सह अष्ट चतुर्दशभागेषु भ्रमन्तां देवानां सर्वत्र वेदना-कषाय-विक्रियाणामुपलंभात्। तैजसाहारसमुद्घातौ स्त्रीवेदे — भावस्त्रीवेदे मुनौ अपि न स्तः। पुरुषवेदे ओघवत् व्यवस्थास्ति।

मारणान्तिकसमुद्घातेन सर्वलोकः स्पृष्टः स्त्रीवेदेन पुरुषवेदेन च, किंच तिर्यक्षु मनुष्येषु पुरुषवेदिनां स्त्रीवेदिनां सर्वलोके मारणान्तिकसंभवात्।

वा शब्दः किमर्थमत्र ?

समुच्चयार्थोऽस्ति। देवदेवीनां मारणान्तिकं गृह्यमाणे नव चतुर्दशभागा भवन्तीति ज्ञापनार्थं वा शब्दः प्ररूपितः।

उपपादेन सर्वदिशाभ्य आगत्य स्त्रीपुरुषवेदेषु उत्पद्यमानानामुपलंभात्। देवान् देवीश्चाश्रित्य भण्यमाने त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, षट् चतुर्दशभागाः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः इति ज्ञापनार्थं सूत्रे वा शब्दः गृहीतोऽस्ति।

एवं प्रथमस्थले स्त्रीपुरुषवेदिनां स्पर्शनकथनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

देवों के विमानों से रुद्ध क्षेत्र को ग्रहण करके तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग सिद्ध करना चाहिए। पुनः विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है, क्योंकि देवियों के साथ देवों का आठ बटे चौदह भागों में अतीतकाल की अपेक्षा गमन पाया जाता है।

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से परिणत स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।

प्रश्न — क्यों ?

उत्तर — क्योंकि देवियों के साथ आठ बटे चौदह भाग में भ्रमण करने वाले देवों के सर्वत्र वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात पाये जाते हैं। तैजस और आहारक समुद्घात स्त्रीवेदी (भावस्त्रीवेद में) मुनि के भी नहीं होते हैं। पुरुषवेद में स्पर्शन की प्ररूपणाव्यवस्था गुणस्थान के समान होती है।

मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा पुरुषवेदी और स्त्रीवेदियों के द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि तिर्यंच और मनुष्य पुरुषवेदी और स्त्रीवेदियों के सम्पूर्ण लोक में मारणान्तिक समुद्घात की संभावना पाई जाती है।

शंका — सूत्र में वा शब्द का प्रयोग किसलिए किया गया है ?

समाधान — वा शब्द का प्रयोग समुच्चय के लिए किया गया है। अथवा देव-देवियों के मारणान्तिक समुद्घात को ग्रहण करने पर नौ बटे चौदह भाग होते हैं, इस स्पर्शन विशेष के ज्ञान हेतु वा शब्द का प्रयोग किया गया है।

उपपाद पद की अपेक्षा सभी दिशाओं से आकर स्त्री व पुरुष वेदियों में उत्पन्न होने वाले जीव पाये जाते हैं। देवों और देवियों का आश्रय कर स्पर्शन के कहने पर तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, छह बटे चौदह भाग और तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट हैं, इसके ज्ञापनार्थ सूत्र में वा शब्द का ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में भावस्त्री एवं पुरुषवेदी जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना नपुंसकवेदानां स्पर्शनज्ञापनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१३८।।

सव्वलोगो।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादैः अतीतवर्तमानयोः सर्वलोकः स्पृष्टः, नपुंसकवेदिभिः जीवैः अत्रैकेन्द्रियजीवानां विवक्षितत्वात्। विहारवत्स्वस्थान-वैक्रियिकसमुद्घाताभ्यां अतीते काले त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। नवरि वैक्रियिकपदेन त्रिलोकानां संख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणः स्पृष्टः, वायुकायिकानां विक्रियमाणानां पंच चतुर्दशभागमात्रस्पर्शनस्योपलंभात्। तैजसाहारौ भावनपुंसकेवेदेषु मुनिषु अपि न स्तः।**

एवं द्वितीयस्थले नपुंसकवेदिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं अपगतवेदनां स्पर्शनकथनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१४०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१४१।।

अब नपुंसकवेदी जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ —

नपुंसकवेदी जीवों ने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१३८।।

नपुंसकवेदी जीवों ने उक्त पदों से सर्वलोक स्पर्श किया है।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात और उपपाद पदों से अतीत व वर्तमानकाल की अपेक्षा नपुंसकवेदियों द्वारा सर्वलोक का स्पर्श किया गया है। क्योंकि यहाँ नपुंसकवेदी जीवों से एकेन्द्रिय जीवों का विवक्षा है। विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से अतीतकाल में तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया गया है। विशेषता इतनी है कि वैक्रियिक पद से तीनों लोकों के संख्यातवें भाग तथा मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया गया है, क्योंकि विक्रिया करने वाले वायुकायिक जीवों के पाँच बटे चौदह भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है। तैजस व आहारक समुद्घात भाव नपुंसकवेदी मुनियों के भी नहीं होते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में नपुंसकवेदी (भावनपुंसकवेदी) जीवों का स्पर्शन निरूपित करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब अपगतवेदियों का स्पर्शन बतलाने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।१४०।।

अपगतवेदी जीव स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।१४१।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१४२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१४३।।

असंखेज्जा वा भागा।।१४४।।

सव्वलोगो वा।।१४५।।

उववादं णत्थि।।१४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। कपाटसमुद्घातगतैः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः संख्यातगुणो वा स्पृष्टः। प्रतरगतानां स्पर्शनं—लोकस्यासंख्यातभागेषु बहुभागः स्पृष्टः, वातवलयेषु जीवप्रदेशानां प्रवेशाभावात्। लोकपूरणसमुद्घातापेक्षया सर्वलोकः स्पृष्टः। उपपादं एषामपगतवेदानां नास्ति, अत्यन्ताभावेनापसारितत्वात्।**

तात्पर्यमेतत्—षट्खण्डागमग्रन्थेषु सर्वत्र वेदमार्गणायां स्त्रीवेदाः नपुंसकवेदाश्च भाववेदिनोऽपि भवन्तीति ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले अपगतवेदिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

उक्त जीवों ने समुद्घात की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१४२।।

उक्त जीवों ने समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१४३।।

अथवा उक्त जीवों द्वारा समुद्घात से लोक का असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट है।।१४४।।

अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।१४५।।

अपगतवेदियों के उपपाद नहीं होता है।।१४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। कपाट समुद्घात को प्राप्त केवलियों के द्वारा तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग अथवा संख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया जाता है। प्रतरसमुद्घात को प्राप्त जीवों का स्पर्शन-लोक के असंख्यात भागों में उनके द्वारा बहुभाग स्पृष्ट है, क्योंकि वातवलयों में जीवप्रदेशों के प्रवेश का अभाव पाया जाता है। लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा सम्पूर्ण लोक स्पृष्ट है। इन वेदरहित जीवों के उपपाद नहीं होता है, क्योंकि उनके वह उपपाद अत्यन्ताभावरूप से छूट चुका है।

तात्पर्य यह है कि—षट्खण्डागम ग्रंथों में सर्वत्र वेदमार्गणा में स्त्रीवेद वाले और नपुंसक वेद वाले भाववेदी भी होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में वेदरहित जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा स्पर्शनानुगम नामके महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां कषायमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कषायसहितानां स्पर्शनकथनत्वेन ''कसायाणुवादेण'' इत्यादिना एकं सूत्रं। तदनु द्वितीयस्थले कषायरहितानां जीवानां स्पर्शनकथनमुख्यत्वेन ''अकसाई'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका।

अधुना चतुर्विधकषायसहितानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमेकमवतरति —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा नपुंसकवेदानां स्पर्शनं सर्वलोकः कथितस्तथैवात्रापि सर्वलोको ज्ञातव्यः। वैक्रियिकपदेन तु तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, अतीतापेक्षया अष्टचतुर्दशभागा देशोनाः ज्ञातव्याः।**

एवं प्रथमस्थले कषायाविष्टजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अकषायानां जीवानां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रमवतरति —

अकसाई अवगदवेदभंगो।।१४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कषायोपशान्तानां उपशान्तकषायगुणस्थानवर्तिनां क्षीणकषायाद्ययोगिपर्यन्तानां**

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में कषायसहित जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला ''कसायाणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु ''अकसाई'' इत्यादि एक सूत्र है, यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चारों प्रकार की कषाय से सहित जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों की प्ररूपणा नपुंसकवेदियों के समान है।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार नपुंसकवेदी जीवों का स्पर्शन सम्पूर्ण लोक कहा गया है। उसी प्रकार यहाँ भी सम्पूर्ण लोक जानना चाहिए। वैक्रियिकपद से तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में कषाय से सहित जीवों का स्पर्शन बतलाने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब कषायरहित जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अकषायी-कषायरहित की प्ररूपणा अपगतवेदियों के समान है।।१४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी कषाय जहाँ उपशमित हो गई हैं, ऐसे उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती और

स्पर्शनक्षेत्रं गुणस्थानवद् ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले कषायविरहितानां स्पर्शननिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकार समाप्तः।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ त्रिभिः स्थलैः विंशतिसूत्रैः स्पर्शनानुगमे ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनां स्पर्शनकथनत्वेन ''णाणा-'' इत्यादिना दश सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानधारिणां जीवानां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''आभिणि-'' इत्यादिषट् सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले मनःपर्ययकेवलज्ञानिनोः स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''मणपज्जव-'' इत्यादिना सूत्रचतुष्टयं इति समुदायपातनिका।

अधुना त्रिविधाज्ञानवर्तिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१४९।।

सव्वलोगो वा।।१५०।।

क्षीणकषाय गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त भगवन्तों का स्पर्शन क्षेत्र गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में कषायरहित जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा स्पर्शनानुगम नामके महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में बीस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीन प्रकार के अज्ञानियों का स्पर्शन कथन करने वाले ''णाणा'' इत्यादि दश सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के ज्ञानियों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''आभिणि'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में मनःपर्यय और केवलज्ञानियों का स्पर्शन प्रतिपादित करने वाले ''मणपज्जव'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम तीनों अज्ञानवर्ती जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणानुसार मति अज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीवों ने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१४९।।

मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी जीवों ने उक्त पदों से सर्व लोक स्पर्श किया है।।१५०।।

विभंगणाणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१५१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५२।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।।१५३।।

समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१५४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१५५।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा।।१५६।।

सव्वलोगो वा।।१५७।।

उववादं णत्थि।।१५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च जीवा एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः चतुर्गतिभ्रमणशीलाः स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादैः अतीतवर्तमानकालयोः सर्वलोकं स्पृशन्ति स्वभावात्। विहारवत्स्वस्थानपदेन अतीतापेक्षया अष्टचतुर्दशभागाः, वर्तमानापेक्षया तिर्यक्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। वैक्रियिकपदेनातीतकालेनाष्टचतुर्दशभागः स्पृष्टः मतिश्रुताज्ञानिभिः जीवैः।**

विभंगज्ञानी जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१५१।।

विभंगज्ञानी जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५२।।

अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।१५३।।

समुद्घात की अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१५४।।

समुद्घात की अपेक्षा विभंगज्ञानी जीवों ने लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१५५।।

अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।१५६।।

अथवा सर्वलोक स्पर्श किया है।।१५७।।

विभंगज्ञानी जीवों के उपपाद पद नहीं होता है।।१५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मति अज्ञानी और श्रुताज्ञानी-कुमति-कुश्रुतज्ञानी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त चारों गतियों में भ्रमणशील रहते हैं। उनके द्वारा स्वस्थान, वेदना-कषाय-मारणान्तिक और उपपाद पदों से अतीत व वर्तमानकाल की अपेक्षा सम्पूर्ण लोक का स्पर्श किया गया है, क्योंकि ऐसा स्वभाव से है। विहारवत्स्वस्थान पद से अतीतकाल की अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग एवं वर्तमानकाल की अपेक्षा तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पर्श किया जाता है। वैक्रियिक पद से अतीतकाल की अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग मति-श्रुत अज्ञानियों के द्वारा स्पर्श किया जाता है।

विभंगज्ञानिभिः वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदेन अष्टचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, विहरमाणानां विभंगज्ञानिनां सर्वत्र वेदना-कषाय-विक्रियाणां संभवात्। मारणान्तिकपदेन विभंगज्ञानि-तिर्यग्मनुष्याणां अतीते काले सर्वलोकस्पर्शनोपलंभात्। देवैः नारकैश्च मारणान्तिकमाश्रित्य त्रयोदशचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, इति ज्ञापनार्थं वा शब्दनिर्देशः कृतः।

उपपादमेषां नास्ति, स्वभावादेव।

एवं प्रथमस्थले कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानिनां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्राणि दश गतानि।

इदानीं मतिश्रुतावधिज्ञानिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१५९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१६०।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।।१६१।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१६२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१६३।।

विभंगज्ञानियों के द्वारा वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया गया है, क्योंकि विहार करने वाले विभंगज्ञानियों के सर्वत्र वेदना-समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात संभव हैं। क्योंकि मारणान्तिक पद से विभंगज्ञानी तिर्यंच और मनुष्यों के द्वारा अतीतकाल में सर्वलोक का स्पर्श पाया जाता है। देव व नारकियों के द्वारा मारणान्तिक समुद्घात का आश्रय लेकर तेरह बटे चौदह भाग स्पर्श होते हैं, इसके ज्ञापनार्थ सूत्र में वा शब्द का निर्देश किया है।

इनके उपपाद पद नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में कुमति-कुश्रुत और कुअवधि ज्ञानी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब मति-श्रुत और अवधिज्ञानियों का स्पर्शन बतलाने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवों ने स्वस्थान व समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१५९।।

उपर्युक्त जीवों ने उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१६०।।

अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।१६१।।

उक्त जीवों ने उपपाद पद से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१६२।।

उक्त जीवों ने उपपाद पद से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१६३।।

अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्वस्थानैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। तैजसाहारौ क्षेत्रवत्। विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकैः अष्टचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः।**

उपपादापेक्षया तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतानामारणादिदेवेषूत्पद्यमानानां षट्चतुर्दशभागाः।

कश्चिदाह — अधोलोके द्विरज्जुमात्रमार्गं गत्वा स्थितावस्थायां छिन्नायुष्काणां मनुष्येषूत्पद्यमानानां देवानां उपपादक्षेत्रं किन्न गृह्यते ?

तस्य समाधानमाहाचार्यः — न गृह्यते, तस्य प्रथमदण्डेनोनस्य षट्चतुर्दशभागेषु चैवान्तर्भावात्, तेषां मूलशरीरप्रवेशमन्तरेण तदवस्थायां मरणाभावाच्च।

एवं द्वितीयस्थले त्रिविधज्ञानिनां स्पर्शनकथनत्वेन षट् सूत्राणि गतानि।

संप्रति मनःपर्यय-केवलिनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

मणपज्जवणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१६५।।

अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — स्वस्थान पदों से तीन ज्ञान सहित जीवों के द्वारा तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया गया है। तैजससमुद्घात और आहारक समुद्घात की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण क्षेत्र के समान है। विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया गया है।

उपपाद की अपेक्षा आरण आदि देवों में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों का उत्पादक्षेत्र छह बटे चौदह भाग प्रमाण है।

यहाँ कोई शंका करता है कि —

नीचे अधोलोक में दो राजु मार्ग जाकर स्थित अवस्था में आयु के क्षीण होने पर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले देवों का उत्पाद क्षेत्र क्यों नहीं ग्रहण किया गया है ?

इसका समाधान देते हुए आचार्य देव कहते हैं कि —

नहीं ग्रहण किया जाता है, क्योंकि प्रथम दण्ड से कम उसका छह बटे चौदह भागों में ही अन्तर्भाव हो जाता है तथा मूल शरीर में जीव प्रदेशों के प्रवेश किये बिना उस अवस्था में उनके मरण का अभाव है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के ज्ञानियों का स्पर्शन बतलाने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

मनःपर्ययज्ञानी जीवों ने स्वस्थान और समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१६५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१६६।।

उववादं णत्थि।।१६७।।

केवलणाणी अवगदवेदभंगो।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मनःपर्ययज्ञानिनः स्वस्थानेन समुद्घातेन चातीतापेक्षया चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागं सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणं स्पृशन्ति, स्वभावात्। केवलज्ञानिनां अपगतवेदवद्भंगाः सन्ति, मारणान्तिकपदं च नास्ति, तेषु तस्यास्तित्वविरोधात्।**

तात्पर्यमेतत्—स्वसंवेदनज्ञानबलेन ये संयमिनः स्वात्मानं भावयन्ति त एव शुद्धोपयोगिनो भूत्वा केवलज्ञानमुत्पादयन्ति, एतज्ज्ञात्वा वयमपि शक्त्यनुसारं संयमं पालयित्वा शुद्धात्मानं भावयामः केवलज्ञानज्योतिः प्राप्तये सततमिति।

एवं तृतीयस्थले मनःपर्ययकेवलिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकार समाप्तः।

मनःपर्ययज्ञानी जीवों ने स्वस्थान और समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१६६।।

मनःपर्ययज्ञानियों के उपपाद पद नहीं होता है।।१६७।।

केवलज्ञानी जीवों की प्ररूपणा अपगतवेदियों के समान है।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनःपर्ययज्ञानी जीव स्वस्थान से, समुद्घात से और अतीतकाल की अपेक्षा चार लोकों के असंख्यातवें भाग एवं ढाई द्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र को स्पर्श करते हैं, क्योंकि ऐसा ही उनका स्वभाव है। केवलज्ञानी भगवन्तों के भंग अपगतवेदी जीवों के भंग के समान हैं और उनके मारणान्तिक पद नहीं होता है, क्योंकि केवलज्ञानियों में उसके अस्तित्व का विरोध पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि—स्वसंवेदन ज्ञान के बल से जो संयमी साधु निज आत्मा की भावना भाते हैं, वे ही शुद्धोपयोगी होकर केवलज्ञान को उत्पन्न करते हैं, ऐसा जानकर हम सभी शक्ति के अनुसार संयम का पालन करके केवलज्ञान ज्योति को प्राप्त करने हेतु सतत शुद्धात्मा की भावना भाते हैं।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में मनःपर्यय एवं केवलज्ञानियों का स्पर्शन निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन नवभिः सूत्रैः स्पर्शनानुगमे संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संयमिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''संजमाणु-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले संयतासंयत-असंयतानां स्पर्शनकथनत्वेन ''संजदा-'' इत्यादिसूत्रसप्तकमिति समुदायपातनिका भवति।

संप्रति संयतानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाइ-भंगो।।१६९।।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइय-संजदाणं मणपज्जवणाणिभंगो।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमसूत्रं द्रव्यार्थिकनयमवलम्बते, पर्यायार्थिकनयं पुनः अवलम्ब्यमाने संयताः अकषायितुल्या न भवन्तीति ज्ञातव्यं, अकषायिसंयतेषु वैक्रियिक-तैजसाहारपदानि न सन्ति किन्तु सामान्यसंयतेषु षष्ठगुणस्थानादारभ्यायोगिकेवलिपर्यन्तं इमानि पदानि सन्ति। यथाख्यातशुद्धिसंयतेषु अपि वैक्रियिकतैज-साहारसमुद्घाता न भवन्ति।**

सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारशुद्धि-सूक्ष्मसांपरायिकसंयतानां मनःपर्ययज्ञानिवद्भंगाः, एतदपि

अथ संयममार्गणा अधिकार प्रारंभ

अब दो स्थलों में नौ सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संयमियों का स्पर्शन निरूपण करने वाले ''संजमाणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले ''संजदा'' इत्यादि सात सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संयतों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संयममार्गणानुसार संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवों की प्ररूपणा अकषायी जीवों के समान है।।१६९।।

सामायिक छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत जीवों की प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियों के समान है।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ऊपर कथित प्रथम सूत्र द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करता है पुनः पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेने पर संयतमुनि कषायरहित के समान नहीं होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। कषायरहित संयतों में वैक्रियिकपद, तैजस समुद्घात और आहारकपद नहीं होते हैं, किन्तु सामान्य संयतों में छठे गुणस्थान से आरंभ करके अयोगिकेवली पर्यन्त ये पद पाये जाते हैं। यथाख्यातशुद्धि संयतों में भी वैक्रियिक-तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते हैं।

सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि संयतों के भंग मनःपर्ययज्ञानियों के

कथनं द्रव्यार्थिकनयापेक्षया वर्तते, पर्यायार्थिकनयापेक्षया तु सामायिक-छेदोपस्थापनशुद्धिसंयताः मनःपर्ययज्ञानिसदृशा न भवन्ति। किंच मनःपर्ययज्ञानिषु तैजसाहारपदे न स्तः। सूक्ष्मसांपरायिकसंयतेष्वपि वैक्रियिकपदाभावात् अतस्तेपि न मनःपर्ययज्ञानितुल्या भवन्ति। अतएव सूत्रे यत् कथनं तत्सामान्येन, विशेषेण तु विशेषकथनं ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले संयतानां पंचविधानामपि सामान्यानां च स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना संयतासंयतानामसंयतानां च स्पर्शननिरूपणाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१७१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१७२।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१७३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१७४।।

छचोद्दसभागा वा देसूणा।।१७५।।

उववादं णत्थि।।१७६।।

असंजदाणं णवुंसयभंगो।।१७७।।

समान हैं यह कथन भी द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से है, पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा तो सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत मनःपर्ययज्ञानी के सदृश नहीं होते हैं, क्योंकि मनःपर्ययज्ञानियों में तैजस और आहारक पद नहीं होते हैं। सूक्ष्म साम्परायिक संयतों में भी वैक्रियिक पद का अभाव है अतः वे मनःपर्ययज्ञानी के सदृश नहीं होते हैं। इसलिए सूत्र में जो कथन किया है, वह सामान्य कथन है, विशेष कथन विशेषरूप से जानना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में पाँचों प्रकार के संयमियों का एवं सामान्य संयमियों का स्पर्शन बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयत और असंयत जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

संयतासंयत जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१७१।।

संयतासंयत जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१७२।।

समुद्घातों की अपेक्षा संयतासंयत जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१७३।।

संयतासंयत जीवों ने समुद्घातों की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१७४।।

अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है।।१७५।।

संयतासंयत जीवों के उपपाद पद नहीं होता है।।१७६।।

असंयत जीवों के स्पर्शन का निरूपण नपुंसकवेदियों के समान है।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संयतासंयतानां वर्तमाने क्षेत्रवत्। अतीतकालापेक्षया त्रयाणां लोकानाम-संख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः।**

भवतु नाम, विहारवत्स्वस्थानस्येदं स्पर्शनं, सर्वद्वीप-समुद्रेषु वैरिदेवसंबंधेनातीते काले संयतासंयतानां संभवात्। न स्वस्थानस्य, सर्वद्वीपसमुद्रेषु स्वस्थानस्थसंयतासंयतानामभावात् ?

नैष दोषः, यद्यपि सर्वत्र संयतासंयताः न सन्ति तर्ह्यपि स्वयंप्रभपर्वतस्य परभागे तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्वस्थानस्थितसंयतासंयतानामुपलंभात्।

तात्पर्यमेतत्—स्वयंप्रभपर्वतस्य परभागे स्वयंभूरमणार्धद्वीपे स्वयंभूरमणसमुद्रे च स्थिताः ये केचित् संयतासंयतगुणस्थानवर्तिनो देशसंयताः तिर्यञ्चः ते असंख्याता बहवो वा भवन्ति, तैरेव चतुर्विधदेवानां स्वर्गस्थितदेवानां वा असंख्याताः संख्याः पूरयन्ति, न च अत्र सार्धद्वयद्वीपस्थसप्तत्युत्तरशतकर्मभूमिजा मनुष्याः, किं च—एषां मनुष्याणां संख्याः असंख्याताः न सन्ति मनुष्याः संख्याता एव इति ज्ञातव्यं।

वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। मारणान्तिकेन पुनः षट्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तिर्यग्भ्यः यावत् अच्युतकल्प इति मारणान्तिकं क्रियमाणसंयतासंयतानां तदुपलंभात्।

संयतासंयतानां उपपादं नास्ति, पंचमगुणस्थानेनोपपादस्य विरोधात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संयतासंयत जीवों की वर्तमानकाल की अपेक्षा स्पर्शनप्ररूपणा क्षेत्रप्ररूपणा के समान है। अतीतकाल की अपेक्षा तीन लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है।

शंका—विहारवत्स्वस्थान पद की अपेक्षा उपर्युक्त स्पर्शन का प्रमाण भले ही ठीक हो, क्योंकि बैरी देवों के संबंध से अतीतकाल में सर्वद्वीपसमुद्रों में संयतासंयत जीवों की संभावना है। किन्तु स्वस्थान पद की अपेक्षा उक्त स्पर्शन नहीं बनता, क्योंकि स्वस्थान में स्थित संयतासंयत जीवों का सर्व द्वीप-समुद्रों में अभाव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यद्यपि सर्वत्र संयतासंयत जीव नहीं हैं तथापि तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में स्वस्थान स्थित संयतासंयत पाये जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि—स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में स्वयंभूरमण अर्धद्वीप में और स्वयंभूरमण समुद्र में स्थित जो संयतासंयत गुणस्थानवर्ती देशसंयत तिर्यंच हैं वे असंख्यात अथवा बहुत होते हैं, उन्हीं के द्वारा चारों प्रकार के देवों की और स्वर्गों में स्थित देवों की असंख्यात की संख्या पूर्ण होती हैं, न कि यहाँ ढाई द्वीप की एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य उस संख्या को पूर्ण करते हैं, क्योंकि इन मनुष्यों की संख्या असंख्यात नहीं है, मनुष्य संख्यात ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात पदों से इन संयतासंयत जीवों ने तीन लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है। मारणान्तिक समुद्घात से छह बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है, क्योंकि तिर्यंचों में से अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले संयतासंयत जीवों के पूर्वोक्त स्पर्शन पाया जाता है।

संयतासंयत जीवों के उपपाद नहीं है, क्योंकि पंचम गुणथान के साथ उपपाद का विरोध है।

असंयतगुणस्थानवर्तिनश्चतुर्गतिष्वपि सन्ति, प्रथमगुणस्थानादारभ्य चतुर्थगुणस्थानपर्यन्ता भवन्ति। अतएव तेषां स्पर्शनं नपुंसकवेदवत्सामान्येन विशेषेण च गुणस्थानव्यवस्थावद् ज्ञातव्यं।

एवं द्वितीयस्थले संयतासंयत-असंयतानां स्पर्शनकथनत्वेन सप्तसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणा-नामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचदशसूत्रैः स्पर्शनानुगमे दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनिनां स्पर्शनकथनत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादिना द्वादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले अचक्षुर्दर्शनिनां अवधि-केवलदर्शनिनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''अचक्खु'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका।

अधुना चक्षुर्दर्शनधारिणां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्राणि द्वादशावतार्यंते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१७८।।

असंयतगुणस्थानवर्ती जीव चारों ही गतियों में होते हैं। प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थगुणस्थान तक जीव असंयत होते हैं। इसलिए उनका स्पर्शन नपुंसकवेद के समान सामान्य और विशेषरूप से गुणस्थान के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में संयतासंयत और असंयत जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा स्पर्शनानुगम नामके महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का अष्टम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में पन्द्रह सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शनी जीवों का स्पर्शन कहने वाले ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी जीवों का एवं अवधिदर्शनी-केवलदर्शनी जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''अचक्खु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब चक्षुदर्शनधारियों का स्पर्शन बतलाने हेतु बारह सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणा के अनुसार चक्षुदर्शनी जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।१७८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१७९।।
अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।१८०।।
समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१८१।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१८२।।
अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।।१८३।।
सव्वलोगो वा।।१८४।।
उववादं सिया अत्थि सिया णत्थि।।१८५।।
लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि।।१८६।।
जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१८७।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१८८।।
सव्वलोगो वा।।१८९।।

चक्षुदर्शनी जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।१७९।।

अतीतकाल की अपेक्षा स्वस्थान पदों से चक्षुदर्शनी जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।१८०।।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।१८१।।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।१८२।।

अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।१८३।।

अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।१८४।।

चक्षुदर्शनी जीवों के उपपाद पद कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता है।।१८५।।

चक्षुदर्शनी जीवों के लब्धि की अपेक्षा उपपाद पद है, किन्तु निर्वृत्ति की अपेक्षा वह नहीं है।।१८६।।

यदि लब्धि की अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवों के उपपाद पद है तो उसके द्वारा इस पद से कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया गया है ?।।१८७।।

चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा उपपाद पद से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट किया गया है।।१८८।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा सर्व लोक स्पृष्ट किया है।।१८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**विहारवत्स्वस्थानेन अष्टचतुर्दशभागाश्चक्षुर्दर्शनिभिः स्पृष्टाः, अष्टरज्जुबाहल्येन युक्तरज्जुप्रतरस्याभ्यन्तरे चक्षुर्दर्शनिनां विहारस्य विरोधाभावात्। वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातैः विहरमाणदेवेषु समुत्पन्नैः अष्टचतुर्दशभागस्य स्पृश्यमाणस्य दर्शनात्।**

देवैर्नारकैश्च मारणान्तिकसमुद्घातेन त्रयोदशचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, लोकनाल्या बहिरेषां उपपादाभावेन मारणान्तिकेन गमनाभावात्। एष वाशब्दस्यार्थः। तिर्यग्भिः मनुष्यैश्च पुनः सर्वलोकः स्पृष्टः, तेषां लोकनाल्याः बहिरभ्यन्तरे च मारणान्तिकेन गमनोपलंभात्।

एकस्मिन् जीवे एककाले चक्षुर्दर्शनविषयाणां अस्तित्वनास्तित्वयोः परस्परपरिहारलक्षणविरोध इव सहानवस्थान-लक्षणविरोधाभावप्रतिपादनार्थं स्यात् शब्दः स्थापितः।

कथितास्तित्वनास्तित्वयोरविरोधः कथमिति चेत् ?

एतज्ज्ञापनार्थं कथ्यते—लब्धिः चक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमः, स क्षयोपशमोऽपर्याप्तकालेऽपि अस्ति, तेन विना बाह्येन्द्रियनिर्वृत्तेरभावात्। निर्वृत्तिर्नाम चक्षुर्गोलिकायाः निर्वृत्तिः, साऽपर्याप्तकाले नास्ति, अनिष्पत्तेर्निष्पत्तिविरोधात्। येन स्वरूपेण चक्षुर्दर्शनमस्ति तेनैव स्वरूपेण यदि तस्य नास्तित्वं प्ररूप्यते तर्हि विरोधः प्रसज्यते। न चैवं, तस्मात् सहानवस्थानलक्षणविरोधो नास्तीति ज्ञातव्यं।

यदि लब्धिं प्रतीत्यास्ति, तर्हि-सर्वलोको वा स्पृश्यते। तद्यथा—सचक्षुस्तिर्यग्भ्यः मनुष्येभ्यः चक्षुर्दर्शनिषु

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीवों द्वारा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि आठ राजु बाहल्य से युक्त राजुप्रतर के भीतर चक्षुदर्शनी जीवों के विहार के विरोध का अभाव पाया जाता है। विहरमाण देवों में वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातों से स्पर्श किया जाने वाला आठ बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्र देखा जाता है।

देव व नारकियों द्वारा मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा तेरह बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनाली के बाहर इनके उत्पाद का अभाव होने से मारणान्तिक समुद्घात के द्वारा गमन नहीं होता है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। तिर्यंच व मनुष्यों के द्वारा सर्व लोक स्पृष्ट है, क्योंकि लोकनाली के बाहर और भीतर मारणान्तिक समुद्घात से उनका गमन पाया जाता है।

एक जीव में एक काल में चक्षुदर्शनविषयक अस्तित्व और नास्तित्व के परस्पर परिहार लक्षण विरोध के समान सहानवस्थानलक्षण विरोध का अभाव बतलाने के लिए सूत्र में 'स्यात्' शब्द का उपादान किया है।

शंका—ऊपर कहे गये अस्तित्व और नास्तित्व दोनों में अविरोध कैसे पाया जाता है ?

इस बात के ज्ञापनार्थ कहते हैं—

चक्षुइन्द्रियावरण के क्षयोपशम को लब्धि कहते हैं। वह अपर्याप्तकाल में भी है, क्योंकि उसके बिना बाह्य निर्वृत्ति नहीं होती है। गोल आकाररूप चक्षु की निष्पत्ति का नाम निर्वृत्ति है, वह अपर्याप्तकाल में नहीं होती है, क्योंकि अनिष्पत्ति का निष्पत्ति से विरोध है। जिस स्वरूप से चक्षुदर्शन है उसी स्वरूप से यदि उसका नास्तित्व कहा जाये, तो विरोध का प्रसंग आएगा । किन्तु ऐसा है नहीं, अतएव यहाँ सहानवस्थानलक्षण विरोध नहीं है ऐसा जानना चाहिए।

यदि लब्धि की अपेक्षा उपपाद पद है तो उनके द्वारा सर्वलोक का स्पर्श माना जायेगा। वह इस

उत्पन्नैः कैश्चिद् देवैर्नारकैर्वा द्वादशचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, लोकनाल्याः बहिश्चक्षुर्दर्शनिनामभावात्, आनताद्युपरिमदेवानां तिर्यक्षूत्पादाभावाच्च। एषः वाशब्दार्थः।

एकेन्द्रियेभ्यः सचक्षुरिन्द्रियेषूत्पन्नैः प्रथमसमये सर्वलोकः स्पृष्टः, आनन्त्यात् सर्वप्रदेशेभ्यः आगमनसंभवाच्च।

एवं प्रथमस्थले चक्षुर्दर्शनसहितानां स्पर्शनकथनत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति अचक्षुर्दर्शनि-अवधिदर्शनि-केवलदर्शनिनां स्पर्शनप्रतिपादनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

अचक्खुदंसणी असंजदभंगो।।१९०।।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।।१९१।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अचक्षुर्दर्शनिस्पर्शननिरूपणसूत्रं द्रव्यार्थिकनयापेक्षया अस्ति। पर्यायार्थिकनयं पुनः अवलम्ब्यमाने इमेऽचक्षुर्दर्शनिनोऽसंयततुल्याः न भवन्ति, अचक्षुर्दर्शनिषु तैजसाहारौ स्तः। प्रथमगुण-स्थानादारभ्य द्वादशगुणस्थानपर्यन्ताः इमे भवन्ति, एकेन्द्रियादारभ्य पंचेन्द्रियपर्यन्ता वा सन्तीति अवबोधव्यं।**

अवधिदर्शिनः केवलदर्शिनश्च अवधिकेवलज्ञानिवद् भवन्तीति ज्ञातव्यं।

प्रकार है — चक्षुदर्शन वाले तिर्यंच और मनुष्यों में से चक्षुदर्शनियों में उत्पन्न हुए देव व नारकियों द्वारा बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि लोकनाली के बाहर चक्षुदर्शनी जीवों का अभाव है तथा आनतादि उपरिम देवों का तिर्यंचों में उत्पाद का अभाव पाया जाता है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है।

एकेन्द्रिय जीवों से चक्षुइन्द्रिय सहित जीवों में उत्पन्न हुए जीवों द्वारा प्रथम समय में सर्वलोक स्पृष्ट है, क्योंकि वे अनन्त है तथा सर्व प्रदेशों से उनके आगमन की संभावना पाई जाती है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन सहित जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अचक्षुदर्शनी-अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अचक्षुदर्शनी जीवों की प्ररूपणा असंयत जीवों के समान है।।१९०।।

अवधिदर्शनी जीवों की प्ररूपणा अवधिज्ञानियों के समान है।।१९१।।

केवलदर्शनी जीवों की प्ररूपणा केवलज्ञानियों के समान है।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अचक्षुदर्शनियों का स्पर्शन निरूपण करने वाला सूत्र द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा कहा गया है। पुनः पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन लेने पर इन अचक्षुदर्शनी जीवों की प्ररूपणा असंयत जीवों के समान नहीं होती है, क्योंकि अचक्षुदर्शनी जीवों में आहारक और तैजस समुद्घात होते हैं। प्रथम गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक ये अचक्षुदर्शनी जीव पाए जाते हैं अथवा एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी के अचक्षुदर्शन होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अवधिदर्शनी जीव और केवलदर्शनी सर्वज्ञ भगवन्तों का स्पर्शन अवधिज्ञानी और केवलज्ञानियों के समान होता है, ऐसा जानना चाहिए।

एवं द्वितीयस्थले अचक्षुरवधिकेवलदर्शनिनां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ चतुर्भिः स्थलैः चतुर्विंशतिसूत्रैः स्पर्शनानुगमे लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अशुभत्रिकलेश्यानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं द्वितीयस्थले तेजोलेश्यावतां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''तेउ'' इत्यादिसूत्रनवकं। तदनु तृतीयस्थले पद्मलेश्याधारिणां स्पर्शनकथनत्वेन ''पम्म'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं चतुर्थस्थले शुक्ललेश्यानां स्पर्शनप्रतिपादनपरत्वेन ''सुक्क'' इत्यादि सूत्राष्टकमिति समुदायपातनिका भवति।

संप्रति कृष्णनीलकापोतलेश्यावतां स्पर्शनकथनार्थं सूत्रमवतरति —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणं असंजद-भंगो।।१९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रस्यार्थः सुगमोऽस्ति। चतुर्गतिषु प्रथमगुणस्थानादारभ्य चतुर्थगुणस्थानपर्यन्ताः जीवा असंयताः सन्ति, इमे जीवाः त्रिकाशुभलेश्यावन्तो भवन्ति, शुभलेश्यावन्तोऽपि भवन्ति अतः एतत्कथनं**

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अचक्षुदर्शनी-अवधिदर्शनी और केवलदर्शनियों का स्पर्शन बतलाने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में एक जीव की अपेक्षा स्पर्शनानुगम नामके महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में चौबीस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों अशुभ लेश्याओं का स्पर्शन बतलाने वाला ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में पीत लेश्या वाले जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले ''तेउ'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। आगे तृतीय स्थल में पद्मलेश्याधारी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले ''पम्म'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में शुक्ललेश्या वाले जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले ''सुक्क'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब कृष्ण-नील-कापोत लेश्या वाले जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुसार कृष्णलेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीवों की प्ररूपणा असंयत जीवों के समान है।।१९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ सुगम है। चारों गतियों में प्रथम गुणस्थान से प्रारंभ करके चतुर्थ गुणस्थान तक सभी जीव असंयत होते हैं, ये सभी जीव तीनों अशुभ लेश्या वाले होते हैं और

सामान्येनैव न तु विशेषेणेति ज्ञातव्यं।

एवं अशुभत्रिकलेश्यासहितानां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इदानीं तेजोलेश्याधारिणां स्पर्शननिरूपणाय नव सूत्राण्यवतार्यन्ते —

तेउलेस्सियाणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१९४।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१९५।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।१९६।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।१९७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।१९८।।

अट्ठणवचोद्दसभागा वा देसूणा।।१९९।।,

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२००।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२०१।।

दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा।।२०२।।

शुभ लेश्या वाले भी होते हैं, अतः यह कथन सामान्य से ही जानना चाहिए, विशेषरूप से नहीं।

इस प्रकार से अशुभ लेश्या सहित जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब तेजो-पीत लेश्याधारी जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तेजोलेश्या वाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया गया है ?।।१९४।।

तेजोलेश्या वाले जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट किया गया है।।१९५।।

अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट किया गया है।।१९६।।

समुद्घात की अपेक्षा तेजोलेश्या वाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट किया गया है।।१९७।।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट किया गया है।।१९८।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग वा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।१९९।।

उपपाद पद की अपेक्षा तेजोलेश्या वाले जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२००।।

उक्त जीवों द्वारा उपपाद पद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२०१।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम डेढ़ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तेजोलेश्यावन्तो जीवाः स्वस्थानेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातं, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागं, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणं च स्पृशन्ति। एष वाशब्दार्थः। विहारवत्स्वस्थानेनाष्टचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, तेजोलेश्यावतां देवानां विहरमाणाणामेतस्योपलंभात्।**

एतैः लेश्यावद्भिः देवैः वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणतैरष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, विहरमाणानां देवानामेतेषां त्रयाणां पदानां सर्वत्रोपलंभात्। मारणान्तिकेन नवचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, मेरुमूलादधः द्वाभ्यां रज्जुभ्यां सह उपरि सप्तरज्जुस्पर्शनोपलंभात्।

उपपादापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागः, वर्तमानकाले प्रतिबद्धत्वात्, मेरुमूलात् सार्धैकरज्जुमात्रमुपरि चटित्वा प्रभाप्रस्तरस्यावस्थानात्।

कश्चिदाह—सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः प्रथमेंद्रकविमानेषु तेजोलेश्यावत्सु देवेषु उत्पादयिष्यमाणे सातिरेकसार्धैकरज्जु क्षेत्रं किन्न लभ्यते ?

आचार्यः प्राह—न, सौधर्मकल्पात् स्तोकमेव स्थानं गत्वा उपरि सनत्कुमारादिप्रस्तरस्यावस्थानात्।

कथमेतज्ज्ञायते ?

अन्यथा देशोनानुपपत्तेः ज्ञायते।

मारणान्तिक-उपपादस्थित-वाशब्दाः उक्तसमुच्चयार्था द्रष्टव्याः।

एवं द्वितीयस्थले पीतलेश्यावतां स्पर्शनकथनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तेजोलेश्या वाले जीव स्वस्थान की अपेक्षा तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यात गुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि विहार करते समय तेजोलेश्या वाले देवों के इतना स्पर्शन पाया जाता है।

इस लेश्या वाले देवों के द्वारा वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदों से आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि विहार करते हुए देवों के ये तीनों पद सर्वत्र पाये जाते हैं। मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा नौ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि मेरुमूल से नीचे दो राजुओं के साथ ऊपर सात राजु स्पर्शन पाया जाता है।

उपपाद की अपेक्षा उक्त जीव लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं, क्योंकि वर्तमान काल से संबद्ध है। क्योंकि मेरुमूल से डेढ़ रज्जूमात्र ऊपर चढ़कर प्रभा पटल का अवस्थान है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों के प्रथम इन्द्रक विमान में स्थित तेजोलेश्या वाले देवों में उत्पन्न कराने पर डेढ़ राजु से अधिक क्षेत्र क्यों नहीं पाया जाता है ?

आचार्य समाधान देते हैं—नहीं, क्योंकि सौधर्म कल्प से थोड़ा ही ऊपर जाकर सानत्कुमार कल्प का प्रथम पटल अवस्थित है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि ऐसा न मानने पर उपर्युक्त डेढ़ राजु क्षेत्र में जो कुछ न्यूनता बतलाई है वह बन नहीं सकती।

मारणान्तिक और उपपाद पदों में स्थित वा शब्द उक्त अर्थ के समुच्चय के लिए जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में पीतलेश्या वाले जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना पद्मलेश्यावतां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२०३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२०४।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२०५।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२०६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२०७।।

पंचचोद्दसभागा वा देसूणा।।२०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपरिणतैः अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।**

कुतः ?

पद्मलेश्यावतां देवानामेकेन्द्रियेषु मारणान्तिकाभावात्।

उपपादैः वर्तमानापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागः, अतीतापेक्षया मेरुमूलादुपरि पञ्चरज्जुमात्रं स्थानं गत्वा सहस्रारकल्पस्यावस्थानात् अत्र वा शब्द उक्तसमुच्चयार्थः।

अब पद्मलेश्या वाले जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

पद्मलेश्या वाले जीवों ने स्वस्थान और समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२०३।।

उपर्युक्त जीवों ने उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२०४।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।२०५।।

उक्त जीवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२०६।।

उक्त जीवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२०७।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम पाँच बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, वैक्रियिकसमुद्घात और मारणन्तिकसमुद्घात पदों से परिणत उन्हीं पद्मलेश्या वाले जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि पद्मलेश्या वाले देवों के एकेन्द्रिय जीवों में मारणान्तिक समुद्घात का अभाव है।

उपपाद पदों से वर्तमान काल की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग, अतीतकाल की अपेक्षा मेरुपर्वत की जड़ से पाँच राजु मात्र स्थान पर जाकर सहस्रारकल्प का अवस्थान पाया जाता है। यहाँ 'वा' शब्द उक्त सूत्रार्थ को समझने के लिए है।

एवं तृतीयस्थले पद्मलेश्यासहितानां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम् —
शुक्ललेश्याधारिणां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२०९।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२१०।।
छचोद्दसभागा वा देसूणा।।२११।।
समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२१२।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२१३।।
छचोद्दसभागा वा देसूणा।।२१४।।
असंखेज्जा वा भागा।।२१५।।
सव्वलोगो वा।।२१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्वस्थानेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एष वाशब्देन समुच्चितार्थः। विहारवत्स्वस्थान-उपपादाभ्यां षट्चतुर्दश-भागाः स्पृष्टाः, तिर्यग्लोकात् आरणाच्युतकल्पयोः समुत्पद्यमानानां षड्रज्जु-अभ्यन्तरे विहरमाणानां**

इस प्रकार से तृतीय स्थल में पद्मलेश्या से सहित जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए। अब शुक्ल लेश्याधारी जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले जीवों ने स्वस्थान और उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२०९।।

उपर्युक्त जीवों ने उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२१०।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है।।२११।।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२१२।।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२१३।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२१४।।

अथवा असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट हैं।।२१५।।

अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—शुक्ललेश्या वालों ने स्वस्थान पद से तीन लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया है। यह वा शब्द द्वारा समुच्चयरूप से सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान और उपपाद पदों से छह बटे चौदह भागों का स्पर्श किया

चैतावन्मात्रस्पर्शनोपलंभात्। समुद्घातापेक्षया आरणाच्युतदेवेषु कृतमारणान्तिकतिर्यग्मनुष्याणामुपलंभात्। वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातानां विहारवत्स्वस्थानवत् स्पर्शनं ज्ञातव्यं।

शुक्ललेश्यावतां असंख्यातस्य बहुभागः स्पर्शनम्। एतत् प्रतरगतकेवलिनमाश्रित्य भणितं, वातवलयान् मुक्त्वा तत्र सर्वलोकव्याप्तजीवप्रदेशानामुपलंभात्। दण्डगतैः केवलिभिः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एवं कपाटगतैरपि केवलिभिः। विशेषेण तु तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागस्तत्तः संख्यातगुणो वा स्पृष्ट इति वक्तव्यं। एष वाशब्देनानुक्तसमुच्चयः। पूर्वसूत्रस्थितवाशब्देनापि अनुक्तसमुच्चयः पूर्वसूत्रे चैव कृतः, शुक्ललेश्यैर्देवैः कृतमारणान्तिकैश्चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपाद-संख्यातगुणः स्पृष्ट इति एतस्य सूचकत्वात्।

''सर्वलोको वा'' एतत्सूत्रं लोकपूरणगतकेवलिनं भगवन्तं प्रतीत्य समुद्दिष्टं। अत्र वाशब्द उक्तसमुच्चयार्थः।

एवं चतुर्थस्थले शुक्ललेश्यानां जीवानां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इतो विस्तरः — अन्य ग्रंथाधारेणोच्यते —

''पद्मलेश्यैरादितश्चतुर्गुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागोऽष्टौ चतुर्दशभागाः वा देशोनाः स्पृष्टाः। पद्मलेश्यैः संयतासंयतैर्लोकस्यासंख्येयभागः पंचचतुर्दशभागा वा देशोनाः। तत्कथम् ? पद्मलेश्यैः संयतासंयतैः सहस्त्रारे

है, क्योंकि तिर्यग्लोक से आरण-अच्युत कल्प में उत्पन्न होने वाले और छह राजु के भीतर विहार करने वाले उक्त जीवों के इतना मात्र स्पर्शन पाया जाता है। समुद्घात की अपेक्षा आरण-अच्युत कल्पवासी देवों में मारणान्तिक समुद्घात को करने वाले तिर्यंच और मनुष्य पाये जाते हैं। वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातों की अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान के समान स्पर्शन का निरूपण है।

शुक्ललेश्या वाले जीवों के असंख्यात का बहुभाग स्पर्शन है। यह प्रतरसमुद्घातगत केवली का आश्रय करके कहा गया है, क्योंकि प्रतरसमुद्घात में वातवलयों को छोड़कर सर्वलोक में व्याप्त जीव प्रदेश पाये जाते हैं। दण्डसमुद्घात को प्राप्त केवलियों द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। इसी प्रकार कपाटसमुद्घातगत केवली भगवन्तों द्वारा भी स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग अथवा उससे संख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, ऐसा कहना चाहिए। यह सूत्र में नहीं कहे हुए अर्थ का वा शब्द के द्वारा समुच्चय किया जाता है। पूर्व सूत्र में स्थित वा शब्द के द्वारा भी अनुक्त अर्थ का समुच्चय पूर्व सूत्र में ही किया गया है, क्योंकि वह वा शब्द ''मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त शुक्ललेश्या वाले देवों के द्वारा चारों लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है'' इस अर्थ का सूचक है।

'सर्वलोको वा' यह सूत्र लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त हुए केवलज्ञानियों की अपेक्षा कहा गया है। यहाँ 'वा' शब्द पूर्वोक्त अर्थ का समुच्चय करने के लिए है।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में शुक्ललेश्या वाले जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इसका विस्तृत कथन अन्य ग्रंथ के आधार से कहते हैं —

पद्मलेश्या वाले जीवों के द्वारा आदि के चार गुणस्थानों की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग और लोकनाड़ी के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भाग क्षेत्र का स्पर्श किया गया है। पद्मलेश्या से सहित संयतासंयत जीवों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा लोकनाड़ी के चौदह भागों में से कुछ कम पाँच भाग क्षेत्र का स्पर्श किया गया है।

प्रश्न — यह कैसे घटित होता है ?

उत्तर — पद्मलेश्या वाले संयतासंयत जीव सहस्रार स्वर्ग तक मारणान्तिक समुद्घात करते हैं इस

मारणान्तिकादिविधानात् पञ्च रज्जवः स्पृष्टाः। पद्मलेश्यैः प्रमत्ताप्रमत्तैर्लोकस्यासंख्येयभागः स्पृष्टः।

शुक्ललेश्यैरादितः पञ्चगुणस्थानैर्लोकस्यासंख्येयभागः षट्चतुर्दशभागा वा देशोनाः। तत्कथं ? शुक्ललेश्यैर्मिथ्यादृष्ट्यादि-संयतासंयतान्तैर्मारणान्तिकाद्यपेक्षया। सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिस्तु मारणान्तिके तद्गुण-स्थानत्यागात् विहारापेक्षया षट् रज्जवः स्पृष्टाः।

अष्टावपि कस्मान्न स्पृष्टाः ?

इति नाशंकनीयं, शुक्ललेश्यानामधो विहाराभावात्।

तदपि कस्मात् ?

यथा कृष्णनीलकापोतलेश्यात्रयापेक्षया अवस्थितलेश्या नारकाः वर्तन्ते, तथा तेजःपद्मशुक्ललेश्या-त्रयापेक्षया देवा अपि अवस्थितलेश्या वर्तन्ते। देवेषु लेश्यानां विभाजनं क्रियते—

''भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्केषु जघन्या तेजोलेश्यायाः। सौधर्मैशानयोः मध्यमा तेजोलेश्या। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोरुत्कृष्टा तेजोलेश्या, जघन्यपद्मलेश्याः अविवक्षया। ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लांतवकापिष्ट-शुक्रमहाशुक्रेषु मध्यमा पद्मलेश्या। जघन्यशुक्ललेश्याया अविवक्षया। शतारसहस्त्रारयोर्जघन्या शुक्ललेश्या उत्कृष्टपद्मलेश्याया अविवक्षितत्वात्। आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकेषु मध्यमा शुक्ललेश्या। नवानुदिश-पञ्चानुत्तरेषु उत्कृष्टा शुक्ललेश्या।''

विधान से वे पाँच राजु क्षेत्र का स्पर्श करते हैं। पद्मलेश्या वाले प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत मुनियों के द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।

शुक्ललेश्या सहित प्रथम पाँच गुणस्थान वाले जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग अथवा लोकनाड़ी के चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग का क्षेत्र स्पर्श किया गया है।

प्रश्न—यह कैसे घटित होता है ?

उत्तर—शुक्ललेश्या सहित मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक के जीवों द्वारा मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा यह कथन घटित होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा मारणान्तिक समुद्घात नहीं किया जाता है। परन्तु उनके विहार की अपेक्षा छह राजु स्पर्श बन जाता है।

शंका—शुक्ललेश्या वाले आठ राजु क्षेत्र का स्पर्श क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—ऐसी शंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि शुक्ललेश्या वाले देव नीचे विहार नहीं करते हैं।

शंका—ऐसा भी कैसे घटित होता है ?

समाधान—जिस प्रकार कृष्ण, नील, कापोत इन तीन लेश्या की अपेक्षा से अवस्थित लेश्या वाले नारकी होते हैं, उसी प्रकार पीत-पद्म-शुक्ल लेश्या की अपेक्षा से देव भी अवस्थित लेश्या वाले होते हैं।

देवों में लेश्याओं का विभाजन करते हैं—

''भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों के जघन्य पीत लेश्या होती है। सौधर्म और ईशान स्वर्ग में मध्यम पीत लेश्या है। सानत्कुमार और माहेन्द्रस्वर्ग में उत्कृष्ट पीत लेश्या तथा जघन्य पद्मलेश्या है परन्तु उसकी विवक्षा नहीं है। ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र में मध्यम पद्मलेश्या है, जघन्य शुक्ल लेश्या की यहाँ विवक्षा नहीं है। शतार, सहस्त्रार में जघन्य शुक्ल लेश्या है और अविवक्षितरूप से उत्कृष्ट पद्म लेश्या है। आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और नव ग्रैवेयक में मध्यम शुक्ल लेश्या है। नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।''

ततोऽन्यत्र तिर्यग्मनुष्येषु लेश्यानियमाभावः[१]।''

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां स्पर्शनानुगमे भव्यमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले भव्याभव्यजीवानां स्पर्शनकथनप्रश्नरूपेण ''भविया-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले भव्याभव्यजीवानां स्पर्शनकथनोत्तररूपेण ''सव्व-'' इत्यादिना। सूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

अधुना भव्याभव्यजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमेकमवतरति —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**भव्यमार्गणापेक्षया भव्या अभव्याश्च द्विविधा जीवाः सन्ति, ते स्वस्थानेन समुद्घातेन उपपादेन च कियत् प्रमाणं क्षेत्र स्पृशन्ति ?**

देव नारकी को छोड़कर तिर्यंच और मनुष्यों में लेश्याओं के नियम का अभाव है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में दो सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में भव्यमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में भव्य और अभव्य जीवों का प्रश्नरूप से स्पर्शन कथन करने वाला ''भविया'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में भव्य-अभव्य जीवों के स्पर्शन का उत्तररूप से कथन करने वाला ''सव्व'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब भव्य-अभव्य जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु एक पृच्छासूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों द्वारा स्वस्थान समुद्घात एवं उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—भव्यमार्गणा की अपेक्षा भव्य और अभव्य दो प्रकार के जीव हैं। वे स्वस्थान से, समुद्घात से और उपपाद से कितने प्रमाण क्षेत्र का स्पर्श करते हैं ? यह इस पृच्छासूत्र का अभिप्राय है।

---

१. तत्त्वार्थवृत्तिः अध्याय-१, सूत्र ८, पृ.-३०।

एवं प्रथमस्थले भव्याभव्यजीवानां स्पर्शनकथनप्रश्नरूपेण एकं सूत्रं गतम्।

इदानीं भव्याभव्यजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रमेकमवतरति —

सव्वलोगो।।२१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्वस्थान-वेदना-कषाय-मारणान्तिक-उपपादैरतीतवर्तमानयोः सर्वलोकः स्पृष्टः। विहारवत्स्वस्थानेनातीतापेक्षयाष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। वैक्रियिकपदेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, नरतिर्यग्लोकाभ्यामसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एतदुभयविधजीवानां कथनं। भव्यजीवेषु शेषपदानि गुणस्थानवद् ज्ञातव्यानि।**

कथमेतज्ज्ञायते ?

देशामर्शकत्वात् सूत्रस्य, ततो ज्ञायते।

एवं द्वितीयस्थले भव्याभव्यजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्य-अभव्य जीवों के स्पर्शन को प्रश्नरूप से कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब भव्य और अभव्य जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु उत्तररूप सूत्र अवतीर्ण होता है —

सूत्रार्थ—

उपर्युक्त जीवों द्वारा उक्त पदों से सर्व लोक स्पृष्ट है।।२१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणान्तिक और उपपाद पदों से अतीत व वर्तमान काल में भव्यसिद्धिक एवं अभव्यसिद्धिक जीवों द्वारा सर्वलोक स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थान में अतीतकाल की अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। वैक्रियिक समुद्घात की अपेक्षा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग और मनुष्यलोक व तिर्यग्लोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह दोनों प्रकार के जीवों का कथन है। भव्यसिद्धिक जीवों में शेष पदों की अपेक्षा स्पर्शन का निरूपण गुणस्थान के समान है।

प्रश्न—यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—क्योंकि सूत्र देशामर्शक होते हैं, इसी से जाना जाता है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में भव्य और अभव्य जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ पंचभिः स्थलैः षड्चत्वारिंशत्सूत्रैः स्पर्शनानुगमे सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यतया सम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनकथनत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादिना एकादशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''खइय'' इत्यादिना दश सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''वेदग'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनंतरं चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''उवसम'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पश्चात् पंचमस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व-मिथ्यात्वसहितानां स्पर्शनप्रतिपादनत्वेन ''सासण'' इत्यादिना चतुर्दश सूत्राणीति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं सम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनाय एकादशसूत्राण्यवतार्यंते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२१९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२२०।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२२१।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२२२।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब पाँच स्थलों में छियालिस सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्यतया सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले ''सम्मत्ताणुवादेण'' इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में क्षायिक सम्यग्दृष्टियों का स्पर्शननिरूपण करने हेतु ''खइय'' इत्यादि दश सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन बतलाने वाले ''वेदग'' इत्यादि छह सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''उवसम'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचमस्थल में सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व सहित जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने वाले ''सासण'' इत्यादि चौदह सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सामान्य से सम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु ग्यारह सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्दृष्टि जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२१९।।

सम्यग्दृष्टि जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२२०।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।२२१।।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२२२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२२३।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२२४।।

असंखेज्जा वा भागा।।२२५।।

सव्वलोगो वा।।२२६।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२२७।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२२८।।

छचोद्दसभागा वा देसूणा।।२२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्वस्थानेन त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एष वाशब्दार्थः। विहारवत्स्वस्थानेन अष्टचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः, सम्यग्दृष्टीनां मेरुमूलादधः द्विरज्जुमात्रस्थानगमनस्य दर्शनात्। समुद्घातैः वर्तमानापेक्षया असंख्यातभागः स्पर्शनं।**

वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकपदैः अष्टचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः एतत्स्पर्शनं सम्यग्दृष्टि-देवानाश्रित्य कथितं।

अत्र वा शब्दः किमर्थमुक्तः ?

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२२३।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२२४।।

अथवा असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है।।२२५।।

अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२२६।।

उक्त सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२२७।।

सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२२८।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्वस्थान पद से सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा तीनों लोकों के असंख्यातवें भाग, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र का स्पर्श किया गया है। यह 'वा' शब्द से सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान पद से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टियों का मेरुमूल से नीचे दो राजु मात्र स्थान में गमन देखा जाता है। समुद्घात पदों से वर्तमान की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।

वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदों की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। यह स्पर्शनक्षेत्र देव सम्यग्दृष्टियों का आश्रय करके कहा गया है।

शंका—यहाँ सूत्र में वा शब्द का ग्रहण किसलिए किया है ?

तिर्यग्मनुष्यसम्यग्दृष्टिक्षेत्रसमुच्चयार्थं। वेदना-कषाय-वैक्रियिकपदैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, तैजसाहारपदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपात् संख्यातभागः, मारणान्तिकेन षट्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। एष वाशब्दसमुच्चितार्थः।

''असंख्याता वा भागाः'' ''सर्वलोको वा''। केवलिभगवतां प्रतर-लोकपूरणसमुद्घातापेक्षया स्तः इमे द्वे सूत्रे।

उपपादैः वर्तमानापेक्षयासंख्यातभागः लोकस्य। अतीतेन देवैः नारकैश्च मनुष्येषूत्पद्यमानैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः, किंच—एकादशरज्जुदीर्घ-पञ्चचत्वारिंशद्योजन-विस्तीर्णस्पर्शनक्षेत्रस्योपलंभात्। न चैतावन्मात्रं क्षेत्रमिति नियमोऽस्ति, अन्यस्यापि तिर्यग्लोकस्य संख्यात-भागमात्रस्योपलंभात्। एष वा शब्दार्थः। तिर्यग्मनुष्याभ्यां देवेषूत्पन्नैः षट्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शननिरूपणत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

संप्रति क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनकथनार्थं दशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

खइयसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२३०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२३१।।

समाधान— तिर्यंच और मनुष्य सम्यग्दृष्टियों के क्षेत्र का समुच्चय करने के लिए सूत्र में वा शब्द का ग्रहण किया है। उन तिर्यंच व मनुष्य सम्यग्दृष्टियों के द्वारा वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदों से तीनों लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा, तैजस और आहारक पदों से चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग, ढाईद्वीप का संख्यातवाँ भाग तथा मारणान्तिक समुद्घात से छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। यह वा शब्द से संगृहीत अर्थ है।

''असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र स्पृष्ट है'' ''अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है'' ये दोनों सूत्र केवली भगवन्तों के प्रतर-लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा से हैं।

उपपाद पदों के द्वारा वर्तमानकाल की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। अतीतकाल की अपेक्षा मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले देव-नारकियों के द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप के असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि यहाँ ग्यारह राजु दीर्घ और पैंतालीस लाख योजन विस्तीर्ण स्पर्शन क्षेत्र पाया जाता है और इतना मात्र ही क्षेत्र है ऐसा नियम भी नहीं है, क्योंकि अन्य भी तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग पाया जाता है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। तिर्यंच और मनुष्यों में से देवों में उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि जीवों के द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य सम्यग्दृष्टियों का स्पर्शन निरूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२३०।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२३१।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२३२।।
समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२३३।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२३४।।
अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।२३५।।
असंखेज्जा वा भागा।।२३६।।
सव्वलोगो वा।।२३७।।
उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२३८।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। स्वस्थानैरिमे क्षायिकसम्यग्दृष्टयस्त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागं, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागं, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणं च स्पृशन्ति। एष वा शब्दार्थः। विहारवत्स्वस्थानेनाष्टचतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः।

समुद्घातापेक्षया—तैजसाहारपदाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपात् संख्यातभागः स्पृष्टः। तिर्यग्मनुष्याभ्यां वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकसमुद्घातैः त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः,

---

अथवा उक्त जीवों द्वारा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२३२।।

समुद्घात पदों से क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२३३।।

समुद्घात पदों से क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२३४।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२३५।।

अथवा असंख्यात बहुभाग स्पृष्ट हैं।।२३६।।

अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२३७।।

उपपाद की अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२३८।।

उपपाद की अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। स्वस्थान के द्वारा ये क्षायिकसम्यग्दृष्टि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श करते हैं। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। विहारवत्स्वस्थान से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।

समुद्घात की अपेक्षा—तैजस और आहारक पदों से क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। तिर्यंच व मनुष्य क्षायिक सम्यग्दृष्टियों द्वारा

तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एष वा शब्दार्थः। देवैः पुनः वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकसमुद्घातैः अष्टचतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः।

प्रतरसमुद्घातापेक्षया असंख्यातस्य बहुभागाः स्पृष्टाः। तत्र वातवलयान् मुक्त्वा शेषाशेषलोकगतजीव-प्रदेशानामुपलंभात्। दण्डगतैश्चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एषः प्रथमवाशब्देन सूचितार्थः। कपाटगतैस्त्रयाणां लोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागस्तत्तः संख्यातगुणो वा सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः। एष द्वितीयवाशब्दसमुच्चितार्थः। 'सव्वलोगो वा' एतत्सूत्रं लोकपूरणगतकेवलिनं प्रतीत्य प्ररूपितं। अत्र वाशब्दः उक्तसमुच्चयार्थः।

एवं द्वितीयस्थले क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रदशकं गतम्।

वेदकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२४०।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२४१।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२४२।।

वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदों से तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप का असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। पुनः देव क्षायिकसम्यग्दृष्टियों द्वारा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घात पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।

प्रतर समुद्घात की अपेक्षा केवली भगवन्तों द्वारा असंख्यात का बहुभाग स्पृष्ट है। क्योंकि वहाँ वातवलयों को छोड़कर शेष समस्त लोक में जीवों के प्रदेश पाये जाते हैं। दण्डसमुद्घात को प्राप्त केवलियों के द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह प्रथम वा शब्द से सूचित अर्थ है। कपाट समुद्घात को प्राप्त केवलियों के द्वारा तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग या उससे संख्यातगुणा और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। यह द्वितीय वा शब्द से संगृहीत अर्थ है। ''सव्वलोगो वा'' अर्थात् ''सर्वलोक स्पृष्ट है'' यह सूत्र लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवलियों की अपेक्षा कहा गया है। यहाँ 'वा' शब्द पूर्वोक्त अर्थ के समुच्चय के लिए है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन प्रतिपादित करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श करते हैं ?।।२४०।।

वेदक सम्यग्दृष्टि जीव स्वस्थान और समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श करते हैं।।२४१।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२४२।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२४३।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२४४।।

छचोद्दसभागा वा देसूणा।।२४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**वर्तमानापेक्षया लोकस्यासंख्यातभागः, विहारवत्स्वस्थान-वेदना-कषाय-वैक्रियिक-मारणान्तिकैरष्टचतुर्दशभागा देशोनाः स्पृष्टाः। देवनारकेभ्य आगत्य वेदकसम्यग्दृष्टिमनुष्येषूत्पन्नैः चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणःस्पृष्टः। नवरि देवैः तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः स्पृष्टः। एष वा शब्दसमुच्चितार्थः। तिर्यग्मनुष्येभ्यः देवेषूत्पद्यमानवेदकसम्यग्दृष्टिभिः षट्चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः।**

एवं तृतीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

उपशमसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२४६।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२४७।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२४८।।

उक्त वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पद से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२४३।।

वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा उपपाद पद से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२४४।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वर्तमान काल की अपेक्षा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदों से कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है। देव-नारकियों से आकर मनुष्यों में उत्पन्न हुए वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है। विशेष इतना है कि देवों द्वारा तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है यह वा शब्द से संगृहीत अर्थ है। तिर्यंच और मनुष्यों में से देवों में उत्पन्न होने वाले वेदकसम्यग्दृष्टियों द्वारा छह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए। अब उपशमसम्यग्दृष्टियों का स्पर्शन बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२४६।।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२४७।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२४८।।

समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२४९।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। विहारवत्स्वस्थानेनाष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, उपशमसम्यग्दृष्टीनां देवानामष्टचतुर्दशभागस्याभ्यन्तरे विहारं प्रति विरोधाभावात्। समुद्घातापेक्षयात्रातीत-कालवर्तमानकालयोः मारणान्तिक-उपपादाभ्यां चतुर्णां लोकानामसंख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः स्पृष्टः, मानुषक्षेत्रे एव म्रियमाणाणामुपशमसम्यग्दृष्टीनामुपलंभात्।**

कश्चिदाह—वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातानामुपशमसम्यग्दृष्टीनां देवानामष्टचतुर्दशभागाः किन्न प्ररूपिताः ?

आचार्यः प्राह—न, एवं प्ररूप्यमाणे सासादनस्य मारणान्तिकसमुद्घातस्याप्यष्टचतुर्दशभागाः भवन्ति इति संदेहो मा भवेदिति तन्निराकरणार्थं न प्ररूपिताः।

एवं चतुर्थस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां स्पर्शननिरूपणत्वेन सूत्रपंचकं गतं।

अधुना सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां स्पर्शननिरूपणाय सूत्रचतुर्दशावतार्यन्ते—

सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२५१।।

उक्त उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा समुद्घात व उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२४९।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा उक्त पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टि देवों के आठ बटे चौदह भागों के भीतर विहार में कोई विरोध नहीं है। समुद्घात की अपेक्षा यहाँ अतीत और वर्तमानकालों में मारणान्तिक और उपपाद पदों से परिणत उपशमसम्यग्दृष्टियों द्वारा चार लोकों का असंख्यातवाँ भाग और ढाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पृष्ट है, क्योंकि मानुषक्षेत्र में ही मरण को प्राप्त होने वाले उपशमसम्यग्दृष्टि पाये जाते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घात की अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि देवों के आठ बटे चौदह भाग यहाँ क्यों नहीं रहे ?

आचार्य इसका समाधान देते है—नहीं, क्योंकि ऐसा प्ररूपण करने पर "सासादनसम्यग्दृष्टि के मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा भी आठ बटे चौदह भाग होते हैं' ऐसा संदेह न हो जावे इस प्रकार उसके निराकरण के लिए उक्त आठ बटे चौदह भागों का प्ररूपण नहीं किया है।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में उपमशसम्यग्दृष्टियों का स्पर्शन निरूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

अब सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टियों का स्पर्शन निरूपण करने के लिए चौदह सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२५१।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२५२।।
अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२५३।।
समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२५४।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२५५।।
अट्ठबारहचोद्दसभागा वा देसूणा।।२५६।।
उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२५७।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२५८।।
एक्कारहचोद्दसभागा वा देसूणा।।२५९।।
सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२६०।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२६१।।
अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२६२।।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२५२।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों ने कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।२५३।।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२५४।।

उक्त जीवों द्वारा समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२५५।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ और बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२५६।।

उक्त सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा उपपाद की अपेक्षा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२५७।।

उक्त जीवों द्वारा उपपाद पद से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२५८।।

अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं।।२५९।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२६०।।

उक्त जीवों द्वारा स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२६१।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा उक्त जीवों द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२६२।।

समुग्घाद-उववादं णत्थि।।२६३।।

मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।।२६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सासादनैः वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातैः अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। मारणान्तिकैः द्वादशचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, मेरुमूलादध उपरि पंच-सप्तरज्जु-आयामेन मारणान्तिकस्योपलंभात्। एतैः सासादनगुणस्थानवर्तिभिः उपपादापेक्षयातीतेन एकादशचतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः।**

कथमेतत् ?

तदेवोच्यते—षष्ठपृथिवीनारकाणां सासादनगुणस्थानेन पंचेन्द्रियतिर्यक्षूत्पद्यमानानां पंचचतुर्दशभागा उपपादेन लभ्यन्ते, देवेभ्यः पंचेन्द्रियतिर्यक्षूत्पद्यमानानां षट्चतुर्दशभागा लभ्यन्ते, एतेषां समासः एकादशचतुर्दशभागाः सासादनोपपादस्पर्शनक्षेत्रं भवति।

कश्चिदाह—उपरि सप्त चतुर्दशभागाः किन्न लब्धाः ?

तस्य समाधानमाह—नैतद् वक्तव्यं, सासादनानामेकेन्द्रियेषूपपादाभावात्।

पुनरपि आशंकते—एकेन्द्रियेषु मारणान्तिकप्राप्तसासादनास्तत्र किन्नोत्पद्यन्ते ?

आचार्यः प्राह—नोत्पद्यन्ते, मिथ्यात्वगुणस्थानं त्यक्त्वा उक्तजीवानां सासादनगुणस्थानेन सह

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के समुद्घात और उपपाद पद नहीं होते हैं।।२६३।।

मिथ्यादृष्टि जीवों के स्पर्शन का निरूपण असंयत जीवों के समान है।।२६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों के द्वारा वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातों से आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं। मारणान्तिक समुद्घात से बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट हैं, क्योंकि मेरुमूल से नीचे पाँच और ऊपर सात राजु आयाम से मारणान्तिक समुद्घात पाया जाता है। इन सासादनगुणस्थानवर्ती जीवों के द्वारा उपपाद की अपेक्षा अतीतकाल में कुछ कम ग्यारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।

शंका—इतने क्षेत्र का स्पर्शन कैसे किया है ?

समाधान—उसी को कहते हैं—सासादन गुणस्थान के साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले छठी पृथिवी के नारकियों के पाँच बटे चौदह भाग उपपाद से प्राप्त होते हैं तथा देवों में पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले जीवों के छह बटे चौदह भाग प्राप्त होते हैं, इन सभी का जोड़ ग्यारह बटे चौदह भाग प्रमाण सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का उपपाद की अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्र होता है।

यहाँ कोई शंका करता है—ऊपर सात बटे चौदह भाग क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ?

उसका समाधान करते है कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियों की एकेन्द्रियों में उत्पत्ति नहीं होती है।

पुनरपि शंका की जाती है—एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त हुए सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उनमें उत्पन्न क्यों नहीं होते हैं ?

आचार्य समाधान देते हैं कि—नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान को छोड़कर उक्त जीवों

एकेन्द्रियेषूत्पत्तिविरोधात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां समुद्घातोपपादौ न स्तः, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानेन सह मरणाभावात्।

वेदना-कषाय-वैक्रियिकसमुद्घातानां अत्र प्ररूपणा किन्न कृता ?

न कृता, तेषां प्रधानत्वाभावात्।

मिथ्यादृष्टिजीवानां स्पर्शनक्षेत्रं असंयतवद्ज्ञातव्यं।

एवं पंचमस्थले त्रिविधगुणस्थानानां स्पर्शनकथनत्वेन चतुर्दशसूत्राणि गतानि।

इति षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन एकादशसूत्रैः संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''सण्णियाणु-'' इत्यादिना दश सूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थलेऽसंज्ञिजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन ''असण्णी-'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

इदानीं संज्ञिजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रदशकमवतार्यते —

का सासादन गुणस्थान के साथ एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने का विरोध है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के समुद्घात और उपपाद नहीं होते हैं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान के साथ मरण का अभाव है।

शंका — वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातों की यहाँ प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि उनकी प्रधानता नहीं है।

मिथ्यादृष्टि जीवों का स्पर्शन क्षेत्र असंयतसम्यग्दृष्टियों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार से पंचम स्थल में तीन प्रकार के गुणस्थानवर्ती जीवों का स्पर्शन बताने वाले चौदह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में ग्यारह सूत्रों के द्वारा संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले ''सण्णियाणु'' इत्यादि दश सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु ''असण्णी'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब यहाँ संज्ञी जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२६५।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२६६।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२६७।।

समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२६८।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२६९।।

अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।।२७०।।

सव्वलोगो वा।।२७१।।

उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२७२।।

लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।२७३।।

सव्वलोगो वा।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**देवाः मनुष्याः पंचेन्द्रियाः संज्ञिन एव, तिर्यक्षु केचित् पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः संज्ञिनः केचिदसंज्ञिनश्च।**

एतेषां समुद्घातैः—वेदना-कषाय-वैक्रियिकैः अष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, देवानां विहरमाणानां एतेषां

सूत्रार्थ—

संज्ञीमार्गणानुसार संज्ञी जीवों ने स्वस्थान पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२६५।।

संज्ञी जीवों ने स्वस्थान पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।२६६।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पर्श किये हैं।।२६७।।

समुद्घातों की अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२६८।।

संज्ञी जीवों द्वारा समुद्घात पदों से लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२६९।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।।२७०।।

अथवा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२७१।।

उपपाद की अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा कितना क्षेत्र स्पृष्ट है ?।।२७२।।

उपपाद की अपेक्षा संज्ञी जीवों द्वारा लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पृष्ट है।।२७३।।

अथवा अतीतकाल की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देव और मनुष्य पंचेन्द्रिय संज्ञी ही होते हैं, तिर्यंचों में कुछ पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी होते हैं और कुछ असंज्ञी होते हैं।

इन सभी का समुद्घात की अपेक्षा कथन करते हैं—वेदना, कषाय और वैक्रियिक समुद्घातों की

त्रयाणां समुद्घातानामुपलंभात्। असंज्ञिजीवेषु कृत-मारणान्तिकापेक्षया सर्वलोको वा स्पृष्टः। त्रसकायिकेषु संज्ञिषु मुक्तमारणान्तिकसंज्ञिजीवान् प्रतीत्य द्वादशचतुर्दशभागाः देशोनाः स्पृष्टाः।

उपपादापेक्षया — संज्ञिषूत्पन्नासंज्ञिजीवानां सर्वलोकोपलंभात्। संज्ञिनां संज्ञिषूत्पद्यमानानां द्वादश-चतुर्दशभागाः भवन्ति। सम्यग्दृष्टीनां षट्चतुर्दशभागाः। एष वा शब्दार्थः। एवमन्यत्रापि अनुक्तस्थाने वाशब्दार्थो वक्तव्यः।

एवं प्रथमस्थले संज्ञिजीवस्पर्शननिरूपणत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

अधुना असंज्ञिजीवानां स्पर्शनकथनाय सूत्रमवतरति —

असण्णी मिच्छाइट्ठीभंगो।।२७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **संसारेऽनादिनिधने सर्वेऽसंज्ञिजीवाः एकेन्द्रियादारभ्य पंचेन्द्रियपर्यन्ताः मिथ्यादृष्टिगुणस्थानवर्तिन एवातस्तेषां स्पर्शनक्षेत्रं मिथ्यादृष्टिवद्ज्ञातव्यं।**

एवं द्वितीयस्थलेऽसंज्ञिस्पर्शनकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अपेक्षा आठ बटे चौदह भाग स्पृष्ट है, क्योंकि विहार करते हुए देवों के ये तीनों समुद्घात पाये जाते हैं। अथवा असंज्ञी जीवों में मारणान्तिकसमुद्घात की अपेक्षा सर्वलोक स्पृष्ट है। त्रसकायिक संज्ञी जीवों में मारणान्तिक समुद्घात से रहित संज्ञी जीवों की अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग स्पृष्ट है।

उपपाद की अपेक्षा संज्ञियों में उत्पन्न हुए असंज्ञी जीवों के सर्वलोक क्षेत्र पाया जताा है। संज्ञियों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी जीवों का स्पर्शन क्षेत्र बारह बटे चौदह भाग है। सम्यग्दृष्टि संज्ञियों का उपपाद क्षेत्र छह बटे चौदह भाग प्रमाण है। यह वा शब्द से सूचित अर्थ है। इसी प्रकार अन्यत्र भी अनुक्त स्थान में वा शब्दों का अर्थ कहना चाहिए।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का स्पर्शन कथन करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

असंज्ञी जीवों का स्पर्शन क्षेत्र मिथ्यादृष्टियों के समान है।।२७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस अनादिनिधन संसार में सभी असंज्ञी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती ही होते हैं अतः उनका स्पर्शनक्षेत्र मिथ्यादृष्टि के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का स्पर्शन कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः स्पर्शनानुगमे आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले आहारकजीवानां स्पर्शननिरूपणत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले-ऽनाहारकजीवानां स्पर्शनकथनत्वेन ''अणाहारा'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

अधुना आहारजीवानां स्पर्शनप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण आहारा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२७६।।

सव्वलोगो वा।।२७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इदं देशामर्शकं सूत्रं। तेन विहारवत्स्वस्थानेनाष्टचतुर्दशभागाः स्पृष्टाः। वैक्रियिकेन त्रयाणां लोकानां संख्यातभागः स्पृष्टः। शेषपदैः सर्वलोकः स्पृश्यते।**

एवं प्रथमस्थले आहारकजीवानां स्पर्शनसूचकत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीमनाहारकाणां स्पर्शनसूचनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अणाहारा केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।।२७८।।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा स्पर्शनानुगम में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का स्पर्शन निरूपण करने हेतु ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का स्पर्शन कथन करने वाले ''अणाहारा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब आहारक जीवों का स्पर्शन प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवों ने स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद पदों से कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२७६।।

आहारक जीवों ने उक्त पदों से सर्व लोक स्पर्श किया है।।२७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह देशामर्शक सूत्र है। उसके द्वारा विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा आहारक जीवों ने आठ बटे चौदह भागों का स्पर्श किया है। वैक्रियिक समुद्घात से तीनों लोकों के संख्यातवें भाग का स्पर्श किया है। शेष पदों से सर्वलोक का स्पर्श होता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में आहारक जीवों का स्पर्शन सूचित करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनाहारक जीवों का स्पर्शन बतलाने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

अनाहारक जीवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?।।२७८।।

सव्वलोगो वा।।२७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**विग्रहगतावनाहारकाः मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टयोऽनाहारकाः अपि भवन्ति। केवलिसमुद्घातकालेऽपि अनाहारकाः भवन्ति, तेन सर्वलोकः स्पृश्यते।**

एवं द्वितीयस्थलेऽनाहाराणां स्पर्शननिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे स्पर्शनानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

इतो विस्तरः—

द्विसहस्र-पंचशत-षटषष्टिवर्षेभ्यः पूर्वं येनाद्यतने दिवसे मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां जैनेश्वरीं दीक्षां गृहीत्वा इन्द्रादिभिः तपःकल्याणकपूजा प्राप्ता, तस्मै श्रीमहावीरस्वामिने मे नमो नमः[1]।

उक्तं च— मार्गशिरकृष्णदशमी-हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते सोमे।
षष्ठेन त्वपराण्हे, भक्तेन जिनः प्रवव्राज[2]।।९।।

असौ भगवन्महतिमहावीरः एषणासमितेः पराकाष्ठां प्राप्तः सन् दिगम्बरमुनिचर्यां प्रदर्शयन् भुवि विहरन्

अनाहारक जीवों ने सर्वलोक का स्पर्श किया है।।२७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विग्रहगति में अनाहारक, मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अनाहारक भी होते हैं। केवलीसमुद्घातकाल में भी अनाहारक होते हैं, इसलिए उनके द्वारा सर्वलोक का स्पर्श किया जाता है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अनाहारक जीवों का स्पर्शन निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में स्पर्शनानुगम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

इसका विस्तार करते हैं—

दो हजार पाँच सौ छ्यासठ वर्ष पूर्व जिन्होंने आज के ही दिन मगसिर कृष्णा दशमी के दिन जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके इन्द्रादिकों के द्वारा दीक्षाकल्याणक की पूजा प्राप्त की थी, उन श्री महावीर स्वामी को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

कहा भी है—

गाथार्थ—मगसिर कृष्णा दशमी के दिन जब चन्द्रमा हस्तोत्तरा नक्षत्र के मध्य उदित हुआ था, तब षष्ठोपवास-बेलापूर्वक अपरान्ह काल में वीर भगवान ने स्वयमेव दीक्षा धारण की थी।।९।।

वे भगवान महावीर एषणा समिति की पराकाष्ठा—चरम सीमा को प्राप्त हुए दिगम्बर मुनिचर्या को

---

१. मगसिर कृ. १०, वी.नि.सं. २५२४ (दि. २४-११-१९९७), हस्तिनापुर में यह प्रकरण लिखा है। २. निर्वाणभक्ति-श्री पूज्यपादस्वामिविरचित।

आहारं गृण्हन् अपि निराहार इव बभूव, पुनश्च द्वादशवर्षं यावत् तपश्चरणैः केवलज्ञानमुत्पाद्यासंख्यान् जीवान् संबोध्य त्रिंशद्वर्षानन्तरं सिद्धालयं जगाम, तत्रानाहारोऽपि अनन्तसौख्यं भुनक्ति तं मुहुर्मुहुर्वंदामहे वयम्।

पृथ्वीछंदः —

नमोऽस्तु परमात्मने सकललोकचूड़ामणे।
नमोऽस्तु जिनवीर! धीर! भगवन्! महावीर! ते।।
नमोऽस्तु जिनपुंगवाय जिनवर्धमानाय ते।
नमोऽस्तु जिनसन्मते! वितनु सन्मतिं मे सदा[१]।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबल्याचार्यविरचिते क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यविरचित-धवलाटीकाप्रमुखनाना-ग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः चारित्रचूडामणिः श्रीवीरसागरा-चार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनायाः प्रेरिका गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां स्पर्शनानुगमानियोगद्वार-नामायं सप्तमो महाधिकारः समाप्तः।

प्रदर्शित करते हुए धरती पर विहार करते हुए आहार करके भी निराहार के समान थे। उन्होंने दीक्षा के बाद बारह वर्षों तक तपश्चरण के द्वारा केवलज्ञान को उत्पन्न करके असंख्य जीवों को सम्बोधन प्रदान करके तीस वर्ष के पश्चात् सिद्धालय—मोक्षधाम को प्राप्त कर लिया, वहाँ अनाहारक रहते हुए भी अनन्त सौख्य को भोग रहे हैं, उन सिद्ध परमेष्ठी महति महावीर भगवान की हम बारम्बार वंदना करते हैं।

श्लोकार्थ—हे सम्पूर्ण लोक के चूड़ामणि परमात्मा! आपको मेरा नमस्कार होवे। हे धीर-वीर-जिनेन्द्र महावीर प्रभो! आपके लिए मेरा नमन है। हे जिनपुंगव, वर्धमान भगवान्! आपको मेरा नमोऽस्तु है और हे सन्मति भगवान जिनेन्द्र! आपको मेरा नमस्कार है, आप मुझे सदा सन्मति—सद्बुद्धि प्रदान करें।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवलाटीका को प्रमुख करके अन्य नाना ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम पट्टाधीश चारित्रचूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या, जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में स्पर्शनानुगम अनियोगद्वार नाम का सप्तम महाधिकार समाप्त हुआ।

---

१. वीरजिनस्तुतिः काव्य ३५, स्वविरचित।

अथ नानाजीवेन कालानुगमोऽष्टमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

भुजंगप्रयातं छंदः- **सुकैवल्यबोधैर्जगद्व्याप्य विष्णुः। महामोहजिष्णुर्भविष्णुः सहिष्णुः।**
विनालंकृतिं श्रीतनुर्ब्रह्मचारी, नमस्तेऽतिवीराय धर्मस्य भर्त्रे।।१।।

अथ पंचपञ्चाशत्सूत्रैः नानाजीवापेक्षया कालानुगमो नाम अष्टमो महाधिकारः प्रारभ्यते। अस्मिन् चतुर्दशाधिकाराः कथ्यन्ते। तत्र तावत्प्रथमाधिकारे गतिमार्गणायां नानाजीवापेक्षया चतुर्गतिषु कालनिरूपणत्वेन ''णाणाजीवेण-'' इत्यादिना एकादशसूत्राणि। ततः परं द्वितीयेऽधिकारे इंन्द्रियमार्गणायां कालकथनत्वेन ''इंदियाणु-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु तृतीयेऽधिकारे कायमार्गणायां कालनिरूपणत्वेन ''कायाणु-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं चतुर्थेऽधिकारे योगमार्गणायां कालकथनत्वेन ''जोगाणुवादेण-'' इत्यादिना एकादशसूत्राणि। तत्पश्चात् पंचमेऽधिकारे वेदमार्गणायां कालकथनमुख्यत्वेन ''वेदाणु-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं षष्ठेऽधिकारे कषायमार्गणायां कालनिरूपणत्वेन ''कसायाणु-'' इत्यादिना सूत्रे द्वे। तदनंतरं सप्तमेऽधिकारे ज्ञानमार्गणायां कालकथनत्वेन ''णाणाणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं अष्टमेऽधिकारे संयममार्गणायां कालनिरूपणत्वेन ''संजमाणु-'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पुनः नवमेऽधिकारे दर्शनमार्गणाधिकारे कालकथनप्रकारेण ''दंसणाणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च दशमेऽधिकारे लेश्यामार्गणायां कालनिरूपणत्वेन ''लेस्साणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनरपि एकादशेऽधिकारे भव्यमार्गणायां कालनिरूपणत्वेन ''भविया-'' इत्यादिना सूत्रे द्वे। ततः परं द्वादशेऽधिकारे सम्यक्त्वमार्गणायां कालप्ररूपणायां

अथ नाना जीव की अपेक्षा कालानुगम नामक आठवाँ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — अपने केवलज्ञान के द्वारा जगत् व्यापी होने से जो 'विष्णु' हैं। महामोह — मोहरूपी राजा पर विजय प्राप्त करने से जिष्णु हैं, भव का अन्त कर देने से 'भविष्णु' हैं, सहनशील होने के कारण ''सहिष्णु'' हैं तथा बिना अलंकारों — आभूषणों के जो ब्रह्मचारी — निविकारी तनु — शरीर वाले हैं, ऐसे धर्म के भर्त्ता — स्वामी अतिवीर भगवान के लिए मेरा नमस्कार है।।१।।

अब चार अधिकारों में नाना जीव की अपेक्षा कालानुगम नाम का आठवाँ महाधिकार प्रारंभ होता है। इस महाधिकार में चौदह अधिकार हैं। उनमें से गतिमार्गणा नाम के प्रथम अधिकार में नाना जीवों की अपेक्षा चारों गतियों में काल का निरूपण करने हेतु ''णाणाजीवेण'' इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। उसके आगे द्वितीय अधिकार में इन्द्रिय मार्गणा में काल का कथन करने वाले ''इंदियाणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः तृतीय कायमार्गणा अधिकार में काल का निरूपण करने वाले ''कायाणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनंतर चतुर्थ योगमार्गणा अधिकार में काल का कथन करने हेतु ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि ग्यारह सूत्र हैं। तत्पश्चात् पंचम वेदमार्गणा अधिकार में काल कथन की मुख्यता वाले ''वेदाणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। आगे छठी कषायमार्गणा अधिकार में कालनिरूपण करने हेतु ''कसायाणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। तदनंतर सातवीं ज्ञानमार्गणा में कालकथन करने वाले ''णाणाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद आठवीं संयममार्गणा में कालनिरूपण करने वाले ''संजमाणु'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। पुनः नवमी दर्शनमार्गणा में कालकथन प्रकार से दंसणाणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। आगे दशवीं लेश्यामार्गणा में कालनिरूपण करने हेतु ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः ग्यारहवीं भव्यमार्गणा में

''सम्मत्ताणु-'' इत्यादिसूत्राष्टकं। ततश्च त्रयोदशेऽधिकारे संज्ञिमार्गणायां कालनिरूपणत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्चाहारमार्गणायां चतुर्दशेऽधिकारे कालकथनमुख्यत्वेन ''आहारा-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

इदानीं गतिमार्गणायां नरकगतौ कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णाणाजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।।१।।

सव्वद्धा।।२।।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रे नानाजीवग्रहणमेकजीवप्रतिषेधार्थं। 'णेरइय' निर्देशः तत्र नरकभूमिषु स्थितपृथिवीकायिकादिप्रतिषेधफलः। नरकगतौ नारकाः किमनादि-अपर्यवसिताः, किमनादिसपर्यवसिताः, किं साद्यपर्यवसिताः, किं सादि-सपर्यवसिताः ? इति शिष्यस्याशंका प्रकटीकृता। अथवा नेदमाशंकितसूत्रं, किन्तु पृच्छासूत्रमिति वक्तव्यं। एषोऽर्थः सर्वशंकासूत्रेषु योजयितव्यः।**

काल का निरूपण करने वाले ''भविया'' इत्यादि दो सूत्र हैं। उसके बाद बारहवीं सम्यक्त्वमार्गणा में कालप्ररूपणा में ''सम्मत्ताणु'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। आगे तेरहवीं संज्ञीमार्गणा में काल का निरूपण करने हेतु ''सण्णिया'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनश्च आहारमार्गणा नामक चौदह अधिकार में कालकथन की मुख्यता वाले ''आहारा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। इस प्रकार महाधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

अब यहाँ सर्वप्रथम गतिमार्गणा में नरकगति में काल का प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

नाना जीवों की अपेक्षा कालानुगम से गतिमार्गणा के अनुसार नरकगति में नारकी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१।।

नाना जीवों की अपेक्षा नरकगति में नारकी जीव सर्वकाल रहते हैं।।२।।

इसी प्रकार नाना जीवों की अपेक्षा सातों पृथिवियों में नारकी जीव सर्वकाल रहते हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र में 'नाना जीव' शब्द का ग्रहण एक जीव का प्रतिषेध करने हेतु किया है। ''णेरइय'' अर्थात् 'नारकी' पद का निर्देश नरकभूमियों में रहने वाले पृथिवीकायिक आदि जीवों का प्रतिषेध करने हेतु है। नरकगति में नारकी जीव क्या अनादि-अपर्यवसित है, क्या अनादि-सपर्यवसित है, क्या सादि-अपर्यवसित हैं और क्या सादि-सपर्यवसित हैं इस प्रकार सूत्र द्वारा शिष्य की आशंका को प्रकट किया है। अथवा यह आशंका सूत्र नहीं है, किन्तु पृच्छासूत्र है, ऐसा कहना चाहिए। यह अर्थ सभी शंका सूत्रों में जोड़ना चाहिए।

आचार्यः प्राह — इमे नारकाः अनाद्यपर्यवसिताः भवन्ति, शेषास्त्रयो विकल्पा एषु न सन्ति, स्वभावात्। सर्वः स्वभावः सहेतुक एवेति नियमो नास्ति, एकान्तप्रसंगात्। तस्मात् ''ण अण्णहावाइणो जिणा''। इतीदं श्रद्धातव्यं।

यथा नारकाणां सामान्येन अनाद्यनन्तः संतानकालः कथितस्तथा सप्तसु पृथिवीसु नारकाणामपि। प्रत्येकपृथिवीषु संतानस्य व्युच्छेदो न भवतीति उक्तं भवति।

एवं प्रथमादिपृथिवीषु नारकाणां कालः प्रतिपादितः।

अधुना तिर्यग्मनुष्याणां कालप्रतिपादनाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ?।।४।।

सव्वद्धा।।५।।

मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।६।।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।।७।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।८।।

आचार्य कहते हैं कि — नारकी जीव अनादि-अपर्यवसित हैं, शेष तीन विकल्प इनमें नहीं हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव से ही है और सब स्वभाव सहेतुक ही हो, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि ऐसा मान लेने में एकान्तवाद का प्रसंग आता है। इसलिए जिनदेव अन्यथावादी नहीं होते हैं, ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

जिस प्रकार नारकियों का सामान्य से अनादि-अनन्त सन्तान काल कहा गया है। उसी प्रकार सातों पृथिवियों में जानना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक पृथिवी में नारकियों कीपरम्परा का व्युच्छेद नहीं होता है, ऐसा इस सूत्र का अभिप्राय है।

इस प्रकार से प्रथम आदि नरकपृथिवियों में नारकियों का काल प्रतिपादित किया गया।

अब तिर्यंच और मनुष्यों का काल बतलाने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यंचगति में तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी व पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तथा मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी कितने काल तक रहते हैं ?।।४।।

वे जीव सर्वकाल रहते हैं।।५।।

मनुष्य अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।६।।

मनुष्य अपर्याप्त जघन्य से क्षुद्रभवग्रहण काल तक रहते हैं।।७।।

वे ही मनुष्य अपर्याप्त जीव उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहते हैं।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तिर्यग्गतौ सामान्यतिर्यञ्चः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्ताः पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमत्यः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्ताश्चेमे पंचविधाः, मनुष्यगतौ सामान्यमनुष्याः मनुष्यपर्याप्ताः मनुषिन्यः इमे त्रिविधाश्च कियत्कालपर्यन्तं भवन्तीति पृच्छासूत्रं वर्तते।**

अमीः अष्टविधा अपि संतानं प्रतीत्य किमनाद्यनन्ताः किमनादिसान्ताः किं सादि-अनन्ताः, किं सादि-सान्ताः ? यदि सादिसान्ता अपि सन्तस्तत्र किमेकसमयावस्थायिनः किं द्विसमयाः किं त्रिसमयाः, एवमावलिका-क्षण-लव-मुहूर्त-दिवस-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सर-पूर्व-पर्व-पल्य-सागर-उत्सर्पिणी-कल्पादिकालावस्थायिन इति आशंक्य तस्योत्तरसूत्रं भणति—

''सव्वद्धा'' सर्वा अद्धा कालो येषां ते सर्वाद्धा भवन्ति, संतानं प्रति इमे सर्वकालावस्थायिन इति कथितं भवति। केचिद् जीवा अनर्पितगतेः आगत्य लब्ध्यपर्याप्तमनुष्येषूत्पद्यान्तरं विनाश्य क्षुद्रभवग्रहणकाल-पर्यन्तं स्थित्वा निःशेषरूपेणानर्पितगतिं गतास्तेषां एतज्जघन्यकाल उपलभ्यते।

उत्कर्षेण—अपर्याप्तमनुष्येषु अन्तरं कृत्वा स्थितेषु अनर्पितगतेः स्तोकाः जीवा अपर्याप्तमनुष्येष्वागत्योत्पन्नाः। नष्टमन्तरं। तेषां जीवानां जीवितद्विचरमसमय इति पुनरपि उत्पत्तिं प्रतीत्यान्तरं कृत्वा पुनः अन्य जीवान् अपर्याप्तमनुष्येषूत्पादयितव्याः। तत्राप्युत्पत्तिं प्रतीत्यार्पितजीवानां जीवितद्विचरमसमय इति अन्तरं कृत्वा पुनः अन्ये जीवाः उत्पादयितव्याः। तत्राप्युत्पत्तिं प्रतीत्यार्पितजीवानां जीवितद्विचरमसमयः इत्यन्तरं कृत्वा अन्ये उत्पादयितव्याः। अनेन प्रकारेण पल्योपमस्यासंख्येयभागमात्रवारेषु गतेषु ततो नियमात् अन्तरं भवति।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तिर्यंचगति में सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंच और पंचेन्द्रियअपर्याप्त तिर्यंच ये पाँच प्रकार के होते हैं। मनुष्यगति में सामान्यमनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनी ये तीन भेद हैं और ये सभी कितने काल तक होते हैं ? ऐसा पृच्छा सूत्र है।

ये आठों प्रकार के तिर्यंच और मनुष्य सन्तान—परम्परा की अपेक्षा 'क्या अनादि अनंत हैं, क्या अनादि-सान्त है, क्या सादि-अनन्त है, क्या सादि-सान्त है ? यदि सादि-सान्त हैं तो वे भी क्या एक समय अवस्थायी हैं ? क्या दो समय अवस्थायी हैं ? क्या तीन समय अवस्थायी हैं ? इसी प्रकार वे क्या आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी एव कल्पादि काल तक अवस्थायी हैं। इस प्रकार आशंका करके उसका उत्तरसूत्र कहते हैं।

''सव्वद्धा'' यह पाँचवाँ सूत्र हैं अर्थात् 'सर्व हैं अद्धा अर्थात् काल जिनका वे सर्वाद्धा होते हैं' इस बहुब्रीहि समास के अनुसार 'सर्वाद्धा' पद का अर्थ सर्वकाल होता हैं, अर्थात् संतान की अपेक्षा वहाँ उक्त जीव सर्वकाल अवस्थित रहते हैं। यह इस सूत्र का अभिप्राय बताया है। कोई जीव अविवक्षित गति से आकर मनुष्य अपर्याप्तों में उत्पन्न होकर व अन्तर को नष्ट करके वहाँ क्षुद्रभवग्रहणकाल तक रहकर निःशेषरूप से अविवक्षित गति में गये हैं, तो उन जीवों का क्षुद्रभवग्रहणमात्र जघन्य काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—अपर्याप्तक मनुष्य जीवों में अन्तर करके स्थित होने पर अविवक्षित गतियों से कम जीव मनुष्य अपर्याप्तों में आकर उत्पन्न हुए। उनका अन्तर नष्ट हो गया। उन जीवों को जीवित रहने के लिए द्विचरम समय तक फिर भी उत्पत्ति की अपेक्षा अन्तर करके पुनः अन्य जीवों को मनुष्य अपर्याप्तों में उत्पन्न कराना चाहिए। वहाँ भी उत्पत्ति की अपेक्षा विवक्षित जीवों के जीवित रहने के द्विचरम समय तक अन्तर करके पुनः अन्य जीवों में उत्पन्न कराना चाहिए। वहाँ भी उत्पत्ति की अपेक्षा विवक्षित जीवों के जीवित रहने के द्विचरम समय तक अन्तर करके अन्य जीवों को उत्पन्न कराना चाहिए। इस प्रकार से पल्योपम के

एतस्मिन् काले आनीयमाने 'एकस्यां वारशलाकायां यदि संख्यातावलिमात्रःकालो लभ्यते, तर्हि पल्योपमस्यासंख्येयभागमात्रशलाकासु किं लभामो' इति फलेन इच्छां गुणयित्वाप्रमाणेनापवर्तिते अपर्याप्तमनुष्याणां संतानकालः पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रो जातः। केचिदाचार्याः एकामायुस्थितिं स्थापयित्वावलिकायाः असंख्यातभागमात्रनिरन्तरोपक्रमकालेन गुणयित्वा प्रमाणेनापवर्तन्ते तेषामेष कालो नागच्छति।

संप्रति देवगतौ देवानां कालप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ?।।९।।

सव्वद्धा।।१०।।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।नानाजीवापेक्षया देवाः देवगतिषु चतुर्णिकायेषु सर्वकालमेव सन्ति।**

एवं चतुर्गतिषु जीवानां कालनिरूपणत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

असंख्यातवें भाग प्रमाण वारों के बीत जाने पर तत्पश्चात् नियम से अन्तर होता है।

इस काल के लाते समय 'यदि एक बार शलाका में संख्यात आवली प्रमाण काल लब्ध होता है तो पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण चार शलाकाओं में कितना काल लब्ध होगा ? इस प्रकार फल राशि से इच्छाराशि को गुणित कर प्रमाणराशि से अपवर्तित करने पर अपर्याप्त मनुष्यों की परम्परा का काल पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है। कितने ही आचार्य एक आयु स्थिति को स्थापित कर आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण निरन्तर उपक्रमकाल से गुणित करके प्रमाण से अपवर्तित करते हैं। उनके उक्त विधान से यह काल नहीं आता है।

अब देवगति में देवों का काल प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

देवगति में देव कितने काल तक रहते हैं ?।।९।।

देवगति में देव सर्वकाल रहते हैं।।१०।।

इसी प्रकार भवनवासी देवों से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक सब देव सर्वकाल रहते हैं।।११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। नाना जीव की अपेक्षा देव देवगति में चारों निकायों में सर्वकाल ही पाये जाते हैं।

इस प्रकार से प्रथम अधिकार में चारों गतियों के जीवों का काल निरूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

संप्रति इन्द्रियमार्गणायां जीवानां कालकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।१२।।

सव्वद्धा।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रिया एकेन्द्रियपर्याप्ता एकेन्द्रियापर्याप्ताः, बादरैकेन्द्रिया बादरैकेन्द्रियपर्याप्ताः बादरैकेन्द्रियापर्याप्ताः, सूक्ष्मैकेन्द्रियाः सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताश्च इमे नवधा एकेन्द्रियजीवाः। द्वीन्द्रियाः त्रीन्द्रियाः चतुरिन्द्रियाः पंचेन्द्रियाः चतुर्विधाः एषां पर्याप्ताश्चतुर्विधा अपर्याप्ताश्चतुर्विधाः एवं द्वादशविधाः भवन्ति। एवं एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यंता एकविंशतिभेदाः सन्ति।**

इमे सर्वेऽपि जीवाः सर्वकालं सन्ति नानाजीवापेक्षयेति।

एवं इन्द्रियमार्गणायां कालकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब इन्द्रियमार्गणा में जीवों का कालकथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१२।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त ये नौ भेद एकेन्द्रिय जीवों के हैं। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार और इन चारों के चार पर्याप्त और चार अपर्याप्त इस प्रकार बारह भेद हो जाते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त इक्कीस भेद होते हैं।

ये सभी जीव नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल पाये जाते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में इन्द्रियमार्गणा में कालकथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

इदानीं कायमार्गणायां कालनिरूपणार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्ता तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।।१४।।

सव्वद्धा।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कायमार्गणानुसारेण पृथिवीकायिकाः पृथिवीकायिकपर्याप्ताः पृथिवीकायिकापर्याप्ताः, बादरपृथिवीकायिकाः बादरपृथिवीकायिकपर्याप्ता बादरपृथिवीकायिकापर्याप्ताः, सूक्ष्मपृथिवीकायिकाः सूक्ष्मपृथिवीकायिकपर्याप्ताः सूक्ष्मपृथिवीकायिकापर्याप्ताः इमे पृथिवीकायिका नवविधाः। एतेनैव अप्कायिकाः नवविधाः, तेजस्कायिकाः नवविधाः, वायुकायिकाः नवविधाः। वनस्पतिकायिकाः वनस्पतिकायिकपर्याप्ताः वनस्पतिकायिकापर्याप्ताः बादरवनस्पतिकायिकाः बादरवनस्पतिकायिकपर्याप्ताः बादरवनस्पतिकायिकापर्याप्ताश्चेमे षड्विधाः। निगोदजीवाः बादरसूक्ष्मभेदेन पर्याप्तापर्याप्तभेदेनापि नवविधाः। बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीराः बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्ताः, बादरवनस्पतिकायिक-प्रत्येकशरीरा-**

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब कायमार्गणा में काल का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुसार पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, निगोदजीव, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त-अपर्याप्त, त्रसकायिक पर्याप्तक-अपर्याप्त जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१४।।

ये सभी जीव सर्वकाल रहते हैं।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कायमार्गणा के अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्तक, पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त ये पृथिवीकायिक के नौ भेद हैं। इसी प्रकार अप्कायिक के नौ भेद हैं। तेजस्कायिक के नौ भेद हैं। वायुकायिक के नौ भेद हैं। वनस्पति, वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त ये वनस्पतिकायिक के छह भेद हैं। निगोद जीव, निगोद जीव पर्याप्त, निगोद जीव अपर्याप्त, बादरनिगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त, बादर निगोद जीव अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त के भेद से निगोद जीव नौ प्रकार

पर्याप्ताः त्रिविधाः एवमेकेन्द्रियस्थावरजीवाः चतुःपञ्चाशद्विधाः भवन्ति।

त्रसजीवाः त्रसजीवपर्याप्ताः त्रसजीवापर्याप्ताश्च त्रिविधाः, सर्वे मिलित्वा सप्तपञ्चाशद् भेदाः भवन्ति। इमे षट्कायजीवाः सर्वकालं सन्ति।

एवं षट्कायजीवानां कालकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ योगमार्गणाधिकारः

संप्रति योगमार्गणायां मनोवचनकाययोगिनां आहारयोगवर्जितानां कालनिरूपणाय सूत्रपञ्चकमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकाय-जोगी ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।।१६।।

सव्वद्धा।।१७।।

के हैं। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त के भेद से तीन प्रकार के हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के ५४ भेद होते हैं।

त्रसकायिक जीव, त्रसकायिक पर्याप्त जीव और त्रसकायिक अपर्याप्त जीव ये तीन प्रकार के हैं। अतः सब मिलकर ५७ भेद होते हैं। ये छहों काय के जीव सर्वकाल पाये जाते हैं।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में षट्काय जीवों का काल कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब योगमार्गणा में आहारयोग से रहित मन-वचन-काय योगी जीवों का काल निरूपण करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणा के अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिक-काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१६।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।१७।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।।१८।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।१९।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां जघन्येनान्तर्मुहूर्तकालस्य व्यवस्था निरूप्यते—औदारिककाययोगस्थिततिर्यग्मनुष्याणां द्वौ विग्रहौ कृत्वा देवेषूत्पद्य सर्वजघन्येन कालेन पर्याप्तीः समाप्यान्तरिताणां अन्तर्मुहूर्तमात्रजघन्यकाल उपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां यथा पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रः संतानकालः प्ररूपितस्तथात्रापि प्ररूपयितव्यः।

इदानीमाहारकाय-आहारमिश्रकाययोगिनां कालप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते—

आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।।२१।।

जहण्णेण एगसमयं।।२२।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२३।।

आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।।२४।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।२५।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।१८।।

वैक्रियिक मिश्रकाययोगियों का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है।।१९।।

उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहते हैं।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रों का अर्थ सुगम है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल का निरूपण करते हैं—औदारिककाययोग में स्थित तिर्यंच और मनुष्यों का दो विग्रह करके देवों में उत्पन्न होकर और सर्व जघन्य काल से पर्याप्तियों को पूर्णकर वैक्रियिक काययोग के द्वारा अन्तर को प्राप्त हुए उक्त देवों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—जिस प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों का जैसा पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र सन्तान काल निरूपण किया जा चुका है। उसी प्रकार यहाँ पर भी निरूपण करना चाहिए।

अब आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों का काल प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित किये जाते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारक काययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।२१।।

आहारक काययोगी जीव जघन्य से एक समय तक रहते हैं।।२२।।

आहारक काययोगी जीव उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।।२३।।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।२४।।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।।२५।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मनोयोग-वचनयोगेभ्य आहारकाययोगं गत्वा द्वितीयसमये कालं कृत्वा योगान्तरं गतस्तस्यैकसमयकाल उपलभ्यते।**

उत्कर्षेणात्राहारकाययोगिनां द्विचरमसमयो यावत् आहारकाययोग-प्रवेशस्यान्तरं कृत्वा पुनः उपरिमसमये अन्यान् जीवान् प्रवेश्य एवं संख्यातवारशलाकासु उत्पन्नासु ततो नियमादन्तरं भवति। एवं संख्यातान्तर्मुहूर्त-समासोऽपि अन्तर्मुहूर्तमात्रश्चैव।

कथमेतज्ज्ञायते ?

'उत्कृष्टकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र' इति सूत्रवचनादेव ज्ञायते। आहारमिश्रकाययोगचरस्य महामुनेः आहारमिश्रकाययोगं गत्वा सुष्ठु जघन्येन कालेन पर्याप्तीः समापितस्य जघन्यकालोपलंभात्।

उत्कर्षेण—अत्रापि पूर्वमिव संख्यातान्तर्मुहूर्ताणां संकलना अपि अन्तर्मुहूर्तमेव कथ्यते।

एवं योगमार्गणासु कालनिरूपणत्वेन एकादशसूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

आहारकमिश्रकाययोगी जीव उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनोयोग और वचनयोग से आहारककाययोग को प्राप्त होकर व द्वितीय समय में मरण करके योगान्तर को प्राप्त होने पर उनके रहने का एक समय काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—यहाँ आहारक काययोगियों के द्विचरम समय तक आहारककाययोग में प्रवेश का अन्तर करके पुनः उपरिम समय तक अन्य जीवों को प्रविष्ट कराके इस प्रकार संख्यात बादर शलाकाओं के उत्पन्न होने पर तत्पश्चात् नियम से अन्तर होता है। इस प्रकार संख्यात अन्तर्मुहूर्तों का जोड़ भी अन्तर्मुहूर्त मात्र ही होता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—"उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मात्र है" यह इस सूत्र वचन से ही जाना जाता है।

क्योंकि आहारकमिश्रकाययोग को प्राप्त महामुनि जब आहारकमिश्रकाययोग को प्राप्त होकर अतिशय जघन्य काल से पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेते हैं तब उनके जघन्य काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—यहाँ पर भी पूर्व के समान संख्यात अन्तर्मुहूर्तों का संकलन करने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही कहा जाता है।

इस प्रकार से योगमार्गणा में काल का निरूपण करने वाले ग्यारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अधुना वेदमार्गणायां कालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ?।।२७।।

सव्वद्धा।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिविधाः वेदधारिणोऽपगतवेदाश्च सर्वकालमपि विद्यन्ते नानाजीवापेक्षया।**

एवं वेदमार्गणायां कालकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब वेदमार्गणा में काल प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।२७।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—नाना जीव की अपेक्षा तीनों प्रकार के वेदों को धारण करने वाले जीव और अपगतवेदी भगवान सर्वकाल पाये जाते हैं।

इस प्रकार वेदमार्गणा में काल का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पाँचवां अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अधुना कषायमार्गणायां कालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति ?।।२९।।

सव्वद्धा।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**क्रोधमानमायालोभसहिताः कषायविरहिताश्च जीवाः सर्वकालं सन्ति।**

एवं कषायमार्गणायां कालनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानामषष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब कषायमार्गणा में काल का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणा के अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और कषायरहित जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।२९।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्रोध-मान-माया-लोभ इन चारों कषाय सहित और कषायरहित जीव सर्वकाल पाये जाते हैं।

इस प्रकार से कषायमार्गणा में काल का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अधुना ज्ञानमार्गणायां कालप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणि-बोहियसुद-ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलवाणी केवचिरं कालादो होंति ?।।३१।।

सव्वद्धा।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिविधा अज्ञानिनो, मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिश्च सर्वकालमपि सन्त्येव।**

एवं ज्ञानमार्गणायां कालकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब ज्ञानमार्गणा में काल का प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।३१।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों प्रकार के अज्ञानी एवं मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय और केवलज्ञानी जीव सदा काल ही रहते हैं।

इस प्रकार से ज्ञानमार्गणा में काल का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अधुना संयममार्गणायां कालप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धि-संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।३३।।

सव्वद्धा।।३४।।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।।३५।।

जहण्णेण एगसमयं।।३६।।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उपशान्तकषायस्य एकादशगुणस्थानवर्तिमुनेः अनिवृत्तिबादरसांपरायिकप्रविष्टस्य वा सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थानं प्रतिपन्नद्वितीयसमये कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नस्य एकसमयोपलंभात्।**

उत्कर्षेण — संख्यातान्तर्मुहूर्तसमाससमुद्भूतोऽन्तर्मुहूर्तकालः प्ररूपयितव्यः।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब संयममार्गणा में काल का वर्णन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणा के अनुवाद से संयत, सामायिक, छेदोपस्थापनशुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।३३।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।३४।।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।३५।।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव जघन्य से एक समय तक रहते हैं।।३६।।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीव उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन सूत्रों का अर्थ सुगम है। उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि के वा अनिवृत्तिबादरसाम्परायप्रविष्ट मुनियों के सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान को प्राप्त होने वाले द्वितीय समय में मरण कर देवों में उत्पन्न होने पर एक समय जघन्य काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से — संख्यात अन्तर्मुहूर्तों के संकलन से उत्पन्न हुए अन्तर्मुहूर्त काल की प्ररूपणा करनी चाहिए।

एवं संयमसहितानां देशसंयतानां असंयतानां च कालप्ररूपणत्वेन पंचसूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

दर्शनमार्गणायां कालकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी केवचिरं कालादो होंति ?।।३८।।

सव्वद्धा।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **चतुर्विधदर्शनवतां सर्वदैवास्तित्वात् ते सन्त्येव।**

एवं दर्शनवतां कालनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार से संयम सहित जीवों का, देश संयतों का और संयतों का काल प्ररूपण करने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दर्शनमार्गणा में काल का निरूपण करने वाले दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणा के अनुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।३८।।

उक्त जीव सर्वकाल तक रहते हैं।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — चक्षु-अचक्षु-अवधि एवं केवल इन चारों प्रकार के दर्शन वाले जीव सर्वदा ही विद्यमान रहते हैं।

इस प्रकार से दर्शनोपयोग सहित जीवों का कालनिरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

लेश्यामार्गणायां कालकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?।।४०।।

सव्वद्धा।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**लेश्याः अन्तरेण केचिदपि जीवाः कदाचिदपि न सन्ति एतेषां सर्वकालमेवास्तित्वं।**
एवं लेश्यावतां कालनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

भव्यमार्गणायां कालनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?।।४२।।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब लेश्यामार्गणा में काल का कथन करने वाले दो सूत्र अवतीर्ण किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुसार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले, कापोतलेश्या वोलतेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।४०।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—लेश्या के बिना कोई भी जीव कभी भी नहीं होते हैं अतः इन लेश्याधारी जीवों का अस्तित्व सर्वकाल समझना चाहिए।

इस प्रकार से लेश्यावान् जीवों का काल निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब भव्यमार्गणा में काल का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।४२।।

सव्वद्धा।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संसारिजीवा द्विविधाः—भव्या अभव्याश्च, मुक्तजीवा न भव्या नाभव्या, एतेषां अस्तित्वं सर्वकालमेव।**

एवं भव्याभव्यकालकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

सम्यक्त्वमार्गणायां कालप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते—

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।४४।।

सव्वद्धा।।४५।।

उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।४६।।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव सर्वकाल तक रहते हैं।।४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—भव्य और अभव्य। मुक्त जीव न भव्य हैं न अभव्य हैं। इन भव्य-अभव्य दोनों प्रकार के जीवों का अस्तित्व सर्वकाल पाया जाता है।

इस प्रकार से भव्य-अभव्य जीवों का काल कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब सम्यक्त्वमार्गणा में काल का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।४४।।

उक्त जीव सर्वकाल रहते हैं।।४५।।

उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।४६।।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।४७।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।४८।।

सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।।४९।।

जहण्णेण एगसमयं।।५०।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**केचिद् दृष्टमार्गाः सम्यग्मिथ्यात्वं उपशमसम्यक्त्वं वा प्रतिपद्य सर्वजघन्येन कालेन तत्र स्थित्वा गुणस्थानान्तरं गतास्तयोः सुष्ठु जघन्यान्तर्मुहूर्तकाल उपलभ्यते।**

उत्कर्षेण—एतस्मिन् काले आनीयमाने अर्पितगुणस्थानकालमात्रे एकप्रवेशनकालशलाकां कृत्वा एतादृशासु पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रशलाकासूत्पन्नासु ततो नियमादन्तरं भवति। अत्र सर्वकालशलाकाभिर्गुणस्थानकालस्य गुणिते उत्कृष्टकालो भवति।

उपशमसम्यक्त्वकाले एकसमयावशेषे सासादनं गत्वा एकसमयं स्थित्वा द्वितीयसमये मिथ्यात्वं गतस्य एकसमयदर्शनात् सासादनानां। उत्कर्षेण—सम्यग्मिथ्यात्वकालसमासविधानेन एतस्य कालस्य समुत्पत्तेः।

उपमशसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक रहते हैं।।४७।।

उक्त जीव उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहते हैं।।४८।।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।४९।।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव जघन्य से एक समय तक रहते हैं।।५०।।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक रहते हैं।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कोई दृष्टमार्गी जीव सम्यग्मिथ्यात्व अथवा उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त कर तथा सर्व जघन्य काल तक इन गुणस्थानों में रहकर अन्य गुणस्थान को प्राप्त हुआ। वहाँ उनके अतिशय जघन्य अन्तर्मुहूर्तमात्र काल पाया जाता है।

उत्कृष्ट से—इस काल के लाते समय विवक्षित गुणस्थानों के कालप्रमाण एक प्रवेशनकाल की शलाका को करके पुनः ऐसी पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण शलाकाओं के उत्पन्न होने पर तत्पश्चात् नियम से अन्तर होता है। यहाँ सब काल शलाकाओं से गुणस्थान काल को गुणित करने पर उत्कृष्ट काल होता है।

उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त होकर और एक समय रहकर द्वितीय समय में मिथ्यात्व को प्राप्त होने पर एक समय जघन्य काल देखा जाता है। उत्कृष्ट से—सम्यग्मिथ्यात्व काल के संकलन का जो विधान कहा जा चुका है, उसके अनुसार इस काल की उत्पत्ति होती है।

एवं सम्यक्त्वमार्गणाकालकथनत्वेन अष्टौ सूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

संज्ञिमार्गणायां जीवानां कालकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिरं कालादो होंति ?।।५२।।

सव्वद्धा।।५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **तिर्यक्षु संज्ञि-असंज्ञिभेदाः सन्ति, शेषासु तिसृषु गतिषु सर्वे संज्ञिन एव। इमे जीवाः सर्वकालं सन्ति।**

एवं संज्ञि-असंज्ञिजीवानां कालनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार से सम्यक्त्वमार्गणा में काल का कथन करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब संज्ञीमार्गणा में जीवों का काल कथन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञीमार्गणा के अनुसार संज्ञी और असंज्ञी जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।५२।।

संज्ञी और असंज्ञी जीव सर्वकाल तक रहते हैं ।।५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तिर्यंचों में संज्ञी और असंज्ञी दो भेद हैं, शेष तीन गतियों में सभी संज्ञी ही होते हैं। ये सभी जीव सर्वकाल पाये जाते हैं।

इस प्रकार से संज्ञी और असंज्ञी जीवों का काल निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

आहारमार्गणायां कालनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ?।।५४।।

सव्वद्धा।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका-आहारकाः अनाहारकाः अपि सर्वकालमस्तित्वं लभन्ते।

तात्पर्यमेतत्—ये केचित् कवलाहारभोजिनो मनुष्यास्त एव मोक्षप्राप्तये सक्षमाः अत आहारस्य एषणासमितेः गुणदोषान् ज्ञात्वा पिंडशुद्धिः पालयितव्या वर्तमानकाले साधुभिः साध्वीभिश्च तत एव मोक्षप्राप्तिः सुलभा भविष्यति इति ज्ञात्वा महासाधवो दिगम्बरमुद्राधारिणः आर्यिका मातरश्च वंद्या भवन्ति।

उक्तं च— गिरिकंदरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यान्ति परमां गतिम्[१]।।

एवं आहारमार्गणायां कालनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे कालानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब आहारमार्गणा में काल का निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारक व अनाहारक जीव कितने काल तक रहते हैं ?।।५४।।

आहारक व अनाहारक जीव सर्वकाल तक रहते हैं।।५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार के जीवों का अस्तित्व सर्वकाल पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि—जो कवलाहार ग्रहण करने वाले मनुष्य हैं, वे ही मोक्ष प्राप्त करने में सक्षम हैं, अतः आहार की एषणासमिति के गुण-दोषों को जानकर वर्तमानकाल के साधु-साध्वियों को पिण्डशुद्धि का पालन करना चाहिए। इस पिण्डशुद्धि से ही मोक्ष की प्राप्ति सुलभ होगी, ऐसा जानकर दिगम्बर मुद्राधारी महासाधु और आर्यिका माताएँ वंदनीय होती हैं, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

कहा भी है—

श्लोकार्थ—पर्वत की कंदराओं में, दुर्गों में जो दिगम्बर मुनिराज निवास करते हैं। करपात्र में जो आहार ग्रहण करते हैं, वे मुनिगण परम गति—सिद्धगति को प्राप्त करते हैं।।

इस तरह से आहारमार्गणा में काल का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में कालानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. योगभक्ति।

वर्तमानकाले विंशतितमे शताब्दौ येनागमानुसारो मोक्षमार्गो दर्शितः स्वयं देवेन्द्रकीर्तिदिगम्बरगुरोः प्रसादात् जैनेश्वरीं दीक्षां गृहीत्वाचारग्रन्थान् पठित्वा मुनिचर्या निर्दोषतया प्रकटीकृता, तस्मै गुरूणां गुरवे चारित्रचक्रवर्तिने श्रीशांतिसागराय त्रिसंध्यं अस्माकं नमोऽस्तु कोटिवारानिति।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीमद्भूतबल्याचार्यविरचिते क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यकृतधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरः तस्य शिष्यः प्रथमपट्टाधीशः चारित्रचूडामणिः श्रीवीरसागरस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणि-टीकायां पंचपञ्चाशत्सूत्रैः नानाजीवापेक्षया कालानुगमो नामाष्टमो महाधिकारः समाप्तः।

वर्तमानकाल की बींसवी शताब्दी में जिन्होंने आगम के अनुसार मोक्षमार्ग को प्रदर्शित किया, स्वयं देवेन्द्रकीर्ति नामक दिगम्बर गुरु के प्रसाद से जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करके मूलाचार आदि आचारग्रंथों को पढ़कर मुनिचर्या को निर्दोषरूप से प्रगट किया, उन गुरूणांगुरु चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज को तीनों संध्याओं में हमारा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

इस प्रकार श्रीमान भगवान पुष्पदंत-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के अन्तर्गत श्रीभूतबली आचार्य विरचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्रीवीरसेनाचार्य कृत धवलाटीका को प्रमुख करके नाना ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर महामुनि के प्रथम पट्टाधीश चारित्र-चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में पचपन सूत्रों के द्वारा नाना जीव की अपेक्षा कालानुगम नाम का आठवाँ महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ नानाजीवेन अन्तरानुगमो नवमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

जंबूद्वीपेऽत्र यावन्तोऽर्हद्गणभृद् - यतीश्वराः।
सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति, तान् तत् क्षेत्राणि च स्तुवे।।१।।

अस्मिन्[१] कृत्रिमजंबूद्वीपे यावन्त्यो जिनप्रतिमा विराजन्ते ताभ्यो नित्यं नमोस्तु मे। इमाः प्रतिमाः तावत्कालं स्थेयासुः यावच्चन्द्रदिवाकरौ पृथिवीतले विभासेते इति प्रार्थयेऽहं जिनपादपंकेरुहेषु।

अथ चतुर्दशभिरधिकारैः अष्टषष्टिसूत्रैः नानाजीवापेक्षयान्तरानुगमो नवमो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमेऽधिकारे अन्तरनिरूपणत्वेन चतुर्गतिजीवानां ''णाणाजीवेहि'' इत्यादिना चतुर्दशसूत्राणि। ततः परं द्वितीयेऽधिकारे इंद्रियमार्गणायां जीवानामन्तरकथनत्वेन ''इंदियाणु'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु तृतीयेऽधिकारे कायमार्गणायां जीवानामन्तरकथनत्वेन ''कायाणु'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं चतुर्थेऽधिकारे योगमार्गणाधिकारे जीवानामन्तरनिरूपणत्वेन ''जोगाणु'' इत्यादिनवसूत्राणि। ततश्च पंचमेऽधिकारे वेदमार्गणायां अन्तरकथनत्वेन ''वेदाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् षष्ठेऽधिकारे कषायमार्गणायां अन्तरनिरूपणत्वेन ''कसायाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनंतरं सप्तमेऽधिकारे ज्ञानमार्गणायामन्तरप्रतिपादनत्वेन ''णाणाणु'' इत्यादिना त्रीणि सूत्राणि। पुनश्चाष्टमेऽधिकारे संयममार्गणायामन्तरकथनमुख्यत्वेन ''संजमाणु'' इत्यादिसूत्रषट्कं। पुनरपि नवमेऽधिकारे दर्शनमार्गणायां अन्तरकथनत्वेन ''दंसणाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं।

अथ नाना जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नामक नवमाँ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—इस जम्बूद्वीप में जितने भी अर्हन्त भगवान्, गणधरदेव एवं मुनीश्वर सिद्धपद प्राप्त कर चुके हैं, कर रहे हैं और आगे सिद्ध होंगे, उन सभी की एवं उनके सिद्धक्षेत्रों की मैं स्तुति करता हूँ।।

इस कृत्रिम जम्बूद्वीप रचना में (हस्तिनापुर में निर्मित रचना में) जितनी जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं उन सबको मेरा नित्य नमस्कार होवे। ये प्रतिमाएँ इस पृथ्वीतल पर तब तक स्थित रहें जब तक आकाश में चन्द्रमा और सूर्य अपना प्रकाश फैलाते रहें ऐसी मेरी जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों में प्रार्थना है।

अब चौदह अधिकारों में अड़सठ सूत्रों के द्वारा नाना जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नाम का नवमाँ महाधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम अधिकार में चतुर्गति के जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले "णाणाजीवेहि" इत्यादि चौदह सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय इन्द्रिय मार्गणा अधिकार में जीवों का अन्तर कथन करने हेतु "इंदियाणु" इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः तृतीय कायमार्गणा अधिकार में जीवों का अन्तर कथन करने वाले "कायाणु" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनन्तर चतुर्थ योगमार्गणा अधिकार में जीवों का अन्तर निरूपण करने हेतु "जोगाणु" इत्यादि नौ सूत्र हैं। उसके पश्चात् पंचम वेदमार्गणा अधिकार में अन्तर कथन करने वाले "वेदाणु" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् छठे कषायमार्गणा अधिकार में अन्तर निरूपण करने हेतु "कसायाणु" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तदनंतर सातवें ज्ञानमार्गणा अधिकार में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु "णाणाणु" इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनश्च आठवें संयममार्गणा अधिकार में अन्तरकथन की मुख्यता वाले "संजमाणु" इत्यादि छह सूत्र हैं। आगे नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में अन्तर कथन हेतु "दंसणाणु" इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में अन्तर कथन करने

१. हस्तिनापुरतीर्थे निर्मिते।

तत्पश्चात् दशमेऽधिकारे लेश्यानामन्तरकथनत्वेन ''लेस्साणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। पुनः एकादशमेऽधिकारे भव्यमार्गणायां अन्तरनिरूपणत्वेन ''भवियाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनुद्वादशेऽधिकारे सम्यक्त्वमार्गणायामन्तरनिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणु'' इत्यादिनवसूत्रकं। ततश्च त्रयोदशेऽधिकारे संज्ञिमार्गणायामन्तरनिरूपणत्वेन ''सण्णियाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु चतुर्दशेऽधिकारे आहारमार्गणायामन्तरकथनत्वेन ''आहाराणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अधुना गतिमार्गणायामन्तरनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

णाणाजीवेहि अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१।।

णत्थि अंतरं।।२।।

णिरंतरं।।३।।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। तत्र नरकेषु स्थितपृथिवीकायिकादिस्थावरजीवानामन्तरमत्र न विवक्षितमत्र तु नारकाणां जीवानामेव। इमे नारकाः सर्वकालेषु सन्ति।**

वाले ''लेस्साणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनः ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में अन्तर निरूपण करने हेतु ''भवियाणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके बाद बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में अन्तर निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणु'' इत्यादि नौ सूत्र हैं। उसके पश्चात् तेरहवें संज्ञीमार्गणा अधिकार में अन्तर निरूपण करने वाले ''सण्णियाणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। पुनश्च चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में अन्तरूकथन करने वाले ''आहाराणुवादेण'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

अब गतिमार्गणा में अन्तर निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतार होते हैं —

सूत्रार्थ—

नाना जीवों की अपेक्षा अन्तरानुगम से गतिमार्गणा के अनुसार नरकगति में नारकी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१।।

नारकी जीवों का अन्तर नहीं है।।२।।

नारकी जीव निरन्तर हैं।।३।।

इसी प्रकार सातों पृथिवियों में नारकी जीव अन्तर से रहित या निरन्तर हैं।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। वहाँ नरकों में स्थित पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवों का अन्तर यहाँ विवक्षित नहीं है, क्योंकि वहाँ तो नारकी जीवों की ही विवक्षा है। ये नारकी सभी कालों में पाये जाते हैं।

कश्चिदाह—नानाजीवापेक्षया कालनिरूपणायामेव एतेषामन्तरमस्ति, एतेषां च नास्तीति ज्ञायते, ततोऽन्तरप्ररूपणा न कर्तव्येति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः /

आचार्यः प्राह—कालानियोगद्वारे येषामन्तरमस्तीति अवगतं तेषामन्तराणां प्रमाणप्ररूपणार्थ-मिदमनियोगद्वारमागतं।

पुनरपि आह—यद्येवं तर्हि अन्तरविशिष्टानां सान्तरराशीनामेव प्ररूपणा क्रियतां न च सर्वराशीनामिति चेत् ?

परिहरति आचार्यदेवः—तर्हि एवमर्थो गृहीतव्यः, यत् द्रव्यार्थिकनयशिष्यानुग्रहार्थं कालानियोगद्वारं भणित्वा संप्रति पर्यायार्थिकनय शिष्यानुग्रहार्थं अन्तरानियोगद्वारप्ररूपणा आगता इति ज्ञातव्या।

निर्गतमन्तरमस्माद्राशेरिति निरन्तरं। इत्थं सप्तसु पृथिवीषु नारकाः सन्तीति तेषामन्तरं नास्तीति निश्चेतव्यं।

संप्रति तिर्यग्मनुष्यदेवानामन्तरनिरूपणाय सूत्रदशकमवतार्यते—

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५।।

णत्थि अंतरं।।६।।

यहाँ कोई शंका करता है कि—नाना जीवों की अपेक्षा की गई कालप्ररूपणा से ही इनका अन्तर है और इनका नहीं है यह बात जानी जाती है। अतएव फिर अन्तर प्ररूपणा नहीं करना चाहिए ?

आचार्य समाधान करते हैं—कालानुयोगद्वार में जिन जीवों का अन्तर है, ऐसा ज्ञात हुआ है उन जीवों के अन्तरों के प्रमाण यह अनुयोग आया है।

पुनः शंका होती है—यदि ऐसा है तो अंतरविशिष्ट सान्तरराशियों की ही प्ररूपणा करना चाहिए, सब काल रहने वाली राशियों की नहीं ?

आचार्य देव इसका समाधान देते हैं—तो फिर इस प्रकार का अर्थ ग्रहण करना चाहिए कि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने वाले शिष्यों के अनुग्रहार्थ कालानुयोगद्वार को कहकर इस समय पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करने वाले शिष्यों के अनुग्रहार्थं अन्तरानुयोगद्वार प्ररूपणा आई है, ऐसा जानना चाहिए।

निकल गया है अन्तर जिस राशि से वह निरन्तर है। इस प्रकार सातों पृथिवियों में नारकी हैं, इसलिए उनका अन्तर नहीं है, ऐसा निश्चित करना चाहिए।

अब तिर्यंच और मनुष्यों का तथा देवों का अन्तर निरूपण करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

तिर्यंचगति में तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त तथा मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त व मनुष्यिनियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।६।।

णिरंतरं।।७।।

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।८।।

जहण्णेण एगसमओ।।९।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।१०।।

देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।११।।

णत्थि अंतरं।।१२।।

णिरंतरं।।१३।।

भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदि-भंगो।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्यतिर्यगादिमानुषीपर्यन्ताः अष्टविधाः सन्ति एषामन्तरं नास्ति।**

एकस्मिन् सूत्रे द्वयोर्गत्योः एकवारेण निर्देशः किमर्थं कृतः ?

देवनारकाणामिव एतेषां पृथक् क्षेत्रावासो नास्तीति ज्ञापनार्थं।

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां जघन्येन—जगच्छ्रेण्या असंख्यातभागमात्रेषु मनुष्यापर्याप्तेषु कालं कृत्वान्यगतिं गतेषु एकसमयमन्तरं भूत्वा द्वितीयसमये अन्येषु जीवेषु तत्रोत्पन्नेषु लब्धमेकसमयमन्तरम्।

वे जीव निरन्तर हैं।।७।।

मनुष्य अपर्याप्तों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।८।।

मनुष्य अपर्याप्तों का अन्तर जघन्य से एक समय है।।९।।

मनुष्य अपर्याप्तों का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम के असंख्यातवें भाग कालप्रमाण है।।१०।।

देवगति में देवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।११।।

देवों का अन्तर नहीं होता है।।१२।।

देव निरन्तर हैं।।१३।।

भवनवासियों से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी तक देवों का अन्तर संबंधी निरूपण देवगति के समान है।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य तिर्यंच से लेकर मनुष्यिनी पर्यन्त यहाँ आठ भेद लिए हैं, इन सभी का अन्तर नहीं होता है।

शंका—एक सूत्र में ही दोनों गतियों का ही एक बार निर्देश क्यों किया है ?

समाधान—देव और नारकियों के समान इनका पृथक् क्षेत्र में निवास नहीं है, इस बात के ज्ञापनार्थ दोनों गतियों का एक बार निर्देश किया है।

लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का जघन्य से—जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र मनुष्य अपर्याप्तों के मरकर अन्यगति को प्राप्त होने पर एक समय अन्तर होकर द्वितीय समय में अन्य जीवों के अपर्याप्त मनुष्यों

उत्कर्षेण — लब्ध्यपर्याप्तेषु कालं कृत्वान्यगतिं गतेषु पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रकालेऽतिक्रान्ते पुनः नियमेन मनुष्यापर्याप्तेषु उत्पद्यमानानां जीवानामुपलंभात्।

देवानामपि चतुर्णिकायानां नास्त्यन्तरं।

एवं गतिमार्गणायां चतुर्गतिजीवानामन्तरनिरूपणत्वेन चतुर्दशसूत्राणि गतानि।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

इदानीमिन्द्रियमार्गणासु अन्तरप्रतिपादनाय त्रिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१५।।

में उत्पन्न होने पर एक समय का अन्तर प्राप्त होता है।

उत्कृष्ट से — लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के मरकर अन्य गति को प्राप्त होने के पश्चात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल के बीत जाने पर पुनः नियम से अपर्याप्त मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले जीव पाये जाते हैं।

चारों निकाय के देवों का भी कोई अन्तर नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार से गतिमार्गणा में चारों गतियों के जीवों का अन्तर निरूपण करने वाले चौदह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब इन्द्रिय मार्गणा में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय पर्याप्त, एकेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त, द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१५।।

णत्थि अंतरं।।१६।।

णिरंतरं।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। 'णत्थि अंतरं' एतत् सूत्रं पर्यायार्थिकनयावलंबिशिष्यानुग्रहार्थं प्ररूपितं। 'णिरंतरं' एतच्च द्रव्यार्थिकनयावलम्बिशिष्यानुग्रहकरणार्थमिति।**

अत्र एकेन्द्रियबादर-सूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तापेक्षया नवविधाः, द्वीन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः सामान्यपर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वादशविधा भवन्ति।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अधुना कायमार्गणासु अन्तरप्रतिपादनाय त्रिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्ता-अपज्जत्ता बादरवणप्फदि-

---

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।१६।।

उक्त जीव निरन्तर हैं।।१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। "णत्थि अन्तरं" अर्थात् "अन्तर नहीं है" यह सूत्र पर्यायार्थिक नय का आश्रय लेने वाले शिष्यों के ऊपर अनुग्रह करने हेतु प्ररूपित किया गया है और "णिरंतरं" अर्थात् "ये जीव निरन्तर हैं" यह सूत्र द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन लेने वाले शिष्यों पर अनुग्रहार्थ प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ एकेन्द्रिय जीव बादर-सूक्ष्म और पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से नौ प्रकार के हैं, दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीव सामान्य, पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से बारह प्रकार के होते हैं।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब कायमार्गणा में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

कायमार्गणा के अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक

दिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।१८।।

णत्थि अंतरं।।१९।।

णिरंतरं।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कायमार्गणायां पृथिवीजलाग्निवायुवनस्पतिकायिकनिगोदजीवाः षड्विधा अपि सामान्येन बादर-सूक्ष्मभेदेन पर्याप्तापर्याप्तभेदेन च सर्वे नव नवविधा भवन्तीति चतुःपंचाशद्भेदाः संजाताः। पुनश्च बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीराः त्रसकायिकाश्च सामान्येन पर्याप्तापर्याप्तभेदेन च त्रित्रिभेदात् षड्विधाः, सर्वे मिलित्वा षष्टिभेदाः भवन्तीति। अत्रापि 'णत्थि अंतरं, णिरंतरं' द्विनयानुग्रहार्थं प्ररूपिते द्वे सूत्रे सूत्रकर्तुः वीतरागत्वं जीवदयापरत्वं च ज्ञापयतः।**

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, ये नौ पृथिवीकायिक जीव, इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजस्कायिक, नौ वायुकायिक, नौ वनस्पतिकायिक व नौ निगोद जीव तथा बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा उनके पर्याप्त व अपर्याप्त और त्रसकायिक तथा उनके पर्याप्त व अपर्याप्त जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।१८।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।१९।।

ये सब जीव राशियाँ निरन्तर हैं।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कायमार्गणा में पृथिवी-जल-अग्नि-वायु और वनस्पतिकायिक एवं निगोद जीव ये छहों प्रकार के जीव सामान्य से बादर-सूक्ष्म के भेद से और पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से सभी नौ-नौ प्रकार के होते हैं अतः इनके कुल भेद चौव्वन हो जाते हैं। पुनश्च बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और त्रसकायिक जीव सामान्य, पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से सहित प्रत्येक के तीन-तीन भेद होने से छह भेद हो जाते हैं अतः सब मिलकर ५४+६=६० भेद हो जाते हैं। यहाँ भी "णत्थि अंतरं, णिरंतरं" अर्थात् इन जीवों का अन्तर नहीं है, ये सब जीवराशियाँ निरन्तर हैं" ये दोनों सूत्र दोनों नयों का अवलम्बन करने वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिए एवं सूत्रकर्ता की वीतरागता और जीवदयापरत्व को सूचित करते हैं।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

संप्रति योगमार्गणासु अन्तरप्रतिपादनाय नवसूत्राण्यवतार्यन्ते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइय-कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।२१।।

णत्थि अंतरं।।२२।।

णिरंतरं।।२३।।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।२४।।

जहण्णेण एगसमयं।।२५।।

उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं।।२६।।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।२७।।

जहण्णेण एगसमयं।।२८।।

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब योगमार्गणा में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणा के अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, पाँच काययोगी औदारिक-काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और कार्मणकाययोगी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।२१।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।२२।।

वे जीवराशियाँ निरन्तर हैं।।२३।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।२४।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का जघन्य अन्तर एक समय होता है।।२५।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर उत्कृष्ट से बारह मुहूर्त होता है।।२६।।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।२७।।

उक्त जीवों का अन्तर जघन्य से एक समय होता है।।२८।।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**योगमार्गणायां वैक्रियिकमिश्रकाययोगिषु सर्वेषु पर्याप्तीः समानीतेषु एकसमयमन्तरं कृत्वा द्वितीयसमये देवेषु नारकेषु उत्पन्नेषु वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनामन्तरं एकसमयं भवति।**

उत्कर्षेण—देवेषु नारकेषु वा उत्पद्यमाना जीवाः यदि बहुकं कालं नोत्पद्यन्ते तर्हि द्वादशमुहूर्ताणि चैव।

कथमेतज्ज्ञायते ?

''जिणवयणविणिग्गयवयणादो[१]।''

आहारकाय—आहारमिश्रकाययोगाभ्यां विना त्रिभुवनजीवानामेकसमयः उपलभ्यते अत एतद् जघन्यान्तरं। उत्कर्षेण—द्वाभ्यामपि योगाभ्यां विना सर्वप्रमत्तसंयतानां वर्षपृथक्त्वावस्थानदर्शनात्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धांतचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

उक्त जीवों का अन्तर उत्कृष्ट से वर्ष पृथक्त्वप्रमाण होता है।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—योगमार्गणा में सब वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेने पर एक समय का अन्तर होकर द्वितीय समय में देवों व नारकियों के उत्पन्न होने पर वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों का अन्तर एक समय होता है।

उत्कृष्ट से—देव अथवा नारकियों में उत्पन्न होने वाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक नहीं उत्पन्न होते हैं, तो बारह मुहूर्त तक नहीं उत्पन्न होते हैं।

शंका—ऐसा कैसे जाना जाता है ?

समाधान—''यह जिन भगवान के मुख से निकले हुए वचनों से जाना जाता है।''

आहारक और आहारकमिश्र काययोगियों के बिना तीनों लोकों के जीव एक समय पाये जाते हैं। अतएव यह जघन्य अन्तर हुआ। उत्कृष्ट से—उक्त दोनों ही योगों के बिना समस्त प्रमत्तसंयतों का वर्ष पृथक्त्व काल तक अवस्थान देखा जाता है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-४८५।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अधुना वेदमार्गणायां अन्तरप्रतिपादनाय त्रिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३०।।

णत्थि अंतरं।।३१।।

णिरंतरं।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीकाः—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। ये केचन महापुरुषाः मनुष्यपर्यायं लब्ध्वा द्रव्यपुरुषवेदिनोऽपगतवेदाः भवन्ति त एव स्वात्मोत्थपरमानन्दामृतं पिबन्तः निजशुद्ध-बुद्ध-परमात्मपदं प्राप्नुवन्तीति ज्ञात्वा मानवतनुमासाद्य सार्थकं विधातव्यमिति।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब वेदमार्गणा में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

वेदमार्गणा के अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी और अपगतवेदी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३०।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।३१।।

वे जीवराशियाँ निरन्तर हैं।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। जो कोई महापुरुष मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके द्रव्यपुरुषवेदी वेदरहित हो जाते हैं, वे ही अपनी आत्मा से उत्पन्न परमानन्दरूपी अमृत का पान करते हुए निज शुद्ध-बुद्ध परमात्म पद को प्राप्त करते हैं, ऐसा जानकर मानवशरीर प्राप्त करके उसे सार्थक करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

संप्रति कषायमार्गणायामन्तर प्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३३।।

णत्थि अंतरं।।३४।।

णिरंतरं।।३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीकाः **—सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अनादिकालीनसंसारे सर्वे संसारिणः कषायवशीभूता एव चतुर्गतिषु भ्राम्यन्ति। यदि कदाचित् कषायान् कृशीकृत्य विनाश्य वा अकषायिणो भवन्ति, तर्हि प्रसन्नमनसो निजात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानानुचरणस्वरूपाः परिणमन्तः सन्तः क्रमेण सिद्धालयं प्राप्नुवन्ति एवं विज्ञाय अतिशायिप्रयत्नेन कषायास्तनूकर्तव्याः इति।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब कषायमार्गणा में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

कषायमार्गणा के अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और कषायरहित जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३३।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।३४।।

वे जीवराशियाँ निरन्तर हैं।।३५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। अनादिकालीन संसार में सभी संसारी प्राणी कषाय के वशीभूत होकर ही चारों गतियों में भ्रमण कर रहे हैं। यदि कदाचित् वे ही कषायों को कृश करके अथवा नष्ट करके कषायरहित हो जाते हैं, तो वे प्रसन्नमना जीव निज आत्म तत्त्व के श्रद्धान-ज्ञान एवं आचरणरूप परिणमन करते हुए क्रम से सिद्धालय को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसा जानकर अतिशायि प्रयत्नों के द्वारा अपनी कषायों को कृश करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

संप्रति ज्ञानमार्गणायामन्तरप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणि-बोहिय-सुद-ओहिणाणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३६।।

णत्थि अंतरं।।३७।।

णिरंतरं।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीकाः —सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। ये त्रयो मिथ्याज्ञानानि अनादिकालात् सर्वेषु संसारिप्राणिषु सन्त्येव। ये केचित् महापुरुषाः सम्यक्त्वं प्रतिपद्य मतिश्रुतज्ञानिनो भूत्वा समीचीनज्ञानाभ्यासेन सम्यक्चारित्रमपि प्राप्नुवन्ति त एव क्रमशः अवधिज्ञानिनो मनःपर्ययज्ञानिनो वा भवन्तः कैवल्यज्ञानमपि उत्पादयन्ति। एतज्ज्ञात्वा समीचीनज्ञानं संप्राप्य अप्रमादीभूय धर्मपुरुषार्थबलेन मोक्षपुरुषार्थोऽपि साधनीयः।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब ज्ञानमार्गणा में अन्तर बतलाने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३६।।

पूर्वोक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।३७।।

ये जीव राशियाँ निरन्तर हैं।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। तीनों मिथ्याज्ञान अनादिकाल से सभी संसारी प्राणियों में होते ही हैं। जो कोई महापुरुष सम्यक्त्व को प्राप्त करके मति-श्रुतज्ञानी होकर समीचीन ज्ञानाभ्यास से सम्यक्चारित्र को भी प्राप्त कर लेते हैं, वे ही क्रमशः अवधिज्ञानी अथवा मनःपर्ययज्ञानी होते हुए केवलज्ञान को भी उत्पन्न कर लेते हैं। ऐसा जानकर समीचीन ज्ञान प्राप्त कर निष्प्रमादी होकर धर्म पुरुषार्थ के बल से मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सप्तम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकारः

संप्रति संयममार्गणायां अन्तरकथनाय सूत्रपंचकमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धि-संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।३९।

णत्थि अंतरं।।४०।।

णिरंतरं।।४१।।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।४२।।

जहण्णेण एगसमयं।।४३।।

उक्कस्सेण छम्मासाणि।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। केवलं तु सूक्ष्मसांपरायिकसंयतानामन्तरं जघन्येन एकसमयं। उत्कर्षेण — क्षपकश्रेणीसमारोहतः महामुनेः षण्मासमन्तरं भविष्यति, अत उपरि उत्कृष्टान्तरस्यानुपलंभात्।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणानाम अष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब संयममार्गणा में अन्तर कथन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संयममार्गणा के अनुसार संयत, सामायिक छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत, परिहार-शुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत, संयतासंयत और असंयत जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।३९।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।४०।।

ये जीवराशियाँ निरन्तर हैं।।४१।।

सूक्ष्मसाम्परायिक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।४२।।

सूक्ष्मसाम्परायिक जीवों का अन्तर जघन्य से एक समय होता है।।४३।।

उक्त जीवों का अन्तर उत्कृष्ट से छह मास का होता है।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अथ सुगम है। केवल सूक्ष्मसाम्परायिक संयतों का अन्तर जघन्य से एक समय पाया जाता है। उत्कृष्ट से—क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले महामुनि के छह माह का अन्तर होगा, इससे ऊपर उत्कृष्ट अन्तर नहीं पाया जाता है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का अष्टम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

संप्रति दर्शनमार्गणायां जीवानामन्तरप्रतिपादनार्थं त्रिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-केवलदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।४५।।

णत्थि अंतरं।।४६।।

णिरंतरं।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र दर्शनमार्गणायामन्तरं नास्ति जीवानां सर्वे जीवाः निरन्तरं सन्तीति ज्ञात्वा केवलं केवलदर्शनहेतोः प्रयत्नो विधातव्यः। किंच—त्रैलोक्यदर्शनं लब्ध्वा स्वात्मदर्शनं भवत्येव, अथवा स्वात्मतत्त्वदर्शनेनैव परम्परया त्रैलोक्यदर्शनं भवतीति निश्चित्य स्वात्मतत्त्वमेव सर्वथा भावनीयमिति।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दर्शनमार्गणा में जीवों का अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित हो रहे हैं —

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।४५।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।४६।।

ये जीवराशियाँ निरन्तर है।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ दर्शनमार्गणा में जीवों का अन्तर नहीं है, सभी जीव निरन्तर हैं, ऐसा जानकर मात्र केवलदर्शन के लिए प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि—त्रैलोक्यदर्शन को प्राप्त करके स्वात्मदर्शन होता ही है अथवा स्वात्म दर्शन से ही परम्परा से त्रैलोक्य का दर्शन होता है, ऐसा निश्चय करके स्वात्मतत्व को ही सदैव भाना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

संप्रति लेश्यामार्गणायामन्तरप्रतिपादनार्थं त्रिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्किलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।४८।।

णत्थि अंतरं।।४९।।

णिरंतरं।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। शुभाशुभलेश्यावन्तोऽपि प्राणिनः संसारे निरन्तरं सन्ति। एतज्ज्ञात्वा अशुभलेश्याः परिहाय शुभलेश्यापरिणामैः परिणमन्तः क्रमशः शुक्ललेश्याबलेन शुक्लध्यानं प्राप्तव्यं यावदीदृशी अवस्था न लभेत तावत् पीत-पद्मलेश्याभावेन परिणामाः निर्मलीकर्तव्याः।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानामदशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब लेश्यामार्गणा में अन्तर प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणा के अनुसार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्या वाले, तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।४८।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।४९।।

ये जीवराशियाँ निरन्तर है।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त तीनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। शुभ और अशुभ सभी लेश्या वाले संसारी प्राणी संसार में निरन्तर पाये जाते हैं, ऐसा जानकर अशुभ लेश्याओं को छोड़कर शुभ लेश्यारूप परिणामों से परिणमन करते हुए क्रमशः शुक्ललेश्या के बल से शुक्लध्यान को प्राप्त करना चाहिए। जब तक ऐसी अवस्था नहीं प्राप्त होती है, तब तक पीत-पद्मलेश्या भाव से परिणाम निर्मल करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

संप्रति भव्यमार्गणायामन्तर कथनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५१।।

णत्थि अंतरं।।५२।।

णिरंतरं।।५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**संसारे त्रैकाल्येऽपि भव्या अभव्याश्च निरंतरं सन्ति। 'वयं भव्यां' इति निश्चित्य भेदाभेदरत्नत्रयबलेन स्वात्मशुद्धिं सिद्धिं च कुर्वाणाः भव्यत्वं सफलीकर्तव्यं।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यत्वमार्गणानाम एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब भव्यमार्गणा में अन्तर कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५१।।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवों का अन्तर नहीं होता है।।५२।।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीव निरन्तर हैं।।५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—संसार में तीनों कालों में भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के जीव निरन्तर होते हैं। ''हम भव्य हैं'' ऐसा निश्चय करके भेदाभेद रत्नत्रय के बल से निज आत्मा की शुद्धि और सिद्धि करते हुए अपने भव्यत्व को सफल करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

संप्रति सम्यक्त्वमार्गणायामन्तरप्रतिपादनार्थं नवसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५४।।

णत्थि अंतरं।।५५।।

णिरंतरं।।५६।।

उवसमसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।५७।।

जहण्णेण एगसमयं।।५८।।

उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि।।५९।।

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।६०।।

जहण्णेण एगसमयं।।६१।।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।।६२।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब सम्यक्त्वमार्गणा में अन्तर कथन हेतु नौ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है?।।५४।।

उक्त जीवों का अन्तर नहीं होता है।।५५।।

वे जीवराशियाँ निरन्तर है।।५६।।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।५७।।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर जघन्य से एक समय है।।५८।।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों का अन्तर उत्कृष्ट से सात रात-दिन है।।५९।।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।६०।।

सासादनसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवों का अन्तर जघन्य से एक समय है।।६१।।

उक्त जीवों का अन्तर उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। केवलं तु सम्यक्त्वमार्गणायां उपशमसम्यग्दृष्टीनामंतरं जघन्येन एकसमयं। त्रिष्वपि लोकेषु उपशमसम्यदृष्टीनामेकस्मिन् समये अभावदर्शनात्। उत्कर्षेण—सप्तदिवसपर्यन्तं भवत्यन्तरं।**

उक्तं च— सम्मत्ते सत्त दिणा विरदाविरदीए चोद्दस हवंति।
विरदीसु अ पण्णरसा विरहिदकालो मुणेयव्वो[१]।।

सासादन-सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानयोः जघन्येन एकसमयमन्तरं। उत्कर्षेण—पल्योपमस्यासंख्यात-भागोऽस्ति।

तात्पर्यमेतत्—अस्मिन् दुर्लभमनुष्यपर्याये सम्यग्दर्शनरत्नं लब्धं मया तस्य कदाचिदपि अन्तरं न भवेन्निरन्तरमेव स्थेयादिति भावयित्वा जिनेन्द्रदेवस्य चरणाब्जयोर्मुहुर्मुहुः प्रणम्य निरतिचारा सम्यक्त्वशुद्धिर्याच्यते निरन्तरमिति।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। केवल विशेषता यह है कि सम्यक्त्वमार्गणा में उपशमसम्यग्दृष्टियों का अन्तर जघन्य से एक समय होता है। तीनों लोकों में उपशमसम्यग्दृष्टियों का एक समय में अभाव देखा जाता है। उत्कृष्ट से—सात दिवस पर्यन्त का अन्तर होता है।

कहा भी है—

गाथार्थ—उपशमसम्यक्त्व में सात दिन, विरताविरत अर्थात् देशव्रत में चौदह दिन और विरति अर्थात् महाव्रत में पन्द्रह दिन प्रमाण विरहकाल जानना चाहिए।।

सासादन सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों के जघन्य से एक समय अन्तर है और उत्कृष्ट से—पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

तात्पर्य यह है कि—इस दुर्लभ मनुष्यपर्याय में मैंने जो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, उसका कभी भी अन्तर न पड़ने पावे, वह सदैव निरन्तर मुझमें स्थित रहे—बना रहे, यही भावना भाकर जिनेन्द्र देव के चरणकमलों में बारम्बार प्रणाम करके मेरी निरन्तर निरतिचार सम्यक्त्व की शुद्धि होवे यही याचना है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

---

१. षट्खण्डागम, धवला. पु. ७, पृ. ४९२।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

संप्रति संज्ञिमार्गणायामन्तरकथनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादोहोदि ?।।६३।।

णत्थि अंतरं।।६४।।

णिरंतरं।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। संज्ञिनां जीवानां मध्येऽपि ये केचित् सम्यग्दृष्ट्यः त एव मानवजन्मसारं लभन्ते न च सर्वे संज्ञिनः। अतएव रत्नत्रयनिधिमासाद्य येन केनापि प्रकारेण अप्रमादीभूय स्वात्मतत्त्वे रुचिं वर्धयन्तः सन्तो ज्ञानाभ्यासबलेन स्वजन्मसर्वस्वं प्राप्तव्यं।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब संज्ञीमार्गणा में अन्तर कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

संज्ञिमार्गणा के अनुसार संज्ञी व असंज्ञी जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।६३।।

संज्ञी व असंज्ञी जीवों का अन्तर नहीं होता है।।६४।।

संज्ञी व असंज्ञी जीव निरन्तर हैं।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। संज्ञी जीवों के मध्य में भी जो कोई सम्यग्दृष्टि होते हैं वे ही मानव जन्म के सार को प्राप्त करते हैं, सभी संज्ञी जीव इस सार को नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इसलिए रत्नत्रय निधि को जिस किसी भी प्रकार से अप्रमादी होकर स्वात्मतत्त्व में रुचि बढ़ाते हुए ज्ञानाभ्यास के बल से अपने मनुष्यजन्म के सर्वस्व सार को प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

संप्रति आहारमार्गणायामन्तरकथनार्थं सूत्रत्रयमवतार्यते —

आहारणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।६६।।

णत्थि अंतरं।।६७।।

णिरंतरं।।६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थोऽस्ति सुगमः। आहारका जीवा एकेन्द्रियादारभ्य सयोगिकेवलिपर्यन्ता भवन्ति। विग्रहगतिप्राप्ताजीवा मिथ्यात्वसासादन-अविरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानेषु अनाहारका भवन्ति। तथा समुद्घातगतसयोगिकेवलिनश्चानाहारका भवन्ति। अयोगिकेवलिनः सिद्धाश्च अनाहारका सन्ति। अत्र षड्विधा आहारा ज्ञातव्याः—कवलाहार-लेपाहार-ऊष्माहार-मानसाहार-कर्माहार-नोकर्माहाराश्च, तेषु पंचविधाहारान् परित्यज्य नोकर्माहारोऽत्र ग्राह्यो भवति। तथापि पूर्णरूपेणानाहारावस्थाप्राप्तुकामा ये केचिन्मुनय आर्यिकाश्च षट्चत्वारिंशद्दोषान् द्वात्रिंशदन्तरायांश्च परिहाय निर्दोषाहारं गृण्हन्तो नानाविधतपश्चर्यामपि कुर्वन्ति त एव अनाहाराः सिद्धा भगवन्तो भवितुमर्हन्ति परंपरयेति ज्ञात्वागमानुकूला चर्या पालनीयाऽस्माभिरिति।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अन्तरानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब आहारमार्गणा में अन्तर कथन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुसार आहारक व अनाहारक जीवों का अन्तर कितने काल तक होता है ?।।६६।।

आहारक और अनाहारक जीवों का अन्तर नहीं होता है।।६७।।

वे निरन्तर हैं।।६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। आहारक जीव एकेन्द्रिय से आरंभ करके सयोगकेवली पर्यन्त होते हैं। विग्रह गति को प्राप्त जीव मिथ्यात्व-सासादन और अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में अनाहारक होते हैं तथा समुद्घात को प्राप्त सयोगकेवली भगवान भी अनाहारक होते हैं। चौदह गुपस्थानवर्ती अयोगकेवली भगवान और सिद्ध भगवान अनाहारक होते हैं। यहाँ आहार के छह भेद जानना चाहिए—कवलाहार, लेपाहार, ऊष्माहार, मानसाहार, कर्माहार और नोकर्माहार। इनमें से पाँच प्रकार के आहार को छोड़कर यहाँ नोकर्माहार को ग्रहण किया है। फिर भी पूर्णरूप से अनाहार अवस्था को प्राप्त करने के लिए अभिलाषी जो कोई मुनि और आर्यिकाएँ छियालिस दोष और बत्तिस अन्तराय टालकर निर्दोष आहार ग्रहण करते हुए अनेक प्रकार की तपस्या करते हैं, वे ही परम्परा से अनाहारक सिद्ध भगवान बनने योग्य होते हैं ऐसा जानकर हम सभी को आगमानुकूल चर्या का पालन करना चाहिए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

—बसंततिलकाछंदः —

तीर्थंकरस्नपननीर-पवित्रजातः, तुंगोऽस्ति यस्त्रिभुवने निखिलाद्रितोऽपि।
देवेन्द्र-दानव-नरेन्द्र-खगेन्द्रवंद्यः, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबल्याचार्यविरचित-क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनाना-ग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमशिष्यः प्रथमपट्टाचार्यः चारित्रचूड़ामणिः श्रीवीरसागरसूरिस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका-गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां नानाजीवा-पेक्षयाष्टषष्टिसूत्रैरन्तरानुगमनामायं नवमो महाधिकारः समाप्तः।

—बसंततिलका छंद —

श्लोकार्थ — तीर्थंकर भगवन्तों के जन्माभिषेक जल से जो पवित्र है, तीनों लोकों में समस्त पर्वतों से भी जो ऊँचा है, सौधर्म इन्द्र, असुरेन्द्र, चक्रवर्ती आदि राजाओं एवं विद्याधरों से जो वंद्य है, ऐसे सुदर्शनमेरु पर्वत को मैं सदैव नमन करता हूँ।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्री वीरसेनाचार्य रचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम शिष्य प्रथम पट्टाचार्य चारित्रचूड़ामणि श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणि टीका में नाना जीव की अपेक्षा अड़सठ सूत्रों से सहित अन्तरानुगम नाम का नवमाँ महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ भागाभागानुगमो दशमो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योऽनन्तातीतासु येऽत्र वै।
तीर्थंकरा मुनीन्द्राश्चा-नन्ता मुक्ता नमामि तान्।।१।।

चतुर्गत्यादिचतुर्दशमार्गणारहिता ये त्रैकालिकसिद्धा भगवन्तस्तान् सर्वान् वंदामहे वयम् सिद्धपद-प्राप्तुकामाः सन्ततम्।

अथ षड्भिः अधिकारैः गत्यादिमार्गणासु अष्टाशीति सूत्रैः भागाभागानुगमो नाम दशमो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमेऽधिकारे गतिमार्गणायां भागाभागकथनत्वेन ''भागाभागानुगमेण'' इत्यादिना दश सूत्राणि। तदनु द्वितीयेधिकारे इन्द्रियमार्गणायां भागाभागनिरूपणत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिना द्वादश सूत्राणि। ततः परं तृतीयेऽधिकारे कायमार्गणायां भागाभागनिरूपणत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिना द्वादशसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थेधिकारे योगमार्गणायां भागाभागप्रतिपादनत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रदशकं। ततश्च पंचमेऽधिकारे वेद-कषाय-ज्ञान-संयम-मार्गणासु भागाभागकथनपरत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रअष्टादश। ततः पुनः षष्ठेऽधिकारे दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व संज्ञि-आहारमार्गणासु भागाभागकथनत्वेन ''दंसणाणुवादेण'' इत्यादि—षड्विंशतिसूत्राणि, इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ भागाभागानुगम नामक दशवाँ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ— अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालों में जो यहाँ अतीत-भूतकाल के अनन्तानन्त तीर्थंकर और मुनिगण मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, उन सभी को मेरा नमस्कार है।।१।।

चतुर्गति आदि चौदह मार्गणाओं से रहित जो त्रैकालिक सिद्ध भगवान हैं, उन सभी को हम सिद्धपद प्राप्ति की इच्छा से सतत नमस्कार करते हैं।

अब चौदह अधिकारों में गति आदि मार्गणाओं में अट्ठासी (८८) सूत्रों के द्वारा भागाभागानुगम नाम का दशवाँ महाधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम अधिकार में गति मार्गणा में भागाभाग का कथन करने वाले ''भागाभागानुगमेण'' इत्यादि दश सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय अधिकार में इन्द्रियमार्गणा में भागाभाग के निरूपण हेतु ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। पुनः तृतीय अधिकार में कायमार्गणा में भागाभाग को निरूपित करने वाले ''कायाणुवादेण'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ अधिकार में योगमार्गणा में भागाभाग का प्रतिपादन करने वाले ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि दश सूत्र हैं। आगे पंचम अधिकार में वेद-कषाय-ज्ञान और संयममार्गणा में भागाभाग का कथन करने वाले ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि अठारह सूत्र हैं उसके बाद छठे अधिकार में दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञी और आहारमार्गणा में भागाभाग का कथन करने हेतु ''दंसणाणुवादेण'' छब्बीस सूत्र हैं। यह महाधिकार के प्रारंभ में सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

अधुना गतिमार्गणायां चातुर्गतिकजीवानां भागाभागनिरूपणाय दशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

भागाभागाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।१।।

अणंतभागो।।२।।

एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।।३।।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।४।।

अणंता भागा।।५।।

पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।६।।

अणंतभागो।।७।।

देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।८।।

अब गतिमार्गणा में चारों गतियों के जीवों का भागाभाग निरूपण करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

भागाभागानुगम में गतिमार्गणा के अनुसार नरकगति में नारकी जीव सर्वजीवों की अपेक्षा कितने भागप्रमाण हैं ?।।१।।

नरकगति में नारकी जीव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।२।।

इसी प्रकार सातों पृथिवियों में नारकी जीव सर्व जीव राशि के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।३।।

तिर्यंचगति में तिर्यंच जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।४।।

तिर्यंच जीव सब जीवों के अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं।।५।।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीव तथा मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और मनुष्य अपर्याप्त जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।६।।

उक्त जीव सर्व जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।७।।

देवगति में देव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।८।।

अणंतभागो।।९।।

एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **भागाभागस्यार्थ उच्यते — अनन्तभाग-असंख्यातभाग-संख्यातभागाहाराणां भागसंज्ञा अस्ति, अनन्तस्य बहुभागाः असंख्यातस्य बहुभागाः संख्यातस्य बहुभागा एतेषां अभागसंज्ञा। भागश्च अभागश्च ''भागाभागाः' तेषामनुगमो भागाभागानुगमः तेन भागाभागानुगमेनात्राधिकार इति भणितं भवति।**

सूत्रे सर्वजीवानां कियद्भागप्रमाणं नरकगतौ नारकाः निरंतरं वसंतीति पृच्छा कृता भवति।

किमनन्तिमभागः किमनन्तस्य बहुभागाः किमसंख्यातबहुभागाः किमसंख्यातभागः किं संख्यातभागः किं संख्यातबहुभागाः इति प्रश्ने सति तन्निर्णयार्थमुत्तरसूत्रं भणितम्—

नरकगतौ नारकाः अनन्तभागप्रमाणः सर्वजीवानामिति।

तत्कथमिति चेत् ?

घनांगुलद्वितीयवर्गमूलमात्रश्रेणिप्रमाणैः नारकैः सर्वजीवराशौ भागे कृते अनन्तानि सर्वजीवराशि-प्रथमवर्गमूलानि आगच्छंति। लब्धं विरलय्य सर्वजीवराशिं समखण्डं कृत्वा रूपं प्रति दत्ते तत्र एकरूपधरितं नारकराशिप्रमाणं भवति तेन नारकाः सर्वजीवानामनन्तभाग इत्युक्तं भवति।

एवं सप्तसु पृथिवीषु नारकाः सन्ति।

देव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।९।।

इसी प्रकार भवनवासियों से लेकर सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों तक भागाभाग कम है।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ सर्वप्रथम भागाभाग का अर्थ कहते हैं — अनन्तवाँ भाग, असंख्यातवाँ भाग और संख्यातवाँ भाग, भागहारों की 'भाग' संज्ञा है तथा अनन्त का बहुभाग, असंख्यात का बहुभाग और संख्यात का बहुभाग इनकी 'अभाग' संज्ञा है। 'भाग और अभाग' इस प्रकार द्वन्द समास होकर भागाभाग पद बना है। उन भागाभागों का जो अनुगम अर्थात् ज्ञान है, इसी भागाभागानुगम से यहाँ भागाभागानुगम नाम का अधिकार कहा गया है।

सूत्र में 'सर्वजीवों के कितने भाग प्रमाण नारकी नरकगति में निरन्तर रहते हैं' यह प्रश्न किया गया है। क्या अनन्तवें भाग, क्या अनन्त का बहुभाग, क्या असंख्यात का बहुभाग, क्या असंख्यातवें भाग का संख्यातवें भाग और क्या संख्यात का बहुभाग प्रमाण नारकी जीव वहाँ रहते हैं ? ऐसा पूछने पर उसके निर्णयार्थ उत्तर सूत्र कहा है —

नरकगति में नारकी जीव सभी जीवों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं।

प्रश्न — वह कैसे है ?

उत्तर — घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणित जगश्रेणीप्रमाण नारकियों का सर्व जीवराशि में भाग देने पर अनन्त सर्वजीवराशि के प्रथम वर्गमूल प्रमाण आते हैं। लब्धराशि का विरलन करके सर्वजीवराशि को समखण्ड कर प्रत्येक एक के प्रति देने पर उसमें एकरूप के प्रति जितनी राशि प्राप्त हो तत्प्रमाण राशि नारकियों का प्रमाण होती है। इस कारण 'नारकी जीव सर्वराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं' ऐसा कहा गया है।

इसी प्रमाण से सातों पृथिवियों में नारकी हैं।

तिर्यञ्चः सर्वजीवानां किमनन्तिमभागः इत्यादिषड्विकल्पेषु एकस्यैव ग्रहणार्थमुत्तरसूत्रं भणितं—

सामान्येन तिर्यञ्चः सर्वजीवानां अनन्तबहुभागप्रमाणाः सन्ति। तद्यथा—सिद्धैः शेषत्रिगतिस्थितजीवैश्च सर्वजीवराशिमपवर्त्य लब्धं विरलय्य सर्वजीवराशिं समखण्डं कृत्वा रूपं प्रति दत्ते एकरूपधरितं सिद्धजीव-त्रिगतिजीवप्रमाणं भवति। तत्र एकरूपधरितं मुक्त्वा शेषबहुभागा येन तिरश्चां प्रमाणं भवति तेन तिर्यञ्चः सर्वजीवानामनन्तबहुभागा सन्ति।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्ताः पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमत्यः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्ताश्चतुर्विधाः, मनुष्यगतौ सामान्यमनुष्याः पर्याप्तमनुष्याः मानुषिन्यः लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याश्चतुर्विधाः इमे अष्टविधाः अपि जीवाः सर्वजीवराशीनामनन्तभागप्रमाणाः सन्ति।

देवगतौ देवाः सर्वजीवानामनन्तभागप्रमाणाः सन्ति। एवं भवनवासिदेवादारभ्य सर्वार्थसिद्धिविमान-वासिदेवपर्यन्ताः सर्वजीवराशेरनन्तभागा एवेति ज्ञातव्यं।

एवं गतिमार्गणायां भागाभागकथनत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भागाभागानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

तिर्यंच जीव क्या समस्त जीवों के अनन्तिम-अनन्तवें भागप्रमाण हैं ? इत्यादि छह विकल्पों में से एक के ही ग्रहण करने हेतु उत्तर सूत्र कहा है—सामान्य से तिर्यंच जीव सभी जीवों के अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। वह कथन इस प्रकार है—सिद्ध और तीन गतियों के जीवों से सर्वजीव राशि को अपवर्तित कर जो लब्ध आवे उसका विरलन करके सर्व जीवराशि को समखण्ड करके एक-एक के प्रति समान खंड करके देने पर एकरूप प्राप्त सिद्ध और तीन गतियों के जीवों का प्रमाण होता है। उसमें एकरूपधरित राशि को छोड़कर शेष बहुभाग जिस हेतु से तिर्यंचों का प्रमाण होता है, उसी हेतु से तिर्यंच सर्व जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं', ऐसा जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त ये चार प्रकार के तिर्यंच जीव तथा मनुष्यगति में सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी एवं लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य ये आठों प्रकार के जीव सर्वजीवराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।

देवगति में देव सर्वजीवराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। इस प्रकार भवनवासी देवों से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक सर्वजीवराशि के अनन्तवें भागप्रमाण ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार गतिमार्गणा में भागाभाग का कथन करने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भागाभागानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

इदानीमिन्द्रियमार्गणायां भागाभागनिरूपणाय द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो।।११।।

अणंता भागा।।१२।।

बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।१३।।

असंखेज्जदिभागो।।१४।।

सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।१५।।

असंखेज्जा भागा।।१६।।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।१७।।

संखेज्जा भागा।।१८।।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।१९।।

संखेज्जदिभागो।।२०।।

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब इन्द्रियमार्गणा में भागाभाग का निरूपण करने हेतु बारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार एकेन्द्रिय जीव सर्वजीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।११।।

एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवों के अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं।।१२।।

बादर एकेन्द्रिय जीव और उनके ही पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।१३।।

उक्त जीव सर्व जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।१४।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।१५।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवों के असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं।।१६।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।१७।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्व जीवों के संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।।१८।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।१९।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सर्व जीवों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२०।।

बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो।।२१।।

अणंतो भागो।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामान्येन एकेन्द्रियाः जीवाः सिद्धराशि-त्रसजीवराशिभिः सर्वजीवराशिमपहृत्य लब्धशलाकामात्रसर्वजीवराशिं खण्डयित्वा तत्र एकभागं मुक्त्वा शेषबहुभागेषु गृहीतेषु येनैकेन्द्रियप्रमाणं भवति तेन सर्वजीवानामनन्तबहुभागा एकेन्द्रिया भवन्तीति सूत्रे कथितं।**

बादरैकेन्द्रियाः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च सर्वजीवेभ्योऽसंख्यातभागप्रमाणाः सन्ति। विवक्षितबादरैकेन्द्रियैः सर्वजीवराशिमपवर्तिते असंख्याता लोका आगच्छन्ति। तान् विरलय्य सर्वजीवराशिं रूपं प्रति समखण्डं कृत्वा दत्ते इच्छितबादरैकेन्द्रियप्रमाणं भवति। तस्मात् त्रयोऽपि बादरैकेन्द्रियाः सर्वजीवानामसंख्यातभागमात्राः प्ररूपिताः।

सूक्ष्मैकेन्द्रियाः सामान्येन सर्वजीवानामसंख्यातबहुभागप्रमाणाः सन्ति। सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः सर्वजीवानां संख्यातबहुभागाः, सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताश्च सर्वजीवानां संख्यातभागप्रमाणा एव।

द्वीन्द्रियादिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः तेषां पर्याप्ता अपर्याप्ताश्चेमे द्वादशधा जीवाः सर्वजीवराशेरनन्तभागप्रमाणाः सन्ति।

कुतः ?

जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागमात्रजीवैः सर्वजीवराशौ भागे कृते तत्रोपलब्धस्यानन्त्यात्।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और उन्हीं के पर्याप्त व अपर्याप्त जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।२१।।

पूर्वोक्त द्वीन्द्रियादि जीव सर्व जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामान्य से एकेन्द्रिय जीव सिद्धराशि और त्रस जीवों की राशि से सर्वजीवराशि को अपहृत करके लब्ध शलाका प्रमाण सर्व जीवराशि को खण्डित करके उनमें एक भाग को छोड़कर शेष बहुभागों के ग्रहण करने पर चूँकि एकेन्द्रिय जीवों का प्रमाण होता है, इसलिए सर्व जीवों के अनन्त बहुभाग प्रमाण एकेन्द्रिय जीव होते हैं, ऐसा सूत्र में कहा है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीव सभी जीवों से असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। विवक्षित बादर एकेन्द्रियों से सर्व जीवराशि को अपवर्तित करने पर असंख्यात लोक आते हैं। उनका विरलन कर सर्व जीवराशि को रूप के प्रति समखण्ड करके देने पर इच्छित बादर एकेन्द्रियों का प्रमाण होता है। उसमें तीनों ही बादर एकेन्द्रिय जीव सर्व जीवों के असंख्यातवें भागमात्र कहे गये हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सामान्य से सर्व जीवों से असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव सर्वजीवों के संख्यातबहुभागप्रमाण हैं, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव सर्व जीवों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीव और उनके पर्याप्त-अपर्याप्तक भेदों से बारह प्रकार के जीव सर्वजीवराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।

कैसे ?

जगत् प्रतर के असंख्यातवें भाग मात्र जीवों से सर्वजीवराशि में भाग देने पर वहाँ जो राशि उपलब्ध

एवं इंद्रियमार्गणायां भागाभागनिरूपणत्वेन द्वादश सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भागाभागानुगमनाम-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणाधिकारः

कायमार्गणायां भागाभागप्रतिपादनाय द्वादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।२३।।

अणंतभागो।।२४।।

वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।२५।।

होती है, वह अनन्त है।

इस प्रकार से इन्द्रियमार्गणा में भागाभाग का निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भागाभागानुगम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अब कायमार्गणा में भागाभाग का प्रतिपादन करने हेतु बारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणा के अनुसार पृथिवीकायिक, पृथिवीकायिक पर्याप्त, पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, इसी प्रकार नौ अप्कायिक, नौ तेजस्कायिक, नौ वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा त्रसकायिक, त्रसकायिक पर्याप्त और त्रसकायिक अपर्याप्त जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।२३।।

उक्त जीव सर्व जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।२४।।

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।२५।।

अणंता भागा।।२६।।

बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।२७।।

असंखेज्जदिभागो।।२८।।

सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।२९।।

असंखेज्जा भागा।।३०।।

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।३१।।

संखेज्जा भागा।।३२।।

सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।३३।।

संखेज्जदिभागो।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पृथिवी-जल-अग्नि-वायुकायिकाः चतुर्विधाः इमे प्रत्येकं नवनवविधाः सर्वे**

वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवों के अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं।।२६।।

बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद जीव, बादर निगोद जीव पर्याप्त, बादर निगोद जीव अपर्याप्त सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।२७।।

उक्त जीव सर्व जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।२८।।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।२९।।

उक्त जीव सर्व जीवों के असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।।३०।।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त व सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त सर्व जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।३१।।

उक्त जीव सर्व जीवों के संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।।३२।।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त सर्व जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।३३।।

उक्त जीव सर्व जीवों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक चारों प्रकार के ये प्रत्येक जीव नौ-नौ भेद

मिलित्वा षट्त्रिंशद्विधाः सन्ति। बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीरा सामान्येन पर्याप्तापर्याप्तभेदेन त्रिविधाः। त्रसकायिकाश्च त्रिविधाः सर्वे, द्विचत्वारिंशत् विधा जीवाः सर्वजीवानामनन्तभागप्रमाणाः सन्ति।

वनस्पतिकायिका निगोदजीवाः सर्वजीवराशेरनन्तबहुभागप्रमाणाः। बादरवनस्पतिकायिकास्त्रिविधाः, बादरनिगोदजीवास्त्रिविधाः सर्वजीवराशेरसंख्यातभागप्रमाणाः सन्ति, एतैः सर्वजीवराशौ भागे कृते असंख्यातलोकप्रमाणोपलंभात्।

सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः सूक्ष्मनिगोदजीवाः सर्वजीवानामसंख्यातबहुभागप्रमाणाः सन्ति। इमे द्विविधा अपि पर्याप्ताः संख्यातबहुभागाः सर्वजीवराशेरिति।

''अत्र सूक्ष्मवनस्पतिकायिकान् भणित्वा सूक्ष्मनिगोदजीवानपि पृथग् भणति, एतेन ज्ञायते यथा सर्वे सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाश्चैव सूक्ष्मनिगोदजीवा न भवन्तीति[१]।''

कश्चिदाह — यद्येवं तर्हि 'सर्वे सूक्ष्मवनस्पतिकायिका निगोद एव' इत्येतेन वचनेन सह एतत्कथनं विरुध्यते ?

आचार्यः प्राह — उक्तवचनेन सह एतद्वचनं न विरुध्यते, किंच-सूक्ष्मनिगोदजीवाः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाश्चैवेति अवधारणाभावात्।

पुनरप्याशंकते — सूक्ष्मवनस्पतिकायिकान् मुक्त्वा के पुनस्ते अन्ये सूक्ष्मनिगोदजीवाः ?

आचार्यः समाधत्ते — नैतद् वक्तव्यं, सूक्ष्मनिगोदेषु इव तदाधारेषु वनस्पतिकायिकेष्वपि सूक्ष्मनिगोदजीवत्वसंभवात्। ततः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाश्चैव सूक्ष्मनिगोदजीवा न भवन्तीति सिद्धम्।

वाले होते हैं, अतः सभी मिलाकर इन चारों के छत्तीस भेद हो जाते हैं। बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर वाले जीव सामान्य और पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से तीन प्रकार के हैं और त्रसकायिक जीव भी तीन प्रकार के हैं, ये सभी ब्यालिस (४२) प्रकार के जीव इन समस्त जीवराशि में भाग करने पर सर्वजीवों की राशि के अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं।

वनस्पतिकायिक निगोदिया जीव सर्वजीवराशि के अनन्त बहुभाग प्रमाण हैं। बादर वनस्पतिकायिक जीव तीन प्रकार के हैं, तीन प्रकार के बादर निगोदिया जीव सर्वजीवराशि से असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। क्योंकि इन सभी से सर्वजीवराशि में भाग देने पर असंख्यात लोकप्रमाण संख्या उपलब्ध होती है।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म निगोदिया जीव सर्वजीवराशि के असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। इन दोनों प्रकार के पर्याप्त भेद वाले जीव सर्वजीवराशि से संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं।

यहाँ सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवों का कथन करके पुनः सूक्ष्म निगोदिया जीवों को भी पृथक् कहा है, इससे ज्ञात होता है कि सब सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीव ही सूक्ष्म निगोदिया जीव नहीं होते हैं, ऐसा समझना।

यहाँ कोई शंका करता है कि — यदि ऐसा है तो 'सर्वसूक्ष्म वनस्पतिकायिक निगोद ही हैं' इस वचन के साथ इस कथन का विरोध आता है ?

आचार्य इसका समाधान देते हैं कि — उक्त वचन के साथ यह वचन विरोध को प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि सूक्ष्म निगोद जीव सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही हैं, ऐसा उक्त सूत्र में अवधारण नहीं किया है।

पुनः इसमें शंका होती है कि — तो फिर सूक्ष्म वनस्पतिकायिक को छोड़कर अन्य सूक्ष्म निगोद जीव कौन से हैं ?

तब आचार्य समाधान करते हैं कि — ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि, सूक्ष्म निगोद जीवों के समान उन निगोद जीवों के आधारभूत वनस्पतिकायिकों में भी सूक्ष्म निगोद जीवपने की संभावना है। इस कारण

---

१. षट्खण्डागम पु. ७, पृ. ५०४।

कश्चिद् भव्यः शिष्यः पुनरप्याशंकां करोति—

सूक्ष्मनामकर्मोदयेन यथा जीवानां वनस्पतिकायिकादीनां सूक्ष्मत्वं भवति तथा निगोदनामकर्मोदयेन निगोदत्वं भवति। न च निगोदनामकर्मोदयो बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीराणामस्ति येन तेषां ''निगोदसंज्ञा'' भवति इति चेत् ?

तस्य समाधानं करोत्याचार्यदेवः श्रीवीरसेनः—

नैतद् वक्तव्यं, तेषामपि वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीराणां आधारे आधेयोपचारेण निगोदत्वाविरोधात्।

कथमेतज्ज्ञायते ?

निगोदप्रतिष्ठितानां बादरनिगोदजीवा इति निर्देशात्, वनस्पतिकायिकानामुपरि ''णिगोदा विसेसाहिया' इति भणितवचनाच्च ज्ञायते।

सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः अपर्याप्ताः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्ताश्च सर्वजीवानां संख्यातभागप्रमाणाः सन्ति। एतैः सर्वजीवराशौ भागे कृते संख्यातरूपाणामुपलंभात्। अत्रापि सूक्ष्मवनस्पतिकायिकापर्याप्तेभ्यः पूर्वमिव सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तानां भेदः वक्तव्यः।

निगोदेषु जीवन्ति निगोदभावेन वा जीवन्ति इति निगोदजीवा एवं तत्तः भेदो वक्तव्यः।

कश्चिदाह—निगोदाः सर्वे वनस्पतिकायिकाश्चैव नान्ये, एतेनाभिप्रायेण कान्यपि भागाभागसूत्राणि

'सूक्ष्म वनस्पतिकायिक ही सूक्ष्म निगोद जीव नहीं होते' यह बात सिद्ध होती है।

कोई भव्य शिष्य पुनः शंका करता है कि—सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जिस प्रकार वनस्पतिकायिकादिक जीवों के सूक्ष्मपना होता है, उसी प्रकार निगोद नामकर्म के उदय से निगोदपना होता है और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवों के निगोद नामकर्म का उदय नहीं है, जिससे कि उनकी 'निगोद' संज्ञा होवे ?

उसका समाधान करते हुए श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है कि—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवों के भी आधार में आधेय का उपचार करने से निगोदपना होने में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—एक को निगोद जीवों से प्रतिष्ठित वनस्पतिकायिक जीवों के बादर निगोद जीव इस प्रकार का निर्देश पाया जाता हैं, दूसरे वनस्पतिकायिकों के आगे निगोद जीव विशेष अधिक हैं। इस प्रकार के कहे गये सूत्र वचन से यह बात जानी जाती है।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त और सूक्ष्मनिगोदिया अपर्याप्त जीव सर्वजीवराशि के संख्यातवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि इनसे सर्वजीवराशि में भाग देने पर संख्यातरूप वाली राशि प्राप्त होती है। यहाँ भी सूक्ष्मवनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवों से सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त जीवों का भेद पूर्व के समान ही कहना चाहिए।

जो निगोदों में जीते हैं, अथवा निगोद भाव से जो जीते हैं, वे निगोद जीव कहलाते हैं, इस प्रकार इन दोनों में भेद जानना चाहिए।

यहाँ कोई शंका करता है कि—

''निगोद जीव सर्व वनस्पतिकायिक ही हैं अन्य नहीं हैं' इस अभिप्राय से कितने ही भागाभाग सूत्र स्थित

स्थितानि, किंच—सूक्ष्मवनस्पतिकायिक-भागाभागस्य त्रिष्वपि सूत्रेषु निगोदजीवनिर्देशाभावात्। ततः तैः सूत्रैः एतेषां सूत्राणां विरोधो भवति इति चेत् ?

श्रीवीरसेनाचार्यः प्राह—''जदि एवं तो उवदेसं लद्धूण इदं सुत्तं इदं चासुत्तमिदि आगमणिउणा भणंतु, ण च अम्हे एत्थ वोत्तुं समत्था, अलद्धोवदेसत्तादो।[१]''

अनया पंक्त्या श्रीवीरसेनाचार्यवर्यस्य पापभीरुत्वं दृश्यते। वर्तमानकालेऽपि साधवः साध्व्यः श्रावकाः श्राविकाश्च एतदुदाहरणमनुसर्तव्यम्।

एवं कायमार्गणायां भागाभागनिरूपणत्वेन द्वादश सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भागाभागानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानामतृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ योगमार्गणाधिकारः

इदानीं योगमार्गणायां भागाभागनिरूपणाय सूत्रदशकमवतार्यते—

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।३५।।

हैं, क्योंकि सूक्ष्म वनस्पतिकायिक भागाभाग के तीनों ही सूत्रों में निगोद जीवों के निर्देश का अभाव है। इसलिए उन सूत्रों से इन सूत्रों का विरोध होता है ?

श्री वीरसेनाचार्य इनका समाधान देते हुए कहते हैं कि—यदि ऐसा है तो उपदेश को प्राप्त कर 'यह सूत्र है और यह सूत्र नहीं है' ऐसा आगम निपुण जन कह सकते हैं। किन्तु हम यहाँ कहने के लिए समर्थ नहीं है, क्योंकि हमें वैसा उपदेश प्राप्त नहीं है।

इस पंक्ति से श्री वीरसेनाचार्यवर्य की पापभीरुता देखने को मिलती है। वर्तमानकाल में भी सभी साधु-साध्वी (मुनि-आर्यिका आदि) और श्रावक-श्राविकाओं को भी इस उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए।

इस प्रकार कायमार्गणा में भागाभाग का निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भागाभागानुगम महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब योगमार्गणा में भागाभाग का निरूपण करने हेतु दश सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

योगमार्गणा के अनुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।३५।।

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ-५०७।

अणंतो भागो।।३६।।

कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।३७।।

अणंता भागा।।३८।।

ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।३९।।

संखेज्जा भागा।।४०।।

ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।४१।।

संखेज्जदिभागो।।४२।।

कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।४३।।

असंखेज्जदिभागो।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मनोयोगिनः पंचविधाः वचनयोगिनः पंचविधाः, वैक्रियिक-आहारक-तन्मिश्रयोगिनश्च चतुर्विधाः इमे सर्वजीवराशीनां अनन्तभागप्रमाणाः। सामान्येन काययोगिनः एकेन्द्रियादारभ्य आपंचेन्द्रियतिर्यंचः मनुष्याश्च सर्वजीवराशीनामनंतबहुभागप्रमाणाः। औदारिककाययोगिनः सर्वजीवानां संख्यातबहुभागप्रमाणाः, तन्मिश्रयोगिनः संख्यातभागाः, कार्मणकाययोगिनोऽसंख्यात-भागप्रमाणाः सन्ति।**

उक्त जीव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।३६।।

काययोगी जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।३७।।

काययोगी जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।३८।।

औदारिक काययोगी जीव सर्व जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।३९।।

औदारिककाययोगी जीव सब जीवों के संख्यात बहुभागप्रमाण हैं।।४०।।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।४१।।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीव सब जीवों के संख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।४२।।

कार्मणकाययोगी जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण है ?।।४३।।

कार्मणकाययोगी जीव सब जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पाँचों प्रकार के मनोयोगी, पाँचों प्रकार के वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी ये चार काययोगी ये सभी जीव सर्वजीवराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। सामान्य से काययोगी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य सर्वजीवराशि के अनन्तबहुभागप्रमाण हैं। औदारिककाययोगी जीव सर्वजीवों से संख्यातबहुभागप्रमाण हैं, औदारिकमिश्रकाययोगी संख्यातभाग प्रमाण हैं और कार्मणकाययोगी जीव सर्वजीवराशि से असंख्यातभाग प्रमाण हैं।

एवं योगमार्गणायां भागाभागनिरूपणत्वेन दशसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भागाभागानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

अथ वेदकषायज्ञानसंयममार्गणाधिकारः:

इदानीं वेद-कषाय-ज्ञान-संयममार्गणासु अष्टादशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।४५।।

अणंतो भागो।।४६।।

णवुंसयवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।४७।।

अणंता भागा।।४८।।

कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।४९।।

चदुब्भागो देसूणा।।५०।।

इस प्रकार योगमार्गणा में भागाभाग बतलाने वाले दश सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भागाभागानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेद-कषाय-ज्ञान-संयममार्गणा अधिकार

अब वेद-कषाय-ज्ञान और संयममार्गणा में भागाभाग कथन करने वाले अठारह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणा के अनुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और अपगतवेदी जीव सर्व जीवों के कितनें भागप्रमाण हैं ?।।४५।।

उक्त जीव सर्व जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।४६।।

नपुसंकवेदी जीव सर्वजीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।४७।।

नपुंसकवेदी जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।४८।।

कषायमार्गणा के अनुसार क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।४९।।

उक्त जीव सब जीवों के कुछ कम एक चतुर्थ भागप्रमाण हैं।।५०।।

लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।५१।।

चदुब्भागो सादिरेगो।।५२।।

अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।५३।।

अणंतो भागो।।५४।।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।५५।।

अणंता भागा।।५६।।

विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।५७।।

अणंतभागो।।५८।।

संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।५९।।

अणंतभागो।।६०।।

लोभकषायी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।५१।।

लोभकषायी जीव सब जीवों के साधिक चतुर्थ भागप्रमाण हैं।।५२।।

कषायरहित जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।५३।।

कषायरहित जीव सब जीवों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं।।५४।।

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।५५।।

मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।५६।।

विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण है ?।।५७।।

उक्त जीव सब जीवों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं।।५८।।

संयममार्गणा के अनुसार संयत, सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत, यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।५९।।

उक्त जीव सब जीवों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं।।६०।।

असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।६१।।

अणंता भागा।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। नपुंसकवेदिनो मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनः, असंयताः, इमे जीवाः एकेन्द्रियविकलेन्द्रियापेक्षया अनंतबहुभागप्रमाणाः सर्वजीवराशीनां भवन्ति। क्रोधमानमायाकषायसहिताः जीवाः प्रत्येकं किंचिन्न्यूनएकचतुर्थभागप्रमाणाः। लोभकषायसहिताः सर्वजीवानां साधिकचतुर्थभागप्रमाणाः सन्ति।**

एवं वेदादिसंयममार्गणान्तां जीवानां भागाभागनिरूपणत्वेनाष्टादशसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भागाभागानुगमनाममहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदादिसंयममार्गणापर्यंत पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनलेश्या भव्यसम्यक्त्व संज्ञिआहार मार्गणाधिकारः

इदानीं दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञि-आहारमार्गणासु जीवानां भागाभागप्रतिपादनार्थं षड्विंशति-सूत्राण्यवतार्यन्ते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।६३।।

असंयत जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।६१।।

असंयत जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त समस्त सूत्रों का अर्थ सुगम है। नपुंसकवेदी, मतिअज्ञानी-कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, असंयत ये सभी जीव एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों की अपेक्षा सर्वजीवराशि के अनन्तबहुभागप्रमाण होते हैं। क्रोध-मान-माया-कषाय से सहित प्रत्येक जीव कुछ कम एक बटे चार भागप्रमाण हैं। लोभकषायसहित जीव सर्वजीवराशि से भाग देने पर कुछ अधिक चतुर्थभागप्रमाण हैं।

इस प्रकार वेदमार्गणा से लेकर संयममार्गणा तक के जीवों का भागाभाग निरूपणकरने वाले अठारह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भागाभागानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदादि संयममार्गणा पर्यन्त यह पाँचवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शन-लेश्या-भव्यत्व-सम्यक्त्व-संज्ञी और आहारमार्गणा अधिकार

अब दर्शन-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञी और आहारमार्गणाओं में जीवों का भागाभाग प्रतिपादित करने हेतु छब्बीस सूत्रों का अवतार करते हैं —

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।६३।।

अणंतभागो।।६४।।

अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।६५।।

अणंता भागा।।६६।।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।६७।।

तिभागो सादिरेगो।।६८।।

णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।६९।।

तिभागो देसूणो।।७०।।

तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।७१।।

अणंतभागो।।७२।।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।७३।।

अणंता भागा।।७४।।

उक्त जीव सर्व जीवों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं।।६४।।

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।६५।।

अचक्षुदर्शनी जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।६६।।

लेश्यामार्गणा के अनुसार कृष्णलेश्या वाले जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।६७।।

कृष्ण लेश्या वाले जीव सब जीवों के साधिक एक त्रिभागप्रमाण हैं ?।।६८।।

नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।६९।।

नील और कापोतलेश्या वाले जीव सब जीवों के कुछ कम एक त्रिभागप्रमाण हैं।।७०।।

तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।७१।।

उक्त जीव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।७२।।

भव्यमार्गणा के अनुसार भव्यसिद्धिक जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।७३।।

भव्यसिद्धिक जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।७४।।

अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।७५।।

अणंतो भागो।।७६।।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।७७।।

अणंतो भागो।।७८।।

मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।७९।।

अणंता भागा।।८०।।

सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।८१।।

अणंतभागो।।८२।।

असण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।८३।।

अणंता भागा।।८४।।

आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।८५।।

असंखेज्जा भागा।।८६।।

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।७५।।

अभव्यसिद्धिक जीव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।७६।।

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।७७।।

उक्त जीव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।७८।।

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवों के कितने भाग प्रमाण हैं ?।।७९।।

मिथ्यादृष्टि जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।८०।।

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।८१।।

संज्ञी जीव सब जीवों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं।।८२।।

असंज्ञी जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।८३।।

असंज्ञी जीव सब जीवों के अनन्त बहुभागप्रमाण हैं।।८४।।

आहारमार्गणा के अनुसार आहारक जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ?।।८५।।

आहारक जीव सब जीवों के असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं।।८६।।

अणाहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।८७।।

असंखेज्जदिभागो।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। अचक्षुर्दर्शिनः, भव्याः, मिथ्यादृष्ट्यः, असंज्ञिनश्च एकेन्द्रियाद्यपेक्षया सर्वजीवराशीनां अनन्तबहुभागप्रमाणाः सन्ति। कृष्णलेश्याः जीवाः सर्वजीवराशीषु भागे कृते साधिकएकत्रिभागाः, नील-कापोतलेश्याः जीवाः किंचिन्न्यूनएकत्रिभागाः, त्रिकशुभलेश्यावन्तः सर्वजीवानां अनन्तभागप्रमाणाः। अभव्या अपि अनन्तभागप्रमाणाः। आहारका जीवा असंख्यातबहुभागाः, अनाहारजीवाः असंख्यातभागाश्च सन्तीति ज्ञातव्यं।**

एवं नवमादिचतुर्दशपर्यन्तमार्गणास्थितजीवानां भागाभागप्रतिपादनत्वेन षड्विंशतिसूत्राणि गतानि।

तात्पर्यमेतत्—**भव्यजीवान्तर्गतानन्तबहुभागप्रमाणजीवेषु मम गणनास्ति, सम्यक्त्वप्रभावेण भव्याभव्यत्वमतीत्य सिद्धिगतिः प्राप्तव्या मयेति ज्ञात्वानन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यस्वरूपानन्तचतुष्टयं प्रकटयितुं रत्नत्रयमाराधनीयं निरन्तरं एष एव स्वाध्यायस्य सारो गृहीतव्यः सर्वभव्यपुंगवैरपि।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे भागाभागानुगमनाम महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनादि-आहारमार्गणा-पर्यंत मार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

अनाहारक जीव सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं?।।८७।।

अनाहारक जीव सब जीवों के असंख्यातवें भागप्रमाण है।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीव एकेन्द्रिय आदि की अपेक्षा सर्वजीवराशि के अनन्तबहुभागप्रमाण हैं। कृष्णलेश्या वाले जीव सर्वजीवराशि में भाग देने पर कुछ अधिक एक बटे तीन भागप्रमाण हैं। नील और कापोत लेश्या वाले जीव कुछ कम एक बटे तीन भाग प्रमाण हैं। तीनों शुभलेश्या वाले जीव सर्वजीवराशि के अनन्तवें भागप्रमाण हैं। अभव्य जीव भी अनन्तभागप्रमाण हैं। आहारक जीव असंख्यातबहुभागप्रमाण हैं और अनाहारक जीव असंख्यात भाग प्रमाण हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार नवमीं मार्गणा को लेकर चौदहवीं मार्गणा तक में स्थित जीवों का भागाभाग प्रतिपादन करने वाले छब्बीस सूत्र पूर्ण हुए।

तात्पर्य यह है कि—भव्य जीवों के अन्तर्गत अनन्तबहुभागप्रमाण जीवों में मेरी गणना है, सम्यक्त्व के प्रभाव से भव्यत्व और अभव्यत्व से रहित सिद्धिगति मुझे प्राप्त करने योग्य है, ऐसा जानकर अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्तसुख और अनन्तवीर्यस्वरूप अनुन्तचतुष्टय को प्रगट करने हेतु रत्नत्रय निरन्तर ही आराधनीय है। यही स्वाध्याय का सार सभी भव्यपुंगवों के द्वारा ग्रहण करने योग्य है।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम के क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में भागाभागानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धांतचिंतामणि-टीका में दर्शनमार्गणा से लेकर आहारमार्गणापर्यन्त मार्गणा नामका छठा अधिकार समाप्त हुआ।

आर्यास्कन्धछंदः — **मेरौ षोडशशैले, गजदन्ते ये चतुःप्रमा जिननिलयाः।**
कुलशैले षड्मान्या, विदेहजे वक्षारगिरिषु ते षोडश।।
रूप्याद्रिचतुस्त्रिंशत्, तेषु गृहाः जंबूद्रौ शाल्मलिवृक्षे।
एतान् सर्वान् मान्यान् अष्टासप्ततिजिनालयान् प्रणमामि।।

अत्र हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे निर्मितजंबूद्वीपस्थ-अष्टासप्ततिजिनालयान् तत्रस्थितजिनबिंबानि देवभवन स्थितसर्वजिनबिम्बानि षट्समवसरणस्थितचतुर्मुखजिनबिम्बानि च मुहुर्मुहुः प्रणमामो वयं भक्तिभावेन नित्यमिति।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीमद्भूतबल्याचार्यविरचिते क्षुद्रक-बंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमशिष्यः प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भागाभागानुगमो नामायं दशमो महाधिकारः समाप्तः।

— आर्यास्कंध छंद —

श्लोकार्थ — मेरु पर्वत पर सोलह जिनमंदिर हैं, गजदंत पर्वतों पर चार मंदिर हैं, छह कुलाचलों पर छह, विदेहक्षेत्रों में वक्षार पर्वतों पर सोलह, विजयार्ध पर्वतों पर चौंतीस, जम्बू और शाल्मली वृक्षों पर दो अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, ये सभी कुल मिलाकर जम्बूद्वीप में जो अठत्तर अकृत्रिम चैत्यालय हैं, उन सभी जिनालयों को मैं प्रणाम — नमस्कार करता हूँ।।

यहाँ हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर निर्मित जम्बूद्वीप में स्थित अठहत्तर जिनालयों को तथा उनमें विराजमान जिनबिम्बों को, देवभवनों में स्थित समस्त जिनबिम्बों एवं छह समवसरणों में विराजमान चतुर्मुखी जिनबिम्बों को हम बारम्बार भक्तिभाव से नित्य ही नमन करते हैं।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्री वीरसेनाचार्य रचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र-चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज उनके प्रथम शिष्य प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में भागाभागानुगम नामका दशवाँ महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ अल्पबहुत्वानुगमो नामैकादशो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

द्वादशाङ्गधरैर्युक्तः, द्वादशगणवेष्टितः।
द्वादशाङ्गान्विता देवी, चाप्यवतार्यते हृदि।।१।।

द्वादशांगधारिभिः गणधरैः सहितः द्वादशसभासु द्वादशगणैः परिवेष्टितः तीर्थकरः श्रीऋषभदेव भगवान् मम हृदि विराजतां, तस्य मुखोद्गता द्वादशांगान्विता सरस्वतीदेवी च मया हृदयाम्बुजेऽवतार्यते।

अथ चतुर्दशभिरधिकारैः षडुत्तरद्विशतसूत्रैरल्पबहुत्वानुगमोनामैकादशो महाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमे गतिमार्गणाधिकारे अल्पबहुत्वानुगमकथनत्वेन ''अप्पाबहुगाणुगमेण'' इत्यादिना पंचदश सूत्राणि। तदनु इंद्रियमार्गणायां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिना द्वाविंशतिसूत्राणि। ततः परं कायमार्गणायां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिना एकोनसप्ततिसूत्राणि। तदनंतरं योगमार्गणायां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण'' इत्यादिना त्रयोविंशतिसूत्राणि। तत्पश्चात् वेदमार्गणायामल्प-बहुत्व-निरूपणत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि सूत्रपंचदशकं। तदनु कषायमार्गणायामल्पबहुत्वकथनपरत्वेन ''कसायाणु-'' इत्यादिसूत्रपंचकं। तत्पश्चात् ज्ञानमार्गणायामल्पबहुत्व कथनत्वेन ''णाणाणु'' इत्यादिसूत्रषट्कं। ततः परं संयममार्गणायामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''संजमाणु-'' इत्यादिना एकोनविंशतिसूत्राणि। तदनंतरं

अथ अल्पबहुत्वानुगम नामक ग्यारहवाँ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ—द्वादशांग को धारण करने वाले गणधर देवों से सहित, द्वादश गणों से परिवेष्टित तीर्थंकर भगवान् एवं उनके मुख से प्रगट हुई द्वादशांगमयी सरस्वती माता को मैं अपने हृदय में अवतीर्ण करता हूँ।।१।।

द्वादश—बारह अंगों का ज्ञान धारण करने वाले जो गणधर देव मुनिराज हैं, उनसे जो सहित हैं, समवसरण में बारह सभाओं से परिवेष्टित हैं, ऐसे श्री तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव मेरे हृदय में विराजमान होवें और उनके मुख से समुद्भूत—उत्पन्न हुई द्वादशांगरूप सरस्वती—जिनवाणी माता मेरे द्वारा हृदयकमल में अवतीर्ण की जाती है। अर्थात् उन जिनवाणी माता को मैं हृदय में धारण करता हूँ।

अब चौदह अधिकारों में दो सौ छह सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम नाम का ग्यारहवाँ महाधिकार प्रारंभ हो रहा है। उनमें से प्रथम गतिमार्गणा अधिकार में अल्पबहुत्वानुगम का कथन करने वाले ''अप्पाबहुगाणुगमेण'' इत्यादि पन्द्रह (१५) सूत्र हैं। पुनः इन्द्रियमार्गणा में अल्पबहुत्वानुगम का निरूपण करने हेतु ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादि बाइस (२२) सूत्र हैं। आगे कायमार्गणा में अल्पबहुत्वानुगम बतलाने वाले ''कायाणुवादेण'' इत्यादि उनहत्तर (६९) सूत्र हैं। तदनंतर योगमार्गणा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''जोगाणुवादेण'' इत्यादि तेइस (२३) सूत्र हैं। तत्पश्चात् वेदमार्गणा में अल्पबहुत्व को बतलाने वाले ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि पन्द्रह (१५) सूत्र हैं। उसके बाद कषायमार्गणा में अल्पबहुत्व के कथन की मुख्यता वाले ''कसायाणु'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। उसके पश्चात् ज्ञानमार्गणा में अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु ''णाणाणु'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः संयममार्गणा में अल्पबहुत्व को बतलाने वाले ''संजमाणु'' इत्यादि उन्नीस सूत्र हैं। तदनंतर दर्शनमार्गणा

दर्शनमार्गणायामल्पबहुत्वनिरूपणपरत्वेन ''दंसणा'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् दशमे लेश्यामार्गणाधिकारे अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''लेस्साणु-'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तदनु एकादशे भव्यमार्गणाधिकारेऽल्पबहुत्व-निरूपणत्वेन ''भवियाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् द्वादशे सम्यक्त्वमार्गणाधिकारेऽल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''सम्मत्ताणु-'' इत्यादिना द्वादश सूत्राणि। तत्पश्चात् त्रयोदशे संज्ञिमार्गणानाम्नि अल्पबहुत्वप्ररूपणत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः पुनः चतुर्दशे आहारमार्गणाधिकारेऽल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''आहाराणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

तत्रापि गतिमार्गणायां अल्पबहुत्वप्रतिपादनार्थं पंचदशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंचगदीओ समासेण।।१।।
सव्वत्थोवा मणुसा।।२।।
णेरइया असंखेज्जगुणा।।३।।
देवा असंखेज्जगुणा।।४।।
सिद्धा अणंतगुणा।।५।।
तिरिक्खा अणंतगुणा।।६।।

में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''दंसणा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। तत्पश्चात् लेश्यामार्गणा में अल्पबहुत्व को निरूपित करने वाले ''लेस्साणु'' इत्यादि सात सूत्र हैं। पुनः ग्यारहवें भव्यमार्गणा अधिकार में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले ''भवियाणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। तत्पश्चात् बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले ''सम्मत्ताणु'' इत्यादि बारह सूत्र हैं। उसके बाद तेरहवें संज्ञीमार्गणा अधिकार में अल्पबहुत्व का प्ररूपण करने हेतु ''सण्णिया'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उससे आगे पुनः चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में अल्पबहुत्वानुगम का प्रतिपादन करने वाले ''आहाराणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

गतिमार्गणा अधिकार

उनमें से अब गतिमार्गणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु पन्द्रह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

अल्पबहुत्वानुगम से गतिमार्गणा के अनुसार संक्षेप में पाँच गतियाँ हैं।।१।।
उनमें सबसे थोड़े मनुष्य हैं।।२।।
नारकी जीव मनुष्यों में असंख्यातगुणे हैं।।३।।
नारकियों से देव असंख्यातगुणे हैं।।४।।
देवों से सिद्ध अनंतगुणे हैं।।५।।
सिद्धों से तिर्यंच अनन्तगुणे हैं।।६।।

अट्ठ गदीओ समासेण।।७।।

सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ।।८।।

मणुस्सा असंखेज्जगुणा।।९।।

णेरइया असंखेज्जगुणा।।१०।।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ।।११।।

देवा संखेज्जगुणा।।१२।।

देवीओ संखेज्जगुणाओ।।१३।।

सिद्धा अणंतगुणा।।१४।।

तिरिक्खा अणंतगुणा।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गतिः सामान्येन एकविधा। सा एव सिद्धगतिः असिद्धगतिश्चेति द्विविधा। अथवा देवगतिरदेवगतिः सिद्धगतिश्चेति त्रिविधा। अथवा नरकगतिः तिर्यग्गतिः मनुष्यगतिः देवगतिश्चेति चतुर्विधा। अथवा सिद्धगत्या सह पंचविधा। एवं गतिसमासोऽनेकभेदभिन्नः। तत्र समासेन पंचगतयो यास्तत्रैवाल्पबहुत्वं भण्यते अत्र ग्रन्थे।**

अत्र सूत्रे सर्वशब्दः अर्पितपंचगतिजीवापेक्षस्तेषु पंचगतिजीवेषु मनुष्या एव स्तोका इति भणितं

संक्षेप से गतियाँ आठ हैं।।७।।

मनुष्यिनी सबसे स्तोक हैं।।८।।

मनुष्यिनियों से मनुष्य असंख्यातगुणे हैं।।९।।

मनुष्यों से नारकी असंख्यातगुणे हैं।।१०।।

नारकियों से पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच असंख्यातगुणे हैं।।११।।

योनिमती तिर्यंचों से देव संख्यातगुणे हैं।।१२।।

देवों से देवियाँ संख्यातगुणी हैं।।१३।।

देवियों से सिद्ध अनन्तगुणे हैं।।१४।।

सिद्धों से तिर्यंच अनन्तगुणे हैं।।१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गति सामान्य से एक प्रकार की है। वही गति सिद्धगति और असिद्धगति इस तरह दो प्रकार की है। अथवा देवगति, अदेवगति और सिद्धगति इस तरह तीन प्रकार की हैं। अथवा नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति इस तरह चार प्रकार की हैं। अथवा सिद्धगति के साथ पाँच प्रकार की हैं। इस प्रकार से गतियाँ संक्षेप से अनेक प्रकार की हैं। उसमें संक्षेप से जो पाँच गतियाँ हैं, उनका ही अल्पबहुत्व इस ग्रंथ में कहते हैं।

यहाँ सूत्र में सर्व शब्द विवक्षित पाँच गतियों के जीवों की अपेक्षा करता है। उन पाँच गतियों के जीवों में मनुष्य ही सबसे स्तोक हैं यह कहा गया है, क्योंकि वे सूच्यंगुल के तृतीय वर्गमूल से

भवति, सूच्यंगुलप्रथमवर्गमूलेन तस्यैव तृतीयवर्गमूलगुणितेन छिन्नजगच्छ्रेणिमात्रप्रमाणत्वात्।

एतदपेक्षया नारकाः असंख्यातगुणाः, एभ्यो देवाः असंख्यातगुणाः। देवापेक्षया सिद्धाः अनन्तगुणाः सन्ति, देवैः सिद्धराशेरपवर्तिते अनंतशलाकोपलंभात्। एभ्यः सिद्धेभ्यः तिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः सन्ति, सिद्धैः अपवर्तिततिर्यक्षु जीववर्गमूलात् सिद्धेभ्यश्चानन्तगुणितशलाकोपलंभात्। एताः पुनः लब्धगुणकारशलाकाः भव्यसिद्धिकामनन्तभागः।

कुतः ?

तिर्यक्षु जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागमात्रजीवप्रक्षेपे कृते भव्यसिद्धिकराशिप्रमाणोत्पत्तेः।

संक्षेपेण ताश्चैव गतयोष्टौ सन्ति—मनुष्यिन्यः मनुष्याः नारकाः तिर्यञ्चः पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमत्यः देवाः देव्यः सिद्धाश्चेति। तासामल्पबहुत्वं भण्यते—

अष्टानां गतीनां मध्ये सर्वस्तोकाः मनुष्यिन्यः, संख्यातप्रमाणत्वात्। मानुष्यापेक्षया मनुष्याः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः जगत्श्रेण्याः असंख्यातभागप्रमाणः जगच्छ्रेण्याः प्रथमवर्गमूलप्रमाणः, मनुष्यावहारकालगुणितमनुष्यिनीभिः अपवर्तितजगच्छ्रेणिप्रमाणत्वात्।

अत्र मनुष्यिन्यपेक्षया मनुष्या ये असंख्यातगुणा अधिकाः कथितास्तत्र लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यापेक्षया ज्ञातव्या भवन्ति, किञ्च—पर्याप्तमनुष्याः संख्याता एव सन्ति।

अग्रे सूत्राणि सुगमानि, देवापेक्षया देव्यः संख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः द्वात्रिंशद्रूपाणि संख्यात-रूपाणि वा।

गुणित उसके ही प्रथम वर्गमूल से खण्डित जगत्श्रेणी प्रमाण हैं।

इस अपेक्षा से नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं, नारकियों से देव असंख्यातगुणे हैं। देवों की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे हैं, क्योंकि देवों से सिद्धराशि के अपवर्तित करने पर अनन्तशलाकाएँ उपलब्ध होती हैं। इन सिद्धों से तिर्यंच अनन्तगुणे हैं, क्योंकि सिद्धों से तिर्यंचों के अपवर्तित करने पर जीवराशि के वर्गमूल और सिद्धों से भी अनन्तगुणी शलाकाएँ उपलब्ध होती हैं पुनः ये लब्ध गुणकार शलाकाएं भव्यसिद्धिकों के अनन्तवें भाग प्रमाण होती हैं।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—क्योंकि तिर्यंचों में जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण जीवों का प्रक्षेप करने पर भव्यसिद्धिकराशि का प्रमाण उत्पन्न होता है।

संक्षेप से वे ही गतियाँ आठ भी होती हैं-१. मनुष्यिनी, २. मनुष्य ३. नारक ४. तिर्यंच ५. पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती ६. देव, ७. देवियाँ और ८. सिद्ध। इन सभी का अल्पबहुत्व कहते हैं-

आठों गतियों के मध्य मनुष्यिनियाँ सबसे कम हैं, क्योंकि उनका प्रमाण संख्यात है। मनुष्यिनियों की अपेक्षा मनुष्य असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण जगत्श्रेणी के प्रथमवर्गमूल प्रमाण हैं, क्योंकि यह मनुष्यों के अवहार काल के मनुष्यिनियों के गुणित करने पर जो लब्ध आवे और उसका जगश्रेणी में भाग देने पर जो लब्ध आवे, उसी प्रमाण हैं।

यहाँ जो मनुष्यिनियों की अपेक्षा मनुष्य असंख्यातगुणे कहे गये हैं, वे लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों की अपेक्षा ही हैं, क्योंकि पर्याप्त मनुष्य संख्यात ही होते हैं।

आगे सूत्र सुगम हैं। देव की अपेक्षा देवियाँ संख्यातगुणी हैं, यहाँ गुणकार बत्तीसरूप अथवा संख्यातरूप है।

देव्यपेक्षया सिद्धाः अनन्तगुणाः सन्ति, देवीभिः अपवर्तितसिद्धेभ्योऽनन्तरूपोपलंभात्। एभ्यः तिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः। अभव्यसिद्धिकैः सिद्धैः जीववर्गमूलात् चानन्तगुणरूपाणां सिद्धैः भाजिततिर्यक्षूपलंभात्।

एवं प्रथमस्थले गतिमार्गणायामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन पंचदश सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमती-कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

इदानीमिन्द्रियमार्गणायां अल्पबहुत्वप्रतिपादनाय द्वाविंशतिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

अथ त्रिभिःस्थलैः द्वाविंशतिसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमो इंद्रियमार्गणानाम द्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले इंद्रियमार्गणायां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''इंदिया-'' इत्यादिसूत्रषट्कं। तदनु द्वितीयस्थले एकेन्द्रियादिजीवानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''एइंदिया-'' इत्यादिसूत्रनवकं। ततः परं तृतीयस्थले प्रकारेणाल्पबहुत्वप्ररूपणत्वेन ''बादरेइंदिय-'' इत्यादिसूत्रसप्तकमिति पातनिका भवति।

इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचिंदिया।।१६।।

देवियों की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे हैं, क्योंकि देवियों से सिद्धों की राशि अपवर्तित करने पर वे अनन्तरूप उपलब्ध होते हैं। इनसे — सिद्धों से तिर्यंच अनन्तगुणे हैं, क्योंकि अभव्यसिद्धिक जीवों से, सिद्धों से और जीवराशि के वर्गमूल से अनन्तगुणरूप सिद्धों की राशि से भाजित करने पर तिर्यंचों की राशि उपलब्ध होती है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में गतिमार्गणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले पन्द्रह सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में गतिमार्गणा नाम का प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब यहाँ इन्द्रिय मार्गणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु बाईस सूत्र अवतरित होते हैं —

अब तीन स्थलों में बाइस सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में इन्द्रियमार्गणा नामका द्वितीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथमस्थल में इन्द्रियमार्गणा में अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु ''इंदिया'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। आगे द्वितीयस्थल में एकेन्द्रिय आदि जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''एइंदिया'' इत्यादि दश सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीयस्थल में भेदों के द्वारा अल्पबहुत्व का प्ररूपण करने हेतु ''बादरेइंदिय'' इत्यादि सात सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

सूत्रार्थ —

इन्द्रियमार्गणा के अनुसार पंचेन्द्रिय जीव सबसे स्तोक हैं।।१६।।

चउरिंदिया विसेसाहिया।।१७।।

तीइंदिया विसेसाहिया।।१८।।

बीइंदिया विसेसाहिया।।१९।।

अणिंदिया अणंतगुणा।।२०।।

एइंदिया अणंतगुणा।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इन्द्रियमार्गणायां सर्वस्तोकाः पंचेन्द्रियाः, पंचानामिन्द्रियाणां क्षयोपशमोपलब्धेः सुष्ठु दुर्लभत्वात्। अतोऽपेक्षया चतुरिन्द्रियाः विशेषाधिकाः पञ्चानामिन्द्रियाणां सामग्रीतः चतुर्णां इंद्रियाणां सामग्र्या अतिसुलभत्वात्। अत्र विशेषः प्रतरस्यासंख्यातभागः।**

तस्य कः प्रतिभागः ?

प्रतरांगुलस्यासंख्यातभागः प्रतिभागः। पंचेन्द्रियराशिमावलिकायाः असंख्यातभागेन भागे कृते विशेष आगच्छति। तं विशेषं पंचेन्द्रियेषु प्रक्षिप्ते चतुरिन्द्रियाः भवन्ति।

एतावान् एव विशेषो भवति, इति कथं ज्ञायते ?

'आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।'[१]

त्रीन्द्रियाः विशेषाधिकाः, चतुरिन्द्रियाणां सामग्रीतः त्रयाणामिंद्रियाणां सामग्र्या अतिसुलभत्वात्।

पंचेन्द्रियों से चतुरिन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं।।१७।।

चतुरिन्द्रियों से त्रीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं।।१८।।

त्रीन्द्रियों से द्वीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं।।१९।।

द्वीन्द्रिय से अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं।।२०।।

एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं।।२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन्द्रियमार्गणा में सबसे कम पंचेन्द्रिय जीव हैं, क्योंकि पाँचों इन्द्रियों के क्षयोपशम की उपलब्धि होना संसार में सबसे अधिक दुर्लभ है। इनकी—पंचेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा चार इन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं, क्योंकि पाँच इन्द्रियों की सामग्री से चार इन्द्रियों की सामग्री अति सुलभ है। यहाँ विशेष का प्रमाण जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—उसका प्रतिभाग प्रतरांगुल का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण हैं। पंचेन्द्रियराशि को आवली के असंख्यातवें भाग से भाजित करने पर विशेष का प्रमाण आता है। उसे पंचेन्द्रियों में मिलाने पर चतुरिन्द्रिय जीवों का प्रमाण होता है।

प्रश्न—इतना ही विशेष है यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—"यह आचार्यपरमपरा से आये हुए उपदेश से जाना जाता है।"

उन चार इन्द्रिय जीवों से तीन इन्द्रिय वाले जीव विशेष अधिक होते हैं, क्योंकि चार इन्द्रियों की सामग्री से तीन इन्द्रियों की सामग्री अति सुलभ है। यहाँ विशेष चतुरिन्द्रिय जीवों का असंख्यातवाँ भागप्रमाण जानना

---

१. षट्खण्डागम धवला. पु. ७, पृ. ५२४।

अत्र विशेषः चतुरिन्द्रियाणामसंख्यातभागः ज्ञातव्यः। द्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः, त्रीन्द्रियाणां सामग्रीतो द्वीन्द्रियाणां सामग्र्याः प्रायेणोपलंभात्।

अनिन्द्रिया अनंतगुणाः, अनन्तातीतकालसंचिताः भूत्वा व्ययव्यतिरिक्तत्वात्। अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धिकैर्जीवैरनन्तगुणः, द्वीन्द्रियद्रव्यापवर्तितानिन्द्रियप्रमाणत्वात्।

एभ्य एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः, एकेन्द्रियोपलब्धिकारणानां बहूनामुपलंभात्। अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धेभ्यः सिद्धेभ्यः सर्वजीवराशिप्रथमवर्गमूलादपि अनंतगुणः।

कुतः ?

अनिन्द्रियापवर्तितानन्तभागहीनसर्वजीवराशिप्रमाणत्वात्।

एवं प्रथमस्थले मनुष्यादीनामल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

अधुना अन्येन द्वितीयेनापि प्रकारेणाल्पबहुत्वमुच्यते—

सव्वत्थोवा चउरिंदियपज्जत्ता।।२२।।

पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।।२३।।

बीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।।२४।।

तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।।२५।।

चाहिए। तीन इन्द्रिय जीवों की अपेक्षा दो इन्द्रिय जीव विशेष अधिक होते हैं, क्योंकि तीन इन्द्रिय जीवों की सामग्री से दो इन्द्रियों की सामग्री शीघ्र सुलभ होती है।

अनिन्द्रिय जीव उनसे अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि अनिन्द्रिय जीव अनन्त अतीत कालों में संचित होकर व्यय से रहित हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा हैं, क्योंकि वह द्वीन्द्रिय के द्रव्य से भाजित अनिन्द्रिय की राशि का प्रमाण है।

इनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुणा होते हैं, क्योंकि एक इन्द्रिय की उपलब्धि के कारण बहुत पाये जाते हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक, सिद्ध और सर्व जीवराशि के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा है।

कैसे है ?

क्योंकि वह अनिन्द्रिय जीवों से अपवर्तित अनन्तभाग हीन अर्थात् त्रसराशि से हीन सर्व जीवराशि प्रमाण है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में मनुष्य आदिकों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अन्य द्वितीय प्रकार से भी अल्पबहुत्व को कहते हैं—

सूत्रार्थ—

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव सबसे स्तोक हैं।।२२।।

चतुरिन्द्रिय पर्याप्तों से पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।२३।।

पंचेन्द्रिय पर्याप्तों से द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।२४।।

द्वीन्द्रिय पर्याप्तों से त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।२५।।

पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।२६।।
चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।।२७।।
तीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।।२८।।
बीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।।२९।।
अणिंदिया अणंतगुणा।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वस्तोकाः चतुरिन्द्रियपर्याप्ताः, स्वभावत्वात्। पुनश्च पंचेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रियपर्याप्ताः विशेषविशेषाधिकाः।**

तदनु पंचेन्द्रियापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, पापप्रचुराणां जीवानां बहूनां संभवात्। अत्र गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः।

कथं ज्ञायते ?

'आचार्यपरंपरागताविरुद्धोपदेशात्[१]।' प्रतरांगुलस्य संख्यातभागेन जगत्प्रतरे भागे कृते त्रीन्द्रिय-पर्याप्तप्रमाणं भवति, तत्प्रमाणमावलिकाया असंख्यातभागेन गुणिते प्रतरांगुलस्यासंख्यातभागेनापवर्तित-जगत्प्रतरप्रमाणं पंचेन्द्रियापर्याप्तद्रव्यं भवति।

चतुरिन्द्रियापर्याप्ताः विशेषाधिकाः, पापेन विनष्टश्रोत्रेन्द्रियाणां बहूनां जीवानां संभवात्। अत्र विशेषप्रमाणं पंचेन्द्रियापर्याप्तानामसंख्यातभागः।

त्रीन्द्रिय पर्याप्तों से पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।२६।।
पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों से चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।२७।।
चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तों से त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।२८।।
त्रीन्द्रिय अपर्याप्तों से द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।२९।।
द्वीन्द्रिय अपर्याप्तों से अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पर्याप्त चार इन्द्रिय जीव सबसे कम होते हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव से पाया जाता है। पुनश्च पंचेन्द्रिय पर्याप्त, दो इन्द्रिय पर्याप्त और तीन इन्द्रिय पर्याप्त जीव क्रमशः एक-दूसरे से विशेष-विशेष अधिक होते हैं।

उसके पश्चात् पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि पापप्रचुर बहुत जीवों का होना संभव है। यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—"आचार्य परम्परा से आये हुए अविरुद्ध उपदेश से यह बात जानी जाती है।" प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से जगत्प्रतर के भाजित करने पर त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवों का प्रमाण प्राप्त होता है। वह प्रमाण आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग से अपवर्तित जगत्प्रतरप्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का द्रव्य होता है।

चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक होते हैं, क्योंकि पाप से नष्ट हैं श्रोत्र इन्द्रिय जिनकी ऐसे बहुत जीवों का होना संभव है। यहाँ विशेष का प्रमाण पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का असंख्यातवां भाग है।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७, धवला. पृ. ५२९।

त्रीन्द्रियापर्याप्ताः विशेषाधिकाः, पापभारेण बहुकानां चक्षुरिन्द्रियाभावात्। द्वीन्द्रियापर्याप्ताः विशेषाधिकाः, पापेन नष्टघ्राणेन्द्रियाणां बहूनां जीवानां संभवात्।

अनिन्द्रिया अनंतगुणाः, अनंतकालसंचिता भूत्वा व्ययव्यतिरिक्तत्वात्।

एवं द्वितीयस्थले चतुरिन्द्रियादिजीवानामल्पबहुत्वकथनत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

अधुना बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियाणां अल्पबहुत्वं कथ्यते —

बादरेइंदियपज्जत्ता अणंतगुणा।।३१।।

बादरेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।३२।।

बादरेइंदिया विसेसाहिया।।३३।।

सुहुमेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।३४।।

सुहुमेइंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।३५।।

सुहुमेइंदिया विसेसाहिया।।३६।।

एइंदिया विसेसाहिया।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**बादरैकेन्द्रियपर्याप्ताः अनन्तगुणाः, सर्वजीवानामसंख्यातभागत्वात्। बादरैकेन्द्रि-**

तीन इन्द्रिय अपर्याप्त जीव इनसे विशेष अधिक पाये जाते हैं, क्योंकि पाप के भार से बहुत जीवों के चक्षु इन्द्रिय का अभाव है। दो इन्द्रिय अपर्याप्त जीव उनसे विशेष अधिक होते हैं, क्योंकि पाप से जिसके घ्राण इन्द्रिय नष्ट है, ऐसे बहुत जीव संभव हैं।

अनिन्द्रिय जीव इनसे अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि वे अनन्तकाल में संचित होकर व्यय से रहित हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में चतुरिन्द्रिय आदि जीवों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले नौ सूत्र पूर्ण हुए।

अब बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व कहते हैं —

सूत्रार्थ—

अनिन्द्रियों से बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं।।३१।।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तों से बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।३२।।

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तों से बादर एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं।।३३।।

बादर एकेन्द्रियों से सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।३४।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तों से सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।३५।।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तों से सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं।।३६।।

सूक्ष्म एकेन्द्रियों से एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं।।३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वे सब

यापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अपर्याप्तोत्पत्तिप्रायोग्याशुभपरिणामानां बहुत्वात्। अत्र गुणकारः असंख्याता लोकाः।

कथमेतज्ज्ञायते ? तदेवोच्यते श्रीवीरसेनाचार्येण—

''आइरियपरंपरागदअविरुद्धोवदेसादो[१]।''

बादरैकेन्द्रियापर्याप्तेभ्यः बादरैकेन्द्रिया विशेषाधिकाः।

अत्र. कियान् विशेषः ?

बादरैकेन्द्रियपर्याप्तमात्रो विशेषो गृहीतव्यः।

सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु उत्पत्तिनिमित्तपरिणामबाहुल्यात्। अत्र गुणकारः असंख्याता लोकाः।

कुत एतदवगम्यते ?

गुरुपदेशादेव ज्ञायते।

सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्ताः संख्यातगुणाः, मध्यमपरिणामेषु बहूनां जीवानां संभवात्।

किमर्थं संख्यातगुणाः ?

स्वभावादेव।

सूक्ष्मैकेन्द्रियाः विशेषाधिकाः, एतत् सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तमात्रः।

एकेन्द्रिया विशेषाधिकाः अत्र विशेषः बादरैकेन्द्रियमात्रः गृहीतव्यः।

जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि अपर्याप्तों में उत्पत्ति के योग्य अशुभ परिणामों की बहुलता पाई जाती है। यहाँ गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ? उसी को श्री वीरसेनाचार्य कहते हैं—

समाधान—''यह आचार्यपरम्परा से आये हुए अविरुद्ध उपदेश से जाना जाता है।''

बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों से बादर एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक होते हैं।

शंका—यहाँ विशेष का प्रमाण कितना है ?

समाधान—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के बराबर यहाँ विशेष का प्रमाण ग्रहण करना चाहिए। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने के निमित्तभूत परिणामों की प्रचुरता है। यहाँ गुणकार असंख्यात लोक प्रमाण है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि मध्यम परिणामों में बहुत जीवों का होना संभव है।

शंका—संख्यातगुणे किसलिए है ?

समाधान—स्वभाव से ही संख्यातगुणे हैं।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं, ये सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त मात्र होते हैं।

एकेन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं, यहाँ विशेष से बादर एकेन्द्रियों को ग्रहण करना चाहिए।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७, धवला. पृ. ५२९।

एवं तृतीयस्थले इन्द्रियमार्गणायां बादरैकेन्द्रियादिजीवानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां इंद्रियमार्गणानाम-द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

अथ कायमार्गणाधिकारः

अथ षड्भिः स्थलै एकोनसप्ततिसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे कायमार्गणानामतृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रसकायिकादिजीवानामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''कायाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। ततः परं द्वितीयस्थले विशेषेण वनस्पतिकायिकादिजीवानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''सव्वत्थोवा-'' इत्यादिना पंचदशसूत्राणि। तदनु तृतीयस्थले अन्येन भिन्नप्रकारेण जीवानामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''सव्वत्थोवा'' इत्यादिना षोडशसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले पुनरपि अन्यप्रकारेण बादरतेजस्कायिकादिजीवानामल्प-बहुत्वनिरूपणत्वेन ''सव्वत्थोवा'' इत्यादिना एकत्रिंशत्सूत्राणि, इति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं कायमार्गणायामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रसप्तकमवतार्यते —

कायाणुवादेण सव्वत्थोवा तसकाइया।।३८।।

इस प्रकार से तृतीयस्थल में इन्द्रिय मार्गणा में बादर एकेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब चार स्थलों में उनहत्तर (६९) सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में त्रसकायिक आदि जीवों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले ''कायाणुवादेण'' इत्यादि सात सूत्र हैं। उसके बाद द्वितीय स्थल में विशेषरूप से वनस्पतिकायिक आदि जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''सव्वत्थोवा'' इत्यादि पन्द्रह सूत्र हैं। इसके पश्चात् तृतीय स्थल में अन्य प्रकार से जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु ''सव्वत्थोवा'' इत्यादि सोलह सूत्र हैं। तत्पश्चात् चतुर्थ स्थल में पुनरपि अन्य प्रकार से बादर तेजस्कायिक आदि जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''सव्वत्थोवा'' इत्यादि इकतीस सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सर्वप्रथम सामान्यरूप से कायमार्गणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु सात सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणा के अनुसार त्रसकायिक जीव सबसे कम हैं।।३८।।

तेउकाइया असंखेज्जगुणा।।३९।।
पुढविकाइया विसेसाहिया।।४०।।
आउक्काइया विसेसाहिया।।४१।।
वाउक्काइया विसेसाहिया।।४२।।
अकाइया अणंतगुणा।।४३।।
वणप्फदिकाइया अणंतगुणा।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वस्तोकाः त्रसकायिकाः कायमार्गणायां त्रसेषूत्पत्तियोग्यपरिणामेषु जीवानामतीवतनुत्वात्। न च शुभपरिणामेषु बहवो जीवाः संभवन्ति, शुभपरिणामानां प्रायेणासंभवात्। एभ्यः तेजस्कायिकाः असंख्यातगुणाः, जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागमात्रैः त्रसजीवैः अपवर्तिततेजस्कायिकप्रमाणत्वात्। पृथिवीकायिकाः विशेषाधिकाः, अत्र विशेषप्रमाणमसंख्याताः लोकाः, तेजस्कायिकानामसंख्यातभागः। अप्कायिकाः विशेषाधिकाः, वायुकायिकाः विशेषाधिकाः, अकायिका अनन्तगुणाः, अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धजीवैरनन्तगुणः।**

कुतः ? असंख्यातलोकमात्रवायुकायिकभाजिताकायिकप्रमाणत्वात्।

तत्तो वनस्पतिकायिकाः अनन्तगुणाः सन्ति।

त्रसकायिकों से तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।३९।।
तेजस्कायिकों से पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।४०।।
पृथिवीकायिकों से अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं।।४१।।
अप्कायिकों से वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।४२।।
वायुकायिकों से अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।४३।।
अकायिकों से वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कायमार्गणा में सबसे कम त्रसकायिक जीव है, क्योंकि त्रसों में उत्पन्न होने के योग्य परिणामों में जीव अत्यन्त थोड़े पाये जाते हैं और शुभ परिणामों में बहुत जीवों का होना संभव नहीं हैं, क्योंकि शुभ परिणाम प्रायः करके असंभव हैं। इनसे तेजस्कायिक जीव असंख्यात हैं, क्योंकि जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण त्रसकायिक जीवों का तेजस्कायिक जीवराशि में भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रमाण होता है। पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं, यहाँ विशेष प्रमाण असंख्यातलोक प्रमाण है, क्योंकि वे तेजस्कायिक जीवों के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इनसे जलकायिक जीव विशेष अधिक हैं, जलकायिक से वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं और उनसे अकायिक—कायरहित जीव अनन्तगुणे हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्ध जीवों से अनन्तगुणे है।

कैसे ? क्योंकि असंख्यातलोकमात्र वायुकायिक जीवों से भाजित अकायिक जीवों का प्रमाण होता है। उनसे वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।

एवं प्रथमस्थले सामान्येन षट्कायिकानामल्पबहुत्वकथनत्वेन सप्त सूत्राणि गतानि।

अधुना विशेषेणान्यप्रकारेण वा त्रसकायिकादिजीवानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय पंचदशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सव्वत्थोवा तसकाइयपज्जत्ता।।४५।।

तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।४६।।

तेउक्काइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।४७।।

पुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।४८।।

आउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।४९।।

वाउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।५०।।

तेउक्काइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।५१।।

पुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।५२।।

आउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।५३।।

वाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।५४।।

अकाइया अणंतगुणा।।५५।।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में सामान्य से षट्कायिक जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब विशेषरूप से अथवा अन्य प्रकार से त्रसकायिक आदि जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु पन्द्रह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक पर्याप्त जीव सबमें स्तोक हैं।।४५।।

त्रसकायिक पर्याप्तों से त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।४६।।

त्रसकायिक अपर्याप्तों से तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।४७।।

तेजस्कायिक अपर्याप्तों से पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।४८।।

पृथिवीकायिक अपर्याप्तों से अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।४९।।

अप्कायिक अपर्याप्तों से वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।५०।।

वायुकायिक अपर्याप्तों से तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।५१।।

तेजस्कायिक पर्याप्तों से पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।५२।।

पृथिवीकायिक पर्याप्तों से अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।५३।।

अप्कायिक पर्याप्तों से वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।५४।।

वायुकायिक पर्याप्तों से अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।५५।।

वणप्फदिकाइयअपज्जत्ता अणंतगुणा।।५६।।
वणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।५७।।
वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।५८।।
णिगोदा विसेसाहिया।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रतरांगुलस्य असंख्यातभागेनापवर्तितजगत्प्रतरप्रमाणत्वात् त्रसकायिकाः पर्याप्ताः सर्वस्तोकाः सन्ति। त्रसकायिकापर्याप्ताः तत्तोऽसंख्यातगुणाः, अत्र आवलिकायाः असंख्यातभागो गुणकारः।**

कुतः ?

प्रतरांगुलस्य असंख्यातभागेनापवर्तितजगत्प्रतरमात्राः त्रसकायिकाः अपर्याप्ताः, इति ''द्रव्यानियोगद्वारे प्ररूपितत्वात्[१]।''

तेजस्कायिकाः अपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारोऽसंख्याताः लोकाः, पृथिवीजलवायुकायिकाः अपर्याप्ताः क्रमेण विशेषाधिकाः, अत्र विशेषप्रमाणमसंख्याताः लोकाः। एभ्यः क्रमेण तेजस्कायिकपर्याप्ताः संख्यातगुणाः। पृथिवी-जल-वायुकायिकाः पर्याप्ताः विशेषाधिकाः क्रमशः, अत्रापि विशेषप्रमाणं असंख्याता लोकाः। वायुकायिकपर्याप्तेभ्यः अकायिकाः सिद्धाः अनन्तगुणाः सन्ति।

अकायिकेभ्यो वनस्पतिकायिकाः अपर्याप्ताः अनन्तगुणाः सन्ति। एभ्यः पर्याप्ताः वनस्पतिकायिकाः संख्यातगुणाः, एभ्यो वनस्पतिकायिकाः विशेषाधिकाः।

अकायिकों से वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं।।५६।।
वनस्पतिकायिक अपर्याप्तों से वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।५७।।
वनस्पतिकायिक पर्याप्तों से वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।५८।।
वनस्पतिकायिकों से निगोदजीव विशेष अधिक हैं।।५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग से अपवर्तित जगत्प्रतरप्रमाण होने से त्रसकायिक पर्याप्त जीव सबसे कम हैं। त्रसकायिक अपर्याप्त जीव उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

कैसे ? क्योंकि प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग से अपवर्तित जगत्प्रतरप्रमाण त्रसकायिक अपर्याप्त जीव हैं, ऐसा द्रव्यानुयोगद्वार में प्ररूपित किया है।

तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार असंख्यात लोकप्रमाण है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक ये जीव क्रम से विशेष अधिक हैं, यहाँ विशेष का प्रमाण असंख्यातलोक है। इनमें से क्रम से तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं। पृथिवी, जल और वायुकायिक पर्याप्त जीव क्रम-क्रम से विशेष अधिक हैं, यहाँ भी विशेष का प्रमाण असंख्यातलोक है। वायुकायिक पर्याप्त जीवों से अकायिक सिद्ध भगवान अनन्तगुणे हैं।

अकायिक जीवों से वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे पर्याप्त वनस्पतिकायिक जीव संख्यातगुणे हैं, इनसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।

---

१. षट्खण्डागम पु. ७, धवला. पृ. ५३२।

कियन्मात्रो विशेषः ?

वनस्पतिकायिकापर्याप्तमात्रः। एभ्यो निगोदाः विशेषाधिकाः।

कियन्मात्रो विशेषः ?

बादरवनस्पतिप्रत्येकशरीर-बादरनिगोदप्रतिष्ठितमात्रः।

एवं द्वितीयस्थले अन्यप्रकारेणाल्पबहुत्वकथनत्वेन पंचदशसूत्राणि गतानि।

अधुना अन्येनैकेन प्रकारेण त्रसकायिकादिअल्पबहुत्वसूचनाय पंचदशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सव्वत्थोवा तसकाइया।।६०।।

बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा।।६१।।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा असंखेज्जगुणा।।६२।।

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा।।६३।।

बादरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा।।६४।।

बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा।।६५।।

बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा।।६६।।

कितना विशेष हैं ? वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवों के जितना प्रमाण है, उतना प्रमाण इनका है।

इनसे-वनस्पतिकायिक जीवों से निगोदिया जीव विशेष अधिक हैं।

कितने विशेष हैं ? बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर-बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों के प्रमाणमात्र है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अन्य प्रकार से अल्पबहुत्व का कथन करने वाले पन्द्रह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अन्य एक प्रकार से त्रसकायिक आदि जीवों का अल्पबहुत्व सूचित करने हेतु पन्द्रह सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक जीव सबसे स्तोक हैं।।६०।।

त्रसकायिकों से बादर तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।६१।।

बादर तेजस्कायिकों से बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीव असंख्यातगुणे हैं।।६२।।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवों से बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित असंख्यातगुणे हैं।।६३।।

बादर निगोद जीव निगोद प्रतिष्ठितों से बादर पृथिवीकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।६४।।

बादर पृथिवीकायिकों से बादर अप्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।६५।।

बादर अप्कायिकों से बादर वायुकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।६६।।

सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा।।६७।।
सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया।।६८।।
सुहुमआउकाइया विसेसाहिया।।६९।।
सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया।।७०।।
अकाइया अणंतगुणा।।७१।।
बादरवणप्फदिकाइया अणंतगुणा।।७२।।
सुहुमवणप्फदिकाइया असंखेज्जगुणा।।७३।।
वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सर्वस्तोकाः त्रसकायिकाः। एभ्यो बादरतेजस्कायिकाः असंख्यातगुणाः। बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरेभ्य आरभ्य बादरवायुकायिकपर्यन्ताः असंख्यातगुणा असंख्यातगुणाः सन्ति, अत्र सर्वत्र गुणकारः असंख्याता लोकाः सन्ति, गुणकारस्य अर्द्धच्छेदशलाकाः पल्योपमस्यासंख्यातभागोऽस्ति।**

एतत्कुतोऽवगम्यते ?

गुरूपदेशादवगम्यते। केवलं वायुकायिकानामर्द्धच्छेदशलाकाः सपूर्णं सागरोपमं भवति।

सूक्ष्मतेजस्कायिकाः बादरवायुकायिकेभ्योऽसंख्यातगुणाः सन्ति। अग्रे सूक्ष्मपृथिवीजलवायुकायिकाः

बादर वायुकायिकों से सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।६७।।
सूक्ष्म तेजस्कायिकों से सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।६८।।
सूक्ष्म पृथिवीकायिकों से सूक्ष्म अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं।।६९।।
सूक्ष्म अप्कायिकों से सूक्ष्म वायुकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।७०।।
सूक्ष्म वायुकायिकों से अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।७१।।
अकायिक जीवों से बादर वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।७२।।
बादर वनस्पतिकायिकों से सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं।।७३।।
सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों से वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—त्रसकायिक जीव सबसे स्तोक—कम हैं, उनसे असंख्यातगुणे अधिक बादर अग्निकायिक जीव हैं। बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर से आरंभ करके बादरवायुकायिक पर्यन्त सभी जीव असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे हैं, यहाँ सर्वत्र गुणकार असंख्यातलोकप्रमाण है। गुणकार की अर्धच्छेदशलाकाएं पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

शंका—यह बात कैसे जानी जाती है ?

समाधान—यह बात गुरु के उपदेश से जानी जाती है। केवल वायुकायिक जीवों की अर्धच्छेद शलाकाएं सम्पूर्ण सागरोपम होती हैं।

सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव बादर वायुकायिक जीवों से असंख्यातगुणे हैं। आगे सूक्ष्मपृथिवीकायिक-

क्रमशः विशेषाधिकाः, अत्रापि विशेषप्रमाणमसंख्याता लोकाः ज्ञातव्याः।

सूक्ष्मवायुकायिकेभ्योऽकायिकाः अनन्तगुणाः, तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिकाः अनंतगुणाः सन्ति। एभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः असंख्यातगुणाः, अत्रापि गुणकारः असंख्याता लोकाः कथयितव्याः। एभ्यो वनस्पतिकायिका विशेषाधिकाः।

कियन्मात्रो विशेषः ?

बादरवनस्पतिकायिकमात्रः।

अत्र श्रीवीरसेनाचार्यो वदति—''अण्णेसु सुत्तेसु सव्वाइरियसंमदेसु एत्थेव अप्पाबहुगसमत्ती होदि, पुणो उवरिमअप्पाबहुगपयारस्स प्रारंभो।'' एत्थ पुण सुत्ते अप्पाबहुगसमत्ती ण होदि[१]।''

अत एव अस्मिन् षट्खण्डागमस्य द्वितीयखण्डे अल्पबहुत्वानुगमे निगोदजीवस्य कायप्रतिपादनार्थं अन्यमपि एकं सूत्रं कथयिष्यते।

संप्रति निगोदजीवानां विशेषाधिकप्ररूपणार्थं एकं सूत्रमवतरति —

णिगोदजीवा विसेसाहिया।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**वनस्पतिकायिकेभ्यो निगोदजीवाः विशेषाधिकाः सन्ति।**

अत्र कश्चिदाह—निष्फलमेतत्सूत्रं, वनस्पतिकायिकेभ्यः पृथग्भूतनिगोदानामनुपलंभात्। न च वनस्पतिकायिकेभ्यः पृथग्भूता निगोदाः पृथिवीकायिकादिषु सन्तीति आचार्याणामुपदेशोऽस्ति येनैतस्य

जलकायिक-वायुकायिक जीव क्रमशः विशेष अधिक-विशेष अधिक हैं, यहाँभी विशेष का प्रमाण असंख्यातलोक जानना चाहिए।

सूक्ष्मवायुकायिक जीवों से अकायिक अनन्तगुणे हैं, उनसे बादरवनस्पतिकायिक अनंतगुणे हैं। इनसे सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ भी गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण कहना चाहिए। इनसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।

विशेष कितने प्रमाण है ?

बादर वनस्पतिकायिक जीवों के प्रमाणमात्र यह विशेष है।

यहाँ श्रीवीरसेन आचार्य कहते हैं—''अन्य सूत्रों में सभी आचार्यों से सम्मत यहाँ ही अल्पबहुत्व की समाप्ति होती है, पुनः आगे के अल्पबहुत्व का प्रारंभ होता है। परन्तु इस सूत्र में अल्पबहुत्व की समाप्ति यहाँ पर नहीं होती है।''

इसलिए इस षट्खण्डागम ग्रंथ के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम में निगोदिया जीव का काय प्रतिपादित करने हेतु अन्य भी एक सूत्र कहेंगे।

अब निगोदिया जीवों का विशेष अधिक कथन करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

वनस्पतिकायिक जीवों से निगोद जीव विशेष अधिक हैं।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वनस्पतिकायिक जीवों की अपेक्षा निगोदिया जीव विशेष अधिक होते हैं।

यहाँ कोई शंका करता है कि—यह सूत्र निष्फल है, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीवों से पृथग्भूत निगोद जीव नहीं पाये जाते हैं तथा 'वनस्पतिकायिक जीवों से पृथग्भूत पृथिवीकायिकादिकों में निगोद जीव हैं' ऐसा

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका) पु. ७, पृ. ५३९।

वचनस्य सूत्रत्वं प्रसज्यते इति चेत् ?

अत्र परिहार उच्यते—**भवतु नाम युष्माभिरुक्तार्थस्य सत्यत्वं, बहुषु सूत्रेषु वनस्पतीनामुपरि निगोद-पदस्यानुपलंभात् निगोदानामुपरि वनस्पतिकायिकानां पठनस्योपलंभात् बहुकैराचार्यैः संमतं च। किन्तु एतत्सूत्रमेव न भवतीति नावधारणं कर्तुं युक्तं।**

अत्र श्रीवीरसेनाचार्यस्यैव पंक्तयोऽवलोकनीया भवन्ति—

''सो एवं भणदि जो चोद्दसपुव्वधरो केवलणाणी वा। ण वट्टमाणकाले ते अत्थि, ण च तेसिं पासे सोदूणागदा वि संपहि उवलब्भंति। तदो थप्पं काऊण बे वि सुत्ताणि सुत्तासायणभीरूहि आइरिएहि वक्खाणेयव्वाणि त्ति[१]।''

पुनरपि कश्चिदाह—

'निगोदजीवानामुपरि वनस्पतिकायिका विशेषाधिका भवन्ति बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरमात्रेण, पुनः वनस्पतिकायिकानामुपरि निगोदाः केन विशेषाधिका भवन्तीति चेत् ?

आचार्येण उच्यते—**'वनस्पतिकायिका'' इत्युक्ते बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितजीवा न गृहीतव्याः।**

कुतः ?

आधेयात् आधारस्य भेददर्शनात्।

वनस्पतिनामकर्मोदयत्वेन सर्वेषामेकत्वमस्ति इति चेत् ?

आचार्यों का उपदेश भी नहीं है, जिससे इस वचन को सूत्रत्व का प्रसंग प्राप्त हो सके ?

यहाँ उक्त शंका का परिहार करते हुए कहते हैं—तुम्हारे द्वारा कहे गये अर्थ में भले ही सत्यता हो, क्योंकि बहुत से सूत्रों में वनस्पतिकायिक जीवों के आगे 'निगोद' पद नहीं पाया जाता है और निगोद जीवों के आगे वनस्पतिकायिकों का पाठ पाया जाता है और यह कथन बहुत से आचार्यों से सम्मत है। किन्तु ''यह सूत्र ही नहीं है' ऐसा निश्चय करना उचित नहीं है।

यहाँ श्री वीरसेनाचार्य की ही पंक्तियाँ देखने योग्य हैं—''इस प्रकार तो वही कह सकता है जो चौदहपूर्वों का धारक हो अथवा केवलज्ञानी हो। परन्तु वर्तमानकाल में न तो वे दोनों हैं और न उनके पास में सुनकर आये हुए अन्य महापुरुष भी इस समय उपलब्ध होते हैं। अतएव सूत्र की आसादना—छेद या तिरस्कार से भयभीत रहने वाले आचार्यों ने इस विवाद को स्थगित मानकर दोनों ही सूत्रों का व्याख्यान कर दिया है।''

यहाँ पुनः शंका होती है—निगोद जीवों के ऊपर वनस्पतिकायिक जीव बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर मात्र से विशेष अधिक होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक जीवों के आगे निगोद जीव किससे विशेषाधिक होते हैं ?

ऐसा प्रश्न होने पर आचार्य कहते हैं—'वनस्पतिकायिक जीव' ऐसा कहने पर बादर निगोदों से प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

क्यों ?

आधेय से आधार का भेद देखा जाता है।

शंका—वनस्पति नामकर्म के उदयपने की अपेक्षा सबमें ही एकता माननी पड़ेगी ?

---

१. धवला पुस्तक-७, पृ. ५४०।

भवतु तेनैकत्वं, किन्तु तदत्राविवक्षितं, अत्राधारानाधारत्वमेव विवक्षितं। तेन वनस्पतिकायिकेषु बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिता न गृहीताः।

वनस्पतिकायिकानामुपरि ''णिगोदा विसेसाहिया'' इति सूत्रे भणिते बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरैर्बादर-निगोदप्रतिष्ठितैश्च विशेषाधिकाः गृहीतव्याः।

कश्चिदाशंकते पुनः — **बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितानां कथं निगोदव्यपदेशः ?**

आचार्यदेवः समाधत्ते — **नैतद् वक्तव्यं, आधारे आधेयोपचारात् तेषां निगोदत्वसिद्धेः।**

पुनरप्याशंकावतार्यते —

वनस्पतिनामकर्मोदयसहितानां सर्वेषां 'वनस्पतिसंज्ञा' सूत्रे दृश्यते, बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितानामत्र सूत्रे 'वनस्पतिसंज्ञां' किन्न निर्दिष्टा ?

पुनरपि श्रीवीरसेनाचार्यो ब्रूते —

''गोदमो एत्थ पुच्छेयव्वो। अम्हेहि गोदमो बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं वणप्फदिसण्णं णेच्छदि त्ति तस्स अहिप्पाओ कहिओ[१]।''

अस्या शंकाया उत्तरं ''श्रीगौतमगणधरदेव एव पृष्टव्यः' श्रीइन्द्रभूतिगणधरस्वामी बादरनिगोदप्रतिष्ठितानां वनस्पतिसंज्ञां नेच्छति अस्माभिः तस्याभिप्रायः कथितः।

अनेन कथनेन आचार्यश्रीवीरसेनदेवस्य पापभीरुत्वं श्रीभूतबलिसूरिं प्रतिविशेषश्रद्धानं च दृश्यते। वर्तमानसाधूनां साध्वीनां विदुषां चैतदुदाहरणं सदैव गृहीतव्यमिति।

समाधान — उस अपेक्षा से भले ही एकता रहे, परन्तु वह यहाँ विवक्षित नहीं है। यहाँ आधार और अनाधार की ही विवक्षा है। इस कारण जो वनस्पति जीव हैं उनमें बादर निगोद प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित जीवों का ग्रहण नहीं किया गया है।

अतः वनस्पतिकायिक जीवों के ऊपर 'निगोद जीव विशेष अधिक हैं' ऐसा सूत्र कहने पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवों से तथा बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवों से विशेष अधिक हैं, ऐसा समझना चाहिए।

पुनः कोई शंका करता है कि — बादर निगोद प्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित जीवों को निगोद संज्ञा कैसे घटित होती है ?

आचार्य देव समाधान देते हैं कि — ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि आधार में आधेय का उपचार करने से उनके निगोदपना सिद्ध होता है।

पुनरपि अगली शंका अवतरित होती है कि — वनस्पति नामकर्म के उदय से संयुक्त सभी जीवों के 'वनस्पति' संज्ञा सूत्र में देखी जाती है। बादर निगोद प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित जीवों को यहाँ सूत्र में वनस्पति संज्ञा क्यों नहीं निर्दिष्ट की है ?

तब पुनः आचार्य श्री वीरसेन स्वामी कहते हैं कि — इस शंका का उत्तर गौतम गणधर से पूछना चाहिए। हमनें तो गौतम गणधर देव जो कि बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों को 'वनस्पति' यह संज्ञा इष्ट नहीं मानते, इस तरह उनका अभिप्राय कह दिया है।

अर्थात् इस शंका का उत्तर श्री गौतम गणधर से ही पूछना चाहिए, क्योंकि श्री इन्द्रभूति गणधर स्वामी बादर निगोद प्रतिष्ठित की 'वनस्पति' संज्ञा नहीं स्वीकार करते हैं, ऐसा हमने कह दिया है।

इस कथन से आचार्यश्री वीरसेनदेव की पापभीरुता एवं श्री भूतबली आचार्य के प्रति विशेष श्रद्धान दिखाई देती है। वर्तमान साधु-साध्वियों एवं विद्वानों को यह उदाहरण सदैव ग्रहण करना चाहिए।

---

१. धवला पुस्तक-७, धवला. पृ. ५४१।

एवं तृतीयस्थले भिन्नप्रकारेणाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन षोडश सूत्राणि गतानि।
पुनरप्यन्येन प्रकारेणाल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं एकत्रिंशत्सूत्राण्यवतार्यन्ते —

सव्वत्थोवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता।।७६।।
तसकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।७७।।
तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।७८।।
बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।७९।।
बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८०।।
बादरपुढविकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८१।।
बादरआउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८२।।
बादरवाउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८३।।
बादरतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८४।।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में भिन्न प्रकार से अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले सोलह सूत्र पूर्ण हुए।
पुनः भी अन्य प्रकार से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु इकतीस सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव सबमें स्तोक हैं।।७६।।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्तकों से त्रसकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।७७।।

त्रसकायिक पर्याप्तों से त्रसकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।७८।।

त्रसकायिक अपर्याप्तों से बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।७९।।

वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्तों से बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त असंख्यातगुणे है।।८०।।

बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्तों से बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८१।।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तों से बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८२।।

बादर अप्कायिक पर्याप्तों से बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८३।।

बादर वायुकायिक पर्याप्तों से बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८४।।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८५।।
बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८६।।
बादरपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८७।।
बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८८।।
बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।८९।।
सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।९०।।
सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।९१।।
सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।९२।।
सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।९३।।
सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।९४।।

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तों से बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८५।।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्तों से निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोदजीव अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं।।८६।।

निगोदप्रतिष्ठित बादर निगोद जीव अपर्याप्तों से बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८७।।

बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तों से बादर अप्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।८८।।

बादर अप्कायिक अपर्याप्तों से बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणेहैं।।८९।।

बादर वायुकायिक अपर्याप्तों से सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।९०।।

सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तों से सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।९१।।

सूक्ष्मपृथिवीकायिक अपर्याप्तों से सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।९२।।

सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तों से सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।९३।।

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तों से सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।९४।।

सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।९५।।
सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।९६।।
सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।९७।।
अकाइया अणंतगुणा।।९८।।
बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा।।९९।।
बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।१००।।
बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।१०१।।
सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।१०२।।
सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।१०३।।
सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।१०४।।

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तों से सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।९५।।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तों से सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।९६।।

सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तों से सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।९७।।

सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तों से अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।९८।।

अकायिक जीवों से बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं।।९९।।

बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तों से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।१००।।

बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तों से बादर वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक है।।१०१।।

बादर वनस्पतिकायिकों से सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।१०२।।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तों से सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।१०३।।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तों से सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।१०४।।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।१०५।।

णिगोदजीवा विसेसाहिया।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**बादरतेजस्कायिकपर्याप्ताः सर्वस्तोकाः, असंख्यातप्रतरावलिप्रमाणत्वात्। त्रसकायिकपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः। त्रसकायिकापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागः। बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः। बादरनिगोदजीवाः निगोदप्रतिष्ठिताः पर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः।**

कश्चिदाह—**अस्मिन् अशीतितमे सूत्रे बादरनिगोदजीवनिर्देशः किमर्थं कृतः, बादरनिगोदप्रतिष्ठिता इति वक्तव्यं ?**

तस्य समाधानं क्रियते—**नैतत्, बादरनिगोदप्रतिष्ठितानां निगोदजीवाधाराणां स्वयं प्रत्येकशरीराणा-मुपचारबलेन 'निगोदसंज्ञा' अत्र भवतु इति ज्ञापनार्थं कृतः**[१]।

तेभ्यो बादरपृथिवीकायिकपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः। बादराप्यकायिकपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः। बादरवायुकायिकपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः प्रतरांगुलस्यासंख्यातभागमात्राः असंख्याताः जगच्छ्रेण्यः सन्ति।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों से वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।१०५।।

वनस्पतिकायिकों से निगोद जीव विशेष अधिक हैं।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—बादर तेजसकायिक पर्याप्त जीव सबसे कम हैं, क्योंकि वे असंख्यात प्रतरावली प्रमाण हैं। त्रसकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार जगत् प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है। त्रसकायिक अपर्याप्त जीव इनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। उनसे बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्तक जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है। बादर निगोद जीव, निगोद प्रतिष्ठित पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

यहाँ कोई शंका करता है कि—इसमें अस्सीवें (८०वें) सूत्र में बादर निगोद जीव पद का निर्देश किसलिए किया है, बादर निगोद प्रतिष्ठित इतना ही पद कहना चाहिए ?

इस शंका का समाधान किया जाता है—ऐसा नहीं है, क्योंकि जो स्वयं तो प्रत्येक शरीर हैं किन्तु निगोद जीवों के आधारभूत प्रत्येक शरीर ऐसे बादर जीवों से प्रतिष्ठित हैं, उन जीवों को यहाँ उपचार के बल से "निगोदजीव" यह संज्ञा हो इस बात को बतलाने हेतु बादरनिगोद जीव पद का निर्देश किया है।

उनसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। बादर जलकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार प्रतरांगुल का असंख्यातवाँ भागमात्र असंख्यात जगच्छ्रेणी है। बादर अग्निकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार

---

१. षट्खण्डागम पु. ७, धवला टीका, पृ. ५४३।

बादरतेजस्कायिकापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, गुणकारः असंख्याता लोकाः, गुणकारार्द्धच्छेदशलाकाः सागरोपमं पल्योपमस्यासंख्यातभागेनोनं। तेभ्यः बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः असंख्याता लोकाः, गुणकारार्द्धच्छेदशलाकाः पल्योपमस्यासंख्यातभागः।

बादरनिगोदजीवा निगोदप्रतिष्ठिताः अपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारोऽसंख्याता लोकाः। एवं बादरपृथिवी-जल-अग्निकायिकापर्याप्ताः, सूक्ष्मतेजस्कायिका अपर्याप्ताश्च सर्वे क्रमशः असंख्यातासंख्यातगुणाः, अत्र सर्वत्र गुणकारः असंख्याताः लोकाः।

सूक्ष्मपृथिवीजलवायुकायिकाः अपर्याप्ताः विशेषाधिका विशेषाधिकाः, अत्र अपि विशेषप्रमाणमसंख्याता लोकाः ज्ञातव्याः।

सूक्ष्मतेजस्कायिकपर्याप्ताः संख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः तत्प्रायोग्यसंख्यातसमयाः। सूक्ष्मपृथिवी-जल-वायुकायिकाः पर्याप्ताः तत्तो विशेषाधिकाः क्रमेण, अत्रापि विशेषप्रमाणमसंख्यातलोकाः ज्ञातव्याः।

सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तेभ्योऽकायिकाः सिद्धाः अनन्तगुणाः सन्ति। अत्र गुणकारः, अभव्यसिद्धि-कैरनन्तगुणोऽस्ति, सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तैरपवर्तिताकायिकप्रमाणत्वात्।

तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिकपर्याप्ता अनन्तगुणाः, अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धिकेभ्यः सिद्धपरमेष्ठिभ्यः सर्वजीवानां प्रथमवर्गमूलादपि अनन्तगुणोऽस्ति।

एभ्यो बादरवनस्पतिकायिकापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः असंख्याता लोकाः। बादरवनस्पति-कायिका विशेषाधिकाः। अत्र विशेषः बादरवनस्पतिकायिकपर्याप्तमात्रोऽस्ति। सूक्ष्मवनस्पतिकायिकापर्याप्ताः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः असंख्याता लोकाः। सूक्ष्मवनस्पतिकायिक-

---

असंख्यातलोक प्रमाण है। गुणकार की अर्धच्छेद शलाकाएं पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन सागरोपमप्रमाण हैं। उनसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीव असंख्यात गुणे हैं। यहाँ गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण है। गुणकार की अर्धच्छेद शलाकाएँ पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

बादर निगोद जीव निगोदप्रतिष्ठित अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार असंख्यातलोक हैं। इस प्रकार बादर पृथिवीकायिक-जलकायिक-अग्निकायिक और सूक्ष्मतेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे हैं, यहाँ सर्वत्र गुणकार असंख्यात लोक प्रमाण हैं।

सूक्ष्म पृथिवीकायिक-जलकायिक और वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक-विशेष अधिक हैं, यहाँ भी विशेष का प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण जानना चाहिए।

सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार तत्प्रायोग्यसंख्यातसमय है। सूक्ष्मपृथिवीकायिक-जलकायिक-वायुकायिक पर्याप्त जीव उनसे क्रमशः विशेष-विशेष अधिक हैं। यहाँ भी विशेष का प्रमाण असंख्यातलोक जानना चाहिए।

सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त जीवों से अकायिक सिद्ध भगवान अनन्तगुणे हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा है, क्योंकि वह सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीवों से अपवर्तित अकायिक जीवों के प्रमाणमात्र है।

उनसे बादरवनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं, यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से, सिद्ध परमेष्ठी से तथा सर्व जीवों के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा है।

इनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार असंख्यातलोक है। बादरवनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं। यहाँ विशेष का प्रमाण बादरवनस्पतिकायिक पर्याप्त के प्रमाण

पर्याप्तास्तेभ्यः संख्यातगुणाः, गुणकारः संख्याताः समयाः। सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः विशेषाधिकाः, अत्र विशेषः सूक्ष्मवनस्पतिकायिका-पर्याप्तमात्रोऽस्ति। एभ्यो वनस्पतिकायिकाः विशेषाधिकाः, अत्र विशेषः बादरवनस्पतिकायिकमात्रः। बादरवनस्पतिकायिकेषु बादरनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिताः न सन्ति, तेषां वनस्पतिकायिकव्यपदेशाभावात्।

एभ्यो निगोदजीवा विशेषाधिकाः सन्ति।

अत्र कियन्मात्रो विशेषः ?

बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरैः बादरनिगोदप्रतिष्ठितैश्च विशेषोऽधिकोऽस्ति।

तात्पर्यमेतत्—**इमे निगोदजीवाः वनस्पतिकायिकसंज्ञकाः न सन्ति श्रीमद्गौतमगणधरदेवाभिप्रायेण इति सूचितं भवति प्रागेव पंचसप्ततितमे सूत्रे। अत एव नेदानीं पुनः कथ्यते। एतानि सूत्राणि ज्ञात्वा नित्यनिगोदपर्यायेभ्यो निर्गत्य ये त्रसराशिषु आगताः जीवा अहमपि तेभ्य एक एव जीवोऽस्मि पुनः इतरनिगोदेषु बादरसूक्ष्मस्थावरेषु न गन्तुमिच्छामि। अधुना रत्नत्रयं देशव्रतरूपेण लब्ध्वा भेदाभेदरत्नत्रयं पूर्णीकर्तुं प्रयत्नं विदधेऽहम् मम पुरुषार्थः सफलीभवेदिति याचे जिनेन्द्रपादारविंदेषु नित्यम्।**

एवं चतुर्थस्थले चतुर्थप्रकारेणाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन एकत्रिंशत्सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुदक्रबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे अल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम-तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

मात्र है। सूक्ष्मवनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार असंख्यात लोक है। उनसे सूक्ष्मवनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार संख्यात समयप्रमाण है। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव उनसे विशेष अधिक हैं, यहाँ विशेष का प्रमाण सूक्ष्मवनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवों के बराबर है। इनसे वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं, यहाँ विशेष का प्रमाण बादरवनस्पतिकायिकमात्र है। बादर वनस्पतिकायिक जीवों में बादर निगोद सप्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित नहीं हैं, क्योंकि उनके वनस्पतिकायिक संज्ञा का अभाव देखा जाता है।

इनसे निगोदिया जीव विशेष अधिक हैं।

यहाँ विशेष का प्रमाण कितना है ?

बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों से विशेष का प्रमाण अधिक है।

तात्पर्य यह है कि—"ये निगोदिया जीव वनस्पतिकायिक संज्ञा वाले नहीं हैं" ऐसा श्रीमान् गौतम गणधर देव के अभिप्रायानुसार पहले ही पचहत्तरवें सूत्र में सूचित किया गया है, इसलिए यहाँ पुनः उसका कथन नहीं कर रहे हैं। इन सभी सूत्रों को जानकर नित्यनिगोद की पर्याय से निकलकर त्रसराशि में आने वाले जो जीव हैं, उनमें से एक जीव मैं भी हूँ और अब मैं पुनः इतर निगोदों में तथा बादर-सूक्ष्म स्थावर जीवों में नहीं जाना चाहता हूँ। अब रत्नत्रय को देशरूप से प्राप्त करके भेदाभेदरत्नत्रय को पूर्ण करने का मैं प्रयत्न करता हूँ, मेरा पुरुषार्थ सफल होवे, यही भगवान जिनेन्द्र के पादारविन्दों में नित्य ही मैं याचना करता हूँ।

इस प्रकार से चतुर्थ स्थल में चतुर्थ प्रकार से अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले इक्कीस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रयोविंशतिसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे चतुर्थोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्येन योगमार्गणायामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''जोगा-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले द्वितीयप्रकारेण विशेषेणवाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''सव्वत्थोवा'' इत्यादिना एकोनविंशतिसूत्राणीति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं योगमार्गणायामल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

जोगाणुवादेण सव्वत्थोवा मणजोगी।।१०७।।

वचिजोगी संखेज्जगुणा।।१०८।।

अजोगी अणंतगुणा।।१०९।।

कायजोगी अणंतगुणा।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **मनोयोगिनः सर्वस्तोकाः देवानां संख्यातभागप्रमाणत्वात्। तेभ्यो वचनयोगिनः संख्यातगुणाः। एभ्योऽनन्तगुणाः अयोगिनः, अत्र गुणकारः अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणो भवति। एभ्यश्चानन्तगुणाः काययोगिनः, अत्र गुणकारः सिद्धेभ्योऽभव्यसिद्धिकेभ्यः सर्वजीवप्रथमवर्गमूलादपि अनंतगुणोऽस्ति।**

एवं प्रथमस्थले सामान्यतयाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना विशेषेणाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय एकोनविंशतिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

अथ योगमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में तेईस सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से योगमार्गणा में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले ''जोगा'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में द्वितीय प्रकार से विशेषरूप से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''सव्वत्थोवा'' इत्यादि उन्नीस सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका है।

अब योगमार्गणा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणा के अनुसार मनोयोगी जीव सबसे स्तोक हैं।।१०७।।

मनोयोगियों से वचनयोगी जीव संख्यातगुणे हैं।।१०८।।

वचनयोगियों से अयोगी जीव अनन्तगुणे हैं।।१०९।।

अयोगियों से काययोगी अनन्तगुणे हैं।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — योगमार्गणा के अन्तर्गत मनोयोगी जीव सबसे कम हैं, क्योंकि वे देवों के संख्यातवें भाग हैं। वचनयोगी जीव मनोयोगियों से संख्यात गुणे हैं, उनसे अनन्तगुणे अयोगी भगवान हैं, यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणा होता है। इनसे अनन्तगुणे काययोगी जीव हैं, यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिकों, सिद्धों और सभी जीवों के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्यरूप से अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब विशेषरूप से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु उन्नीस सूत्र अवतरित होते हैं —

अत्र सिद्धान्तचिंतामणिटीकाभिः सह सूत्राणि कथ्यन्ते—

सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी।।१११।।

आहारकायजोगी संखेज्जगुणा।।११२।।

को गुणकारः ?

द्वे रूपे इति।

वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा।।११३।।

गुणकारः जगत्प्रतरस्य असंख्यातभागः।

सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा।।११४।।

स्वभावात्।

मोसमणजोगी संखेज्जगुणा।।११५।।

सत्यमनोयोगकालात् मृषामनोयोगकालस्य संख्यातगुणत्वात् सत्यमनोयोगपरिणमनवारेभ्यः मृषामनोयोगपरिणमनवाराणां संख्यातगुणत्वाद् वा।

सच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा।।११६।।

असच्च-मोसमणजोगी संखेज्जगुणा।।११७।।

यहाँ सिद्धान्तचिंतामणिटीका के साथ सूत्रों का कथन करते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारकमिश्रकाययोगी सबसे कम हैं।।१११।।

आहारकमिश्र काययोगियों से आहारकाययोगी संख्यातगुणे हैं।।११२।।

यहाँ गुणकार कितना है ? गुणकार दो रूप है।

सूत्रार्थ—

आहारकाययोगियों से वैक्रियिक मिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे है।।११३।।

यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है।

सूत्रार्थ—

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों से सत्यमनोयोगी संख्यातगुणे हैं।।११४।।

ऐसा स्वभाव से है।

सूत्रार्थ—

सत्य मनोयोगियों से मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं।।११५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि सत्यमनोयोग के काल की अपेक्षा मृषामनोयोग का काल संख्यातगुणा है, अथवा सत्यमनोयोग के परिणमनवारों की अपेक्षा मृषामनोयोग के परिणमनवार संख्यातगुणे हैं।

सूत्रार्थ—

मृषामनोयोगियों से सत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं।।११६।।

सत्य-मृषामनोयोगियों से असत्य-मृषामनोयोगी संख्यातगुणे हैं।।११७।।

मणजोगी विसेसाहिया।।११८।।

अत्र कियन्मात्रविशेषः ?

सत्य-मृषा-सत्यमृषामनोयोगिमात्रो विशेषोऽत्र ज्ञातव्यः।

सच्चवचिजोगी संखेज्जगुणा।।११९।।

मनोयोगिकालात् वचनयोगिकालस्य संख्यातगुणत्वात् मनोयोगवारेभ्यः सत्यवचनयोगवाराणां संख्यातगुणत्वाद्वा।

मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा।।१२०।।

सच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा।।१२१।।

वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा।।१२२।।

सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति।

असच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा।।१२३।।

द्वीन्द्रियपर्याप्तजीवानां ग्रहणात्, अनुभयवचनयोगिनः संख्यातगुणाः सन्ति।

वचिजोगी विसेसाहिया।।१२४।।

असत्य-मृषामनोयोगियों से मनोयोगी विशेष अधिक हैं।।११८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष कितना है ? सत्य, मृषा और सत्य-मृषा मनोयोगियों के बराबर विशेष का प्रमाण यहाँ जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

मनोयोगियों से सत्यवचनयोगी संख्यातगुणे हैं।।११९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि मनोयोगी जीवों के काल से वचनयोगी जीवों का काल संख्यातगुणा है, अथवा मनोयोगवारों से सत्यवचनयोगवार संख्यातगुणे अधिक हैं।

सूत्रार्थ—

सत्यवचनयोगियों से मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं।।१२०।।

मृषावचनयोगियों से सत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं।।१२१।।

सत्य-मृषावचनयोगियों से वैक्रियिककाययोगी संख्यातगुणे हैं।।१२२।।

सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है।

सूत्रार्थ—

वैक्रियिककाययोगियों से असत्य-मृषावचनयोगी संख्यातगुणे हैं।।१२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दो इन्द्रिय पर्याप्त जीवों का ग्रहण होने से यहाँ अनुभय वचनयोगी जीवों की संख्या संख्यातगुणी मानी है।

सूत्रार्थ—

असत्य-मृषावचनयोगियों से वचनयोगी विशेष अधिक हैं।।१२४।।

कियन्मात्रेण ?

सत्य-मृषा-उभयवचनयोगिमात्रेण विशेषेणाधिकाः सन्ति।

अजोगी अणंतगुणा।।१२५।।

अत्र गुणकारः, अभव्यजीवैरनन्तगुणोऽस्ति।

कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा।।१२६।।

ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा।।१२७।

अत्र गुणकारः अन्तर्मुहूर्तं।

ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा।।१२८।।

कायजोगी विसेसाहिया।।१२९।।

कियन्मात्रविशेषः ?

शेषकाययोगिमात्रो विशेषो ज्ञातव्यः।

एवं द्वितीयस्थलेऽल्पबहुत्वकथनत्वेन एकोनविंशतिसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम-चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कितने मात्र विशेष अधिक हैं ? ऐसा पूछने पर उत्तर दिया है कि सत्य-मृषा और उभयवचनयोगी मात्र से विशेषअधिक हैं।

सूत्रार्थ—

वचनयोगियों में अयोगी अनन्तगुणे हैं।।१२५।।

यहाँ गुणकार अभव्यजीवों से अनन्तगुणा है।

सूत्रार्थ—

अयोगियों से कार्मणकाययोगी अनन्तगुणे हैं।।१२६।।

कार्मणकाययोगी से औदारिकमिश्रकाययोगी असंख्यातगुणे हैं।।१२७।।

यहाँ गुणकार अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययागियों से औदारिककाययोगी संख्यातगुणे हैं।।१२८।।

औदारिककाययोगियों से काययोगी विशेष अधिक हैं।।१२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कितने मात्र विशेष अधिक हैं ?

शेष काययोगी मात्र विशेष अधिक हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले उन्नीस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ वेदमार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण पंचदशसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे वेदमार्गणानामपंचमोऽधिकारः प्रारभ्यते। ततः प्रथमस्थले सामान्येन त्रिविधवेदानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले संज्ञित्रिविधवेदिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''पंचिंदिय-'' इत्यादिना षट्सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले असंज्ञिजीवानां त्रिविधवेदानामल्पबहुत्वेन ''असण्णि-'' इत्यादिसूत्रपंचकमिति समुदायपातनिका।

इदानीं वेदमार्गणायां सामान्येनाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यन्ते —

सूत्रैः सह सिद्धान्तचिंतामणिटीकास्ति —

वेदाणुवादेण सव्वत्थोवा पुरिसवेदा।।१३०।।

इमे संख्यातप्रतरांगुलापवर्तितजगत्प्रतरप्रमाणत्वात्।

इत्थिवेदा संखेज्जगुणा।।१३१।।

को गुणकारः ?

संख्याताः समयाः।

अवगदवेदा अणंतगुणा।।१३२।।

अत्र गुणकारः, अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणोऽस्ति।

णवुंसयवेदा अणंतगुणा।।१३३।।

अथ वेदमार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में पन्द्रह सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से तीनों वेदों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु ''वेदाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में संज्ञी जीवों के तीनों वेदों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''पंचिंदिय'' इत्यादि छह सूत्र हैं। उसके पश्चात् तृतीय स्थल में असंज्ञी जीवों के तीनों वेदों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले ''असण्णि'' इत्यादि पाँच सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब वेदमार्गणा में सामान्यरूप से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

यहाँ सूत्रों के साथ-साथ सिद्धान्तचिंतामणिटीका ली गई है।

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणा के अनुसार पुरुषवेदी सबसे स्तोक हैं।।१३०।।

ये संख्यात प्रतरांगुलों से अपवर्तित जगत्प्रतरप्रमाण हैं।

पुरुषवेदियों से स्त्रीवेदी संख्यातगुणे हैं।।१३१।।

यहाँ गुणकार क्या है ? यहाँ संख्यातसमयप्रमाण गुणकार है।

स्त्रीवेदियों से अपगतवेदी अनन्तगुणे हैं।।१३२।।

यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा है।

अपगतवेदियों से नपुंसकवेदी अनन्तगुणे हैं।।१३३।।

अत्र गुणकारः, अभव्यसिद्धिकजीवेभ्यः सिद्धेभ्यः सर्वजीवानां प्रथमवर्गमूलादनन्तगुणः।

एवं प्रथमस्थले सामान्येन त्रिविधवेदसहितानामपगतवेदानां अल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति वेदमार्गणायामन्येन प्रकारेणाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पयदं। सव्वत्थोवा सण्णिणवुंसयवेदगब्भोवक्कंतिया।।१३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रप्रतरांगुलैः जगत्प्रतरे भागे कृते संज्ञिनपुंसकवेदिनो गर्भजन्मानः येन भवन्ति तेन स्तोकाः सन्ति।**

सण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।।१३५।।

टीका—**कुतः ? संज्ञिषु गर्भजेषु नपुंसकवेदानां प्रायेण संभवाभावात्।**

सण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।।१३६।।

टीका—**संज्ञिगर्भजेषु पुरुषवेदिभ्यो बहूनां स्त्रीवेदिनामुपलंभात्।**

टीका—यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से, सिद्धों से और सर्व जीवों से प्रथम वर्गमूल से अनन्तगुणा है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में सामान्य से तीनों वेदों से सहित जीवों का एवं अपगतवेदियों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदमार्गणा में अन्य प्रकार से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु छह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनि के जीवों का अधिकार है। संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव सबसे स्तोक हैं।।१३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चूँकि पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण प्रतरांगुलों का जगत्प्रतर में भाग देने पर संज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिक—गर्भ जन्म वाले जीवों का प्रमाण होता है, अतएव वे सबसे स्तोक—कम हैं।

सूत्रार्थ—

संज्ञी नपुंसक गर्भोपक्रान्तिकों से संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं।।१३५।।

टीका—ऐसा क्यों है ? क्योंकि संज्ञी गर्भज जीवों में नपुंसकवेदियों की प्रायः संभावना नहीं पाई जाती है।

सूत्रार्थ—

संज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकों से संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं।।१३६।।

टीका—संज्ञी गर्भज जीवों में पुरुषवेदी जीवों की अपेक्षा स्त्रीवेदी जीव अधिक पाये जाते हैं, इसलिए पुरुषवेदी गर्भजों से स्त्रीवेदी गर्भज संख्यातगुणे माने हैं।

सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।१३७।।

टीका—**किंच—संज्ञिगर्भजेभ्यो जीवेभ्यः संज्ञिसम्मूर्च्छिमानां संख्यातगुणत्वात्। सम्मूर्च्छिमेषु स्त्री-पुरुषवेदाः न सन्ति। ''नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि[१]।'' एतत्सूत्रमपि विद्यते।**

अस्मिन् ग्रन्थे एतत्कुतोऽवगम्यते ?

स्त्रीपुरुषवेदानां सम्मूर्च्छिमाधिकारेऽल्पबहुत्वप्ररूपणाभावात्[२]।

सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।१३८।।

टीका—**अत्र गुणकारः, आवलिकाया असंख्यातभागः।**

एतत्कुतो ज्ञायते ?

परमगुरूपदेशात् एव ज्ञायते।

सण्णिइत्थि-पुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया असंखेज्जवासाउआ दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा।।१३९।।

सूत्रार्थ—

संज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकों से संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।१३७।।

टीका—क्योंकि संज्ञी गर्भज जीवों से संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवों की संख्या संख्यातगुणी अधिक है। सम्मूर्च्छिम-सम्मूर्च्छन जीवों में स्त्रीवेद और पुरुषवेद नहीं होते हैं। तत्त्वार्थसूत्र के सूत्र ''नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि'' से स्पष्ट ज्ञात है कि नारकी और सम्मूर्च्छन जीव नपुंसक होते हैं। अर्थात् उनमें स्त्री और पुरुषवेद नहीं पाया जाता है।

प्रश्न—इस ग्रंथ में यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

उत्तर—स्त्री और पुरुषवेदी जीवों के सम्मूर्च्छिम अधिकार में अल्पबहुत्व के प्ररूपण का अभाव पाया जाता है, यही इस कथन का प्रमाण समझना चाहिए।

सूत्रार्थ—

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तों से संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।१३८।।

टीका—यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

प्रश्न—यह कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—यह परमगुरु के उपदेश से जाना जाता है।

सूत्रार्थ—

संज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तों से संज्ञी स्त्रीवेदी व पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक असंख्यातवर्षायुष्क दोनों ही तुल्य होकर असंख्यातगुणे हैं।।१३९।।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अ. २, सूत्र ५०। २. षट्खण्डागम पु. ७, धवला टीका पृ. ५५६।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंख्यातवर्षायुष्केषु भोगभूमिषु स्त्रीपुरुषयुगलानामेव समुत्पत्तेः द्वयोः संख्याः समानाः सन्ति। नपुंसकाः सम्मूर्च्छिमाश्चासंज्ञिनश्च जीवाः स्वप्नेऽपि न तत्र भोगभूमिषु संभवन्ति, अत्यन्ताभावेनापसारितत्वात्। अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः।**

एतत्केन प्रमाणेन ज्ञायते ?

आचार्यपरंपरागतोपदेशात्[१]। एतेभ्योऽतिक्रान्तराशीनां सर्वेषां पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रप्रतरांगुलानि जगत्प्रतरभागहारो भवति। अत्र पुनः संख्यातानि प्रतरांगुलानि भागहारो ज्ञातव्यः।

एवं द्वितीयस्थले संज्ञिनां त्रिवेदिनामल्पबहुत्वप्ररूपणत्वेन सूत्रषट्कं गतम्।

संप्रति असंज्ञित्रिवेदिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रपंचकमवतार्यते—

असण्णिणवुंसयवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।।१४०।।

असण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।।१४१।।

असण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।।१४२।।

असण्णी णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यातवर्ष की आयु वाले भोगभूमियों में स्त्रीपुरुष युगलों की ही उत्पत्ति होती है अतः वहाँ स्त्री-पुरुष दोनों की संख्या समान पाई जाती है। नपुंसकवेदी, सम्मूर्च्छिम व असंज्ञी जीव स्वप्न में भी वहाँ भोगभूमि में संभव नहीं है, क्योंकि उनका अत्यन्ताभाव होने से उनका निराकरण कर दिया है। यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—यह आचार्य परम्परा से आये हुए उपदेश से जाना जाता है। इससे अतिक्रान्त सब राशियों का जगत्प्रतरभागहार पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलप्रमाण होता है। किन्तु यहाँ संख्यात प्रतरांगुल भागहार जानना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में संज्ञी जीवों के तीनों वेदों का अल्पबहुत्व प्ररूपण करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों में तीनों वेदों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु पाँच सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

उपर्युक्त जीवों से असंज्ञी नपुंसकेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं।।१४०।।

असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भोपक्रान्तिकों से असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं।।१४१।।

असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भोपक्रान्तिकों से असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिक जीव संख्यातगुणे हैं।।१४२।।

असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भोपक्रान्तिकों से असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।१४३।।

---

१. धवला पु.-७, धवलाटीका-पृष्ठ-५५७।

असण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।१४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंख्यातवर्षायुष्कभोगभूमिजेभ्योऽसंज्ञिनो नपुंसकवेदिनो गर्भजन्मानो जीवाः संख्यातगुणाः, नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमस्य पंचेन्द्रियेषु बहूनामसंभवात्। एभ्यः असंज्ञिपुरुषवेदाः गर्भजाः संख्यातगुणाः। एभ्योऽसंज्ञिस्त्रीवेदाः गर्भजाः संख्यातगुणाः। असंख्यातवर्षायुष्कस्त्री-पुरुषवेद-राशिप्रभृति यावत् असंज्ञिस्त्रीवेदगर्भजराशिरिति तावद् जगत्प्रतरभागहारः संख्यातानि प्रतरांगुलानि सन्ति।**

एभ्योऽसंज्ञिनो नपुंसकवेदाः सम्मूर्च्छिनः पर्याप्ताः संख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः संख्याताः समयाः। अत्र जगत्प्रतरस्य भागहारः प्रतरांगुलस्य संख्यातभागः। एभ्यः पर्याप्तेभ्योऽसंज्ञिनपुंसकवेदाः सम्मूर्च्छिमाः अपर्याप्ताः असंख्यातगुणाः सन्ति, एकेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकेभ्य आरभ्य पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्तकपर्यन्ताः इति। अत्र गुणकारः आवलिकायाः असंख्यातभागो ज्ञातव्यः।

तात्पर्यमेतत्—**द्रव्यवेदापेक्षया पुरुषवेदेनैव मोक्षं प्राप्नोतीति ज्ञात्वा पुरुषवेदयोग्यपरिणामाः कर्तव्याः, ततश्च सम्यक्त्वबलेन स्त्रीवेदं छित्वा देवपदं संप्राप्य पुरुषपर्याये आगत्य भेदाभेदरत्नत्रयममाराधनीयमिति भावना भावनीया निरन्तरमिति।**

एवं तृतीयस्थले असंज्ञित्रिवेदानामल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रपंचकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।

असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तों से असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।१४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असंख्यात वर्ष की आयु वाले भोगभूमियाँ जीवों की अपेक्षा असंज्ञी नपुंसकवेदी गर्भजन्म को प्राप्त जीव संख्यातगुणे हैं, क्योंकि नोइन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम पञ्चेन्द्रिय जीवों में बहुत जीवों के नहीं पाया जाता है। इनकी अपेक्षा असंज्ञी पुरुषवेदी गर्भज जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भज जीव संख्यातगुणे हैं। असंख्यातवर्ष की आयु वाले स्त्री-पुरुषवेद राशि से लेकर असंज्ञी स्त्रीवेदी गर्भज की राशि तक जगत्प्रतर का संख्यात प्रतरांगुल हैं।

इनसे असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार संख्यात समय हैं। यहाँ जगत्प्रतर का भागहार प्रतरांगुल का संख्यातवाँ भाग है। इन पर्याप्तक जीवों की अपेक्षा असंज्ञी नपुंसकवेदी सम्मूर्च्छन अपर्याप्तक जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकजीवों से लेकर पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक पर्यन्त जीव इसमें आ जाते हैं, ऐसा समझना। यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—द्रव्य वेद की अपेक्षा पुरुषवेद के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा जानकर अपने परिणाम पुरुषवेद के योग्य बनाना चाहिए। पुनः सम्यक्त्व के बल से स्त्रीवेद को छेदकर देवपद को प्राप्त करके वहाँ से मनुष्यगति में पुरुषपर्याय में जन्म लेकर भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना करने हेतुनिरन्तर भावना भानी चाहिए।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में असंज्ञी जीवों के तीनों वेदों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले पाँच सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का पंचम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कषायमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन पंचभिः सूत्रैः कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अकषायिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''कसाया-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले क्रोधादिचतुर्विध-कषायसहितानामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''माण-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति पातनिका भवति।

इदानीमकषायिजीवानामल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

कसायाणुवादेण सव्वत्थोवा अकसाई।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सर्वस्तोकाः अकषायिनो जीवाः, उपशान्तकषायादारभ्य आ सिद्धपरमेष्ठिनः। चतुर्गतिजीवाः एकेन्द्रियजीवाश्च चतुर्विधकषायसहिता एव अत एभ्यस्तेऽल्पा इति ज्ञातव्यं भवति।**

एवं प्रथमस्थले कषायविरहितानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतं।

संप्रति कषायसहितानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

माणकसाई अणंतगुणा।।१४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **गुणकारेऽत्र, सर्वजीवानां प्रथमवर्गमूलादनन्तगुणोऽस्ति।**

कोधकसाई विसेसाहिया।।१४७।।

अथ कषायमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में पाँच सूत्रों के द्वारा कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में अकषायी जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाला ''कसाया'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में क्रोधादि चारों प्रकार की कषाय से सहित जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''माण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब यहाँ अकषायी जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु एक सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणा के अनुसार कषायरहित जीव सबसे कम हैं।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सबसे कम अकषायी जीव उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर गुणस्थानातीत सिद्ध परमेष्ठी भगवान हैं। चारों गतियों में रहने वाले और एकेन्द्रिय जीव चारों प्रकार की कषाय से सहित ही रहते हैं अतः इन सभी से वे अकषायी अल्प होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कषायरहित जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब कषायसहित जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायरहित जीवों से मानकषायी जीव अनन्तगुणे हैं।।१४६।।

टीका — यहाँ गुणकार सभी जीवों के प्रथम वर्गमूल से अनन्तगुणा है।

मानकषाइयों से क्रोधकषायी जीव विशेष अधिक हैं।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मानकषायिनां जीवानां असंख्यातभागोऽपि अनन्तप्रमाणमेव।**

मायकसाई विसेसाहिया।।१४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्रापि विशेषप्रमाणं क्रोधकषायिभ्योऽसंख्यातभागोऽपि अनन्तमेव।**

लोभकसाई विसेसाहिया।।१४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पूर्ववत् विशेषप्रमाणं ज्ञातव्यं। मानादिकषायापेक्षया लोभकषायसहिताः विशेषाधिकाः, दशमगुणस्थानपर्यन्तमस्यास्तित्वात्।**

एवं द्वितीयस्थले मानादिकषायसहितानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कषायमार्गणानाम-षष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मानकषाय वाले जीवों का असंख्यात भाग भी अनन्तप्रमाण ही है।

क्रोधकषायियों से मायाकषायी जीव विशेष अधिक हैं।।१४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी विशेष प्रमाण क्रोधकषायी जीवों से असंख्यातभाग भी अनन्त-प्रमाण है।

मायाकषायियों से लोभकषायी विशेष अधिक हैं।।१४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—विशेष प्रमाण पूर्ववत् जानना चाहिए। मान आदि कषाय की अपेक्षा लोभकषाय सहित जीव विशेष अधिक हैं, क्योंकि दशवें गुणस्थान तक उनका अस्तित्व पाया जाता है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में मान आदि कषाय से सहित जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कषायमार्गणा नाम का छठा अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन षड्भिः सूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे ज्ञानमार्गणानामसप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले चतुर्विधज्ञानिनामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''णाणाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले त्रिविधाज्ञानिनां केवलिनां चाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''विभंग-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका।

संप्रति केवलज्ञानवर्जितचतुर्विधज्ञानिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणी।।१५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इमे मनःपर्ययज्ञानिनो महामुनयः सर्वस्तोकाः सन्ति, संख्यातत्वात्।**

ओहिणाणी असंखेज्जगुणा।।१५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः असंख्यातानि पल्योपमप्रथमवर्गमूलानि।**

आभिणिबोहिय-सुदणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र को विशेषः ? अवधिज्ञानिनां असंख्यातभागः अवधिज्ञानविरहिततिर्यग्मनुष्य-सम्यग्दृष्टिराशिप्रमाणमस्ति। मतिज्ञानि-श्रुतज्ञानिनौ इमौ द्वौ अपि तुल्या एव। किंच ये मतिज्ञानिनः त एव**

अथ ज्ञानमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में छह सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में चार प्रकार के ज्ञानियों का अल्पबहुत्व कथन करने हेतु ''णाणाणु'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तीन प्रकार के अज्ञानियों का और केवलज्ञानी भगवन्तों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''विभंग'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब केवलज्ञानियों को छोड़कर चार ज्ञान वाले जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मनःपर्ययज्ञानी सबसे कम हैं।।१५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— ये मनःपर्ययज्ञानी महामुनि सबसे कम हैं, क्योंकि वे संख्यात होते हैं।

मनःपर्ययज्ञानियों से अवधिज्ञानी जीव असंख्यातगुणे हैं।।१५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ गुणकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण पल्योपम के प्रथम वर्गमूल प्रमाण असंख्यात है।

अवधिज्ञानियों से आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ विशेष कितना है ? अवधिज्ञानियों के असंख्यातवें भाग प्रमाण अवधिज्ञान से रहित तिर्यंच व मनुष्य सम्यग्दृष्टि राशि के बराबर है। मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी ये दोनों समान ही हैं, क्योंकि जो मतिज्ञानी हैं वे ही श्रुतज्ञानी होते हैं, क्योंकि इन दोनों ज्ञानों का अस्तित्व एक

श्रुतज्ञानिनो भवन्ति, युगपत् द्वयोर्ज्ञानयोरस्तित्वात्।

एवं प्रथमस्थले चतुर्विधज्ञानिनामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

इदानीं त्रिविधाज्ञानिनां केवलिभगवतां चाल्पबहुत्वसूचनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

विभंगणाणी असंखेज्जगुणा।।१५३।।

केवलणाणी अणंतगुणा।।१५४।।

मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा।।१५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **मतिश्रुतज्ञानिभ्यो विभंगज्ञानिनोऽसंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागः असंख्याताः जगच्छ्रेण्यः, पल्योपमस्यासंख्यातभागमात्रप्रतरांगुलैरपवर्तित-जगत्प्रतरप्रमाणत्वात्।**

एभ्यः केवलज्ञानिनोऽनन्तगुणाः, गुणकारः — अभव्यसिद्धिकजीवैरनन्तगुणः सिद्धानामसंख्यातभागः।

कुमतिज्ञानिनः कुश्रुतज्ञानिनः अनन्तगुणाः, द्वौ अपि तुल्याः सन्ति। गुणकारः — अभव्यसिद्धिकेभ्यः सिद्धेभ्यः सर्वजीवप्रथमवर्गमूलादपि अनंतगुणोऽस्ति।

कुतः ?

केवलज्ञानिभिरपवर्तिते देशोनसर्वजीवराशिप्रमाणत्वात्।

तात्पर्यमेतत् — **एकेन्द्रियादारभ्य पंचेन्द्रियपर्यन्ताः ये केचित् जीवास्ते सर्वे कुमतिकुश्रुतज्ञानिन एवातो**

साथ पाया जाता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में चार प्रकार के ज्ञानियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीन प्रकार के अज्ञानी जीवों का और केवली भगवन्तों का अल्पबहुत्व सूचित करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

मति-श्रुतज्ञानियों से विभंगज्ञानी असंख्यातगुणे हैं।।१५३।।

विभंगज्ञानियों से केवलज्ञानी अनंतगुणे हैं।।१५४।।

केवलज्ञानियों से मतिअज्ञानी और श्रुताज्ञानी दोनों ही तुल्य होकर अनन्तगुणे हैं।।१५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मति-श्रुतज्ञानियों से विभंगज्ञानी जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यात जगत् श्रेणी के बराबर है, क्योंकि वह पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र प्रतरांगुलों से अपवर्तित जगत्प्रतरप्रमाण है।

इनसे केवलज्ञानी भगवान अनन्तगुणे हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा और सिद्धों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

कुमति और कुश्रुतज्ञानी अनन्तगुणे हैं, दोनों ही समान हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिकों से अनन्तगुणे, सिद्धों से और सभी जीवों के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा है।

कैसे ? क्योंकि वह केवलज्ञानियों से अपवर्तित कुछ कम सर्वजीवराशि प्रमाण है।

तात्पर्य यह है कि — एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त जितने भी जीव हैं, वे सभी कुमति-

तेषां गणना सर्वाधिकाः सन्ति। एतज्ज्ञात्वा सम्यक्त्वं संप्राप्य प्रमादिना न भवितव्यं, प्रत्युत मिथ्यात्वेन दुर्गतिगमनमिति निश्चित्य रत्नत्रयं परिपालनीयं।

एवं द्वितीयस्थले केवलिज्ञानिनां त्रिविपर्ययाणां ज्ञानानां चाल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनी ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम-सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ संयममार्गणाधिकारः

अथ स्थलत्रयेण एकोनविंशतिसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्येनाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं द्वितीय-स्थलेऽन्येनप्रकारेणाल्पबहुत्वसूचनत्वेन ''सव्वत्थोवा'' इत्यादिसूत्राष्टकं। तदनु तृतीयस्थले तीव्र-मंद-मध्यम-भेदेन संयमिनाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''सव्वत्थोवा सामाइय-'' इत्यादि सूत्रसप्तकमिति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं संयममार्गणायां सामान्येनाल्पबहुत्वकथनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण सव्वत्थोवा संजदा।।१५६।।

कुश्रुतज्ञानी ही हैं अतः उनकी गणना सर्वाधिक है, ऐसा जानकर सम्यक्त्व को प्राप्त करके प्रमादी नहीं बनना चाहिए, प्रत्युत् मिथ्यात्व से दुर्गति में गमन होता है यह निश्चय करके रत्नत्रय का पालन करना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में केवलज्ञानी भगवन्तों का और तीनों प्रकार के विपरीत ज्ञानियों का अल्पबहुत्व कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संयममार्गणा अधिकार

अब तीन स्थलों में उन्नीस सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''संजमाणुवादेण'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अन्य प्रकार से अल्पबहुत्व को सूचित करने वाले ''सव्वत्थोवा'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। आगे तृतीय स्थल में तीव्र-मन्द और मध्यम के भेद से संयमियों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले ''सव्वत्थोवा सामाइय'' इत्यादि सात सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब संयममार्गणा में सामान्य से अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणानुसार संयत जीव सबसे स्तोक हैं।।१५६।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१५७।।

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा।।१५८।।

असंजदा अणंतगुणा।।१५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। नैव संयताः नैवासंयताः नैव संयतासंयताः तात्पर्येण सिद्धपरमेष्ठिनः अनन्तगुणाः सन्ति। सिद्धराशिभ्योऽपि अनन्तगुणाः असंयताः प्रथमगुणस्थानादारभ्य चतुर्थगुणस्थानपर्यन्ताः चातुर्गतिकाः जीवा अनन्तानन्ताः सन्ति।**

एवं प्रथमस्थले सामान्येनाल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति अन्यप्रकारेणाल्पबहुत्वसूचनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा।।१६०।।

परिहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा।।१६१।।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा।।१६२।।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा।।१६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र त्रिष्वपि 'संख्यातगुणाः' पदेन गुणकारः संख्यातसमयाः गृहीतव्याः।**

संयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणे हैं।।१५७।।

संयतासंयत जीवों से न संयत हैं, न असंयत हैं, न संयतासंयत हैं, ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं।।१५८।।

सिद्धों से असंयत जीव अनन्तगुणे हैं।।१५९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सभी सूत्रों का अर्थ सुगम है। जो न संयत हैं, न असंयत हैं और न संयतासंयत ही हैं, ऐसे तात्पर्य अर्थ से सिद्धपरमेष्ठी भगवान अनन्तगुणे हैं। सिद्धराशि से अनन्तगुणे असंयत जीव हैं, वे प्रथम गुणस्थान से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक चारों गतियों के जीव अनन्तानन्त हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य से अल्पबहुत्व को बतलाने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब अन्य प्रकार से अल्पबहुत्व को सूचित करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयत जीव सबसे स्तोक हैं।।१६०।।

सूक्ष्मसाम्परायिकसंयतों से परिहारशुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं।।१६१।।

परिहारशुद्धिसंयतों से यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीव संख्यातगुणे हैं।।१६२।।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों से सामायिकशुद्धिसंयत और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत दोनों ही तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं।।१६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ तीनों में ''संख्यातगुणे'' पद से गुणकार संख्यातसमय ग्रहण करना चाहिए।

संजदा विसेसाहिया।।१६४।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—पल्योपमस्यासंख्यातभागः गृहीतव्यः।**

णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा।।१६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—अभव्यसिद्धजीवैरनन्तगुणोऽस्ति।**

असंजदा अणंतगुणा।।१६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—सर्वजीवानामनन्तप्रथमवर्गमूलप्रमाणमस्ति, सिद्धैरपवर्तितदेशोनसर्वजीवराशित्वात्। एतावत्पर्यन्तं संयमाधिष्ठितजीवानामल्पबहुत्वं कथितं।**

एवं द्वितीयस्थले द्वितीयप्रकारेणाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

अधुना तीव्र-मंद-मध्यमभेदेन स्थितसंयमस्याल्पबहुत्वप्ररूपणार्थं सूत्रसप्तकमवतार्यते—

सव्वत्थोवा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्त-लद्धी।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमस्य सर्वजघन्यं लब्धिस्थानं मिथ्यात्वं प्रतिपद्यमानसंयतस्य चरमसमये भवति। अयं संयतः सर्वसंक्लिष्टो मिथ्यात्वाभिमुखो यदा भवति तदा**

सूत्रार्थ—

उक्त दोनों जीवों से संयत जीव विशेष अधिक हैं।।१६४।।

संयतों से संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं।।१६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

संयतासंयतों से न संयत न असंयत न संयतासंयत ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं।।१६६।।

यहाँ गुणकार अभव्य जीवों से अनन्तगुणा है।

उनसे असंयतजीव अनन्तगुणे हैं।।१६७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार सर्वजीवों के अनन्तवें भाग का प्रथम वर्गमूल प्रमाण है, क्योंकि सिद्धों से अपवर्तित कुछ कम सर्वजीवराशि है। यहाँ तक संयम में अधिष्ठित जीवों का अल्पबहुत्व कहा गया है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में द्वितीय प्रकार से अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीव्र-मन्द और मध्यम भेदों से संयम में स्थित जीव का अल्पबहुत्व प्ररूपण करने हेतु सात सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत की जघन्य चारित्रलब्धि सबसे कम है।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयम का सर्वजघन्य लब्धिस्थान मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले संयत के अंतिम समय में होता है। यह संयत जब सर्वसंकिष्ट मिथ्यात्व के अभिमुख होते

तस्यान्तिमसमये सर्वजघन्यं चारित्रलब्धिस्थानं ज्ञातव्यं।

परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।।१६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सामायिकछेदोपस्थापनचारित्रशुद्धिस्थानापेक्षया परिहारशुद्धिसंयतस्य जघन्या चारित्रलब्धिः अनन्तगुणा अस्ति। इयं जघन्यचारित्रलब्धिस्थानादुपरि असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि गत्वा उत्पद्यते।**

एषा परिहारशुद्धिसंयमलब्धिर्जघन्या कस्य भवति ?

सर्वसंक्लिष्टस्य सामायिकछेदोपस्थापनाभिमुखचरमसमयपरिहारशुद्धिसंयतस्य भवति।

तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**किंच—असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि उपरि गत्वा इयं लब्धिरुत्पद्यते।**

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।।१७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तत्त उपरि असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि गत्वा सामायिकछेदोपस्थापनशुद्धिसंयमस्य उत्कृष्टलब्धिः समुत्पद्यते।**

एषा कस्य भवति ?

अनिवृत्तिकरणस्य चरमसमये भवति।

हैं। तब उनके अंतिम समय में सर्वजघन्य चारित्रलब्धि स्थान जानना चाहिए।

सूत्रार्थ—

परिहारशुद्धिसंयत की जघन्य चारित्रलब्धि अनन्तगुणा है।।१६९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्रशुद्धि स्थान की अपेक्षा परिहारशुद्धि-संयत की जघन्य चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है। यह चारित्रलब्धि जघन्यचारित्रलब्धि स्थान से ऊपर असंख्यातलोकमात्र छह स्थान जाकर उत्पन्न होती है।

शंका—यह परिहारशुद्धिसंयमलब्धि जघन्य रूप से किसके होती है ?

समाधान—यह लब्धि सर्वसंक्लिष्ट परिणाम से सहित सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि संयम के अभिमुख हुए अन्तिमसमयवर्ती परिहारशुद्धिसंयत के होती है।

सूत्रार्थ—

उसी परिहारशुद्धिसंयत की उत्कृष्ट चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है।।१७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—क्योंकि असंख्यातलोकमात्र छह स्थान ऊपर जाकर यह लब्धि उत्पन्न होती है।

सूत्रार्थ—

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत की उत्कृष्ट चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है।।१७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उससे ऊपर असंख्यात लोकप्रमाण छह स्थान जाकर सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि संयम की उत्कृष्ट लब्धि उत्पन्न होती है।

यह लब्धि किसके होती है ?

यह लब्धि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के अन्तिम समय में होती है।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।।१७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**उपर्युक्तोत्कृष्टसंयमलब्धिभ्यः अनन्तगुणाः सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयमस्य जघन्या चारित्रलब्धिः।**

कुतः ?

असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानामन्तरं कृत्वा इयमुत्पद्यते।

एषा कस्य भवति ?

सूक्ष्मसांपरायिकस्य महामुनेः उपशमश्रेण्याः अवतीर्यमाणस्य चरमसमये भवति।

तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।।१७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**जघन्यादुपरि अनन्तगुणितश्रेणीरूपेणान्तर्मुहूर्तं गत्वा अस्या उत्कृष्टलब्धेरुत्पत्तेः।**

एषा कस्य भवति ?

सूक्ष्मसांपरायवर्तिनः क्षपकश्रेण्यारोहमाणस्य चरमसमये भवति।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।।१७४।।

सूत्रार्थ—

इन सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयतों से सूक्ष्मसांपरायशुद्धिसंयम की जघन्य चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है।।१७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपर्युक्त उत्कृष्ट संयमलब्धि से अनन्तगुणे सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयम की जघन्य चारित्रलब्धि होती है।

कैसे ?

क्योंकि असंख्यातलोकप्रमाण छह स्थानों का अन्तर करके यह उत्पन्न होती है।

प्रश्न—यह लब्धि किसके होती है ?

उत्तर—सूक्ष्मसाम्परायिक महामुनि जब उपशमश्रेणी से उतरते हैं, तब उनके चरम समय में यह जघन्य लब्धि होती है।

सूत्रार्थ—

उन्हीं के सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयम की उत्कृष्ट चारित्रलब्धि अनन्तगुणी होती है।।१७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जघन्य के ऊपर अनन्तगुणित श्रेणीरूप से अन्तर्मुहूर्त जाकर उसकी उत्पत्ति होती है।

प्रश्न—यह किसके होती है ?

उत्तर—यह लब्धि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती महामुनि के क्षपकश्रेणी में चढ़ने के अंतिम समय में होती है। अर्थात् अंतिमसमयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक के यह उत्कृष्ट चारित्रलब्धि अनन्तगुणी होती है।

सूत्रार्थ—

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत की जघन्य और उत्कृष्ट भेद से रहित चारित्र लब्धि अनन्तगुणी है।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूक्ष्मसांपरायसंयमस्य उत्कृष्टलब्ध्यपेक्षया यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतस्य अजघन्यानुत्कृष्टा चारित्रलब्धिः अनन्तगुणास्ति। किंच—असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानामन्तरं कृत्वा समुत्पत्तेः।**

एषा लब्धिरेकविकल्पा कथमिति चेत् ?

कषायाभावेन वृद्धिहानिकारणाभावात्। तेनैव कारणेन अजघन्या अनुत्कृष्टा च—न जघन्या नोत्कृष्टा इयं।

अत्र केन कारणेन संयमलब्धिस्थानाल्पबहुत्वं कथितं ?

उच्यते—संयतानां जीवानामल्पबहुत्वसाधनार्थमत्र संयमलब्धिस्थानं कथितमाचार्यदेवेन। यस्य संयमस्य लब्धिस्थानानि बहुकानि तत्र जीवा अपि बहवश्चैव, यत्र स्तोकानि तत्र स्तोकाश्चैव भवन्तीति।

यद्येवं तर्हि यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां सर्वस्तोकत्वं प्रसज्यते, निर्विकल्पैकसंयमलब्धिस्थानत्वात् ?

नैष दोषः, कालमाश्रित्य तेषां बहुत्वोपदेशात्। अस्यायमर्थः-तेषां कालमष्टवर्षान्तर्मुहूर्तहीनमेक-पूर्वकोटिप्रमाणमस्ति, अतोऽपेक्षया यथाख्यातशुद्धिसंयतेषु सर्वाधिकमेकत्वमस्ति।

अधुना संयममार्गणामल्पबहुत्वं ज्ञात्वा वयमपि मुनीनां साम्यभावनां स्मरामः।

उक्तं च श्रीपद्मनंदिसूरिवर्येण—

तृणं वा रत्नं वा रिपुरथ परं मित्रमथवा, सुखं वा दुःखं वा पितृवनमदो सौधमथवा।
स्तुतिर्वा निंदा वा मरणमथवा जीवितमथ, स्फुटं निर्ग्रन्थानां द्वयमपि समं शान्तमनसाम्[१]।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूक्ष्मसाम्पराय संयम की उत्कृष्ट लब्धि की अपेक्षा यथाख्यातविहारशुद्धि के जघन्य और उत्कृष्ट भेद रहित चारित्रलब्धि अनन्तगुणी है, क्योंकि असंख्यातलोकमात्र छह स्थानों का अन्तर करके उसकी उत्पत्ति होती है।

शंका—यह लब्धि एक विकल्परूप क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कषाय का अभाव हो जाने से उसकी वृद्धि और हानि के कारणों का अभाव हो गया है। इसी कारण वह जघन्य और उत्कृष्ट भेद से रहित है।

शंका—यहाँ किस कारण से संयमलब्धि स्थानों का अल्पबहुत्व कहा गया है ?

इस शंका का उत्तर कहते हैं—संयत जीवों के अल्पबहुत्व के साधन हेतु यहाँ लब्धि स्थानों का अल्पबहुत्व आचार्य देव ने कहा है। जिस संयम के लब्धि स्थान बहुत हैं, उसमें जीव भी बहुत ही हैं तथा जिस संयम के लब्धि स्थान थोड़े हैं, उनमें जीव भी थोड़े ही हैं।

शंका—यदि ऐसा है, तो यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों के सबमें थोड़े होने का प्रसंग आता है, क्योंकि उनके निर्विकल्प एक संयमलब्धिस्थान है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि काल का आश्रय करके उनके बहुत होने का उपदेश दिया गया है। अर्थात् उनका काल—समय आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। इस अपेक्षा से यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों में सबसे अधिक एकता है।

यहाँ इस संयममार्गणा के अल्पबहुत्व को जानकर हम भी मुनियों की साम्यभावना का स्मरण करते हैं।

जैसा कि श्री पद्मनंदि आचार्यदेव ने कहा है—

श्लोकार्थ—तृण हो अथव रत्न हो, शत्रु हो अथवा मित्र हो, सुख हो या दुख हो, श्मशान हो अथवा महल हो, स्तुति हो या निन्दा, मरण हो या जीवित अवस्था हो, निर्ग्रन्थ महामुनियों के हृदय में दोनों अवस्थाओं में भी एकसमान शांतभाव रहता है।।४५।।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका पृ. २१, श्लोक-४५।

एतादृशानां महासाधूनां या साम्यभावना सैवोत्कृष्टसंयमलब्धेः कारणं भवति पुनश्च तयैव लब्ध्या यथाख्यातचारित्रमपि लप्स्यामहे, अतो नित्यं चारित्रशुद्ध्यर्थं प्रयत्नं कुर्वामहे।

एवं तृतीयस्थले संयमलब्धिस्थानाल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणा-नामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन चतुर्भिः सूत्रैः दर्शनमार्गणानाम नवमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अवधिचक्षुर्दर्शनिनां अल्पबहुत्वकथनत्वेन ''दंसणाणु'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले केवलदर्शनि-अचक्षुर्दर्शनिनां अल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''केवल-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

अधुना अवधिचक्षुर्दर्शिनिनामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण सव्वत्थोवा ओहिदंसणी।।१७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पल्योपमस्यासंख्यातभागत्वात्।**

चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा।।१७६।।

इस प्रकार के महासाधुओं की जो साम्यभावना—समतापरिणति है, वही उत्कृष्ट संयमलब्धि का कारण होती है। पुनः उसी लब्धि से हम यथाख्यातचारित्र को प्राप्त करेंगे, अतः नित्य ही हम चारित्र की शुद्धि हेतु प्रयत्न करते हैं।

इस प्रकार से तृतीय स्थल में संयमलब्धि स्थान का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में चार सूत्रों के द्वारा दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में अवधिदर्शनी और चक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''दंसणाणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। आगे द्वितीय स्थल में केवलदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने वाले ''केवल'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब अवधिदर्शनी एवं चक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

दर्शनमार्गणा के अनुसार अवधिदर्शनी जीव सबसे स्तोक हैं।।१७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—वे पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होने से सबसे कम हैं।

उनसे चक्षुदर्शनी जीव असंख्यातगुणे हैं।।१७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागोऽसंख्याताः जगच्छ्रेण्यः।**

एवं प्रथमस्थले अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इदानीं केवलिनां अचक्षुर्दर्शिनां चाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

केवलदंसणी अणंतगुणा।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इमे चक्षुर्दर्शनिभ्योऽनन्तगुणाः सन्ति। गुणकारः—अभव्यसिद्धिकैरनन्तगुणोऽस्ति।**

अचक्खुदंसणी अणंतगुणा।।१७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकेन्द्रियादिजीवादारभ्य द्वादशगुणस्थानपर्यन्ताः सर्वे जीवा अचक्षुर्दर्शनवन्तो भवन्ति।**

एवं द्वितीयस्थले केवलि-अचक्षुर्दर्शिनामल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम-नवमोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार जगत्प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है, जो कि असंख्यात जगत् श्रेणी के बराबर होता है।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में अवधिदर्शनी और चक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब केवलदर्शनी भगवान और अचक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतीर्ण होते हैं—

सूत्रार्थ—

केवलदर्शनी अनन्तगुणे हैं।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये केवलदर्शनी भगवान् चक्षुदर्शनी जीवों से अनन्तगुणे हैं। यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा है।

केवलदर्शनी भगवन्तों से अचक्षुदर्शनी जीव अनन्तगुणे हैं।।१७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एकेन्द्रिय आदि जीवों से आरंभ करके बारहवें गुणस्थान पर्यन्त सभी जीव अचक्षुदर्शनी होते हैं, क्योंकि सभी जीवों के अचक्षुदर्शन पाया जाता है।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में केवलदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा नाम का नवमाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन सप्तसूत्रैः लेश्यामार्गणायामल्पबहुत्वानुगमे दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले शुभत्रिकलेश्यावतां लेश्यारहितानां चाल्पबहुत्वकथनत्वेन ''लेस्साणु-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं द्वितीयस्थले अशुभत्रिकलेश्यानामल्पबहुत्वसूचनत्वेन ''काउलेस्सिया'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका कथिता।

इदानीं शुक्लादिशुभलेश्यानामलेश्यानां चाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सिया।।१७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पल्योपमस्यासंख्यातभागप्रमाणत्वात्, सुष्ठु शुभलेश्यानां संबंधः कुत्रापि केषामपि संभवति।**

पम्मलेस्सिया असंखेज्जगुणा।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गुणकारः — जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागोऽसंख्याताः श्रेण्यः।**

तेउलेस्सिया संखेज्जगुणा।।१८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीनां संख्यातभागेन पद्मलेश्यावतां द्रव्येण तेजोलेश्यावतां द्रव्ये भागे कृते संख्यातरूपोपलंभात्।**

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में सात सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में तीनों शुभ लेश्या वाले एवं लेश्यारहित जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु ''लेस्साणु'' इत्यादि चार सूत्र हैं। उसके पश्चात् द्वितीय स्थल में तीनों अशुभ लेश्या वाले जीवों का अल्पबहुत्व सूचित करने वाले ''काउलेस्सिया'' इत्यादि तीन सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब यहाँ शुक्ल आदि तीनों शुभ लेश्या वाले जीवों का एवं लेश्यारहित जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादित करने हेतु चार सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

लेश्यामार्गणा के अनुसार शुक्ललेश्या वाले जीव सबसे कम हैं।।१७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण होने के कारण शुभ लेश्याओं का संबंध कहीं भी किसी भी जीव के संभव है।

शुक्ललेश्या वालों से पद्मलेश्या वाले जीव असंख्यातगुणे हैं।।१८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण है, जो कि असंख्यात जगत्श्रेणी के बराबर है।

पद्मलेश्या वालों से पीतलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे हैं।।१८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवों के संख्यातवें भाग से पद्मलेश्या वाले जीवों के द्रव्य का पीतलेश्या वाले जीवों के द्रव्य में भाग देने पर संख्यातरूप उपलब्ध होते हैं, इसलिए वे संख्यातगुणे माने गये हैं।

अलेस्सिया अणंतगुणा।।१८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—अभव्यसिद्धिकराशिभ्यः सिद्धेभ्यः सर्वजीवप्रथमवर्गमूलादपि अनंतगुणो भवति।**

एवं प्रथमस्थले शुभलेश्यानामलेश्यानां चाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति कापोताद्यशुभलेश्यानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते—

काउलेस्सिया अणंतगुणा।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**लेश्याविरहितजीवेभ्यः कापोतलेश्यायुताः अनन्तगुणाः। गुणकारः पूर्ववत्।**

णीललेस्सिया विसेसाहिया।।१८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र विशेषः, कापोतलेश्यायुतानामसंख्यातभागः स अनन्त एव।**

किण्हलेस्सिया विसेसाहिया।।१८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्रापि विशेषः, अनन्तः—नीललेश्यानामसंख्यातभागः।**

कः प्रतिभागः ?

आवलिकाया असंख्यातभागः।

तेजोलेश्या वालों से लेश्यारहित अर्थात् अयोगी व सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं।।१८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक राशि से और सिद्धों से सर्वजीव के प्रथम वर्गमूल से भी अनन्तगुणा होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में शुभ लेश्या वाले और लेश्यारहित जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब कापोत आदि अशुभ लेश्याओं का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु तीन सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

अलेश्या वाले जीवों से कापोत लेश्या वाले जीव अनन्तगुणे हैं।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—लेश्या रहित जीवों की अपेक्षा कापोतलेश्या से रहित जीव अनन्तगुणे होते हैं। यहाँ गुणकार पूर्व के समान है।

कापोतलेश्या वाले जीवों से नीललेश्या वाले जीव विशेष अधिक हैं।।१८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष कापोतलेश्या वालों के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, जो अनन्त ही हैं।

नील लेश्या वालों की अपेक्षा कृष्ण लेश्या वाले जीव विशेष अधिक हैं।।१८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ भी विशेष अनन्त है और यह अनन्त नील लेश्या वाले जीवों के असंख्यातवें भागप्रमाण है।

प्रतिभाग क्या है ?

आवली का असंख्यातवाँ भाग प्रतिभाग कहलाता है।

तात्पर्यमेतत्—**सर्वापेक्षया कृष्णलेश्यायुता जीवा बहवः सन्ति।**

एवं द्वितीयस्थलेऽशुभलेश्यानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमेमहाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम-दशमोऽधिकारः समाप्तः।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

अत्र स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे भव्यमार्गणानाम एकादशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थलेऽभव्यजीवानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''भवियाणु-'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं द्वितीयस्थले सिद्धजीवानां भव्यजीवानामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''णेव'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

इदानीं अभव्यानामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रमेकमवतरति—

भवियाणुवादेण सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**जघन्ययुक्तानन्तप्रमाणाः सन्तीमे अभव्यजीवाः अस्मिन् अनाद्यनन्तसंसारे।**

एवं प्रथमस्थले अभव्यजीवानां अल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति भव्याभव्यत्वविरहितानां भव्यानां चाल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तात्पर्य यह है कि—सभी लेश्याओं की अपेक्षा कृष्णलेश्या से युक्त जीव बहुत होते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अशुभ लेश्याओं का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ भव्यमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में अभव्य जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु ''भवियाणु'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः द्वितीय स्थल में सिद्ध भगवन्तों का और भव्य जीवों का अल्पबहुत्व कहने वाले ''णेव'' इत्यादि दो सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब अभव्य जीवों का अल्पबहुत्व प्रतिपादन करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है—

सूत्रार्थ—

भव्यमार्गणा के अनुसार अभव्यसिद्धिक जीव सबसे स्तोक है।।१८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये जघन्य युक्तानन्त प्रमाण हैं, क्योंकि ये अभव्यजीव इस अनादि-अनन्त संसार में सर्वदा रहते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अभव्य जीवों का अल्पबहुत्व करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब भव्य और अभव्य अवस्था से रहित जीवों का और भव्य जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं—

णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अणंतगुणा।।१८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—अभव्यजीवैरनन्तगुणाः। इमे जीवाः सिद्धा एव सन्ति।**

भवसिद्धिया अणंतगुणा।।१८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**ये भव्या जीवास्ते सिद्धराशिभ्योऽनन्तगुणाः सन्ति। यद्यपि संसारोऽनाद्यनन्तस्तथापि इमे भव्या न व्ययाः भवन्ति न चाग्रे कस्मिंश्चिदपि काले व्ययं प्राप्स्यन्ति, एतद्राशीनामक्षयानन्तत्वात्।**

तात्पर्यमेतत्—**''वयं भव्याः'' नियमेन सेत्स्यामः किंच—वर्तमानकाले ये मानवाः सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रं वंदन्ते ते भव्या एव, एष नियम आगमे श्रूयते, एतन्निश्चित्य संयमं गृहीत्वा मनुष्यपर्यायं सफलीकृत्य मोक्ष-पुरुषार्थः साधनीयः।**

एवं द्वितीयस्थले सिद्धानां भव्यजीवानां चाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम-एकादशमोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

अभव्यसिद्धिकों से न भव्यसिद्धिक और न अभव्यसिद्धिक ऐसे सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं।।१८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार अभव्य जीवों से अनन्तगुणा है। ये जीव सिद्ध भगवान ही होते हैं।

उक्त जीवों से भव्यसिद्धिक जीव अनन्तगुणे हैं।।१८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो भव्य जीव हैं वे सिद्धराशि से अनन्तगुणे हैं। यद्यपि संसार अनादि-अनंत है फिर भी ये भव्य जीव कभी व्यय नहीं होते हैं और न आगे किसी भी काल में व्यय को प्राप्त होंगे, क्योंकि यह राशि अक्षय-अनन्त होती है।

तात्पर्य यह है कि—''हम सब भव्य हैं'' हम नियम से मोक्ष प्राप्त करेंगे, क्योंकि वर्तमानकाल में जो भी मनुष्य सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वंदना कर लेते हैं, वे भव्य ही हैं, ऐसा नियम आगम में आया है, ऐसा निश्चित करके संयम को ग्रहण करके मनुष्यपर्याय को सफल करके मोक्ष पुरुष की सिद्धि करना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में सिद्ध भगवन्तों का और भव्य जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में भव्यमार्गणा नाम का ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वादशसूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे सम्यक्त्वमार्गणानामद्वादशोऽधिकारः प्रारभ्यते — तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्येनऽल्पबहुत्वकथनत्वेन ''सम्मत्ताणु-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। ततः परं द्वितीयस्थलेऽन्यप्रकारेण सम्यक्त्वमार्गयाणामल्पबहुत्वप्रतिपादनत्वेन ''सव्वत्थोवा'' इत्यादिसूत्राष्टकमिति समुदायपातनिका भवति।

इदानीं सम्यक्त्वमार्गणायां सामान्येनाल्पबहुत्वसूचनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मामिच्छाइट्ठी।।१८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सर्वस्तोकाः सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानवर्तिनो जीवाः सन्ति।**

सासादनसम्यग्दृष्टयः सर्वस्तोकाः इति किन्न प्ररूपितं ?

न, विपरीताभिनिवेशेन तेषां समानत्वं प्रतीत्य सासादनसम्यग्दृष्टीनां मिथ्यादृष्टिष्वन्तर्भावात्, अथवा भूतपूर्वं नयमाश्रित्य सम्यग्दृष्टिष्वंतर्भावात्।

सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।।१९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **गुणकारः — आवलिकाया असंख्यातभागाः।**

सिद्धा अणंतगुणा।।१९१।।

अथ सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में बारह सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में सामान्य से अल्पबहुत्व का कथन करने हेतु ''सम्मत्ताणु'' इत्यादि चार सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में अन्य प्रकार से सम्यक्त्वमार्गणा में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले ''सव्वत्थोवा'' इत्यादि आठ सूत्र हैं। इस प्रकार सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में सामान्य से अल्पबहुत्व को सूचित करने हेतु चार सूत्र अवतीर्ण होते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणा के अनुसार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं।।१८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीव सबसे कम होते हैं।

शंका — सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं, ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान — नहीं, क्योंकि विपरीताभिनिवेश की अपेक्षा समानता के प्रति उनका मिथ्यादृष्टियों में अन्तर्भाव हो जाता है, अथवा भूतपूर्व नय का आश्रय कर सम्यग्दृष्टियों में उनका अर्न्तभाव हो जाता है। इसलिए यहाँ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का ग्रहण नहीं किया है।

सूत्रार्थ —

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणे हैं।।१९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग हैं।

सूत्रार्थ —

सम्यग्दृष्टियों से सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं।।१९१।।

मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमो वर्तते। सिद्धजीवराश्यपेक्षया मिथ्यादृष्टयो भव्याभव्यजीवाः सर्वेऽपि मिलित्वानन्तगुणा एव भवन्ति।**

एवं प्रथमस्थले सम्यक्त्वमार्गणायामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

संप्रति विशेषेणान्यप्रकारेण वाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यते —

सव्वत्थोवा सासणसम्माइट्ठी।।१९३।।

सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा।।१९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**को गुणकार ? संख्याताः समयाः।**

उवसमसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।।१९५।।

खइयसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।।१९६।।

वेदगसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।।१९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेषां त्रयाणामपि गुणकारः—आवलिकाया असंख्यातभागः।**

सम्माइट्ठी विसेसाहिया।।१९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र विशेषः—उपशमक्षायिकसम्यग्दृष्टिमात्रः। एतेन ज्ञायते सम्यग्दृष्टिपदेन**

सिद्धों से मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं।।१९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— उपर्युक्त दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। सिद्ध जीवों की राशि की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि भव्य और अभव्य जीव सभी मिलकर अनन्तगुणा ही होते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सम्यक्त्वमार्गणा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले चार सूत्र पूर्ण हुए। अब अन्य विशेष प्रकार से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु आठ सूत्र अवतरित किये जाते हैं —

सूत्रार्थ—

सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे स्तोक हैं।।१९३।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणे हैं।।१९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ गुणकार क्या है ? यहाँ संख्यातसमय गुणकार है।

सूत्रार्थ—

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं।।१९५।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं।।१९६।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे है।।१९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ इन तीनों का गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

सूत्रार्थ—

वेदकसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्दृष्टि विशेष अधिक है।।१९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— यहाँ विशेष यह है कि उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों

वेदकसम्यग्दृष्टिसहितेन विशेषाधिकाः उपशमक्षायिकसम्यग्दृष्टिसमेताः।

सिद्धा अणंतगुणा।।१९९।।

मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतयोः सूत्रयोरर्थः पूर्ववद् ज्ञातव्यः।**

एवं सम्यग्दर्शनं दुर्लभं ज्ञात्वा संप्राप्य संयम आराधनीयः प्रमादो न कर्तव्यः।

एवं द्वितीयस्थलेऽन्यप्रकारेणाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकारःसमाप्तः।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे त्रयोदशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां संज्ञ्यसंज्ञिरहितानां चाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''सण्णिया-'' इत्यादि सूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थलेऽसंज्ञिनामल्प-बहुत्वनिरूपणाय सूत्रमेकं इति समुदायपातनिका।

के बराबर सम्यग्दृष्टि होते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि सम्यग्दृष्टि पद से वेदकसम्यग्दृष्टि सहित विशेष अधिक उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि समेत को लिया है।

सूत्रार्थ—

सम्यग्दृष्टियों से सिद्ध अनन्तगुणे हैं।।१९९।।

सिद्धों से मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणे हैं।।२००।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ पूर्ववत् जानना चाहिए।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन की दुर्लभता को जानकर और उसे प्राप्त कर संयम की आराधना में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में अन्य प्रकार से अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ संज्ञीमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में संज्ञी जीवों का और संज्ञी-असंज्ञी दोनों अवस्थाओं से रहित सिद्धों का अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु ''सण्णिया'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने वाला ''असण्णी'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदाय-पातनिका हुई।

इदानीं संज्ञिनां संज्ञ्यसंज्ञिरहितानां चाल्पबहुत्वसूचनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी।।२०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **जगत्प्रतरस्यासंख्यातभागप्रमाणत्वात्।**

णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा।।२०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र गुणकारः — अभव्यसिद्धिकजीवैरनन्तगुणोऽस्ति।**

एवं प्रथमस्थले संज्ञिमार्गणायामल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

संप्रति असंज्ञिनामल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रमेकमवतरति —

असण्णी अणंतगुणा।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एकेन्द्रियादारभ्य पंचेन्द्रिया जीवाः अपि केचिदिति।**

एवं द्वितीयस्थलेऽसंज्ञिनामल्पबहुत्वकथनत्वेन सूत्रमेकं गतं।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डेऽल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशोऽधिकारः समाप्तः।

अब संज्ञी जीवों का और संज्ञी-असंज्ञीपने से रहित जीवों का अल्पबहुत्व सूचित करने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञीमार्गणा के अनुसार संज्ञी जीव सबसे स्तोक हैं।।२०१।।

टीका — जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण संज्ञी जीव होते हैं।

सूत्रार्थ —

संज्ञी जीवों से न संज्ञी न असंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं।।२०२।।

टीका — यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा है। ये सिद्ध जीव होते हैं।

इस प्रकार से प्रथम स्थल में संज्ञीमार्गणा में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

उक्त जीवों से असंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं।।२०३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एकेन्द्रिय से आरंभ करके कुछ पंचेन्द्रिय जीव भी असंज्ञी होते हैं।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों का अल्पबहुत्व कथन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञीमार्गणा नाम का तेरहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकारः

अथ स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैः अल्पबहुत्वानुगमे चतुर्दशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले अनाहारकाबंधकबंधकजीवानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन ''आहाराणु-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थले आहाराणामल्पबहुत्वकथनत्वेन ''आहारा'' इत्यादिसूत्रमेकमिति समुदायपातनिका सूचिता।

इदानीमनाहाराणामल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा।।२०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सिद्धानां अयोगिनां च ग्रहणात् अत्र।**

बंधा अणंतगुणा।।२०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनाहारकाबंधकेभ्यो बंधसहिता अनाहारकाः अनन्तगुणाः सन्ति।**

एवं प्रथमस्थले अनाहाराणामल्पबहुत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

संप्रति आहारजीवानामल्पबहुत्वनिरूपणाय सूत्रमेकमवतरति —

आहारा असंखेज्जगुणा।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गुणकारोऽत्रान्तर्मुहूर्तः। बंधसहितानाहारद्रव्येण आहारद्रव्ये भागे कृते अन्तर्मुहूर्तोपलंभात्।**

अथ आहारमार्गणा अधिकार

अब दो स्थलों में तीन सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्वानुगम में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उनमें से प्रथम स्थल में अनाहारक-अबंधक और बंधक जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु ''आहाराणु'' इत्यादि दो सूत्र हैं। पुनः द्वितीय स्थल में आहारक जीवों का अल्पबुहत्व कहने के लिए ''आहारा'' इत्यादि एक सूत्र है। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अब अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

आहारमार्गणा के अनुसार अनाहारक अबंधक जीव सबसे स्तोक हैं।।२०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सिद्धों का और अयोगी जीवों का ग्रहण किया गया है।

सूत्रार्थ—

अनाहारक अबंधकों से अनाहारक बंधक जीव अनन्तगुणे हैं।।२०५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनाहारक व अबंधक जीवों से बंध सहित अनाहारक जीव अनन्तगुणे हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारक जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ—

अनाहारक बंधकों से आहारक जीव असंख्यातगुणे हैं।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार अन्तर्मुहूर्त है। बंध सहित अनाहारद्रव्य से आहारद्रव्य में भाग देने पर अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है।

तात्पर्यमेतत्—**कर्मनोकर्माहारनिमित्तेनैव सर्वे जीवाः संसारे पर्यटन्ति। कर्मस्वष्टष्वपि मोहनीयकर्म सर्वकर्मणां निमित्तं वर्तते।**

उक्तं च श्रीपूज्यपाददेवैः—

बध्यते मुच्यते जीवाः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्[१]**।।२६।।**

एवं द्वितीयस्थले आहाराणां जीवानामल्पबहुत्वनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे अल्पबहुत्वानुगमे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

अत्रोपसंहारः—**श्रीतीर्थकरदेवैर्यैः मोक्षमार्गः प्ररूपितस्तेषु आदितीर्थकरः श्रीऋषभदेवस्तेषां अजेयजिनशासनं सदैव अस्मिन् लोके जयतुतरां। यस्य पादप्रसादेन अद्यत्वे अपि प्रजाः सुखमनुभवन्ति।**

उक्तं च श्रीसिद्धान्तचक्रवर्तिनेमिचन्द्राचार्येण—

पुरगामवट्टणादी लोहियसत्थं च लोयववहारो।
धम्मो वि दयामूलो विणिम्मियो आदिबम्हेण[२]**।।८०२।।**

तात्पर्य यह है कि—कर्म और नोकर्म आहार के निमित्त से ही सभी जीव संसार में पर्यटन करते हैं। इस संसार परिभ्रमण में सभी आठों कर्मों में मोहनीय कर्म को सब कर्मों का निमित्त माना जाता है।

जैसा कि श्री पूज्यपाद आचार्य देव ने कहा है—

श्लोकार्थ—यह जीव ममत्व परिणामों से कर्मों का बंध करता है और निर्ममत्व अर्थात् मोहरहित परिणामों के द्वारा कर्मों से छूट जाता है, अतः मनुष्यों को सम्पूर्ण प्रयत्न करके निर्ममत्व परिणाम प्राप्त करने हेतु चिन्तन करना चाहिए।

इस प्रकार से द्वितीय स्थल में आहारक जीवों का अल्पबहुत्व निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में अल्पबहुत्वानुगम नामक महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अब उपसंहार करते हैं—

श्री तीर्थंकर भगवन्तों के द्वारा जो मोक्षमार्ग प्ररूपित किया गया है, उनमें आदि—प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान हैं। उनका अजेय जिनशासन इस लोक में सदैव जयशील होवे। जिनके चरणकमलों की कृपा प्रसाद से आज भी धरती की प्रजा—जनता सुख का अनुभव कर रही है।

उनके विषय में श्री सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने कहा है—

गाथार्थ—आदिब्रह्मा ऋषभदेव के द्वारा इस धरती पर कर्मभूमि के प्रारंभ में (तृतीय काल के अंत में जब भोगभूमि समाप्त हो रही थी) पुर, ग्राम, पत्तन आदि का निर्माण तथा लौकिक शास्त्र, लोक व्यवहार एवं दया मूल (अहिंसा) धर्म की स्थापना की गई थी।।

---

१. इष्टोपदेश श्लोक-२६। २. त्रिलोकसार गाथा-८०२।

यस्याज्ञया सौधर्मेण निमिषमात्रेण पुरग्रामपत्तनादीनां रचना कारिता, येन लौकिकशास्त्रं—व्याकरणछन्दोऽलंकारादीनि रचितानि, लोकव्यवहारः—वर्णव्यवस्था व्यापारव्यवस्था विवाहादिव्यवस्था च व्यवस्थापिता, पुनश्च दयामूलो धर्मोऽपि विनिर्मितस्तस्मै श्रीआदिब्रह्मणे प्रथमतीर्थंकराय श्रीऋषभदेवाय नमो नमः।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य श्रीभूतबलिसूरिविरचिते क्षुद्रक-बंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागर-स्तस्य प्रथमशिष्यः प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणि-टीकायां अल्पबहुत्वानुगमो नामैकादशो महाधिकारः समाप्तः।

जिनकी आज्ञा से सौधर्म इन्द्र ने निमिषमात्र में (पलक झपकते ही) पुर-ग्राम-पत्तन आदि की रचना कर दी थी, जिनके द्वारा लौकिक शास्त्र-व्याकरण-छंद-अलंकार आदि विषयक ग्रंथ रचे गये, लोक व्यवहार—समाज में वर्ण व्यवस्था, व्यापार व्यवस्था और विवाहादि व्यवस्थाओं की स्थापना हुई, पुनश्च दयामूल धर्म भी जिन्होंने बनाया, ऐसे आदिब्रह्मा प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत-भूतबली आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम में श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्री वीरसेनाचार्य रचित धवला टीका को प्रमुख करके अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम शिष्य प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में अल्पबहुत्वानुगम नाम का ग्यारहवाँ महाधिकार समाप्त हुआ।

अथ महादण्डकनाम द्वादशो महाधिकारः

मंगलाचरणम्

भुजंगप्रयातछंदः —**महावीरवीरं महाधीरधीरं, महालोकलोकं महाबोधबोधं।**
महापूज्यपूज्यं महावीर्यवीर्यं, महादेवदेवं महन्तं महामि।।१।।

अत्र त्रिभिरधिकारैः एकोनाशीतिसूत्रैरल्पबहुत्वचूलिकानिरूपणार्थं महादण्डको नाम द्वादशो महाधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमेऽधिकारे मुख्यरूपेण गतिमार्गणायामल्पबहुत्वकथनत्वेन त्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि। तदनु द्वितीयेऽधिकारे इंद्रियमार्गणायां विशेषतयाल्पबहुत्वनिरूपणत्वेनाष्टसूत्राणि। ततः परं तृतीयेऽधिकारे कायमार्गणायां प्रमुखत्वेनाष्टाविंशतिसूत्राणीति समुदायपातनिका कथिता भवति।

अथ गतिमार्गणाधिकारः

संप्रति महादण्डककथनप्रतिज्ञापनाय सूत्रमेकमवतरति —

एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कादव्वो भवदि।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका —**अथाधुना एकादशाधिकारानन्तरं सर्वजीवेषु महादण्डकः कर्तव्यः — प्रतिपादयितव्यो भवति इति श्रीभूतबलिसूरिणा प्रतिज्ञायते।**

अथ महादण्डक नामक बारहवाँ महाधिकार प्रारंभ

मंगलाचरण

श्लोकार्थ — जो महान् वीर योद्धाओं में भी वीर महावीर हैं, महान धैर्यशाली धीरों में भी धीर हैं, जो लोक और अलोक का अवलोकन करने वाले हैं, महान् ज्ञानवानों में भी ज्ञानवान् केवलज्ञानी हैं, महान गणधर आदि पूज्य पुरुषों में भी पूज्य तीर्थंकर हैं, चक्रवर्ती-राजा आदि महान् शक्तिशाली लोगों से भी अधिक अनन्तवीर्यवान् हैं और जो देवों के भी देव महादेव हैं, उन महान् तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की मैं पूजा-वंदना करता हूँ।।१।।

यहाँ तीन अधिकारों में उन्यासी सूत्रों के द्वारा अल्पबहुत्व चूलिका का निरूपण करने हेतु महादण्डक नाम का बारहवाँ महाधिकार कहा जा रहा है। उनमें से प्रथम अधिकार में मुख्यरूप से गतिमार्गणा में अल्पबहुत्व का कथन करने वाले तेंतालिस सूत्र हैं। पुनः द्वितीय अधिकार में इंद्रियमार्गणा में विशेषरूप से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु आठ सूत्र हैं। आगे तृतीय अधिकार में कायमार्गणा में प्रमुखरूप से अट्ठाइस सूत्र हैं। यह सूत्रों की समुदायपातनिका हुई।

अथ गतिमार्गणा अधिकार

अब महादण्डक के कथन की प्रतिज्ञापना हेतु एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

इससे आगे सभी जीवों में महादण्डक करणीय है।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अब यहाँ ग्यारह अधिकारों के पश्चात् सभी जीवों में महादण्डक का कथन करना चाहिए, ऐसा श्री भूतबली आचार्य के द्वारा प्रतिज्ञा की गई है।

अथ कश्चिदाह—**एकादशानियोगद्वारेषु समाप्तेषु किमर्थमेष महादण्डकः कथयितुमारब्धो भवताचार्येण इति चेत् ?**

आचार्यदेवः उच्यते—**क्षुद्रकबंधकस्य एकादशानियोगद्वारे निबद्धस्य चूलिकां कृत्वा महादण्डकः कथ्यते।**

चूलिका नाम किं ?

एकादशानियोगद्वारेषु सूचितार्थस्य विशेषं कृत्वा प्ररूपणा चूलिका नाम।

यद्येवं तर्हि नैषो महादण्डकः चूलिका, अल्पबहुत्वानियोगद्वारसूचितार्थं मुक्त्वान्यत्रानियोगद्वारेषु कथितार्थानामप्ररूपणात् इति चेत् ?

उच्यते—न चैष नियमोऽस्ति यत् सर्वानियोगद्वारसूचितार्थानां विशेषप्ररूपिका या सा चैव चूलिका भवेदिति, किन्तु एकेन द्वाभ्यां सर्वैर्वानियोगद्वारैः सूचितार्थानां विशेषप्ररूपणा चूलिका भवति। तेनैषो महादण्डकश्चूलिका एव, अल्पबहुत्वसूचितार्थस्य विशेषं कृत्वा प्ररूपणात्।

एवं प्रयोजनसूत्रं प्रतिज्ञासूत्रं वा प्ररूपितं।

अधुना प्रकृतार्थप्ररूपणार्थं सप्तदशसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गब्भोवक्कंतिया।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गर्भजा मनुष्याः पर्याप्ताः उपरिकथ्यमानराशिमवलोक्य स्तोकाः भवन्ति। कुतः ? स्वभावात्।**

यहाँ कोई आशंका करता है—ग्यारह अनुयोगद्वारों के समाप्त होने पर इस महादण्डक को कहने का प्रारंभ किसलिए किया जा रहा है ?

आचार्यदेव उक्त शंका का उतर देते हैं—ग्यारह अनुयोगद्वारों में निबद्ध क्षुद्रकबंध की चूलिका करके महादण्डक कहते हैं अर्थात् चूलिका बनाकर उसे महादण्डक कहते हैं।

शंका—चूलिका किसे कहते हैं ?

समाधान—ग्यारह अनुयोगद्वारों में सूचित हुए अर्थ की विशेषता की प्ररूपणा करना चूलिका कही जाती है।

शंका—यदि ऐसा है तो यह महादण्डक चूलिका नहीं हो सकती, क्योंकि यह अल्पबहुत्वानुयोगद्वार से सूचित हुए अर्थ को छोड़कर अन्य अनुयोगद्वारों में कहे गये अर्थों की प्ररूपणा नहीं करती हैं ?

इसका समाधान करते हैं—कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि सर्व अनुयोगद्वारों से सूचित अर्थों की विशेष प्ररूपणा करने वाली ही चूलिका हो किन्तु एक, दो अथवा सब अनुयोगद्वारों से सूचित अर्थों की विशेष प्ररूपणा करना चूलिका है। इसलिए यह महादण्डक अधिकार चूलिका ही है, क्योंकि वह अल्पबहुत्वानुयोगद्वार से सूचित हुए अर्थ की विशेषरूप से प्ररूपणा करने वाली है।

इस प्रकार प्रयोजनसूत्र अथवा प्रतिज्ञासूत्र प्ररूपित किया गया है।

अब प्रकृत अर्थ का प्ररूपण करने हेतु सत्रह सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

गर्भोपक्रांतिक पर्याप्त मनुष्य सबसे स्तोक हैं।।२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गर्भज मनुष्य पर्याप्त जीव आगे कही जाने वाली सब राशियों को देखते हुए स्तोक हैं।

ऐसा क्यों है ? क्योंकि ऐसा स्वभाव से है।

एते कियन्तो भवन्ति ?

मनुष्याणां चतुर्भागाः सन्ति।

मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—त्रीणि रूपाणि, मनुष्यगर्भजचतुर्भागेन पर्याप्तद्रव्येण तस्यैव त्रिषु चतुर्भागेषु अपवर्तितेषु त्रिरूपोपलंभात्।**

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र गुणकारः—संख्यातसमयाः। 'अत्र केऽपि आचार्याः सप्तरूपाणि, केऽपि पुनः चत्वारि रूपाणि केऽपि सामान्येन संख्यातानि रूपाणि गुणकार' इति भणन्ति। तेनात्र गुणकारे त्रयः उपदेशाः सन्ति। त्रयाणां मध्ये एकश्चैव जात्योपदेशः—श्रेष्ठोपदेशः, सोऽपि न ज्ञायते, विशिष्टोपदेशाभावात्। तस्मात् त्रयाणामपि संग्रहः कर्तव्यः[१]।**

अत्राचार्यदेवेन एकस्य निर्णयमकृत्वा स्वस्य पापभीरुत्वस्य परिचयो दत्तः। एतदुदाहरणं संप्रत्यपि सर्वैः विद्वद्भिः साधुभिश्च गृहीतव्यं।

बादरतेउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गतिमार्गणामुल्लंघ्य मार्गणान्तरकथनादसंबद्धमिदं सूत्रमिति न वक्तव्यं,**

शंका—ये गर्भोपक्रान्तिक मनुष्य कितने हैं ?

समाधान—मनुष्यों के चतुर्थ भागप्रमाण गर्भ जन्म लेने वाले मनुष्य होते हैं।

सूत्रार्थ—

पर्याप्त मनुष्यों से मनुष्यिनियाँ संख्यातगुणी हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार तीन रूप हैं, क्योंकि मनुष्य गर्भोपक्रान्तिकों के चतुर्थ भागप्रमाण पर्याप्त द्रव्य से उसी के तीन चतुर्थ भागों का अपवर्तन करने पर तीन रूप उपलब्ध होते हैं।

सूत्रार्थ—

मनुष्यिनियों से सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार संख्यात समय है। यहाँ कोई आचार्य सात रूप, कोई चार रूप और कितने ही आचार्य सामान्य से संख्यातरूप गुणकार है, ऐसा कहते हैं। इसलिए यहाँ गुणकार के विषय में तीन उपदेश हैं। तीनों के मध्य में एक ही जात्य—श्रेष्ठ उपदेश है परन्तु वह नहीं जाना जाता है, क्योंकि इस विषय में विशिष्ट उपदेश का अभाव है। इस कारण तीनों का ही संग्रह करना चाहिए।

यहाँ आचार्य ने एक का निर्णय नहीं करके अपनी पापभीरुता का परिचय दिया है। यह उदाहरण आज भी सभी विद्वानों एवं साधुओं को ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ—

बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गतिमार्गणा का उल्लंघन कर मार्गणान्तर में जाने से यह सूत्र असंबद्ध

---

१. धवलापुस्तक-७, पृष्ठ ५७६-५७७।

अर्पितमार्गणां मुक्त्वान्यमार्गणानामगमनस्य एकादशानियोगद्वारेष्वेवावस्थानात्। अत्र पुनः न स नियमोऽस्ति, सर्वमार्गणाजीवेषु ''महादण्डओ कादव्वो'' इति अभ्युपगमात्।

अत्र को गुणकारः ?

असंख्याताः प्रतरावलिकाः, सर्वार्थसिद्धिदेवैः बादरतेजःपर्याप्तराशौ भागे कृते असंख्यातानां प्रतरावलीनामुपलंभात्।

अणुत्तरविजय-वैजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवा असंखेज्ज-गुणा।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र देवविशेषणं, तत्रतनपृथिवीकायिकादिप्रतिषेधार्थं वर्तते।**

गुणकारः—पल्योपमस्यासंख्यातभागः असंख्यातानि पल्योपमप्रथमवर्गमूलानि।

अणुदिसविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गुणकारः—संख्याताः समयाः, मनुष्येभ्योऽनुत्तरेषूत्पद्यमानजीवान् दृष्ट्वा तेभ्यश्चैवानुदिशविमानदेवेषूत्पद्यमानानां जीवानां संख्यातगुणानामुपलंभात्, स्वभावादेव।**

उवरिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।८।।

को गुणकारः—संख्याताः समयाः सन्ति।

है, ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि विवक्षित मार्गणा को छोड़कर अन्य मार्गणाओं में न जाने का नियम ग्यारह अनुयोगद्वारों में ही अवस्थित है। किन्तु यहाँ वह नियम नहीं है, क्योंकि 'सर्व मार्गणाओं के जीवों में महादण्डक करना चाहिए', ऐसा स्वीकार किया गया है।

यहाँ गुणकार क्या है ?

असंख्यात प्रतरावलियाँ गुणकार है, क्योंकि सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवों से बादर तेजस्कायिक पर्याप्त राशि के भाजित करने पर असंख्यात प्रतरावलियाँ उपलब्ध होती हैं।

सूत्रार्थ—

अनुत्तरों में विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानवासी देव असंख्यातगुो हैं।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ देव विशेषण, वहाँ स्थित पृथिवीकायिकादि जीवों के प्रतिषेधार्थ दिया है।

यहाँ गुणकार पल्योपम के असंख्यातें भाग प्रमाण है जो असंख्यात पल्योपम प्रथम वर्गमूल के बराबर है। अर्थात् यहाँ गुणकार बादर तेजस्कायिक पर्याप्त द्रव्य से गुणित वहाँ के अवहारकाल से अपवर्तित पल्योपम प्रमाण है।

सूत्रार्थ—

अनुदिश विमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार संख्यातसमय प्रमाण है, क्योंकि मनुष्यों में से अनुत्तरों में उत्पन्न होने वाले जीवों को देखकर उनमें से ही अनुदिशविमानवासी देवों में उत्पन्न होने वाले जीव संख्यातगुणे पाये जाते हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव से ही है।

सूत्रार्थ—

उपरिम-उपरिमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे है।।८।।

टीका—गुणकार क्या है ? संख्यात समय प्रमाण गुणकार है।

उवरिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।९।।

को गुणकारः ?—संख्यातसमयाः।

उवरिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१०।।

अल्पपुण्यानां जीवानां बहूनां संभवात्।

मज्झिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।११।।

अल्पायुष्काणां जीवानां बहूनामुपलंभात्।

मज्झिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१२।।

सर्वत्र मंदपुण्यजीवानां बहुत्वोपलंभात्।

मज्झिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१३।।

मंदतपसां बहूनामुपलंभात्।

हेट्ठिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१४।।

हेट्ठिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१५।।

हेट्ठिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१६।।

आरणच्चुदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१७।।

आणदपाणदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।।१८।।

उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक विमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।९।।

टीका—गुणकार क्या है ? संख्यातसमय गुणकार है।

उपरिम—अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१०।।

टीका—क्योंकि यहाँ अल्प पुण्य वाले बहुत जीवों की उत्पत्ति संभव है।

उनसे मध्यम उपरिमग्रैवेयक विमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।११।।

टीका—क्योंकि यहाँ अल्पायु वाले बहुत जीव पाए जाते हैं।

उनसे मध्यम-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१२।।

टीका—क्योंकि सर्वत्र मंद पुण्य वाले जीव बहुत पाए जाते हैं।

उनसे मध्यम अधस्तन ग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यतागुणे हैं।।१३।।

टीका—क्योंकि मंद तप वाले बहुत जीव पाए जाते हैं।

उनसे अधस्तन-उपरिमग्रैवेयक विमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१४।।

उनसे अधस्तन-मध्यमग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१५।।

उनसे अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयकविमानवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१६।।

उनसे आरण-अच्युतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१७।।

उनसे आनत-प्राणतकल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र सर्वत्र गुणकारः—संख्याताः समयाः गृहीतव्याः।**

संप्रति नारकेभ्य आरभ्य देवीपर्यन्तानामल्पबहुत्वकथनाय पंचविंशतिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।।१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**को गुणकारः ? जगच्छ्रेण्याः असंख्यातभागः यस्तु असंख्यानि श्रेणिप्रथमवर्गमूलानि। कुतः ? आनतप्राणतद्रव्येण पल्योपमस्यासंख्यातभागेन श्रेणिद्वितीयवर्गमूलं गुणयित्वा श्रेणिमपवर्तिते गुणकारः उपलभ्यते।**

छट्ठीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।।२०।।

गुणकारः—श्रेणितृतीयवर्गमूलम्।

सदारसहस्सारकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।२१।।

गुणकारः—श्रेणिचतुर्थवर्गमूलं।

सुक्कमहासुक्ककप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।२२।।

गुणकारः—श्रेणिपंचमवर्गमूलं।

पंचमपुढवीएणेरइया असंखेज्जगुणा।।२३।।

गुणकारः—श्रेणिषष्ठवर्गमूलं।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सर्वत्र गुणकार संख्यातसमयप्रमाण ग्रहण करना चाहिए।

अब नारकियों से आरंभ करके देवी पर्यन्त का अल्पबहुत्व बतलाने हेतु पच्चीस सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

सप्तम पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे हैं।।१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार क्या है ? जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणकार है, जो जगत्श्रेणी के असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है।

ऐसा क्यों है ?

क्योंकि, आनत, प्राणत कल्प के पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्य से जगत्श्रेणी के द्वितीय वर्गमूल को गुणित करके उससे जगत्श्रेणी को अपवर्तित करने पर उक्त गुणकार उपलब्ध होता है।

सूत्रार्थ—

उनसे छठी पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे हैं।।२०।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के तृतीय वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे शतार-सहस्त्रार कल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं।।२१।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के चतुर्थ वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे शुक्र-महाशुक्र कल्पवासी देव असंख्यतागुणे हैं।।२२।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के पाँचवें वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे पंचम पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे हैं।।२३।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के छठे वर्गमूल प्रमाण है।

लांतवकाविट्ठकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।२४।।

गुणकारः — श्रेणिसप्तमवर्गमूलं।

चउत्थीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।।२५।।

गुणकारः — श्रेणि-अष्टमवर्गमूलं।

बम्ह-बम्हुत्तरकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।२६।।

गुणकारः — श्रेणिनवमवर्गमूलं।

तदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।।२७।।

गुणकारः — श्रेणिदशमवर्गमूलं।

माहिंदकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।२८।।

गुणकारः — श्रेण्येकादशवर्गमूलस्य संख्यातभागः।

कश्चिदाह — सनत्कुमारमाहेन्द्रद्रव्यमेकत्रीकृत्य किन्न प्ररूपितम् ?

आचार्यः प्राह — न, यथा पूर्वोक्तयोः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोरेक एव स्वामी भवति, तथात्र द्वयोः कल्पयोरेकश्चैव स्वामी न भवतीति ज्ञापनार्थं पृथग् निर्देशात्।

सणक्कुमारकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **गुणकारः संख्याताः समयाः।**

उनसे लान्तव-कापिष्ठकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं।।२४।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के सातवें वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे चतुर्थ पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे हैं।।२५।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के आठवें वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं।।२६।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के नवमें वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे तृतीय पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे हैं।।२७।।

यहाँ गुणकार श्रेणी के दशवें वर्गमूल प्रमाण है।

उनसे माहेन्द्रकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार जगत्श्रेणी के ग्यारहवें वर्गमूल का संख्यातवाँ भाग है।

यहाँ कोई शंका करता है — सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के द्रव्य को इकट्ठा करके क्यों नहीं कहा ?

तब आचार्य समाधान देते हैं — नहीं, जिस प्रकार पूर्वोक्त दो-दो कल्पों का एक ही स्वामी होता है, उस प्रकार से यहाँ दो कल्पों का एक ही स्वामी नहीं होता है, इस बात के ज्ञापनार्थ पृथक् निर्देश किया है।

सूत्रार्थ —

उनसे सानत्कुमार कल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं।।२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार संख्यातसमय है।

कुतः ?

उत्तरदिशं मुक्त्वा शेषासु तिसृषु दिक्षु स्थितश्रेणिबद्ध-प्रकीर्णकनामविमानेषु सर्वेन्द्रकेषु च निवसतां देवानां ग्रहणात्।

विदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।।३०।।

गुणकारः श्रेणिद्वादशवर्गमूलंस्वकसंख्यातभागाभ्यधिकं।

मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।३१।।

गुणकारः — श्रेणिद्वादशवर्गमूलस्यासंख्यातभागः।

कः प्रतिभागः ?

मनुष्यापर्याप्तानामवहारकालः प्रतिभागः।

ईसाणकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।३२।।

गुणकारः सूच्यंगुलस्य संख्यातभागः।

देवीओ संखेज्जगुणाओ।।३३।।

गुणकारः संख्याताः समयाः। केऽपि आचार्याः द्वात्रिंशद्रूपाणि कथयन्ति। ईशानवासिन्यो देव्यो गृहीतव्याः।

सोधम्मकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।।३४।।

कैसे ? क्योंकि उत्तर दिशा को छोड़कर शेष तीन दिशाओं में स्थित श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक नाम के विमानों में तथा सब इन्द्रक विमानों में रहने वाले देवों का यहाँ ग्रहण किया गया है।

सूत्रार्थ —

उनसे द्वितीय पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे है।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार अपने संख्यातवें भाग से अधिक जगत्श्रेणी का बारहवाँ वर्गमूल प्रमाण है।

सूत्रार्थ —

उनसे अपर्याप्त मनुष्य असंख्यातगुणे हैं।।३१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ गुणकार जगत्श्रेणी के बारहवें वर्गमूल का असंख्यातवाँ भाग हैं।

प्रतिभाग क्या है ?

यहाँ मनुष्य अपर्याप्तों का अवहारकाल प्रतिभाग है।

उनसे ईशानकल्पवासी देव असंख्यातगुणे हैं।।३२।।

यहाँ गुणकार सूच्यंगुल का संख्यातवाँ भाग है।

उनसे ईशानकल्पवासिनी देवियाँ संख्यातगुणी हैं।।३३।।

टीका — यहाँ गुणकार संख्यात समय है कुछ आचार्य गुणकार को बत्तीस रूप कहते हैं। ईशान स्वर्ग की देवियों को भी यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

उनसे सौधर्म कल्पवासी देव संख्यातगुणे हैं।।३४।।

गुणकारः संख्यातसमयाः।

देवीओ संखेज्जगुणाओ।।३५।।

अत्र सौधर्मकल्पवासिन्यो देव्यः गृहीतव्याः। गुणकारः संख्याताः समयाः द्वात्रिंशद्रूपाणि वा।

पढमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।।३६।।

को गुणकारः ? स्वकसंख्यातभागाभ्यधिकघनांगुलतृतीयवर्गमूलं।

भवणवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।३७।।

गुणकारः घनांगुलद्वितीयवर्गमूलस्य संख्यातभागः।

देवीओ संखेज्जगुणाओ।।३८।।

भवनवासिनीदेव्यः संख्यातगुणाः, संख्यातसमयाः द्वात्रिंशद्रूपाणि वा।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ।।३९।।

गुणकारः श्रेण्याः असंख्यातभागोऽसंख्यातानि श्रेणिप्रथमवर्गमूलानि।

वाणवेंतरदेवा संखेज्जगुणा।।४०।।

गुणकारः—संख्यातसमयाः। एतस्मात् सूत्रात् जीवस्थानद्रव्यव्याख्यानं न घटते इति ज्ञायते।

देवीओ संखेज्जगुणाओ।।४१।।

यहाँ गुणकार संख्यात समय है।

उनसे सौधर्मकल्पवासिनी देवियाँ संख्यातगुणी हैं।।३५।।

यहाँ सौधर्म कल्प में निवास करने वाली देवियों को ग्रहण करना चाहिए। यहाँ गुणकार संख्यातसमय है अथवा बत्तीसरूप है।

उनसे प्रथम पृथिवी के नारकी असंख्यातगुणे हैं।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—गुणकार क्या है ? अपने संख्यातवें भाग से अधिक घनांगुल का तृतीय वर्गमूल यहाँ गुणकार है।

उनसे भवनवासी देव असंख्यातगुणे हैं।।३७।।

यहाँ गुणकार घनांगुल द्वितीय वर्गमूल का संख्यातवाँ भाग हैं।

उनसे भवनवासिनी देवियाँ संख्यातगुणी हैं।।३८।।

यहाँ भवनवासिनी देवियाँ संख्यातगुणी हैं, यहाँ गुणकार संख्यातसमय अथवा बत्तीसरूप है।

उनसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी असंख्यातगुणी हैं।।३९।।

यहाँ गुणकार जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, जो कि श्रेणी के प्रथम वर्गमूल प्रमाण असंख्यात हैं।

उनसे वानव्यन्तर देव संख्यातगुणे हैं।।४०।।

यहाँ गुणकार संख्यात समय है। इस सूत्र से जीवस्थान का द्रव्यव्याख्यान नहीं घटित होता है, ऐसा जाना जाता है।

उनसे वानव्यंतर देवियाँ संख्यातगुणी है।।४१।।

वानव्यन्तरदेव्यः संख्यातगुणाः। गुणकारः संख्यातसमयाः द्वात्रिंशद्रूपाणि वा।

जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा।।४२।।

गुणकारः संख्यातसमयाः।

देवीओ संखेज्जगुणाओ।।४३।।

ज्योतिष्कवासिनीदेव्यः संख्यातगुणाः सन्ति। अत्रापि गुणकारः संख्यातसमयाः द्वात्रिंशद् रूपाणि वा ज्ञातव्या भवति।

तात्पर्यमेतत्—**अत्राल्पबहुत्वनिरूपणे मनुष्याः पर्याप्ताः सर्वस्तोकाः सर्वेभ्योऽधिकाः ज्योतिष्कदेव्यो सन्ति। अग्रे चतुरिन्द्रियादयोऽपि अधिका अधिकाः उच्यन्ते। एतज्ज्ञात्वा मनुष्यपर्यायस्य दुर्लभत्वं निश्चित्य च सम्यग्दर्शनरत्नं संप्राप्य जिनागममभ्यस्य सम्यग्ज्ञानमाराधनीयं पुनश्च सम्यक्चारित्रमवलम्ब्य संसारसमुद्रतरणाय पुरुषार्थो विधेयः।**

एवं गतिमार्गणाप्रमुखत्वेनाल्पबहुत्वकथनत्वेन त्रिचत्वारिंशत्सूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे महादण्डकनाम-द्वादशे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणायाल्पबहुत्व-निरूपकोऽयं प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

यहाँ वानव्यन्तर जाति की देवियाँ संख्यातगुणी होती हैं, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ गुणकार संख्यातसमय अथवा बत्तिसरूप है।

उनसे ज्योतिषी देव संख्यातगुणे हैं।।४२।।

यहाँ गुणकार संख्यातसमयप्रमाण है।

उनसे ज्योतिषी देवियाँ संख्यातगुणी हैं।।४३।।

यहाँ ज्योतिष्कवासी देवियाँ संख्यातगुणी हैं, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ भी गुणकार संख्यातसमय अथवा बत्तिसरूप जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि—अल्पबहुत्व के निरूपण में पर्याप्त मनुष्य सबसे स्तोक—कम हैं और सबसे अधिक ज्योतिषी देवियाँ हैं, आगे चार इन्द्रिय आदि जीव भी अधिक-अधिक कहे हैं। ऐसा जानकर मनुष्य पर्याय की दुर्लभता को समझकर सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को प्राप्त करके जिनशास्त्रों का अभ्यास-स्वाध्याय-अध्ययन करते हुए सम्यग्ज्ञान की आराधना करना चाहिए, पुनश्च सम्यक्चारित्र का अवलम्बन लेकर संसारसमुद्र को तिरने का पुरुषार्थ करना चाहिए।

इस प्रकार गतिमार्गणा की प्रमुखता से अल्पबहुत्व का कथन करने वाले तेंतालिस सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में महादण्डक नाम के बारहवें महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में गतिमार्गणा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाला प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

इदानीमिन्द्रियमार्गणाप्रमुखत्वेनाल्पबहुत्वप्रतिपादनाय सूत्राष्टकमवतार्यन्ते —

चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गुणकारः संख्यातसमयाः। प्रतरांगुलस्य असंख्यातभागेन चतुरिन्द्रियपर्याप्तावहार-कालेन ज्योतिष्कदेवीनामवहारकालभूतसंख्यातप्रतरांगुलेषु अपवर्तितेषु संख्यातरूपोपलंभात्।**

पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।।४५।।

अत्र विशेषः — चतुरिन्द्रियपर्याप्तानामसंख्यातभागः।

बेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचेन्द्रियपर्याप्तानामसंख्यातभागः विशेषः गृहीतव्यः।**

तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वीन्द्रियपर्याप्तानामसंख्यातभागो विशेषः गृहीतव्यः।**

अथ इन्द्रियमार्गणा अधिकार

अब यहाँ इन्द्रियमार्गणा की प्रमुखता से अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने हेतु आठ सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — गुणकार संख्यात समय है, क्योंकि प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवों के अवहारकाल से ज्योतिषी देवियों के अवहारकाल भूत संख्यात प्रतरांगुलों के अपवर्तित करने पर संख्यातरूप उपलब्ध होते हैं।

सूत्रार्थ —

उनसे पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ विशेष का प्रमाण चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

सूत्रार्थ —

उनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ विशेष का प्रमाण पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण ग्रहण करना चाहिए।

सूत्रार्थ —

उनसे त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दो इन्द्रिय पर्याप्त जीवों का असंख्यातवाँ भाग प्रमाण यहाँ विशेष ग्रहण करना चाहिए।

पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।४८।।
चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।।४९।।
तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।।५०।।
बेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रीन्द्रियपर्याप्तापेक्षया पंचेन्द्रियापर्याप्तानामसंख्यातगुणाः। अत्र गुणकारः—आवलिकायाः असंख्यातभागः। चतुरिन्द्रियापर्याप्ताः विशेषाधिकाः—पंचेन्द्रियापर्याप्तानामसंख्यातभागः। त्रीन्द्रियापर्याप्ताः विशेषाधिकाः—चतुरिन्द्रियापर्याप्तानामसंख्यातभागः विशेषोऽस्ति। द्वीन्द्रियापर्याप्ताश्च विशेषाधिकाः—त्रीन्द्रियपर्याप्तानामसंख्यातभागः। अत्र त्रिसूत्रेषु प्रतिभागःआवलिकायाः असंख्यातभागो गृहीतव्यः।**

एवं इन्द्रियमार्गणाप्रमुखत्वेनाल्पबहुत्वप्रतिपादनेऽष्टसूत्राणि गतानि।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे महादण्डकनाम-द्वादशे महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां इन्द्रियमार्गणायामल्पबहुत्व-निरूपकोऽयं द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

सूत्रार्थ—

उनसे पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।४८।।
उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।४९।।
उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।५०।।
उनसे द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवों की अपेक्षा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों का प्रमाण असंख्यातगुणा है। यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। उनसे चार इन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं। यहाँ विशेष का अर्थ पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उनसे तीन इन्द्रिय अपर्याप्तकजीव विशेष अधिक हैं। चार इन्द्रिय अपर्याप्तकों का असंख्यातवाँ भाग यहाँ विशेष जानना है। उनसे दो इन्द्रिय अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं। यहाँ विशेष से तीन इन्द्रिय अपर्याप्तकों का असंख्यातवाँ भाग जानना। यहाँ तीन सूत्रों में प्रतिभाग आवली का असंख्यातवाँ भाग ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार से इन्द्रियमार्गणा की प्रमुखता से अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में महादण्डक नाम के बारहवें महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्त-चिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा में अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाला द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

संप्रति कायमार्गणाप्रमुखत्वेनाल्पबहुत्वनिरूपणाय अष्टाविंशतिसूत्राण्यवतार्यन्ते —

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**द्वीन्द्रियापर्याप्तजीवापेक्षया इमे जीवाः असंख्यातगुणाः, अत्र गुणकारः पल्योपमस्यासंख्यातभागः।**

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५३।।

गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः।

बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५४।।

बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५५।।

द्वयोः सूत्रयोः गुणकारः आवलिकाया असंख्यातभागः।

बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५६।।

गुणकारः असंख्याताः श्रेण्यः प्रतरांगुलस्यासंख्यातभागमात्राः सन्ति।

बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५७।।

गुणकारः असंख्याता लोकाः। तेषामर्द्धच्छेदनानि सागरोपमं पल्योपमस्यासंख्यातभागेनोनं।

अथ कायमार्गणा अधिकार

अब कायमार्गणा की प्रमुखता से अल्पबहुत्व का निरूपण करने हेतु अट्ठाईस सूत्र अवतीर्ण किये जा रहे हैं —

सूत्रार्थ—

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दो इन्द्रियअपर्याप्त जीवों की अपेक्षा ये जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

उनसे बादर निगोदजीव निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५३।।

टीका—यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

उनसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५४।।

उनसे बादर अप्कायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५५।।

टीका—यहाँ दोनों सूत्रों का गुणकार आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

उनसे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५६।।

टीका—यहाँ गुणकार असंख्यात जगत्श्रेणियाँ हैं, जो कि प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

उनसे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५७।।

टीका—यहाँ गुणकार असंख्यातलोकप्रमाण है। उनके अर्द्धच्छेद पल्योपम के असंख्यातवें भाग से

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंख्याता लोकाः गुणकारोऽस्ति, तेषामर्द्धच्छेदनानि पल्योपमस्यासंख्यातभागः।**

बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।५९।।

गुणकारः पूर्ववत्।

बादरपुढविकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।६०।।

बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।६१।।

बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिषु सूत्रेषु गुणकारः असंख्याता लोकाः कथ्यन्ते।**

सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।६३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**गुणकारः असंख्याता लोकाः। तेषामर्द्धच्छेदनानि असंख्याता लोकाः।**
कथं ज्ञायते ? गुरूपदेशाद् ज्ञायते।

सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया।।६४।।

अत्र विशेषोऽसंख्याता लोकाः, सूक्ष्मतेजस्कायिकापर्याप्तानामसंख्यातभागः।
कः प्रतिभागः ? असंख्याता लोकाः।

हीन सागरोपमप्रमाण हैं।

उनसे बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।५८।।

टीका—यहाँ असंख्यात लोकप्रमाण गुणकार है, उनके अर्द्धच्छेद पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

उनसे बादर निगोद जीव निगोद प्रतिष्ठित अपर्याप्त असंख्यातगुणे हैं।।५९।।

टीका—यहाँ गुणकार पूर्व के समान ही है।

उनसे बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।६०।।

उनसे बादर अप्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।६१।।

उनसे बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।६२।।

टीका—तीनों सूत्रों में गुणकार असंख्यातलोकप्रमाण बताया गया है।

उन उपर्युक्त बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवों से सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।६३।।

टीका—यहाँ गुणकार असंख्यात लोक प्रमाण है। उनके अर्द्धच्छेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

उनसे सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।६४।।

टीका—यहाँ विशेष का प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण है, जो कि सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तों के असंख्यातवें भाग है। प्रतिभाग क्या है ? असंख्यातवाँ लोक प्रतिभाग है।

सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।६५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**विशेषोऽसंख्याता लोकाः, सूक्ष्मपृथिवीकायिकापर्याप्तानामसंख्यातभागः।**

सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।।६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**विशेषोऽत्रापि असंख्याता लोकाः, सूक्ष्माप्कायिकापर्याप्तानामसंख्यातभागः। अत्रापि प्रतिभागः—असंख्याता लोकाः।**

सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।।६७।।

गुणकारः संख्यातसमयाः।

सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।६८।।

सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।६९।।

सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।।७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**त्रिष्वपि सूत्रेषु विशेषः असंख्याता लोका ज्ञातव्याः।**

अकाइया अणंतगुणा।।७१।।

गुणकारः अभव्यसिद्धिकैर्जीवैरनन्तगुणोऽस्ति, इमेऽकायिकाः सिद्धा एव।

उनसे सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।६५।।

टीका—यहाँ विशेष असंख्यातलोक हैं, जो कि सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक जीवों के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

उनसे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।६६।।

टीका—यहाँ भी विशेष का प्रमाण असंख्यातलोक प्रमाण है, जो कि सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तकों का असंख्यातवाँ भाग है।

यहाँ भी प्रतिभाग का प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण है।

उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।६७।।

यहाँ गुणकार संख्यात समय है।

उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।६८।।

उनसे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।६९।।

उपर्युक्त जीवों की अपेक्षा सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त जीव विशेष अधिक हैं।।७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीनों सूत्रों में विशेष का प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण जानना चाहिए।

उनसे अकायिक जीव अनन्तगुणे हैं।।७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार अभव्यसिद्धिक जीवों से अनन्तगुणा है। ये अकायिक जीव सिद्धपरमेष्ठी ही होते हैं।

बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा।।७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असंख्यातलोकगुणिताकायिकैः अपवर्तितसर्वजीवराशिप्रमाणत्वात्।**

बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।७३।।

गुणकारोऽसंख्याता लोकाः।

बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।७४।।

अत्र विशेषः बादरवनस्पतिकायिकपर्याप्तमात्रः।

सुहुमवणप्फदिकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।।७५।।

गुणकारः असंख्याता लोकाः।

सुहुमवणप्फदिकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा।।७६।।

गुणकारः संख्यातसमयाः।

सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।७७।।

अत्र विशेषः—सूक्ष्मवनस्पतिकायिकापर्याप्तमात्रोऽस्ति।

वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।।७८।।

विशेषः—बादरवनस्पतिकायिकमात्रः।

इन सिद्ध जीवों की अपेक्षा बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव अनन्तगुणे हैं।।७२।।

टीका—वे असंख्यातलोक से गुणित अकायिक जीवों से अपवर्तित सर्वजीवराशि प्रमाण हैं।

उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण है।

उनसे बादर वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष का मान बादरवनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवों के बराबर है।

उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे हैं।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार असंख्यातलोक प्रमाण है।

उपर्युक्त जीवों की अपेक्षा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव संख्यातगुणे हैं।।७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ गुणकार संख्यातसमय प्रमाण है।

उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष का प्रमाण सूक्ष्मवनस्पतिकायिक अपर्याप्त जीवों के बराबर है।

उनकी अपेक्षा वनस्पतिकायिक जीव विशेष अधिक हैं।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष का प्रमाण बादरवनस्पतिकायिक जीवों के प्रमाण सदृश है।

णिगोदजीवा विसेसाहिया।।७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र विशेषः—बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीरबादरनिगोदप्रतिष्ठितमात्रोऽस्ति।**
एवं कायमार्गणाप्रमुखाल्पबहुत्वेनाष्टाविंशतिसूत्राणि गतानि।

अत्र उपसंहारः क्रियते—**अस्मिन्नल्पबहुत्वमहादण्डकनाममहाधिकारे ''सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गब्भोवक्कंतिया'' इति सूत्रादारभ्य ''णिगोदजीवा विसेसाहिया'' इति एकोनाशीति-अंकेनान्तिमसूत्रपर्यन्तं विशेषेण चूलिकारूपेण वाल्पबहुत्वं निरूपितम्। एतत्पठित्वा प्रत्यहं प्रतिक्षणं च चिन्तनीयमस्माभिः—**

पर्याप्तमनुष्याणां संख्या केवलमेकोनत्रिंशदंकप्रमाणास्ति, निगोदजीवानां च अनन्तानन्तप्रमाणाः। निगोदपर्यायेभ्यो मनुष्यपर्यायत्वं अतीव दुर्लभं, अस्मिन् विषये केवलमेकमेवोदाहरणं दृश्यते आगमे। तथाहि—

अदृष्टपूर्वतीर्थेशाः, प्रविष्टाः समवस्थितिम्।
कदाचिच्चक्रिणा सार्धं, विवर्द्धनपुरोगमाः।।३।।
क्लिष्टाः स्थावरकायेष्वनादिमिथ्यात्वदृष्टयः।
दृष्ट्वा भगवतो लक्ष्मीं राजपुत्राः सुविस्मिताः।।४।।
अन्तर्मुहूर्तकालेन, प्रतिपन्नसुसंयमाः।
त्रयोविंशान्यहो चित्रं, शतानि नवभिर्बभुः[१]।।५।।

इन सबकी अपेक्षा निगोद जीव विशेष अधिक हैं।।७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ विशेष का प्रमाण बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवों के प्रमाण के बराबर है।

इस प्रकार कायमार्गणा की प्रमुखता से अल्पबहुत्व का वर्णन करने वाले अट्ठाईस सूत्र पूर्ण हुए।

अब यहाँ चूलिका का उपसंहार किया जा रहा है—

इस अल्पबहुत्व प्रकरण के महादण्डक अधिकार में ''गर्भ जन्म को प्राप्त पर्याप्तक मनुष्य सबसे कम हैं'' इस सूत्र से आरंभ करके ''निगोदिया जीव विशेष अधिक हैं'' इस प्रकार उन्यासी अंक के द्वारा अंतिम सूत्र पर्यन्त विशेषरूप से अथवा चूलिकारूप से अल्पबहुत्व निरूपित किया गया है, ऐसा पढ़कर हम सभी को प्रतिदिन और प्रतिक्षण चिन्तन करना चाहिए कि—

पर्याप्त मनुष्यों की संख्या केवल उनतीस अंक प्रमाण है और निगोदिया जीवों की संख्या अनन्तानन्त प्रमाण है। निगोद पर्याय से मनुष्य पर्याय की प्राप्ति अतीव दुर्लभ है। इस विषय में केवल एक ही उदाहरण आगम में देखा जाता है। जो इस प्रकार है—

श्लोकार्थ—किसी समय चक्रवर्ती भरत के साथ विवर्द्धनकुमार आदि नौ सौ तेईस राजकुमार भगवान् के समवसरण में प्रविष्ट हुए। उन्होंने पहले कभी तीर्थंकर के दर्शन नहीं किये थे।।३।।

वे सभी राजकुमार अनादि मिथ्यादृष्टि थे और अनादिकाल से ही स्थावरकायिक जीवों में संक्लेश को प्राप्त हुए थे। भगवान की समवसरण लक्ष्मी को देखकर वे सभी आश्चर्यचकित हो गये।।४।।

अहो! आश्चर्य है कि समवसरण में पहुँचकर उन सभी नौ सौ तेईस राजकुमारों ने अन्तर्मुहूर्त मात्र में संयम को प्राप्त कर लिया।।५।।

---

१. हरिवंशपुराण सर्ग १२।

विवर्द्धनकुमारादयो भरतचक्रिणः पुत्राः त्रयोविंशत्यधिकनवशतप्रमाणाः स्वपित्रा सह श्रीऋषभदेवस्य समवसरणे आगत्य भगवन्तं समवसरणवैभवसहितं विलोक्य भक्तिभावेन वंदनां कृत्वोपदेशं श्रुत्वा जैनेश्वरीं दीक्षां जगृहुः। ये सर्वे तीर्थकरपौत्रा निगोदपर्यायेण स्थावरकायेन आजग्मुः। एते प्रथमबारं मनुष्यपर्यायं संप्राप्यैव मोक्षं प्रापुः, एतदाश्चर्यमेव।

एतस्माद्विपर्ययस्य कथनं श्रीपद्मनन्दि-आचार्यवचनेनैव द्रष्टव्यं—

इंद्रत्वं च निगोदतां च बहुधा मध्ये तथा योनयः।
संसारे भ्रमता चिरं यदखिलाः प्राप्ता मयानन्तशः।।
तन्नापूर्वमिहास्ति किंचिदपि मे हित्वा विकल्पावलिम्।
सम्यग्दर्शनबोधवृत्तपदवीं तां देव! पूर्णां कुरु[१]।।३१।।

एतेन ज्ञायते अनन्तवारान् मया निगोदपर्यायत्वं प्राप्तं।

अस्योदाहरणमपि महापुराणे दृश्यते—

विद्याधरराज्ञो महाबलस्य चतुःषु मंत्रिषु मध्ये द्वौ मंत्रिणौ निगोदं जग्मतुः।

एकदा श्रीधरदेवः स्वगुरुं प्रीतिंकरसर्वज्ञं नमस्कृत्य पपृच्छ—

भगवन्! मम त्रयो मंत्रिणः कीदृशीं गतिं प्रापुः ?

तदेवोच्यते—

महाबलभवे येऽस्मन्मंत्रिणो दुर्दृशस्त्रयः।
क्वाद्य ते लब्धजन्मानः कीदृशीं वा गतिंश्रिताः।।४।।

भरतचक्रवर्ती के विवर्धन कुमार आदि नौ सौ तेईस पुत्रों ने अपने पिता के साथ तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव के समवसरण में आकर भगवान को समवसरण वैभव से सहित देखकर उनकी भक्तिभाव से वंदना की और उनका उपदेश सुनकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली थी। ये सभी तीर्थंकर भगवान के पौत्र निगोद पर्याय से-स्थावरकाय से आये थे। सभी ने प्रथम बार मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके उसी भव से मोक्ष प्राप्त कर लिया, यह आश्चर्य की ही बात है।

इससे विपरीत अवस्था का कथन श्रीपद्मनंदि आचार्यदेव के वाक्यों में द्रष्टव्य है—

श्लोकार्थ—हे भगवन्! इस संसार में भ्रमण करते हुए मैंने इन्द्रपना, निगोदपना एवं बीच में अन्य भी अनेक योनियों में अनन्तबार जन्म धारण किया है। इसलिए ये कोई भी पदवी मेरे लिए अपूर्व नहीं हैं, किन्तु मोक्ष को प्रदान करने वाली सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की पदवी को हे देव! अब मुझमें पूर्ण कीजिए—प्रदान कीजिए।।३१।।

इससे ज्ञात होता है कि मैंने अनन्तबार निगोदपर्याय प्राप्त की है।

इसका उदाहरण भी महापुराण ग्रंथ (आदिपुराण) में देखने को मिलता है—

विद्याधर राजा महाबल के चार मंत्रियों में से दो मंत्री निगोद में (मिथ्यात्व के कारण) चले गये थे।

एक बार श्रीधरदेव ने अपने गुरु श्रीप्रीतिंकर सर्वज्ञ भगवान् को नमस्कार करके उनसे पूछा—

भगवन्! मेरे तीनों मंत्री किस गति को प्राप्त हुए हैं ?

इसी प्रकरण को कहते हैं—

श्लोकार्थ—हे प्रभो! मेरे महाबल राजा के भव में जो मेरे तीन मिथ्यादृष्टि मंत्री थे, वे इस समय कहाँ उत्पन्न हुए हैं, अर्थात् उन लोगों ने कौन सी गति प्राप्त की है ?।।४।।

---

१. पद्मनंदिपंचविंशतिका, आलोचना अधिकार, पृ. २२२।

इति पृष्टवते तस्मै सोऽवोचत् सर्वभाववित्।
तन्मनोध्वान्तसंतान-मपाकुर्वन् वचोंऽशुभिः।।५।।

त्वयि स्वर्गगतेऽस्मासु लब्धबोधिषु ते तदा।
प्रपद्य दुर्मृतिं याता वियाता वत दुर्गतिम्।।६।।

द्वौ निगोदास्पदं यातौ तमोऽन्धं यत्र केवलम्।
तप्ताधिश्रयणोद्वर्त्त-भूयिष्ठैर्जन्ममृत्युभिः।।७।।

गतः शतमतिः श्वभ्रं मिथ्यात्वपरिपाकतः।
विपाकक्षेत्रमाम्नातं तद्धि दुष्कृतकर्मणाम्।।८।।

मिथ्यात्वविषसंसुप्ता ये मार्गपरिपन्थिनः।
ते यान्ति दीर्घमध्वानं कुयोन्यावर्त्तसंकुलम्।।९।।

तमस्यन्धे निमज्जन्ति सज्ज्ञानद्वेषिणो नराः।
आप्तोपज्ञमतो ज्ञानं बुधोऽभ्यस्येदनारतम्[१]।।१०।।

अत एव चतुर्गतिनिगोदपर्यायेषु अस्माकं गमनं न भवेदिति भीरुतया जिनेन्द्रचरणांबुरुहेषु प्रकृष्टा भक्तिर्विधेयास्माभिः।

तथैव प्रोक्तं श्रीमदमितगतिसूरिणा—

इस प्रकार पूछने वाले श्रीधर से सर्वज्ञदेव ने अपने वचनरूपी किरणों के द्वारा उसके हृदय में व्याप्त समस्त अज्ञान अंधकार को नष्ट करते हुए कहना प्रारंभ किया।।५।।

हे भव्य! जब तू राजा महाबल की पर्याय से शरीर छोड़कर चला गया और मैंने रत्नत्रय को प्राप्त कर दीक्षा धारण कर ली, तब खेद है कि उन तीन धृष्ट (दुष्ट) मंत्रियों ने कुमरण से मरकर दुर्गति को प्राप्त कर लिया।।६।।

उन तीनों में से महामति और संभिन्नमति ये दो उस निगोद स्थान को प्राप्त हुए हैं, जहाँ मात्र सघन अंधकार ही अंधकार है और जहाँ अत्यन्त तप्त उबलते हुए जल में उठने वाली खलबलाहट के समान अनेक बार (एक श्वांस में अट्ठारह बार) जन्म-मरण होते रहते हैं।।७।।

तथा शतमति नाम का मंत्री अपने मिथ्यात्व भाव के कारण नरकगति में गया है। क्योंकि वास्तव में बुरे कर्मों का फल भोगने के लिए नरक ही मुख्य क्षेत्र है।।८।।

जो जीव मिथ्यात्वरूपी विष से मूर्च्छित होकर समीचीन जैनमार्ग का विरोध करते हैं, वे कुयोनिरूपी भँवरों से व्याप्त इस संसाररूपी मार्ग में दीर्घ काल तक भ्रमण करते हैं।।९।।

चूँकि सम्यग्ज्ञान के विरोधी जीव अवश्य ही नरकरूपी गाढ़ अंधकार में निमग्न होते हैं, इसलिए विद्वान् पुरुषों को आप्त प्रणीत सच्चे आगम का ही निरन्तर अभ्यास करना चाहिए।।१०।।

इसलिए चतुर्गतिरूप निगोद पर्यायों में हमारा गमन न होवे इस भीरुता—भय से जिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों में हम सभी को उत्कृष्ट भक्ति करनी चाहिए।

यही बात श्री अमितगति आचार्य ने कही है—

---

१. आदिपुराण, पर्व १०। २. द्वात्रिंशतिका, श्लोक न. ४।

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनानौ हृदि दीपिकाविव[२]।।
ईदृग्भावनया चतुर्विंशतितीर्थंकरान् त्रिकरणशुद्ध्या वंदामहे वयं भूरिभक्त्या नित्यम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखंडे महादण्डकनाम द्वादशे-महाधिकारे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणादिषु अल्पबहुत्व-प्रतिपादकोऽयं तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

श्लोकार्थ—हे मुनियों के ईश जिनेन्द्र भगवान्! आपके चरणयुगल मेरे हृदय में लीन हो जावें, बस जावें, कीलित हो जावें, स्थिर हो जावें, उत्कीर्ण हो जावें, बिम्बित हो जावें और अज्ञान अंधकार को नष्ट करके मेरे हृदय को आलोकित करते हुए सदा-सदा के लिए हृदय में स्थित रहें, यही प्रार्थना है।

इस प्रकार की भावना भाते हुए चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों की हम त्रिकरणशुद्धिपूर्वक खूब भक्ति से नित्य ही वंदना करते हैं।

इस प्रकार श्री षट्खण्डागम में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में महादण्डक नाम के महाधिकार में गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में कायमार्गणा आदि में अल्पबहुत्व का प्रतिपादक यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

अथ ग्रन्थस्योपसंहारः—

ततश्च यस्य युगादिब्रह्मणो देवाधिदेवस्य श्रीऋषभदेवस्य 'समवसरणश्रीविहार-' योजना संप्रति सनद्धेन चलति स देवदेवो मया नंनम्यते।

प्रभोः ऋषभदेवस्य समवादिसृतिर्भुवि। श्रीविहारोऽपि देवस्य सर्वमंगलकारणम्।।१।।
साक्षात्पूर्वं बभूवापि रूपेण च प्रतिकृतेः। वर्तमाने भवेच्चाग्रे सर्वमंगलकारणम्।।२।।
आधिर्व्याधिर्विपत्तिश्च नश्येद् देवप्रभावतः। क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं भूयाल्लोके च मंगलम्।।३।।

इत्थं त्रिचत्त्वारिंशत्सूत्रैर्बन्धसत्त्वप्ररूपणाख्यां भूमिकां प्रतिपाद्य महादण्डकनाम्ना चूलिकया सह एकोनपंचाशदधिकपंचदशशतसूत्रैः सर्वे मिलित्वा चतुर्णवत्यधिपंचदशशतसूत्रैर्वा क्षुद्रकबन्धग्रन्थोऽयं पूर्णतामगात्।

अस्मिन् क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे महाग्रन्थे भूमिका-पीठिका-नामैकोऽधिकारः, एकजीवापेक्षया स्वामित्वनाममहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, एकजीवापेक्षया कालनाममहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, एकजीवापेक्षयान्तरनाममहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, नानाजीवापेक्षया भंगविचयनाममहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, द्रव्यप्रमाणानुगमाख्यमहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, क्षेत्रानुगमाख्यमहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, स्पर्शनानुगमनाममहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, नानाजीवापेक्षया कालाख्यमहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, नानाजीवापेक्षयान्तराख्यमहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, भागाभागानुगमनाममहाधिकारे षडधिकाराः,

---

यहाँ ग्रंथ का उपसंहार करते हैं—

जिन युगादिब्रह्मा देवाधिदेव श्री ऋषभदेव तीर्थंकर भगवान के "समवसरण श्रीविहार" की योजना इन दिनों सन्नद्ध-उत्साहपूर्वक तत्परता के साथ चल रही है, वे देवों के देव भगवान ऋषभदेव-आदिनाथ मेरे द्वारा पुनः पुनः नमस्कृत हैं, अर्थात् मैं उन्हें कोटि-कोटि वंदन करती हूँ।

श्लोकार्थ—इस धरती पर तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव का समवसरण जीवन्त रहे तथा उसका श्रीविहार भी सभी के लिए मंगलकारी होवे।।१।।

पूर्व में जिनका समवसरण साक्षात् बना था और वर्तमान में उसकी प्रतिकृति बनाई जाती है तथा आगे भविष्य में भी यह समवसरण सभी के लिए मंगलकारी होवे।।२।।

श्री जिनेन्द्रदेव के प्रभाव से सभी की आधि-व्याधि और विपत्तियाँ नष्ट होवें, एवं सम्पूर्ण लोक में क्षेम-सुभिक्ष-आरोग्यता का संचार होकर मंगलमय वातावरण बने, यही मेरी मंगल भावना है।।३।।

इस प्रकार से तेंतालिस सूत्रों के द्वारा बंधसत्वप्ररूपणा नाम की चूलिका का प्रतिपादन करके महादण्डक नाम की चूलिका के साथ पन्द्रह सौ उनंचास (१५४९) सूत्रों के द्वारा अथवा सब कुल मिलाकर पन्द्रह सौ चौरानवे (१५९४) सूत्रों के द्वारा क्षुद्रकबंध नाम का यह ग्रंथ पूर्ण हुआ।

इस क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड रूप महाग्रंथ में भूमिका अर्थात् पीठिका नाम का एक अधिकार है पुनः एक जीव की अपेक्षा से स्वामित्व नामक महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, एक जीव की अपेक्षा कालानुगम नामक महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, एक जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नामक महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, नाना जीव की अपेक्षा भंगविचय नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, द्रव्यप्रमाणानुगम नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, क्षेत्रानुगम नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, स्पर्शनानुगम नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, नानाजीव की अपेक्षा कालानुगम नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, नाना जीव की अपेक्षा अन्तरानुगम नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, भागाभागानुगम

अल्पबहुत्वनाममहाधिकारे चतुर्दशाधिकाराः, दण्डकनाममहाधिकारे त्रयोऽधिकारा विभक्तीकृताः सन्ति। ततश्च द्वादश महाधिकाराः, पञ्चाशदधिकैकशताधिकारा ज्ञातव्या भवन्ति। सूत्राणि षड्न्यूनषोडशशतानि सन्ति। श्रीसरस्वतीमातुः कृपाप्रसादादेतन्महाग्रन्थमधीत्यानन्तशः देवशास्त्रगुरून् अहं नंनमीमि त्रिकरणशुद्ध्या भक्तिभावेन।

वीराब्दे दिग्द्विखद्वयंके शान्तिनाथस्य सन्मुखे। मार्गे सिते त्रयोदश्यां, हस्तिनागपुराभिधे।।१।।
षट्खण्डागमग्रन्थेऽस्मिन् खण्डद्वितीयकस्य हि। क्षुद्रकबन्धनाम्नोऽस्य टीकेयं पर्यपूर्यत।।२।।
गणिन्या ज्ञानमत्येयं टीका ग्रन्थश्च भूतले। जीयात् ज्ञानर्द्धये भूयात् भव्यानां मे च सन्ततम्।।३।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्तभूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्यान्तर्गते श्रीभूतबल्याचार्यविरचिते क्षुद्रक-बंधनाम्नि द्वितीयखण्डे श्रीवीरसेनाचार्यविरचितधवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्री शान्तिसागरस्तस्य प्रथमशिष्यः प्रथम-पट्टाधीशश्च श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचना प्रेरिका-गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां महादण्डको नामा द्वादशो महाधिकारः समाप्तः।

समाप्तोऽयं क्षुद्रकबंधनाम्ना द्वितीयखण्डो ग्रन्थः।

इति वर्धतां जिनशासनम्।

नाम के महाधिकार में छह अधिकार हैं, अल्पबहुत्वानुगम नाम के महाधिकार में चौदह अधिकार हैं, दण्डक नाम के महाधिकार में तीन अधिकार विभक्त किये गये हैं।

इस प्रकार बारह महाधिकार और एक सौ पचास अधिकार बताये गये हैं। छह कम सोलह सौ (१६००-६=१५९४) अर्थात् पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र हैं।

श्री सरस्वती माता की कृपा प्रसाद से इस महाग्रंथ को पढ़कर मैं देव-शास्त्र-गुरु को त्रिकरणशुद्धिपूर्वक भक्तिभाव से अनन्तबार नमस्कार करती हूँ।

श्लोकार्थ— वीर निर्वाण संवत् २५२४ मगसिर शु. त्रयोदशी (१२ दिसम्बर १९९७) को हस्तिनापुर तीर्थ पर (जम्बूद्वीप रचना स्थल पर रत्नत्रयनिलय नाम की वसतिका में) तीर्थंकर भगवान शांतिनाथ के सन्मुख इस षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड की यह टीका मैंने लिखकर पूर्ण किया। मुझ गणिनी आर्यिका ज्ञानमती द्वारा संस्कृत में रचित यह टीका एवं यह षट्खण्डागम ग्रंथ इस पृथ्वीतल पर सदा जयशील होवें तथा मेरे और समस्त भव्यात्माओं (ज्ञानपिपासु) के लिए सदाकाल ज्ञानरूपी ऋद्धि की प्राप्ति के लिए कारण बने, यही मंगल भावना है।।१-२-३।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान् पुष्पदंत-भूतबली प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथ के अन्तर्गत श्री भूतबली आचार्य द्वारा रचित क्षुद्रकबंध नाम के द्वितीय खण्ड में श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका को प्रमुख आधार बनाकर अन्य अनेक ग्रंथों के आधार से रचित बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज उनके प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर महाराज की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती माताजी द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणिटीका में महादण्डक नामक बारहवाँ महाधिकार समाप्त हुआ।

यहाँ यह क्षुद्रकबंध नाम का द्वितीय खण्ड रूप ग्रंथ पूर्ण हुआ।

जैन शासन सदा वृद्धिंगत होवे।

षट्खण्डागमस्य क्षुद्रकबंधनाम्नो द्वितीयखण्डस्य प्रशस्तिः

नमः ऋषभदेवाय, धर्मतीर्थप्रवर्तिने।
सर्वा विद्याकला यस्मा-दाविर्भूता महीतले।।

अस्ति जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे उत्तरप्रदेशे श्री शांतिनाथकुंथुनाथारनाथत्रयतीर्थंकरजन्मभूमि-पवित्रहस्तिनागपुरतीर्थक्षेत्रम्। अत्रैव अष्टादशाधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे कार्तिककृष्णात्रयोदश्यां ब्राह्ममुहूर्ते ध्याने श्रीऋषभदेवदर्शनं कृत्वा मम मनसि अयोध्यायां विराजमानश्रीऋषभदेवजिनप्रतिमायाः महामस्तकाभिषेकं कारयितुं भावना उद्भूता।

ततः एकोनविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे फाल्गुनकृष्णापञ्चम्याः संघेन सह विहारं कृत्वा मार्गे धर्मप्रभावनां विदधानया मया अयोध्यायां वर्षायोगं स्थापयित्वा पुनश्च विंशत्यधिकपंच-विंशतिशततमे वीराब्दे माघशुक्लात्रयोदश्यां त्रिकालचतुर्विंशतितीर्थकरादिजिनप्रतिमापंचकल्याणक-प्रतिष्ठापूर्वकं एकत्रिंशत्फुट-उत्तुंग विशालश्रीऋषभदेवजिनप्रतिमायाः महामहोत्सवेन महामस्तकाभिषेकं-कारयाञ्चक्रे।

पुनश्च एकविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमस्यवर्षायोगो हस्तिनापुरतीर्थेऽभवत् अत्रैव मया षट्खण्डागमस्य सिद्धान्तचिंतामणिटीका लिखितुं प्रारब्धा। अनंतरं मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे श्रीमुनिसुव्रत-भगवतां विंशतिफुट-उत्तुंगप्रतिमायाः बहूनामपि जिनप्रतिमानां च प्रतिष्ठां कारयितुं मम मंगलविहारः संजातः।

षट्खण्डागम के क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड की प्रशस्ति

श्लोकार्थ— जिनके द्वारा इस पृथिवीतल पर समस्त विद्याएँ एवं कलाएँ उत्पन्न हुई हैं, उन धर्मतीर्थ के प्रवर्तक श्री तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव को मेरा नमस्कार है।।१।।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखण्ड के उत्तरप्रदेश में तीर्थंकर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ एवं अरनाथ की जन्मभूमि-हस्तिनापुर नाम का पवित्र तीर्थक्षेत्र है। यहाँ वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ अट्ठारह (सन् १९९२) में कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान में श्री ऋषभदेव भगवान का दर्शन करके मेरे मन में अयोध्या तीर्थ पर विराजमान खड्गासन श्री ऋषभदेव जिनप्रतिमा का महामस्तकाभिषेक सम्पन्न कराने की भावना उत्पन्न हुई।

उसके बाद वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ उन्नीस (सन् १९९३) में फाल्गुन कृष्णा पंचमी (११ फरवरी) को मैंने अपने संघ के साथ विहार करके मार्ग में धर्मप्रभावना करते हुए अयोध्या में वर्षायोग स्थापित किया और पुनः वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बीस (सन् १९९४) में माघ शुक्ला त्रयोदशी (२४ फरवरी) को त्रिकाल चौबीसी तीर्थंकर आदि अनेक जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक इकतीस फुट उत्तुंग भगवान श्री ऋषभदेव की विशाल जिनप्रतिमा का महामहोत्सव के साथ महामस्तकाभिषेक कराया।

पुनश्च संवत् पच्चीस सौ इक्कीस (सन् १९९५) का वर्षायोग हस्तिनापुर तीर्थ में (जम्बूद्वीप स्थल पर) हुआ, यहीं मैंने षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणिटीका का लेखन प्रारंभ (८ अक्टूबर १९९५-शरदपूर्णिमा को) किया। अनन्तर मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में श्रीमुनिसुव्रत भगवान की बीस फुट उत्तुंग प्रतिमा का एवं अन्य बहुत सारी जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने हेतु हस्तिनापुर से मेरा (२७ नवम्बर सन् १९९५ में) ससंघ मंगल विहार हो गया।

तत्र मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रे वर्षायोगावसरे द्वाविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे शरत्पूर्णिमायां अष्टोत्तरशतफुटउत्तुंगश्रीऋषभदेवप्रतिमां निर्मापयितुं प्रेरणा कृता।

मम मनसि एतदेव यत् सर्वमपि जगज्जानीयात्।

अयोध्या इयं श्रीऋषभदेवजन्मभूमिः। भगवान् महावीरो न जैनधर्मसंस्थापकः प्रत्युत जैनधर्मः शाश्वत एव। चतुर्विंशतितीर्थंकरपरम्परायां श्रीऋषभदेवः प्रथमः-आद्यः तीर्थंकरोऽस्ति, इत्यादि भावनया बहूनि ऋषभदेवस्य संगोष्ठ्यादिकार्याणि कारितानि। किन्तु मनसि संतुष्टिर्न जाता।

मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्राद् आगच्छन्त्या मया मार्गे श्रीपद्मप्रभदेवस्य अतिशयक्षेत्रं 'पद्मपुरा' नामतीर्थं वन्दित्वा तत्र स्थित्वा त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमेवीराब्दे[1] फाल्गुनशुक्लाप्रतिपत्तिथौ अस्य षट्खण्डागमस्य द्वितीयखण्डस्य क्षुद्रकबंधस्य सिद्धान्तचिंतामणिटीका प्रारब्धा। ततश्च फाल्गुनशुक्लातृतीयायां जयपुरमहानगरे खानिया क्षेत्रं आगत्य तत्र त्रिदिवसं स्थित्वा गुरुवर्यस्याचार्य-शिरोमणिश्रीवीरसागरस्य समाधिस्थले चरणवन्दनां कृत्वा जयपुरमहानगरेऽपि कतिपयदिवसान् विहृत्य धर्मप्रभावना विहिता। तदनन्तरं भारतस्य राजधानी दिल्ली महानगरे चैत्रकृष्णाषष्ठ्यां ममागमनसभा ''लालकिलामैदान'' नामस्थलेऽभवत्। तत्र दिल्ली प्रदेशस्य मुख्यमंत्री साहिबसिंहवर्मा करकमलाभ्यां श्रीऋषभजयंती महोत्सववर्षस्य दीपप्रज्वलनं कारितम्। तदानीं कु. पूर्णिमासांसद-जयप्रकाशअग्रवाल सांसदयोरपि आगमनमभवत्। मांगीतुंगीयात्राद्य-पूर्णीजाता निर्विघ्नतया ससंघाहं समागता। इति विलोक्य संघसंचालिका कु. बीना-आस्था आदि सर्वाः

वहाँ मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र में वर्षायोग के अन्तर्गत वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ बाईस (सन् १९९६ में) शरदपूर्णिमा के दिन मैंने (पर्वत पर) एक सौ आठ (१०८) फुट उत्तुंग श्री ऋषभदेव प्रतिमा निर्माण कराने की प्रेरणा प्रदान की। मेरे मन में यही बात है कि समस्त विश्व को यह ज्ञात हो कि—

यह अयोध्या नगरी श्री ऋषभदेव भगवान की जन्मभूमि है। भगवान महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं, प्रत्युत् जैनधर्म शाश्वत ही है। चौबीस तीर्थंकर परम्परा में श्री ऋषभदेव प्रथम — आदि तीर्थंकर हैं, इत्यादि भावना से ऋषभदेव की अनेक संगोष्ठी आदि कार्य करवाए। किन्तु मन में संतुष्टि नहीं हुई।

पुनः आगे सन् १९९७ से 'श्री ऋषभदेव जयंती वर्ष' आदि के माध्यम से अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हुए हैं।

मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र से (दिल्ली की ओर) आते हुए मेरे द्वारा मार्ग में श्री पद्मप्रभ भगवान के अतिशय क्षेत्र ''पद्मपुरा'' नामक तीर्थ की वंदना करके वहाँ बैठकर वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस (सन् १९९७) में फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा तिथि के दिन इस षट्खण्डागम के द्वितीय खण्ड क्षुद्रकबंध की सिद्धान्तचिंतामणिटीका टीका रचना प्रारंभ की गई और वहाँ से विहार करके फाल्गुन शुक्ला तृतीया को जयपुर महानगर के खानिया जी क्षेत्र में आकर वहाँ तीन दिन रहकर गुरुवर आचार्य शिरोमणि श्री वीरसागर महाराज के समाधिस्थल पर उनके चरणों की वंदना करके जयपुर शहर में भी कुछ दिन विहार करके धर्मप्रभावना किया। उसके बाद भारत की राजधानी दिल्ली महानगर में चैत्र कृष्णा षष्ठी (३० मार्च १९९७) को मेरे आगमन की सभा ''लालकिला मैदान'' परिसर में हुई। तब वहाँ दिल्ली प्रदेश के मुख्यमंत्री साहबसिंह वर्मा के करकमलों से ''श्री ऋषभदेव जन्मजयंती महोत्सव वर्ष'' का दीप प्रज्ज्वलन हुआ। उसी समय कु. पूर्णिमा एवं जयप्रकाश अग्रवाल ये दो सांसद भी पधारे थे। मांगीतुंगी यात्रा आज पूर्ण हुई और मैं निर्विघ्नरूप से संघ सहित आ गई।

इस निर्विघ्न यात्रा की परिपूर्णता देखकर संघ संचालिका कु.बीना-आस्था आदि संघस्थ सभी बालब्रह्मचारिणी

---

१. दिनाँक १०-३-१९९७।

ब्रह्मचारिण्यः दिल्लीनिवासि-संघपतिगुरुभक्त- महावीरप्रसादजैनतत्पत्नी श्रीमतीकुसुमलता-संघभक्त प्रेमचंद जैन-तत्पत्नी निर्मलाजैन इत्यादयः कर्मयोगीब्रह्मचारिरवीन्द्रकुमारब्रह्मचारिश्रीचन्द्रादयश्च परमसंतुष्टिं संप्राप्नुवन्। पुनः चैत्रकृष्णानवम्यां श्रीऋषभदेवभगवतां जन्मजयंती दिवसे श्रीदिगम्बरजैन लालमंदिरे विशाल रथयात्रा प्रभावनापूर्वकं प्रभोः श्रीऋषभदेव-स्याष्टोत्तरशत रजतकलशैरभिषेकोऽभवत्।

एनां राजधानीमागत्य विविधधर्मप्रभावनां चिकीर्षया चैत्रकृष्णाद्वादश्याः चैत्रशुक्लापंचमीपर्यंतं 'बाहुबलीएन्क्लेव' नामोपनगरे (कालोनीमध्ये) इंद्रध्वजमहामण्डलविधानं कारयित्वा पार्श्वविहार-नामकालोनी मध्ये चैत्रशुक्लाषष्ठ्यां आदिब्रह्माश्रीऋषभदेवस्याष्टोत्तरसहस्रकलशैर्महाभिषेकमहोत्सवः कारितः। अनंतरमत्रैव चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां[१] महावीरजयंतीमहोत्सवोऽभवत् मत्सन्निधौ प्रभावनापूर्वकं।

तदनु प्रीतविहारनामकालोनीमध्ये राजधान्यां नवनिर्मितकमलमंदिरे श्रीऋषभदेवभगवतां ज्येष्ठशुक्ला-तृतीयाया आरभ्य ज्येष्ठशुक्लादशमीपर्यंतं पंचकल्याणकप्रतिष्ठामहोत्सवः[२] संजातः। एतत्कमलमंदिरस्य निर्माणं मम कल्पनानुसारेण श्रेष्ठि अनिलकुमारेण स्वनिकेतनस्य प्रांगणे कृतमस्ति।

पुनश्च अत्रैव राजधान्यां प्रमुखस्थान-चांदनीचौक मध्ये अतिथिभवने 'कम्मोजी धर्मशालायां' मम वर्षायोगो[३]ऽभवत्।

तदानीं त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे आश्विनशुक्लातृतीयाया आरभ्य द्वादशीपर्यंतं[४] महतीधर्मप्रभावनापूर्वकं चतुर्विंशतिकल्पद्रुममहामण्डलविधानं अभवत्। रिंगरोडनामस्थाने बृहन्मण्डपे अस्मिन्

बहनें तथा दिल्ली निवासी संघपति गुरुभक्त महावीर प्रसाद जैन-उनकी धर्मपत्नी सौ. कुसुमलता जैन, संघभक्त प्रेमचंद जैन-तत्पत्नी सौ. निर्मला जैन इत्यादि तथा संघस्थ बाल ब्रह्मचारी कर्मयोगी रवीन्द्र कुमार, ब्रह्मचारी श्रीचंद जैन आदि ने परम संतुष्टि का अनुभव किया। पुनः चैत्र कृष्णा नवमी को भगवान श्री ऋषभदेव के जन्मजयंती दिवस पर विशाल रथयात्रा की प्रभावना के साथ श्री दिगम्बर जैन लाल मंदिर में चांदी के एक सौ आठ कलशों से भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का अभिषेक हुआ।

इस दिल्ली राजधानी में आकर अनेक प्रकार से धर्मप्रभावना की इच्छा से चैत्र कृष्णा द्वादशी से चैत्र शुक्ला पंचमी तक "बाहुबली एन्क्लेव" कालोनी में इन्द्रध्वज महामण्डल विधान करवाकर "पार्श्वविहार" नाम की कालोनी में चैत्र शुक्ला षष्ठी को आदिब्रह्मा श्री ऋषभदेव की प्रतिमा का एक हजार आठ कलशों से महाभिषेक महोत्सव कराया। अनंतर यहीं (पार्श्व विहार में ही) चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मेरे संघ सान्निध्य में प्रभावनापूर्वक महावीर जयंती महोत्सव सम्पन्न हुआ।

उसके पश्चात् राजधानी की "प्रीतविहार" नामक कालोनी में नवनिर्मित कमल मंदिर में श्री ऋषभदेव भगवान का पंचकल्याणक महोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया से प्रारंभ होकर ज्येष्ठ शुक्ला दशमी तक (८ जून से १५ जून १९९७ तक) सम्पन्न हुआ। इस कमल मंदिर का निर्माण मेरी कल्पना के अनुसार श्रेष्ठी अनिल कुमार जैन ने अपने मकान के प्रांगण में किया है।

पुनश्च यहीं राजधानी में प्रमुख स्थान-चाँदनी चौक में अतिथि भवन-कम्मो जी की धर्मशाला में मेरा वर्षायोग (सन् १९९७) का सम्पन्न हुआ।

उस चातुर्मास के मध्य वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस (२५२३) में आश्विन शुक्ला तृतीया से द्वादशी तक (दिनाँक ४ अक्टूबर से १३ अक्टूबर १९९७) व्यापक धर्मप्रभावनापूर्वक चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान का विराट आयोजन सम्पन्न हुआ। वहाँ रिंगरोड नामक स्थान पर बड़े मैदान में (राजघाट

---

१. २० अप्रैल। २. दिनाँक ८ जून से १५ जून १९९७। ३. ईसवी सन् १९९७ का। ४. दिनाँक ४ अक्टूबर से १३ अक्टूबर १९९७।

महामण्डलविधानानुष्ठाने चतुर्विंशतिसमवसरणरचनासु चतुर्विंशतितीर्थंकराणां चतुश्चतुस्तीर्थंकर-प्रतिमाः स्थापयित्वा प्रत्येकसमवसरणेषु स्थापनानिक्षेपेण एकैकचक्रवर्तिनः सार्धद्वयसहस्राधिकाः दिगम्बर-जैनभाक्तिकाश्च अनुष्ठानेषु सम्मिलिताः। लक्षाधिकाः जनाः पूजानुष्ठानं द्रष्टुं आगत्य स्व-स्वजन्मसफलं चक्रिरे।

अस्मिन् विश्वशांतिमहायज्ञानुष्ठाने[१] भारतस्य पूर्वराष्ट्रपतिमहामहिमशंकरदयालशर्मामहोदयस्या उपस्थितौ ध्वजारोहणमभवत्। चतुर्थ्यां[२] दिल्लीप्रदेशमुख्यमंत्रीश्रीसाहिबसिंहवर्मा-भाजपा- राष्ट्रीयमहामंत्री सुषमास्वराज-विधायिका-सुश्रीपूर्णिमासेठी नामधेया आगत्य महायज्ञमवलोक्य प्रसन्नीभूय प्रशंसां विदधाना पुण्यं समपादयन्। पुनः दशम्यां तिथौ[३] मध्यप्रदेशमुख्यमंत्री श्रीदिग्विजय-सिंहमहोदयेन समेत्य श्रीऋषभदेवमाहात्म्यमवगम्य मध्यप्रदेशराजधानीभोपालनगरे श्रीऋषभदेवोद्यानं निर्मापयितुं घोषणा कृता। दिल्ली सांसद श्री कल्लप्पा-आवाड़े-विधानसभाध्यक्ष-श्रीचरतीलालगोयल-इत्यादयो राजनेतारः आगत्य ''अहिंसा परमो धर्मः'' इत्यादिप्रकारेण जैनधर्मस्य माहात्म्यं श्रीऋषभ-देवादिवर्धमानपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थंकराणां पूजाभक्तिं चावलोकयन्तोऽतिशयप्रमोदं अवाप्नुवन्।

अस्मिन् विश्वशांतिमहापूजानुष्ठाने समागत्य तीर्थक्षेत्रकमेटीअध्यक्ष-साहू अशोक कुमारोऽपि हर्षातिरेकेणाकथयत्। एतादृश धर्मानुष्ठानं ''न भूतो न भविष्यति''। पुनश्चास्मिन् महदनुष्ठानेषु व्यवस्थायां प्रज्ञाश्रमणी आर्यिकाचंदनामती-जम्बूद्वीपपीठाधीशः क्षुल्लकरत्न श्रीमोतीसागर-कर्मयोगीब्रह्मचारि-

---

के सामने) बहुत विशाल मण्डप (पण्डाल) में चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों के अलग-अलग २४ समवसरण बनाकर उन मण्डलों पर चौबीस तीर्थंकरों की चार-चार प्रतिमाएँ विराजमान करके प्रत्येक समवसरण में स्थापनानिक्षेप से एक-एक चक्रवर्ती बने तथा ढाई हजार से अधिक दिगम्बर जैन समाज के श्रद्धालु भक्तों ने इस अनुष्ठान में सम्मिलित होकर पुण्यार्जन किया। लाखों लोगों ने इस महापूजा-अनुष्ठान को देखने के लिए आकर अपना-अपना जन्म सफल किया।

इस विश्वशांति महायज्ञ के अनुष्ठान में भारत के पूर्व राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा महोदय की मुख्य उपस्थिति में महोत्सव का ध्वजारोहण हुआ। अगले दिन चतुर्थी तिथि (५ अक्टूबर) को दिल्ली प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, भाजपा की राष्ट्रीय महामंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज, विधायिका श्री पूर्णिमा सेठी ने आकर इस महायज्ञ को देखकर प्रसन्नतापूर्वक प्रशंसा करते हुए पुण्य का सम्पादन किया। पुनः विजयादशमी तिथि (११ अक्टूबर को) दशहरा के दिन मध्यप्रदेश राज्य के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंह जी ने पधारकर श्री ऋषभदेव के माहात्म्य को जानकर मध्यप्रदेश की राजधानी ''भोपाल'' नगर में ''श्री ऋषभदेव उद्यान'' के निर्माण की घोषणा की। सांसद श्री कल्लप्पा आवाड़े, विधान सभा अध्यक्ष श्री चरतीलाल गोयल आदि अनेक छोटे-बड़े राजनेताओं ने आकर ''अहिंसा ही परमो धर्म है'' इत्यादि प्रकार से जैनधर्म का माहात्म्य एवं ऋषभदेव से महावीर तक चौबीसों तीर्थंकर भगवन्तों की पूजा-भक्ति देखकर अतिशय प्रमोद—प्रसन्नता का अनुभव किया।

इस विश्वशांति के महापूजा-अनुष्ठान में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष साहू श्री अशोक कुमार जैन ने भी पधारकर बहुत ही हर्षित होकर अपने वक्तव्य में कहा कि ''इस प्रकार का महान धर्मानुष्ठान न कभी हुआ है और न भविष्य में हो पाएगा।'' अर्थात् मैंने अपने जीवन में प्रथम बार इतना भारी भक्ति का महाकुंभ देखा है, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पुनश्च इस महान अनुष्ठान को निर्विघ्न सफल करने हेतु सभी व्यवस्थाओं में मेरी शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती, जम्बूद्वीप के

---

१. आश्विन शु. ३, दिनाँक ४-१०-१९९७। २. दिनाँक ५-१०-१९९७। ३. दशहरा, दिनाँक ११-१०-१९९७।

रवीन्द्रकुमाराणां श्रमः प्रशंसनीय आसीत्। श्रीरमेशचंद्रजैन (पी.एस. मोटर्स) श्रीराजेन्द्रप्रसादजैन-चक्रेश जैनादयः दिल्ली-महानगरस्य कार्यकर्तृणां सहयोगोऽपि प्रशंसनीयोऽभवत्।

न्यायमूर्तिश्रीमिलापचन्द्रः (लोकायुक्तराजस्थान) आर्यिकाणां-आर्यिकाप्रधानानां अपि प्रधानां मत्वा गणिनीप्रमुखां उपाधिं मह्यं प्रायच्छत्। अत्र राजधान्यां अनेकोपनगरेषु (कालोनीमध्ये) विहरन्त्या मया अनेकधर्मप्रभावनाकार्याणि कारयन्यापि एतट्टीकालेखनं ममाबाधितमभवत् एतदाश्चर्यमेव, अथवा सरस्वतीमातुः कृपाप्रसादमेव मन्येऽहम्।

तदनु ऋषभदेवसमवसरणश्रीविहारस्य राष्ट्रीयकुलपतिसम्मेलनादिनानाविध श्रीऋषभदेव-प्रभावनाकार्याणां मनसि भावनां निधाय कार्तिकशुक्लापंचम्यां दिल्ली राजधान्या मंगल विहारं कृत्वा अत्र हस्तिनापुरतीर्थे जम्बूद्वीपदर्शनं कर्तुं भावनया कार्तिकशुक्लापूर्णिमायामागत्य[१] सुदर्शनमेरोर्दर्शनं वन्दनादिकं कारं कारं प्रहृष्टाहम्।

संप्रति श्रीमहावीरस्वामिनः शासने श्रीगौतमस्वामि प्रभृति-आचार्यपरम्परायां सर्वानाचार्यान् शिरसाभिवन्द्य श्रीमूलसंघे कुंदकुंदाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे वर्तमाने विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागरस्तौ उभौ गुरूणां गुरुं दीक्षागुरुं च नमस्कृत्य भक्त्या, त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे मार्गशीर्षशुक्लात्रयोदश्यां हस्तिनापुरतीर्थे अस्य द्वितीयखण्डस्य क्षुद्रकबंधमहाग्रन्थस्य संस्कृतटीका पर्यपूर्यत।

पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर और कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार का परिश्रम प्रशंसनीय रहा। श्री रमेशचंद्र जैन (पी.एस.मोटर्स), श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन (कम्मो जी), श्री चक्रेश जैन आदि दिल्ली महानगर के कार्यकर्ताओं का सहयोग भी प्रशंसनीय रहा।

न्यायमूर्ति श्री मिलापचंद्र जैन (राजस्थान के लोकायुक्त) ने मुझे आर्यिकाओं के समूह की सबसे प्रधान आर्यिका मानकर 'गणिनीप्रमुख' की उपाधि प्रदान की। यहाँ राजधानी की अनेक कालोनियों में विहार करते हुए मेरे द्वारा अनेक धर्मप्रभावना के कार्य कराते हुए भी इस संस्कृत टीका का लेखन अबाधितरूप से चलता रहा, यह आश्चर्य ही है। अथवा इसे मैं सरस्वती माता का कृपा प्रसाद ही मानती हूँ।

इसके पश्चात् ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार का एवं राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन आदि अनेक प्रकार के भगवान श्री ऋषभदेव की प्रभावना कार्यों के बारे में ही मन में चिंतन करते हुए कार्तिकशुक्ला पंचमी को दिल्ली राजधानी से मंगल विहार करके हस्तिनापुर तीर्थ के दर्शन करने की भावना से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को आकर यहाँ सुदर्शन मेरु पर्वत (जम्बूद्वीप रचना के बीचोंबीच में निर्मित) के दर्शन-वंदन कर-करके मैं अत्यन्त हर्षित हुई।

वर्तमान में भगवान महावीर स्वामी के शासन में श्री गौतम स्वामी से लेकर आचार्य परम्परा में सभी आचार्यों को शिर झुकाकर नमन करके, श्री मूलसंघ में कुन्दकुन्दाम्नाय में सरस्वती गच्छ-बलात्कारगण में वर्तमान बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर महाराज हुए हैं, उनके प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज जो मेरे दीक्षा गुरु हैं, इन दोनों गुरुओं को — गुरूणां गुरु आचार्य श्री शांतिसागर जी एवं दीक्षागुरु आचार्य श्री वीरसागर जी को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेईस में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी के दिन हस्तिनापुर तीर्थ पर इस द्वितीय खण्ड के क्षुद्रकबंध नामक महाग्रंथ की संस्कृत टीका लिखकर परिपूर्ण की है।

---

१. दिनाँक १४ नवम्बर १९९७।

वीराब्दे दिग्द्विखद्व्यंके[१] शान्तिनाथस्य सन्मुखे।
मार्गे सिते त्रयोदश्यां हस्तिनागपुराभिधे।।१।।
षट्खण्डागमग्रन्थेऽस्मिन् खण्डद्वितीयकस्य हि।
क्षुद्रकबंधनाम्नोऽस्य टीकेयं पर्यपूर्यत।।२।।

अस्मिन् ग्रंथे सूत्राणि चतुर्णवत्यधिकपञ्चदशशतानि, पृष्ठसंख्या पञ्चाशीत्यधिकद्विशतानि सन्ति। तीर्थयात्रायां अतिशयक्षेत्रपद्मपुरा-जयपुरखान्यामध्ये पर्वतस्योपरि नवनिर्मितचूलगिरि-तीर्थकरकल्याणकभूमि-हस्तिनापुरमिति त्रीणि, राजस्थानप्रदेश-हरियाणा-दिल्ली-उत्तरप्रदेशाश्च बभूवुः।

टीकायां सहयोगिनो ग्रन्थाः-१. समयसारः, २. सहस्रनामस्तोत्रं, ३. महापुराणं, ४. निर्वाणभक्तिः, ५. गोम्मटसारकर्मकाण्डं, ६. चन्द्रप्रभस्तोत्रं, ७. तत्त्वार्थसूत्रं, ८. तत्त्वार्थराजवार्तिकं, ९. त्रिलोकसारः, १०. पद्मपुराणं, ११. आदिपुराणं, १२. भावप्राभृतं, १३. पद्मनंदिपंचविंशतिका, १४. रत्नकरण्डश्रावकाचारः, १५. सर्वार्थसिद्धिः, १६. गोम्मटसारजीवकाण्डं, १७. नंदीश्वरभक्तिः, १८. हरिवंशपुराणं, १९. तत्त्वार्थवृत्तिः, २०. वीरजिनस्तुतिः, २१. इष्टोपदेशः, २२. द्वात्रिंशतिकादयः। एतेषां उद्धरणानि गृहीतान्यत्र टीकायां।

'अहिंसा परमो धर्मः' स्वरूपजैनशासनस्य प्रभावनां कर्तुमिच्छया मया आर्षपरम्परा-गुरुपरंपरयोर्हानि मा भूयादिति चिंतनं विदधानया अविरलगत्याहर्निशं टीकालेखनव्यग्रतया एते काला यापिताः। इमे लेखनकालाः धर्मप्रभावनाकालाश्चैव अस्माकं सुफलाः एषः निश्चयो वर्तते। षट्खण्डागमस्य प्रथमखण्डस्य द्वितीयखण्डस्य च टीकां पूर्णीकृत्य मम मनसि आल्हादोऽभवत्।

श्लोकार्थ—वीर संवत् पच्चीस सौ चौबीस में हस्तिनापुर तीर्थ पर मगसिर शुक्ला तेरस के दिन (रत्नत्रयनिलय नामक वसतिका में) भगवान शांतिनाथ के सम्मुख बैठकर मैंने इस षट्खण्डागम ग्रंथ में क्षुद्रकबंध नामक द्वितीय खण्ड की यह टीका परिपूर्ण की है।।१-२।।

इस ग्रंथ में पन्द्रह सौ चौरानवे सूत्र हैं, दो सौ पिचासी पृष्ठ संख्या (मेरे द्वारा हस्तलिखित) है। इस मध्य हुई तीर्थयात्रा में अतिशय क्षेत्र पद्मपुरा, जयपुर, खानिया में पर्वत पर नवनिर्मित चूलगिरि तीर्थ एवं तीर्थंकरों की कल्याणक भूमि हस्तिनापुर ये तीन तीर्थ एवं राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और उत्तरप्रदेश ये चार प्रदेश प्राप्त हुए हैं।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सहयोगी ग्रंथ—१. समयसार, २. सहस्रनाम स्तोत्र, ३. महापुराण, ४. निर्वाणभक्ति, ५. गोम्मटसारकर्मकाण्ड, ६. चन्द्रप्रभस्तोत्र, ७. तत्त्वार्थसूत्र, ८. तत्त्वार्थराजवार्तिक, ९. त्रिलोकसार, १०. पद्मपुराण, ११. आदिपुराण, १२. भावप्राभृत, १३. पद्मनंदिपंचविंशतिका, १४. रत्नकरण्डश्रावकाचार, १५. सर्वार्थसिद्धि, १६. गोम्मटसारजीवकाण्ड, १७. नंदीश्वरभक्ति, १८. हरिवंशपुराण, १९. तत्त्वार्थवृत्ति, २०. वीरजिनस्तुति, २१. इष्टोपदेश और २२. द्वात्रिंशतिका आदि। इन सब ग्रंथों के उद्धरण इस टीका में लिए गये हैं।

अहिंसा परमोधर्म स्वरूप जैनशासन की प्रभावना करने की इच्छा से तथा आर्षपरम्परा एवं गुरु परम्परा दोनों में कमी न आने पाये, ऐसा मन में चिंतन करके अविरलगति से दिन-रात इस टीकालेखन की उत्कण्ठा के साथ मेरे ये क्षण व्यतीत हुए हैं। मेरा यह लेखनकाल एवं धर्मप्रभावना के ये काल हमारे सबके लिए सुफल—मंगलप्रद रहे हैं, यह निश्चित है।

षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड के अनंतर आज इस द्वितीय खण्ड की टीका पूर्ण करके मेरे मन में अतिशय आल्हाद हो रहा है।

---

१. वीर निर्वाण संवत् २५२४, दिनाँक १२-१२-१९९७

संप्रति मम संघे चारित्रश्रमणी-आर्यिका-अभयमती-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिकाचंदनामती-जम्बूद्वीपपीठाधीश क्षुल्लकमोतीसागर-क्षुल्लिकाशांतिमती-क्षुल्लिका श्रद्धामती-जम्बूद्वीपाध्यक्ष कर्मयोगीब्रह्मचारिरवीन्द्रकुमार-ब्रह्मचारिणीकुमारीबीना-आस्था-सारिका-इंदु-चंद्रिका-अलका-प्रीति-स्वाति आदयोऽतीर्थे धर्मध्याननिरताः सन्ति। ममाज्ञानुसारेण निरन्तरं आगमविहित-चर्यामनुसृत्य गुरुपरंपरानिर्वाहसमृद्धिं च कुर्वन्ति। शिष्याणामनुकूलत्वेन अहमपि निश्चिंतीभूय टीकालेखनादि कार्याणि कुर्वन्ती अस्मि। इमाः इमे च शिष्यादयः सर्वदा जिनधर्मप्रभावनाभिः सद्धर्मोन्नतिकारकाः भूयासुः इति कामयामहे।

अधुना भारतस्य राष्ट्रपति महामहिम श्री के.आर.नारायणनमहानुभावाः, प्रधानमंत्री श्री इन्द्र कुमार (आई.के.) गुजरालनामधेयाः गणतंत्रशासनं रक्षन्ति। उत्तरप्रदेशस्य महामहिमराज्यपाल रोमेश भंडारी-मुख्यमंत्री कल्याणसिंह नामधेयौ वर्तेते।

मया गणिनीज्ञानमत्या कृतेयं सिद्धान्तचिंतामणिटीका सर्वेषां भव्यानां सर्वासां च ज्ञानवृद्धये भूयात्, मम च स्वात्मशुद्धये सिद्धये अपि भूयादिति भाव्यते निरन्तरम्।

हस्तिनापुरक्षेत्रेऽयं, मेरुर्धर्मश्च भूतले।
यावत्तावच्च टीकेयं, स्यात् सज्ज्ञानमतीश्रियै।।१।।

।।इति वर्द्धतां वीरशासनम्।।

इस समय मेरे संघ में चारित्रश्रमणी आर्यिका अभयमती, प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती, जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर, क्षुल्लिका शांतिमती, क्षुल्लिका श्रद्धामती, जम्बूद्वीप के अध्यक्ष कर्मयोगी ब्रह्मचारी रवीन्द्र कुमार, ब्रह्मचारिणी कुमारी बीना, आस्था, सारिका, इन्दू, चन्द्रिका, अलका, प्रीति, स्वाति आदि बालिकाएँ तीर्थ पर धर्मध्यान में निरत हैं। ये सभी मेरी आज्ञानुसार निरन्तर आगम में वर्णित चर्या का अनुसरण करते हुए गुरुपरम्परा का निर्वाह और समृद्धि कर रहे हैं। शिष्यों की अनुकूलता के कारण मैंने भी निश्चिन्त—निर्विकल्प होकर टीका लेखन आदि कार्य सम्पन्न किये हैं। ये सभी शिष्य-शिष्याएँ सदैव जिनधर्म की प्रभावना करते हुए सच्चे धर्म की उन्नति करें, यही मेरी अभिलाषा है।

इस समय भारतदेश के राष्ट्रपति महामहिम श्री के.आर. नारायणन एवं प्रधानमंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल गणतंत्र शासन की रक्षा कर रहे हैं। उत्तरप्रदेश के महामहिम राज्यपाल रोमेश भंडारी और मुख्यमंत्री कल्याण सिंह हैं।

मुझ गणिनी ज्ञानमती आर्यिका के द्वारा रचित यह सिद्धान्तचिंतामणि टीका सभी भव्य श्रावक-श्राविकाओं की ज्ञानवृद्धि करे और मेरी भी आत्मशुद्धि एवं सिद्धि के लिए होवे, मैं निरन्तर यही भावना भाती रहती हूँ।

श्लोकार्थ—जब तक इस धरती पर धर्म का अस्तित्व रहे, हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर सुमेरु पर्वत विद्यमान रहे, तब तक यह षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणिटीका इस पृथ्वी पर स्थाई रहे एवं मुझे सम्यग्ज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त करावे, यही मंगलकामना है।।१।।

।।भगवान महावीर का जैन शासन सदैव वृद्धिंगत होवे।।

हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

शार्दूलविक्रीडित छंद—

शांतिः कुंथ्वरनाथशक्रमहिताः सर्वैः गुणैरन्विताः,
ते सर्वे तीर्थेशचक्रिमदनैः पदवीत्रिभिः संयुताः।
तीर्थंकरत्रयजन्ममृत्युरहिताः सिद्धालये संस्थिताः,
ते सर्वे कुर्वन्तु शान्तिमनिशं तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।१।।

सम्पूर्ण गुणों से समन्वित, शत इन्द्रों से वंदित श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ एवं अरनाथ भगवान तीर्थंकर-चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन-तीन पदों से संयुक्त हैं। ये तीनों तीर्थंकर भगवान जन्म-मृत्यु से रहित होकर सिद्धालय में—तीन लोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्धशिला पर (तनुवातवलय में) विराजमान हैं। वे जगत् में शांति की स्थापना करें, उन तीनों जिनेन्द्र भगवन्तों को मेरा बारम्बार नमस्कार है।

तीर्थंकरत्रय को मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक नमन करके इस षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ के द्वितीय खण्ड क्षुद्रकबंध (सप्तम पुस्तक) की सिद्धान्तचिंतामणि नामक संस्कृत टीका की हिन्दी अनुवादकर्त्री मैं आर्यिका चन्दनामती अब हिन्दी टीका की पूर्णता पर हिन्दी प्रशस्ति को प्रस्तुत करती हूँ—

—शंभु छंद—

श्री महावीर तीर्थंकर का जिनशासन आज कहा जाता।
गौतमगणधर स्वामी को उनका प्रथम शिष्य माना जाता।।
उस परम्परा में सूरिप्रवर गुणधर भट्टारक कहलाए।
जो है कसायपाहुड़ सूत्रों के प्रथम रचयिता कहलाए।।१।।

सिद्धान्तज्ञान धरसेन सूरि से लेकर के दो शिष्य बढ़े।
श्री पुष्पदन्त अरु भूतबली ने षट्खण्डागम सूत्र रचे।।
श्री वीरसेन आचार्य ने इनकी धवला टीका सरस रची।
संप्रति गणिनी श्री ज्ञानमती जी ने यह टीका स्वयं लिखी।।२।।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य देव की परम्परा मणिमाला में।
बीसवीं सदी के प्रथम सूर्य आचार्य शांतिसागर जन्मे।।
कलिकाल के ये जिनकल्पि सदृश इनकी महिमा का क्या कहना।
सूरज को दीप दिखाना है उनके बारे में कुछ कहना।।३।।

जिसने उनका खुद दर्श किया अपना सौभाग्य संवारा है।
श्री ज्ञानमती माताजी ने उनकी शिक्षा को पाला है।।
श्री शांतिसिंधु के शिष्य प्रथम थे पट्टाचार्य वीरसागर।
उनसे दीक्षा ले ज्ञानमती माता ने भरी ज्ञान गागर।।४।।

ये साध्वीमणि गणिनीप्रमुखा आर्यिकाशिरोमणि कहलाईं।
है गौरवान्वित साधुजगत्, जो ऐसी ज्ञाननिधी पाई।।
मुझको भी है गौरव खुद पर इनकी शिष्या कहलाने का।
श्री शांतिसिंधु के उपवन में बन पुष्प सुरभि फैलाने का।।५।।

सिद्धान्तसुचिन्तामणि टीका इन गणिनी माता की कृति है।
षट्खण्डागम के सूत्रों पर संस्कृत टीका अद्भुत निधि है।।
इनकी पावन प्रेरणा मिली मैंने हिन्दी अनुवाद किया।
षट्खण्डागम के दुतिय खण्ड का इसी निमित्त स्वाध्याय किया।।६।।

श्री वीर संवत् पच्चिस सौ सैंतिस माघ कृष्ण सप्तमि तिथि है।
गणतंत्र दिवस के पूर्व जनवरी पच्चिस मंगल का दिन है।।
सन् दो हजार ग्यारह में जब गणतंत्र दिवस का उत्सव है।
इण्डिया गेट दिल्ली में कल होगा इकसठवाँ उत्सव है।।७।।

मैंने इस सप्तम पुस्तक की हिन्दी टीका परिपूर्ण किया।
पच्चीस जनवरी को लिखकर गुरु करकमलों में भेंट किया।।
सोलहकारण में है अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना आज।
ज्ञानाराधना के लिए गुरु से मिले सदा आशीर्वाद।।८।।

अब तक षट्खण्डागम के [१]छह ग्रंथों का अनुवाद किया।
आगे का भी कर सकूँ कार्य मैंने मन में यह भाव किया।।
श्री शांति कुंथु अर तीर्थंकर की जन्मभूमि हस्तिनापुरी।
इस टीका लेखन के संग में उसकी पावन स्मृती जुड़ी।।९।।

श्री श्रुतभक्ती आचार्य भक्ति पढ़ करके ग्रंथाध्ययन किया।
सिद्धान्तग्रंथ के लेखन में दिक्शुद्धि का पूरा ध्यान दिया।।
फिर भी यदि कोई हुआ अविनय तो हे श्रुतमात! क्षमा करना।
गुरुभक्ति में यदि कुछ कमी रही हो, तो गुरुमात! क्षमा करना।।१०।।

मुझ अल्पज्ञा चंदनामती का यह प्रयास कुछ ऐसा है।
गंगा जल से गंगा नदि को ही तर्पण करने जैसा है।।
फिर भी मेरे इस तर्पण और समर्पण को स्वीकार करो।
हे गणिनी माता ज्ञानमती! मेरा वंदन स्वीकार करो।।११।।

१. प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पंचम और सप्तम इन छह ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद मैंने किया है एवं छठी तथा आठवीं पुस्तक का हिन्दी अनुवाद पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी ने स्वयं किया है।

क्षुद्रकबन्धः-द्वितीयखण्डः सूत्राणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	जे ते बंधगा णाम तेसिमिमो णिद्देसो।	१०
२.	गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्साए भविए सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि।	१३
३.	गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया बंधा।	१७
४.	तिरिक्खा बंधा।	१७
५.	देवा बंधा।	१७
६.	मणुसा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि णत्थि।	१८
७.	सिद्धा अबंधा।	१८
८.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बंधा बीइंदिया बंधा तीइंदिया बंधा चदुरिंदिया बंधा।	२४
९.	पंचिंदिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	२४
१०.	अणिंदिया अबंधा।	२४
११.	कायाणुवादेण पुढवीकाइया बंधा आउकाइया बंधा तेउकाइया बंधा वाउकाइया बंधा वणप्फदिकाइया बंधा।	२६
१२.	तसकाइया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।।	२६
१३.	अकाइया अबंधा।	२६
१४.	जोगाणुवादेण मणजोगि-वचिजोगी-कायजोगिणो बंधा।।	२६
१५.	अजोगी अबंधा।	२६
१६.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा बंधा, पुरिसवेदा बंधा, णवुंसयवेदा बंधा।	२७
१७.	अवगदवेदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	२७
१८.	सिद्धा अबंधा।	२७
१९.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई बंधा।	२८
२०.	अकसाई बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	२८
२१.	सिद्धा अबंधा।	२८
२२.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओधिणाणी मणपज्जवणाणी बंधा।	३०
२३.	केवलणाणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३०
२४.	सिद्धा अबंधा।	३०
२५.	संजमाणुवादेण असंजदा बंधा, संजदासंजदा बंधा।	३१
२६.	संजदा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३१
२७.	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अबंधा।	३१
२८.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधिदंसणी बंधा।	३२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२९.	केवलदंसणी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३२
३०.	सिद्धा अबंधा।	३२
३१.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया बंधा।	३२
३२.	अलेस्सिया अबंधा।	३२
३३.	भवियाणुवादेण अभवसिद्धिया बंधा, भवसिद्धिया बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३३
३४.	णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अबंधा।	३३
३५.	सम्मत्ताणुवादेण मिच्छादिट्ठी बंधा, सासणसम्माइट्ठी बंधा, सम्मामिच्छाइट्ठी बंधा।	३४
३६.	सम्मादिट्ठी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३४
३७.	सिद्धा अबंधा।	३४
३८.	सण्णियाणुवादेण सण्णी बंधा, असण्णी बंधा।	३४
३९.	णेव सण्णी णेव असण्णी बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३४
४०.	सिद्धा अबंधा।	३५
४१.	आहाराणुवादेण आहारा बंधा।	३५
४२.	अणाहारा बंधा वि अत्थि, अबंधा वि अत्थि।	३५
४३.	सिद्धा अबंधा।	३५

अथ स्वामित्वानुगमः

प्रथमो महाधिकारः

अथ गतिमार्गणाधिकारः

१.	एदेसिं बंधयाणं परूवणट्ठदाए तत्थ इमाणि एक्कारस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति।	४२
२.	एगजीवेण सामित्तं, एगजीवेण कालो, एगजीवेण अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ, दव्वपरूवणाणुगमो, खेत्ताणुगमो, फोसणाणुगमो, णाणाजीवेहि कालो, अंतरं, भागाभागाणुगमो, अप्पबहुगाणुगमो चेदि।	४२
३.	एयजीवेण सामित्तं।	४५
४.	गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरईओ णाम कधं भवदि ?।	४५
५.	णिरयगदिणामाए उदएण।	४५
६.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कधं भवदि ?।	४७
७.	तिरिक्खगदिणामाए उदएण।	४७
८.	मणुसगदीए मणुसो णाम कधं भवदि ?।	४७
९.	मणुसगदिणामाए उदएण।	४७
१०.	देवगदीए देवो णाम कधं भवदि ?।	४८
११.	देवगदिणामाए उदएण।	४८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२.	सिद्धिगदीए सिद्धो णाम कधं भवदि ?।	६६
१३.	खइयाए लद्धीए।	६६
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
१४.	इंदियाणुवादेण एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ पंचिंदिओ णाम कधं भवदि ?।	६८
१५.	खओवसमियाए लद्धीए।	६८
१६.	अणिंदिओ णाम कधं भवदि ?।	७२
१७.	खइयाए लद्धीए।	७२
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
१८.	कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७४
१९.	पुढविकाइयणामाए उदएण।	७४
२०.	आउकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७६
२१.	आउकाइयणामाए उदएण।	७६
२२.	तेउकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७६
२३.	तेउकाइयणामाए उदएण।	७६
२४.	वाउकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७६
२५.	वाउकाइयणामाए उदएण।	७६
२६.	वणप्फइकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७६
२७.	वणप्फइकाइयणामाए उदएण।	७६
२८.	तसकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७७
२९.	तसकाइयणामाए उदएण।	७७
३०.	अकाइओ णाम कधं भवदि ?।	७७
३१.	खइयाए लद्धीए।	७७
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
३२.	जोगाणुवादेण मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम कधं भवदि ?।	७९
३३.	खओवसमियाए लद्धीए।	७९
३४.	अजोगी णाम कधं भवदि ?।	८१
३५.	खइयाए लद्धीए।	८१
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
३६.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो णाम कधं भवदि ?।	८२
३७.	चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदा।	८२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३८.	अवगदवेदो णाम कधं भवदि ?।	८३
३९.	उवसमियाए खइयाए लद्धीए।	८३
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
४०.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णाम कधं भवदि ?।	८५
४१.	चरित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण।	८५
४२.	अकसाई णाम कधं भवदि ?।	८५
४३.	उवसमियाए खइयाए लद्धीए।	८५
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
४४.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी णाम कधं भवदि ?।	८६
४५.	खओवसमियाए लद्धीए।	८६
४६.	केवलणाणी णाम कधं भवदि ?।	८८
४७.	खइयाए लद्धीए।	८८
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
४८.	संजमाणुवादेण संजदो सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदो णाम कधं भवदि ?।	९१
४९.	उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए।	९१
५०.	परिहारसुद्धिसंजदो संजदासंजदो णाम कधं भवदि ?।	९३
५१.	खओवसमियाए लद्धीए।	९३
५२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदो जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमो णाम कधं भवदि ?।	९४
५३.	उवसमियाए खइयाए लद्धीए।	९४
५४.	असंजदो णाम कधं भवदि ?	९५
५५.	संजमघादीणं कम्माणमुदयेण।	९५
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
५६.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी णाम कधं भवदि ?।	९६
५७.	खओवसमियाए लद्धीए।	९६
५८.	केवलदंसणी णाम कधं भवदि ?।	१००
५९.	खइयाए लद्धीए।	१००
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
६०.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिओ णीललेस्सिओ काउलेस्सिओ तेउलेस्सिओ पम्मलेस्सिओ सुक्कलेस्सिओ णाम कधं भवदि ?।	१०१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६१.	ओदइएण भावेण।	१०१
६२.	अलेस्सिओ णाम कधं भवदि ?।	१०३
६३.	खइयाए लद्धीए।	१०३
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
६४.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिओ अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि ?।	१०४
६५.	पारिणामिएण भावेण।	१०४
६६.	णेव भवसिद्धिओ णेव अभवसिद्धिओ णाम कधं भवदि ?।	१०४
६७.	खइयाए लद्धीए।	१०४
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
६८.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०५
६९.	उवसमियाए खइयाए खओवसमियाए लद्धीए।	१०५
७०.	खइयसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०५
७१.	खइयाए लद्धीए।	१०५
७२.	वेदगसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०६
७३.	खओवसमियाए लद्धीए।	१०६
७४.	उवसमसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०६
७५.	उवसमियाए लद्धीए।	१०६
७६.	सासणसम्माइट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०६
७७.	पारिणामिएण भावेण।	१०६
७८.	सम्मामिच्छाइट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०६
७९.	खओवसमियाए लद्धीए।	१०७
८०.	मिच्छादिट्ठी णाम कधं भवदि ?।	१०७
८१.	मिच्छत्तस्स कम्मस्स उदएण।	१०७
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
८२.	सण्णियाणुवादेण सण्णी णाम कधं भवदि ?।	१०९
८३.	खओवसमियाए लद्धीए।	१०९
८४.	असण्णी णाम कधं भवदि ?।	१०९
८५.	ओदइएण भावेण।	१०९
८६.	णेव सण्णी णेव असण्णी णाम कधं भवदि ?।	१०९
८७.	खइयाए लद्धीए।	१०९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ आहारमार्गणाधिकारः

८८.	आहाराणुवादेण आहारो णाम कधं भवदि ?।	११०
८९.	ओदइएण भावेण।	११०
९०.	अणाहारो णाम कधं भवदि ?।	११०
९१.	ओदइएण भावेण पुण खइयाए लद्धीए।	१११

अथ एकजीवेन कालानुगमो महाधिकारः

अथ गतिमार्गणाधिकारः

१.	एगजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।	११६
२.	जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि।	११६
३.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।	११६
४.	पढमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।	११६
५.	जहण्णेण दसवाससहस्साणि।	११६
६.	उक्कस्सेण सागरोवमं।	११७
७.	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।	११८
८.	जहण्णेण एक्क तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	११८
९.	उक्कस्सेण तिण्णि सत्त दस सत्तारस बावीस तेत्तीसं सागरोवमाणि।	११८
१०.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खो केवचिरं कालादो होंति ?।	१२७
११.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१२७
१२.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	१२७
१३.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी केवचिरं कालादो होंति ?	१२८
१४.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं।	१२८
१५.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	१२८
१६.	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१३०
१७.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१३०
१८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१३०
१९.	(मणुसगदीए) मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ?।	१३१
२०.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं।	१३१
२१.	उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	१३१
२२.	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१३२
२३.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१३२
२४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१३२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२५.	देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ?।	१३३
२६.	जहण्णेण दसवाससहस्साणि।	१३३
२७.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।	१३३
२८.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा-केवचिरं कालादो होंति ?।	१३४
२९.	जहण्णेण दसवाससहस्साणि, दसवासहस्साणि, पलिदोवमस्स अट्ठम-भागो।	१३४
३०.	उक्कस्सेण सागरोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं, पलिदोवमं सादिरेयं।	१३४
३१.	सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?।	१३४
३२.	जहण्णेण पलिदोवमं वे सत्त दस चोद्दस सोलस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१३५
३३.	उक्कस्सेण वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१३५
३४.	आणदप्पहुडि जाव अवराइदविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?।	१३७
३५.	जहण्णेण अट्ठारस वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१३७
३६.	उक्कस्सेण वीसं बावीसं तेवीसं चउवीसं पणुवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगुणत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं बत्तीसं तेत्तीसं सागरोवमाणि।	१३७
३७.	सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा केवचिरं कालादो होंति ?।	१३७
३८.	जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि।	१३७

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

३९.	इंदियाणुवादेण एइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?।	१४३
४०.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४३
४१.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	१४३
४२.	बादरेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?।	१४३
४३.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४३
४४.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।	१४४
४५.	बादरएइंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४४
४६.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४४
४७.	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।	१४४
४८.	बादरेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४४
४९.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४४
५०.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१४४
५१.	सुहुमेइंदिया केवचिरं कालादो होंति ?।	१४५
५२.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४५
५३.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	१४५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५४.	सुहुमेइंदिया पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४५
५५.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१४५
५६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१४५
५७.	सुहुमेइंदियअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४५
५८.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४५
५९.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१४६
६०.	बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?	१४७
६१.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं।	१४७
६२.	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।	१४७
६३.	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४७
६४.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४७
६५.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१४८
६६.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४८
६७.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं।	१४८
६८.	उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवम-सदपुधत्तं।	१४८
६९.	पंचिंदिय अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१४९
७०.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१४९
७१.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१४९

अथ कायमार्गणाधिकारः

७२.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया केवचिरं कालादो होंति ?	१५१
७३.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१५१
७४.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	१५१
७५.	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदि पत्तेयसरीरा केवचिरं कालादो होंति ?	१५१
७६.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१५२
७७.	उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी।	१५२
७८.	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१५३
७९.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५३
८०.	उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।	१५३
८१.	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवाउ-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१५३
८२.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१५३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१५३
८४.	सुहुमपुढविकाइया सुहुमआउकाइया सुहुमतेउकाइया सुहुमवाउकाइया सुहुमवणप्फदि-काइया सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।	१५४
८५.	वणप्फदिकाइया एइंदियाणं भंगो।	१५५
८६.	णिगोदजीवा केवचिरं कालादो होंति ?।	१५५
८७.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१५५
८८.	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं।	१५६
८९.	बादरणिगोदजीवा बादरपुढविकाइयाणं भंगो।	१५६
९०.	तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१५६
९१.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं।	१५६
९२.	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडीपुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवम-सहस्साणि।	१५६
९३.	तसकाइयअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	१५६
९४.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१५७
९५.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१५७
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
९६.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।	१५८
९७.	जहण्णेण एयसमओ।	१५८
९८.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१५८
९९.	कायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।	१५८
१००.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१५९
१०१.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	१५९
१०२.	ओरालियकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।	१५९
१०३.	जहण्णेण एगसमओ।	१५९
१०४.	उक्कस्सेण बावीसं वाससहस्साणि देसूणाणि।	१५९
१०५.	ओरालियमिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?	१६०
१०६.	जहण्णेण एगसमओ।	१६०
१०७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६०
१०८.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।	१६०
१०९.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६०
११०.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१६०
१११.	कम्मकायजोगी केवचिरं कालादो होदि ?।	१६०
११२.	जहण्णेण एगसमओ।	१६०
११३.	उक्कस्सेण तिण्णि समया।	१६१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ वेदमार्गणाधिकारः

११४. वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केवचिरं कालादो होंति ?। १६३
११५. जहण्णेण एगसमओ। १६३
११६. उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं। १६३
११७. पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होंति ?। १६३
११८. जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। १६३
११९. उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं। १६३
१२०. णवुंसयवेदा केवचिरं कालादो होंति ?। १६४
१२१. जहण्णेण एयसमओ। १६४
१२२. उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं। १६४
१२३. अवगतवेदा केवचिरं कालादो होंति ?। १६५
१२४. उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। १६५
१२५. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। १६५
१२६. खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। १६५
१२७. उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं। १६५

अथ कषायमार्गणाधिकारः

१२८. कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई केवचिरं कालादो होंति ? १६७
१२९. जहण्णेण एयसमओ। १६७
१३०. उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। १६७
१३१. अकसाई अवगदवेदभंगो। १६९

अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः

१३२. णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी केवचिरं कालादो होदि ?। १७०
१३३. अणादिओ अपज्जवसिदो। १७०
१३४. अणादिओ सपज्जवसिदो। १७०
१३५. सादिओ सपज्जवसिदो। १७०
१३६. जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। १७०
१३७. उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। १७०
१३८. विभंगणाणी केवचिरं कालादो होदि ?। १७१
१३९. जहण्णेण एगसमओ। १७१
१४०. उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि। १७२
१४१. आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी केवचिरं कालादो होदि ?। १७२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४२.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७२
१४३.	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१७२
१४४.	मणपज्जवणाणी केवलणाणी केवचिरं कालादो होंति ?।	१७३
१४५.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७४
१४६.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	१७४
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
१४७.	संजमाणुवादेण संजदा परिहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	१७५
१४८.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७६
१४९.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	१७६
१५०.	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	१७६
१५१.	जहण्णेण एगसमओ।	१७७
१५२.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	१७७
१५३.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	१७७
१५४.	उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	१७७
१५५.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१७७
१५६.	खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७७
१५७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१७८
१५८.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	१७८
१५९.	उवसमं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ।	१७८
१६०.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१७८
१६१.	खवगं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१७९
१६२.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।	१७९
१६३.	असंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	१८०
१६४.	अणादिओ अपज्जवसिदो।	१८०
१६५.	अणादिओ सपज्जवसिदो।	१८०
१६६.	सादिओ सपज्जवसिदो।	१८०
१६७.	जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो-जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८१
१६८.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	१८१
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
१६९.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ?।	१८२
१७०.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७१.	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि।	१८२
१७२.	अचक्खुदंसणी केवचिरं कालादो होंति ?।	१८३
१७३.	अणादिओ अपज्जवसिदो।	१८३
१७४.	अणादिओ सपज्जवसिदो।	१८३
१७५.	ओधिदंसणी ओधिणाणीभंगो।	१८३
१७६.	केवलदंसणी केवलणाणीभंगो।	१८३
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
१७७.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?	१८४
१७८.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८४
१७९.	उक्कस्सेण तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१८५
१८०.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?।	१८५
१८१.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१८५
१८२.	उक्कस्सेण बे-अट्ठारस-तेत्तीस-सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१८५
	अथ भव्यत्वमार्गणाधिकारः	
१८३.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?।	१८६
१८४.	अणादिओ सपज्जवसिदो।	१८७
१८५.	सादिओ सपज्जवसिदो।	१८७
१८६.	अभवियसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?।	१८८
१८७.	अणादिओ अपज्जवसिदो।	१८८
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
१८८.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९०
१८९.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९०
१९०.	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१९०
१९१.	खइयसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९१
१९२.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९१
१९३.	उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि।	१९१
१९४.	वेदगसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९१
१९५.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१९१
१९६.	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि।	१९२
१९७.	उवसमसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९२
१९८.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१९९.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	१९२
२००.	सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९३
२०१.	जहण्णेण एयसमओ।	१९३
२०२.	उक्कस्सेण छावलियाओ।	१९३
२०३.	मिच्छादिट्ठी मदिअण्णाणीभंगो।	१९३
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
२०४.	सण्णियाणुवादेण सण्णी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९५
२०५.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१९५
२०६.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	१९५
२०७.	असण्णी केवचिरं कालादो होंति ?।	१९५
२०८.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	१९६
२०९.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	१९६
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
२१०.	आहाराणुवादेण आहारा केवचिरं कालादो होंति ?।	१९७
२११.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमयूणं।	१९७
२१२.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी उस्सप्पिणीओ।	१९७
२१३.	अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ?।	१९७
२१४.	जहण्णेणेगसमओ।	१९७
२१५.	उक्कस्सेण तिण्णि समया।	१९८
२१६.	अंतोमुहुत्तं।	१९८
	अथ अन्तरानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	एगजीवेण अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०२
२.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२०२
३.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२०२
४.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	२०२
५.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०३
६.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२०३
७.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	२०३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८.	पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरक्खपज्जत्ता, पंचिदिंयतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुस्सा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०४
९.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२०४
१०.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।	२०४
११.	देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०५
१२.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२०५
१३.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।	२०५
१४.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवा देवगदिभंगो।	२०५
१५.	सणक्कुमार-माहिंदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०६
१६.	जहण्णेण मुहुत्तपुधत्तं।	२०६
१७.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२०६
१८.	बम्ह-बम्हुत्तर-लांतव-काविट्ठकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०६
१९.	जहण्णेण दिवसपुधत्तं।	२०६
२०.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२०६
२१.	सुक्क-महासुक्क-सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०६
२२.	जहण्णेण पक्खपुधत्तं।	२०६
२३.	उक्कस्सेण अंणतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२०७
२४.	आणद-पाणद-आरण-अच्चुदकप्पवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०७
२५.	जहण्णेण मासपुधत्तं।	२०७
२६.	उक्कस्समणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२०७
२७.	णवगेवज्ज विमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२०९
२८.	जहण्णेण वासपुधत्तं।	२०९
२९.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२०९
३०.	अणुदिस जाव अवराइदविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२०९
३१.	जहण्णेण वासपुधत्तं।	२१०
३२.	उक्कस्सेण बे सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	२१०
३३.	सव्वट्ठ सिद्धिविमाणवासियदेवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१०
३४.	णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	२१०

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

३५.	इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।।	२१२
३६.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३७.	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।	२१२
३८.	बादरएइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१३
३९.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१३
४०.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	२१३
४१.	सुहुमेइंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१४
४२.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१४
४३.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणीओ-उस्सप्पिणीओ।	२१४
४४.	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियाणं तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२१५
४५.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१५
४६.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२१५
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
४७.	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१६
४८.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१६
४९.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२१६
५०.	वणप्फदिकाइयणिगोदजीवबादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमन्तरं केवचिरं कालादो होदि ?	२१७
५१.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१७
५२.	उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा।	२१७
५३.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१७
५४.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१८
५५.	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं।	२१८
५६.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१८
५७.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२१८
५८.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२१८
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
५९.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२१९
६०.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२२०
६१.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२२०
६२.	कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२१
६३.	जहण्णेण एगसमओ।	२२१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६४.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२२१
६५.	औरालियकायजोगी-ओरालियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२१
६६.	जहण्णेण एगसमओ।	२२१
६७.	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	२२१
६८.	वेउव्वियकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२२
६९.	जहण्णेण एगसमओ।	२२३
७०.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२२३
७१.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२३
७२.	जहण्णेण दसवाससहस्साणि सादिरेयाणि।	२२३
७३.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२२३
७४.	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२४
७५.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२२४
७६.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं।	२२४
७७.	कम्मइयकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२५
७८.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं।	२२५
७९.	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।	२२५

अथ वेदमार्गणाधिकारः

८०.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२७
८१.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२२७
८२.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२२७
८३.	पुरिसवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२७
८४.	जहण्णेण एगसमओ।	२२७
८५.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२२७
८६.	णवुंसयवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२८
८७.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२२८
८८.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	२२८
८९.	अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२२८
९०.	उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२२८
९१.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	२२९
९२.	खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।	२२९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
९३.	कसायाणुवादेण कोधकसाई-माणकसाई-मायकसाई-लोभकसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२३१
९४.	जहण्णेण एगसमओ।	२३१
९५.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	२३१
९६.	अकसाई अवगदवेदाण भंगो।	२३२
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
९७.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी-सुदअण्णाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२३३
९८.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३३
९९.	उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।	२३३
१००.	विभंगणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२३४
१०१.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३४
१०२.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२३४
१०३.	आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२३५
१०४.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३५
१०५.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	२३५
१०६.	केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२३५
१०७.	णत्थि अंतरं णिरंतरं।	२३५
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
१०८.	संजमाणुवादेण संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धि-संजद-संजदा-संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२३७
१०९.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३७
११०.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	२३७
१११.	सुहुमसांपराइसुद्धिसंजद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	२३८
११२.	उवसमं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२३९
११३.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	२३९
११४.	खवगं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।	२३९
११५.	असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४०
११६.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२४०
११७.	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	२४०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

११८.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४२
११९.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२४२
१२०.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२४२
१२१.	अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४३
१२२.	णत्थि अंतरं णिरंतरं।	२४३
१२३.	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।	२४३
१२४.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	२४३

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

१२५.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालोदहोदि ?	२४४
१२६.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२४४
१२७.	उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि।	२४४
१२८.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४५
१२९.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	२४५
१३०.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२४५

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

१३१.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४७
१३२.	णत्थि अंतरं णिरंतरं।	२४७

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः

१३३.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छा-इट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४८
१३४.	जहण्णेण अंतोमुहत्तं।	२४८
१३५.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	२४८
१३६.	खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४८
१३७.	णत्थि अंतरं णिरंतरं।	२४८
१३८.	सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२४९
१३९.	जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२४९
१४०.	उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।	२४९
१४१.	मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो।	२५०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

१४२.	सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२५८
१४३.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२५८
१४४.	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।	२५८
१४५.	असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२५८
१४६.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	२५९
१४७.	उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं।	२५९

अथ आहारमार्गणाधिकारः

१४८.	आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	२६०
१४९.	जहण्णेण एगसमयं।	२६०
१५०.	उक्कस्सेण तिण्णिसमयं।	२६०
१५१.	अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो।	२६०

अथ भंगविचयानुगमोमहाधिकारः

अथ गतिमार्गणाधिकारः

१.	णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया णियमा अत्थि।	२६४
२.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	२६४
३.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदिय तिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदिय तिरिक्ख-जोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ णियमा अत्थि।	२६५
४.	मणुसअपज्जत्ता सिया अत्थि सिया णत्थि।	२६५
५.	देवगदीए देवा णियमा अत्थि।	२६६
६.	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणवासियदेवेसु।	२६६

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

७.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि।	२६७
८.	बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि।	२६७

अथ कायमार्गणाधिकारः

९.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवण-प्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि।	२६८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
१०.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालिय-मिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी णियमा अत्थि।	२६९
११.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी आहारकायजोगी आहारमिस्सकायजोगी सिया अत्थि सिया णत्थि।	२६९
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
१२.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा णियमा अत्थि।।	२७०
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
१३.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई णियमा अत्थि।	२७१
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
१४.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणी केवलणाणी णियमा अत्थि।	२७१
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
१५.	संजमाणुवादेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहार-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा णियमा अत्थि।	२७२ २७२
१६.	सुहुमसांपराइयसंजदा सिया अत्थि सिया णत्थि।	२७२
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
१७.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी णियमा अत्थि।	२७३
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
१८.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया णियमा अत्थि।	२७४
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
१९.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया णियमा अत्थि।	२७४
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
२०.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी णियमा अत्थि।	२७५
२१.	उवसमसम्माइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सिया अत्थि सिया णत्थि।	२७५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
२२.	सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी णियमा अत्थि।	२७६
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
२३.	आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा णियमा अत्थि।	२७७
	अथ द्रव्यप्रमाणानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	दव्वपमाणाणुगमणेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८१
२.	असंखेज्जा।	२८१
३.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२८२
४.	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ।	२८२
५.	पदरस्स असंखेज्जदिभागो।	२८२
६.	तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं विदियवग्गमूलगुणिदेण।	२८२
७.	एवं पढमाए पुढवीए णेरइया।	२८३
८.	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८३
९.	असंखेज्जा।	२८३
१०.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२८३
११.	खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो।	२८३
१२.	तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ।	२८३
१३.	पढमादियाणं सेडिवग्गमूलाणं संखेज्जाणमण्णोण्णब्भासो।	२८३
१४.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८४
१५.	अणंता।	२८४
१६.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	२८४
१७.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	२८४
१८.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८५
१९.	असंखेज्जा।	२८५
२०.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२८५
२१.	खेत्तेण पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणि-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि देवअवहारकालादो असंखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणहीणेण कालेण संखेज्जगुणेण कालेण असंखेज्जगुणहीणेण कालेण।।	२८५
२२.	मणुसगदीए मणुस्स मणुसअपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३.	असंखेज्जा।	२८६
२४.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२८६
२५.	खेत्तेण सेडीए असंखेज्जदिभागो।	२८६
२६.	तिस्से सेडीए आयामो असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ।	२८७
२७.	मणुस-मणुसअपज्जत्तएहि रूवं रूवापक्खित्तएहि सेडी अवहिरदि अंगुलवग्गमूलं तदियवग्गमूलगुणिदेण।	२८७
२८.	मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८७
२९.	कोडाकोडाकोडीए उवरिं कोडाकोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सत्तण्हं वग्गाणं हेट्ठदो।	२८७
३०.	देवगदीए देवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८८
३१.	असंखेज्जा।	२८९
३२.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२८९
३३.	खेत्तेण पदरस्स बेछप्पण्णंगुलसदवग्गपडिभाएण।	२८९
३४.	भवणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२८९
३५.	असंखेज्जा।	२९०
३६.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२९०
३७.	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ।	२९०
३८.	पदरस्स असंखेज्जदिभागो।	२९०
३९.	तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलं अंगुलवग्गमूलगुणिदेण।	२९०
४०.	वाणवेंतरदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९०
४१.	असंखेज्जा।	२९०
४२.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२९०
४३.	खेत्तेण पदरस्स संखेज्जजोयणसदवग्गपडिभाएण।	२९०
४४.	जोदिसिया देवा देवगदिभंगो।	२९०
४५.	सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९१
४६.	असंखेज्जा।	२९१
४७.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२९१
४८.	खेत्तेण असंखेज्जाओ सेडीओ।	२९१
४९.	पदरस्स असंखेज्जदिभागो।	२९१
५०.	तासिं सेडीणं विक्खंभसूची अंगुलवग्गमूलं बिदियं तदियवग्गमूलगुणिदेण।	२९१
५१.	सणक्कुमार जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्तमपुढवीभंगो।	२९२
५२.	आणद जाव अवराइदविमाणवासियदेवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५३.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	२९२
५४.	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	२९२
५५.	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासिय देवा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९२
५६.	संखेज्जा।	२९२
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
५७.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९४
५८.	अणंता।	२९४
५९.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	२९४
६०.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	२९४
६१.	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२९४
६२.	असंखेज्जा।	२९४
६३.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२९५
६४.	खेत्तेण बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्तेहि पदरं अवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्गपडिभाएण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण।	२९५
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
६५.	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादर- पुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवाउकाइय-बादर-वणप्फ दिकाइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९६
६६.	असंखेज्जा लोगा।	२९६
६७.	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-पज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९६
६८.	असंखेज्जा।	२९७
६९.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२९७
७०.	खेत्तेण बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तएहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण।	२९७
७१.	बादरतेउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९७
७२.	असंखेज्जा।	२९७
७३.	असंखेज्जावलियवग्गो आवलिघणस्स अंतो।	२९७
७४.	बादरवाउपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?।	२९८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७५.	असंखेज्जा।	२९८
७६.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	२९८
७७.	खेत्तेण असंखेज्जाणि पदराणि।	२९८
७८.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	२९८
७९.	वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्वपमाणेण केवडिया ?	२९८
८०.	अणंता।	२९९
८१.	अंणताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	२९९
८२.	खेत्तेण अंणताणंता लोगा।	२९९
८३.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।	२९९

अथ योगमार्गणाधिकारः

८४.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी तिण्णिवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३००
८५.	देवाणं संखेज्जदिभागो।	३००
८६.	वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगी दव्वपमाणेण केवडिया।	३००
८७.	असंखेज्जा।	३००
८८.	असंखेज्जासंखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	३०१
८९.	खेत्तेण वचिजोगि-असच्चमोसवचिजोगीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदि भागवग्गपडिभाएण।	३०१
९०.	कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइय-कायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०१
९१.	अणंता।	३०१
९२.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	३०१
९३.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	३०१
९४.	वेउव्वियकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०२
९५.	देवाणं संखेज्जदिभागूणो।	३०२
९६.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया।	३०२
९७.	देवाणं संखेज्जदिभागो।	३०२
९८.	आहारकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०३
९९.	चदुवण्णं।	३०३
१००.	आहारमिस्सकायजोगी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०३
१०१.	संखेज्जा।	३०३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
१०२.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०४
१०३.	देवीहि सादिरेयं।	३०४
१०४.	पुरिसवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०४
१०५.	देवेहि सादिरेयं।	३०४
१०६.	णवुंसयवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०४
१०७.	अणंता।	३०४
१०८.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	३०४
१०९.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	३०४
११०.	अवगदवेदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०५
१११.	अणंता।	३०५
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
११२.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ?	३०६
११३.	अणंता।	३०६
११४.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	३०६
११५.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	३०६
११६.	अकसाई दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०७
११७.	अणंता।	३०७
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
११८.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयभंगो।	३०८
११९.	विभंगणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०८
१२०.	देवेहि सादिरेयं।	३०८
१२१.	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०९
१२२.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	३०९
१२३.	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	३०९
१२४.	मणपज्जवणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०९
१२५.	संखेज्जा।	३०९
१२६.	केवलणाणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३०९
१२७.	अणंता।	३०९
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
१२८.	संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२९.	कोडिपुधत्तं।	३१०
१३०.	परिहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१०
१३१.	सहस्सपुधत्तं।	३१०
१३२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१०
१३३.	सदपुधत्तं।	३१०
१३४.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३११
१३५.	सदसहस्सपुधत्तं।	३११
१३६.	संजदासंजदा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३११
१३७.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	३१२
१३८.	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	३१२
१३९.	असंजदा मदिअण्णाणिभंगो।	३१२

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

१४०.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१३
१४१.	असंखेज्जा।	३१३
१४२.	असंखेज्जा संखेज्जाहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि अवहिरंति कालेण।	३१३
१४३.	खेत्तेण चक्खुदंसणीहि पदरमवहिरदि अंगुलस्स संखेज्जदिभागवग्ग-पडिभाएण।	३१३
१४४.	अचक्खुदंसणी असंजदभंगो।	३१३
१४५.	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।	३१४
१४६.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	३१४

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

१४७.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिया असंजदभंगो।	३१५
१४८.	तेउलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१५
१४९.	जोदिसियदेवेहि सादिरेयं।	३१५
१५०.	पम्मलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१५
१५१.	सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिणीणं संखेज्जदिभागो।	३१५
१५२.	सुक्कलेस्सिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१५
१५३.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	३१६
१५४.	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	३१६

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

१५५.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१७
१५६.	अणंता।	३१७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५७.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	३१७
१५८.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	३१७
१५९.	अभवसिद्धिया दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३१९
१६०.	अणंता।	३१९
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
१६१.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्मादिट्ठी उवसमसम्मादिट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३२०
१६२.	पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	३२०
१६३.	एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण।	३२१
१६४.	मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।	३२१
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
१६५.	सण्णियाणुवादेण सण्णी दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३२२
१६६.	देवेहि सादिरेयं।	३२२
१६७.	असण्णी असंजदभंगो।	३२२
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
१६८.	आहाराणुवादेण आहारा अणाहारा दव्वपमाणेण केवडिया ?।	३२३
१६९.	अणंता।	३२३
१७०.	अणंताणंताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण।	३२४
१७१.	खेत्तेण अणंताणंता लोगा।	३२४
	अथ क्षेत्रानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	खेत्ताणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३२७
२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३२७
३.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	३२७
४.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३२९
५.	सव्वलोए।	३३०
६.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३०
७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३०
८.	मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३१
१०.	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३३१
११.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३१
१२.	असंखेज्जेसु वा भाएसु सव्वलोगे वा।	३३१
१३.	मणुसअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३१
१४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३१
१५.	देवगदीए देवा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३२
१६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३२
१७.	भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभंगो।	३३२
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
१८.	इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३३
१९.	सव्वलोगे।	३३४
२०.	बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३३४
२१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३४
२२.	समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३४
२३.	सव्वलोए।	३३४
२४.	बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३५
२५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३५
२६.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३६
२७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३६
२८.	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३३६
२९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।	३३६
३०.	पंचिंदियअपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३६
३१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३६
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
३२.	कायाणुवादेण पुढविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय-सुहुमपुढविकाइय सुहुमआउकाइय सुहुमतेउकाइय सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३८
३३.	सव्वलोगे।	३३८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३४.	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३३९
३५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३३९
३६.	समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३३९
३७.	सव्वलोगे।	३३९
३८.	बादरपुढविकाइया बादरआउकाइया बादरतेउकाइया बादरवणप्फदि-काइयपत्तेय-सरीरपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडि खेत्ते ?।	३३९
३९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३४०
४०.	बादरवाउकाइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३४०
४१.	लोगस्स संखेज्जदिभागे।	३४१
४२.	समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ? सव्वलोगे।	३४१
४३.	बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३४१
४४.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	३४१
४५.	वणप्फदिकाइय-णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ता सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३४१
४६.	सव्वलोए।	३४२
४७.	बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडि-खेत्ते ?।	३४२
४८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३४२
४९.	समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३४२
५०.	सव्वलोए।	३४२
५१.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्त-अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणं भंगो।	३४३

अथ योगमार्गणाधिकारः

५२.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३४४
५३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३४४
५४.	कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३४५
५५.	सव्वलोए।	३४५
५६.	ओरालियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३४५
५७.	सव्वलोए।	३४५
५८.	उववादं णत्थि।	३४५
५९.	वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३४६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३४६
६१.	उववादो णत्थि।	३४६
६२.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३४६
६३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३४६
६४.	समुग्घाद-उववादा णत्थि।	३४७
६५.	आहारकायजोगी वेउव्वियकायजोगिभंगो।	३४७
६६.	आहारमिस्सकायजोगी वेउव्वियमिस्सभंगो।	३४७
६७.	कम्मइयकायजोगी केवडिखेत्ते ?।	३४८
६८.	सव्वलोए।	३४८
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
६९.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३४९
७०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३४९
७१.	णवुंसयवेदा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३४९
७२.	सव्वलोए।	३४९
७३.	अवगदवेदा सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३५०
७४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३५०
७५.	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३५०
७६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।	३५०
७७.	उववादं णत्थि।	३५०
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
७८.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो।	३५२
७९.	अकसाई अवगदवेदभंगो।	३५२
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
८०.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी णवुंसयवेदभंगो।	३५४
८१.	विभंगणाणि-मणपज्जवणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३५४
८२.	लोगस्स संखेज्जदिभागे।	३५४
८३.	उववादं णत्थि।	३५४
८४.	आभिणिबोहिय-सुद-ओधिणाणी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३५५
८५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३५५
८६.	केवलणाणी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३५६
८७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८८.	समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३५६
८९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।	३५६
९०.	उववादं णत्थि।	३५६
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
९१.	संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाई भंगो।	३५७
९२.	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदा संजदासंजदा मणपज्जवणाणिभंगो।	३५७
९३.	असंजदा णवुंसयभंगो।	३५७
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
९४.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेण समुग्घादेण केवडिखेत्ते ?।	३५९
९५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३५९
९६.	उववादं सिया अत्थि, सिया णत्थि। लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि। जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडिखेत्ते ?।	३६०
९७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६०
९८.	अचक्खुदंसणी असंजदभंगो।	३६०
९९.	ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो।	३६०
१००.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	३६०
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
१०१.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया असंजदभंगो।	३६१
१०२.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते।	३६२
१०३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६२
१०४.	सुक्कलेस्सिया सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३६३
१०५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६३
१०६.	समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।	३६३
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
१०७.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३६४
१०८.	सव्वलोगे।	३४५
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
१०९.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी खइयसम्मादिट्ठी सत्थाणेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३६६
११०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१११.	समुग्घादेण लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा।	३६७
११२.	वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?	३६७
११३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६७
११४.	सम्मामिच्छाइट्ठी सत्थाणेण केवडिखेत्ते ?।	३६८
११५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६८
११६.	मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।	३६८
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
११७.	सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३६९
११८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३६९
११९.	असण्णी सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३७०
१२०.	सव्वलोगे।	३७०
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
१२१.	आहाराणुवादेण आहारा सत्थाणेण समुग्घादेण उववादेण केवडिखेत्ते ?।	३७१
१२२.	सव्वलोगे।	३७१
१२३.	अणाहारा केवडिखेत्ते ?।	३७१
१२४.	सव्वलोगे।	३७२
	अथ स्पर्शनानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	फोसणाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएहि सत्थाणेहि केवडिखेत्ते फोसिदं ?	३७५
२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३७५
३.	समुग्घादेण उववादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७५
४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागे।	३७५
५.	छच्चोद्दसभागा वा देसूणा।	३७५
६.	पढमाए पुढवीए णेरइया सत्थाण-समुग्घाद-उववादपदेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७६
७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३७६
८.	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइया सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७६
९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३७६
१०.	समुदग्घाद-उववादेहि य केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७६
११.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो एग-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छ-चोद्दसभागा वा देसूणा।	३७६
१२.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१३.	सव्वलोगो।	३७७
१४.	पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि-पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७७
१५.	लोगस्स असंखेज्जदि भागो।	३७७
१६.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७७
१७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।	३७७
१८.	मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीओ सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३७९
१९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३८०
२०.	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८०
२१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा।	३८०
२२.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८०
२३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।	३८०
२४.	मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ताणं भंगो।	३८०
२५.	देवगदीए देवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८१
२६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	३८१
२७.	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८१
२८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ-णव-चोद्दस भागा वा देसूणा।	३८२
२९.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८२
३०.	लोगस्स असंखेज्जदि भागो छच्चोद्दसभागा वा देसूणा।	३८२
३१.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसियदेवा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८३
३२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धट्ठा वा अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	३८३
३३.	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८३
३४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धट्ठा वा अट्ठ-णव-चोद्दस भागा वा देसूणा।	३८४
३५.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८४
३६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३८४
३७.	सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादं देवभंगो।	३८६
३८.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा।	३८६
३९.	सणक्कुमार जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८६
४०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	३८६
४१.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८६
४२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो तिण्णि-अद्धट्ठ-चत्तारि-अद्धवंचम-पंचचोद्दसभागा वा देसूणा।	३८६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४३.	आणद जाव अच्चुदकप्पवासियदेवा सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८८
४४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो छचोद्दसभागा वा देसूणा।	३८८
४५.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८८
४६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्धछट्ठ-छ चोद्दसभागा वा देसूणा।	३८८
४७.	णवगेवज्ज जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३८९
४८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३८९
	अथ इंद्रियमार्गणाधिकारः	
४९.	इंदियाणुवादेण एइंदिया सुहुमेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९०
५०.	सव्वलोगो।	३९०
५१.	बादरेइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९०
५२.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	३९०
५३.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९१
५४.	सव्वलोगो।	३९१
५५.	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पज्जत्तापज्जत्ताणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९२
५६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३९२
५७.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९२
५८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।	३९२
५९.	पंचिंदियपंचिंदियपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९३
६०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	३९३
६१.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९३
६२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा।	३९३
६३.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९३
६४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।	३९४
६५.	पंचिंदिय-अपज्जत्ता सत्थाणेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९५
६६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३९५
६७.	समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९५
६८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	३९६
६९.	सव्वलोगो वा।	३९६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
७०.	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-सुहुम-पुढविकाइय-सुहुमआउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	३९८
७१.	सव्वलोगो।	३९८
७२.	बादरपुढविकाइय-बादरआउकाइय-बादरतेउकाइय-बादरवणप्फदि-काइयपत्तेयसरीरा तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४००
७३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४००
७४.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४००
७५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४००
७६.	सव्वलोगो वा।	४००
७७.	बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय-सरीरपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४००
७८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४००
७९.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४००
८०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४००
८१.	सव्वलोगो वा।	४०१
८२.	बादरवाउक्काइया तस्सेव अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०२
८३.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	४०२
८४.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०२
८५.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	४०२
८६.	सव्वलोगो वा।	४०२
८७.	बादरवाउपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०२
८८.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	४०२
८९.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०२
९०.	लोगस्स संखेज्जदिभागो।	४०२
९१.	सव्वलोगो वा।	४०२
९२.	वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०४
९३.	सव्वलोगो।	४०५
९४.	बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
९५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४०५
९६.	समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०५
९७.	सव्वलोगो।	४०५
९८.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-अपज्जत्तभंगो।	४०५
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
९९.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०७
१००.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४०७
१०१.	अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा।	४०७
१०२.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०७
१०३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४०८
१०४.	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।	४०८
१०५.	उववादो णत्थि।	४०८
१०६.	कायजोगि-औदालियमिस्सकायजोगी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०९
१०७.	सव्वलोगो।	४०९
१०८.	ओरालियकायजोगी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४०९
१०९.	सव्वलोगो।	४०९
११०.	उववादं णत्थि।	४०९
१११.	वेउव्वियकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१०
११२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१०
११३.	अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा।	४१०
११४.	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१०
११५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१०
११६.	अट्ठ-तेरसचोद्दसभागा देसूणा।	४१०
११७.	उववादं णत्थि।	४११
११८.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४११
११९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४११
१२०.	समुग्घाद-उववादं णत्थि।	४११
१२१.	आहारकायजोगी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१२
१२२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१२
१२३.	उववादं णत्थि।	४१२
१२४.	आहारमिस्सकायजोगी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१३
१२६.	समुग्घाद-उववादं णत्थि।	४१३
१२७.	कम्मइयकायजोगीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१३
१२८.	सव्वलोगो।	४१३
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
१२९.	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१५
१३०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१५
१३१.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।	४१५
१३२.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१५
१३३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१५
१३४.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा।	४१५
१३५.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१५
१३६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१५
१३७.	सव्वलोगो वा।	४१५
१३८.	णवुंसयवेदा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१७
१३९.	सव्वलोगो।	४१७
१४०.	अवगदवेदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१७
१४१.	लोगस्स असंखेज्जदि भागो।	४१७
१४२.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४१८
१४३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४१८
१४४.	असंखेज्जा वा भागा।	४१८
१४५.	सव्वलोगो वा।	४१८
१४६.	उववादं णत्थि।	४१८
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
१४७.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई णवुंसयवेदभंगो।	४१९
१४८.	अकसाई अवगदवेदभंगो।	४१९
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
१४९.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२०
१५०.	सव्वलोगो वा।	४२०
१५१.	विभंगणाणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२१
१५३.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।	४२१
१५४.	समुग्घादेण केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२१
१५५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२१
१५६.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा फोसिदा।	४२१
१५७.	सव्वलोगो वा।	४२१
१५८.	उववादं णत्थि।	४२१
१५९.	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणी सत्थाणसमुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२२
१६०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२२
१६१.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।	४२२
१६२.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२२
१६३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२२
१६४.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।	४२३
१६५.	मणपज्जवणाणी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२३
१६६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२४
१६७.	उववादं णत्थि।	४२४
१६८.	केवलणाणी अवगदवेदभंगो।	४२४

अथ संयममार्गणाधिकारः

१६९.	संजमाणुवादेण संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा अकसाइभंगो।	४२५
१७०.	सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परिहारसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइय-संजदाणं मणपज्जवणाणिभंगो।	४२५
१७१.	संजदासंजदा सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२६
१७२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२६
१७३.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२६
१७४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२६
१७५.	छचोद्दसभागा वा देसूणा।	४२६
१७६.	उववादं णत्थि।	४२६
१७७.	असंजदाणं णवुंसयभंगो।	४२६

अथ दर्शनमार्गणाधिकारः

१७८.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२८
१७९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१८०.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४२९
१८१.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२९
१८२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२९
१८३.	अट्ठचोद्दसभागा देसूणा।	४२९
१८४.	सव्वलोगो वा।	४२९
१८५.	उववादं सिया अत्थि सिया णत्थि।	४२९
१८६.	लद्धिं पडुच्च अत्थि, णिव्वत्तिं पडुच्च णत्थि।	४२९
१८७.	जदि लद्धिं पडुच्च अत्थि, केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४२९
१८८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४२९
१८९.	सव्वलोगो वा।	४२९
१९०.	अचक्खुदंसणी असंजमभंगो।	४३०
१९१.	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।	४३०
१९२.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	४३०

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

१९३.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणं असंजदभंगो।	४३२
१९४.	तेउलेस्सियाणं सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३३
१९५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३३
१९६.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४३३
१९७.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३३
१९८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३३
१९९.	अट्ठ नव चोद्दसभागा वा देसूणा।	४३३
२००.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३३
२०१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३३
२०२.	दिवड्ढचोद्दसभागा वा देसूणा।	४३३
२०३.	पम्मलेस्सिया सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३५
२०४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३५
२०५.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४३५
२०६.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३५
२०७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३५
२०८.	पंचचोद्दसभागा वा देसूणा।	४३५
२०९.	सुक्कलेस्सिया सत्थाण-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३६
२१०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२११.	छ चोद्दस भागा वा देसूणा।	४३६
२१२.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३६
२१३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४३६
२१४.	छचोद्दसभागा वा देसूणा।	४३६
२१५.	असंखेज्जा वा भागा।	४३६
२१६.	सव्वलोगो वा।	४३६
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
२१७.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिय अभवसिद्धिय सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४३९
२१८.	सव्वलोगो।	४४०
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
२१९.	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४१
२२०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४१
२२१.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४१
२२२.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४२
२२३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४२
२२४.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४२
२२५.	असंखेज्जा वा भागा।	४४२
२२६.	सव्वलोगो वा।	४४२
२२७.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४२
२२८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४२
२२९.	छचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४२
२३०.	खइयसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४३
२३१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४३
२३२.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४४
२३३.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४४
२३४.	लोगस्स असंखेज्जदि भागो।	४४४
२३५.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४४
२३६.	असंखेज्जा वा भागा।	४४४
२३७.	सव्वलोगो वा।	४४४
२३८.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४४
२४०.	वेदगसम्मादिट्ठी सत्थाण-समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?	४४५
२४१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४५
२४२.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४५
२४३.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४६
२४४.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४६
२४५.	छचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४६
२४६.	उवसमसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४६
२४७.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४६
२४८.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४६
२४९.	समुग्घादेहि उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४७
२५०.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४७
२५१.	सासणसम्माइट्ठी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४७
२५२.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४८
२५३.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४८
२५४.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४८
२५५.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४८
२५६.	अट्ठबारहचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४८
२५७.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४८
२५८.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४८
२५९.	एक्कारहचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४८
२६०.	सम्मामिच्छाइट्ठीहि सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४४८
२६१.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४४८
२६२.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४४८
२६३.	समुग्घाद-उववादं णत्थि।	४४९
२६४.	मिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।	४४९

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

२६५.	सण्णियाणुवादेण सण्णी सत्थाणेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४५१
२६६.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४५१
२६७.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४५१
२६८.	समुग्घादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४५१
२६९.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४५१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२७०.	अट्ठचोद्दसभागा वा देसूणा।	४५१
२७१.	सव्वलोगो वा।	४५१
२७२.	उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४५१
२७३.	लोगस्स असंखेज्जदिभागो।	४५१
२७४.	सव्वलोगो वा।	४५१
२७५.	असण्णी मिच्छाइट्ठीभंगो।	४५२
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
२७६.	आहाराणुवादेण आहारा सत्थाण-समुग्घाद-उववादेहि केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४५३
२७७.	सव्वलोगो वा।	४५३
२७८.	अणाहारा केवडियं खेत्तं फोसिदं ?।	४५३
२७९.	सव्वलोगो वा।	४५४
	अथ नानाजीवेन कालानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	णाणाजीवेण कालाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया केवचिरं कालादो होंति ?।	४५७
२.	सव्वद्धा।	४५७
३.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	४५७
४.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी केवचिरं कालादो होंति ?।	४५८
५.	सव्वद्धा।	४५८
६.	मणुसअपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	४५८
७.	जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।	४५८
८.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४५८
९.	देवगदीए देवा केवचिरं कालादो होंति ?।	४६०
१०.	सव्वद्धा।	४६०
११.	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा।	४६०
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
१२.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	४६१
१३.	सव्वद्धा।	४६१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
१४.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्तापज्जत्ता तसकाइयपज्जत्ता अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति ?।	४६२
१५.	सव्वद्धा।	४६२
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
१६.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगी पंचवचिजोगी कायजोगी ओरालियकायजोगी ओरालिय-मिस्सकायजोगी वेउव्वियकायजोगी कम्मइयकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।	४६३
१७.	सव्वद्धा।	४६३
१८.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।	४६४
१९.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४६४
२०.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४६४
२१.	आहारकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।	४६४
२२.	जहण्णेण एगसमयं।	४६४
२३.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४६४
२४.	आहारमिस्सकायजोगी केवचिरं कालादो होंति ?।	४६४
२५.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४६४
२६.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४६५
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
२७.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ?।	४६६
२८.	सव्वद्धा।	४६६
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
२९.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाई केवचिरं कालादो होंति ?।	४६७
३०.	सव्वद्धा।	४६७
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
३१.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी विभंगणाणी आभिणिबोहियसुद-ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलवाणी केवचिरं कालादो होंति ?।	४६८
३२.	सव्वद्धा।	४६८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
३३.	संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धि-संजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	४६९
३४.	सव्वद्धा।	४६९
३५.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा केवचिरं कालादो होंति ?।	४६९
३६.	जहण्णेण एगसमयं।	४६९
३७.	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	४६९
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
३८.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी केवचिरंकालादो होंति ?	४७०
३९.	सव्वद्धा।	४७०
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
४०.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सिया केवचिरं कालादो होंति ?।	४७१
४१.	सव्वद्धा।	४७१
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
४२.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया अभवसिद्धिया केवचिरं कालादो होंति ?।	४७१
४३.	सव्वद्धा।	४७१
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
४४.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी मिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	४७२
४५.	सव्वद्धा।	४७२
४६.	उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	४७२
४७.	जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	४७३
४८.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४७३
४९.	सासणसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति ?।	४७३
५०.	जहण्णेण एगसमयं।	४७३
५१.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४७३
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
५२.	सण्णियाणुवादेण सण्णी असण्णी केवचिरं कालादो होंति ?।	४७४
५३.	सव्वद्धा।	४७४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
५४.	आहारा अणाहारा केवचिरं कालादो होंति ?।	४७५
५५.	सव्वद्धा।	४७५
	अथ नानाजीवेन अन्तरानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	णाणाजीवेहि अंतराणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइयाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४७८
२.	णत्थि अंतरं।	४७८
३.	णिरंतरं।	४७८
४.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	४७८
५.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४७९
६.	णत्थि अंतरं।	४७९
७.	णिरंतरं।	४८०
८.	मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८०
९.	जहण्णेण एगसमओ।	४८०
१०.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४८०
११.	देवगदीए देवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८०
१२.	णत्थि अंतरं।	४८०
१३.	णिरंतरं।	४८०
१४.	भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा देवगदिभंगो।	४८०
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
१५.	इंदियाणुवादेण एइंदिय-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८१
१६.	णत्थि अंतरं।	४८२
१७.	णिरंतरं।	४८२
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
१८.	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्ता-अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइय-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१९.	णत्थि अंतरं।	४८३
२०.	णिरंतरं।	४८३
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
२१.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-कायजोगि-ओरालिय-मिस्सकायजोगि-वेउव्वियकायजोगि-कम्मइय-कायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४८४
२२.	णत्थि अंतरं।	४८४
२३.	णिरंतरं।	४८४
२४.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८४
२५.	जहण्णेण एगसमयं।	४८४
२६.	उक्कस्सेण बारसमुहुत्तं।	४८४
२७.	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८४
२८.	जहण्णेण एगसमयं।	४८४
२९.	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	४८५
	अथ वेदमार्गणाधिकारः	
३०.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा णवुंसयवेदा अवगदवेदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?	४८६
३१.	णत्थि अंतरं।	४८६
३२.	णिरंतरं।	४८६
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
३३.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई लोभकसाई अकसाईणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८७
३४.	णत्थि अंतरं।	४८७
३५.	णिरंतरं।	४८७
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
३६.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणणि-मणपज्जवणाणि-केवलणाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८८
३७.	णत्थि अंतरं।	४८८
३८.	णिरंतरं।	४८८
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
३९.	संजमाणुवादेण संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा जहाक्खाद-विहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा असंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४०.	णत्थि अंतरं।	४८९
४१.	णिरंतरं।	४८९
४२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४८९
४३.	जहण्णेण एगसमयं।	४८९
४४.	उक्कस्सेण छम्मासाणि।	४८९
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
४५.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-केवलदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४९०
४६.	णत्थि अंतरं।	४९०
४७.	णिरंतरं।	४९०
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
४८.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिय-तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्किलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४९१
४९.	णत्थि अंतरं।	४९१
५०.	णिरंतरं।	४९१
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
५१.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४९२
५२.	णत्थि अंतरं।	४९२
५३.	णिरंतरं।	४९२
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
५४.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४९३
५५.	णत्थि अंतरं।	४९३
५६.	णिरंतरं।	४९३
५७.	उवसमसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४९३
५८.	जहण्णेण एगसमयं।	४९३
५९.	उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि।	४९३
६०.	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?।	४९३
६१.	जहण्णेण एगसमयं।	४९३
६२.	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।	४९३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
६३.	सण्णियाणुवादेण सण्णि-असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होंति ?।	४९५
६४.	णत्थि अंतरं।	४९५
६५.	णिरंतरं।	४९५
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
६६.	आहारणुवादेण आहार-अणाहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होंति ?।	४९६
६७.	णत्थि अंतरं।	४९६
६८.	णिरंतरं।	४९६
	अथ भागाभागानुगमो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	भागाभागाणुगमेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	४९९
२.	अणंतभागो।	४९९
३.	एवं सत्तसु पुढवीसु णेरइया।	४९९
४.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	४९९
५.	अणंता भागा।	४९९
६.	पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्ता, मणुसगदीए मणुसा मणुसपज्जत्ता मणुसिणी मणुसअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	४९९
७.	अणंतभागो।	४९९
८.	देवगदीए देवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	४९९
९.	अणंतभागो।	५००
१०.	एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा।	५००
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
११.	इंदियाणुवादेण एइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो।	५०२
१२.	अणंता भागा।	५०२
१३.	बादरेइंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०२
१४.	असंखेज्जदि भागो।	५०२
१५.	सुहुमेइंदिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०२
१६.	असंखेज्जा भागा।	५०२
१७.	सुहुमेइंदियपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०२
१८.	संखेज्जा भागा।	५०२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१९.	सुहुमेइंदिय अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०२
२०.	संखेज्जदिभागो।	५०२
२१.	बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणंवेडिओ भागो।	५०३
२२.	अणंतो भागो।	५०३
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
२३.	कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा पज्जत्ता अपज्जत्ता तसकाइया तसकाइय-पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०४
२४.	अणंतभागो।	५०४
२५.	वणप्फदिकाइया णिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०४
२६.	अणंता भागा।	५०५
२७.	बादरवणप्फदिकाइया बादरणिगोदजीवा पज्जत्ता अपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०५
२८.	असंखेज्जदिभागो।	५०५
२९.	सुहुमवणप्फदिकाइया सुहुमणिगोदजीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०५
३०.	असंखेज्जा भागा।	५०५
३१.	सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०५
३२.	संखेज्जा भागा।	५०५
३३.	सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्ता सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०५
३४.	संखेज्जदिभागो।	५०५
	अथ योगमार्गणाधिकारः	
३५.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्वियकायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि-आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०८
३६.	अणंतो भागो।	५०९
३७.	कायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०९
३८.	अणंता भागा।	५०९
३९.	ओरालियकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०९
४०.	संखेज्जा भागा।	५०९
४१.	ओरालियमिस्सकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०९
४२.	संखेज्जदिभागो।	५०९
४३.	कम्मइयकायजोगी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५०९
४४.	असंखेज्जदिभागो।	५०९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.

अथ वेदकषायज्ञानसंयममार्गणाधिकारः

४५.	वेदाणुवादेण इत्थिवेदा पुरिसवेदा अवगदवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१०
४६.	अणंतो भागो।	५११
४७.	णवुंसयवेदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१०
४८.	अणंता भागा।	५१०
४९.	कसायाणुवादेण कोधकसाई माणकसाई मायकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१०
५०.	चदुब्भागो देसूणा।	५१०
५१.	लोभकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५११
५२.	चदुब्भागो सादिरेगो।	५११
५३.	अकसाई सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५११
५४.	अणंतो भागो।	५११
५५.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५११
५६.	अणंता भागा।	५११
५७.	विभंगणाणी आभिणिबोहियणाणी सुदणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी केवलणाणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५११
५८.	अणंतभागो।	५११
५९.	संजमाणुवादेण संजदा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा परिहारसुद्धिसंजदा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संजदासंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५११
६०.	अणंतभागो।	५११
६१.	असंजदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१२
६२.	अणंता भागा।	५१२

अथ दर्शनलेश्या भव्यसम्यक्त्व संज्ञिआहार मार्गणाधिकारः

६३.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणी ओहिदंसणी केवलदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१२
६४.	अणंतभागो।	५१३
६५.	अचक्खुदंसणी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१३
६६.	अणंता भागा।	५१३
६७.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१३
६८.	तिभागो सादिरेको।	५१३
६९.	णीललेस्सिया काउलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।।	५१३
७०.	तिभागो देसूणो।	५१३
७१.	तेउलेस्सिया पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१३
७२.	अणंतभागो।	५१३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७३.	भवियाणुवादेण भवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१३
७४.	अणंता भागा।	५१३
७५.	अभवसिद्धिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१४
७६.	अणंतो भागो।	५१४
७७.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठी खइयसम्माइट्ठी वेदगसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी सासण-सम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१४
७८.	अणंतो भागो।	५१४
७९.	मिच्छाइट्ठी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१४
८०.	अणंता भागा।	५१४
८१.	सण्णियाणुवादेण सण्णी सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१४
८२.	अणंतभागो।	५१४
८३.	असण्णी जीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१४
८४.	अणंता भागा।	५१४
८५.	आहाराणुवादेण आहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१४
८६.	असंखेज्जा भागा।	५१४
८७.	अणाहारा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ?।	५१५
८८.	असंखेज्जदिभागो।	५१५

अथ अल्पबहुत्वानुगमो महाधिकारः

अथ गतिमार्गणाधिकारः

१.	अप्पाबहुगाणुगमेण गदियाणुवादेण पंचगदीओ समासेण।	५१८
२.	सव्वत्थोवा मणुसा।	५१८
३.	णेरइया असंखेज्जगुणा।	५१८
४.	देवा असंखेज्जगुणा।	५१८
५.	सिद्धा अणंतगुणा।	५१८
६.	तिरिक्खा अणंतगुणा।	५१८
७.	अट्ठ गदीओ समासेण।	५१९
८.	सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ।	५१९
९.	मणुस्सा असंखेज्जगुणा।	५१९
१०.	णेरइया असंखेज्जगुणा।	५१९
११.	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ।	५१९
१२.	देवा संखेज्जगुणा।	५१९
१३.	देवीओ संखेज्जगुणाओ।	५१९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४.	सिद्धा अणंतगुणा।	५१९
१५.	तिरिक्खा अणंतगुणा।	५१९
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः	
१६.	इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचिंदिया।	५२१
१७.	चउरिंदिया विसेसाहिया।	५२२
१८.	तीइंदिया विसेसाहिया।	५२२
१९.	बीइंदिया विसेसाहिया।	५२२
२०.	अणिंदिया अणंतगुणा।	५२२
२१.	एइंदिया अणंतगुणा।	५२२
२२.	सव्वत्थोवा चउरिंदियपज्जत्ता।	५२३
२३.	पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२३
२४.	बीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२३
२५.	तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२३
२६.	पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५२४
२७.	चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२४
२८.	तीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२४
२९.	बीइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२४
३०.	अणिंदिया अणंतगुणा।	५२४
३१.	बादरेइंदियपज्जत्ता अणंतगुणा।	५२५
३२.	बादरेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५२५
३३.	बादरेइंदिया विसेसाहिया।	५२५
३४.	सुहुमेइंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५२५
३५.	सुहुमेइंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५२५
३६.	सुहुमेइंदिया विसेसाहिया।	५२५
३७.	एइंदिया विसेसाहिया।	५२५
	अथ कायमार्गणाधिकारः	
३८.	कायाणुवादेण सव्वत्थोवा तसकाइया।	५२७
३९.	तेउकाइया असंखेज्जगुणा।	५२८
४०.	पुढविकाइया विसेसाहिया।	५२८
४१.	आउक्काइया विसेसाहिया।	५२८
४२.	वाउक्काइया विसेसाहिया।	५२८
४३.	अकाइया अणंतगुणा।	५२८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४४.	वणप्फदिकाइया अणंतगुणा।	५२८
४५.	सव्वत्थोवा तसकाइयपज्जत्ता।	५२९
४६.	तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५२९
४७.	तेउक्काइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५२९
४८.	पुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२९
४९.	आउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२९
५०.	वाउक्काइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२९
५१.	तेउक्काइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५२९
५२.	पुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२९
५३.	आउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२९
५४.	वाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५२९
५५.	अकाइया अणंतगुणा।	५२९
५६.	वणप्फदिकाइयअपज्जत्ता अणंतगुणा।	५३०
५७.	वणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५३०
५८.	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५३०
५९.	णिगोदा विसेसाहिया।	५३०
६०.	सव्वत्थोवा तसकाइया।	५३१
६१.	बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा।	५३१
६२.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा असंखेज्जगुणा।	५३१
६३.	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा असंखेज्जगुणा।	५३१
६४.	बादरपुढविकाइया असंखेज्जगुणा।	५३१
६५.	बादरआउकाइया असंखेज्जगुणा।	५३१
६६.	बादरवाउकाइया असंखेज्जगुणा।	५३१
६७.	सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा।	५३२
६८.	सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया।	५३२
६९.	सुहुमआउकाइया विसेसाहिया।	५३२
७०.	सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया।	५३२
७१.	अकाइया अणंतगुणा।	५३२
७२.	बादरवणप्फदिकाइया अणंतगुणा।	५३२
७३.	सुहुमवणप्फदिकाइया असंखेज्जगुणा।	५३२
७४.	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५३२
७५.	णिगोदजीवा विसेसाहिया।	५३३
७६.	सव्वत्थोवा बादरतेउकाइयपज्जत्ता।	५३६

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
७७.	तसकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
७८.	तसकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
७९.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
८०.	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
८१.	बादरपुढविकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
८२.	बादरआउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	४३६
८३.	बादरवाउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
८४.	बादरतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३६
८५.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३७
८६.	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३७
८७.	बादरपुढविकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३७
८८.	बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३७
८९.	बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३७
९०.	सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३७
९१.	सुहुमपुढविकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५३७
९२.	सुहुमआउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५३७
९३.	सुहुमवाउकाइयअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५३७
९४.	सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५३७
९५.	सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५३८
९६.	सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५३८
९७.	सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५३८
९८.	अकाइया अणंतगुणा।	५३८
९९.	बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा।	५३८
१००.	बादरवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३८
१०१.	बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५३८
१०२.	सुहुमवणप्फदिकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५३८
१०३.	सुहुमवणप्फदिकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५३८
१०४.	सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५३८
१०५.	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५३९
१०६.	णिगोदजीवा विसेसाहिया।	५३९

अथ योगमार्गणाधिकारः

१०७.	जोगाणुवादेण सव्वत्थोवा मणजोगी।	५४२
१०८.	वचिजोगी संखेज्जगुणा।	५४२
१०९.	अजोगी अणंतगुणा।	५४२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
११०.	कायजोगी अणंतगुणा।	५४२
१११.	सव्वत्थोवा आहारमिस्सकायजोगी।	५४३
११२.	आहारकायजोगी संखेज्जगुणा।	५४३
११३.	वेउव्वियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा।	५४३
११४.	सच्चमणजोगी संखेज्जगुणा।	५४३
११५.	मोसमणजोगी संखेज्जगुणा।	५४३
११६.	सच्चमोसमणजोगी संखेज्जगुणा।	५४३
११७.	असच्चमोसमणजोगी संखेज्जगुणा।	५४३
११८.	मणजोगी विसेसाहिया।	५४४
११९.	सच्चवचिजोगी संखेज्जगुणा।	५४४
१२०.	मोसवचिजोगी संखेज्जगुणा।	५४४
१२१.	सच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा।	५४४
१२२.	वेउव्वियकायजोगी संखेज्जगुणा।	५४४
१२३.	असच्चमोसवचिजोगी संखेज्जगुणा।	५४४
१२४.	वचिजोगी विसेसाहिया।	५४४
१२५.	अजोगी अणंतगुणा।	५४५
१२६.	कम्मइयकायजोगी अणंतगुणा।	५४५
१२७.	ओरालियमिस्सकायजोगी असंखेज्जगुणा।	५४५
१२८.	ओरालियकायजोगी संखेज्जगुणा।	५४५
१२९.	कायजोगी विसेसाहिया।	५४५

अथ वेदमार्गणाधिकारः

१३०.	वेदाणुवादेण सव्वत्थोवा पुरिसवेदा।	५४६
१३१.	इत्थिवेदा संखेज्जगुणा।	५४६
१३२.	अवगदवेदा अणंतगुणा।	५४६
१३३.	णवुंसयवेदा अणंतगुणा।	५४६
१३४.	पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पयदं। सव्वत्थोवा सण्णिणवुंसयवेदगब्भोवक्कंतिया।	५४७
१३५.	सण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।	५४७
१३६.	सण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।	५४७
१३७.	सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५४८
१३८.	सण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५४८
१३९.	सण्णिइत्थि-पुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया असंखेज्जवासाउआ दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा।	५४८
१४०.	असण्णिणवुंसयवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।	५४९
१४१.	असण्णिपुरिसवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।	५४९

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४२.	असण्णिइत्थिवेदा गब्भोवक्कंतिया संखेज्जगुणा।	५४९
१४३.	असण्णी णवुंसयवेदा सम्मुच्छिमपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५४९
१४४.	असण्णिणवुंसयवेदा सम्मुच्छिमा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५५०
	अथ कषायमार्गणाधिकारः	
१४५.	कसायाणुवादेण सव्वत्थोवा अकसाई।	५५१
१४६.	माणकसाई अणंतगुणा।	५५१
१४७.	कोधकसाई विसेसाहिया।	५५१
१४८.	मायाकसाई विसेसाहिया।	५५२
१४९३	लोभकसाई विसेसाहिया।	५५२
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकारः	
१५०.	णाणाणुवादेण सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणी।	५५३
१५१.	ओहिणाणी असंखेज्जगुणा।	५५३
१५२.	आभिणिबोहिय-सुदणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया।	५५३
१५३.	विभंगणाणी असंखेज्जगुणा।	५५४
१५४.	केवलणाणी अणंतगुणा।	५५४
१५५.	मदिअण्णाणी सुदअण्णाणी दो वि तुल्ला अणंतगुणा।	५५४
	अथ संयममार्गणाधिकारः	
१५६.	संजमाणुवादेण सव्वत्थोवा संजदा।	५५५
१५७.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	५५६
१५८.	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा।	५५६
१५९.	असंजदा अणंतगुणा।	५५६
१६०.	सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदा।	५५६
१६१.	परिहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा।	५५६
१६२.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा संखेज्जगुणा।	५५६
१६३.	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा।	५५६
१६४.	संजदा विसेसाहिया।	५५७
१६५.	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।	५५७
१६६.	णेव संजदा णेव असंजदा णेव संजदासंजदा अणंतगुणा।	५५७
१६७.	असंजदा अणंतगुणा।	५५७
१६८.	सव्वत्थोवा सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी।	५५७
१६९.	परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।	५५८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७०.	तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।	५५८
१७१.	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदस्स उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।	५५८
१७२.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स जहण्णिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।	५५९
१७३.	तस्सेव उक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।	५५९
१७४.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदस्स अजहण्ण-अणुक्कस्सिया चरित्तलद्धी अणंतगुणा।	५५९
	अथ दर्शनमार्गणाधिकारः	
१७५.	दंसणाणुवादेण सव्वत्थोवा ओहिदंसणी।	५६१
१७६.	चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा।	५६१
१७७.	केवलदंसणी अणंतगुणा।	५६२
१७८.	अचक्खुदंसणी अणंतगुणा।	५६२
	अथ लेश्यामार्गणाधिकारः	
१७९.	लेस्साणुवादेण सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सिया।	५६३
१८०.	पम्मलेस्सिया असंखेज्जगुणा।	५६३
१८१.	तेउलेस्सिया संखेज्जगुणा।	५६३
१८२.	अलेस्सिया अणंतगुणा।	५६४
१८३.	काउलेस्सिया अणंतगुणा।	५६४
१८४.	णीललेस्सिया विसेसाहिया।	५६४
१८५.	किण्हलेस्सिया विसेसाहिया।	५६४
	अथ भव्यमार्गणाधिकारः	
१८६.	भवियाणुवादेण सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया।	५६५
१८७.	णेव भवसिद्धिया णेव अभवसिद्धिया अणंतगुणा।	५६६
१८८.	भवसिद्धिया अणंतगुणा।	५६६
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकारः	
१८९.	सम्मत्ताणुवादेण सव्वत्थोवा सम्मामिच्छाइट्ठी।	५६७
१९०.	सम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।	५६७
१९१.	सिद्धा अणंतगुणा।	५६७
१९२.	मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा।	५६८
१९३.	सव्वत्थोवा सासणसम्माइट्ठी।	५६८
१९४.	सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा।	५६८
१९५.	उवसमसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।	५६८
१९६.	खइयसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।	५६८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१९७.	वेदगसम्माइट्ठी असंखेज्जगुणा।	५६८
१९८.	सम्माइट्ठी विसेसाहिया।	५६८
१९९.	सिद्धा अणंतगुणा।	५६९
२००.	मिच्छाइट्ठी अणंतगुणा।	५६९
	अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः	
२०१.	सण्णियाणुवादेण सव्वत्थोवा सण्णी।	५७०
२०२.	णेव सण्णी णेव असण्णी अणंतगुणा।	५७०
२०३.	असण्णी अणंतगुणा।	५७०
	अथ आहारमार्गणाधिकारः	
२०४.	आहाराणुवादेण सव्वत्थोवा अणाहारा अबंधा।	५७१
२०५.	बंधा अणंतगुणा।	५७१
२०६.	आहारा संखेज्जगुणा।	५७१
	अथ महादण्डकनाम महाधिकारः	
	द्वादशो महाधिकारः	
	अथ गतिमार्गणाधिकारः	
१.	एत्तो सव्वजीवेसु महादंडओ कादव्वो भवदि।	५७४
२.	सव्वत्थोवा मणुसपज्जत्ता गब्भोवक्कंतिया।	५७५
३.	मणुसिणीओ संखेज्जगुणाओ।	५७६
४.	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७६
५.	बादरतेउकाइयपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५७६
६.	अणुत्तरविजय-वैजयंत-जयंत-अवराजिदविमाणवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५७७
७.	अणुदिसविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा	५७७
८.	उवरिम उवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७७
९.	उवरिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१०.	उवरिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
११.	मज्झिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१२.	मज्झिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१३.	मज्झिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१४.	हेट्ठिमउवरिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१५.	हेट्ठिममज्झिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१६.	हेट्ठिमहेट्ठिमगेवज्जविमाणवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७.	आरणच्चुदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१८.	आणदपाणदकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५७८
१९.	सत्तमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५७९
२०.	छट्ठीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५७९
२१.	सदारसहस्सारकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५७९
२२.	सुक्कमहासुक्ककप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५७९
२३.	पंचमपुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५७९
२४.	लांतवकाविट्ठकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५८०
२५.	चउत्थीए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५८०
२६.	बम्ह-बम्हुत्तरकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५८०
२७.	तदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५८०
२८.	माहिंदकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५८०
२९.	सणक्कुमारकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५८०
३०.	विदियाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५८१
३१.	मणुसा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८१
३२.	ईसाणकप्पवासियदेवा असंखेज्जगुणा।।३२।।	५८१
३३.	देवीओ संखेज्जगुणाओ।	५८१
३४.	सोधम्मकप्पवासियकप्पवासियदेवा संखेज्जगुणा।	५८१
३५.	देवीओ संखेज्जगुणाओ।	५८२
३६.	पढमाए पुढवीए णेरइया असंखेज्जगुणा।	५८२
३७.	भवणवासियदेवा असंखेज्जगुणा।	५८२
३८.	देवीओ संखेज्जगुणा।	५८२
३९.	पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ।	५८२
४०.	वाणवेंतरदेवा संखेज्जगुणा।	५८२
४१.	देवीओ संखेज्जगुणाओ।	५८२
४२.	जोदिसियदेवा संखेज्जगुणा।	५८३
४३.	देवीओ संखेज्जगुणाओ।	५८३

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकारः

४४.	चउरिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५८४
४५.	पंचिंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८४
४६.	बेइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८४
४७.	तीइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४८.	पंचिंदियअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८५
४९.	चउरिंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८५
५०.	तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८५
५१.	बेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८५

अथ कायमार्गणाधिकारः

५२.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८६
५३.	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा पज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८६
५४.	बादरपुढविपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८६
५५.	बादरआउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८६
५६.	बादरवाउपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८६
५७.	बादरतेउअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८६
५८.	बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८७
५९.	बादरणिगोदजीवा णिगोदपदिट्ठिदा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८७
६०.	बादरपुढविकाइय अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८७
६१.	बादरआउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८७
६२.	बादरवाउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८७
६३.	सुहुमतेउकाइयअपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८७
६४.	सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८७
६५.	सुहुमआउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८८
६६.	सुहुमवाउकाइय-अपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८८
६७.	सुहुमतेउकाइयपज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५८८
६८.	सुहुमपुढविकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८८
६९.	सुहुमआउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८८
७०.	सुहुमवाउकाइयपज्जत्ता विसेसाहिया।	५८८
७१.	अकाइया अणंतगुणा।	५८८
७२.	बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ता अणंतगुणा।	५८९
७३.	बादरवणप्फदिकाइय-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८९
७४.	बादरवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५८९
७५.	सुहुमवणप्फदिकाइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा।	५८९
७६.	सुहुमवणप्फदिकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा।	५८९
७७.	सुहुमवणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५८९
७८.	वणप्फदिकाइया विसेसाहिया।	५८९
७९.	णिगोदजीवा विसेसाहिया।	५९०